रामकुमार वर्मा नाटक रचनावली

संपादक:
डॉ॰ कमल किशोर गोयनका
डॉ॰ चन्द्रिका प्रसाद शर्मा

हिन्दी में लेखकों की रचनावलियों के प्रकाशन की कोई व्यवस्थित परम्परा नहीं बन पायी है। इसका प्रमुख कारण है कि हम अभी तक रचनावली के प्रकाशन को वह महत्व नहीं दे पाये जो पश्चिमी देशों में है। इन देशों में लेखक के लिए रचनावली का प्रकाशन गौरव का प्रसंग है तथा साहित्य-जगत भी उत्कंठा से उनका स्वागत करता है। हिन्दी में भी ऐसी स्थिति बने, इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर इस रचनावली को प्रकाशित किया गया है।

डा. रामकुमार वर्मा हिन्दी के बहुमुखी प्रतिभावान लेखक हैं। उन्होंने कविता, नाटक, एकांकी, निबन्ध, आलोचना आदि अनेक विधाओं में लिखा है और सभी क्षेत्रों में यश प्राप्त किया है। नाटक उनकी प्रिय विधाओं में से एक है। एकांकी के तो वे जनक माने जाते हैं, पर पूर्णकालिक नाटकों की रचना में भी उन्होंने अपनी विशिष्ट पहचान बनायी है। डा. वर्मा ने अभी तक 26 नाटकों की रचना की है, जिन्हें कालक्रमानुसार तीन खण्डों में यहां प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक रचनावली से पाठक, अध्येता, एवं रंगकर्मी पहली बार डॉ. वर्मा के सम्पूर्ण नाटकों को एक साथ प्राप्त कर सकेंगे। इससे नाटककार सम्पूर्ण रूप से उन तक पहुँचेगा तथा वे विभिन्न रसों के नाटकों का रसास्वादन कर सकेंगे।

इस रचनावली का सम्पादन किया है हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक डॉ. कमल किशोर गोयनका तथा डॉ. चन्द्रिका प्रसाद शर्मा ने जिनके कार्यों की श्रेष्ठता सर्वत्र स्वीकार हो चुकी है।

रामकुमार वर्मा नाटक रचनावली

खण्ड दो

हिन्दुस्तानी अकादमी को,
सादर भेंट,
[signature]
१५ सितम्बर 2004

सम्पादक

डॉ० कमलकिशोर गोयनका
वरिष्ठ प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
जाकिर हुसैन पोस्ट-ग्रेजुएट ईवनिंग कॉलेज
(दिल्ली विश्वविद्यालय) दिल्ली-110006

डॉ० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा
वरिष्ठ प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
साकेत पोस्ट-ग्रेजुएट कॉलेज
(अवध विश्वविद्यालय) फैज़ाबाद

भूमिका

'रामकुमार वर्मा नाटक रचनावली' के इस द्वितीय खंड में उनके नौ नाटक संकलित हैं। ये नाटक हैं—'सारंग स्वर', 'पृथ्वी का स्वर्ग', 'जय बांगला', 'अग्नि-शिखा', 'संत तुलसीदास', 'जय आदित्य', 'जय वर्धमान', 'जय भारत' तथा 'भगवान बुद्ध'। इन नाटकों में हमारे ऐतिहासिक राष्ट्रनायकों, धर्म-संस्थापकों, अमर कवियों तथा राष्ट्रीय एवं सामाजिक प्रश्नों को प्रमुखता देते हुए देश की अस्मिता एवं भारतीयता की उज्ज्वलता को अभिव्यक्त किया गया है। 'सारंग-स्वर' में मांडवगढ़ के सुलतान बाजबहादुर एवं उसकी रानी रूपमती की प्रेम-कथा है जो साहित्य और लोक-जीवन में भी यथेष्ट प्रचलित है। लेखक के अनुसार इस नाटक की रचना के मूल में 'लोक-मर्यादा के मानसिक स्तर' को उद्‌घाटित करना रहा है। 'पृथ्वी का स्वर्ग' नाटक में एक काल्पनिक पात्र दुलीचन्द के माध्यम से अर्थ-लोलुपता से उत्पन्न विभिन्न समस्याओं तथा बदलती मानवीय मनोवृत्तियों का चित्रण किया गया है। इस नाटक का पहला अंक एकांकी के रूप में लिखा गया था, परन्तु समस्या के विस्तार ने लेखक को इसे नाटक बनाने के लिए विवश कर दिया। 'जय बांगला' बंगला देश के जन्म से पूर्व हुए नर-संहार की वास्तविक घटनाओं पर लिखा नाटक है। डा० वर्मा के अनुसार घटनाएँ सत्य हैं, पर पात्रों के नाम कल्पित हैं लेकिन यह मानना होगा कि इस शताब्दी की एक महत्त्वपूर्ण घटना को बड़ी जीवन्तता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

'अग्नि-शिखा' एक ऐतिहासिक नाटक है जो चाणक्य की समाज-नीति एवं राजनीति के साथ सम्राट चन्द्रगुप्त तथा अमात्य राक्षस के व्यक्तित्व को प्रकाशित करता है। नाटककार का लक्ष्य है—मौर्यकालीन इस नाटक से देश के यशस्वी महा-पुरुषों के चरित्र की वास्तविकता का बोध कराना। लेखक की विशेषता यह है कि वह अपनी पूर्व प्रवृत्ति के अनुरूप इतिहास की गहराइयों में जाता है और प्राप्त सत्य के आधार पर अपने पात्रों की सृष्टि करता है। इसके उपरान्त 'संत तुलसीदास' नाटक संकलित है जो मानस चतुःशती की एक उपलब्धि कहा जा सकता है। डा० रामकुमार वर्मा के जीवन पर 'रामचरितमानस' का विशिष्ट प्रभाव रहा है, इस कारण भी इस नाटक में अधिक प्राणवत्ता दिखाई देती है। 'जय आदित्य' नाटक हर्षवर्धन के जीवन पर आधारित है, जो लेखक के शब्दों में 'महान् विजेता, महान शासक, महान् धर्मपरायण, महान् विद्यानुरागी और महान् सभ्यता और संस्कृति का पोषक' था।

देश के नवयुवक इस पात्र से प्रेरणा लें, इसलिए नाटककार ने इसके चरित्र को रंग-मंच पर पर प्रदर्शित किया है। इसके उपरान्त लेखक भगवान् महावीर के ऐतिहासिक चरित्र को लेकर 'जय वर्धमान' नाटक की रचना करता है। लक्ष्य वही है कि इस महान् चरित्र से देश के राष्ट्रीय एवं मानवतावादी दृष्टिकोण को प्रश्रय मिले और उसका सर्वत्र प्रसार हो। 'जय भारत' भी इसी दृष्टिकोण का प्रतिफल है। भारत के प्रथम स्वातन्त्र्य संग्राम-1857 के भारतीय विद्रोह के महानायकों—नाना साहब, मंगल पांडे, बहादुरशाह जफर, कुँवरसिंह, शहजादा फीरोजशाह, ताँत्या टोपे तथा महारानी लक्ष्मीबाई को केन्द्र में रखकर इस नाटक की रचना की गयी है। ये सात नायक सात केन्द्रों में भयानक विद्रोह करते हैं जो सात अंकों में प्रस्तुत किया गया है, पर खूबी यह है कि वे सभी संग्रथित भी हैं। इस खंड के अन्तिम नाटक 'भगवान बुद्ध' में महात्मा बुद्ध के महान् सिद्धान्तों को उनके चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। लेखक का विश्वास है कि यह नाटक नयी पीढ़ी को जाति-भेद एवं वर्ग-भेद से ऊपर उठाकर एक नवीन समाज की स्थापना के लिए प्रेरित कर सकेगा।

ये सभी नाटक अनेक बार देश के विभिन्न अंचलों में रंगमंच पर खेले गए हैं और दर्शकों में भारतीयता, देश-प्रेम तथा इतिहास से प्रेरणा लेने की चेतना को भरते रहे हैं। हमें विश्वास है कि ये सभी नाटक आगामी पीढ़ियों को भी इसी प्रकार भारतीय चेतना से ओत-प्रोत करते रहेंगे।

चन्द्रिकाप्रसाद शर्मा
सी-10, के० रोड, महानगर
लखनऊ-226006

कमलकिशोर गोयनका
ए-98, अशोक विहार, फेज प्रथम
दिल्ली-110052

क्रम

सारंग-स्वर / 9
पृथ्वी का स्वर्ग / 61
जय बांगला / 123
अग्निशिखा / 159
संत तुलसीदास / 229
जय आदित्य / 297
जय वर्धमान / 349
जय भारत / 417
भगवान बुद्ध / 479

सारंग-स्वर

प्रवेशक

सारंग स्वर का गुंजार माण्डवगढ़ के पतन का करुण संगीत है। माण्डवगढ़ के सुलतान बाजबहादुर और उसकी अप्रतिम सुन्दरी रानी रूपमती की प्रेम-कथा का पर्यवसान इस नाटक के पृष्ठों पर अंकित किया गया है। दोनों ही संगीत के कुशल साधक थे। जो संगीत संगीत-सम्राट अकबर के दरबार-गायक तानसेन के द्वारा उत्तर भारत के वातावरण को गुंजित कर रहा था, वही संगीत प्रतिध्वनित होकर विंध्य पर्वत के अंचल में बसे हुए माण्डवगढ़ में सुलतान बाजबहादुर और रानी रूपमती के कण्ठ में उभर रहा था।

दोनों का संगीत-प्रेम भारतीय प्रेम-कथाओं में अद्वितीय है। माण्डवगढ़ के प्राकृतिक सौन्दर्य में प्रेम-सौन्दर्य की यह छटा वैसी ही है, जैसे किसी जौहरी ने स्वर्ण-मुद्रिका में माणिक-रत्न जड़ दिया हो। माण्डवगढ़ प्राकृतिक सौन्दर्य में इतना मोहक था और उसकी भौगोलिक स्थिति ऐसी थी कि भारतीय इतिहास का एक बड़ा भाग यहीं पर घटित हुआ। माण्डवगढ़ की भौगोलिक और ऐतिहासिक स्थिति पर भी कुछ विचार आवश्यक है।

भौगोलिक स्थिति

माण्डवगढ़ धार राज्य से 22 मील दूर विंध्य शैलमाला के पश्चिमी शिखर (2080 फुट की ऊँचाई) पर स्थित है। वह मालवा की सीमा से हटकर एक सघन वन-प्रान्तर से घिरा हुआ है, जिसके उत्तर, पूर्व और पश्चिम की ओर एक गहरी खाई है जो 'काकड़ा खोह' के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध है। दक्षिण में विंध्य पर्वत का 1250 फुट नीचा ढाल है जो आक्रमणकारियों के साहस के लिए एक कठोर चुनौती है। माण्डवगढ़ जिस शैलमाला पर स्थित है, वह अपने शिखर पर फैल गई है जो पूर्व से पश्चिम तक 5 मील और उत्तर से दक्षिण तक साढ़े चार मील है। इस भाँति माण्डवगढ़ का विस्तार 12,500 एकड़ के लगभग है। अनेक झीलों और तालाबों में जब माण्डवगढ़ की हरीतिमा प्रतिबिम्बित होती है, तो लगता है, जैसे नीले क़ालीन पर हरित वसना अप्सराएँ नृत्य कर रही हैं।

ऐतिहासिक स्थिति

माण्डवगढ़ जैसा प्राकृतिक परिवेश है, उसे देखते हुए किसी भी शासक के हृदय में इस पर अधिकार करने की लालसा उत्पन्न हो सकती है। किन्तु इसके प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। सर्वप्रथम जो ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध हुए हैं, उनसे पता चलता है कि माण्डवगढ़ सबसे पहले कन्नौज के गुर्जरों के अधिकार में था। उनके पतन के उपरान्त वह परमार राजाओं के हाथ में आया, जिनमें राजा मुंज सबसे प्रतापशाली था, जिसका शासन-काल सन् 973 से 995 ई० तक रहा। उसी के नाम से माण्डवगढ़ में 'मुंजताल' का निर्माण हुआ। इस वंश में भारत-प्रसिद्ध विद्वान और कुशल राजनीतिज्ञ राजा भोज हुआ, जिसने सन् 1010 से 1055 तक शासन किया और माण्डवगढ़ के प्राचीर का निर्माण कराया। उसे माण्डवगढ़ अत्यन्त प्रिय था और उसे उसने विभिन्न साहित्यिक नाम—'मंडपाद्रि', 'मंडपशैल', 'मंडप दुर्ग', 'मंडपाचल', 'मंडपगिरि'—दिए थे। उस समय माण्डवगढ़ की जनसंख्या सात लाख थी और सात सौ के लगभग जैन मन्दिर थे जो स्वर्ण से मण्डित थे।

तेरहवीं शताब्दी में माण्डवगढ़ में मुसलमानों का प्रवेश हुआ। अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण से माण्डवगढ़ की श्री बहुत-कुछ नष्ट हो गई और उसकी स्वतन्त्रता सदैव के लिए समाप्त हो गई। उसका भाग्य दिल्ली के सुलतान के हाथ में आ गया और मुहम्मद तुग़लक के उपरांत दिलावर ख़ाँ ग़ोरी, होशंगशाह, मुहम्मद ग़ोरी, महमूद ख़िलजी, ग़यासुद्दीन खिलजी, नसीरुद्दीन ख़िलजी, महमूद ख़िलजी (2) के अधिकार में सन् 1531 तक रहा। उसके उपरान्त वह क्रमशः हुमायूँ और शेरशाह के अधिकार में आया। शेरशाह ने सन् 1542 में कादिरशाह को पराजित कर अपने सम्बन्धी शुजाअत खाँ को माण्डवगढ़ का शासक बनाया जो सन् 1554 तक मालवा का सूबेदार रहा। शुजाअत की मृत्यु के अनन्तर उसका लड़का मलिक बायज़ीद मालवा का सुलतान हुआ। यही मलिक बायज़ीद 'बाजबहादुर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसने केवल छः वर्ष शासन किया। इसका राज्य-काल सन् 1555 से 1561 तक ही रहा। अपने शासन के एक वर्ष बाद उसने गोंडवाने की महारानी दुर्गावती पर आक्रमण किया, किन्तु व्यक्तिगत वीरता दिखलाने पर भी वह बुरी तरह से पराजित हुआ। अपनी मर्यादा-हानि और तज्जनित लज्जा से मुक्ति पाने के लिए उसने विलासिता की शरण ली और नृत्य और संगीत की लहरों में मन का अवसाद बहाने का प्रयत्न किया।

तभी उसकी भेंट रूपमती से हुई जो स्वयं अत्यधिक सुन्दरी होने के साथ ही कुशल नृत्य करने वाली, निपुण गायिका और वीणावादिका भी थी। दोनों में प्रेम हुआ और वह प्रेम परिणय-ग्रन्थि के रूप में अभिन्नता का प्रतीक बन गया। बाजबहादुर की विलासिता सम्राट अकबर से सहन नहीं हो सकी। सम्भवतः रूपमती के संगीत की प्रति-ध्वनि बाजबहादुर की विलासिता की सहचरी बनकर अकबर के अन्तःपुर के रस-रंग को फीका बना रही थी। अकबर में राज्य-विस्तार की लालसा भी थी और माण्डवगढ़ जैसे दुर्ग को केन्द्र बनाकर दक्षिण को अधिकार में लाने की युक्ति भी उसके मन में उभर आई थी। उसने अपने सिपहसालार आदम ख़ाँ को पीर मुहम्मद ख़ाँ और अब्दुल मुहम्मद

ख़ाँ के साथ माण्डवगढ़ पर आक्रमण करने के लिए भेजा । सन् 1561 की 27 मार्च को माण्डवगढ़ से दस कोस दूर सारंगपुर स्थान पर आदम ख़ाँ की शाही सेना और बाज-बहादुर की सेना में भयानक युद्ध हुआ। बाजबहादुर की सेना पराजित हुई और स्वयं बाजबहादुर घायल होकर खानदेश की ओर भागा। बाजबहादुर का सारा राजकोष और रनिवास आदम ख़ाँ के अधिकार में हो गया, किन्तु युद्ध में जाने के पूर्व बाजबहादुर ने अपने सेवकों को यह आज्ञा दी थी कि युद्ध में पराजित होने की स्थिति में सारे रनिवास को क़त्ल कर दिया जाए जिससे रानियों का सम्मान सुरक्षित रहे । युद्ध में पराजय की सूचना मिलते ही जल्लादों ने रानियों को क़त्ल करना शुरू कर दिया। सभी रानियाँ काट दी गईं किन्तु जल्लाद का वार हल्का पड़ने के कारण रानी रूपमती और अन्य तीन रानियाँ केवल घायल होकर रह गईं । आदम ख़ाँ ने रनिवास पर अधि-कार कर तीनों रानियों के घावों का उपचार कराया और उन्हें स्वस्थ कर दिया। इसके उपरान्त उसने रानी रूपमती से मिलने का प्रस्ताव भिजवाया। रानी रूपमती के पास अन्य कोई विकल्प नहीं था। उसने आदम ख़ाँ से अपने श्रृंगार के लिए केसर, कस्तूरी और कपूर की माँग की, जिससे आदम ख़ाँ को आशा हुई कि रानी रूपमती उसके 'हरम' को रौनक़ बख़्शेगी, किन्तु आदम ख़ाँ के महल में आने के पूर्व उसने सम्पूर्ण रूप से अपना सौभाग्य-श्रृंगार किया और श्रृंगार-कक्ष में आदम ख़ाँ के आते ही विषपान कर लिया। इस प्रकार उसने अपने पातिव्रत्य के अद्भुत उदाहरण से समस्त संसार को चकित कर दिया।

इसके बाद का इतिहास घटनाओं की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है। आदम ख़ाँ की विजय के बाद यहाँ सम्राट् अकबर भी आया। प्रशासनिक प्रबन्ध कर वह लौट गया, उसने आदम ख़ाँ को भी आगरा वापस बुला लिया। माण्डवगढ़ पीर मोहम्मद के अधिकार में आया। बाजबहादुर ने उदयपुर के राणा की सहायता से सूने माण्डवगढ़ को जीता, किन्तु शाही सेना से फिर पराजित हुआ और उसने जंगलों की शरण ली। कालान्तर में सन् 1570 में वह अकबर का गायक बना और सन् 1595 में रानी रूपमती के बलिदान के 34 वर्ष बाद संसार से कूच कर गया। कहाँ रूपमती का पातिव्रत्य और कहाँ बाजबहादुर का अपने सुख-संहारक अकबर के प्रति सेवा-भाव ! एक के मर्यादा-निर्वाह और दूसरे की गौरव की चाह के बीच 34 वर्षों का अंतराल !

प्रस्तुत नाटक

यह नाटक रूपमती के उदात्त चरित्र को ही ध्यान में रखकर लिखा गया है, इसलिए रूपमती के विष-पान के अनन्तर ही नाटक समाप्त हो जाता है। नाटक उस समय से आरम्भ होता है, जब आदम ख़ाँ ने सारंगपुर के युद्ध में विजय प्राप्त कर ली है। युद्ध की विभीषिका से आरम्भ होकर नाटक का अन्त करुणा में ही होता है, इस प्रकार वीर और भयानक स्थितियों के अन्तराल में करुणा की एक अन्तर्धारा मानसिक उत्थान और पतन के साथ प्रवाहित होती है। इससे चरित्रों का सौन्दर्य निखारने के लिए मुझे अनेक परिस्थितियाँ प्राप्त हो गई हैं।

चरित्र

ऐतिहासिक चरित्रों को मनोवैज्ञानिक ढंग से उपस्थित करने में सदैव एक कठिनाई उठ खड़ी होती है। इतिहास चरित्रों और घटनाओं की एक परिणति है। उसके समक्ष एक चरित्र अपने गुणों अथवा अवगुणों से एक निश्चित परिणाम पर पहुँच कर समाप्त हो जाता है, किन्तु उस निश्चित परिणाम तक पहुँचने के पूर्व उसका मन कितने संघर्षों को पार कर किस भाँति आशा और निराशा की लहरों में आन्दोलित होता है, इतिहास के पास इसका कोई लेखा नहीं है। इन लहरों के आन्दोलन में ही उसकी प्रवृत्तियों का उत्थान और पतन होता है और उसके स्वभाव की वास्तविक रूपरेखा निर्मित होती है। ऐतिहासिक चरित्र को मानव-मन के साँचे में ढालने का यही एक मनोवैज्ञानिक साधन है।

रूपमती : रूपमती के सम्बन्ध में इतिहासकारों के विभिन्न दृष्टिकोण हैं। फ़िरिश्ता के अनुसार वह केवल एक वेश्या थी जो बाजबहादुर के दरबार में नाचने के लिए आई। दोनों एक-दूसरे के रूप और गुणों पर मोहित हो गए और बाद में उनका विवाह हो गया। 'मसीरुल उमरा' का लेखक उसे एक नर्तकी के रूप में लिखता है। 'तवक़ात-ए-अकबरी' का लेखक निज़ामुद्दीन अहमद उसे एक ठाकुर की लड़की मानता है। जब बाजबहादुर शिकार के लिए जंगल में गया था, तब रूपमती अपनी सखियों के साथ वन-विहार के लिए आई थी। उसका नृत्य और गान सुनकर बाजबहादुर मोहित हो गया और उसने रूपमती के पिता के पास विवाह के लिए प्रस्ताव भेजा। यद्यपि रूपमती के पिता यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं करना चाहते थे, किन्तु रूपमती ने जिसे हृदय से वरण कर लिया था, उसे लांछित नहीं होना देना चाहती थी, परिणामस्वरूप रूपमती और बाजबहादुर का विवाह हो गया।

रूपमती अनेक कलाओं में निपुण थी। संगीत, नृत्य, काव्य और चित्रकला के साथ वह बड़ी कुशल अश्वारोहिणी भी थी। साथ ही उसे आखेट का विशेष चाव था और उसका लक्ष्य इतना सच्चा होता था कि वह बाजबहादुर को पीछे हटाकर हिंस्र पशुओं को धराशायी कर देती थी। दूसरी ओर वह नैतिक आस्थाओं में इतनी दृढ़ थी कि बिना नर्मदा का पूजन किए, जल भी ग्रहण नहीं करती थी। उसने बाजबहादुर से आग्रह कर अपने महल में एक ऐसा झरोखा बनवाया था जिससे वह उषा-काल में नर्मदा के दर्शन कर सके। विपत्ति के क्षणों में उसमें अपार साहस था और अपनी मर्यादा की सुरक्षा में उसमें प्राणोत्सर्ग तक करने की शक्ति और क्षमता थी। इन समस्त संस्कारों से उसका वेश्या होना किसी प्रकार भी मान्य नहीं हो सकता। वह निज़ामुद्दीन अहमद के कथनानुसार एक ठाकुर की लड़की थी जिसमें एक क्षत्राणी के सभी गुण वर्तमान थे।

इसी मान्यता के आधार पर यहाँ रानी रूपमती का चित्रण हुआ है। यद्यपि कथावस्तु को सम्बद्ध रूप से उपस्थित करने के कारण केवल दो अंकों में ही उसका अवतरण हुआ है। तथापि उसके समस्त मानसिक आरोहावरोहों का संकेत संवादों द्वारा व्यक्त हो सका है। करुणा के अन्तिम मोड़ पर उसके हृदय में क्षत्राणी का भाव उभरता

है कि वह आदम ख़ाँ पर बाण चला सकती है, किन्तु उसकी नैतिक मर्यादा किसी छल को उभरने नहीं देती। नाटक में भवभूति के करुण रस की मान्यता को ही स्वीकार किया गया है और रूपमती का मरण शत्रु के हृदय से भी एक करुण चीत्कार निकलवाने की शक्ति रखता है।

बाजबहादुर : बाजबहादुर शक्ति की साधना में कभी सफल नहीं हुआ। एक बार वह महारानी दुर्गावती से भी हार गया था, दूसरी बार वह आदम ख़ाँ की सेना से पराजित होकर भागा। वस्तुतः सुलतान होने के कारण वह हमेशा युद्ध का दम्भ प्रदर्शित करता था जो वह हारकर भी भूल नहीं सका। किन्तु वह इतना भयभीत और शंकाग्रस्त था कि एक सूखे हुए पेड़ को भी शत्रु का सिपाही समझ बैठता था और उससे युद्ध करने की अपेक्षा, स्वयं ही क़त्ल हो जाने की बात कहता था। यह रूपमती का प्रेम ही था जिसने 'बाज़' को 'बहादुर' बना दिया था किन्तु रूपमती का आश्रय दूर होने पर 'बाज़' केवल 'लवा' का रूप ले सकता था। वह एक ऐसा पौधा था जिसे सदैव किसी लकड़ी के सहारे की आवश्यकता होती है।

आदम ख़ाँ : इसमें सिपहसालार का पूरा व्यक्तित्व है। माण्डवगढ़ जीतने पर तो वह अपने को सुलतान ही कहने लगता है। वह छद्मवेशी और नीतिज्ञ भी है। वह छिपकर परिस्थितियों का भेद लेता है और शत्रु को शतरंज के मोहरे की तरह हर चाल में शह देता है। उसे अपनी मर्यादा का बहुत अधिक ध्यान है किन्तु विलास के क्षणों में वह अपने से निम्न श्रेणी वालों को भी अपने पास तक चले आने देता है। उसका सम्भाषण भयभीत करने वाला है किन्तु वह मुसाहिबों की ख़ुशामद को भी मुस्कराकर सुन लेता है। उसकी प्रत्येक भंगिमा में उसका अभिमान और अहंकार झलकता है। वह अपने को किसी प्रकार भी सम्राट् अकबर से कम नहीं समझता।

शेख़ उमर : रानी रूपमती के गुरु का स्वाभिमान बड़े ऊँचे स्तर तक चला गया है। जहाँ एक ओर वह छोटों के लिए वात्सल्यपूर्ण है, वहाँ दूसरी ओर वह शत्रु के प्रति कठोर और निर्भीक भी है। विशेष परिस्थितियों में अपनी विवशता से क्षुब्ध और दुःखी भी हो जाता है। वह वृद्ध है, किन्तु उसकी कड़कती हुई आवाज़ किसी सैनिक की ललकार से कम नहीं है। वह किसी से व्यंग्य और परिहास सुन नहीं सकता, यहाँ तक कि अपनी विवशता और वृद्धावस्था की निर्बलता के कारण अपमान सहन न करने पर अपना जीवन ही समाप्त कर देता है।

गौण पात्रों में जहाँ विजय सिंह सच्चा स्वामिभक्त राजपूत सरदार है, वहाँ पीर मुहम्मद ख़ाँ और अब्दुला ख़ाँ ख़ुशामदी मुसाहिब हैं। इनमें भी अब्दुल्ला ख़ाँ की ख़ुशामद तो हास्य की सीमा भी स्पर्श करने लगती है।

स्त्री पात्रों में रेवा, श्याम मंजरी और प्रभाती अपनी स्वामिनी रूपमती की सेवा करने में निरन्तर प्रयत्नशील हैं। उनमें साहस, निर्भीकता और कर्त्तव्यनिष्ठा प्रत्येक परिस्थिति में देखी जा सकती है।

संवाद

मेरे नाटक में संवाद मनोविज्ञान के संकेत से ही प्रेरित हुए हैं। पात्र जिस परिस्थिति में पड़ता है, उसकी क्रिया और प्रतिक्रिया में ही संवाद की गति अपनी सीमा निर्धारित करती है। एक ही पात्र करुणा में जब शिथिल स्वर से बोलता है तो वही उत्साह से गगन-भेदी नाद करता है। संवाद का सबसे अधिक अभिप्राय पात्रों के स्वाभाविक मनोवेगों के अनुरूप होने में है। कथावस्तु की प्रकृति से जहाँ मुसलमान पात्रों के संवाद का अवसर आता है वहाँ संवाद की भाषा सहज ही उर्दू हो जाती है। यह इसलिए हुआ है कि पात्रों में उनके स्वाभाविक कथोपकथन का रूप किसी प्रकार अनुपयुक्त न जान पड़े। मुसलमान पात्रों को स्वाभाविकता के साथ उपस्थित करने में ही इस नाटक में उर्दू के प्रयोग का औचित्य है, इसीलिए आदम ख़ाँ की महफ़िल में नर्तकियों द्वारा ग़ज़ल ही गाई गई है।

नाटक का नामकरण

यह प्रसिद्ध है कि रानी रूपमती और सुलतान बाजबहादुर संगीत की उपासना को जीवन का आवश्यक अंग मानते थे। अधिकतर वे दिन के भोजन के अनन्तर सम्मिलित कंठ से रोगों का आलाप करते थे। उन रागों में 'सारंग राग' उन्हें विशेष प्रिय था। यह सारंग राग औडव जाति का है और मध्याह्न में ही गाया जाता है। इसमें तीव्र 'रे', तीव्र 'ग' और तीव्र 'ध' तथा कोमल 'ग' और कोमल 'नि' लगते हैं। 'नि' काकली निषाद के अन्तर्गत है और 'ग' अच्युत मध्यम गांधार है। इससे सारंग में एक विशेष प्रकार का सम्मोहन आ जाता है। अपने अन्तिम क्षणों में रानी रूपमती ने अपने गायक रायचन्द से इसी राग को सुनने का आग्रह किया और शायद काकली निषाद के उत्तान स्वर में ही उन्होंने प्राणोत्सर्ग किया, इसलिए समस्त संवेदना को सारंग-स्वर के अन्तर्गत ही प्रस्तुत किया गया है। इसमें आदम ख़ाँ तीव्र 'रे', नानकचन्द तीव्र 'ग' और पीर मोहम्मद तीव्र 'ध' का प्रतीक है तथा बाजबहादुर कोमल 'म' और रानी रूपमती कोमल 'नि' की संवेदना उपस्थित करती हैं। 'सारंग-स्वर' न केवल ऐतिहासिक वातावरण के अनुकूल है, प्रत्युत पात्रगत मनोविज्ञान के समानान्तर भी है।

अभिनय

'सारंग-स्वर' को अभिनेय नाटक के रूप में उपस्थित किया गया है। सामान्य रूप से दो 'अचल' दृश्यों को क्रम से सजाना उचित नहीं है—दो अचल दृश्यों के बीच में एक 'चल' दृश्य आवश्यक है—किन्तु इस नाटक में अंकों के अन्तर्गत दृश्यों का विधान नहीं है। अंक ही इस नाटक की इकाइयाँ हैं। प्रत्येक अंक के अन्त में बाहरी यवनिका द्वारा अन्तराल होता है, इसलिए मंच-व्यवस्था में किसी प्रकार की असुविधा उत्पन्न नहीं होगी। अन्तिम अंक में मंच का दो भागों में विभाजन बीच के परदे

(cross curtain) द्वारा उपस्थित किया जा सकता है। अतः यह नाटक सम्पूर्ण रूप से अभिनेय है।

यद्यपि बाजबहादुर और रानी रूपमती के प्रेम की कथा इतिहास में ही नहीं, साहित्य और लोक-साहित्य में भी यथेष्ट प्रचलित है, तथापि लोक-मर्यादा के मानसिक स्तर को उद्घाटित करने की दृष्टि से ही मैंने इस नाटक की रचना की है। मेरे पूरे नाटकों के क्रम में यह सातवाँ नाटक है। मुझे आशा है कि जिस भाँति आपने मेरे पहले छः नाटकों के प्रति अपना सद्भाव प्रदर्शित किया है, उसी भाँति यह नाटक भी आपको रुचिकर होगा।

—रामकुमार वर्मा

पात्र-सूची

पुरुष

सुलतान बाजबहादुर	:	माण्डवगढ़ का सुलतान
शेख़ उमर	:	रानी रूपमती का गुरु
रायचन्द	:	बाजबहादुर का ख़ास रिसालदार
नानकचन्द	:	रानी रूपमती का वैद्य
विजयसिंह	:	बाजबहादुर का सहायक सरदार
सरदार आदम ख़ाँ	:	सम्राट् अकबर का सिपहसालार
पीर मोहम्मद ख़ाँ **अब्दुल्ला ख़ाँ**	:	आदम ख़ाँ के मुसाहिब
अहमद ख़ाँ **शेख़ नबी** **अब्दुल**	:	आदम ख़ाँ के सिपाही

स्त्री

रानी रूपमती	:	बाजबहादुर की पत्नी
श्याम मंजरी	:	रानी रूपमती की अंगरक्षिका
रेवा **प्रभाती**	:	रानी रूपमती की सखियाँ
भैरवी	:	रानी रूपमती की सेविका
नर्तकियाँ आदि		

दृश्य की पृष्ठभूमि

काल : 27 मार्च, सन् 1561

मालवा राज्य के अन्तर्गत माण्डवगढ़ की राज्यश्री सुलतान बाजबहादुर के अद्भुत विलास की अमरावती थी, जिसमें रानी रूपमती शची की भाँति संगीत और नृत्य से अपना शृंगार करती थी। एक ओर रानी रूपमती का सौन्दर्य सम्पूर्ण भारत के ओंठों पर वाणी द्वारा स्पन्दित हो रहा था, दूसरी ओर दक्षिण के विस्तृत भू-भाग के लिए मार्ग देने वाला मालवा एक सिंह-द्वार बनकर शार्दूल पराक्रमी सम्राट् अकबर के हृदय में हलचल मचा रहा था। एक बात और भी थी। किशोर काल की रूपमती की रूप-शिखा ने सम्राट् अकबर के सिपहसालार आदम ख़ाँ के हृदय को ऐसा शलभ बना दिया था जो एक ही उछाल में उस रूपशिखा को या तो बुझा देना चाहता था या उसमें स्वयं जल जाना चाहता था। अकबर की राज्य-तृष्णा और आदम ख़ाँ की रूप-तृष्णा के दोनों किनारों से हिंसक सैनिकों की वाहिनी बही और उसने माण्डवगढ़ को रक्त में डुबा दिया। माण्डवगढ़ से दस कोस की दूरी पर सारंगपुर में शाही सेना ने आग बरसा दी। बाजबहादुर की सेनाएँ तिनके की तरह जल गईं। बाजबहादुर शरीर और मन के गहरे घावों से रक्ताश्रु बहाता रण-क्षेत्र से हट गया और शाही सेना ने हुंकार को आग का रूप देकर माण्डवगढ़ में प्रवेश किया। स्वर्ग की ऐश्वर्यशाली भूमि नरक का खँडहर बन गई। नौका के रूप में बना हुआ 361 फुट लम्बा दो मंज़िलों वाला जहाज़-महल स्थान-स्थान से क्षत-विक्षत हो गया। उसके दोनों ओर लहराते हुए कर्पूर सागर और मुंज सागर पर आग की लहरें गतिशील बन गईं। महल के सुन्दर और सुडौल गुम्बदों में अग्नि-शिखाएँ नर्तकियाँ बनकर नाचने लगीं और उसे देखने के लिए अलिन्दों पर धुएँ के दैत्यों का जमघट बढ़ने लगा। दोनों ओर के सागरों पर आग और धुएँ का प्रतिबिम्ब किसी ज्वालामुखी के मुख से निकलने वाले लावे की तरह प्रवाहित होने लगा। ऐसा ज्ञात होता था, मानो दोनों सागरों के कंधों पर 'जहाज़-महल' अपनी शव-यात्रा में आगे बढ़ रहा है। छत के ऊपर पटे हुए नीले और पीले पत्थर ऐसे दिखते जैसे नीले और पीले फूल बिखरे हों।

समीप ही हिंडोला-महल की आकृति जैसे किसी विधवा की भाँति, घुटनों पर अपना सिर रखकर क्रन्दन कर रही है। 88 फुट लम्बे, 60 फुट चौड़े और 36 फुट ऊँचे इस मध्य कक्ष में सिंहासन सूना पड़ा है। बाजबहादुर की यह न्याला-शाला जैसे अन्याय के दाँतों में पिस गई है। इसकी मेहराबें जैसे हाथ फैलाकर हाहाकार

कर रही हैं। मुंज सागर के उत्तर की ओर किसी किशोरी की भाँति सँवारी गई 'चम्पा बावली' इस अकाण्ड ताण्डव के लिए 'क्यों' का आकार बनकर रह गई है। चम्पक पुष्प की सुगन्ध से सुवासित जल धुएँ से कड़वा हो गया है। उसका स्नान-गृह स्वप्न की तरह विकृत हो गया है। इस सौन्दर्य की दरार में से कालिमा घुस आई है। छत पर प्रकाश के लिए जो ताराकृति झरोखे हैं, उनसे मृत्यु के मुख की भाँति आग की लपटें झाँक रही हैं।

एक सप्ताह से तबेली-महल में घोड़ों के स्थान पर विजयोन्माद से भरे हुए आदम ख़ाँ के सैनिकों की चहल-पहल हो रही है। मध्य के कक्ष में आदम ख़ाँ ने अपना शाही तख़्त रखवा दिया है। महल की एक खिड़की खुली है। (भीतर देखिए।)

पहला अंक

स्थान : माण्डवगढ़ के किले में जहाज़-महल का एक कक्ष।
समय : संध्या 6 बजे।

[परदा उठता है। कक्ष के रेशमी परदे अस्तव्यस्त हैं। कालीन पर सिलवटें पड़ी हुई हैं। कुछ दिनों से युद्ध की विभीषिका से संत्रस्त सेवकों को इस कक्ष को व्यवस्थित करने का समय नहीं मिला। बीचों-बीच एक तख़्त है, जिस पर लाल मखमल का क़ालीन बिछा हुआ है। उस पर शेख़ उमर (60 वर्ष) बैठा हुआ धीरे-धीरे तसबीह फेर रहा है। उसके मुख पर कष्ट और उदासी के चिह्न हैं। कमरे में बहुत हलका प्रकाश है जिससे कमरे की सजावट दृष्टि में नहीं आती। एक ओर से प्रकाश की एक किरण आ रही है, जिससे शेख़ उमर एक झुके हुए पेड़ की तरह दृष्टिगत होता है।

किन्तु बीच-बीच में बन्दूक़ की आवाज़ से शेख़ उमर चौंक उठता है। बाहर नेपथ्य की ओर व्याकुल होकर खिड़की से देखता है, फिर सिर झुकाकर तसबीह फेरने लगता है।

एक सुन्दर युवती हाथ में दीपक लिए हुए धीरे-धीरे प्रवेश करती है। एक क्षण शेख़ उमर को गहरी दृष्टि से देखती है। उसका नाम रेवा है।]

रेवा : बाबा! तुम अँधेरे में ही बैठे हो? दीपक नहीं जलाया?

[अपने दीपक से कमरे के बड़े दीपक को जलाती है। सारे कमरे में उजाला फैल जाता है। कक्ष सुन्दर है। स्थान-स्थान पर मूर्तियाँ और चित्र हैं। रेशमी परदे और फ़र्श पर क़ालीन।]

शेख़ : (**चौंककर**) कौन ? बेटी रेवा ? जब ज़िन्दगी की रोशनी ही ख़त्म हो गई तब क्या अँधेरा और क्या उजाला ? (**गहरी साँस लेता है ।**)

रेवा : बाबा ! तुमने सबको धीरज बँधाया है । जब तुम्हीं ऐसी बात कहोगे तो इस माण्डवगढ़ का क्या होगा ? आदम ख़ाँ ने देहली दरवाज़े को किस बुरी तरह से तोड़ा ! पिछले सप्ताह से वह माण्डवगढ़ के हज़ारों सैनिकों को मारकर देहली दरवाज़े के उस पार काकड़ा खोह में फेंक रहा है । कौन बचा है और कौन मर गया, अभी तक कहा नहीं जा सकता । हमारे सुलतान बाजबहादुर ! हाय, उनको कितना कष्ट हुआ होगा । उनका सही पता लगा ? वे कहाँ हैं ? (**बन्दूक़ चलने की आवाज़ होती है ।**)

शेख़ : यह बन्दूक़ चली । बन्दूक़ भी क्या है—बुज़दिली की नापाक मिसाल है । तलवार लेकर सामने आओ तो मुक़ाबला हो । यह क्या कि चोर की तरह छुपकर दूर से बन्दूक़ की गोली चला दी । सुलतान बाजबहादुर भी गोली से ही घायल हुए हैं शायद । गोली कहाँ लगी, पता नहीं !

रेवा : आदम ख़ाँ तो उन्हें घेरना चाहता था !

शेख़ : हाँ, ख़ुदा का शुक्र है कि शिकस्त होने पर वे दुश्मनों के हाथ नहीं आए । सुलेमान कहता था कि वे घायल होकर ख़ानदेश की तरफ़ चले गए हैं । अच्छा ही हुआ, वे बचकर निकल गए, नहीं तो ये जहन्नुम के शैतान उन्हें ज़िन्दा न रहने देते । (**रुककर**) ज़िन्दा न रहने देते ! लेकिन हमारे कितने सिपाही मारे गए, इसका कोई हिसाब नहीं है । उनकी मौत का साया पड़ने पर जैसे हमारी ज़िन्दगी भी काली हो गई है ।

रेवा : अगर कहीं उजाला दीख पड़ता है बाबा ! तो वह आग का उजाला ही है जिसमें माण्डवगढ़ की हर ख़ूबसूरत चीज़ जलकर भस्म हो रही है । वह हमारे संगीताचार्य रायचन्द से ज़बर्दस्ती तरह-तरह से गीत गाने को कहता है । और वे बेचारे अपने दोनों ओर जल्लादों की तलवार देखकर गाना गाते हैं ।

शेख़ : गाना गाते हैं ? जल्लादों की तलवार से कट क्यों नहीं जाते ? ये गीत नहीं हैं, बेटी ! हमारी मुसीबतों को सुलगाने के लिए आतिशबाज़ी की चिनगारियाँ हैं ।

रेवा : आदम ख़ाँ के हुक्म से···

शेख़ : (**बीच ही में**) आदम ख़ाँ के हुक्म से । यह आदम ख़ाँ इन्सान नहीं है बेटी । हैवान है, हैवान ! उसने सारंगपुर में भी आग लगा दी है । माहम अनगह का बेटा आदम ख़ाँ ! धाय माहम ने जलालुद्दीन अकबर को भी दूध पिलाया है । लेकिन अपनी इस औलाद आदम ख़ाँ को उसने ज़हर पिलाया है, ज़हर ! वह ज़हर माण्डवगढ़ की हरी-भरी ज़मीन में आग लगा रहा है । चारों तरफ़ आग !

रेवा : कहाँ सुलतान बाजबहादुर और रानी रूपमती के संगीत की लहर हरी-भरी लताओं में नये-नये फूल खिलाती थी बाबा ! और आज नये-नये फूल-सी रानियाँ घावों से तड़प रही हैं !

शेख़ : मुझे इसका बहुत अफ़सोस है रेवा ! सुलतान बाजबहादुर जल्लादों को हुक्म दे गए

थे कि अगर हमारी शिकस्त हो जाए तो सब बेगमों को क़त्ल कर दिया जाए। हमारी पाक दामन देवियाँ आदम ख़ाँ और उसके सिपाहियों के हाथों में न पड़ें। और आख़िर वही होकर रहा ! हमारी देवियाँ क़त्ल कर दी गईं। बेटी रूपमती बच गई, ख़ुदा का शुक्र है।

रेवा : यह तो संयोग की बात है, बाबा ! कि रानी रूपमती और उनके साथ तीन रानियाँ बच गईं। या तो जल्लादों की तलवार हलकी पड़ी, या बेहोश होकर गिरते समय तलवार उनके कंधों को छूती हुई निकल गई !

शेख़ : लेकिन अब बेटी रूपमती और तीन रानियों को उन दोज़ख़ के कुत्तों से बचाना होगा।··· (**दाँत पीसकर**) दोज़ख़ के कुत्ते ! (**उठकर**) उन्होंने किस तरह औरतों और बच्चों को क़त्ल किया। उफ़ ! पत्थर के कलेजे से भी आँसू निकल आते। मैंने भी तसबीह फेंककर तलवार उठा ली और ललकारकर कहा—ज़ालिमो ! ख़ुदा के क़हर से डरो। इनसानियत के लिबास में दरिन्दों के मानिन्द क्यों ख़ून पीते हो ? क्या तुम्हारा ज़मीर खोखला हो गया है ? मुझ पर वार करो···मुझ पर वार करो···लेकिन वो लोग···वो लोग भेड़ियों के झुण्डों की तरह मासूम बच्चों और बीवियों के ख़ून के प्यासे थे। (**शिथिल होकर**) मेरे ख़ून से उनकी प्यास नहीं बुझ सकती थी···नहीं बुझ सकती थी ! वे मुझे छोड़कर दूसरी तरफ़ चले गए।

रेवा : बाबा ! वह बहुत डरावनी रात थी। बाहर चारों तरफ़ स्त्रियों और बच्चों की कराह सुन पड़ रही थी और भीतर जहाज़-महल में तीन सौ बेगमें कटी हुई पड़ी थीं। रानी रूपमती भी घावों से कराह रही थीं।

शेख़ : मैंने देखे थे वे घाव ! अब उन घावों की क्या हालत है ?

रेवा : वैद्य नानकचन्द की दवा से वे भर रहे हैं, लेकिन···

शेख़ : (**बीच ही में**) लेकिन मन का घाव ? बेचारी रूपमती ! सुलतान बाजबहादुर का साया ही उनके घावों का मरहम है। (**गहरी साँस**)

रेवा : क्या सुलतान ख़ानदेश से वापस आ सकेंगे ?

शेख़ : ज़रूर आएँगे—ज़रूर आएँगे, लेकिन तब तक बदबख़्त आदम ख़ाँ अपने जहाज़-महल की हर ख़ूबसूरत चीज़ को मिसमार कर देगा ! उसकी हवस के तूफ़ान में रूपमती के दिल का चिराग़ कितनी देर ठहर सकता है !

रेवा : भगवान ही उनका सहायक है, बाबा ! वे सुलतान की याद आने पर बार-बार बेहोश हो जाती हैं। हम लोग उन्हें होश में लाने की कोशिश करती रहती हैं।

शेख़ : लेकिन होश में लाने से भी क्या होगा ! सुलतान बाजबहादुर का इतनी दूर चले जाना क्या उन्हें ज़िन्दा रहने देगा ?

रेवा : उन्हें बचाने की कोशिश हम लोग क्षण-क्षण पर करती हैं। भगवान ही उनका सहायक है। अच्छा, अब मैं जाकर उन्हें देखूँ। तीन दिनों से उन्होंने कुछ खाया भी नहीं है।

शेख़ : खाने के लिए ग़म ही क्या कम हैं ! ख़ैर···जाओ बेटी। मेरी दुआएँ भी अपने साथ लेती जाओ। भगवान उनकी ज़िन्दगी में मेरी ज़िन्दगी के दिन भी जोड़ दे।

रेवा : मैं आपकी दुआएँ उनसे कह दूँगी। अब आप ही तो हम सबके रक्षक हैं। अच्छा, जाती हूँ, बाबा! **(जाते हुए)** अगर दीपक में तेल ख़त्म होने लगे तो पास ही तेल की कटोरी रखी हुई है।

शेख़ : **(बीच ही में)** नहीं बेटी! और तेल नहीं चाहिए।···लगता है यह चिराग़ जैसे हमारी ज़िन्दगी का जलता हुआ दाग़ है! इसे और क्या जलाओगी!

रेवा : ऐसा मत सोचिए, बाबा! प्रणाम करती हूँ! **(प्रस्थान)**

शेख़ : **(रेवा के जाने के बाद शून्य में देखते हुए)** बेटी कहती है कि ऐसा मत सोचिए बाबा! लेकिन क्या हमारी ज़िन्दगी का दाग़ सही नहीं है? ज़िन्दगी का दाग़ जो माण्डवगढ़ की आग से लगा है? आग···चारों तरफ़ आग! बदबख़्त आदम ख़ाँ ने इस पुरनूर बहिश्त में आग लगा दी···और···और दोज़ख़ को गुलज़ार कर दिया··· दोज़ख़ की आग भी शायद इतनी ख़ौफ़नाक न हो! ···इतनी ख़ौफ़नाक···

[दो सिपाहियों का प्रवेश जो सैनिकों की वर्दी में हैं।]

एक : **(अट्टहास करने के बाद)** हुज़ूर! आदाब बजा लाता हूँ।

दूसरा : **(व्यंग्य की हँसी हँसकर)** हुज़ूर! सरकार का मिज़ाज?

शेख़ उमर : **(सिर उठाकर)** कौन?

एक : बन्दे को शेख़ नबीवख़्श कहते हैं। बन्दा ये अर्ज़ करना चाहता है कि जब माण्डो-गढ़ में आग की इतनी रोशनी है तो हुज़ूर के दौलतख़ाने में इतना अँधेरा क्योंकर है?

दूसरा : **(शेख़ नबी से)** तुम समझे नहीं, शेख़ नबी! ये अँधेरा इसलिए है कि हुज़ूर अँधेरे और उजाले में कोई फ़र्क़ नहीं समझते। और फिर हुज़ूर ने अपनी ज़िन्दगी में इतना उजाला देखा है कि अब उन्हें अँधेरे से मुहब्बत करने का शौक़ पैदा हो गया है, **(शेख़ उमर से)** क्यों हुज़ूर?

नबी : और मुहब्बत के ज़ौक़ से यह शौक़ किसी क़दर कम न होगा, अहमद ख़ाँ!

शेख़ उमर : **(क्रोध से)** ख़ामोश! जंग में फ़तह हासिल करने का मतलब यह नहीं है कि तुम इन्सानियत को दफ़न कर दो और उनकी मज़ार पर बदज़बानी का चिराग़ जलाओ। अपने आक़ा आदम ख़ाँ से कह दो कि तसबीह टूटने के बाद बिखरे हुए मनकों को कोने में पड़े रहने दें, उन्हें चूर-चूर न कर दें।

नबी : चूर-चूर तो हुज़ूर, आपने किया है। आपने ही तो हुक्म फ़रमाया था कि शिकस्त होने की सूरत में हरम की हर खूबसूरत हूर को क़त्ल कर दिया जाए। **(अहमद ख़ाँ से)** क्यों अहमद ख़ाँ! इसे मर्दानगी कहते हैं कि जब हुज़ूर की तलवार हमारे लोहे जैसे जिस्मों पर नहीं पड़ सकी तब कमसिन बेगमात की मोम-सी मुलायम गर्दनों पर बिजली की रफ़्तार से गिराई जाए! **(अभिनय करते हुए)** क्या बुलन्दी है! क्या हौसला है!! वल्लाह! ऐसी दिलेरी की मिसाल दुनिया में नहीं है। है न म्याँ अहमद ख़ाँ?

अहमद : **(शेख़ उमर से)** मैं तो हुज़ूर, सौ जान से फ़िदा हूँ कि हुज़ूर कितने क़रम फ़रमा

हैं। हुज़ूर ने सोचा होगा कि दुश्मन के नादान सिपाही अपनी नादानी में हुस्ने-हरम की नाज़ुक बेगमात को अपनी बेहूदगी में कहीं बदसूरती से क़त्ल न कर दें, आपने ख़ुद ही अपनी बेमिसाल नफ़ासत से उन्हें देरे-मलक-उल मौत तक पहुँचा दिया ! वल्लाह ! क़त्ल करने का अन्दाज़ !

शेख़ उमर : अपनी ज़बान को तलवार न बना बेअदब ! हमने बेगमात को क़त्ल कर दिया। हाँ, कर दिया और वो इसलिए कि उन पाकदामन बेगमात के जिस्म पर तुम जैसे शैतानों का काला साया न पड़े।

नबी : (**अट्टहास कर**) काला साया ? (**फिर हँसता है**) काला साया ? हुज़ूर ! जब मुहब्बत की किरन पड़ती है तो हर साया बाफ़्ते की शक्ल इख़्तियार करता है। मुहब्बत का तजरबा तो हर इन्सान को होता है, (**आँखें चमकाकर**) कभी हुज़ूर को भी हुआ होगा !

शेख़ उमर : कमबख़्त ! रहम कर। जो तेरे आक़ा के ज़ुल्म की आग में तड़प-तड़पकर मर रहा है, उसके दिल को दोज़ख़ की आग में मत डाल ! काश, तुझे मालूम होता कि हम पर क्या गुज़र रही है। तू चाहे तो मुझे भी क़त्ल कर दे लेकिन अपनी ज़बान के ज़हरीले नश्तर से···

अहमद : हुज़ूर ! ज़हरीला नश्तर तो हुज़ूर के पास है जिसकी तराश हमारे साहबे-इक़बाल आदम ख़ाँ हुज़ूर के कलेजे तक उतर गई है। जोहरा रूपमती···

शेख़ उमर : (**तड़पकर**) ख़ामोश, बदतमीज़ ! ख़ामोश, यह बात सुनाने के पहले हमें भी क़त्ल कर दे।

अहमद : हुज़ूर के साहबे-ख़िताब में ख़लिश पैदा हो गई ! गुस्ताख़ी माफ़ हो, बन्दा-परवर ! आपको क़त्ल करने का हक़ हम मामूली सिपाहियों को कैसा ? बड़े से बड़े सिपहसालार को हम क़त्ल कर सकते हैं, लेकिन आपको—आला हज़रत शेख़ उमर को—जो मलिका रूपमती के उस्ताद हैं, पीर हैं—उनको कौन क़त्ल कर सकता है ? हुज़ूर के जिस्म से टकराने से तो ख़ुद इंसान टूट जाएगा। तलवार तो बेचारी एक हाथ की जोगन है। मलिका रूपमती की तरह तिलक लगाती है, लेकिन उसको ख़ून का तिलक ज़ेब देता है—हम जैसे सिपाहियों के ख़ून का ! या बेग़ैरत दुश्मनों के ख़ून का। (**परिहास की हँसी हँसता है।**)

नबी : म्याँ अहमद ख़ाँ ! यहाँ शेरो-शायरी की दाद मिलनी मुश्किल है। इस वक़्त तो आला हज़रत सिपहसालार ने जो हुक्म फ़रमाया है, उसे अंजाम दो और शेख़ साहब से रुख़सत लो।

अहमद : बजा इरशाद है। अगरचे इस वक़्त हुज़ूर के दिलो-दिमाग़ में ख़यालात और जज़बात का तूफ़ान बरपा है, ताहम हम लोगों के ज़रिए एक पैग़ाम आला हज़रत ने आपके लिए भेजा है, अगर इजाज़त हो तो मैं अर्ज़ करूँ।

शेख़ उमर : फ़तह पाने के बाद जो पैग़ाम भेजा जाएगा उसमें हमें ज़लील करने के सिवाय और क्या बात हो सकती है ?

अहमद : यह तो हुज़ूर और हमारे आला हज़रत ही समझ सकते हैं। हम लोग तो सिर्फ़ पैग़ाम लाने-ले जाने वाले हैं। तो अर्ज़ करूँ, हुज़ूर ?

[शेख़ उमर चुप रहते हैं ।]

नबी : हुज़ूर चुप हैं ! ख़ामोशी नीम-रज़ा । म्याँ अहमद ख़ाँ, सुना दो वह पैग़ाम । उसे तो सुनाना ही है। अगर उस्ताद साहब शेख़ उमर उसे नहीं सुनेंगे तो हम उसे दीवालों को सुनाकर चले जाएँगे।

अहमद : आला हज़रत आदम ख़ाँ सिपहसालार की मुहब्बत और बहादुरी ज़िंदाबाद ! आला हज़रत का हुक्म है कि चूँकि माण्डोगढ़ और हुज़ूर की ख़ुशक़िस्मती से मलिका रूपमती ज़िंदा और सलामत हैं और चूँकि उनके ज़ख़्म अब भर चुके हैं, वह कौन-सा ख़ुश दिन हो जब हमारा ख़ैर-मक़दक मलिका रूपमती के महल में हो ! या मलिका रूपमती हमारे हुज़ूर में आकर हमारे हरम को आरास्ता करने की तकलीफ़ गवारा करें ! इन दोनों बातों में से···

शेख़ उमर : (**बीच ही में चीख़ते हुए**) ख़ामोश ! दोनों बातों में से एक बात भी नहीं, अहमद ख़ाँ। एक बात भी नहीं होगी, शेख़ नबी। यह···यह नापाक पैग़ाम हमारी नामूसी की नामाकूल तसवीर है। हम इसे देखने से पहले अपनी आँखों की रोशनी ख़त्म कर देंगे। मलिका रूपमती तुम्हारे हज़रत के हुज़ूर में जाकर इस्तक़बाल करें ? कमबख़्तो ! अपने आला हज़रत से कह दो कि सितारा फ़लक पर ही ज़ेब देता है, ज़मीन पर नहीं। और अपने अरमानों की ज़मीन पर उन्होंने जिस चमन को आरास्ता करने का नापाक इरादा किया है, उसमें रूपमती का हिस्सा भी हो ? बदबख़्तो ! ऐसा होगा तो मैं ख़ुद रूपमती को अपने हाथों से क़त्ल करूँगा। एक लमहे ज़िंदा न रहने दूँगा ! अपने हाथों से क़त्ल, क़त्ल··· (**हाँफने लगते हैं।**)

अहमद ख़ाँ : हुज़ूर का दिलो-दिमाग़ सही नहीं है।

नबी : अच्छी बात है, हुज़ूर आराम फ़रमाएँ ! हम यही बात अपने आला हज़रत से अर्ज़ कर देंगे लेकिन यह बात साफ़ है कि हुज़ूर ! अब मलिका को क़त्ल करने का इल्ज़ाम अपने ऊपर लेने की कोशिश नहीं करेंगे, यह आला हज़रत का फ़ैसला है।

अहमद ख़ाँ : एक बात और कह दूँ हुज़ूर ! कि हमारे आला हज़रत ज़िंदगी के बहुत बड़े मुसव्विर हैं। ज़िंदगी को चाहे जैसी बना देते हैं। उनके सामने बड़ी से बड़ी ज़िंदगी छोटी हो सकती है। अगर हुज़ूर को और मलिका रूमपती को छोटी ज़िंदगी ही पसन्द हो तो हुज़ूर की पसन्द मुबारक !

शेख़ उमर : ज़िंदगी और ख़ुदी का रास्ता चाहे छोटा हो, चाहे बड़ा हो, हमें मंज़ूर है।

नबी : तो आला हज़रत से यही अर्ज़ कर दिया जाए ?

शेख़ उमर : बख़ुशी···बख़ुशी।

नबी : आदाब अर्ज़ है।

अहमद : हुज़ूर को यह मामूली-सी ज़िंदगी मुबारक !

[दोनों का प्रस्थान]

शेख़ उमर : (**सोचते हुए**) ज़िंदगी की आग बुझ गई है, सिर्फ धुआँ बाक़ी रह गया है ! मेरा ख़ंजर कहाँ है ? (**तकिए के नीचे से खंजर निकालते हैं। उसकी धार को अँगुली से देखते हैं तथा उसे ऊपर उठाकर गहरी नज़र से घूरते हैं**) तो···शेख़ उमर के ज़िम्मे ही यह काम रहा कि बेटी रूपमती की ज़िंदगी उसके ख़ंजर की धार पर तैर जाए ! बेटी रूपमती मेरे ही हाथ से हलाक़ हो। (**कमरे में टहलते हैं।**)

शेख़ उमर : (**पुकारकर**) अली बख़्श।

अली : (**प्रवेश कर**) हुज़ूर ! (**सलाम करता है।**)

शेख़ उमर : (**कड़े स्वर में**) रूपमती को देखना चाहता हूँ। ललिता को बुलाओ !

अली : ललिताजी मलिका के ग़ुस्ले-सेहत में हम्माम पर हैं।

शेख़ उमर : (**सोचते हुए**) हम्माम पर हैं। कितनी देर से हैं ?

अली : अभी-अभी गई हैं, ऐसी ख़बर मिली है, हुज़ूर। (**डरते हुए**) हुज़ूर के···हाथ··· में···ख़ंजर···

शेख़ उमर : दुश्मनों से हम घिरे हैं। अब भी ख़ंजर हाथ में न हो ? तुम जाओ।

अली : हुज़ूर का हुक्म···हुज़ूर गायनाचार रायचन्द हुज़ूर, से मिलना चाहते हैं।

शेख़ उमर : रायचन्द ! बेग़ैरत रायचन्द ! जिसने तबेली महल में अपने संगीत से दुश्मनों को ख़ुश किया है। कह दो, कि वह मुंज सागर में गर्क़ हो जाए !··· (**टहलता हुआ**) बेहया रायचन्द ! (**सोचते हुए**) अच्छा, भेजो उन्हें !

अली : हुज़ूर का हुक्म···(**प्रस्थान**)

शेख़ उमर : (**ख़ंजर को तकिए के नीचे रखते हुए**) सुलतान बाजबहादुर के ख़ास रिसालदार रायचन्द ! रंगमहल के ख़ास मुसाहिब रायचन्द ! ज़ालिम आदम ख़ाँ के गवैये बन गए।

रायचन्द : शेख़ साहब, मैं अन्दर आ सकता हूँ ?

शेख़ उमर : कौन, रायचन्द ! आओ रायचन्द ! तुम्हारे गाने पर तुम्हारे आक़ा आदम ख़ाँ ने तुम्हें बहुत बड़ी जागीर बख़्शी होगी। बड़ी शाही ख़िलअत अता फ़रमाई होगी ! तुमने भी तो तबेली महल की फ़ज़ा को संगीत से रौनक़ बख़्शी थी।

रायचन्द : शेख़ साहब ! मैं किन शब्दों में क्षमा माँगूँ ! मेरी हालत पर रहम कीजिए। मैं क्या करता ! आदम ख़ाँ ने जल्लादों को हुक्म दिया था कि अगर मैंने गाना नहीं गाया तो मेरा सिर धड़ से जुदा कर दिया जाए। लाचार मुझे उनकी महफ़िल में गाना पड़ा।

शेख़ उमर : तो तुम आदम ख़ाँ के बन्दे हो ! रायचन्द ! जब माण्डोगढ़ आग में तिल-तिल कर जल रहा था तब तुम लपटों के रक्स पर ताल दे रहे थे। तुमने बहुत अच्छा किया, बेगमात की कराहों को तुमने अपने संगीत में डुबोकर माण्डोगढ़ की फ़ज़ा को महफ़ूज़ रक्खा।

रायचन्द : (**हाथ जोड़कर**) शेख़ साहब ! माफ़ कीजिए। अब हम कर ही क्या सकते हैं ? जब हमारी फ़ौज शिकस्त खा गई तब हम किस बलबूते पर अपनी इज़्ज़त रख

सकते हैं ? मैंने भी सोचा कि गाना गाकर किसी तरह आदम ख़ाँ के ग़ुस्से को कम कर दूँ। माण्डोगढ़ की रही-सही हस्ती को बचा लूँ।

शेख़ उमर : **(व्यंग्य की हँसी हँसकर)** हस्ती को बचा लूँ। जब इज़्ज़त नहीं रही तो हस्ती किस काम की ? आदम ख़ाँ रूपमती के लिए दीवाना है, वह रूपमती को अपनी बेगम बनाना चाहता है, बेगम ! अभी दो सिपाही आए थे। जानना चाहते थे कि रूपमती आदम ख़ाँ की ख़िदमत में कब आ सकती हैं।

रायचन्द : कब आ···स···कती हैं ! ···वैसा ही···वैसा ही···

शेख़ उमर : **(भौंहें सिकोड़कर)** वैसा ही···वैसा ही···क्या ?

रायचन्द : वैसा ही···वैसा ही सन्देसा मेरे ज़रिये···

शेख़ उमर : तुम्हारे ज़रिए ? तुम्हारे ज़रिए भेजा है ?

रायचन्द : **(सिर झुकाकर)** जी···

शेख़ उमर : **(चीख़कर)** रायचन्द···

[रायचन्द चुप है।]

शेख़ उमर : तो तुम भी ऐसा ही पैग़ाम लाए हो ?

रायचन्द : **(सिर झुका है)** शेख़ साहब ! आप मुझे जो सज़ा देना चाहें, दें। लेकिन मैं···मैं···मैं क्या करूँ ! दो सिपाहियों के साथ मुझे भेजा है कि अगर मैं यह संदेसा आपको न दूँ तो मुझे अँधेरी कोठरी में क़ैद कर दिया जाए। आपके लिए सरदार आदम ख़ाँ ने एक बेशक़ीमती तोहफ़ा भी भेजा है कि आप मलिका रूपमती को आदम ख़ाँ की सेवा में जाने की आज्ञा दे दें। ज़मुर्रद का यह बेशक़ीमती हार ! **(अँगरखे से हार निकालता है।)**

शेख़ उमर : तुम्हें ज़िन्दगी इतनी प्यारी है, रायचन्द ! अच्छा होता कि तुम जल्लाद की तलवार से कट जाते या अँधेरी कोठरी में ताज़िन्दगी क़ैद रहते। यह तुम···तुम··· यह ज़मुर्रद का हार लाए हो ? इसे तुमने आदम ख़ाँ के सिर पर फेंककर नहीं मारा ? उसका पैग़ाम सुनने पर उसके मुँह पर थूका नहीं ? बोलो। तुम्हारी तलवार कहाँ गई ? तुम तो सुलतान बाजबहादुर के ख़ास रिसालदार थे। अपने सुलतान की शिकस्त पर तुम्हारी तलवार का पानी आग का दरिया नहीं बना ? और उसकी बेगम पर बुरी नज़र डालने वाले की आँखों को तुमने अपने नेजे से नहीं छेद डाला ? तुम राजपूतों की आन पर मर नहीं सके ? बुज़दिल···कलंकी रायचन्द !

रायचन्द : बस, बस, शेख़ साहब ! उठाइए अपना खंजर और मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दीजिए। मैं नादिम हूँ, शर्मिन्दा हूँ, गुनहगार हूँ। अच्छा होता, जंग में मैं भी काम आता ! या जल्लाद की तलवार से अपना सिर कट जाने देता ! अब उसी के लिए तैयार हूँ। आपने मुझे जगा दिया ! मेरे कर्त्तव्य की जलती हुई तस्वीर आपने मेरे सामने रख दी ! ओह ! मुझसे बहुत बड़ी भूल हुई थी। मुझे क्षमा कर दीजिए। अब यह ज़मुर्रद का हार वापस ले जा रहा हूँ, और···

शेख़ उमर : (**बीच ही में**) यह ज़मुर्रद का हार इस तरह वापस नहीं जाएगा। इसे चूर-चूर कर दो और आदम ख़ाँ से कह दो कि यह तोहफ़ा तुम्हारी बदकिरदारी का मर्सिया है जिसकी बन्दिश तुम्हारे गुनाहों की ठोकर से पाश-पाश हो गई है ! और यह भी कह देना कि यह नाचीज़ शेख़ उमर जीते-जी रूपमती के पाक दामन पर हलका-सा धब्बा भी नहीं आने देगा। उसकी हवस को उसी के ज़मीर से ऐसी ठोकर लगेगी···

[सहसा आदम ख़ाँ का प्रवेश]

आदम ख़ाँ : (**अट्टहास करते हुए**) शाबाश···शाबाश···शेख़ उमर ! मरहबा, मरहबा ! आप जैसे पारसा उस्ताद की गुफ़्तगू कितनी सखुन परदाज़ है ! आप आला मरतबा के शायर और सांगीत के उस्ताद हैं। आपको तो ज़िल्ले-इलाही जलालुद्दीन अकबर बादशाह की महफ़िल की रौनक़ बढ़ानी चाहिए। (**रुककर**) ऐं, आप फटी-फटी आँखों से हमें क्या देख रहे हैं ? आपने हमें पहिचाना ? नहीं ? अपनी तारीफ़ करने वाले को नहीं पहिचाना ? अरे, हम ज़िल्ले-इलाही शाहंशाह जलालुद्दीन अकबर ग़ाज़ी के हमनशीन फ़तेहबहादुर आदम ख़ाँ हैं। (**गहरी नज़र से देखते हुए**) चौंक उठे ? हम रायचन्द के पीछे ही तो थे ! परदे के पीछे से सुन रहे थे आपकी हैरत-अंगेज़ तक़रीर ! महज़ आपको देखने के लिए हमने माण्डोगढ़ से जंग छेड़ी। मलिका रूपमती के आशिक़ तो हम बहुत पहले से रहे हैं, जब से होश सँभाला।

शेख़ उमर : लेकिन इस वक़्त भी जनाब को होश है ?

आदम ख़ाँ : होश ? (**अट्टहास करता है**) होश ? जनाब ! मुहब्बत में अगर होश रहे तो वो मुहब्बत कैसी ? (**हँसता है**) मुहब्बत कैसी ? ह-ह-ह-ह ! और होश रहते मुहब्बत हो तो वो होश कैसा ? ऐं ? होश कैसा ! (**हँसता है**) होश और मुहब्बत लाइलाज हैं, उस्ताद ! और मेरे तोहफ़े की आपने जो इज़्ज़त अफ़ज़ाई की है, वो भी बेमिसाल है ! और कोई बादशाह होता तो ज़मुर्रद के चूर होने से पहले वो चूर कराने वाले के सिर को चूर करा देता।

शेख़ उमर : जिस वक़्त···जिस वक़्त···मेरा सिर चूर होगा···ख़ुदा का क़हर···ख़ुदा का क़हर आपके सिर पर···इस क़दर टूटेगा कि··· (**निढाल होकर बैठ जाते हैं।**)

आदम ख़ाँ : ज़बान सँभालकर बात कीजिए, शेख़ साहब ! इस वक़्त तो ख़ुदा का क़हर आपके सिर पर ही टूट रहा है ! लेकिन हम आप पर कोई क़हर नहीं ढाना चाहते हैं। फ़तेह बहादुर आदम ख़ाँ को पहिचानिए। हम माण्डोगढ़ के ऐसे बादशाह हैं जो गुनहगार को खिलअत बख़्शते हैं। उसकी दिलजोई करते हैं। हम अपने बन्दों पर करम फ़रमाते हैं। हमारे सदक़े जाइए। (**रुककर**) कुछ फ़रमाइए।

[शेख़ उमर आँखें बन्द किए बैठे रहते हैं।]

आदम ख़ाँ : कुछ भी नहीं फ़रमाएँगे ? सुनिए···आज रात की महफ़िल में जो नाच होगा, रक्से-ताऊस होगा, उसकी सदारत आप करेंगे ? बोलिए, उसकी सदारत आप करेंगे ? कुछ नहीं बोलते ? (**पास जाकर गहरी नज़र से देखकर**) ऐं ?

वेहोश ? मेरे होश की बातें करते-करते खुद ही होश खो बैठे ? **(पुकारकर)** अब्दुल !

अब्दुल : **(प्रवेश कर)** जी हुज़ूर !

आदम ख़ाँ : हकीम इनायत अली से कहला दो कि वे यहाँ आकर उस्ताद साहब को होश में लावें।

अब्दुल : जो हुक्म ! **(प्रस्थान)**

आदम ख़ाँ : **(रायचन्द से)** शेख़ उमर को शायद मेरी बातों से इतना सदमा पहुँचा कि वे वेहोश हो गए ! घबराहट में कुछ कह नहीं सके और शायद अपना गुस्सा पी नहीं सके। आखिर, उस्ताद ही तो हैं। **(देखकर)** बेचारों के हाथ की तस्बीह छूट गई और दस्तार भी टेढ़ी हो गई ! ख़ैर ! तुम उस्ताद साहब की बदकलामी का बुरा मत मानना ! मैंने भी नहीं माना। उस्ताद साहब बदज़बान के साथ बदगुमान भी हैं।

रायचन्द : उस्ताद साहब की शान में ऐसा कहना अपने-आप में बदज़बानी और बद-गुमानी है।

आदम ख़ाँ : क्या ? क्या ? यह तुम कहते हो ? जानते हो कि किसके सामने बातें कर रहे हो ? तुम्हारा दिमाग़ सही है ?

रायचन्द : बिलकुल सही है, आपका दिमाग़…

आदम ख़ाँ : **(क्रोध से)** बदज़बान ! तुम जानते हो कि इस बात से तुम्हारी मौत तुम्हारे सिर पर मँडला जाएगी ?

रायचन्द : यह जानकर ही सही बात कह रहा हूँ। उस्ताद साहब सही मानी में देशभक्त और स्वाधीनता-प्रेमी हैं। उन्होंने अपनी बातों से मुझे जगा दिया।

आदम ख़ाँ : इसलिए जगा दिया कि हम तुम्हें हमेशा के लिए सुला दें। उस्ताद साहब तो इतने ग़ैरतमन्द हैं कि मेरी बातों को सुनकर अपने को सँभाल नहीं सके और बेहोश हो गए ! और तुम ? तुम अपनी ज़बान से माण्डोगढ़ की बदनसीबी को बदतर बनाने जा रहे हो ? **(शेख़ साहब की ओर मुड़कर)** क्यों शेख़ साहब ? आपने रायचन्द को परवान पर तो चढ़ा ही दिया ? अब आप भी कुछ कहिए। **(शेख़ साहब मौन हैं)** अभी तक बेहोश हैं ? यह बहाना तो नहीं है ?

रायचन्द : आप शेख़ साहब का अपमान न करें।

आदम ख़ाँ : मुझे नसीहत देने की जुरअत ! वह तो बादशाह अकबर भी नहीं कर सकते।

रायचन्द : लेकिन मैं कर सकता हूँ। आपने मुझे गुमराह कर दिया था। मुझे डराकर, धमकाकर, जल्लादों की नंगी तलवारों से मुझे कायर बना दिया था। मुझे दीपक की तरह बुझा दिया था।

आदम ख़ाँ : बुझा दिया था ? या रौशन कर दिया था। हर सिपाही के लबों पर तुम्हारे गीतों का चरचा था।

रायचन्द : अब मौत का चरचा हो सकता है। सही बात कहने पर आप मुझे मौत की सज़ा दे सकते हैं।

आदम ख़ाँ : तुम बहुत बड़े फ़नकार हो, इसलिए मैं अपने गुस्से को रोककर तुम्हें ज़िन्दा रहने का मौक़ा दे रहा हूँ। तुम आज की महफ़िल में मेरी फ़तह पर मुबारकबाद का गीत गाने वाले थे। गाओगे ?

रायचन्द : अब नहीं गाऊँगा। हमारे राज्य को जिसने बरबाद कर दिया, उसके मुबारक-बाद का गीत ? हर्गिज़-हर्गिज़ नहीं गाऊँगा।

आदम ख़ाँ : तो तुम उस्ताद से ज़्यादह गुनहगार हो। उस्ताद ने बदज़बानी नहीं की, तुम हमारी शान के खिलाफ़ बहुत कुछ कह रहे हो। ऐसे गुनहगारों को मौत की सज़ा दी जाती है।

रायचन्द : अभी तो जनाब ने शेख़ साहब से फ़रमाया था कि जनाब गुनहगारों को ख़िलअत बख़्शते हैं, उनकी दिलजोई करते हैं।

आदम ख़ाँ : (**व्यंग्य से**) अच्छा, तो ख़िलअत पाने की उम्मीद में तुम गुनहगार बन रहे हो ? खूब ! (**व्यंग्य की हँसी हँसकर**) पं० रायचन्द ! तुम बादशाहों के कलाम का अन्दाज़ नहीं जानते। बादशाहों की फ़रमाँरवाई ख़ास मौक़ों पर ख़ास माने रखती है। किसको ख़िलअत बख़्शना और किसकी दिलजोई करना है यह तुम गानों की रवायत में नहीं जान सकते। अच्छा हाँ, वह ज़मुर्रद का हार कहाँ है ?

रायचन्द : उसे उस्ताद ने चूर-चूर करने की आज्ञा दी है।

आदम ख़ाँ : (**तीव्रता से**) रायचन्द ! तमीज़ से बात करो। हमारा हार चूर-चूर होगा ? तुम्हारा सिर चूर-चूर हो जाएगा। इधर लाओ वह हार ! (**हार छीन लेता है**) मैंने तुम्हें बचाने की हर मुमकिन कोशिश की लेकिन···लेकिन, (**पुकारकर**) अब्दुल !

अब्दुल : (**प्रवेश कर**) हुज़ूर का हुक्म।

आदम ख़ाँ : सिपाहियों से कहो कि रायचन्द को इसी वक़्त हथकड़ियों और बेड़ियों से जकड़ दें। कल सुबह यह कमबख़्त जल्लादों के सिपुर्द कर दिया जाए।

अब्दुल : जो हुक्म ! (**प्रस्थान को उद्यत होता है।**)

आदम ख़ाँ : और अभी हकीम इनायत अली नहीं आए ? शेख़ साहब अभी तक बेहोश हैं, शायद मौत के करीब हों !

अब्दुल : हुज़ूर के हुक्म से वो जल्द ही आ रहे होंगे।

आदम ख़ाँ : दुबारा आदमी भेजो ! हम चाहते हैं कि शेख़ साहब होश में आएँ ! (**रायचन्द से**) और रायचन्द ! तुम आज अपने क़ैदख़ाने से रो-रोकर दुआ करना कि मेरी जंग का मक़सद पूरा हो ! मलिका रूपमती का गाना ही मेरी ज़िन्दगी का नग़मा हो !

रायचन्द : शायद आपकी मौत ही मलिका रूपमती की ज़िन्दगी का नग़मा बनेगी।

आदम ख़ाँ : ख़ामोश ! बदतमीज़ !

रायचन्द : मौत से ज़्यादा आप मुझे क्या दे सकते हैं ?

आदम ख़ाँ : दे सकता हूँ। तुम्हें तड़पा-तड़पाकर हज़ारों मौतें दे सकता हूँ। अब तुम्हारी

ज़िन्दगी में अँधेरा ही अँधेरा है तो यह चिराग़ क्यों जले, यह भी तुम्हारी ज़िन्दगी की तरह बुझ जाए।

[आदम ख़ाँ तेज़ी से चिराग़ बुझाता हुआ चला जाता है।]

[पर्दा गिरता है।]
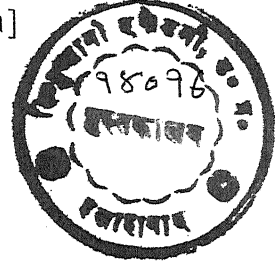
दूसरा अंक

[हिंडोला महल का एक कक्ष। यहीं आदम ख़ाँ ने महफ़िल की व्यवस्था की है। कक्ष में पूरी सजावट है। बड़े-बड़े आदमक़द शीशे हैं, जिनमें कक्ष की सभी वस्तुएँ दुगुनी-चौगुनी हो जाती हैं। रंगीन प्रकाश की अनेक शलाकाएँ हैं। स्थान-स्थान पर सुसज्जित वेश में अनेक मुसाहिब बैठे हैं।

सामने चार नर्तकियाँ बैठी हैं जो दो-दो की पंक्ति में आमने-सामने हैं। कुछ हटकर उनकी नायिका बैठी है। परदा उठने के बाद एक क्षण वह एक नर्तकी को संकेत करती है। वह नृत्य की भंगिमा में खड़ी होती है फिर कुछ देर नृत्य करने के बाद भावभंगिमा से गाती है :

साक़ी, तू दिये जा मय, जिस-जिसको दिया चाहे।
सब में वो सुहागन है, जिसको कि पिया चाहे॥

'वाह', 'वाह' की ध्वनि होती है। वह चारों तरफ़ सलाम करती है और अपनी जगह बैठ जाती है। उसके बैठने पर नायिका दूसरी नर्तकी को संकेत करती है। वह भी नृत्य की भंगिमा में खड़ी होती है, फिर कुछ देर एक भिन्न नृत्य करने के बाद भावपूर्ण ढंग से ग़ज़ल का दूसरा टुकड़ा गाती है :

तू आज दुआ साक़ी, गर मेरी लिया चाहे।
इस ढब से पिला दे मय, पीते ही पिया चाहे॥

'वाह', 'वाह' की फिर ध्वनि होती है। वह भी चारों तरफ घूमकर सलाम करती है और अपनी जगह बैठ जाती है। नायिका तीसरी नर्तकी को संकेत करती है। वह भी नृत्य की भंगिमा में खड़ी होकर दूसरी नर्तकी से भिन्न नृत्य करने के बाद भाव-भंगिमा से ग़ज़ल का तीसरा टुकड़ा गाती है :

दिल पास था जो मेरे, दिलवर को दिया मैंने।
अब जान भी हाज़िर है, जानाँ जो लिया चाहे॥

'वाह', 'वाह' की फिर ध्वनि होती है, जिसके प्रत्युत्तर में नर्तकी झुक-झुककर सलाम करके बैठ जाती है। उसके उपरान्त नायिका चौथी नर्तकी को संकेत करती है। वह भी नृत्यभंगिमा में खड़ी होकर एक नये नृत्य की भूमिका

उपस्थित करती है। उसके उपरान्त वह हाव-भाव से ग़ज़ल के चौथे टुकड़े को गाती है :

मय पीते हैं मस्ताने, हम इश्क़ के दीवाने।
काबे को तू मयख़ाना, कर दे जो किया चाहे ।।

'वाह', 'वाह' और तालियों की ध्वनि होती है। नर्तकी सबको झुक-झुककर सलाम करती है और 'मुक़र्रर', 'मुक़र्रर' की आवाज़ होने पर फिर चारों टुकड़े गाती है। बीच-बीच में 'वाह', 'वाह' की ध्वनि होती है। इसके बाद एक क़ासिद आता है। वह सलाम करके एक हुक्म सुनाता है :

'—साहबे इक़बाल ज़िन्दाबाद।

क़िबला आलम ने आज की महफ़िल मनसूख करने का हुक्म फ़रमाया है, क्योंकि मलिका रूपमती के उस्ताद आला हज़रत शेख़ उमर इस दुनिया में नहीं रहे।

खबर ब-इजाज़त आली जनाब पीर मुहम्मद।'

हुक्म सुनाकर क़ासिद फ़ौजी तहज़ीब से चला जाता है। सन्नाटा छा जाता है। लोग एक-दूसरे का मुख देखने लगते हैं। नायिका और नर्तकियाँ आतंकित होकर क्रम से आदम ख़ाँ के मसनद को सलाम करके जाती हैं। उनके जाने के बाद मुसाहिब लोग भी 'यह बुरा हुआ', 'यह बुरा हुआ' कहकर मसनद को सलाम करके जाते हैं। कक्ष सूना हो जाता है। कुछ क्षण बाद पीर मोहम्मद और अब्दुल्ला ख़ाँ बातें करते हुए जाते हैं।

पीर : (**ठंडी साँस लेकर**) यह तो बुरा हुआ, बहुत बुरा हुआ, अब्दुल्ला ख़ाँ! कि मलिका रूपमती के उस्ताद आली जनाब शेख़ उमर बैठे ही बैठे दुनिया से कूच कर गए। क़िबला आलम आदम ख़ाँ आली अज़रत ने तो कोई ऐसी बात उनसे कही नहीं।

अब्दुल्ला ख़ाँ : आली जनाब का गुस्सा किसी शमशीर से कम नहीं है, पीर मोहम्मद; उन्होंने कुछ ऐसा कहा होगा कि हज़रत शेख़ उमर उसे बरदाश्त नहीं कर सके होंगे। बुड्ढे तो थे ही! बरदाश्त के बाहर बात होने से बेहोश हो गए। हकीम इनायत अली ने उन्हें देखा। उस वक़्त उनके दिल की हरक़त बन्द हो चुकी थी।

पीर : बात ये है अब्दुल्ला ख़ाँ! कि शेख़ उमर साहबे-इज़्ज़त थे, पानीदार थे। ज़रा-सी बात पर उनके शीश-ए-दिल में दरार पड़ सकती थी। इस उमर में सारंगपुर की शिकस्त से वह दरार और बड़ी हो गई और क़िबला आलम के मज़ाके गुफ़्तगू से उनका शीश-ए-दिल पारा-पारा हो गया। अच्छा ही हुआ, अगर वो ज़िन्दा रहते तो मलिका रूपमती···

अब्दुल्ला ख़ाँ : (**पीर मोहम्मद को रोकते हुए, नेपथ्य की ओर देखकर**) चुप हो जाइए, चुप हो जाइए···आली हज़रत इसी तरफ आ रहे हैं।

पीर : बहुत संजीदा और उदास हैं।

अब्दुल्ला ख़ाँ : हज़रत शेख़ उमर की मौत से तो उन्हें ख़ुश होना चाहिए!

पीर : यह तो कोई महरम ही जान सकता है। वो आ···रहे हैं।

[दोनों संजीदगी से खड़े हो जाते हैं। आदम ख़ाँ गम्भीरतापूर्वक नीचा मुख किए भारी क़दमों से आता है। दोनों सरदार आदाब बजाते हैं। आदम ख़ाँ नहीं देखता ! थोड़ी देर बाद वह सिर उठाता है। फिर दोनों सलाम करते हैं।]

आदम ख़ाँ : (**भारी आवाज़ में**) कौन ? पीर मोहम्मद···अब्दुल्ला ख़ाँ ?

दोनों : आली जनाब !

आदम ख़ाँ : हमें सख्त अफ़सोस है कि हम आज की महफ़िल में अपनी फ़तह की ख़ुशी का इजहार नहीं कर सके। हमने तो शेख़ उमर से कोई ख़ास बात नहीं कही थी—सिर्फ़ हमारी फ़तह की ख़ुशी में शिरकत करने की बात कही थी लेकिन··· लेकिन···वे इस दुनिया से चले गए !

पीर : साहबे-इक़बाल ! गुस्ताख़ी माफ़ हो ! एक बात समझ में नहीं आती। हैरत इस बात से होती है कि हुज़ूर की फ़ौलादी ताक़त के आगे जब सारंगपुर नेस्तनाबूद हो गया—हज़ारों लोग मारे गए, बड़े-बड़े बहादुर हुज़ूर की शमशीर से कट गए—यहाँ तक ख़ुद सुल्तान बाजबहादुर जख़्मी हो गया, तो हुज़ूर की जबीं पर शिकन नहीं आई। अब एक शेख़ उमर के मर जाने से हुज़ूर की आला तबीयत उदास हो जाए ···यह बात···यह बात···

आदम ख़ाँ : तुम नहीं समझते, पीर मोम्मद ! शेख़ उमर हमारी शतरंज के बहुत बड़े मोहरे थे। वो मलिका रूपमती के उस्ताद थे। उन्हें इस ढंग से चलाया जाता कि मलिका रूपमती बाजबहादुर को आसानी से भूल सकतीं।

अब्दुल्ला ख़ाँ : आप सही फ़रमाते हैं, साहिबे-इक़बाल ! वही मलिका रूपमती को राह पर ला सकते थे, क्योंकि रूपमती और बाजबहादुर के इश्क़ का चरचा तो सारे हिन्दोस्तान में मशहूर है। एक-दूसरे पर जान देते थे। अभी-अभी सुना कि मलिका अपनी सखियों से कहती हैं :

> रूपमती दुखिया भई, बिना बहादुर बाज।
> यह जियरा अब तजत है, यहाँ नहीं कछु काज ॥

वो शायरा भी हैं।

पीर : अच्छा, मलिका शेर भी कहती हैं ! ऐसी बात है तब तो रूपमती के लिए बाजबहादुर को भुला देना आसान नहीं था।

आदम ख़ाँ : क्यों नहीं था ? बाजबहादुर सिर्फ़ हुस्न का दीवाना था, क्या दिल का दीवाना भी था ? बाजबहादुर रूपमती को सिर्फ़ इसलिए चाहता होगा कि रूपमती बहुत अच्छा गाती थी और बाजबहादुर को भी ख़ुद गाने का शौक़ था और यह शौक़ किस सुलतान को नहीं होता ?

अब्दुल्ला ख़ाँ : आप सही फ़रमाते हैं, साहबे-इक़बाल !

आदम ख़ाँ : और फिर···बाजबहादुर एक परवाने की तरह रूपमती के हुस्नो-जमाल की शमअ पर मँडलाता रहा। सिर्फ़ मँडलाता ही रहा। बाल बराबर भी जला ?

दूसरी तरफ़ वह जंग में जाते वक़्त कह गया कि अगर शिकस्त हो तो हरम की सब बेगमात को काटकर रख दिया जाए, यहाँ तक कि रूपमती को भी हलाक़ कर दिया जाए। और बाजबहादुर के हुक्म से रूपमती के सिर पर भी तलवार चलाई गई—रायचन्द ने कहा—तलवार चलाई गई। वह तो हमारी क़िस्मत थी कि वह सिर्फ़ ज़ख़्मी होकर रह गई ! और हमारे हरम की रौनक़ बढ़ाने के लिए ज़िन्दा है।

अब्दुल्ला : हुज़ूर, क़िस्मत तो हुज़ूर की इतनी बुलन्द है कि शाहंशाह जलालुद्दीन अकबर की भी क्या होगी ! अब यही देखना है कि रूपमती कब आला हुज़ूर की ख़िदमत में दस्तबस्ता हाज़िर होती हैं।

आदम : अगर शेख़ उमर ज़िन्दा रहते तो यह बात भी आसानी से हो सकती थी। शेख़ उमर मलिका रूपमती के उस्ताद थे। हम शेख़ उमर से मलिका रूपमती को शह देकर मात कर देते।

पीर : तो अब क्या किया जा सकता है ?

आदम : इश्क़ में ज़ोर-ज़बर्दस्ती को मैं बदतर गुनाह समझता हूँ। हमने मलिका रूपमती के पास एक पैग़ाम भेजा है।

अब्दुल्ला : वाह, क्या बात आपने सोची है, शाहे-आलम ! हुज़ूर तो क़त्लेआम का हुक्म भेज सकते थे, लेकिन हुज़ूर ने पैग़ाम ही भेजा।

पीर : कैसा पैग़ाम है, हुज़ूर ?

आदम : वह पैग़ाम कुछ इस तरह है··· (**कागज निकालकर पीर मोहम्मद की ओर बढ़ाते हैं**) इसे पढ़ो।

पीर : (**कागज़ लेकर सिर झुकाता है**) जो हुक्म ! (**पढ़ता है—**)

'हुस्नो अख़लाक़ की मलिका रूपमती,

मालवा के महताबे जमाल के रूबरू आगरे का आफ़ताब सिज़दा पेश करता है। मलिका शायद जानती हों कि हमारी माँ माहम अनगह ने ज़िल्ले-इलाही बादशाह जलालुद्दीन अकबर को अपना दूध पिलाया है। इस रिश्ते से ज़िल्ले-इलाही हमारे हमनशीं हैं। इसी से मलिका हमारी ताक़त का अन्दाज़ा लगा सकती हैं।'

अब्दुल्ला : वाह-वाह ! क़िबलए आलम ! इस रुतबे से तो मलिका रूपमती पर सकते का आलम छा गया होगा !

पीर : हुज़ूर ने आगे क्या फ़रमाया, यह भी सुनिए : 'आगे यह कि सुलतान बाजबहादुर आपके हुस्नो-जमाल की क़द्र नहीं कर सके। आपको क़त्ल कराने का हुक्म देकर जंग से भाग निकले।'

अब्दुल्ला : वाह ! यह लिखकर हुज़ूर ने सुलतान बाजबहादुर की मुहब्बत का पर्दा फ़ाश कर दिया।

आदम : आख़िर में अहदनामे के तौर पर लिखा कि (**पीर मुहम्मद से**) ···आगे पढ़ो—

पीर : 'अगर मलिका के तबस्सुम की एक किरन हमारे हरम को रौशनी बख़्श दे तो हम

मलिका को अपने दिल की ही नहीं, सारे दकन की मलिका क़रार देने का अहद करते हैं।'

अब्दुल्ला : बहुत ख़ूब, बहुत ख़ूब ! क़िवलए-आलम इश्क़ के हर रंग के मुसव्विर हैं। क्या कहने हैं—माण्डोगढ़ की मलिका को सारे दकन की मलिका होने का ख़िताब मिले तो हुज़ूर, आसमान के सितारे भी मलिका बनने की हसरत में हुज़ूर के सदक़े जाएँगे।

आदम : आगे हमने एक ज़बर्दस्त बात लिखी है।

अब्दुल्ला : उसे भी फ़रमाइए, हुज़ूर !

पीर : आगे लिखा है कि 'अगर आपने हमारी इस ख़्वाहिश पर तवज्जह नहीं दी तो हम आपके सांगीत को हमेशा-हमेशा के लिए दफ़न कर देंगे—उसे ख़ाक में मिला देंगे। यह हमारी ताक़त है।'

अब्दुल्ला : वाह, वाह ! क्या कहने हैं, हुज़ूर ! मलिका रूपमती से ज़ियादह सांगीत को अहमियत देती हैं। वह सांगीत का दफ़न होना कभी गवारा नहीं करेंगी।

पीर : हुज़ूर ! आपने तो ऐसा जाल डाला है कि मलिका के होश ठिकाने आ जाएँगे और वो फ़ौरन अपनी रज़ामन्दी का इज़हार करेंगी।

आदम : ख़ुदा जाने ! हम मलिका के जवाब का इन्तज़ार कर रहे हैं।

अब्दुल्ला : जवाव आता ही होगा, हुज़ूर !

पीर : मलिका रूपमती तो जहाज़-महल में होंगी ?

आदम : वही तो सुलतान बाजबहादुर का हरम है। वहीं हमने दिलावर ख़ाँ को भेजा है।

अब्दुल्ला : मैं बाहर जाकर देखता हूँ, हुज़ूर ! कि दिलावर ख़ाँ अभी आया या नहीं। इजाज़त है ?

[आदम ख़ाँ सिर हिलाता है। अब्दुल्ला सलाम कर प्रस्थान करता है।]

आदम : मलिका रूपमती को हम तब से जानते हैं, पीर मोहम्मद ! जब ख़्वाव की रंगीनियों में उनका शबाब ढलना शुरू हुआ था। सुलतान बाजबहादुर उस वक़्त सिर्फ़ मलिक बायज़ीद के नाम से पुकारा जाता था और जंगलों-जंगलों में हिरनियों के शिकार का दीवाना था।

पीर : हुज़ूर ! फिर किस तरह हिरनियों के शिकार का दीवाना हिरनी की आँखों वाली का दीवाना हो गया ?

आदम : यह हमारी लापरवाही थी—या कह दो कि बदक़िस्मती थी। उस वक़्त मलिका रूपमती हमारी हो सकती थी। हम चाहते तो हम उसके शबाब को शराब की तरह पी सकते थे लेकिन···जलालुद्दीन अकबर ज़िल्ले-इलाही ने हमें जंग में फ़तहयाबी हासिल करने के लिए शाही फ़ौज का सिपहसालार बनाकर पच्छिम में भेज दिया ! हम वहाँ से जल्द नहीं लौट सके और कमबख़्त बाजबहादुर ने अपने शिकार की तरतीब में रूपमती को अपने आग़ोश में ले लिया !

पीर : अब तो हुज़ूर ने बाजबहादुर को ही जंगलों में खदेड़कर उसे जंगली जानवरों का शिकार बना दिया !

[अब्दुल्ला का प्रवेश]

अब्दुल्ला : (**अदब से सलाम कर**) हुज़ूर ! अभी दिलावर ख़ाँ तो नहीं आया। बैद नानकचन्द साहब ज़रूर हुज़ूर में आना चाहते हैं।

आदम : बैद नानकचन्द ? किसलिए आए हैं ? (**सोचकर**) अच्छा, उन्हें भेजो !

अब्दुल्ला : अभी हाज़िर करता हूँ, क़िबला ! (**प्रस्थान**)

पीर : ये नानकचन्द तो शायद मलिका रूपमती के बैद हैं ?

आदम : उन्होंने ही हरम की बेगमों के ज़ख़्मों का मरहम से इलाज किया है।

[नानकचन्द का अब्दुल्ला के साथ प्रवेश।]

नानक : (**सिर झुकाकर**) श्रीमान को नमस्कार करता हूँ।

आदम : कहिए, नानकचन्द साहब, कैसे आना हुआ ? मलिका रूपमती की तबीयत तो ठीक है ?

नानक : ठीक नहीं है, श्रीमान ! मलिका रूपमती ने पं० रायचन्द से मिलने की इच्छा प्रकट की है।

आदम : उस कमबख़्त रायचन्द से ? वह तो हथकड़ी और बेड़ी से कसा हुआ अँधेरी कोठरी में बन्द है। अपनी बदज़बानी से वो सज़ा-ए-मौत का हक़दार है।

अब्दुल्ला : रायचन्द को तो उससे भी बदतर सज़ा मिलनी चाहिए। वो गुफ़्तगू का अंदाज़ तक नहीं जानता, फिर क़िब्लए-आलम के सामने तो उसे दस्तबस्ता होकर गुज़ारिश करनी चाहिए।

नानक : जो भी बात हो, श्रीमन् ! मलिका रूपमती पं० रायचन्द से राग शुद्ध सारंग सुनकर अपना कष्ट कम करना चाहती हैं।

अब्दुल्ला : तो वो किसी और से राग सारंग सुन सकती हैं।

नानक : नहीं, श्रीमन् ! राग सारंग केवल पं० रायचन्द ही गा सकते हैं। वही शुद्ध स्वर लगा सकते हैं। जिस तरह तलवार से शरीर कट जाता है, उसी तरह राग में अशुद्ध स्वर लगने से मन कटकर रह जाता है।

आदम : बहुत ख़ूब ! तब तुम्हारे मरहम से रायचन्द का राग सारंग बेहतर है। अच्छा, यह बतलाइए कि मलिका के ज़ख़्मों का क्या हाल है ?

नानक : ज़ख़्म तो भर चुके हैं, श्रीमन् ! लेकिन अभी कमज़ोरी है। फिर भी उन्होंने आज स्वास्थ्य-स्नान किया है।

आदम : क्या किया है ?

नानक : स्वास्थ्य-स्नान !

अब्दुल्ला : ये क्या बला है ?

आदम : पीर मुहम्मद ! तुम हिन्दी ज़बान से वाक़िफ़ हो, समझाकर कहो।

पीर : हुज़ूर का जो हुक्म ! स्वास्थ्य-स्नान का मतलब है ग़ुस्ले-सेहत।

आदम : ग़ुस्ले-सेहत ? बहुत खूब ! इतनी जल्दी तुमने उनके ज़ख्म भर दिए। तुम्हें हम बहुत बड़ा इनाम बख्शेंगे। बोलो, क्या चाहते हो ?

नानक : श्रीमन् ! मैंने अपना कर्त्तव्य किया है। इसके लिए मैं कोई पुरस्कार नहीं चाहता। मैं इसे आत्मसम्मान के प्रतिकूल समझता हूँ।

आदम : हम नहीं समझे। आसान ज़बान में कहिए।

अब्दुल्ला : **(नानक से)** वल्लाह ! आप आसान ज़बान बोल ही नहीं सकते ? लाहौल-विलाकूबत ! क़िबलए-आलम के ज़हन पर ज़ोर पड़ता है।

नानक : क्षमा कीजिए, जैसी आपकी ज़बान है, वैसी ही मेरी भी है।

पीर : छोड़िए इन बातों को। **(आदम से)** हुज़ूर ! बैद नानकचन्द कहते हैं कि उन्होंने अपना फ़र्ज़ अदा किया है। वो कोई इनआम या तोहफ़ा कुबूल करना अपनी ख़ुद्दारी के ख़िलाफ़ समझते हैं।

आदम : मरहबा ! नानकचन्द ! तुम सच्चे क़िस्म के इन्सान हो ! हमने तुमको चम्पा बावली का हक़ अता फ़रमाया। उसके पानी में चम्पा की ख़ुशबू है। अपनी दवाओं के लिए उसके पानी का इस्तेमाल करने का हक़ सिर्फ़ तुमको होगा।

अब्दुल्ला : वाह, हुज़ूर ! क्या हक़ अता फ़रमाया है। ख़ुदा ने पानी बनाया और उस पानी के इस्तेमाल का सही तरीक़ा हुज़ूर ही जानते हैं।

नानक : बहुत धन्यवाद, श्रीमन् ! जल पर सबका अधिकार होता है, मैं उसे केवल अपने लिए लेना बहुत बड़ा पाप समझता हूँ।

अब्दुल्ला : अरे, वाह ! बैद नानकचन्द ! पानी के इतने बड़े एहसान को तुमने पानी-पानी कर दिया।

आदम : कोई बात नहीं, तुम्हारी हक़परस्ती पर हम ख़ुश हैं। तुम्हारे लिए हम क्या कर सकते हैं, इसकी तजवीज़ हम बाद में करेंगे।

नानक : उस पर सोचने का कष्ट न करें। पं० रायचन्द के विषय में क्या आज्ञा है ?

आदम : रायचन्द के बारे में ? **(कुछ सोचते हैं)** अच्छा, यही सही। मलिका रूपमती की ख़ुशी में हमारी भी ख़ुशी होगी। **(पीर मुहम्मद से)** पीर मोहम्मद ! रायचन्द को रिहा कर मलिका रूपमती की ख्वाहिश हम पूरी करेंगे। जिस बात से उनका दर्द कम हो, वही किया जाए। रायचन्द से कहला दो कि जब वह मलिका रूपमती के रूबरू राग सारंग गाए तो ज़रा ज़ोर से गाए जिससे राग हम भी सुन सकें। मलिका रूपमती की जुदाई का जो दर्द हमारे दिल में है, हम देखेंगे कि वह कम होता है या और भी बढ़ जाता है।

अब्दुल्ला : हुज़ूर को जितनी सांगीत की पहचान है, दर्द की पहचान उससे कम नहीं है।

आदम : पीर मोहम्मद ! रायचन्द को रिहा कर दो।

पीर : हुज़ूर का जैसा हुक्म हो। मैं अभी रायचन्द की रिहाई का हुक्म देता हूँ। **(प्रस्थान)**

नानक : पं० रायचन्द को छोड़ने की जो आज्ञा आपने दी है उसके लिए आपको हार्दिक धन्यवाद ! अब मैं भी आज्ञा चाहता हूँ ।

आदम : जाइए ! और मलिका के पास मैंने जो पैग़ाम भेजा है उसका जवाब जल्द ही भिजवाइए । (**नानकचन्द प्रणाम करके जाता है**)

अब्दुल्ला : हज़रते-आली ! आपको मलिका रूपमती के दिलो-दिमाग़ की कितनी सही पहिचान है। वो अपने गम में भी सांगीत से राहत पाती है। हुज़ूर ने अपने पैग़ाम में सांगीत को दफ़्न करने की जो बात लिखी है उसमें उनकी सबसे बड़ी गिरफ़्त है। वल्लाह ! हुज़ूर के पैग़ाम को पैग़ाम न कहकर मलिका रूपमती के दिल की मुराद कहना चाहिए। और जब वो हुज़ूर के हरम में रौनक़ अफ़रोज होंगी तो बादशाह जलालुद्दीन अकबर के हरम की रौनक़ भी उसके सामने फीकी पड़ जाएगी, हुज़ूर !

आदम : तुम्हारे कहने में सच्चाई है, अब्दुल्ला ख़ाँ ! बादशाह अकबर का हरम ? वो तो सियासत की नज़र से अपने हरम में चाहे जिसे दाख़िल कर लेते हैं—वो बादशाह नहीं गोया सौदागर हैं जो हर माल टके सेर ख़रीद लेते हैं। उनका हरम क्या है, एक गोशा है, जिसमें सियासत की मण्डी से माल आता है। उसमें चाँद और सितारे कहाँ ? और हम तो ऐसा सोचते हैं अब्दुल्ला ! कि जिस तरह गियासुद्दीन ख़िलजी ने इसी माण्डोगढ़ में अपने हरम को पन्द्रह हज़ार बेगमात से आरास्ता किया था, उसी तरह हम भी अपने हरम को आरास्ता करें और मलिका रूपमती को उनका सरताज नमूदार करें ।

अब्दुल्ला : हुज़ूर ने भी क्या बात तजवीज़ की है कि उसका जवाब नहीं ! हुज़ूर के हरम को अगर फ़लक क़रार दिया जाए तो हज़ारों सितारों के बीच में रूपमती चाँद की तरह ज़ेब देंगी । हुज़ूर ! सदक़े जाता है आपके लिए इन्तख़ाब के ।

आदम : तो तुम्हें उम्मीद है कि मलिका रूपमती हमारी इस तजवीज़ से इत्तिफ़ाक़ करेंगी ?

अब्दुल्ला : अरे हुज़ूर ! इत्तिफ़ाक़ ? वो तो सर-आँखों पर हुज़ूर का हुक्म लेकर हुज़ूर की ख़िदमत में हाज़िर होंगी । हुज़ूर का हरम उनके लिए बहिश्त से कम साबित न होगा और जब हरम की बेगमात को लेकर मलिका रूपमती हुज़ूर के साथ मुंज सागर में अठखेलियाँ करेंगी तो मालूम होगा गोया चाँद और सूरज के साथ बेशुमार कँवल रक्स कर रहे हैं।

[पीर मोहम्मद का प्रवेश]

पीर : (**सलाम कर**) बन्दा परवर ! हुज़ूर के हुक्म से रायचन्द को रिहा कर दिया गया।

आदम : हम खुश हुए । अब हम समझते हैं कि हमारे दिल की मुराद वर आएगी ।

अब्दुल्ला : बिला शक, बन्दापरवर ? वक़्त तो हुज़ूर। इन्तज़ार करता है कि हुज़ूर के दिल में कोई ख्वाहिश तो पैदा हो ? और हुज़ूर ! अब वक़्त है और हुज़ूर के दिल

की ख़्वाहिश। दोनों एक-दूसरे को मुन्तज़िर हैं।

आदम : इलाही का करिश्मा है।

पीर : और हुज़ूर ! यह भी इलाही का करिश्मा ही हैं कि बाजबहादुर इतनी बुरी शिकस्त खाई है कि वह मलिका रूपमती को ताज़िन्दगी देख भी नहीं सकेगा।

अब्दुल्ला : म्याँ पीर मोहम्मद ! तुम मलिका रूपमती की बात कहते हो ! उसके लिए तो मांडोगढ़ की फ़ज़ा ख़्वाब बनकर रह गई। हुजूर का इक़बाल को मामूली वात है ?

पीर : सुना है कि बाजबहादुर बहुत बुरी तरह से ज़ख़्मी हुआ है ?

अब्दुल्ला : ज़ख़्मी ? वल्लाह तुम भी क्या बात करते हो, पीर मोहम्मद ! हुजूर की तलवार का हाथ उनके कंधों पर ऐसा पड़ा कि दाहिनी कंधा बायाँ हो गया और बायाँ कंधा दाहिना। किसी ने कभी ऐसा वार किया है।

पीर : ज़ख़्मी तो वह बहुत बुरी तरह हुआ है।

अब्दुल्ला : अब तो हुजूर ! वह शायद ही ज़िंदा रह सके। उसके मरने पर मलिका रूपमती अब हुजूर को छोड़कर कहाँ जा सकती हैं ?

पीर : और हुज़ूर ! यह ख़बर फैला दी जाए कि सुलतान बाजबहादुर मलक-उल-मौत की गिरफ़्त में आ गए तो कैसा हो ?

आदम : नहीं, यह ठीक नहीं होगा। हिज्र के ग़म से कहीं मलिका रूपमती ख़ुदकुशी न कर लें।

अब्दुल्ला : हुज़ूर सही फ़रमाते हैं। उनकी मोहब्बत का चर्चा ज़ोर-शोर से सुना जाता था। ऐसा भी हो सकता है कि बाजबहादुर के मरने की ख़बर से मलिका को ऐसा हादसा हो कि वो हुज़ूर की क़दमबोसी से पहले मौत के क़दम न चूमने लगें।

आदम : तो इसका पूरा इन्तज़ाम करना होगा। मलिका के साथ जो तीन बेगमें बची हैं, उन्हें ताक़ीद करना होगा कि वो मलिका रूपमती को कभी अकेली न छोड़ें।

पीर : हुज़ूर के हुक्म से फ़ौरन ही इन्तज़ाम होगा।

आदम : लेकिन अभी तक मलिका रूपमती के जानिब से हमारे पैग़ाम का जवाब नहीं आया।

अब्दुल्ला : आता ही होगा, हुज़ूर ! मलिका रूपमती का ग़म ग़लत होने में कुछ वक़्त तो लगेगा ही। फिर हुज़ूर के पैग़ाम पर बाक़ी बेगमात पर एकदम से ख़ुशी ज़ाहिर करना भी उन्होंने तहज़ीब के ख़िलाफ़ समझा होगा।

आदम : हो सकता है। लेकिन यह इन्तज़ार कब तक किया जा सकता है ?

अब्दुल्ला : हुज़ूर ! ऐसे इन्तज़ार में भी एक खास क़िस्म का मज़ा है। आरामगाह में तशरीफ़ ले चलें। पैग़ाम का जवाब वहीं आ जाएगा।

आदम : आरामगाह में कुछ पीने का सामान होगा ! हमारा गला सूख रहा है।

पीर : हुज़ूर ! मांडोगढ़ की अच्छी से अच्छी शराब का इन्तज़ाम है।

आदम : तो अब हम वहीं चलेंगे।

अब्दुल्ला : हुज़ूर ! राह में मैं आँखें बिछाता हुआ चलूँगा ।

[एक सिपाही का प्रवेश । वह झुककर सलाम करता है ।]

सिपाही : क़िबलये-आलम ! ज़िन्दाबाद ! दिलावर हुसेन साहब के साथ श्याम मंजरी साहबा जहाज़-महल से हुज़ूर के खत का जवाब लेकर आ गई हैं ।

आदम : (**उमंग भरे स्वर में**) ख़त का जवाब आ गया ! आ गया ज़हे क़िस्मत ! ज़हे नसीब ! उन्हें फ़ौरन यहाँ भेजो !

सिपाही : जो हुक्म ! (**सिर झुकाकर प्रस्थान**)

अब्दुल्ला : बिल आख़िर हुज़ूर के ख़त का जवाब आ ही गया। और फिर क्यों नहीं आता ? दुनिया में ऐसी कौन-सी हस्ती है जो हुज़ूर के रुख़ से सुर्ख़रू न हो जाए। सूरज भी एक बार पच्छुम से निकल सकता है ।

आदम : आख़िर हमारे ख़त का जवाब क्या होगा ?

पीर : वही जो आली जनाब ने सोचा है ।

अब्दुल्ला : इसके सिवाय क्या हो सकता है कि मलिका रूपमती ने लिखा हो कि चाँद तो हर रात अपने रूप को बढ़ाता हुआ पूरनमासी में आसमान पर आरास्ता होता है, मैं पूरे साज़-बाज़ के साथ आज की रात ही आली जनाब के हुज़ूर में हाज़िर हो जाऊँगी ।

आदम : (**गहरी साँस लेकर**) अलहम्दुलिल्लाह ! ख़ुदा करे ऐसा ही हो !

[दिलावर हुसेन के साथ श्याम मंजरी का प्रवेश । श्याम मंजरी सैनिक वेश में है । उसकी कमर में तलवार है ।]

दिलावर : (**सलाम कर**) हुज़ूर ! मलिका रूपमती की जानिब से हुज़ूर के ख़त का जवाब लेकर अंगरच्छिका श्याम मंजरी हाज़िर हैं ।

श्याम : (**तलवार हथेली पर रखकर**) मैं प्रणाम करती हूँ ।

आदम : परनाम ! आपका नाम श्याम मंजरी है ? बहुत ख़ूब ! लेकिन आपने तक़लीफ़ गवारा क्यों की ? ख़त का जवाब तो दिलावर हुसेन ही ला सकते थे !

श्याम : श्रीमन् ! रानी रूपमती के हर काम में हरएक राजसी पवित्रता जो उनके अपने ढंग से बरती जाती है । आपके पत्र का उत्तर उन्होंने मुझसे ही लिखवाया है और उसे लेकर मैं ही आई हूँ । उनकी अंगरक्षिका होकर उनके शील की रक्षा करने का काम मेरा ही है ।

आदम : बहुत अच्छा, श्याम मंजरी ! आपकी मलिका का इल्मे-अख़लाक़ बेमिसाल है । आपसे मिलकर हम बहुत खुश हुए···और···और··· (**मुस्कराकर**) आप भी तो हुस्न की देवी हैं।

श्याम : श्रीमन् ! इस प्रसंग में मेरे सम्बन्ध में कुछ कहना किसी राग का वर्जित स्वर कहा जा सकता है। मेरा काम केवल आपके पत्र का उत्तर सुनाना है। इसके अतिरिक्त कुछ नहीं । क्या आप सुनेंगे ?

आदम : क्यों नहीं ? क्यों नहीं ? हम ख़त का जवाब सुनने के लिए बेताब हैं, बशर्ते कि आप उस ज़बान में सुनाएँ जिसे हम समझें। आप लोगों की ज़बान फ़रिश्तों की ज़बान है और हम सिर्फ़ इन्सान हैं।

श्याम : सुनिए। (**पत्र सुनाते हुए**—)

"बादशाह अकबर की सेना से लाभ उठाने वाले सुलतान, आपने मांडवगढ़ में आग लगाकर जैसे मेरे शरीर में ही आग लगा दी है। यह तो आपको करना ही था, क्योंकि आप ख़ुद वासना की आग में जल रहे हैं। उस आग से शेख़ उमर की ज़िन्दगी भी जल गई।

हमारे प्रियतम को हमसे दूर कर दिया। अब आप हमारे संगीत को भी दूर करना चाहते हैं। संगीत की रागिनी तो वह दैवी शक्ति है कि प्रलय हो जाने पर भी आकाश में गूँजती रहेगी। आप उसे क्या समाप्त करेंगे ! किन्तु जब आप मांडवगढ़ आए हैं तो आपसे अवश्य मिलूँगी।

आप जानते हैं कि मैं रानी हूँ ! बिना शोभा और श्रृंगार के मैं किसी से नहीं मिलती। आपने मांडवगढ़ में आग लगाकर सब शोभा और श्रृंगार की सामग्री नष्ट कर दीं। केसर, कस्तूरी, सुगंध और रेशमी वस्त्र कहाँ हैं ?

कल संध्या समय आप मेरे श्रृंगार कक्ष में आएँ तो आप मेरे दर्शन कर सकते हैं।

रानी रूपमती"

आदम : (**अति प्रसन्नता से**) आफ़रीं-सद आफ़रीं ! ज़हे क़िस्मत···ज़हे क़िस्मत ! पीर मोहम्मद ! अब्दुल्ला ख़ाँ ! नाचो, ख़ुशियाँ मनाओ ! मालवे की मलिका रूपमती हमसे मिलेंगी ! पीर मुहम्मद ! ऐसी ख़ुशख़बरी सुनाने की एवज़ में श्याम मंजरी साहिबा को सोने के सौ टंके—नहीं, नहीं, हज़ार टंके दिए जाएँ।

श्याम : नहीं। मुझे कुछ नहीं चाहिए। केवल जाने की आज्ञा चाहती हूँ। प्रणाम। (**प्रस्थान**)

अब्दुल्ला : टंके नहीं लिए ? रूपमती की ख़िदमत करने वाली की भी ये शान है ? वल्लाह ! बहिश्त की हूरें भी इनके सदक़े जा सकती हैं।

पीर : वाक़ई हुज़ूर ! क्या तेवर हैं ! एक तलवार तो उसकी कमर में थी, दूसरी ज़बान पर ! बोलती थी तो लगता था जैसे बादलों का दिल चीरकर बिजली तड़प रही है। हुज़ूर ! रानी रूपमती आपको मुबारक, लेकिन मुझ पर भी करम फ़रमाएँ तो श्याम कुमारी को तोहफ़ा पाने का हक़दार···

अब्दुल्ला : (**बीच ही में**) मैं हूँ। इस ख़ुशख़बरी की पेशीनगोई तो बन्दे ने की थी !

आदम : झगड़े की क्या बात ! पीर मोहम्मद ! इस मांडोगढ़ में श्याम मंजरी जैसी सैकड़ों होंगी। चमन में तो एक क़िस्म के हज़ारों गुल खिलते हैं। लेकिन अब आगे क्या किया जाए ?

अब्दुल्ला : हुज़ूर के बलन्द इक़बाल से मांडोगढ़ और उसके आसपास जितनी भी केसर, कस्तूरी, कपूर और इत्र की क़िस्में मिल सकती हैं, उनका कारवां रानी रूपमती के महल की तरफ़ रवाना कर दिया जाए। दुनिया देखेगी कि हुज़ूर के

दिल की मलिका ने ऐसे फूल की शक्ल में अख़्तियार की है जिसमें हर तरह की ख़ुशबू है।

आदम : क्यों पीर मोहम्मद ?

पीर : यह सब हुज़ूर का इक़बाल है।

आदम : मायूस न हो, पीर मोहम्मद ! आज इस ख़ुशी में हम शराब की दावत देंगे। तुम हमारे हमनशीं होगे। आज जितने तरह की शराब मुहय्या की जा सकती है, अब्दुल्ला ! उसका इन्तज़ाम तुम करोगे।

अब्दुल्ला : हुज़ूर ! साथ में बेमिसाल साक़ी का इन्तज़ाम भी होगा। उसके चेहरे का अक्स पड़ने से शराब की मस्ती और भी रंग लाएगी !

आदम : दुरुस्त है ! मुहब्बत का नशा और शराब का नशा, दोनों ही मिलकर तो बहिश्त को ज़मीन पर उतारते हैं।

अब्दुल्ला : हुज़ूर को बहिश्त की सही पहिचान है ! (**हँसता है।**)

आदम : अब्दुल्ला ख़ाँ ! इसी वक़्त से मांडोगढ़ में जश्न की तैयारियाँ शुरू हो जाएँ। आज सुलताने-आज़म आदम ख़ाँ मुहब्बत के मुल्क के बादशाह हैं। तुम लोग जाओ ! हमें इस गोशे में अकेले ही ख़ुशी का जाम पीने दो !

दोनों : बजा इरशाद है। (**प्रस्थान**)

आदम : रानी रूपमती ! तेरे हुस्न के हरूफ़ों में हमारी क़िस्मत की इबारत हो और तेरे सांगीत के सुरों में हमारी ज़िन्दगी का नग़मा हो !

[मस्तानी चाल से प्रस्थान]

तीसरा अंक

स्थान : रूपमती का रंगमहल

रूपमती : (**खिड़की से बाहर देखती हुई**) नर्मदा ! तुम वैसी ही बह रही हो, जैसे कुछ हुआ ही न हो ! तुम्हारी लहरों की गति हमारे प्रियतम की तलवार में थी लेकिन वह लहर किसी रागिनी की तरह बीच ही में टूट गई ! प्रियतम कहाँ चले गए ! जैसे कोई तारा टूटकर अपना रास्ता भूल जाए ! उनके हाथों में गूँजने वाली वह वीणा भी मौन है ! वह सारंग स्वर में गूँजती थी। मुझे भी तो वे अपनी वीणा कहा करते थे किन्तु मेरे सब तार टूट गए हैं। इस पर कोई तार नहीं गूँज सकता। प्रियतम ! तुम कहाँ हो ? आओ और इस वीणा को अपने हाथों से जला दो ! इसकी भस्म को अपने मांडवगढ़ के वीरों के रक्त की नदी में बहा देना ! (**सिसकियाँ लेती हैं।**)

[रेवा का प्रवेश]

रेवा : महारानी !

रूपमती : कौन ? (**देखकर**) रेवा ? तुम यहाँ क्यों आईं ? मैं नहीं चाहती कि कोई मेरा रुदन सुने। जीवन-भर मेरा साहस भाग्य की रेखा की भाँति अटल रहा। आज वह साहस जल पर खींची गई लकीर की भाँति बह गया, तो रूपमती के दुर्भाग्य को कोई न देखे, कोई न सुने।

रेवा : क्षमा करें, महारानी ! किन्तु इस दुर्भाग्य में अपनी महारानी का कष्ट सारे अन्तःपुर को सहन नहीं होता। सभी रानियाँ और सेविकाएँ आपके पास आना चाहती हैं, किन्तु आप अपने दुःख की छाया भी उन पर नहीं पड़ने देना चाहतीं।

रूपमती : नहीं।

रेवा : महारानी को यदि कष्ट न हो तो बतलाने की कृपा करें।

रूपमती : आज तो मेरे प्रियतम के वियोग से सभी दुःखी हैं किन्तु कल ही सबका दुर्भाग्य सौभाग्य में बदल जाएगा। वे सब आदम ख़ाँ के अन्तःपुर में प्रवेश करेंगी और उनके जीवन में फिर सौभाग्य की रेखा खिंचेगी। लेकिन मेरे लिए ? मेरे लिए सौभाग्य की रेखा सदैव के लिए मिट चुकी है, रेवा !

रेवा : महारानी ! जो रानियाँ आदम ख़ाँ के अन्तःपुर में जाना चाहें वे जाएँ, हम सब सेविकाएँ तो जीवन-भर आपकी सेविकाएँ ही रहेंगी। इसका विश्वास रक्खें, महारानी !

रूपमती : मुझे एकाकी ही रहने दो, रेवा ! मेरा दुःख ज़हर की एक ऐसी बूँद है जो मेरे रोम-रोम में भिद गई है और उसकी ज्वाला मेरे प्राणों में समा गई है। इसे मेरी नर्मदा की धारा भी नहीं बुझा सकती। मेरे आँसुओं को पीकर वह ज्वाला और भी अधिक जलना चाहती है। वह ज्वाला मेरे पास ही रहे, उसकी आँच भी दूसरों को न लगे।

रेवा : आप महान हैं, महारानी !

रूपमती : उस महानता का अब कोई मूल्य नहीं है, रेवा !

रेवा : महानता तो सदैव समय के मस्तक पर तिलक बनकर शोभा पाती है।

रूपमती : किन्तु दुर्भाग्य उसे मिटा डालता है। एक बार मैं प्रियतम के साथ आखेट के लिए गई थी। मैंने प्रियतम का धनुष-बाण अपने हाथ में ले लिया था। एक भयानक सिंह सामने आ गया।

रेवा : (**कुतूहल से**) भयानक सिंह ?

रूपमती : प्रियतम ने अपना धनुष-बाण माँगा लेकिन मैंने नहीं दिया। मैंने कहा कि मैं स्वयं आखेट करूँगी। मैंने धनुष पर बाण चढ़ाकर ऐसा निशाना लिया कि एक बाण में ही सिंह धरती पर तड़पने लगा !

रेवा : साधु ! महारानी ! आपके लक्ष्य-वेध की प्रशंसा तो स्वयं सुलतान किया करते थे।

रूपमती : सोचती हूँ कि ऐसा ही बाण मैं आदम ख़ाँ पर चलाऊँ, लेकिन···

रेवा : लेकिन···क्या महारानी ?

रूपमती : प्रियतम ने मुझे युद्धभूमि में नहीं जाने दिया ! अब जब युद्ध समाप्त हो गया है तब छल से बाण मारना एक क्षत्राणी के लिए कलंक की बात होगी !

रेवा : यह तो आपकी मर्यादा है, महारानी !

रूपमती : यही मर्यादा आज कसौटी पर है ।

रेवा : कसौटी पर ? किस तरह की महारानी ?

रूपमती : आज आदम ख़ाँ का एक हुक्मनामा आया था कि 'मेरे तबस्सुम की एक किरन उनके हरम को रौशनी बख़्श दे ।'

रेवा : महारानी ! इसीलिए तो उसने मांडवगढ़ पर आक्रमण कर हमारा संसार उजाड़ दिया ।

रूपमती : मैंने श्याम मंजरी के हाथ उत्तर भिजवा दिया है कि कल संध्या समय वे मेरे श्रृंगार-कक्ष में आकर मेरे दर्शन करें ।

रेवा : (**आश्चर्य से**) आपने उन्हें आने का निमन्त्रण दे दिया, महारानी ?

रूपमती : हाँ, और देखेंगे कि मैंने अपना अनोखा श्रृंगार किया है। कैसा श्रृंगार करूँगी, यह सब तुम जान लोगी । इसलिए मैंने केसर, कस्तूरी और सुगंध की माँग भी की है ।

रेवा : महारानी ! आपने परिहास तो नहीं किया ?

रूपमती : परिहास तो साधारण-सी बात है, उससे मुझे संतोष कैसे होगा ? यहाँ तो मेरी मर्यादा का प्रश्न है ।

रेवा : श्रृंगार सहित मिलन और मर्यादा ? महारानी, यह कैसे होगा ?

रूपमती : समय ही इसका साक्षी होगा !

[भैरवी का प्रवेश]

भैरवी : महारानी ! वैद्य नानकचन्द आना चाहते हैं ।

रूपमती : वैद्य नानकचन्द ? शारीरिक कष्ट कम करके मानसिक कष्ट बढ़ाने वाले ? अच्छा, भेज दो उन्हें । (**रेवा से**) रेवा, मैंने सुना था कि आदम ख़ाँ ने रायचन्द को हथकड़ियों और बेड़ियों से जकड़कर क़ैदख़ाने में डाल दिया है और हुक्म दिया है कि कल जल्लाद उन्हें क़त्ल कर दें । मेरे पीछे बेचारे रायचन्द का क़त्ल हो ! मैंने नानकचन्द को भेजकर आदम ख़ाँ से कहलाया कि मैं पं० रायचन्द से राग सारंग सुनना चाहती हूँ । उन्हें मुक्त किया जाए ! देखें, नानकचन्द क्या उत्तर लाते हैं ।

[नानकचन्द का प्रवेश]

नानकचन्द : महाराणी को प्रणाम करता हूँ ।

रूपमती : आओ नानकचन्द ! क्या समाचार लाए ?

नानकचन्द : आदम ख़ाँ ने पं० रायचन्द को मुक्त कर दिया। कहा कि मलिका रूपमती की ख़ुशी में हमारी भी ख़ुशी होगी।

रूपमती : यदि हमारी ख़ुशी को वह अपनी ख़ुशी मानता तो मांडवगढ़ पर आक्रमण क्यों करता ? ठीक, रायचन्द मुक्त हो गया। वह मेरे प्रियतम का राग सारंग शुद्ध रूप से गा सकता है। मैं उससे वही राग सुनकर प्रियतम की स्मृति जगाऊँगी। ऐसे कलाकार की सदैव रक्षा होनी चाहिए !

नानकचन्द : किन्तु आपकी रक्षा नहीं हो रही है, महारानी ! और आपके शरीर के घावों को मैं जितना अच्छा करता हूँ, उतना ही उन्हें फिर आप हरा कर देती हैं। आप शरीर का कष्ट दूर क्यों नहीं करने देतीं ?

रूपमती : नानकचन्द ! मैं उस जल्लाद से अप्रसन्न हूँ कि उसने मुझ पर ठीक तलवार नहीं चलाई। तलवार चलाने की आदत होने पर भी वह मुझे जीवित छोड़ गया ? अन्य रानियों की तरह अगर मैं भी मर जाती तो आपको इतना कष्ट न उठाना पड़ता।

नानकचन्द : महारानी की सेवा करना मेरा धर्म है। और धर्म में बड़े से बड़ा कष्ट भी वरदान है। मैं तो समझता हूँ, महारानी ! कि आपकी सेवा से ही मेरा आयुर्वेद का ज्ञान सार्थक है।

रूपमती : युद्ध में लगे मेरे प्रियतम के घावों को आप अच्छा करते तो मैं आपका ज्ञान समझती।

नानकचन्द : महारानी ! युद्ध के बाद से वे लौटे कहाँ ! सरदार विजय सिंह उन्हें न जाने किस दिशा में ले गए। आदम ख़ाँ के सिपाहियों ने उनका पीछा भी किया किन्तु सुलतान और सरदार विजय सिंह के घोड़े इतने तेज़ थे कि आदम ख़ाँ के सिपाही उन्हें पा भी नहीं सके। वे कहीं दूर जाकर आपकी रक्षा का उपाय सोच रहे होंगे।

रूपमती : मेरी रक्षा ? मेरी रक्षा अब क्या होगी ? अब तो मैं ही अपनी रक्षा कर सकती हूँ।

नानकचन्द : तो आप हम लोगों को आदेश दें कि हम आपकी सेवा किस प्रकार करें।

रूपमती : यदि आप जलते हुए मांडवगढ़ को अपनी औषधि दे सकें तो देने की कृपा करें। मांडवगढ़ मेरा प्राण है। जब प्राण की रक्षा नहीं तो शरीर की क्या रक्षा होगी ?

नानकचन्द : आदम ख़ाँ ने मांडवगढ़ में जो ज़हर फैलाया है, उस ज़हर को दूर करने के लिए मेरे आयुर्वेद में कोई अमृत नहीं है, महारानी !

रूपमती : तो मांडवगढ़ में जो ज़हर फैला हुआ है, उसकी एक बूँद क्या आप मुझे दे सकते हैं ?

नानकचन्द : महारानी ! जो उस ज़हर से स्वयं तड़प रहा है, वह अपनी महारानी को क्या ज़हर की बूँद देगा ! यदि आप अपना विष-बुझा बाण मेरे हृदय में चुभा दें तो वह अवश्य मेरे लिए अमृत समान होगा।

रूपमती : अच्छा, वैद्य नानकचन्द ! यह सर्वनाश की अन्तिम वेला है। मृत्यु में ही वह

अमृत है जिससे मांडवगढ़ की रक्षा हो सकती है।

[भैरवी का प्रवेश]

भैरवी : महारानी ! आदम ख़ाँ के अनेक सिपाही केसर, कस्तूरी और सुगध के थाल लेकर आए हैं। कह रहे हैं कि मलिका रूपमती की ख़िदमत में पेश करना है।

रूपमती : केसर, कस्तूरी और सुगंध के थाल ? अच्छा, उन्हें रखवा लो। देखूँगी कि निष्प्राण शरीर में सुगन्ध की मादकता कितनी अधिक होती है।

भैरवी : जो आज्ञा (**प्रस्थान**)

रूपमती : वैद्य नानकचन्द ! तुम जाओ और हथकड़ियों और बेड़ियों से पं० रायचन्द के शरीर पर जो घाव हो गए हों, उन पर औषधियों का लेप करो। आज संध्या के पूर्व वे मुझे सारंग राग सुनाने के लिए आएँगे।

नानकचन्द : जैसी स्वामिनी की आज्ञा। (**प्रस्थान**)

रूपमती : और रेवा ! तुमसे क्या कहूँ ! मैंने राग टोड़ी गाकर जंगल के अनेक हरिणों और हरिणियों को अपने वादन-कक्ष में एकत्र कर लिया है। जब मैं राग टोड़ी का आलाप करती थी तो वे हरिण सिर झुकाए मंत्रमुग्ध की भाँति मेरी गोद में इस प्रकार सिर रख देते थे जैसे कोई भूखा बच्चा अपनी माँ के वात्सल्य से आत्मविभोर हो उठता है। आज मैं फिर टोड़ी राग गाकर अपने हरिण-शावकों को गीत का अमृत-रस पिलाऊँगी···फिर···

रेवा : फिर···महारानी ?

रूपमती : फिर उन्हें तुम जंगल में छोड़ देना। यों तो वे स्वयं जंगल में भाग जाते पर मेरे स्नेह और मधुर राग से वे ऐसे मोहित हो गए हैं कि मेरे कक्ष में परिवार के बच्चों की भाँति रहते हैं।

रेवा : महारानी !

रूपमती : अधिक दुखी होने की आवश्यकता नहीं है। मैं आज पतझर के पेड़ों में वसन्त के फूल बाँधूँगी। भाग्य के इस परिहास पर शायद विधाता भी मुस्करा उठे।

रेवा : महारानी ! आप क्या करेंगी, कुछ तो संकेत दीजिए।

रूपमती : यह मुझ तक सीमित रहने दो, रेवा ! जाओ, मेरे श्रृंगार की सामग्री सजाओ ! आदम ख़ाँ भी देखे कि भारत की नारी कैसा श्रृंगार करती है। आज वसन्त की प्रकृति का श्रृंगार भी इतना मोहक न होगा जितना मेरा श्रृंगार होगा !

रेवा : महारानी ! ऐसा लगता है कि आपके श्रृंगार की शोभा माण्डवगढ़ नहीं देख सकेगा।

रूपमती : विधाता तो देख सकेगा मेरा श्रृंगार। एक बार नर्मदा ने भी श्रृंगार किया था। चन्द्रमा की मानस-पुत्री होने से उसमें अमृतमय सौन्दर्य तो है ही, उस पर भी उसने श्रृंगार किया। ऐसा श्रृंगार किया कि पुरुकुश जैसा संयमी राजा भी उस पर मोहित हो गया ! जब गन्धर्वों ने नागजाति पर आक्रमण किया तो नर्मदा के आग्रह से पुरुकुश ने गन्धर्वों की सेना क्षण-भर में नष्ट कर दी ! मैं किसी की सेना नष्ट

नहीं कर सकी और मेरे देखते-देखते मांडवगढ़ भस्म हो गया ! मेरी नर्मदा ! क्या तुम फिर से शृंगार नहीं कर सकतीं ? पुरुकुश से कहो न कि वह आदम ख़ाँ की सेना को नष्ट कर दे ! और मेरा मांडवगढ़ बच जाए ! **(सिसकियाँ)**

रेवा : महारानी ! शान्त हो जाइए।

रूपमती : मैं कैसे शान्त हो जाऊँ, रेवा ? प्रियतम न जाने कहाँ होंगे और कैसे होंगे ! युद्ध में उनके शरीर पर न जाने कितने घाव लगे होंगे ! उनके घावों से जितना रक्त बहा होगा, उतने आँसू भी तो मैं नहीं बहा सकती !

रेवा : आप धैर्य रखें, महारानी ! सुलतान युद्ध में अधिक घायल नहीं हुए होंगे। वे युद्ध में बहुत प्रवीण हैं।

रूपमती : ऐसा ही हो, रेवा ! किन्तु वे मेरे हृदय में रहते हुए भी मुझसे बहुत दूर हो गए हैं। हमारे गुरु शेख़ उमर भी चले गए ? वे कितने आत्म-सम्मानी थे कि अपमान के झटके से वीणा के तार की तरह उन्होंने अपनी साँस भी तोड़ दी ! मैं अकेली रह गई ! जिस तरह चन्द्र की कलाएँ घटते-घटते अमावस हो जाती हैं, रेवा ! उसी तरह मैं भी आज अमावस की रात बनकर अकेली रह गई हूँ !

रेवा : इतनी दुखी न हों, महारानी !

रूपमती : मेरा दुःख तो स्थायी के आलाप की तरह है। उसी में मुझे डूब जाने दो ! अब तुम जाओ, रेवा ! मुझे मेरे दुःख के साथ आगे की बातें सोचने दो। और हाँ! आज रात मेरे गुरु की मज़ार पर एक दीपक अवश्य रख देना। वह दीपक मेरे प्राणों का दीपक होगा। उसके प्रकाश में मेरे गुरु अपनी रूपमती का बुझता हुआ शृंगार देख सकेंगे।

रेवा : जैसा आपकी आज्ञा, महारानी !

रूपमती : मेरे प्रियतम की वीणा मेरे हाथों में दे दो। जिन तारों पर उँगलियाँ रखते थे, मैं उन्हीं पर अपनी उँगलियाँ रखकर देखूँगी कि वीणा के तारों में मेरे प्रियतम का कंठ-स्वर गूँजता है या नहीं।

[रेवा कोने से वीणा उठाकर रूपमती के हाथों में देती है।]

रूपमती : **(वीणा हाथों में लेकर)** मेरे प्रियतम की वीणा ! जाओ, रेवा ! हम दोनों के बीच में अब कोई न रहे !

रेवा : जो आज्ञा, महारानी ! **(प्रस्थान)**

रूपमती : **(वीणा के तारों पर उँगली फेरकर)** राग सारंग ! सारंग-स्वर ! मैं वीणा कैसे बजाऊँ। जिन तारों ने मेरे प्रियतम के कंठ से कंठ मिलाया है, वे तार मेरा साथ कैसे दे सकेंगे ! सारंग-स्वर ! तुम्हीं साकार हो जाओ और उस दिशा में गूँज जाओ, जिस दिशा में मेरे प्रियतम गए हुए हैं ! तुम्हारी ध्वनि की दिशा में चलकर मैं उन्हें लौटा लाऊँगी। वीणा ! बोलो·· मेरे आँसुओं की पीड़ा लेकर बोलो। एक बार बोलो, वीणा !

[रूपमती तारों को झंकृत कर वीणा पर सिर टेक कर सिसकने लगती है।]

चौथा अंक

[भीषण वन-प्रान्तर। सुलतान बाजबहादुर और सरदार विजय सिंह थकी हुई चाल से प्रवेश करते हैं। बाजबहादुर और विजय सिंह के हाथ में तलवारें हैं। कभी-कभी बाजबहादुर निराश होकर विजय सिंह के कंधे पर सिर टेक देते हैं।]

सुलतान : (**कराहते हुए**) शिकस्त···फिर शिकस्त !! इस ख़ौफ़नाक जंग के शरारे इस जिस्म पर अभी तक नहीं बुझे ! विजय सिंह, शायद कभी नहीं बुझेंगे !··· कभी नहीं···

विजय सिंह : इतने निराश न हों, सुलतान ! (**सँभालते हुए**)

सुलतान : मांडवगढ़ जल गया !···हम नहीं जल सके विजय ! और रानी रूपमती ? उफ़ ! (**सिर पकड़ लेते हैं।**)

विजय सिंह : कुछ न सोचें सुलतान, सोचने से विपत्ति का आकार और भी बढ़ जाता है।

सुलतान : विपत्ति का आकार और कितना बढ़ेगा, विजय सिंह ? जंग के लिए हम तैयार हुए तो रानी ने हमारी कमर में तलवार बाँधी।···लेकिन हम उस तलवार के पानी में डूब भी नहीं सके, चलते वक़्त उसने हमारी आरती उतारी···उसकी आरती को हम अपनी मज़ार का चिराग़ भी नहीं बना सके ! चिराग़ ! विजय सिंह !

विजय सिंह : क़िस्मत की बात कोई नहीं जानता, सुलतान !

सुलतान : क़िस्मत की बात ? अपनी इस क़िस्मत के फ़ैसले के पहले ही हमने मांडोगढ़ की क़िस्मत का फ़ैसला कर दिया। जल्लादों को हमने हुक्म दे दिया था कि अगर हम न लौटें तो हमारे हरम को क़त्ल कर दिया जाए···हरम को क़त्ल कर दिया जाए (**गहरी साँस लेकर**) रूपमती को भी···रूपमती को भी ! जो कपूर···केसर ···और कस्तूरी से स्नान करती थी—उसे ख़ून से नहला दिया हमने ! बदबख़्त बाजबहादुर ! किस मुँह से तू अपने को 'बहादुर' कहेगा !

विजय सिंह : सुलतान ! शिकस्त होने पर हरम की जो बेइज़्ज़ती होती है, उसे देखते हुए तो आपका हुक्म बेजा नहीं था !

सुलतान : लेकिन हमारी शिकस्त क्यों होती ? हमने सारंगपुर में जो मोरचेबंदी की थी, वह शैतान को भी दोज़ख़ की आग में झुलसा सकती थी। लेकिन मालूम होता है···मालूम होता है कि हमारे किसी बदज़ात सरदार ने ही आदम ख़ाँ को हमारे मांडोगढ़ का रास्ता दे दिया ! बदज़ात सरदार···हमें मालूम होता तो हम उसका गला घोंट देते···उसके जिस्म के टुकड़े-टुकड़े कर देते···

विजय सिंह : आपका गला सूख रहा है सुलतान ! (**कुप्पी से पानी निकालकर देता है**) लीजिए यह पानी !

सुलतान : पानी की ज़रूरत क्या होगी, जब हम अपने ख़ून के घूंट पी रहे हैं ? (**कुप्पी**

को लेकर फेंक देता है) जा, टुकड़े-टुकड़े हो जा। हम पानी पिएँ ? हमें तो दुश्मन का ख़ून पीना चाहिए। दुश्मन का ख़ून !

विजय सिंह : यह भी कभी हो जाएगा, सुलतान !

सुलतान : होगा ? हो सकता है। जंग में ज़ख्मी होकर और हरम को क़त्ल करने का हुक्म देकर ज़िन्दगी में क्या रह गया ? किसके लिए ज़िन्दा रहें ? किस मुराद के लिए जंग छेड़ें और दुश्मन का ख़ून पीने का हौसला रक्खें ? विजय सिंह ! अगर अब भी कोई उम्मीद रक्खें तो हम-सा बेशर्म इन्सान कोई नहीं होगा ! बेशर्म··· बेग़ैरत···

विजय सिंह : सुलतान ! सूरज पश्चिम में हमेशा के लिए नहीं छिपता। रात बीतते ही वह फिर अनन्त ज्योति के साथ उदित होता है। इस पराजय के बाद फिर भी आप विजय पा सकते हैं।

सुलतान : विजय पा सकते हैं ? लेकिन रानी रूपमती को ? **(नेपथ्य में संकेत करते हुए)** देखो···उधर देखो ! **(नेपथ्य की ओर फिर संकेत)** वह···वह, वह शायद आदम ख़ाँ का सिपाही है···पीछा करता हुआ आया है···देखते हो उसकी तनी हुई बन्दूक़ ···वह···वह···वह बन्दूक़ ! **(ज़ोर से)** हमें क़त्ल कर दे बदज़ात ! हमें क़त्ल कर दे !

विजय सिंह : (गहरी दृष्टि से देखकर उस ओर कुछ क़दम बढ़ता है, फिर लौटता है) सुलतान, वह न कोई सिपाही है, न उसकी बन्दूक़ ! एक झुका हुआ पेड़ है। एक सूखी डाल है जो सामने बढ़ी हुई है। वह बन्दूक़ की तरह दीख पड़ती है। दुश्मन को तो हम लोग बहुत पीछे छोड़ आए, सुलतान !

सुलतान : (गहरी साँस लेकर) ज़िन्दगी भी पीछे छोड़ आते तो अच्छा होता ! जिस्म पर जितने घाव हैं, उनसे ज़्यादा दिल पर हैं, विजय !

विजय सिंह : यदि आपमें उत्साह होगा, सुलतान ! तो ये दिल के घाव जल्द ही भर जाएँगे—जिस्म के घाव तो अच्छे होने के लिए ही लगते हैं। ये घाव तो ऐसे द्वार हैं जिनसे आपका उत्साह रक्त बनकर बहता है।

सुलतान : देखते हो उस ओर ? **(नेपथ्य में गहरी दृष्टि से देखता है)** वह···वह··· एक हिरनी मालूम होती है जो किसी शिकारी के तीर का घाव लेकर लेट गई है ! किस तरह कराहें भर रही है ! उसके घावों से निकलकर ख़ून के कितने धब्बे ज़मीन पर पड़े हुए हैं ! गोया लाल फूल हैं जो उसकी मौत की सेज बना रहे हैं। उसकी कराह सुनते हो ?

विजय सिंह : सचमुच सुलतान ! उस हिरनी की कराह में बड़ी पीड़ा है। उसको हमें बचाना चाहिए, सुलतान !

सुलतान : लेकिन नहीं बचा सकेंगे, विजय ! यह हिरनी जैसे हमारी रूपमती है। हमारे हुक्म से जल्लाद ने उसे इसी तरह घायल किया होगा। उसके मोम जैसे जिस्म पर जब शमशीर की आग गिरी होगी तो वह इसी हिरनी की तरह कराह उठी होगी। उसे कोई नहीं बचा सका होगा।···कोई नहीं बचा सका होगा। उसके आँसू···

उसके आँसू···हमारी याद में हिरनी के ख़ून से ज़्यादा गिरे होंगे।

विजय सिंह : आपबीती बातों को भूलने की कोशिश करें।

सुलतान : भूलने की कोशिश ? विजय सिंह ! क्या यह मुमकिन है ? क्या आसमान अपने में समाए नीले रंग को भुला दे ? क्या फूल अपनी ख़ुशबू को अपने से अलग कर दे ? विजय सिंह ! उठाओ अपनी तलवार और जल्लाद की बेरहम बलन्दी से मेरे जिस्म के टुकड़े-टुकड़े कर दो !

विजय सिंह : अपने को सँभालिए सुलतान ! ज़िन्दगी में हर मुसीबत से निकलने का रास्ता है !

सुलतान : लेकिन यह मुसीबत ऐसी मीनार है जिसमें एक भी दरवाज़ा नहीं है। साँस घुटकर शोला बन गई है जिससे जिस्म तिल-तिल कर जल रहा है।

[नेपथ्य में हलचल—एक सिपाही हाँफता हुआ आता है।]

सिपाही : बलन्द इक़बाल आलमे-सुलतान ! मुबारक ! एक ख़ुशख़बरी अर्ज़ करने की इजाज़त बख़्शें।

सुलतान : ख़ुशख़बरी ? रूपमती की ज़िन्दगी ख़त्म होने के बाद मेरे लिए ख़ुशी की कोई ख़बर नहीं हो सकती !

सिपाही : ऐसा ही हो गया है, बन्दापरवर ! सुलताना रूपमती सलामत हैं।

सुलतान : (**उल्लसित होकर**) सलामत हैं ? ज़हे क़िस्मत ! आफ़रीन···आफ़रीन··· विजय सिंह···सुलताना रूपमती सलामत हैं···नाचो, गाओ ! ख़ुशियाँ मनाओ··· ख़ुशी···(**सहसा रुककर**) लेकिन रूपमती ज़िन्दा कैसे रह सकती हैं ? जल्लादों ने तो उन्हें क़त्ल कर दिया होगा और जल्लाद हमारा हुक्म किसी हालत में नहीं टाल सकते।

सिपाही : बन्दापरवर !

सुलतान : तब···तब···सुलतान रूपमती किस तरह सलामत हैं ? चमन में ख़िज़ाँ को रास्ता मिल जाए और चमन महफ़ूज़ रहे ? बोलो···बोलते क्यों नहीं ? क्या मेरे हुक्म से हरम की बेगमात का क़त्ल नहीं किया गया ?

सिपाही : किया गया, जहाँपनाह।

सुलतान : फिर रानी रूपमती भी तो हरम में थीं ?

सिपाही : बन्दापरवर ! जल्लाद ने सुलताना पर तलवार ज़रूर चलाई लेकिन हुज़ूर के ग़म में सिसकती हुई बेगम पर तलवार ओछी पड़ी। वे गिर पड़ीं। जल्लाद ने तो समझा कि उसने सुलताना को क़त्ल कर दिया लेकिन बाद में जब वे कराहती हुई होश में आईं तब मालूम हुआ कि सुलताना में ज़िन्दगी की रौशनी बाक़ी है !

सुलतान : तब जल्लाद ने दुबारा बार क्यों नहीं किया ?

सिपाही : हुज़ूर ! तब तक हरम पर आदम ख़ाँ का कड़ा पहरा हो गया था। और वैद्य नानकचन्द को हुक्म हुआ कि वो सुलताना के घावों को मरहम से ठीक करें।

सुलतान : और उसने ठीक किया ?

सिपाही : हुज़ूर ! सुलताना रूपमती के घाव तो अच्छे हो गए लेकिन उनके दिल के घाव और भी उभर आए हैं।

सुलतान : तो हम वापस जाएँगे, विजय सिंह ! हम वापस जाएँगे ! आदम ख़ाँ ने रूपमती को क्यों नहीं मरने दिया ? रानी पर किसी तरह का ज़ुल्म हो, यह हम बरदाश्त नहीं कर सकेंगे। हमें रानी को बचाना होगा !

विजय सिंह : लेकिन आप रानी को कैसे बचा सकेंगे ? हमारे सब सिपाही मौत के घाट उतार दिए गए। आप और हम अकेले आदम ख़ाँ की फ़ौज से कैसे लड़ सकेंगे ?

सुलतान : तो हम अपनी जान तो दे सकते हैं !

विजय सिंह : उससे लाभ क्या होगा, सुलतान ? अगर हमें रानी की रक्षा करनी है तो हमें हिम्मत से काम लेना होगा ! उदयपुर के राणा आपके मित्र हैं। उनकी सहायता से हम आदम खाँ पर आक्रमण कर सकते हैं।

सुलतान : क्या ऐसी हमारी क़िस्मत हो सकती है ? क्या हमारी क़िस्मत की कश्ती आदम ख़ाँ के ज़ुल्म के समन्दर को समेट सकती है ? क्या नसीमे सहर काली रात के तूफ़ान पर फ़तह पा सकती है ? क्या फ़लक सितारों के सामने घुटने टेक सकता है ? क्या बिहाग में भैरवी समा सकती है ?

विजय सिंह : क्यों नहीं ? क्यों नहीं, सुलतान ? जब हमारे साथ उदयपुर की राजपूती सेना भैरवी गति से आदम ख़ाँ पर आक्रमण करेगी तो संसार देखेगा कि सुलतान बाजबहादुर को शिकस्त देना शाही फ़ौज के लिए भी असम्भव है। मांडवगढ़ ऐसा दुर्ग है जिसका अभिषेक शत्रु के रक्त से होगा और जिसमें राक्षसी सेना का आतंक है, उसमें फिर राजलक्ष्मी का निवास होगा—और राजलक्ष्मी का दूसरा नाम होगा रानी रूपमती···

सुलतान : धन्य हो विजय सिंह, तब ऐसा ही हो !

विजय सिंह : (सिपाही से) सैनिक ! तुम शीघ्र जाओ और दो अच्छे घोड़ों का प्रबन्ध करो। हम और सुलतान अभी उदयपुर की ओर प्रस्थान करेंगे।

सैनिक : जो आज्ञा ! (प्रस्थान)

विजय सिंह : सुलतान ! यह हमारा दूसरा अभियान होगा !

सुलतान : अल्लाह करे, ऐसा ही हो। पर विजय सिंह, तब तक क्या रूपमती ज़िन्दा रह सकेंगी ?

विजय सिंह : रानी साहसी हैं, सुलतान ! अपनी आत्म-रक्षा के लिए वे अवश्य ही कोई उपाय निकालेंगी। और मुझे विश्वास है, सुलतान ! कि वे अपनी मर्यादा हाथ से कभी नहीं जाने देंगी।

सुलतान : यह ठीक है, विजय सिंह, लेकिन···लेकिन···आदम ख़ाँ मांडोगढ़ में है। हमारी जंग में बहुत दिन लग सकते हैं···बहुत दिन···तब तक···तब तक रूपमती कैसे ज़िन्दा रहेगी ? ओह, हमारा सिर घूम रहा है।

विजय सिंह : अपने को सँभालिए, सुलतान !

सुलतान : आँखों के सामने अँधेरा आ रहा है···आदम ख़ाँ···आदम ख़ाँ···तू···तू···
मांडोगढ़ को नहीं छू···छू···सकेगा···मांडोगढ़···मांडोगढ़···

[मूर्छित होकर गिरते हैं। विजय सिंह उन्हें सँभालने की चेष्टा करते हैं।]

[परदा गिरता है।]

पाँचवाँ अंक

स्थान : रूपमती का शृंगार-कक्ष

[सामने ही सुलतान बाजबहादुर और रूपमती के चित्र हैं। कक्ष अनेक रेशमी परदों से सुसज्जित है। छोटे-बड़े कुछ मंच हैं, जिन पर रेशम और मखमल बिछा हुआ है। कोने में दो बड़ी वीणाएँ रखी हुई हैं। अनेक स्थानों पर दीपाधार रखे हुए हैं। अगरु-पात्रों से सुगन्धित धूम निकल रहा है। नेपथ्य में हलके स्वर में रायचन्द का संगीत सुन पड़ रहा है। वे राग सारंग का आलाप ले रहे हैं।

कक्ष में प्रभाती और श्याम मंजरी हैं। प्रभाती मंच पर बैठकर फूलों की माला गूँथ रही है। श्याम मंजरी वातायन के पास खड़ी हुई शून्य में देख रही है।]

श्याम : रायचन्द का आलाप कितनी देर से चल रहा है, प्रभाती ! कितना मधुर है ! ऐसा लगता है कि रागिनी की यह लहर अमृत की धारा बनकर मांडवगढ़ को शीतल करना चाहती है !

प्रभाती : किन्तु इस शीतलता मे किसे शान्ति मिलेगी ? (**सुई से फूल छेद देती है।**)

श्याम : शायद महारानी को मिले। वे तन्मय होकर उसे देर से सुन रही हैं। लगता है, इस रागिनी में हमारी महारानी का हृदय भी बह रहा है।

प्रभाती : हृदय नहीं, श्याम मंजरी ! उनके आँसू, जो रागिनी की लहर में सिहरते हुए चले जाते हैं। कभी थकते नहीं। पर बड़ी देर से वे यह रागिनी सुन रही हैं। (**माला गूँथती है।**)

श्याम : कहती थीं कि सारंग-स्वर से उन्हें शान्ति मिलती है। यही राग तो वे सुलतान के साथ गाती थीं। साथ-साथ गाने से उन्हें कितनी शान्ति मिलती थी !

[आलाप समाप्त हो जाता है।]

अरे, राग भी शान्त हो गया !

प्रभाती : पर इससे क्या शान्ति मिली होगी, प्रभाती ? इससे तो हमारे सुलतान की स्मृति और भी जाग उठी होगी।

श्याम : सुलतान की स्मृति जगाने के लिए ही महरानी ने रायचन्द से राग सारंग गाने

के लिए कहा होगा। जब सुलतान और महारानी मिलकर यही राग गाते थे तो ज्ञात होता था जैसे संध्या चाँदनी रात बन गई है और चाँदनी रात संध्या के गले मिल रही है।

प्रभाती : तुम ठीक कहती हो, श्याममंजरी ! जब से महारानी का वियोग सुलतान से हुआ है, वे उन्हीं की स्मृति में ऐसी डूबी रहती हैं कि और किसी बात का ध्यान ही नहीं रहता। आज नर्मदा की पूजा भी उन्होंने ठीक ढंग से नहीं की। नर्मदा की लहरों की तरफ एकटक देखती हुई वे फूलों को दूर उछाल देती थीं। (**माला फिर गूँथती है।**)

श्याम : सम्भव है, नर्मदा के प्रवाह में उन्हें मांडवगढ़ के रक्त का प्रवाह दीख पड़ा हो ! वे अपने शोक में इतनी शिथिल हैं कि वे स्वयं नर्मदा के टूटे हुए किनारे की भाँति रह गई हैं; किसी भी क्षण बिखरकर उस प्रवाह में गिर सकती हैं।

प्रभाती : सचमुच उनकी दशा देखकर आँखों में आँसू भर आते हैं। महारानी और सुलतान किसी राग के स्थायी और अन्तरा की तरह थे। एक के बिना दूसरे की क्या स्थिति होगी ? जब सुलतान यहाँ नहीं हैं तो महारानी रूपमती कितने दिन अकेली रह सकेंगी ?

श्याम : प्रातःकाल एक सैनिक आया था, जिसने सूचना दी कि सुलतान और सरदार विजय सिंह तेज़ घोड़ों पर बैठकर उदयपुर के महाराणा से सहायता माँगने गए हैं। महारानी ने यह सुनकर कहा कि साँप घर में है और जड़ी-बूटी पहाड़ पर है।

प्रभाती : सचमुच आदम ख़ाँ साँप ही की तरह तो है। दरवाज़े पर अपना फन फैलाकर फुफकार रहा है।

श्याम : हाँ, धमकी दे रहा है कि अगर तुम मुझसे नहीं मिलोगी तो मैं तुम्हारे साथ तुम्हारे संगीत को भी ज़मीन में दफ़न कर दूँगा। महारानी इस बात को कभी सहन नहीं कर सकतीं कि उनके जीवन-काल में ही संगीत का ऐसा अपमान हो ! उन्होंने सुलतान से मिलने की स्वीकृति दे दी है। किन्तु ईश्वर ही जाने, यह मिलना कैसा होगा !

प्रभाती : मैं जानती हूँ, इस मिलने से कपूर सागर में आग की ज्वालाएँ जल उठेंगी। महारानी ने आदम ख़ाँ से जो कपूर, केसर, कस्तूरी की माँग की है, वह शायद आग की ज्वाला को प्रज्वलित करने के लिए ही है।

श्याम : मेरी कुछ समझ में नहीं आता प्रभाती ! इतना अवश्य जानती हूँ कि महारानी आदम ख़ाँ के सामने कभी आत्म-समर्पण नहीं करेंगी।

प्रभाती : फिर केसर, कपूर, कस्तूरी मँगवाने का क्या रहस्य होगा ? और तुम तो महारानी का पत्र आदम ख़ाँ को सुनाने गई थीं, उस पर क्या प्रभाव पड़ा ?

श्याम : वह तो ख़ुशी से पागल हो गया। वह अपने मुसाहिबों को पुकार-पुकारकर जैसे नाचने लगा।

प्रभाती : तुम घबराईं नहीं ?

श्याम : मैं घबराती क्यों ? मुझे तो उस समय क्रोध हो आया जब उसने मुझे भी सौन्दर्य की देवी कहा ।

प्रभाती : आदम ख़ाँ सौन्दर्य के पीछे अपनी सल्तनत भी बेच सकता है, सल्तनत भी !

[रेवा का प्रवेश]

रेवा : प्रभाती ! तुम यहाँ हो ? स्वामिनी का शृंगार हो चुका है। वे यहाँ आना ही चाहती हैं। तुम्हें पूछ रही हैं ।

प्रभाती : मैं अभी जाती हूँ। मेरी माला भी पूरी हो गई। (**शीघ्रता से प्रस्थान**)

श्याम : क्या स्वामिनी को केसर और कपूर का अंग-राग लगाया गया।

रेवा : हाँ, आदम ख़ाँ ने बड़े-बड़े सोने के थालों में कपूर, केसर, कस्तूरी और इत्र के ढेर के ढेर भेज दिए थे । स्वामिनी ने आज अपना शृंगार ऐसे करने को कहा जैसे उनका विवाह फिर सुलतान के साथ होने जा रहा है।

श्याम : मुझसे तो उनका शृंगार देखा न जाएगा, रेवा ! ऐसा लगेगा जैसे आग से झुलसी हुई लता में फूलों के गुच्छे बाँध दिए गए हैं !

रेवा : मैं भी उनका शृंगार करते-करते बहुत बार रो पड़ी, श्याम मंजरी ! मैंने उनसे कहा कि मेरी महारानी ! आपकी आँखों से इतने आँसू गिर रहे हैं कि यदि ये सब मोती बन जाएँ तो आपका सारा शृंगार करने के बाद भी बच रहेंगे।

श्याम : उन्होंने क्या कहा ?

रेवा : उन्होंने कहा—कहाँ आँसू, कहाँ मोती ! यदि आँसू मोती बन जाएँ तो उन्हें देखने के लिए शायद मैं जीवित रहूँ। फिर एक ठंडी साँस लेकर कहा कि नर्मदा इसकी साक्षी है।

श्याम : नर्मदा ?

रेवा : हाँ, नर्मदा। उन्होंने कहा कि नर्मदा में जल नहीं बह रहा है, मेरे आँसू बह रहे हैं। कभी तो नर्मदा सुलतान से मेरा सन्देश कहेंगी !

श्याम : महारानी का कष्ट शब्दों में नहीं कहा जा सकता, रेवा !

रेवा : श्याम मंजरी ! इसीलिए तो मैं उनका शृंगार पूरा होने से पूर्व ही चली आई । कितना अच्छा होता है कि हमें यह दृश्य देखने को न मिलता ! जिस तरह हमारे पीर शेख़ उमर इस संसार से चले गए, उसी तरह हम लोग भी अपना जीवन समाप्त कर देते !

[भैरवी का प्रवेश]

भैरवी : स्वामिनी का शृंगार पूरा हो चुका। वे कक्ष में आ रही हैं।

रेवा : कक्ष में आ रही हैं ? तो मैं द्वार पर उनका स्वागत करूँ। (**भैरवी के साथ प्रस्थान**)

श्याम : (**स्वगत**) मैं अंगरक्षिका होकर महारानी की प्राणरक्षिका हो सकती, तो मेरा सौभाग्य होता ।

[रेवा के साथ सम्पूर्ण सौभाग्य-वेश में रूपमती का प्रवेश]

श्याम : महारानी को प्रणाम करती हूँ !

रूपमती : मेरे प्रियतम की सेवा में तुम्हारा जीवन व्यतीत हो !

श्याम : महारानी ! आपका सौभाग्य-शृंगार···

रूपमती : वह अमर है, श्याम मंजरी ! जिस तरह नन्दन वन में कभी पतझड़ नहीं होता उसी तरह मेरे सौभाग्य में कभी दुर्भाग्य नहीं आ सकेगा ! मैं सदैव शची की भाँति सौभाग्यशालिनी हूँ !

श्याम : आप धन्य हैं, महारानी ! किन्तु···आदम ख़ाँ···

रूपमती : उसका नाम मत ले । जिस प्रकार एक पतिंगा दीपशिखा जलने में के लिए ही उड़कर पास आता है, उसी प्रकार वह भी मेरी रूप-शिखा में जल जाने के लिए उत्सुक है । कक्ष के इन दीपकों को भी जला दे, रेवा ! जो मेरी तरह अनेक पतिंगों को जला सकें ।

[रेवा एक दीपक से अन्य दीपक जलाती है ।]

रूपमती : तेरी आँखों में आँसू क्यों आ रहे हैं, रेवा ? मैंने तुम सबके आँसू अपनी आँखों में समेटकर नर्मदा में प्रवाहित कर दिए हैं । जब मेरी आँखों के आँसू समाप्त हो चुके हैं, तब तुम्हारी आँखों में आँसू क्यों हों ? उनके पोंछ डालो !

[रेवा अंचल से अपने आँसू पोंछ लेती है ।]

रूपमती : (**दीपकों की ओर संकेत करते हुए**) मेरी तरह ये दीपक भी जल रहे हैं। मैंने अपने संगीत से न जाने कितने दीपक जलाए हैं, मेघों से जल की वृष्टि कराई है, सूखी हुई लता में पुष्प विकसित किए हैं, भटके हुए हरिणों को पास बुलाकर बिठलाया है। पर मैं अपने भटके हुए प्रियतम को पास नहीं बुला सकी !

श्याम : विधि का विधान है, महारानी ! वे शीघ्र आ भी सकते हैं।

रूपमती : इतने शीघ्र कैसे आ सकते हैं, श्याम मंजरी ? युद्ध में वे बाज की तरह झपटे किन्तु उनके पंख काट दिए गए। उन्हें कितना कष्ट हुआ होगा ! उनके शरीर से रक्त की धाराएँ निकली होंगी, यहाँ मैं लाल अंगराग लगाकर कपूर, केसर और कस्तूरी की सुगन्ध लिए खड़ी हूँ । लेकिन यह अरुण अंगराज भी एक चिता है, जिसमें मैं जल रही हूँ ! और इसी में समाप्त हो जाऊँगी ! इसी में समाप्त···

[बाहर से घोड़ों की टापों की ध्वनि आती है ।]

श्याम : रेवा ! देख बाहर कौन आया ?

रेवा : मैं अभी देखती हूँ । (**प्रस्थान**)

रूपमती : श्याम मंजरी ! सुना है, आज सारे मांडवगढ़ में उत्सव मनाने की आज्ञा हुई है ।

श्याम : हाँ, स्वामिनी ! अकबर का सिपहसालार आज अपनी वासनाओं को दीपक बनाकर हरएक गली-चौराहे को हँसाना चाहता है, लेकिन वह नहीं जानता कि

मांडवगढ़ का हरएक दीपक चिता की आग लेकर अपने-आपमें जल रहा है।

रूपमती : तुम ठीक कह रही हो श्याम मंजरी ! लेकिन जो चिता मेरे हृदय के भीतर जल रही है, उसकी आग अधिक भयानक है।

[रेवा का प्रवेश]

रेवा : स्वामिनी ! आपसे भेंट करने क लिए अकबर के सिपहसालार आ गए हैं।

रूपमती : आ गए हैं ? मैं भी प्रस्तुत हूँ। आज मेरी परीक्षा है। मैं अपने अंचल में केसर-कस्तूरी नहीं, प्राण सजाकर लाई हूँ, क्योंकि मेरे सुहाग की रेखा सिंदूर से नहीं रक्त से भर उठी है ! उसी में भारतीय नारी का साहस चमकेगा।

श्याम : स्वामिनी ! आपके साहस की ध्वनि तो प्रतिध्वनि बनकर आदम ख़ाँ के मन को भयभीत बना रही है। इसीलिए तो मांडवगढ़ को जीतने के बाद भी वह प्रहरियों के बीच में रहता है। इस समय भी हमारे महल के चारों ओर प्रहरी हैं।

रूपमती : प्रहरी शरीर को बन्दी बना सकते हैं, श्याम ! प्राणों को नहीं। फिर भय किस बात का ? नारी संकट के समय बादलों की काली रेखा को भी बिजली की रेखा बना लेती है।

रेवा : आदम ख़ाँ नारीत्व के वज्र को भी तिनका समझ रहा है, देवी ! वह नहीं जानता कि स्वयं उसमें जल जाएगा।

रूपमती : मेरा शृंगार ही उसे जला देगा ! तुम सभों ने मेरा बड़ा शृंगार किया है। किन्तु तुम जानती हो कि फूल से सुगंध चली गई है, केवल पंखड़ियाँ ही शेष हैं। अपने स्वामी के प्रेम के सागर से ही मैंने अपना जीवन-घट भरा था। सागर में बड़वाग्नि होती है, मेरे जीवन-घट में कितनी बड़वाग्नि होगी, कह नहीं सकती ! कौन जानता है, यह जीवन-घट ही न रहे।

श्याम : स्वामी जब विजयी होकर मांडवगढ़ लौटेंगे तो उन्हें बड़ा कष्ट होगा, स्वामिनी !

रूपमती : उनके प्रेम का क्षण ही तो स्वाती की बूँद था जिसने मेरे जीवन को मोती बनाया। अब यदि वह मोती समुद्र की गहराई में डूब जाए तो स्वाती की बूँद को क्यों कष्ट हो ? ···अब अधिक सोचने और समझने का समय नहीं है, श्याम मंजरी ! अब मेरा पातिव्रत्य एक विलासी से भेंट करेगा !

श्याम : मैं कुछ समझी नहीं, स्वामिनी !

रूपमती : तेरे समझने की आवश्यकता भी नहीं है। अब मैं अमृत-पान करूँगी।

रेवा : कैसा अमृत-पान, स्वामिनी ?

रूपमती : तू समझती है कि मैं विलासी के विलास का अमृत-पान करूँगी ? (**व्यंग्य की हँसी**) तू अभी नहीं समझेगी। मैं अब सिंहासन पर बैठूँगी।

रेवा : सिंहासन प्रस्तुत है, स्वामिनी ! (**सिंहासन की ओर संकेत**)

रूपमती : किन्तु क्या मैं कभी अकेली सिंहासन पर बैठी हूँ ? सदैव अपने प्रियतम के

साथ सिंहासन पर बैठती रही हूँ । आज मेरे प्रियतम मेरे पास नहीं हैं। उनका चित्र तो है।

[दीवाल में लगे बाजबहादुर के चित्र की ओर संकेत]

रेवा : हाँ, स्वामिनी !

रूपमती : उसे उतारकर सिंहासन पर सजा दे ! सिंहासन पर पहले प्रियतम बैठते थे। तब मैं उनके समीप आती थी।

[रेवा सुलतान बाजबहादुर का चित्र सिंहासन पर सजाती है ।]

रूपमती : हाँ, अब मैं उनके पास आसन ग्रहण करूँगी। देखो, हम दोनों की कैसी शोभा है !

[श्याम मंजरी और रेवा की आँखें सजल हो जाती हैं ।]

रूपमती : अरे, तुम लोगों की आँखों में आँसू ? **(चित्र को सम्बोधित करते हुए)** प्रियतम ! हम दोनों के सिंहासन पर ये दोनों सेविकाएँ आँसू क्यों बहा रही हैं ? इन्हें दण्ड दीजिए कि ये दोनों आज से मेरी सेवा से मुक्त हो जाएँ !

रेवा : (भरे कंठ से) स्वामिनी !

श्याम : (विह्वल होकर) ऐसा दण्ड न दें, स्वामिनी !

रूपमती : सुलतान से प्रार्थना करो, मुझसे नहीं।

श्याम : हम दोनों आपसे ही प्रार्थना करेंगी।

रूपमती : अच्छा, प्रार्थना बाद में सुनी जाएगी। इस समय तू मेरे कक्ष का परदा खींच दे, और बाहर खड़े हुए अकबर के सिपहसालार को आने दे, रेवा !

रेवा : (विनत होकर) जो आज्ञा। **(शिथिल पैरों से प्रस्थान)**

रूपमती : श्याम ! तू सिपहसालार से कह दे कि वह परदे के बाहर ठहरे। परदा खोलने के बाद तेरे यहाँ रहने की आवश्यकता न होगी।

श्यामा : जो आज्ञा !

[श्याम मंजरी मंच के बीच का परदा खींचती है जिससे मंच दो भागों में विभाजित हो जाता है। श्याम मंजरी द्वार के समीपवर्ती पार्श्व में है और रूपमती भीतरी कक्ष के पार्श्व में। कुछ ही क्षणों में श्याम मंजरी बाहर जाती है।]

रूपमती : (बाजबहादुर के चित्र को एकटक देखती हुई) प्रियतम ! मैं तुम्हारी अधिक सेवा नहीं कर सकी। जब कभी तुम मांडवगढ़ आओ तो अपने चरणों से मेरी भस्म पवित्र कर देना। जिसने तुम्हारे प्रेम का अमृत-पान किया है, वह आज विष-पान कर तुमसे अलग हो रही है। संसार में तुम्हारी प्रतीक्षा सहन नहीं कर सकी। स्वर्ग में ही तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी। जय भैरव !

[अंचल से विष-पात्र निकालकर पान करती है और सिंहासन पर निश्चेष्ट हो जाती है। तभी नेपथ्य में आदम ख़ाँ का अट्टहास सुन पड़ता है। वह श्याम के साथ द्वार-पार्श्व पर आता है।]

आदम ख़ाँ अत्यन्त सजे हुए वेश में है और शराब में मस्त है। मंच पर आते ही वह अट्टहास करता है—

आदम : ह् ह् ह् ह् ह् ! आज हिन्दोस्तान में सबसे ख़ुशक़िस्मत कौन है ? बादशाह अकबर ? (**हिचकी**) नहीं, नहीं, बादशाहे-इश्क़ हज़रते-अय्यूब आदम ख़ाँ ! (**फिर अट्टहास**) इन्तहाए-सब्र के बाद मलिका की मुहब्बत का जल्वा ! अलहम्दुलिल्लाह ! (**हिचकी**) ऐं ? (**परदे को देखकर**) मलिका रूपमती के हुस्न पर परदा ? परवरदिगार परदे में और मलिका रूपमती भी परदे में ? (**अट्टहास**) वल्लाह ! क्या निस्बत है ! (**झूमते हुए सम्बोधन के स्वर में**) यह मत समझना मलिका-ए-मालवा कि (**हिचकी**) हम आगरे से सिर्फ़ आग ही लाए हैं, आग के साथ आपके नाम रूपमती का 'रे' भी लाए हैं। बहुत बरसों के बाद हमारी क़िस्मत का सितारा मांडोगढ़ के फ़लक पर उभरा है ! (**झूमते हुए**) और उसकी एक किरन पाने के लिए हम···आस्मान से···आस्मान से चाँद भी तोड़कर ला सकते हैं। (**झूमते हुए**) हम जानते हैं कि तुम···तुम सती हो लेकिन जो···जो सती 'बाज़' को 'बाजबहादुर' बना सकती है, वह 'हज़रते-आदम' को 'आज़म' नहीं बना सकती ?···बना सकती है। यह परदा···हटा···दो !

श्याम : अभी हटा देती हूँ श्रीमन् ! यह तो सोचिए कि जब आपने मांडवगढ़ जीत लिया तो हम सब आपकी प्रजा हैं। हरएक धर्म में प्रजा राजा की सन्तान होती है, फिर महारानी रूपमती आपकी बेटी की तरह···

आदम : (**क्रोध से**) ख़ामोश ! नादान नाज़नीन ! यह क्यों भूल जाती है कि मुल्क जीतकर बादशाह मुल्क का ख़ज़ाना भी लूटते हैं। मलिका रूपमती का हुस्न मांडोगढ़ का ख़ज़ाना है। अगर उसे हमने अपने हक़ में नहीं लिया तो आगरे से इतनी दूर आने की ज़रूरत क्या थी ? अब ज़रा-सी देर भी बर्दाश्त नहीं होगी। परदा खोलकर यहाँ से जाओ।

[श्याम मंजरी परदा खोलकर चली जाती है।]

आदम : (**रूपमती को सिंहासन पर पूरे श्रृंगार से सजी हुई देखकर**) सुभान अल्ला ! क्या हुस्न है ! क्या शबाब है ! ख़ुदा की इस कुदरत पर सौ बार सदके ! वल्लाह ! क्या कहना है ! मलिका रूपमती तुम जैसी ख़ूबसूरत परी-रू हम कहाँ पाते ! ज़रा आँखें खोलो ! हम बहुत देर से तुम्हारा इन्तज़ार कर रहे हैं। (**कुछ देर रुककर**) नहीं ? मलिका रूपमती ! हमारी ख़िदमत में कितनी···कितनी परिस्तान की हूरें पेश की गईं, लेकिन हमने आँख उठाकर भी नहीं देखा !··· नहीं देखा ! हमने सिर्फ़ तुम्हारे लिए अपने···अपने को महफ़ूज़ रक्खा···सिर्फ़ तुम्हारे लिए।···मलिका ! हमें तुम्हारे तबस्सुम की एक किरन चाहिए !··· क्या मलिका हमसे ख़फ़ा हैं ? हमने सुलतान बाजबहादुर को शिकस्त दी ! लेकिन··· लेकिन···बग़ैर शिकस्त दिए हम तुम्हारे पास कैसे पहुँच सकते थे ? देखो अपना ग़म ग़लत करो। हम तुम्हारे लिए बहुत अच्छी शराब लाए हैं। (**अपने वस्त्रों में**

से शराब का सागर निकालना है) फ़ारस के अंगूरों का अर्क ! हमें इश्क़ का नशा है, और ···और तुम्हें हुस्न का नशा···हम दोनों के बीच में यह शराब की शमाँ बहिश्त का नज़ारा पेश करेगी।···एँ, अब भी चुप ? मलिका रूपमती ! हम तुम्हें यक़ीन दिलाते हैं कि हम तुम्हें आगरे के मसनद पर रौनक़ अफ़रोज़ करके तुम्हारी सल्तनत का डंका तमाम दुनिया में इस क़दर बजवा देंगे कि सारा आलम तुम्हारी परस्तिश करने के लिए आगरे आए ! और यह भी हो सकता है कि तुम्हें देखकर इंसान शायद ख़ुदा को भी भूल जाए ! मलिका रूपमती ! हम तुम्हारे गेसुओं की अँधेरी रात में सोएँगे और तुम्हारे रंगीन ख़्वाबों में जागेंगे। तुम्हारे गेसुए-ख़म हिल-हिलकर हमें पास बुला रहे हैं। क़रीब आएँ ? (**आगे बढ़ता है। सिंहासन पर बाजबहादुर का चित्र देखता है**) ऐं, यह बाजबहादुर की तस्वीर ? इसकी यहाँ क्या ज़रूरत थी, मलिका ? इसे तो हमने जंगलों में भेज दिया। वहाँ वह अपनी बीन बजा के परिन्दों और जानवरों से मुहब्बत करे। वह तुमसे क्या मुहब्बत करेगा ? यहाँ उसका क्या काम ? हम दोनों के बीच से इसे हटा दो !··· नहीं हटातीं ? बेजान तस्वीर से भी इतनी मुहब्बत ?···फेंक दो इस तस्वीर को ! (**तेज़ी से तस्वीर को उठाकर फेंकता है। फिर कुछ ठहर कर**) माफ़ करना, मुझे ग़ुस्सा आ गया ! लेकिन तुम भी तो कुछ नहीं बोलीं ? अपनी आँखें भी नहीं खोलीं ? यह माजरा क्या है ? हम···हम तुम्हें छू ल ? इस फूल को अपने आग़ोश में ले लें ? (**रूपमती के हाथ को अपने हाथ में लेकर उठाता है, लेकिन हाथ शिथिल होकर गिर पड़ता है**) यहा क्या ! (**ज़ोर से पुकारता है**) मलिका रूपमती···रूपमती ! (**कोई उत्तर नहीं**) तुम अब भी नहीं बोलतीं···(**फ़र्श पर विष की शीशी देखकर हाथ में उठाता है**) यह ज़हर का शीशः ! रूपमती तुमने ज़हर पी लिया ! यह क्या किया ! रूपमती ! तुम इतनी पारसा हो— अगर हमें यह मालूम होता तो हम मांडवगढ़ के इस बहिश्त में आग न लगाते ! रूपमती ! बाजबहादुर तुम्हें मुबारक हो ! (**तस्वीर को उठाकर फिर सिंहासन पर रखता है**) आफ़रीन ! (**घुटने टेककर**) परवरदिग़ार ! इस पारसा की जान लेने के लिए यह बदकिरदार तुझसे माफ़ी का ख़्वास्तगार है !

[नेपथ्य में करुण रागिनी।]

[परदा गिरता है।]

पृथ्वी का स्वर्ग

भूमिका

नाटक का जीवन में स्थान

नाटक साहित्य का साकार रूप है। वह साहित्य के अन्य अंगों की अपेक्षा जन-साधारण के सबसे अधिक निकट है। नाटक में जीवन की वास्तविकता, सौन्दर्य-विधायिनी कल्पना के रंगों से पूर्ण होकर, रंगमंच पर अवतरित होती है, जिससे उसमें जीवन की झलक मिलती है। दर्शक वर्ग रंगमंच पर ऐसी घटनाएँ घटित होते देखता है, जो उसके जीवन में या तो घटित हो चुकी होती हैं, या उनके घटित होने की सम्भावना होती है। वह अपनी समस्याओं का साकार रूप रंगमंच पर देखता है और उसके परिणाम से लाभ उठाने का यत्न करता है। साहित्य के अन्य अंगों (कविता, उपन्यास, कहानी आदि) को रंगमंच का यह वरदान प्राप्त नहीं है; इसी कारण साहित्य के अन्य रूप अपना प्रभाव जन-साधारण पर डालने में नाटक की भाँति सफल नहीं हो पाते। प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से नाटक साहित्य का सबसे सबल माध्यम है।

ऐसा प्राय: देखा जाता है कि युग के वातावरण से नाट्य-साहित्य सबसे अधिक प्रभावित होता है। एलिज़ाबेथ-युगीन शांति और सौख्य शेक्सपियर, मार्लो आदि नाटक-कारों की कृतियों में 'रोमांस' की प्रमुखता का कारण बना। इंगलैंड में 'रेस्टोरेशन'-युग की विलासिता की छाप ड्राइडन आदि के नाटकों पर है। इसी प्रकार भारतेन्दु-युगीन नवजागरण का संदेश नाटक के माध्यम से ही व्यक्त हुआ है।

जिस प्रकार युग का प्रभाव नाटक पर पड़ता है, उसी प्रकार नाटक भी युग की प्रवृत्तियों पर प्रभाव डालता है। नाटक देखते समय हम तन्मय हो जाते हैं और हमें यह बोध ही नहीं होता कि हम वास्तविक घटना देख रहे हैं अथवा रंगमंच पर अवतरित एक दृश्य। इसी 'तन्मयता' की सृष्टि सच्चे नाटककार का उद्देश्य है। ऐसा भी हुआ है कि एक श्वेत नारी पर अत्याचार होते देखकर एक अमेरिकन दर्शक ने उस पात्र पर, जो स्त्री को कष्ट दे रहा था, गोली चला दी। वह यह भूल गया कि वह नाटक देख रहा है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि नाटक वृत्तियों के प्रसार के लिए एक सफल माध्यम बन सकता है।

आज हमारा देश स्वाधीन हो गया है। हमारा देश नवीन प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है। इस समय हमारे साहित्यकारों का दायित्व भी बढ़ गया है। हमें अब 'रोमैण्टिक' साहित्य की आवश्यकता नहीं है; और न ऐसे साहित्य की, जो सद्‌वृत्तियों के स्थान पर कुप्रवृत्तियों को उत्तेजित करे। अन्य साहित्यकारों की अपेक्षा नाटककार

का उत्तरदायित्व इस समय भी सबसे अधिक है। आज उसे नवजागरण का संदेश, अपने नाटक के माध्यम से, देश के कोने-कोने में फैलाना है; उसका कर्तव्य है कि जनसाधारण को अशिव से शिव की ओर, असत् से सत् की ओर, और तम से प्रकाश की ओर ले जाए, उनमें सद्‌गुणों का बीज वपन करे, और उन्हें राष्ट्र के नव-निर्माण के लिए प्ररित करे।

आज हमारा समाज विभिन्न परिस्थितियों में से गुज़र रहा है। एक ओर तो वह पश्चिमी प्रभावों से आक्रांत है, दूसरी ओर वह अपने देश के समस्त नैतिक मूल्यों को दिन-प्रतिदिन छोड़ता जा रहा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि परतन्त्रता की मुक्ति के बाद हमारे सामाजिक नवनिर्माण की जो प्रक्रिया होनी चाहिए थी, वह बिल्कुल ही अवरुद्ध हो गई। इसके साथ ही राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक मूल्यों का जो महत्त्व समाज में होना चाहिए, वह भी दृष्टि से ओझल हो गया। हमारी दृष्टि आध्यात्मिक न रहकर वस्तुवादी हो गई है और हमने धन को आवश्यकता से अधिक महत्त्व देना आरम्भ कर दिया है। यद्यपि धन का संचय करने वाले सम्पत्ति-लोलुप व्यक्तियों की पहले भी कमी नहीं थी किंतु उनकी वह धन-लोलुपता, उनकी व्यक्तिगत वृत्ति ही कही जा सकती थी, वह समाजगत या समष्टिगत छल-छद्‌म के रूप में नहीं थी। आर्थिक दृष्टिकोण प्रमुख हो जाने के कारण धोखा, छल और षड्‌यन्त्र उभरकर समाज के धरातल पर आ गए हैं। अब हृदय की सात्त्विकता अधिकतर आडम्बर मात्र रह गई है। आज एक व्यक्ति रामनामी दुपट्टा ओढ़कर भी दूसरे का सर्वनाश कर सकता है। मीठी बातें करके भी दूसरे व्यक्ति को षड्‌यन्त्र का शिकार बनाया जा सकता है और व्यक्ति अपनी निरीहता बतलाकर ऐसी इच्छाओं की पूर्ति करता है कि उससे समाज संकट में पड़ सकता है। इन परिस्थितियों के निराकरण की बहुत बड़ी आवश्यकता है। इसीलिए मनोवैज्ञानिक ढंग से परिस्थितियों का संयोजन करते हुए इस नाटक की रचना की गई है। अर्थलोलुपता का केन्द्र एक काल्पनिक पात्र दुलीचन्द है, जिसके मनोभावों में आज की समस्याएँ उभर आती हैं।

जहाँ तक इस नाटक के शिल्प का प्रश्न है, इसके प्रथम अंक का निर्माण एकांकी शिल्प के आधार पर ही किया गया था। किंतु एकांकी में संक्षिप्तता के कारण कथानक के समस्त सूत्रों का निर्वाह पूर्ण रूप से नहीं हो सकता। समस्या को विस्तार से समझने के लिए आवश्यकता थी कि इस एकांकी को सम्पूर्ण नाटक का रूप दिया जाए।

समस्या को जब विविध पात्रों अथवा विविध घटनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है तब अन्तर्द्वन्द्व और संघर्ष की स्थिति आती है। जब यह संघर्ष दो बाह्य परिस्थितियों में होता है तो उसे बहिर्द्वन्द्व का नाम दिया जाता है, और जब यह संघर्ष व्यक्ति की दो भावनाओं के बीच में होता है तो अन्तर्द्वन्द्व की संज्ञा दी जाती है। अन्तर्द्वन्द्व मनोविज्ञान के क्रोड़ में पोषित होता है। जीवन के वास्तविक चित्रण के लिए बाह्य द्वन्द्व की अपेक्षा अन्तर्द्वन्द्व अधिक महत्त्वपूर्ण है। परिस्थितियों का बाह्य द्वन्द्व कुतूहल को जन्म देता है और अन्तर्द्वन्द्व पात्र के मानसिक विस्तार का परिचय देता है। किंतु जीवन में अनेक व्यक्ति ऐसे होते हैं जो अपने संस्कारों में इतने सुदृढ़ होते हैं कि जीवन की कोई

भी परिस्थिति उन्हें अपने निश्चय के परिवेश से दूर हटाने में समर्थ नहीं होती। ऐसे पात्रों को अचल पात्र (static character) कहा जाता है। ऐसे पात्रों की मनोगत हठ-वादिता में ही चारित्रिक रहस्य उद्घाटित होता है। इस दृष्टि से दुलीचन्द एक ऐसा अचल पात्र है जिसका संस्कार ही मनोरंजन का केन्द्र बनता है।

यह नाटक भारत नाट्य संस्थान के रंगमंच पर अनेक बार अभिनीत हो चुका है। मैं उन समस्त कलाकारों के प्रति आभार मानता हूँ जिन्होंने इस नाटक की संवेदना को अपनी अभिनय कला से वास्तविक रूप में प्रस्तुत करने का सफल प्रयोग किया है।

—रामकुमार वर्मा

पात्र-सूची

(प्रवेशानुसार)

अचल	:	चित्रकार, आयु 22 वर्ष
केशव	:	अचल का मित्र, आयु 24 वर्ष
दुलीचन्द	:	सेठ, अचल का चाचा, आयु 50 वर्ष
मंगल	:	दुलीचन्द का नौकर, आयु 40 वर्ष
भिखारिन	:	आयु 30 वर्ष
मुनीम	:	सेठ दुलीचन्द का मुनीम, आयु 40 वर्ष
बंसी	:	सेठ ढालामल का नौकर, आयु 25 वर्ष
सर्वदानन्द शर्मा	:	संस्कृत पाठशाला का सचिव, आयु 40
अली नवाब यावर हुसेन क़ुरैशी	:	यतीमख़ाने का मैनेजर, आयु 50 वर्ष
इन्द्रजीत मजूमदार	:	गोरक्षा समिति का अध्यक्ष, आयु 45
रमेश	:	नवयुवक संघ का स्वयंसेवक, आयु 25 वर्ष
मनसाराम	:	कांस्टेबल, आयु 30 वर्ष
कुन्दन	:	भिखारिन का लड़का, आयु 22 वर्ष
बोझा ढोनेवाला		
ओझा आदि		

पहला अंक

स्थान : सेठ दुलीचन्द का बाहरी कमरा
समय : संध्या, छः बजे

[परदा उठने पर कमरे का बैठकखाना दिखलाई पड़ता है। सामान्य सजावट। एक मामूली-सी दरी फर्श पर बिछी हुई है। सामने एक तख़्त जिस पर कालीन और सन्दूक। आलमारी में लाल रंग की बहियाँ, उसके ऊपर लक्ष्मी और गणेश की मूर्ति। दीवाल पर 'लाभ' और 'शुभ'। समीप ही दो कुर्सियाँ पड़ी हैं।

कमरे में अचल और केशव बातें करते हुए आते हैं। इसी समय घड़ी में छः बजते हैं।]

अचल : यह छः बजे ! सारा दिन यों ही बीता।

केशव : (**थके हुए स्वर से**) हाँ, दिन यों ही बीत गया और अभी न जाने कितने दिन बीतेंगे !

अचल : तुम तो इतनी निराशा की बातें करते हो, केशव ! कभी न कभी तो मिलेगा ही।

केशव : मिल चुका ! ज़माना बदल गया है, अचल ! वह तेज़ी से भागता जा रहा है, अपनी ही धुन में ! दुनिया बन गई रेसकोर्स ! और हरएक आदमी बन गया है घोड़ा। तेज़ भागने वाला घोड़ा ! !

अचल : घोड़ा ? (**हँसकर**) इस रेसकोर्स में गधे नहीं दौड़ते !

केशव : (**हँसी में हँसी मिलाकर**) गधे ? खूब कहा। गधे नहीं दौड़ते ! अरे अचल ! गधे दौड़ते नहीं हैं, बोझा ढोते हैं, बोझा !

अचल : ठीक है, लेकिन इस दुनिया के आदमी दौड़ते भी हैं और बोझा भी ढोते हैं। घोड़े और गधे के बीच में आज का आदमी खड़ा है।

केशव : सचमुच आज का आदमी घोड़े और गधे के बीच की चीज़ बन गया है ! (**रुककर**) तुम्हारे चाचा जी···दूकान से अभी नहीं आए क्या ?

अचल : शायद नहीं। आते तो इतना सन्नाटा न रहता। कभी इसको आवाज़ देते, कभी उसको। कभी यह करते, कभी वह करते।

केशव : हमेशा कुछ न कुछ करते ही रहते हैं तुम्हारे चाचा जी ! और वे ही क्या, सभी लोग कुछ न कुछ करते ही हैं।

अचल : हाँ, अजीबोगरीब है आज का आदमी ! सब कुछ करता है, लेकिन अपने लिए !

मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि जिस तरह कीचड़-भरी ज़मीन पर चलते वक्त हर कदम पर जूता कीचड़ की तहें जमाता हुआ भारी बनता जाता है, उसी तरह यह आदमी भी हर कदम पर दुनिया को अपने चारों ओर लपेटता चलता है। कीचड़ को वह दौलत समझता है और अपने को इतना भारी बना लेता है कि चलना भी दुश्वार हो जाता है।

केशव : क्या बात कही है, अचल ! बिलकुल यही बात है। दौलत का नशा इतना ज़बरदस्त है आदमी पर कि वह इन्सान को कुर्सी समझकर उस पर बैठ जाता है। आज इन्सान इन्सान पर बैठा हुआ है। कहाँ है उसमें सहानुभूति, कहाँ है उसमें कोमलता, कहाँ है वह भावना, कल्पना और वह सब कुछ, जिनसे तुम्हारा चित्र बनता है ? यही वजह है कि आज दिनभर खोजने पर भी तुम्हारी चीज़ तुम्हें नहीं मिली। यों समझो, अचल ! कि जिस तरह पतझड़ में पेड़ों के पत्ते झड़ जाते हैं न, उसी तरह आज के कवि और चित्रकार की सारी चीज़ें खत्म हो गई हैं। आज तो तेज़ और गरम हवा चल रही है। चाबुक जैसी मार से पत्ते खड़खड़ करते हुए इधर-उधर उड़ रहे हैं। तुम्हें याद है न, शेली की 'ओड टु वेस्ट विंड' पोयम ?

अचल : याद है ! लेकिन उसमें एक भविष्यवाणी भी है कि इस पतझड़ के बाद वसन्त अवश्य आएगा ! इफ विंटर कम्स, कैन स्प्रिंग बी फार बिहाइण्ड ? मेरे हृदय का चित्रकार फिर से हरा-भरा होगा। उसमें भावनाओं से भरे चित्रों के फूल फिर से खिलेंगे।

केशव : ईश्वर करे इसी जन्म में खिलें ! तुम्हारे चित्रों के लिए मनचाहे रंग और आवश्यक चीज़ें मिलें ! आज तो दिनभर खोजने पर तुम्हारा ब्रश नहीं मिला !

अचल : **(सोचता हुआ)** कई बार इच्छा होती है केशव कि मैं चित्र बनाना ही छोड़ दूँ, चित्रकार के लिए न वातावरण है, न सामग्री ! इच्छाएँ दिल में ही घुटकर रह जाती हैं। बहुत दिनों से सोच रहा हूँ कि एक चित्र बनाऊँ।

केशव : कौन-सा ?

अचल : 'पृथ्वी का स्वर्ग'। लेकिन इस पृथ्वी में स्वर्ग कहाँ है ?

केशव : अरे ! तो इसमें क्या कठिनाई है ? कश्मीर का चित्र खींच दो। जहाँगीर बादशाह ने कश्मीर को देखकर एक बार कहा भी था—

'अगर फ़िरदौस बर रूए ज़मीनस्त
हमीनस्तो हमीनस्तो हमीनस्त ।'

अगर पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है, तो यहीं है, यहीं है, यहीं है ! बस अपने चित्र में कश्मीर का कोई चित्र खींच लो।

अचल : **(सोचता हुआ)** कश्मीर का ?

केशव : और क्या ! गुलमर्ग या पहलगाँव का कोई सीन ले लो ! अगर कोई कठिनाई हो तो बाज़ार में कश्मीर के बहुत-से फोटो मिलते हैं, कोई लेकर उसी में रंग भर दो। नीचे लिख दो—'पृथ्वी का स्वर्ग' !

अचल : लेकिन मेरी पृथ्वी का स्वर्ग वहाँ नहीं है, केशव ! मेरी पृथ्वी का स्वर्ग इस

मनुष्य के जीवन में है। वह ठोस नहीं है, तरल है—जो मन्दाकिनी की तरह मानव के प्राणों में कल-कल ध्वनि करता है। वह प्रेम में है, दया में है, सहानुभूति में है, जो आज के संसार में कल्पना की वस्तु बन गई।

केशव : (**व्यंग्य से**) अच्छा, तो आप कवि भी हैं ?

अचल : कवि और चित्रकार में भेद क्या है ? कवि अपने स्वर में और चित्रकार अपनी रेखा में जीवन के सत्य और सौन्दर्य का राग भरता है। यही तो मैं अपने मनचाहे ब्रश की पतली लकीरों से खींचना चाहता था कि 'पृथ्वी का स्वर्ग' कहाँ है। स्वर्ग क्या है और पृथ्वी क्या है और पृथ्वी के किस कोने में स्वर्ग है। इसी का रूप मैं अपने चित्र में उतारना चाहता था, केशव ! यह बात तो···

[नेपथ्य में 'कमबख्त कहीं का', 'गधा कहीं का' कहते हुए और हाँफते हुए सेठ दुलीचन्द का प्रवेश।]

दुलीचन्द : (**खाँसते और हाँफते हुए**) कमबख्त कहीं का ! गधा कहीं का ! दस आने लेगा। एक छोटी-सी सन्दूक ! उसके उठाने के दस आने ! समझा न, दस आने यानी चालीस पैसे—चालीस वर्ष की उमर भी न होगी तेरी !

अचल : चाचा जी आ गए।

केशव : नमस्ते, चाचा जी।

दुलीचन्द : (**न सुनते हुए**) चोर कहीं का ! लूट मचाई है ! जिसको देखो वही लूट-मार करना चाहता है। हम सब अन्धे हैं न ! दस आने लेगा, दस रुपये नहीं ? तेरे लिए मैंने ख़ज़ाना इकट्ठा करके रख छोड़ा है !

अचल : कौन है, चाचा जी ?

दुलीचन्द : अरे, वही बोझा ढोने वाला ! जितने चोर और बदमाश हैं, सब बोझा ढोने वाले बन गए हैं। रात में चोरी का माल ढोते हैं, दिन में बोझा उठाते हैं। चाहते हैं कि दुनिया में जिसके पास पैसा है, समझा न ? वह उनके गोलक में चला जाए ! कमीने कहीं के !

शव : यह तो ठीक है, चाचा जी ! आप ही से ये लोग मानते हैं। आपने इन्हें ख़ूब समझा है !

दुलीचन्द : ज़िन्दगी-भर यही किया है कि और कुछ, समझा न ? (**नेपथ्य में देखकर**) चला आ इधर ! सीधे ! (**अचल से**) अरे ! वह पुराने घर का छप्पर है न ? वह टूट रहा है। ठीक कराने में अभी कुछ दिन लगेंगे। बीच के कमरे में एक सन्दूक पड़ी थी। उठवाकर ले आया। यों मामूली कपड़ों की सन्दूक है, लेकिन कपड़े अपने ही तो हैं, समझा न ? उस पर भी पैसे खर्च हुए हैं, तो कपड़े क्यों बर्बाद हों ! ऐं ? (**ठहरकर**) साँस भर आई। (**खाँसता है, बाहर देखकर**) इधर ले आ ! गधा कहीं का ! किसी धोबी के यहाँ होता तो दिन-भर ढोता और एक पैसा भी न मिलता ! (**'एक' पर जोर देकर**) एक पैसा न मिलता। समझा न? इधर ले आ !

[एक बोझे वाला सिर पर सन्दूक लेकर कराहता हुआ आता है।]

दुलीचन्द : देख, गिरा मत देना ! सिर पर बोझा सँभालना नहीं आता और दस आने लेगा ! दस आने ! समझा न ? गिनती आगे नहीं आती, नहीं तो और ज्यादा माँगता, समझा न ? (**शान से कुर्सी पर बैठते हैं।**)

बोझेवाला : (**केशव से हाँफता हुआ**) बाबू, तनी मदद कइ दें।

दुलीचन्द : (**अकड़कर**) हैं ! 'मदद कइ दें !' मदद करने के चार पैसे कटेंगे, समझा न ?

केशव : क्या बड़ा वज़न है ? ले उतार, मैं इस तरफ थामे हूँ।

अचल : तुम रहने दो केशव ! मैं नौकर को बुलाता हूँ। (**पुकार कर**) अरे मंगल !

[नेपथ्य से मंगल का स्वर, 'आया सरकार !']

केशव : (**ज़ोर से**) नहीं, आने की ज़रूरत नहीं है। (**धीरे से**) मैं उतरवा देता हूँ।

दुलीचन्द : अब अगर यहाँ केशव न होता तो मैं उतरवाता ? जाँगर नहीं चलता तो बोझा ढोता क्यों है ? लेकिन लालच तो खाए जाता है, समझा न ?

केशव : (**बोझेवाले से**) अच्छा, ले उतार। मैं इस तरफ से थामे हूँ।

[बोझे वाला 'ऊँह' कहते हुए गहरी साँस लेकर सन्दूक उतारता है।]

बोझेवाला : हाय राम ! मूँड़ौ टूट गवा !

दुलीचन्द : दवा के पैसे भी ले ले मुझसे। समझा न ?

अचल : बहुत भारी है क्या ?

बोझेवाला : जानै एहिमा कौन ईंट-पाथर भरा वा।

दुलीचन्द : अबे, चार तमाचे मारूँगा खींच के ! सिर फिर जाएगा। मैं इसमें ईंट-पत्थर भरूँगा ? गधे कहीं के ! पुराने कपड़े हैं। कीड़ों से बचाने के लिए इसी सन्दूक में डाल दिए। तू कपड़ों को ईंट-पत्थर कहता है ?

बोझेवाला : सोना-चाँदी होय, हजूर यहि माँ ! हमका एहिसे का ? हमका तो हमार मजूरी चाही।

दुलीचन्द : तो मज़दूरी माँग। सोना-चाँदी या पत्थर की बात क्या कहता है ! होगा तेरे दिमाग में।

अचल : चाचा जी ! इसे मज़दूरी दे दीजिए।

दुलीचन्द : तुम कहते हो, अचल ! तो मैं दे देता हूँ। समझा न ? नहीं तो इसकी ज़बानदराज़ी पर एक पैसा न देता। ले, यह चवन्नी।

बोझेवाला : (**चवन्नी लेकर आँखें फाड़कर**) चवन्नी ? ई का है हजूर, ! पहिले तो कहिन कि उठाए लै चलो। तुम्हार मेहनत समझ लेयँगे। अब हजूर, चवन्नी दिखावत हैं। धइलें आपन पास ई चवन्नी।

दुलीचन्द : ज़रा तमीज़ से बात कर, समझा न ? इस कदर मार मारूँगा, समझा न ?

बोझेवाला : काहे मार मारेंगे ? कौनो जुरम किहिन है का ? अबे-तबे किहे जात हैं। हम तो भला मनई समझ के हजूर-हजूर कहित हैं मुदा ई···

केशव : ए, बहस मत करो। ये बहुत बड़े आदमी हैं, जानता नहीं ? सेठ दुलीचन्द का नाम नहीं सुना क्या ? तेरे ऐसे हज़ार नौकर हैं इनके पास !

अचल : (**बोझा ढोने वाले से**) खैर, यह बताओ, तुम कितना चाहते हो आखिर···

बोझेवाला : हज़ूर ! हम बारा आना कहिन औ ई दुइ आना। हम आपन जाए लागे तो ई हज़ूर चार आना बढ़ाइन। हम दस आना कहिके जाय लागे तो ई कहिन कि तुम्हार मजरी समझ लेयँगे और वाजब दे देयँगे।

केशव : अच्छा, आठ आने ले लो।

दुलीचन्द : (**बीच ही में**) नहीं, इसको चार आने से एक पैसा बेशी नहीं मिलेगा। समझा न ?

बोझेवाला : हज़ूर ! कुछ न देयँ।

अचल : अच्छा, ये छः आने और लो। (**पैसा देता है**) जाओ !
देखो, आयन्दा ज़बान न लड़ाया करो।

बोझेवाला : हज़ूर, सीधे बात करें तो हम ऐसने खिजमत कइ सकत हैं। मुदा अबे-तबे···

दुलीचन्द (**उठकर**) अबे, मारता हूँ चार तमाचे।

केशव : अच्छा, जाओ जी। चार की गिनती चाचा जी को बहुत पसन्द है।

बोझेवाला : हज़ूर ! गरीब हैं मुला आदमी हैं, हज़ूर ! (**प्रस्थान**)

दुलीचन्द : (**व्यंग्य से**) आदमी हैं, जानवर से बदतर। समझा न ?

अचल : चाचा जी ! आप थक गए हैं। ज़रा आराम कीजिए। (**ज़ोर से**) अरे मंगल ! चाचा जी के लिए पानी लाना।

[नेपथ्य में मंगल का स्वर—'अच्छा, सरकार !']

केशव : पानी क्या शरबत मँगवाओ, चाचा जी बहुत थक गए हैं।

दुलीचन्द : (**व्यंग्य से**) क्यों ! क्या आपको भी शरबत पीना है ? जनाब ! शरबत में पैसे खर्च होते हैं, समझा न ? जब पानी से काम चल सकता है, तब शरबत की ज़रूरत ? तुम अपने बाप का पैसा यों ही बरबाद करोगे, मैं जानता हूँ। समझा न ?

केशव : चाचा जी ! आपके आशीर्वाद से शरबत ही पीता हूँ। पानी की जगह पानी और शरबत की जगह शरबत। बाबू जी को खुशी होती है, जब मैं पैसे का अच्छा उपयोग करता हूँ।

दुलीचन्द : वाह रे, अच्छा उपयोग ! एक दिन शराब पियोगे और कहोगे कि पैसे का मैं अच्छा उपयोग करता हूँ। समझा न ? साँप टेढ़ा चले और कहे कि मेरी चाल सबसे अच्छी है, तो अजगर ही तारीफ करे, आदमी तो तारीफ करने से रहा।

अचल : चाचा जी ! केशव की बातें तो कालेज की डिबेटिंग सोसायटी के लिए हैं। आप उन पर और लोगों की तरह विचार न करें।

दुलीचन्द : तो मेरा यह घर 'डुबोटिंग सोसैटी' समझता है, समझा न ?

[मंगल का पानी लेकर प्रवेश]

केशव : चाचा जी ! पानी पी लीजिए। आपका गला सूख रहा है। (**मंगल से**) सुराही का है न ?

दुलीचन्द : जाड़े में सुराही का ? केशव ! तेरा दिमाग तो नहीं फिर गया ? बूढ़ों से हँसी करता है ? (**पानी पीता है।**)

[मंगल का गिलास लेकर प्रस्थान]

केशव : चाचा जी ! मैं आपको बूढ़ा हरगिज़ नहीं समझता। जो आपको बूढ़ा समझे, वह खुद बूढ़ा।

दुलीचन्द : तो फिर मुझसे हँसी क्यों करता है ?

केशव : चाचा जी ! मैं खुश रहना चाहता हूँ, और दूसरों को खुश देखना चाहता हूँ। मैं ज़िन्दगी को खेल समझता हूँ, कसरत नहीं।

दुलीचन्द : तो मैं कसरत समझता हूँ। सुना अचल ! मैं कसरत समझता हूँ। समझा न ? देखना, इस खेल में कहीं हाथ-पैर न टूट जाएँ !

अचल : केशव दूसरे के हाथ-पैर तोड़ने की कोशिश में रहता है, चाचा जी ! अपने हाथ-पैर साफ बचा लेता है।

दुलीचन्द : हाथ-पैर भले ही बचा ले, इम्तहान में उसका सिर न टूटे तो कहना !

केशव : चाचा जी, फर्स्ट डिवीज़न का डंडा सिर के पास आते ही तिलक की लकीर बन जाता है, मैं क्या करूँ ! अच्छा चाचा जी ! अब आज्ञा दीजिए। (**अचल से**) अचल ! अब मैं जा रहा हूँ।

अचल : थोड़ी देर और बैठो न, केशव !

दुलीचन्द : उसे ज़िन्दगी का और खेल खेलना है, जाने दो ! (**केशव से**) केशव ! फेल-भर मत होना, समझा न ? बेचारे बाप का पैसा बरबाद जाएगा। तुम्हारा वक्त तो यों ही जाता है, पैसा न जाना चाहिए।

केशव : चाचा जी ! वक्त नहीं आता, पैसा तो फिर भी आ जाता है। अच्छा नमस्ते (**अचल से**) अचल ! नमस्ते ! (**प्रस्थान**)

अचल : नमस्ते !

दुलीचन्द : अचल ! तुम जानते हो कि केशव को मैं बिल्कुल पसन्द नहीं करता, फिर भी तुम उसे घर आने देते हो ?

अचल : चाचाजी ! केशव अच्छा लड़का है। मेरा मित्र है। हँसना उसका स्वभाव है। मुझे तो वह बहुत पसन्द है।

दुलीचन्द : लेकिन मुझे यह पसन्द नहीं कि इसकी संगति में तुम फिजूलखर्च बन जाओ। शरबत मँगवाता है ! खुद ही न पीना चाहता था ? उसका क्या जाता है,

खर्च तो मेरा होता है !

अचल : मैं समझता हूँ, चाचा जी! कि खर्च तो गंगा जी का प्रवाह है। जल तो बहता ही है, इसलिए खर्च होना भी जरूरी है। हाँ, बरसाती नदी की तरह खर्च नहीं होना चाहिए। (**कोट से एक-एक काजू निकालकर खाता है।**)

दुलीचन्द : देखो, मुझसे बहस न किया करो, अचल ! तुम तस्वीर बनाते हो, तो समझते हो कि मेरे स्वभाव को भी तुम अपने जैसा बना लोगे ?

अचल : सो मैं नहीं कहता, चाचा जी ! मैं तो अपने मन की बातें सच्चाई के साथ आपके सामने रख रहा हूँ।

दुलीचन्द : लेकिन इस सच्चाई के साथ तुम्हें मेरा भी ख्याल रखना चाहिए ! समझा न ? और तुम रख सकते हो, यह मैं जानता हूँ। तभी तो मैंने भाई रामस्वरूप जी से कह दिया था कि अचल को मेरे पास भेज दो। घर में कोई लड़का नहीं है, तो अचल आके मेरे घर में खुश रहे। मेरी धन-दौलत को सँभाले ! समझा न ?··· यह तुम कुछ खा रहे हो ! क्या है ?

अचल : कुछ नहीं, कुछ काजू जेब में पड़े हुए थे।

दुलीचन्द : काजू ? अरे जब मूँगफली से काम चल सकता है तो काजू की क्या ज़रूरत ? तुम भी केशव की तरह लाट साहब बनोगे ?

अचल : नहीं, मैं तो आपका सेवक हूँ, चाचा जी !

दुलीचन्द : सो तो मैं मानता हूँ, अचल ! और कैसे न मानूँगा ? अपना ही घर समझ के तो तुमने इस घर को सजाया है। समझा न ? कमरे में एक से एक अच्छी तस्वीर। और कहीं लेने जाओ तो सौ-सौ रुपये में एक तस्वीर मिलेगी। तुममें तो ये सिफत है कि चार पैसे के खर्च से चार रुपये का माल तैयार करते हो ! हाँ ! (**खुशामदी हँसी**)

अचल : यह आपका आशीर्वाद है, चाचा जी।

दुलीचन्द : आशीर्वाद तो हुई है, तुम तो अभी और अच्छी-अच्छी तस्वीरें बनाओगे, समझा न ? (**स्मरण करते हुए**) हाँ, जो तुम एक नई तस्वीर बना रहे थे, वो बन गई ?

अचल : अभी नहीं बनी, चाचा जी !आज दिन-भर एक-एक दुकान में खोजा, मगर ब्रश नहीं मिला।

दुलीचन्द : अरे, अखबार में तो रोज़ छपता है कि ये बुरस ठीक है, वह ठीक है।

अचल : (हँसकर) चाचाजी ! वह तो दाँतों का ब्रश है। तस्वीर के लिए दूसरा ब्रश लगता है।

दुलीचन्द : अरे, यह मैं क्या जानूँ ! मैंने कभी कोई तस्वीर थोड़े बनाई है। और अब बुढ़ापे में बनानी भी नहीं है। समझा न ? अच्छा अब जाओ तुम···जाओ, आराम करो।

अचल : मैं क्या आराम करूँगा। हाँ, आप आराम कीजिए, आज आप बहुत थक गए हैं।

दुलीचन्द : अरे, मैं तो रोज़ ही थकता हूँ, अचल ! कोई नई बात है ? तुम ज़रूर आज बुरस खरीदने के चक्कर में थक गए होगे। मेरा तो यह रोज़ का काम है ! आराम करने से कहीं काम होता है ? अगर मैं आराम करता तो आज सेठ दुलीचन्द की यह साख न होती। **(ज़ोर देकर)** हाँ ! समझा न ? सेठ दुलीचन्द का ये नाम न होता ! लाखों का माल एक मिनट में ले सकता हूँ। समझा न ? **(गर्व-मुद्रा)**

अचल : यह तो सभी जानते हैं, चाचा जी ! अच्छा, यह सन्दूक यहीं रहेगा ?

दुलीचन्द : **(लापरवाही से)** रखा लेंगे अन्दर। पुराने फटे कपड़े हैं। ऐसी क्या फिकर। कीड़े लग जाते, गरम कपड़े हैं न ? एक-आध दुशाला भी है। आजकल गरम कपड़े की कीमत ! शिव-शिव ! अरे पहले जितने में एक अच्छी गाय मिलती थी, गाय न ? उतने रुपयों में उसकी पूँछ बराबर कपड़ा ! चार अंगुल ! हाय रे, क्या ज़माना आ गया ! अब कुछ दिनों में गरम कपड़ा किराए पर मिलेगा, किराए पर !

अचल : सच है, चाचा जी ! बुरा ज़माना आ गया है !

दुलीचन्द : हाँ, तो पहले सोचा कि दर्जी से कह दूँगा कि उसमें से कुछ अच्छे कपड़े निकालकर अचल के काम के लायक चीज़ें बना दो, समझा न ? और यह भी सोचा कि आजकल जाड़े के दिन हैं, गरीबों को दे दूँगा। ऐं ! ज़िन्दगी में कुछ दान-पुण्य भी करना चाहिए !

अचल : बहुत अच्छा सोचा, चाचा जी आपने। गरीबों को ही दे दीजिए, अभी मेरे पास कपड़े हैं।

दुलीचन्द : खैर, जैसा तुम कहोगे, वैसा ही होगा ! लेकिन भाई रामस्वरूप जी बुरा न मानें, कि बेटे को इतने दिनों घर रखा और एक कपड़ा भी न बनवाया। ऐं ! एक कपड़ा भी न बनवाया ! समझा न ?

अचल : वे इन बातों को नहीं सोचते, चाचा जी ! और मैं भी तो घर ही का लड़का हूँ। जैसे उनका लड़का, वैसे आपका !

दुलीचन्द : तुम बहुत अच्छे बेटे हो, अचल ! समझा न ? बस इतनी बात है कि उस बेवकूफ केशव को तुम बुलाते हो। मुझे अच्छा नहीं लगता ! समझा न ? खैर ! बुला लो उसे, लेकिन जब मैं बाहर रहूँ। अच्छा, अब तुम जाओ। जाओ, अपनी तस्वीर बनाओ।

अचल : अच्छी बात है। मंगल को भेज दूँ ?

दुलीचन्द : **(सोचते हुए)** मंगल को ? ऐं, ऐं, अच्छा। नहीं···नहीं, मैं बुला लूँगा, बुला लूँगा मैं। समझा न ? तुम जाओ !

अचल : बहुत अच्छा ! **(प्रस्थान)**

[अचल के जाने के बाद देर तक दुलीचन्द 'केशव मुरारी', 'केशव मुरारी' गुन-गुनाता है। फिर दरवाजे तक जाकर देखता है। कहता है—'कोई नहीं ! गया ! सीधा लड़का है। समझा न ? अब ज़रा देख लूँ।'

शीघ्रता से उठता है और सन्दूक खोलता है। ऊपर का हरा दुशाला निकालने के बाद नोटों के बण्डल निकालता है। उन्हें गिनता है। एक बंडल हाथ में लेकर—'एक हज़ार···दो हज़ार, चार हज़ार, पाँच हज़ार सौ और···और···यह पाँच सौ, पाँच हज़ार। कुल पाँच हज़ार न? ऐं···चार हज़ार पाँच सौ···और थे···पाँच सौ, हाँ ठीक···ठीक···पाँच हज़ार···कमबख्त इनकम टैक्स वालों की वजह से बैंक में जमा भी नहीं कर सकता। पाँच हज़ार···और कुछ तो नहीं है? हाँ, सन्दूक में लच्छमी जी की रक्षा के लिए नर्मदेश्वर महादेव की सिला-मूर्तियाँ···बड़ी···बड़ी···'

इतने में किसी के आने का खटका होता है। 'ऐं···ऐं···' कहता हुआ शीघ्रता से नोट समेटने की कोशिश करता है। शीघ्रता से बोल उठता है—'ऐं, ऐं, ज़रा वहीं रहना, वहीं रहना···मैं···मैं कपड़े बदल रहा हूँ···ज़रा कपड़े बदल रहा हूँ।'

शीघ्रता में उसी हरे दुशाले में नोट समेटकर तह में अन्दर तक सरकाकर सन्दूक में बन्द करता है। फिर ताला बन्द कर कुर्सी पर बैठता है।]

दुलीचन्द : (**संतोष की साँस लेकर**) अच्छा! समझा न? कौन अचल? अन्दर आ जाओ, अचल! अब मैं कपड़े बदल चुका! बदल चुका!

[धीरे-धीरे मंगल का प्रवेश]

दुलीचन्द : ऐं मंगल! तुम हो। (**बनावटी हँसी हँसते हुए**) हँ, हँ, हँ! मैं ज़रा कपड़े बदल रहा था। शाम को रास्ते में बड़ी धूल थी, समझा न? कपड़े धूल से भर गए थे···हाँ···क्या बात है?

मंगल : सरकार! हाथ-मुँह धोने के लिए पानी गरम हो गया है।

दुलीचन्द : अच्छा···अच्छा···तुम बहुत अच्छे आदमी हो! बहुत अच्छे···और···हाँ···अचल कहाँ है? (**मंगल पैर दबाने बैठ जाता है।**)

मंगल : सरकार! यहाँ से उठकर तो वो भीतर कमरे में चले गए हैं। और अपनी तस्वीर बना रहे हैं। सरकार! अचल बाबू बहुत सीधे आदमी हैं। हाय, हाय, जैसे बिल्कुल साधू-संन्यासी! आज के जमाने के लड़कों की तरह वो सिगरेट भी नहीं पीते। कपड़े भी आपकी तरह सीधे-सादे पहनते हैं। आपकी तरह पैसे भी ज्यादा खर्च नहीं···

दुलीचन्द : (**भौंहें सिकोड़कर**) हैं···हैं···क्या कहता है कि···

मंगल : (**सँभलकर**) नहीं, नहीं, सरकार! मतलब जे है, सरकार! कि जैसे जरूरी कामों में आप पैसा खर्च करते हैं न, वैसे वो भी जरूरी कामों में ही पैसा खर्च करते हैं। (**खुशामद के स्वर में**) है न सरकार! बिल्कुल आपकी तरह सन्त-महात्मा हैं, सरकार!

दुलीचन्द : ठीक है, ठीक है! इस शहर में सेठ दुलीचन्द इस बात के लिए मशहूर हैं, समझा न? कि पैसा किस तरह खर्च करना चाहिए।

मंगल : सो तो ठीक है···सरकार; मुदा सरकार! अचल बाबू में एक बात है कि दीन-

दुखियों को देख के, उनका दिल गंगाजल की तरह हो जाता है। वाह ! क्या कहना है, सरकार ! किसी का दुःख-दर्द वो देख नहीं सकते।

दुलीचन्द : (**अन्यमनस्कता से**) हाँ, ठीक है। दीन-दुखियों की मदद करनी चाहिए ! अच्छा, तो मैं हाथ-मुँह धो लूँ।

मंगल : हाँ, सरकार ! पानी गरम है। अचल बाबू ने पहले ही हुक्म करा था कि सरकार आ गए हैं। उनके हाथ-मुँह धोने के लिए पानी गरम हुइ जाय।

दुलीचन्द : हाँ···अचल मेरा बहुत ध्यान रखता है ! बहुत अच्छा लड़का है ! समझा न ? मगर तस्वीरें बनाता है, अगर रोज़गार करता तो कितना अच्छा होता ! समझा न ? खैर, सिखला दूँगा, धीरे-धीरे सब सीख जाएगा ! मेरा कहना बहुत मानता है, समझा न ? अच्छा ! ···अच्छा ! ! तुम जाओ, मैं अभी आता हूँ।

[मंगल जाता है।]

दुलीचन्द : (**पुकारकर**) देखो···सुनो ! ··· (**मंगल लौटकर आता है।**)

मंगल : हुकम, सरकार !

दुलीचन्द : देखो···तुम जा रहे···अच्छा जाओ, जाओ···हाँ···अपने अचल बाबू को मेरे पास भेजने जाना···समझा न ?

मंगल : बहुत अच्छा सरकार ! (**प्रस्थान**)

दुलीचन्द : (**सोचते हुए**) मंगल कहता है कि दीन-दुखियों को देख के···समझा न ? अचल का दिल गंगाजल की तरह हो जाता है। जैसे मेरा दिल कुछ नहीं होता ! अरे, मेरा दिल तो तिरबेनी की तरह हो जाता है, तिरबेनी की तरह···मुझे कोई खुश-भर कर ले, फिर तिरबेनी नहाय ! खूब नहाय ! समझा न ? अचल मुझसे भी आगे बढ़ जाए ? नहीं···नहीं बढ़ सकता। उसी से पूछूँगा···आता होगा··· (**रुककर**) ऐं···उसके आने के पहले देख लूँ···सन्दूक का ताला ठीक तरह से बन्द है ?

[उठकर सन्दूक का ताला देखता है। खींचकर जोर लगाता है।]

हाँ, ठीक है···बिल्कुल ठीक है।

[अचल का प्रवेश]

अचल : चाचा जी ! आपने मुझे बुलाया है ?

दुलीचन्द : (**संदूक के पास से जल्दी उठकर**) हँ, हँ, अचल ! आ गए तुम ? यों ही संदूक देख रहा था, पुराने गरम कपड़े हैं, ठीक है···ठीक है, समझा न ? तुम्हारे काम आ सकते हैं ! नीचे के एक-आध कपड़े को कीड़ों ने खाया है, बाकी सब ठीक हैं। हँ, हँ, हँ, दुशाला भी ठीक है ! तुम्हें पसन्द आए तो तुम्हीं काम में लाना···!

अचल : आपकी जैसी आज्ञा होगी, वैसा ही होगा, चाचा जी !

दुलीचन्द : तुम बहुत अच्छे लड़के हो, अचल ! मंगल भी तुम्हारी बड़ी तारीफ कर रहा था। अभी आया था। पहले मैं समझा कि तुम आए हो···हँ, हँ···तुम ! समझा न ? बाद में निकला मंगल मनहूस। पर तुम्हारी बड़ी तारीफ कर रहा था। कहता

था, तुम दीन-दुखियों का दरद नहीं देख सकते···ऐं···नहीं देख सकते···?

अचल : (**लज्जा के स्वरों में**) चाचा जी ! वह तो यों ही बकता है। कभी इसकी तारीफ, कभी उसकी तारीफ। हाँ, तो किसलिए आपने मुझे याद किया ? क्या सन्दूक की सफाई करनी है ?

दुलीचन्द : नहीं, नहीं, बेटा ! इतने छोटे काम के लिए तुम्हें तकलीफ दूँगा ? नहीं ! हरगिज़ नहीं ? और सफाई भी क्या ? पुराने कपड़े हैं। मैं देख ही चुका। समझा न ? एक-आध अँगरखा, एक-आध दुशाला। बस, यही। कोई नुमायशी चीजें थोड़े ही हैं। समझा न ? पुराने घर में पड़ी थीं···इधर उठवा ले आया। पुराने सड़े कपड़े ! तुम्हारी तस्वीर की तरह नये थोड़े ही हैं ? हँ···हँ, तुम्हारी तस्वीर बन गई ?

अचल : अभी पूरी नहीं हुई, चाचा जी !

दुलीचन्द : किसकी तस्वीर है ? लच्छमी जी की होगी।

अचल : नहीं, चाचा जी, लक्ष्मी जी की तस्वीरें बहुत बन चुकी हैं। और अब तो हर काले बाज़ार में उनके मन्दिर पर मन्दिर बन रहे हैं। जो तस्वीर मैं बनाना चाहता हूँ, वह दूसरी तरह की है।

दुलीचन्द : किस तरह की ? ज़रा सुनूँ तो।

अचल : वह है नये किस्म की। उसका नाम होगा 'पृथ्वी का स्वर्ग' !

दुलीचन्द : (**अट्टहास करके**) पृथ्वी···ई का स्वर्ग ! ह, ह, ह, ह, ह, पृथ्वी का स्वर्ग ? (**हँसता है**) अरे, पृथ्वी में स्वर्ग कहाँ ! समझा न ? पृथ्वी में स्वर्ग कैसे आ सकता है ? गरीब लोगों की नीयत खराब हो गई है। अब तुम्हीं देखो···वो बोझा ढोने वाला ! किस तरह आँखें निकाल के बातें करता था ! जैसे खा जाएगा ! समझा न ? जैसे हमें खा जाएगा ! मैं चार आने दे रहा था, एक बक्स उठाने के लिए ! क्या था ? पिछले ज़माने में यह काम मुफ्त में होता था, बहुत हुआ तो दो पैसे तमाखू पीने के लिए दे दिए···बस···समझा न ? और इस ज़माने में चार आने दे रहा था···चार आने ! फिर भी वो आँखें फाड़कर खाने को दौड़ता था ! कहता था (**विकृत स्वर से**) 'हमका त हमार मजूरी चाही !' ऐसी नीयत खराब है तो (**साँस लेकर**)ओफ-ओह ! पृथ्वी में स्वर्ग होगा ? अरे स्वर्ग तो स्वर्ग है, इस दुनिया पर स्वर्ग होने लगे तो दुनिया काहे की ?···ऐं···फिर दुनिया काहे की ?

(**साँस छोड़कर**) छोड़ो···छोड़ो इन बातों को, इनमें क्या धरा है ? समझा न ? दुनिया अपने रास्ते चलेगी और स्वर्ग अपने रास्ते ! दोनों अलग···बिल्कुल अलग···तो कुछ बना ?

अचल : अभी तक तो नहीं बन सका है, चाचा जी ! लेकिन बना के रहूँगा।

दुलीचन्द : अरे क्या बनाओगे, बेटा ! सीधे-सादे हो—भोले-भोले हो ! समझा न ? जाने क्या-क्या सोच लेते हो ! लेकिन खैर···बनाओ। बच्चा खिलौने से खेलता है, तुम तस्वीरों से खेलो ! खेलो···कुछ आना-जाना थोड़े ही है ! समझा न ?

अचल : तो फिर मैं जाऊँ ?

दुलीचन्द : अच्छा, बेटा ! जाओ । ऐं ? नहीं, नहीं, रुको ! बात ये है कि···कि ये संदूक यहाँ पड़ी है। समझा न ? यों इस सन्दूक में कुछ है नहीं; यही एक-आध दुशाला ···एक-आन अँगरखा। हाँ, बाप-दादों के ज़माने से पूजा की दो बड़ी-बड़ी नर्मदेश्वर महादेव की मूर्तियाँ—नरवदा जी के पत्थर की मूर्तियाँ हैं । इसी सन्दूक में हैं। लेकिन सन्दूक तो सन्दूक है । रास्ते का मकान ! आते-जाते किसी की नजर पड़ जाए, समझा न ? चुपके से खिसका ले। अगर इसे अन्दर ले जाऊँ तो फिर एक मज़दूर बुलाऊँ ! चार आने के दस आने माँगे । समझा न ?

अचल : तो मैं अन्दर कर दूँ इसे ? मंगल को भी बुला लूँ !

दुलीचन्द : सो तो होइ सकता है, समझा न ? पर इसे कहाँ रखना है, यह भी तो सोचना है ।

अचल : अरे, पुराने कपड़ों की सन्दूक है, कहीं भी रख दी जाएगी !

दुलीचन्द : अरे ! तुम तो सीधे आदमी हो ! समझते नहीं, भाई ! अरे भाई ! सन्दूक तो सन्दूक है। लोग शक की निगाह से यों ही देखते हैं। सेठ दुलीचन्द की संदूक ! जाने इसमें कितने हज़ार का माल होगा ! समझा न ? फिर वो बोझेवाला भी देख गया है, सिर पर उठा के लाया है। दस आदमियों से कहेगा कि सेठ दुलीचन्द की सन्दूक बहुत भारी है । समझा न ? आज के ज़माने में लोग यों ही ताक लगाए बैठे रहते हैं। समझा न ? तो इस सन्दूक को देखकर ठीक जगह रखनी पड़ेगी, नहीं तो पुराने घर में ही क्या बुरी थी ! समझा न ?

अचल : तो फिर कहाँ रखी जाए ?

दुलीचन्द : अभी···अभी तो यहीं रहने दो। मैं हाथ-मुँह धो लूँ, समझा न ? ज़रा लच्छमी जी को फूल चढ़ा दूँ। तब तक तुम यहीं बैठो ! न हो तो यहीं अपनी तस्वीर बनाओ ! ज़रा निश्चिन्त हो जाऊँ, समझा न ? फिर देख के रखा देंगे सन्दूक ।

अचल : बहुत अच्छा, तो मैं अपनी तस्वीर का सामान यहीं ले आऊँ ?

दुलीचन्द : वाह, वाह ! तुम बहुत होशियार बेटे हो ! यहीं ले आओ ! समझा न ?

अचल : अच्छी बात है। मैं आया। (**अन्दर जाता है।**)

दुलीचन्द : ठीक इन्तज़ाम हो गया, समझा न ? (**अन्दर से आवाज देता है**) अरे, मंगल ! ज़रा पीढ़ा रखना। मैं आ रहा हूँ, समझा न ? बाल्टी में पानी गरम रहे ! बस, अभी आया ! (**कुछ धीरे अपने-आप**) बहुत धूल में भर गया हूँ ! आज की म्युनिसिपालिटी भी क्या है, धूल···धूल···धूल···छिड़काव तो कभी होता नहीं, गोया पानी मोल बिकता है, मोल !···समझा न ? अरे हाँ, (**पुकारकर**) और तौलिया भी रख देना···मंगल ! (**अपने-आप**) अँगरखे में भी धूल ! (**झाड़ता है**) सोने की धूल होती तो क्या बात थी ।

(**अचल का प्रवेश**) तुम आ गए अचल ! बहुत अच्छा ! समझा न ? तस्वीर का सामान भी ले आए ? अच्छा है। अब यहीं बैठ के तस्वीर बनाओ। ऐसी तस्वीर बनाओ कि दुनिया के लोग कहें, समझा न ? कि सेठ दुलीचन्द का भतीजा तस्वीर खींचने में बिल्कुल राममूर्ति है···हाँ···समझा न ? मैं उठता हूँ। ये अँगरखा

यहीं रख दूँ···ऐं···हाँ···धूल बहुत भरी है···(**अचल से**) अचल ! ये अँगरखा यहीं रख देता हूँ। (**अँगरखा उतारता है**) अब चलता हूँ। (**पुकारकर**) मंगल ! मैं आ रहा हूँ। (**अपने-आप बड़बड़ाते हुए**)···बुढ़ापे का तन भी क्या है ! पैर रखता कहीं हूँ···पड़ता कहीं है ! (**अचल से**) बेटा ! तुम बैठना। मैं अभी दस-पन्द्रह मिनट में आता हूँ, अभी आता हूँ ! समझा न ? जय हरी···जय हरी ! (**प्रस्थान। भीतर से ही**) अरे अचल ! वहीं बैठना ! समझा न ? मैं अभी आता हूँ। चल रे मंगल ! लोटे में पानी भर दे···जय हरी···जय हरी···!

अचल : (**आप ही आप**) वाह, चाचा जी ! बुढ़ापे में हाथ-पैर ढीले हो जाते हैं तो ज़बान मज़बूत हो जाती है।···हाथ-पैर कम चलते हैं तो ज़बान ज्यादा···(**सोचता है**) क्या चित्र बनाऊँ ? बूढ़े आदमियों के हाथ-पैर की तरह मेरा ब्रश भी नहीं चलता ! (**अपने-आप हँसता है**) चित्र पूरा करने की कोशिश करूँ ! (**अपने चित्र को देखता है**) यह पृथ्वी है, इसमें जो आग की लपट···यह किस तरफ से उठे ? इस तरफ से···? (**सोचता है**) नहीं···नहीं···(**फिर सोचता है**) यह लपट···यह लपट···!

[नेपथ्य के पास किसी स्त्री की सिसकियों की आवाज़। उस ओर ध्यान देते हुए] एक लपट तो इस ओर से आ रही है ! खिड़की से देखूँ। (**खिड़की के पास जाकर देखता है**) स्त्री है ! बाल बिखरे···हाथ में बच्चा है···मरा···या···ज़िन्दा। (**जोर से पुकारता है**) अरे···सुनो···इधर आओ !

[स्त्री ने अचल को देख लिया है। अपने प्रति सहानुभूति प्रकट करने वाले को पाकर वह ज़ोर से चीख़ पड़ती है।]

अचल : (**अस्थिर होकर**) मंगल तो चाचा जी के हाथ-पैर धुला रहा होगा। अच्छा, मैं ही देखता हूँ (**खिड़की के पास फिर जाकर**) हाँ, ठीक है। इसी रास्ते···इसी रास्ते चली आओ। हाँ···हाँ···इसी रास्ते···आओ।

[भिखारिन सिसकियाँ लेते हुए आगे बढ़ती है।]

अचल : हाय रे, संसार ! तुझमें कौन-सा दुःख नहीं है। चारों ओर चीत्कार, चारों ओर हाहाकार···तुझमें स्वर्ग कैसे बन सकता है ? कैसे बन सकता है ? यह कवि की कोरी कल्पना है···कल्पना ही है।

[भिखारिन का सिसकियाँ लेते हुए प्रवेश]

अचल : हाँ, आओ···आओ···तुम कौन हो ? क्या बात है ? तुम रोती क्यों हो ? ऐं, तुम्हें क्या दुःख है ?

[भिखारिन कुछ नहीं बोलती। वह सिसकियाँ भरती रहती है।]

अचल : बोलो न, बहिन ! तुम्हें क्या दुःख है ? यह बच्चा तुम्हारा ज़िन्दा है ? ज़िन्दा है न ?

भिखारिन : (**सिसकते हुए**) ज़िन्दा है, पर मरने जा रहा है ? (**सिसकियाँ**) मेरा

लाल ! हाय ! मैं इसे ज़िन्दा नहीं रख सकती ! यह मर जाएगा। कल मैं इसका मुँह नहीं देख सकूँगी···नहीं देख सकूँगी। **(सिसकियाँ)**

अचल : इस तरह मत घबराओ, बहिन ! साफ-साफ बतलाओ। बात क्या है ? तुम्हारा बच्चा नहीं मरेगा···नहीं मरेगा।

भिखारिन : मैंने न जाने पूरब जनम में कौन-से पाप किए हैं कि अपने बच्चे के लिए डायन बन रही हूँ ! इसके बाप को तो खा लिया, अब इसे खाने जा रही हूँ। **(सिसकियाँ)**

अचल : ऐसी बात मत कहो, बहिन ! क्या तुम्हारा बच्चा बीमार है ?

भिखारिन : मैं मर जाऊँ तो यह अच्छा हो जाए। मेरे ही भाग ने आग लगा रक्खी है ! मेरा बच्चा सुबह तक हँसता रहा। दोपहर के बाद **(सिसकियाँ)** मैंने इसे दूध पिलाया ! वही इसे जहर हो गया ! **(भरे हुए गले से)** जहर हो गया ! इसका सिर तप रहा है !

अचल : तो, उसकी दवा करो। यह लो रुपया ! **(रुपया उसके पास फेंकता है)** यहाँ से पास ही एक अच्छे वैद्य रहते हैं, उनसे दवा ले लो ! तुम्हारा बच्चा ज़रूर अच्छा हो जाएगा।

भिखारिन : बाबू ! तुम देवता हो ! भगवान तुम्हारी जय करें। **(कुछ सोचकर)** मगर इसे मैं रात की ठंड से कैसे बचाऊँगी ! **(सिसकियाँ)** मेरे पास तो तन ढकने को छोड़ दूसरा कपड़ा नहीं है, बाबू ! और ठंड से यह कैसे बचेगा !

अचल : अच्छा, ठहरो बहिन ! मैं तुम्हें कपड़ा भी दूँगा। गरम कपड़ा, यह लो मेरा कोट ले जाओ··· **(कोट उतारता है, ठहरकर)** ऍं, इससे क्या काम चलेगा ! अच्छा ! तुम्हें एक दुशाला दूँगा। इसी सन्दूक में है। चाचा जी आज ही लाएँ हैं। इनमें से निकाल दूँगा ! **(सन्दूक के पास जाता है। रुककर)** ऍं··· ! ताला बन्द है ! **(भिखारिन से)** ठहरो बहिन ! चाचा जी मुँह-हाथ धो रहे हैं। उनके आते ही, अभी तुम्हें दुशाला देता हूँ। सन्दूक में एक दुशाला भी है, पर ताला बन्द है !

भिखारिन : मेरे भाग में ही ताला पड़ा है, बाबू ! तो सन्दूक में ताला क्यों न हो !

अचल : (सहसा) अरे ठहरो···ठहरो, बहिन ! चाचा जी का अँगरखा यहीं है। जेब में चाभी होगी। **(अँगरखे की जेब देखता है)** यह रही, अभी निकाल कर देता हूँ।

[शीघ्रता से सन्दूक खोलता है, ऊपर ही हरा दुशाला रखा है। उसकी तहें न खोलकर वैसे ही निकालकर उसे भिखारिन की तरफ उछाल देता है।]

भिखारिन : बाबू ! जुग-जुग जिएँ। बाबू का बच्चा जुग-जुग जिए !

अचल : यह सब कुछ नहीं, जाओ। इस दुशाले से बच्चे को ठीक तरह से ढक लो। इसे ठंड नहीं लगेगी !

भिखारिन : भगवान जनम-जनम आपको बड़ा आदमी बनाएँ ! आप लाख बरस जिएँ, बाबू। अब मेरा बच्चा बच जाएगा ! बाबू जुग-जुग जिएँ। मेरा बच्चा बच जाएगा ! **(प्रस्थान)**

अचल : (**दुहराकर**) बच्चा बच जाएगा ! ईश्वर करे, बच्चा बच जाए !

[नेपथ्य से दुलीचन्द की आवाज—]

अँगरखे में मेरी चाबी रह गई ! अचल ! समझा न ? मेरी चाबी रह गई।

[दुलीचन्द का प्रवेश]

दुलीचन्द : अँगरखे में मेरी चाबी रह गई ! समझा न ? मैं लच्छमी जी की पूजा करने जा रहा था कि··· (**खुली हुई सन्दूक पर उसकी नजर जाती है। सहसा घबड़ाकर**) अयँ ! यह क्या ? यह सन्दूक किसने···किसने···किसने खोली ? अरे··· (**अचल को झकझोर कर**) यह सन्दूक किसने खोल···डाली ?

अचल : मैं···मैंने···खोली, चाचा जी !

दुलीचन्द : अरे···तो···तो···मैं···एक मिनट को गया···और···और···तूने खोल डाली। (**झपटकर सन्दूक के पास जाता है और कपड़े तितर-बितर करते हुए**) अरे, इसका हरा···हरा···दुशाला कहाँ गया ! अरे, मेरा हरा दुशाला (**रोते हुए स्वर में**) मेरा हरा दुशाला···

अचल : हरा दुशाला ? वह मैंने एक भिखारिन को दे दिया !···

दुलीचन्द : (**रुदन के स्वर में**) भिखारिन को दे दिया ? कहाँ है वह भिखारिन ? (**दरवाजे की ओर झपटकर**) कहाँ है भिखारिन ? गायब हो गई ! (**खिड़की के पास दौड़ता है**) इस खिड़की से भी नहीं दीख रही है ? हाय ! बाप रे ! मैं लुट गया ! मैं लुट गया ! मेरा हरा दुशाला ! (**रोते हुए**) समझा न ? मेरा हरा दुशाला (**खिसकता है**) भिखारिन को···दे···दिया···क्या !

अचल : चाचा जी ! माफ कीजिए !

दुलीचन्द : तेरी माफी गई भाड़ में ! बुला उस भिखारिन को। हाय ! (**रोता है**)

अचल : मुझे क्या पता कि वह भिखारिन कहाँ गई और मैं जानता भी नहीं था कि वह हरा दुशाला आपको इतना प्यारा है। आप ही ने तो कहा था कि पुराने कपड़े हैं और तुम्हारे लिए···

दुलीचन्द : तेरे बाप के लिए, गधे···नालायक···बड़ा सीधा बनता है ! समझा न ? अरे देना था तो कोई दूसरा कपड़ा दे देता ! वही दिया, हरा दुशाला ! हाय ! दुनिया-भर मुझे लूटने के लिए जुटी है।

अचल : भिखारिन का बच्चा मर रहा था, चाचा जी !

दुलीचन्द : (**चीखकर**) अरे कल मरने को हो तो आज मर जाए ! और साथ-साथ तू भी मर जा ! (**रोते हुए**) हाय ! मेरा हरा दुशाला···

अचल : वह तो पुराना दुशाला था, कीड़ों से बचाने के लिए···

दुलीचन्द : (**रोते हुए**) कीड़ों से बचाने के लिए, लेकिन तुझ जैसे मकोड़े ने तो उसे खा लिया ! हाय रे ! मैं तो लुट गया ! (**रोता हुआ**) लुट गया। सन्दूक में रक्खे भारी-भरकम नर्मदेश्वर जी तक ने हमारी लच्छमी की रच्छ्या नहीं की ! कहाँ की भिखारिन आ गई !

अचल : तो मैं जाता हूँ, भिखारिन को खोजता हूँ।

दुलीचन्द : जा भाग जा और भिखारिन से छीन ले।

अचल : लेकिन दी हुई चीज़ मैं वापस नहीं ले सकता, चाचा जी !

दुलीचन्द : बड़ा बाप का बेटा कहीं का ! यहाँ मैं लुट गया और यह दी हुई चीज़ वापस नहीं ले सकता ! (**पुकार कर**) अरे मंगल ! अरे दौड़ ! अचल मुझे मारे डाल रहा है। हाय ! हाय ! मार डाला !

अचल : मैं खुद यहाँ से चला जाता हूँ। यह हरा दुशाला न हुआ, हजारों की दौलत हो गई !

दुलीचन्द : (**झुँझलाकर**) हाँ, हाँ, हो गई ! तू क्या जाने ! तूने उसे देखा नहीं ?

अचल : देखा क्यों नहीं ! वह तह किया हुआ ऊपर ही रखा था। वैसे ही उछालकर दे दिया भिखारिन को।

दुलीचन्द : (**व्यंग्य से रोने के स्वर में**) उछालकर दे दिया भिखारिन को ! यहाँ मेरी टोपी उछाल दी और कहता है···?

[मंगल का प्रवेश। दौड़ता हुआ आता है।]

दुलीचन्द : अबे, तू कहाँ मर गया था ! मैं···मैं···तुझे···

मंगल : सरकार ! पूजा के लिए अगरबत्ती लेने चला गया था।

दुलीचन्द : मशाल लेने नहीं चला गया ! लगा दे तू भी घर में आग ! हाय ! मैं लुट गया ! लुट गया···समझा न···!

मंगल : (**घबराकर**) लुट गया···क्या हो गया, सरकार ?

दुलीचन्द : उस भिखारिन को पकड़···जा···जल्दी !

मंगल : किस भिखारिन को सरकार !

दुलीचन्द : अबे, बाहर देख ! उस भिखारिन ने मुझे भिखारी बना दिया ! समझा न ? और पूछता है किस भिखारिन को !

मंगल : (**अचल से**) कौन भिखारिन, अचल बाबू ?

दुलीचन्द : अचल बाबू की नानी ! देख कोई भिखारिन है ? उसी के 'इसक' में इसने हरा दुशाला···

अचल (**तीव्रता से**) चाचा जी !

दुलीचन्द : मुझे भिखारी बना के अब मुझसे लड़ता है ! वह भिखारिन जाने कहाँ··· हाय···हाय···मैं लुट गया !

[भिखारिन का प्रवेश]

दुलीचन्द : (**चौंककर**) ये भिखारिन आ गई···आ गई !

भिखारिन : (**भरे हुए गले से**) यह मैं नहीं लूँगी, बाबू जी, नहीं लूँगी ! यह पाप है। इस दुशाले के भीतर ये नोट रक्खे हैं। मैं इन्हें नहीं लूँगी, बाबूजी।

[नोट के बण्डल जमीन पर डाल देती है। दुलीचन्द झपटकर नोट समेटने लगता है।]

दुलीचन्द : ये हैं मेरे रुपये···ये हैं मेरे नोट···ये हज़ार···दो हज़ार···पाँच सौ···चार हजार पाँच सौ···पाँच हज़ार···हाँ पूरे हैं···मेरे नोट पूरे हैं···समझा न !

भिखारिन : बच्चे को उढ़ाने के लिए दुशाला खोला तो ये नोट नीचे गिर पड़े। ये रुपये लेना पाप है, बाबू जी ! किसी पाप से इस बच्चे के बाप नहीं रहे, इन रुपयों से यह बच्चा भी न रहता ! ऐसा दान मैं नहीं चाहती, बाबूजी !

मंगल : तो तू लेके क्यों भागी इन रुपयों को ?

भिखारिन : दुशाले के अन्दर लिपटे थे···मैं क्या जानूँ कि इसमें रुपये हैं। दूध तो जहर नहीं हुआ, ये रुपये जरूर जहर हो जाते ! (**बच्चा रोने लगता है**) चुप रह बच्चे···चुप रह···अब तू अच्छा हो गया···पहले तो बेहोश पड़ा था···अब तू बच जाएगा (**अचल से**) बाबू ! यह दुशाला भी रख लीजिए···यह भी नहीं लूँगी।

अचल : दुशाला मैंने तुझे दे दिया, बहिन ! ···अब उसे नहीं लूँगा !

दुलीचन्द : ठीक है, ठीक है···अचल उसे नहीं लेगा···और···और मैं तुझे पाँच हज़ार लौटाने के लिए आठ आना पैसा भी दे सकता हूँ, अठन्नी, समझा न ?

[बोझेवाला आता है।]

बोझेवाला : हजूर, ई चवन्नी जो आप हमका दीन रहें—ई खोटी है।

दुलीचन्द : (**बोझेवाले को झिड़कता हुआ**) अबे भाग, शोर न कर। मैं यहाँ लुटा जा रहा था···इसके लिए चवन्नी खोटी है। यहाँ मैं बाल-बाल बच रहा हूँ, ये कहता है—(**मुँह बनाकर**) ई चवन्नी खोटी है ! भाग यहाँ से नहीं तो मारता हूँ चार तमाचे···

अचल : (**बोझेवाले से**) बोझेवाले ! तुम अभी ठहरो।

दुलीचन्द : (**भिखारिन से**) हाँ, तो रुपये लौटाने के बदले मैं तुम्हें अठन्नी यानी आठ आने देता हूँ ! समझा न ? आठ आने ! (**अठन्नी निकालता है।**)

भिखारिन : मुझे कुछ नहीं चाहिए, बाबूजी ! अपने बेटे को आँचल में ही छिपा लूँगी। मेरा फटा आँचल ही उसका दुशाला है।

[सहसा केशव का प्रवेश]

केशव : (**नेपथ्य से बोलता हुआ आता है**) अचल ! तुम्हारा ब्रश मिल गया ! मिल गया ! उससे तुम पृथ्वी का स्वर्ग खींच सकते हो। (**भिखारिन और अन्य तीन व्यक्तियों को देखकर**) अयँ, यह क्या ?

अचल : दृढ़ स्वर में) 'पृथ्वी का स्वर्ग' यही है केशव ! इस भिखारिन में, जो अपने आप रुपये देने चली आई ! यही 'पृथ्वी का स्वर्ग, है ! यही 'पृथ्वी का स्वर्ग' है जो कागज़ पर नहीं खिंच सकता। झूठ और पाप से घृणा···यही तो स्वर्ग है ! (**जोर से**) मैंने 'पृथ्वी का स्वर्ग' देख लिया। अब मैं इस घर से जाता हूँ ! चाचा जी, नमस्ते।···(**भिखारिन से**) चलो, बहिन ! (**केशव से**) चलो केशव···

[प्रस्थान। पीछे-पीछे भिखारिन और केशव भी जाते हैं।]

दुलीचन्द : अरे अचल ! सुन तो···ये पाँच हज़ार मिल गए···अब मैं तुमसे नाराज़ नहीं हूँ···समझा न ?

अचल : (**नेपथ्य से**) यही 'पृथ्वी का स्वर्ग' है, केशव ! यही 'पृथ्वी का स्वर्ग' है ! चाचा जी !

[परदा गिरता है।]

द्वितीय अंक

स्थान : दुलीचन्द का मकान

समय : संध्या पाँच बजे

[परदा उठने पर आप देखेंगे कि इस मकान का कमरा बेतरतीब है। मामूली-सा सामान इधर-उधर रखा है । सामने कमरे के बीचो-बीच एक तख्त है जिस पर एक मामूली-सी दरी बिछी हुई है । तख्त के बगल में एक आलमारी है जिसमें लाल जिल्द की कुछ बहियाँ रखी हुई हैं। आलमारी के ऊपर लक्ष्मी और गणेश की मूर्ति हैं। पीछे की दीवाल पर लक्ष्मी जी की तस्वीर लगी है, जिसके एक ओर लाल रंग में 'लाभ' लिखा हुआ है, दूसरी ओर 'शुभ' । कमरे में दाहिने-बायें दो दरवाज़े हैं । दाहिनी ओर का दरवाज़ा भीतरी है और बाईं ओर का बाहरी। बाहरी दरवाज़े के समीप एक बेंच रखी है जो आसामियों के बैठने के काम आती है ।

तख्त पर सेठ दुलीचन्द का मुनीम बिहारीलाल बैठा हुआ है । उसके सामने एक सन्दूक है, जिस पर एक बही खुली हुई है। वह ध्यान से बही देख रहा है; थोड़ी देर बाद कभी आगे के और कभी पीछे के पन्ने उलटता है। मुनीम पीली पगड़ी और अँगरखा-धोती पहने हुए हैं। माथे पर गोल बिन्दी, कानों में बाले । मूँछें झुकी हुई। कान पर कलम सधी हुई है और नाक पर चश्मा।

तख्त के नीचे मंगल नौकर बैठा हुआ है। घुटने तक धोती और शरीर पर बंडी । नंगे सर। उसके माथे पर चन्दन का टीका लगा हुआ है। वह बड़ी सावधानी से एक फटी हुई साड़ी सिल रहा है। कभी-कभी जम्हाई लेकर 'सीताराम', 'सीता-राम', 'शिव', 'शिव' कहकर फिर गहरी नजर से देखकर सिर टेढ़ा कर साड़ी सिलने लगता है। मुनीम भी दो-एक बार अपना चश्मा सँभाल 'गोपाल जी', 'जय श्री गोपाल जी' कहकर बही पर नजर गड़ा लेता है। कुछ क्षण बाद मुनीम अपना चश्मा उठाकर माथे पर रखते हुए मंगल से कहता है ।]

मुनीम : पछत्तर पैसे ! हाँ, पछत्तर पैसे के हिसाब में गड़बड़ी पड़े है, मंगल ! इन्हें हिसाब में कहाँ डाला जाए, जो है सो !

मंगल : **(पीड़ा से कराहकर)** हयँ ! **(नाक सिकोड़कर)** तुम्हारी 'जो है सो' ने ये सुई उँगली में चुभो दी जी !

मुनीम : ऐसी सुइयाँ तो मुझे रोज़ चुभें हैं, जो है सो। उसकी मैं परवाह करूँ तो सारा जिसम छिद जाए, जो है सो।

मंगल : अरे जी, तुम्हारी तो ऐसी चमड़ी है जी मुनीम जी ! कै सुई तौ सुई भाला भी मात खा जाए है जी !

मुनीम : अरे तौ एक भाला मात खा जाए। हियाँ तो पछत्तर भाले खिच रये हैं, जो है सो। पछत्तर पैसे का हिसाब तौ खूब निकाले है !

मंगल : कैसे जी, पछत्तर पैसे ?

मुनीम : अरे, सेठ जी ने, जो है सो, बोझा ढोने वाले को चवन्नी दीनी थी और एक भिकारन को अठन्नी दीनी दान में। सेठ जी ने हुकुम दीना कै इनको हिसाब में दरज करो, सो है सो।

मंगल : पै जी, मुनीम जी ! सेठ जी ने बोझा ढोने वाले को तो बक्स ढोने पै खोटी चवन्नी फेंकी थी जी और जी भिकारन को अठन्नी दी थी सो उसने नहीं ली। फिर जी पछत्तर पैसे तो सेठ जी के पास ही ठैरे जी।

मुनीम : इस्से का होय है जी ! सेठ जी कहवें थे कै हमने दोनों मदों में तो पैसे दीने, जो है सो ! अब लेने वाला नै लै इसमें हमारा कौन दोस ? हमने तौ दोनों मदों में पैसे निकाले ।

मंगल : हाँ जी, निकाले तौ मुनीम जी !

मुनीम : तो जब जो है सो, निकल गए तो निकल गए। मन से तो दान-दच्छिना हो गई, जो है सो ! और स्त्री गोपाल जी तो मन की बातें जाने हैं। वो घट-घट वासी ठैरे। दुनिया के ऊपरी लेन-देन से बिनका क्या वास्ता, जो है सो, यह तो माया है, माया।

मंगल : माया तो हई है, मुनीम जी ! पै जी ये माया सेठ जी को बुरी सतावती है जी। हज्जारों का व्यौपार करते हैं जी, पै किसी की मज्जाल कै एक पैसा हियाँ से हुआँ हो जाय। हिसाब-किताब पै बड़ी गहरी नज्जर रखते हैं जी !

मुनीम : सो तो बनी बात है, जो है सो। हिसाब-किताब की बात तो दूर, कपड़ों पै भी उनकी नज्जर चोखी समझो, जो है सो।

मंगल : अरे जी, अपने कपड़ों की बात तौ दूर है जी। ये सिठानी जी की पुरानी साड़ी **(साड़ी खोलकर दिखलाता है)** फट गई है पै जी, कैते हैं, सिले जाव···सिले जाव। और कपड़ा न देख लो जी। तार-तार हो रिया है। मगर कैते हैं···सिले जाव···सिले जाव। इसकी धारी से धारी मिलाओ और कपड़ा ऐसा है जी कै एक तरफ से खींचौ तौ दूसरी तरफ जी, अपना मों देख लो। अरे, मुनीम जी ! उसी सन्दूक से निकली है जी, जिसमें वो हरा दुसाला था। उसमें सेठ जी ने पाँच हज्जार के नोट दबा दिए थे जी। अचल भैया क्या जानें जी ! उन्होंने धोखे से वही हरा

दुसाला भिकारन को दे दिया जी । उसका बच्चा बीमार था, उसी पै उढ़ाने के लिए जी ।

मुनीम : हाँ, सेठ जी ने हमसे भी जे बात कही थी, जो है सो।

मंगल : पै गोपाल जी की म्हैंमा अपरम्पार है जी, मुनीम जी ! थोड़ी देर बाद वो भिकारन खुद रुपयां वापस कर गई, नईं तो आज के जमाने में हाथ में आया रुपया कौन छोड़ेगा ! उसी को अचल भैया 'पृथ्वी में सुरग' कहने लगे थे जी !

मुनीम : हाँ, सेठ जी कहते थे कै उसी मौके पै, जो है सो, उन्ने भिकारन को अठन्नी दीनी । अचल भैया को बुरा लगा । वो उसी के साथ चले गए, फिर तब से जो है सो, नहीं लौटे ।

मंगल : उनका मन इहाँ जमताई नईं था जी, मुनीम जी ! फिर सेठानी जी भी नईं रईं जी । उनके जे कपड़े रैं गए जी को सेठ जी हमसे सिलवाते हैं—जम्फर, साड़ी ।

मुनीम : (**देखकर**) भौत फटी है जे साड़ी !

मंगल : अरे, मुनीम जी, सेठानी जी के ब्याह के बखत की होगी । उसी भूत वाले कमरे से निकाल के दी है जी !

मुनीम : (**सिर हिलाते हुए**) अच्छा !···उसी···भूतवाले···कमरे···से !

मंगल : हाँ, ओई कमरे से । सेठ जी कैते थे कि जब से सेठानी जी का सुरगवास हुआ है, तब से वो उसी कमरे में भूत बनके रैती हैं जी । मुहल्ले वाले भी सेठानी जी के भूत से बौत डरते हैं जी । कोई उस तरफ झाँकता थोड़े है ! कभी-कभार सेठ जी जाते हैं उसी कमरे में और सेठानी जी के फटे-पुराने कपड़े ले आते हैं···हमसे सिलवाते हैं ।

मुनीम : सेठ जी को सेठानी जी से बड़ा परेम होयगा, जो है सो, तभी तो बिनके कपड़े निसानी के तौर पै बनाए रखते होएँगे, जो है सो ।

मंगल : जैसा परेम था वो तो हम जानते हैं जी । पुराने नौकर हैं । जब सेठानी जी सोने के गैनें माँगती थीं तो सेठ जी ताँबे पै सोने की कलई कराके देते थे जी ! (**सेठानी जी के चित्र की ओर हाथ जोड़ के**) सेठानी जी ! तुम धन्य हो ! तुमने बुरा नहीं माना । पै अब जी, भूत बनके क्यों बुरा मानती हो ।

मुनीम : (**बाहर की ओर देखकर**) अरे···विनती-चिरौरी, जो है सो, बन्द करो । सेठ जी आ रहे हैं···अच्छा जे बात तौ बता दो, जो है सो, कै पछत्तर रुपये···नहीं··· नहीं पछत्तर पैसे का हिसाब किधर डालूँ ? (**घबराहट की मुद्रा**)

मंगल : अरे, सब पैसे दान-खाते में डाल दो जी, मुनीम जी !

मुनीम : डाल तो दूँ पर कैसे डालूँ, जो है सो ? अभी दान-खाते पै इनकम टिकस वालों की मंजूरी तो नहीं आई । पछत्तर पैसे अगर रुजगार में दिखाएँगे तो टिकस में माफी नहीं मिलेगी, जो है सो । और ये तो तुम जानते ही हो कै···

[सेठ दुलीचन्द का प्रवेश । पीली घुमावदार पगड़ी, माथे पै चन्दन का तिलक । दोनों कानों में बाले । फैली हुई मूँछें । बन्द अँगरखा और धोती, पैर में पुराने जूते, हाथ में छड़ी । बढ़ते हुए आते हैं । उन्हें देखते ही मंगल साड़ी लेकर भीतर भाग

जाता है, मुनीम खड़ा हो जाता है।

दुलीचन्द : (**नेपथ्य की ओर देखकर**) चोर कहीं के, उचक्के कहीं के ! सोना-चाँदी दे दो, रुपये दे दो···और नहीं तो पैसे दे दो। सब कुछ लुटा के इनका घर भर दो ! गधे कहीं के···स्कूल के लिए पैसे दो, गौ-रच्छा के लिए पैसे दो, चुनाव के लिए पैसे दो···समझा न ? अब पूछो इन अक्ल के दुश्मनों से, क्या स्कूल के लौंडे सुधर जाएँगे ? हड़ताल करेंगे, घिराव करेंगे, इमारत जलाएँगे और गाएँगे वही फ़िल्म के गाने (**चिढ़ाते हुए, राग से**) 'हम···तुम···चोरी से···बँधे इक डोरी से।' इन लौंडों को ऐसे डोरी से बाँधो कि हाथ-पाँव न चल सकें···समझा न ? चोरी का नाम न लें। क्यों मुनीम जी ?

मुनीम : सही कहें हैं सेठ जी···जो है सो।

दुलीचन्द : और गौ-रच्छा के लिए पैसे माँगते हैं। समझा न ? अरे गौ-रच्छा करना है तो बाबा गोरखनाथ की सरन में जाओ। वो आप ही गऊ की रच्छा कर लेंगे। गऊ के लिए लोगों की ममता तो हम तब समझें जब तुम भी गऊ की तरह घास-भूसा खाने लगो। क्यों मुनीम जी ?

मुनीम : सच कहें हैं, सेठ जी।

दुलीचन्द : और लोग चुनाव के लिए पैसे माँगते हैं, समझा न ? नौजुवक संघ का चुनाव। और चुनाव का निसान लिए हैं मसाल ! कैते हैं कि हम पुराने रिवाजों से आग लगा देंगे, समझा न ? अरे, इनकम टिकस डिपाट में आग लगावें तो हम जानें।

मुनीम : सही कहें हैं सेठ जी ! आपके सिवाय सच्चाई कौन जान सके है, जो है सो।

दुलीचन्द : पै मेरे पैसे पै सबकी नज़र है, समझा न ? वो अभी बोझा ढोनेवाला मिला था; वही बोझा ढोनेवाला। कैता था—सेठ जी ! आपने खोटी चवन्नी दी थी। मैंने कहा—अबे हट, दूँगा चार तमाचे ! अगर चवन्नी खोटी है तो हमारा कौन कसूर ? गौरमिण्ट से जाके कह। और फिर दुनिया में भी तो आदमी खरा-खोटा होवे है, समझा न ? अब तुम्हीं बोलो मुनीम जी ! अगर आदमी खोटा है, तो क्या तुम उसे दुनिया से निकाल दोगे ?

मुनीम : नहीं सेठ जी, नहीं निकाल सकते, जो है सो।

दुलीचन्द : तो इसी तरह अगर चवन्नी खोटी है तो पड़ी रहने दे अपने पास। खरे के साथ खोटे रैते ही हैं, समझा न ? जहाँ तेरे पास खरे पैसे हैं, वहाँ कुछ खोटे भी पड़े रहने दे।

मुनीम : दुनिया का यही व्यौहार होना चाहिए, सेठ जी ! जो है सो।

दुलीचन्द : और वो कपड़ों की दूकान वाला। पैसा माँग रहा था। मैंने कहा—सुनो जी ! जो कपड़ा तेरे तन पै दो साल तक नईं रैता, वो कपड़ा है कै केले का पता ! केले के पत्ते के क्या पैसे ? ज़रा ज़ोर से हवा चली कै केले का पत्ता फटा, और ज़रा बेवकूफों को समझाने के लिए हाथ उठाया कि कपड़ा 'चर्र' से गया, समझा न ? लोग ऐसे कपड़े का पैसा माँगते हैं—ऐसे कपड़े का ! उससे अच्छे तो अठन्नी

गज़ के भाव के मेरे पुराने कपड़े···पुराने कपड़े···पुरानी साड़ी जो आसानी से सिल···अरे, मंगल···मंगल···कहाँ है ? उससे एक पुरानी साड़ी सिलने के लिए कहा था, समझा न ? सिठानी जी की पुरानी साड़ी···

मुनीम : हाँ, सिल तो रहा था···बुलाऊँ उसे ? (**पुकारकर**) मंगल···अरे मंगल !

मंगल : (**नेपथ्य से**) आया जी, मुनीम जी !

दुलीचन्द : बेचारा मंगल कहाँ तक पुराने कपड़े सिले ! नया लेता हूँ तो लोग सिर पै चढ़ते हैं। एक-एक को जेल भिजवा दूँगा, समझा न ? अब वो अचल का संगी-साथी केशव था न, केशव ? सो अब पुलस का निसपिट्टर बन के आ गया है। उसी से कै दूँगा। एक-एक से पुराने जनम तक का बदला ले लूँगा। समझा न ?

मुनीम : आप सब कुछ कर लेंगे सेठ जी ! जो है सो।

[साड़ी साथ में झुलाता हुआ मंगल आता है।]

मंगल : जी, मुनीम जी ! (**दुलीचन्द से**) जी, सेठ जी !

दुलीचन्द : अरे तो जे साड़ी इस तरह क्या झुलाता था, जैसे कोई बन्दर नचा रहा है, समझा न ? इस तरह झुलाने से जे साड़ी बचैगी कै और फटैगी !

मंगल : सरकार ! जब इस साड़ी को झुलाता हूँ तौ लगता है सेठानी जी को हवा कर रहा हूँ जी ! वो हमेसा जी हमसे हवा करवाती थीं। (**आँखें पोंछता है।**)

दुलीचन्द : हाय, हाय, तूने फिर याद दिला दी। हाय, सेठानी जी कहती थीं कै सिट्ठन जी ! तुमारी लाई साड़ी मैं सरग में भी पहिनूँगी। हाय ! कौन जानता कै तुम भूत बनके इसी सिंसार में साड़ी पहनोगी ! और फिर तुम भूत क्यों बन गई ! तुमसे कौन-सा पाप हो गया !

मुनीम : सेठ जी ! पाप नहीं हुआ, ये तो सिठानी जी का परेम है, जो है सो, कै आपको नहीं छोड़ सकतीं। उन्होंने सुरग जाना कबूल नहीं किया—भूत बनना कबूल कर लिया ! जो है सो।

मंगल : हाँ जी ! सही कहते हैं जी, सेठ जी के परेम से जी, भूत बनना कबूल कर लिया।

दुलीचन्द : और भूत बनके बाहर वाले कमरे में डेरा डाला है, समझा न ? मुझे देखती हैं तो कभी रोती हैं, कभी हँसती हैं। फटी-फटी साड़ियाँ सिर से पैर तक लपेट लेती हैं। पै आज तो ये साड़ी सेठानी जी को पहननी ही पड़ेगी। बेचारे मंगल ने बड़े प्रेम से ये सिली है। हाय, सेठानी जी, तुम हमें क्यों छोड़ गईं। हम तुम्हें नई साड़ी भी नहीं पहिना सके !

[रूमाल से आँसू पोंछता है।]

मुनीम : धीरज धरिए सेठ थी ! कहाँ तक सेठानी जी को याद करेंगे। उनकी तो सुधर गई सेठ जी, जो है सो। आपके सामने चली गईं ! यहाँ हम लोग रोने के लिए रह गए, जो है सो।

दुलीचन्द : (**विह्वल होकर**) अब मुनीम जी ! सेठानी जी के कौन-कौन-से गुन गाऊँ ! मेरी बातों का कितना ध्यान रखती थीं। जब साड़ी फट जाती थी तो वो उसका

लहँगा बना लेती थीं और जब जम्फर फट जाता था तो रूमाल बना लेती थीं। आज ये साड़ी-जम्फर और रूमाल बनने को तैयार है पै सेठानी नईं हैं !

मंगल : सरकार, इस साड़ी के रूमाल बना लूँ जी ?

मुनीम : तू चुप रह। सेठ जी इतने दुखी होवें हैं और तू रूमाल फाड़ने की बात कहवै है, जो है सो।

दुलीचन्द : (**हाथ से मना करते हुए दुखी स्वर से**) मत डाँटो बेचारे को ! वो भी तो सेठानी जी के मन की बात कहवै है ! अच्छा, मंगल ! तू ये साड़ी मुझे दे, मैं कलेजे से लगा लूँ, समझा न ?

[मंगल से साड़ी लेकर छाती से लगाता है और सिर दाएँ-बाएँ हिलाकर 'हाय सेठानी जी ! हाय सेठानी जी !' कहता है।]

मुनीम : (**मंगल से**) मंगल ! तू जा ! तू जा। सेठ जी के हाथ-पैर धोने का सरंजाम कर।

मंगल : अभी लो जी ! (**प्रस्थान**)

दुलीचन्द : (**मंगल के जाने की दिशा में देखकर**) मंगल है तो अच्छा नौकर···हमारा पुराना नौकर ! खाने-भर को दे दो और जो चाहे काम ले लो, समझा न ? पैसे तो कभी माँगताई नईं। अरे, कोई पैसे थोड़ी खाता है, खाना है सो खाना ले लो— और अगर कभी खाना न मिले तो चना-चबैना कहीं भाग थोड़े ही गया है ! पर काम तो अपनाई है। कितना अच्छा काम करता है ! (**साड़ी फैलाकर देखता है**) देखो, कितना अच्छा सिला है। यह सिलने का काम अच्छा जानता है। वाह, बहुत अच्छा। (**मुनीम से**) अब तुम तो सब बातें जानतेई हो मुनीम जी, पै खुद कहता हूँ और तुमसे कहलाता हूँ, समझा न ? क्यों·· कहलाता हूँ, क्यों कै दीवालों के भी कान होवें हैं।

मुनीम : आदमी के तो कान होवें पै सेठ जी, दीवालों के हज़ार कान होवें हैं, दिखते नईं पै हैं, जो है सो।

दुलीचन्द : अरे, तुम तो चोखे मुनीम ठहरे, सब जानो हो ! पै ये बताओ कै इस साड़ी को पैन्ह कै सेठानी जी का भूत भौत खुस होयगा। क्यों मुनीम जी !

मुनीम : अरे आप खुस होयँगे तो सेठानी जी का भूत क्यों नहीं खुस होयगा, जो है सो।

दुलीचन्द : (**खिलकर**) तुम्हें अच्छा लगे है, मुनीम जी, सेठानी का भूत ?

मुनीम : जैसे आप अच्छे लगते हैं सेठ जी, ऊँसा ही सेठानी जी का भूत अच्छा लगै है, जो है सो !

दुलीचन्द : तुम्हें डिर तो नहीं लगता, मुनीम जी ?

मुनीम : डिर काहे का सेठ जी ! घर के भूत से कहीं डिर लगे है, जो है सो ? वो तो पुलिस के निसपिट्टर को भी मात करै है।

दुलीचन्द : हाँ, मात तो करै है, पै भतीजे अचल को डिरा दे, तब बात है। (**धीरे से**) मन की बात कहूँ मुनीम जी ! तो मैं तो उसको घर में रखनाई नईं चाहता था, वो सिठानी जी उसे चाहती थीं तो रख लिया। वो भिकारन के पीछे गया, इधर जे

सुरग सिधार गईं (**कान के पास मुँह ले जाकर**) मैं तो चाहताई नईं कै वो इधर आवै। कागज़-पत्तर इहाँ-उहाँ पड़े रहे हैं। उन्हीं पै तसवीर बना दे। वो तो तसवीर बनाने को कोई रुजगार समझे है, समझा न ?

मुनीम : सो बात तो ठीक है, सेठ जी ! जो है सो। पै अचल आपके भतीजे हैं, सेठानी जी के साथ रहे हैं जो है, सो। तो अगर सेठानी जी का भूत उनपै रहम कर जाए तौ आप करी क्या सकते हैं, जो है सो।

दुलीचन्द : (**सिर हिलाते हुए**) हाँ, कर तौ क्या सकें हैं, पै आजकल की दुनिया रहम की नईं है, समझा न ? जिस पै रहम करौ वो खाने को दौड़ता है। अब सेठानी जी जिन्दगानी में रहम करें थीं, मरने पै तौ गुस्से में चिल्लाती हैं तौ रहम की बात कहाँ रही ? अब बात तौ तब बने, समझा न ? कै भूले-भटके अचल आ जाए और किसी बखत सेठानी जी का भूत निकल पड़े, अचल अपनी सिट्टी-पिट्टी सब भूल जाए। फिर जमराज भी उसे इधर लावें तौ भी न आए। और सेठानी जी के भूत के निकलने के मौके तो तुम जानतेई हो।

मुनीम : सो तो अच्छी तरह जानूँ हूँ, जो है सो। (**अलार्म घड़ी हाथ में लेता है।**)

दुलीचन्द : अच्छा तो तुम अपने बही-खाते ठीक करो। मैं तब तक अपना हाथ-मों धो लूँ। समझा न ? कोई पैसे माँगने वाला आए तो तुम मौके पै तरकीब करी ही सकते हो। मैं तो भीतर रहूँगाई।

मुनीम : आप निश्चिन्त रहें, सेठ जी। आप जाएँ, जो है सो।

दुलीचन्द : अच्छा तो मैं भीतर जाता हूँ। (**सोचकर**) हाँ, वो पछत्तर पैसों का हिसाब है ना ? उसे तुम बही-खातों की जिल्द-बँधाई में डाल दो। इनकमटिकस में छूट हो जाएगी। समझा न ?

मुनीम : समझ गया सेठ जी, जो है सो।

दुलीचन्द : तो अब मैं हाथ-मों धोऊँगा। चलता हूँ, समझा न ?

['जय स्री गोपाल', 'जय स्री गोपाल' कहते हुए प्रस्थान।

मुनीम तख्त पर बैठकर बही-खाता खोलता है। कुछ खाँसकर नाक पर चश्मा नीचे करके लिखने लगता है। सिर हिलाकर घड़ी को अपनी जगह रख देता है। फिर बही के पन्ने पलटकर कुछ जाँच करके सिर हिलाता जाता है।

(**बाहरी दरवाजे से स्वर**) जय गोपाल जी ! मुनीम जी !

मुनीम : (**चश्मा ठीक कर**) कौन ?

[बंसी का प्रवेश]

बंसी : मैं हूँ बंसी, मुनीम जी ! सेठ ढालामल का नौकर। अभी तक सेठ दुलीचन्द के कपड़ों का हिसाब चुकता नहीं हुआ।

मुनीम : चुकता नहीं हुआ तो हो जाएगा, जो है सो।

बंसी : हो तो जाएगा ही मुनीम जी। लेकिन कब तक होगा ? देखिए, सेठ दुलीचन्द बड़े

आदमी हैं। भूल जाते होंगे लेकिन आपको तो याद दिलाते रहना चाहिए।

मुनीम : अब यही काम तो है नहीं हमारे लिए। हज़ारों कामों में दिमाग उलझा रहवै है, जो है सो।

बंसी : तो हज़ार कामों में एक ये भी दिमाग में रहे।

मुनीम : तो दिमाग हमारा क्या, जो है सो, रद्दी का टोकरा है कै हर बात उसमें डालते जाव, जो है सो !

बंसी : ये हर बात नहीं है मुनीम जी, हिसाब की बात है।

मुनीम : तौ कह तौ दिया कै हो जाएगा।

बंसी : कब हो जाएगा ? चार बरसों से पड़ा है। सेठ ढालामल हमको डाँटते हैं कि हम आपके पास जाते ही नहीं। यहाँ न जाने कितनी बार आ चुका।

मुनीम : तौ हम पै क्या अहसान करते हो, जो है सो।

बंसी : देखिए, मैं सीधे-सीधे हिसाब की बात करता हूँ और आपके दिमाग का पारा चढ़ता ही जाता है।

मुनीम : तुम जो सिर पै चढ़े आ रहे हो।

बंसी : (**तीव्रता से**) सिर पर नहीं चढ़ा आ रहा हूँ, हिसाब करने की बात कह रहा हूँ।

मुनीम : हिसाब कैसे किया जाए, जो है सो ! तुम्हारी दूकान में कपड़ा जो है सो बाबा आदम के जमाने का रक्खा हुआ है। उसी को तुम हमारे सेठ साहब के पास खिसका दो हो। तन पै कपड़ा आया और 'चर्र' से गया, जो है सो। तौ तुम पुराने कपड़ों का हिसाब तुरत चाहो तो कैसे हो ? पुराने कपड़े का हिसाब पुराना हो ही जावै है।

बंसी : ये सब टालने के बहाने हैं, मुनीमजी ! हमारे यहाँ तो आज कपड़ा आया और कल ग्राहक के हाथ में। पुराना होने का वक्त ही नहीं आता। ये तो सेठ साहब का खुरदरा बदन होगा कि कोई कपड़ा साबित रहने ही नहीं पाता।

मुनीम : देखो, हमारे सेठ साहब की सान में, जो है सो, अगर कुछ कहा तौ बात बिगड़ जाएगी, जो है सो।

बंसी : तौ अभी जौ कौन बात बनी हुई है जो बिगड़ जाएगी। हम तौ नरमी से बात उठाते हैं कि सेठ साहब की इज़्ज़त खराब न हो। चुपचाप बैठे हैं, नहीं तो कब की नालिश कर देते।

मुनीम : बड़े नालिस करने वाले आए। हमको धमकी क्या देते हो, जो है सो ? नालिस करेंगे...नालिस करेंगे। जाओ, अभी नालिस कर दो। चुपचाप बैठे रहोगे तो देर-सबेर पैसे वसूल भी हो जाएँगे। नालिस करोगे तो, जो है सो लटके रहोगे सालों।

बंसी : सालों लटकें तुम्हारे फरिश्ते, मुनीम जी।

मुनीम : देखो, मुँह सँभाल के बातें करो, जो है सो, नहीं तौ...नहीं तौ...

बंसी : नहीं तो, नहीं तो, क्या ? मुँह सँभालते रहे हैं, इसीलिए बार-बार आते हैं। मुँह बिगाड़ते तो आपका सब कारोबार बिगड़ जाता।

मुनीम : अरे, बहुत देखे हैं कारबार बिगाड़ने वाले ! जो है सो।

बंसी : अच्छा तो सीधी बात यह है कि सेठ जी का हिसाब साफ करते हो या नहीं ?

मुनीम : अभी फ़ुर्सत नहीं है।

बंसी : फ़ुर्सत कभी हुई है कि अभी होगी ?

मुनीम : अच्छा तो कल आना।

बंसी : मैं तो आज ही हिसाब साफ करके जाऊँगा, और अभी। देखता हूँ, कब तक हिसाब नहीं देते। मैं यहीं बैठता हूँ, इसी बेंच पर।

[शान से बेंच पर मुनीम को घूरता हुआ बैठता है। नेपथ्य से स्वर : शेट जी हैं न ?]

मुनीम : ये दूसरे कौन आए ?

स्वर : मैं हूँ शंश्कृत पाठशाला का शचिव। मेरा नाम है श्री शर्वदानन्द शर्मा।

[सर्वदानन्द शर्मा का प्रवेश। माथे पर त्रिपुंड, गले में दुपट्टा, तनीदार कुरता, धोती और पैर में खड़ाऊँ। हाथ में रजिस्टर।]

शर्मा : **(प्रवेश करते हुए)** आशीरवाद, आशीरवाद। अहा, मुनीम जी ! शेठ दुलीचन्द के शौभाग्य की शीमा नहीं है। कैशा शरूप है कि जैशे मानशरोवर में हंश विचरण कर रहा है। जब वो मोतीरूपी शंपत्ति शंशार को शर्मपित कर रहे हैं तो थोड़ी-शी शंपत्ति हमारी शंश्कृत पाठशाला को भी प्राप्त होने का शुअवशर आना चाहिए··· जय शंभो···जय शंभो !

बंसी : पंडितजी ! हजार बार 'जय शंभो' कहो, एक नया पैसा यहाँ से नहीं मिल सकता।

मुनीम : बंसी ! तुम कौन होते हो ऐसा कहने वाले ? क्या तुम इस दुकान के खज़ांची हो, जो है सो ?

बंसी : हज़ार पाप करके भी इस दुकान का खज़ांची नहीं बनूंगा।

मुनीम : अब कुछ कहा तो अच्छा नहीं होगा, जो है सो।

शर्मा : **(रोकते हुए)** अरे, अरे, धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे महाभारत का जुद्ध क्यों करते हो शज्जनो ! शांति शे तौ अशम्भव भी शम्भव हो जाता है। अब देखिए, 'पुरुष पुरातन की बधू क्यों न चंचला होय !' तौ लक्ष्मी जी एक श्थान पै कैसे रह शकती है। वो इस दुकान शे हमारी पाठशाला में अवश्य आवेंगी। शेठ जी को प्रशन्न-भर करना है। तौ प्रशन्नताई में क्रोध का श्थान नहीं है···जय शंभो···जय शंभो।

बंसी : पंडित जी, इन्होंने हमारी दूकान का हिसाब नहीं चुकाया। हम यहाँ दस बार आ चुके।

शर्मा : तो महानुभाव ! भगवान के भी तो दश अवतार हुए थे, वो भी इस शंशार में दश बार आए, वो तो नहीं थके, तुम क्यों थकते हो ? भौंरा जब दश बार फूलों पर बैठता है तब उशको कण के बराबर शुमन की धूल मिलती है। तुम एक बार में श्वर्ण हो। धीरज धरो···धीरज धरो···जय शंभो।

बंसी : अगर धीरज रखना है तो आप भी मेरे साथ इस बेंच पर बैठ जाइए।

शर्मा : अवश्य···अवश्य···शत्पुरुषों के शदन में आशन पाने का शुअवसर बड़े शौभाग्य

शे प्राप्त होता है। हमारी शंश्कृत पाठशाला को शहायता मिलने का शुदिन आ गया है तो मैं प्रशन्नतापूर्वक इश श्थान पर आशन ग्रहण करूँगा—जय शंभो···जय शंभो।

[बेंच को अपने दुपट्टे से झाड़कर बैठता है।]

नेपथ्य में स्वर : सेठ साहब तशरीफ़ रखते हैं ?

मुनीम : आज तो जैसे किसी ने बर्र का छत्ता, जो है सो, तोड़ दीना है। कौन है ?

[मौलाना का प्रवेश। अचकन, चूड़ीदार पैंजामा, दुपल्ली टोपी पहने हुए हैं। हाथ में झोला।]

मौलाना : आदाब अर्ज़ है। (**सलाम करने की मुद्रा**) ख़ादिम का मुख़्तसर-सा नाम है मौलाना अली नवाब यावर हुसेन। सेठ साहब तशरीफ़ रखते हैं ?

मुनीम : भीतर हैं, मुँह-हाथ धो रहे हैं।

मौलाना : ज़हे क़िस्मत। सेठ साहब से मुलाक़ात का मौक़ा मुश्किल से मिला। आफ़ताब को ज़र्रे से क्या निस्बत लेकिन मुनीम साहब, ये ज़र्रा ही है जो आफ़ताब की एक किरन से चमक उठता है। हमारा अदना-सा यतीमखाना जिसमें पचास बच्चे हैं. अगर सेठ साहब की नज़रे-इनायत पा जाए तो वो किस सोहराब और रुस्तम से कम निकलेंगे ? क्यों साहब ! (**बंसी और शर्मा को देखकर**) आप लोग भी सेठ साहब के दीदार के ख़ाहिशमन्द हैं और क्यों न हों, शमा की रोशनी जिधर होगी परवानों का हुजूम तो उधर ही जाएगा। क्यों मुनीम साहब ! सेठ साहब का इन्तज़ार कब तक करना होगा ?

मुनीम : क्या कह सकते हैं, जो है सो।

मौलाना : कोई बात नहीं—कोई बात नहीं। इन्तज़ार में भी एक लुत्फ़ का सैलाब है। इन्तज़ार की हर घड़ी एक मौज की शक्ल इख़्तियार करती है। वो इसलिए उठती है कि उसे कनारा मिल जाए। और जब नहीं मिलता तो वो दूसरी मौज को इशारा करती है कि तू कनारा पा ले। इसी सिलसिले में दीदार की घड़ी उभरती है, जैसे किसी भटके हुए को पनाह मिल गई हो।

बंसी : तो मौलाना, आप भी बेंच पर हम लोगों की तरह पनाह ले लीजिए।

मौलाना : बखुशी···बखुशी। आप लोगों के साथ मेरी भी फ़रियाद सुन ली जाएगी। (**हाथ मिलाकर**) आदाब अर्ज़ है, आदाब अर्ज़ है। (**बेंच पर बैठ जाता है**) मुनीम फिर अपनी बही देखता है कि नेपथ्य से फिर कोई पुकारता है :

स्वर : शेठ शाहब हाय ? हाम इन्द्रजीत मजूमदार है। गौरक्खा शोमिति का मैनेजर।

[मजूमदार का प्रवेश। बंगाली कुरता-धोती में। हाथ में छोटी-सी पेटी।]

मजूमदार : नोमश्कार। अच्छा, हियाँ तो बहुत लोक हाय। मुनीम जी ! शेठ शाहब बाड़ी में हाय।

मुनीम : आप भी आ गए, जो है सो ।

मजूमदार : काहे नहीं आएगा। जिस जायगा जल होता ओही जायगा तो तृषा शान्त होयगा रे भाई। और एक पाखी के जल खाने शे शागर कहीं सुखाय शाकता ?

बंसी : यहाँ तो सबके मुँह सूख रहे हैं ।

मजूमदार : आपना मूख शूखने का बात बोलते किंतु देश-भर में गोमाता का मूख शुखाय रहा है, इशको कोनो नहीं देखता। तुम तो हाल का लुचई खायगा और गोमाता को घास-भूसा भी नहीं देगा ? ओ गोमाता जो तुमरा के वास्ते माता का माफिक फैनोज्जल दूध का धारा देता है।

शर्मा : शत्य है, शत्य है ! धन्य है गौमाता ! इश लोक में दूध की धारा और परलोक में हम इशकी ही पूँछ पकड़कर वैतरणी का शंतरण करते हैं ।

मौलाना : वल्लाह, ये संतरण भी संतरा की कोई क़िस्म होती होगी ।

मजूमदार : (**अपने ही विचार में**) शंतरा ? आप गोमाता को भूशा खियाता नहीं, शंतरा कोइशे खिआएगा ? इशकी शेवा तो भगवान भी किया। इसकी शेवा वास्ते भगवान गोपाल रूप धार लिया। शुनो भारत में गौ शेवा नहीं होगा तो दूध-घी कोइशे पाएगा। बनश्पति क्यों चल गिया। घी-दूध नईं है ? घी-दूध केनों नईं है, गो-शेवा का बात भूलाय दिया। जोदि देश को बचाना है तो गोमाता को बाचाइए। हम एही वास्ते शेठजी पाश आया जे गोरक्खा का वास्ते पाँच हज़ार का दान जोरूरी है।

बंसी : एक टका मिल जाए तो बहुत है।

मुनीम : (**तीव्र स्वर में**) बंसी !

मजूमदार : एक टाका ? अरे, श्रद्धा से एक टाका देगा तो लाख टाका होयगा। तूम एक टाका का लाटरी टिकट कीनते, भाग जो होता हाय तो एक टाका का तीन लाख टाका होता है न भाई। चलो, तूम एक टाका ही दो। देखो, श्रद्धा का क्या जादू होता है ।

बंसी : हम लोगों को कोई जादू नहीं देखना ।

मजूमदार : जब दान में तुमरा श्रद्धा नहीं है तो क्या जादू देखेगा ? शेठ जी का श्रद्धा का बात है ।

बंसी : तो आप भी इसी बेंच पर बैठकर सेठ जी की श्रद्धा देखिए ।

मजूमदार : काहे नहीं बोइठेगा—जोरूर से बोइठेगा। शेठ जी तूमरा माफिक नहीं हाय !

['जोय गोमाता' कहकर बेंच पर बैठ जाता है। मुनीम फिर बही देखने लगता है।]

नेपथ्य से स्वर : (**एक युवक झंडा लेकर प्रवेश करता है**) मैं रमेश हूँ। नवयुवक दल का नेता। नवयुवक संघ का चुनाव हो रहा है। उसके लिए चंदा चाहिए।

बंसी : मिल चुका चंदा !

मुनीम : सेठ जी अभी किसी से नहीं मिल सकते, जो है सो।

रमेश : क्यों नहीं मिल सकते ? ये बहुत-से लोग यहाँ बैठे हैं। मिलना होगा, सबसे मिलना होगा। अब नवयुवक दल जाग गया है। अगर बुड्ढे लोग उनका साथ नहीं देंगे तो उनका पैसा लूट लिया जाएगा। उन्हें उनके घरों से निकाल दिया जाएगा।

मुनीम : तुम लोगों को घर से निकालने की बात कहो और उनसे चन्दा भी माँगो, जो है सो ?

रमेश : चन्दा माँगा नहीं जाएगा छीन लिया जाएगा। बुड्ढे लोगों ने हमारी उन्नति के दरवाज़े बन्द कर रक्खे हैं। ये दरवाज़े तोड़ दिए जाएँगे। घर जला दिए जाएँगे। देखते नहीं हमारे झंडे पर मशाल का निशान है ? इसी मशाल से हम पुरानी परम्परा को जला देंगे, पुरानी मान्यताओं को भस्म कर देंगे। साम्यवाद की स्थापना करेंगे।

मजूमदार : बहुत चोमत्कार भाषन कोरता।

रमेश : चमत्कार तो तब होगा महाशय, जब सारा देश साम्यवाद का नारा बुलन्द करेगा। कितना अच्छा होता अगर हम लोग मार्क्स और लेनिन के देश में उत्पन्न होते।

मजूमदार : फिर बंकिम बाबू 'शुजलां शुफलां मलयज शीतलां' काहे वास्ते लिखा ? हरेक देश का अपना बात होता है रे भाई। दूशरा देश का टाका पाइ के क्या अपने देश को जलाय देगा ? एइ तुमरा देश के शेवा हाय ?

रमेश : देश के कैपीटलिस्ट को पीस देना ही देश की सेवा है, महाशय ! हमें सारे देश में आग लगानी है। यदि लोग सीधी तरह नहीं मानेंगे तो उन्हें गोली से उड़ा दिया जाएगा।

मौलवी : बरखुरदार ! गुस्सा कम करो, समझ से काम लो।

शर्मा : शंश्कृत शाहित्य के शूत्रों में तुम्हें शब मिल जाएगा। आ-ह-ह-हा···महाभारत शंग्राम का स्मरण करो। पै पहले श्री कृष्णचन्द्र महाराज को जुरजोधन के शमीप भेजो।

मजूमदार : पैले बाबा, अपने देश की शंश्कृति को तो शमजो।

रमेश : समझने का वक्त निकल गया। अब तो सारी जनता को अपने पैरों पर खड़े हो जाना है।

बंसी : जनता जब तक खड़ी होगी तब तक आप बैठ जाइए। अब साहब निकलने वाले होंगे तब उनसे बात कीजिए।

रमेश : (**मुनीम से**) देखिए, मेरे पास समय नहीं है, सिर्फ पाँच मिनट ठहर सकता हूँ। मुनीम जी ! क्या टाइम है ? ओः, आपकी घड़ी बन्द है।

मुनीम : हँ-हँ, मैं चाबी देना भूल गया था, जो है सो। अब चाबी दिए देता हूँ। बन्द हो गई थी, जो है सो।

रमेश : पुरानी परम्परा बन्द होने को है, घड़ी अभी से बन्द हो गई।

मुनीम : नहीं, नहीं, मैं घड़ी में चाबी देने ही वाला था। आपकी बातों में सब कुछ भूल गया, जो है सो। अभी चलता हूँ।

[मुनीम घड़ी में चाबी देता है। घड़ी का अलार्म बजता है। कुछ क्षणों बाद मुनीम उसे बन्द करता है।]

मुनीम : (**लज्जित स्वर में**) हैं-हैं, माफ करना, जो है सो। धोखे से अलार्म की चाबी भर गई !

[कुछ ही क्षणों में भीतरी द्वार की ओर किसी भारी चीज़ के गिरने की आवाज़ होती है। सभी चौंक उठते हैं। फिर बारी-बारी से हल्की और भारी आवाज़ें होती हैं।]

सब : यह क्या है ?

मुनीम : (**ज़ोर-ज़ोर से**) जय स्री गोपाल···जय स्री गोपाल···

[फिर भारी चीज़ गिरने का शब्द]

मजूमदार : एइ भूमि-कम्प होइ रहा है भाई ?

मौलाना : वल्लाह, रमेश साहब ! आपकी तक़रीर ने ही तो यह ज़लज़ला पैदा नहीं किया ?

शर्मा : शास्त्रों के शिद्धान्त अशत्य नहीं होते। मेरे श्रीमुख शे महाभारत का नाम निकल गया शो महाभारत की संभावना हो गई !

रमेश : इस घर में तोड़-फोड़ तो शुरू हो ही गई है। यह देश की तोड़-फोड़ का छोटा-सा नमूना होगा। आगे देखिए क्या होता है।

बंसी : किसी आसामी का हिसाब चुकता नहीं हुआ होगा, वह सेठ जी से छीना-झपटी कर रहा होगा।

मुनीम : (**काँपता हुआ**) छीना-झपटी नहीं···भू ऊ ऊ ऊ त···

सब : (**चौंककर**) भूत !

मुनीम : हाँ, सेठानी···जी···का···भूत !

रमेश : (**हँसकर**) भूत ? आज साइंस के ज़माने में कहीं भूत होता है ? ये सब दिमाग़ की कमज़ोरी है। फरेब है, धोखा है।

मुनीम : जो फरेब और धोखा···कहता है, सबसे पहले, जो है सो···उसी की जान जाएगी···

मौलाना : हाँ, भूत और जिन्नात की बात कही तो जाती है।

मुनीम : अरे, मैंने खुद अपनी आँखों से देखा है, साहब ! आप इसे फरेब कहते हैं, जो है सो ? सेठ जी के इस बाहरी कमरे में सेठानी जी का भूत रहता है जो है, सो। जब चाहता है, घर में तोड़-फोड़ मचा देता है और जो सामने आता है, उसकी जान ले लेता है, जो है सो।

मजूमदार : हमरा प्रान काहे को लेगा। हम शामने आऊँगा ही नहीं। हम फिन आएगा।

(लड़खड़ाता है) हमरा तो पैर भी नहीं उठता भाई ! हमको किया होइ गया ! ओ काली ! रोक्खा करो…भूत से हमरा रोक्खा करो। **(लड़खड़ाता हुआ जाता है। अपनी पेटी भी छोड़ जाता है।)**

शर्मा : मजूमदार जी ! हम भी आपके शाथ प्रश्थान करेंगे। **(उठता है)** अरे, हमारा शिर कैशा हो गया ! **(अपना सिर दोनों ओर से दबाता है)** जय हनुमान ग्यान गुन शागर ! ज्ञान गुन…शागर…ग्यान गुन…शागर…**(प्रस्थान। रजिस्टर हाथ से गिर जाता है।)**

मौलाना : यह अच्छा मज़ाक है !

मुनीम : यह मज़ाक नहीं है, जो है सो, सेठानी जी का भूत ऐसा ही है। कहीं सिर जकड़ देता है, कहीं पेट मरोड़ देता है। सेठ जी ने सेठानी जी की कोई इच्छा पूरीनहीं की तो वो, जो है सो, मरकर भूत बन गई हैं और बदला ले रही हैं। सेठ जी की सब चीज़ों को तोड़ती-फोड़ती हैं। जो है सो…जो सामने आता है, उसका भी सिर फोड़ देती हैं।

बंसी : यह तो होगा ही, अब सेठ जी अपने करमों का फल भोगें।

[फिर किसी भारी चीज़ के गिरने की आवाज़। फिर सब चौंक उठते हैं।]

मौलाना : वाक़ई मामला बिगड़ा हुआ है।

मुनीम : अरे, इतना बिगड़ा हुआ है मौलाना कि एक बार खुद सेठजी सामने पड़ गए; सिठानी जी के भूत ने, जो है सो, उनको ऐसा पछाड़ा कि तीन दिन तक उठ नहीं सके। तीन दिन तक, जो है सो।

रमेश : अरे सेठ जी को मिरगी आ गई होगी।

मुनीम : अभी आपको भी आएगी, जो है सो।

रमेश : अजी, आ चुकी ! पुराने ज़माने के लोगों का अन्धविश्वास है, कहाँ का भूत, कहाँ का प्रेत !

मुनीम : जब सामने आ जाए, तब देख लेना, जो है सो।

रमेश : मैं तो इसी झंडे से उसे खदेड़ दूँगा।

मौलाना : बरखुरदार ! भूत से मज़ाक करना वाक़ई ख़तरनाक है।

[दो बत्तियाँ बुझ जाती हैं।]

मुनीम : **(काँपते हुए)** जान पड़े है सेठानी जी का भूत…भूत इसी तरफ आ रहा है, जो है सो ! वो…आ रहा है !

मौलाना : आ रहा है ?

मुनीम : अरे…अरे…आ ही गया ! भू ऊ त…भू…ऊ…त…

[घबराहट से तख्त पर लुढ़क जाता है। सेठानी जी के भूत का प्रवेश। मंगल द्वारा सिली हुई सफेद साड़ी को सिर से लपेटे है…कभी प्रकाश बुझता है, कभी जलता है। भूत पतली आवाज़ में 'खी-खी' करके हँसता है, फिर सहसा चीख़ मारकर

रोता है, फिर हँसता है। हँसी के अन्त में चीखता है—'खा···जाऊँगी'···'खा···जाऊँगी'···'खी···खी···खी···' दो कदम सेठानी जी का भूत आगे बढ़ता है, एक क़दम पीछे हटता है। इस तरह मुनीम के तख्त के पीछे स्टेज के एक कोने से दूसरे कोने तक जाता है। फिर 'खी-खी' कर हँसता है, कहता है···'मैं सेठानी का भूत हूँ···भूत हूँ।'

मौलाना : या ख़ुदा, इस जिन्न से···मुझे बचा ले···बचा ले···

[घबराहट से भाग जाता है। झोला भी छोड़ जाता है।]

बंसी : अरे, बाप रे, भूत··· (**अपनी टोपी छोड़कर भाग जाता है**)

रमेश : सचमुच ही भयानक भूत है। कामरेड लेनिन ! बचाओ···

[झंडा फेंककर भाग जाता है। थोड़ी देर बाद भूत घूमकर 'खी-खी' करता भीतर चला जाता है। उसके बाद मुनीम धीरे-धीरे उठकर चारों ओर देखता है। प्रकाश फिर हो जाता है।]

मुनीम : (**नेपथ्य की ओर देखकर**) बड़ा प्रचंड भूत है, जो है सो ! सब भाग गए ! और ···और···ये चीज़ें भी छोड़ गए ! (**बेंच के पास आकर एक-एक चीज़ को उठाकर**) ये बंसी की टोपी···ये शर्मा जी का रजिस्टर···ये मौलाना का झोला···ये मजूमदार की पेटी···ये रमेश का झंडा···यहाँ आए थे लेने के लिए और खुद ये चीज़ें दे गए, जो है सो।

[नेपथ्य में किसी के आने का शब्द]

नेपथ्य से : (**तीखे स्वर में**) सेठ जी हैं ?

[मुनीम कुछ नहीं बोलता। वह बहुत चौकन्ना हो जाता है। पुलिस इंसपेक्टर के वेश में केशव का प्रवेश। उसके हाथ में एक बेंत है। साथ में पूरी वर्दी में सजा हुआ पुलिस कांस्टेबिल।]

केशव : (**तीखे स्वर में**) सेठजी हैं ?

मुनीम : (**घबराए स्वरों में**)···के···केसो···बाबू !···ओह निसपिट्टर साहब···जी···जी···आइए···बैठिए···सेठ जी···सेठ जी···भीतर हैं···पै···जो है सो···सिठानी ···जी···का भूत।

केशव : सिठानी जी का भूत ?

मुनीम : जी···जी···अभी···आया था, आया था।

केशव : सेठानी जी का भूत···भूत आया था ? क्या···वही भूत ये सब चीज़ें छोड़ गया है ? (**हाथ से उठाकर**)···ये···ये टोपी ?

मुनीम : ये नौकर की बंसी है।

केशव : और ये रजिस्टर···क्या दूकान का है ?

मुनीम : जी···जी···जी नहीं···जी नहीं···ये पं० सर्वदानन्द का जो है सो है···संस्कृत शर्मा के पाठशाला की।

केशव : ठीक-ठीक बोलो। ये झोला किसका है ?

मुनीम : जी ये···ये झोला यावर हुसेन कुरैशी···का मौलाना।

केशव : होश में नहीं हो क्या ? ये पेटी ?

मुनीम : जे पेटी ?···जे पेटी इन्दरजीत मजूमदार गौ समिति···मनेजर का रक्षा।

केशव : मालूम होता है सेठानी के भूत ने तुम्हारा दिमाग भी चौपट कर दिया है।

मुनीम : जी निसपिट्टर साहब, चौपट का दिमाग। जो है सो···

केशव : होश में बातें करो। क्या कह रहे थे, सेठानी जी का भूत···

मुनीम : जी आया था, अभी। इस बाहरी कमरे में रहता है।

केशव : हाँ, लोगों ने मुझसे कहा भी है। मैं इसकी जाँच करूँगा।

मुनीम : जाँच, जो है सो···भूत की भी जाँच होवै है, जो है सो ! आदमी लोगों की जाँच तो पुलिस करै है, पै आज के जमाने में भूत की जाँच होवै है, जो है सो।

केशव : हाँ, पुलिस किसी भी चीज़ की जाँच कर सकती है। मैं उस कमरे को देखूँगा जिसमें सेठानी जी रहती थीं। और सेठानी जी के भूत को भी देखूँगा।

मुनीम : आप सेठानी जी का भूत देखेंगे ? नहीं···नहीं केसव बाबू ! आप···आप उसे मत देखिए ! मत देखिए। उस भूत के सामने जो कोई आता है, वो ठहर नहीं सकता, जो है सो। उसे वो मार डालता है।

केशव : तो ठीक है, देखूँगा कि वो कैसे मार डालता है। यों पुलिस को किसी ओझे पर विश्वास नहीं है लेकिन भूत से बातें करने के लिए मैं एक ओझा भी साथ ले आया हूँ। दरवाज़े पर है। (**पुकारकर**) ओझा जी महाराज !

[नेपथ्य से : अलख निरंजन !]

[एक ओझा का प्रवेश। वह सारे शरीर में भस्म रमाए है। बाल खुले हुए हैं। सारे मुख पर सफेद चन्दन। माथे पर लाल टीका। वह शेर की खाल लपेटे है। एक हाथ में धूप-दान जिसमें से तेज़ी से धुआँ निकल रहा है। दूसरे हाथ में मोर-पंख का चँवर जो वह दायें-बायें फेरता है।

ओझा : अलख निरंजन !

केशव : ओझा जी ! आपको सेठानी जी के भूत से बातें करनी हैं।

ओझा : (**धूपदानी घुमाकर**) मेरी भक्ति गुरु की सत्त, फुरौ मंत्र ईसुरी बाचा।

रात गई अध रात गई तब नारी एक पुकारै,
है कोई नगर में सूरा जो नारी का दुःख निवारै ?

मन बाँधूँगा पवन सूँ
पवन बाँधूँगा मन सूँ
तब बोलैगा कौन ?

मन को पवन ते और पवन को मन ते देऊँ बहाई।
मन पवन का गम नहीं रे बोलो गोरख राई !
अलख निरंजन !

[मोर पंख घुमाता है।]

मुनीम : मुझे···मुझे···तो···डिर···डिर···लगैं है केसव बाबू ! जो है सो !

केशव : यह डर हमेशा के लिए दूर करना है, क्यों ओझा ?

ओझा : मेरा गुर तीन छंद गावै।

कुम्हरा के घर हांडी आछे, अहीरा के घर सांडी,
बमना के घर रांडी आछै, रांडी सांडी हांडी।
बैंस्नो के घर छूत आछै राजा के घर दूर
बनिया के घर भूत आछै, भूत, दूत, छूत ॥
अलख निरंजन !

केशव : देखा मुनीम जी ! कितना पक्का ओझा है ?

मुनीम : मुझे तो डिर लगे है···केसव बाबू, जो है सो !

केशव : अच्छा, तो अब मैं उस कमरे में जाऊँगा।

मुनीम : नहीं···नहीं···केसव बाबू ! मेरी जान पै बन आएगी, जो है सो, आप न जावें ···आप न जावें···सेठानी जी का भूत···

केशव : मैं सेठानी जी के भूत के सामने जाऊँ और तुम्हारी जान पर बन जाएगी···ये उल्टी बात कैसी ?

मुनीम : उल्टी बात ऐसी जो है सो कै मैं दूकान का जुम्मेदार हूँ, जो है सो। जे बात सेठानी जी का भूत जानता है।

केशव : तो मैं यही तो देखना चाहता हूँ कि सेठानी जी यानी मेरी चाची जी का भूत कितना प्रचंड है।

मुनीम : नहीं···नहीं···आप उस···कमरे में मती जाइए···केसो बाबू ! मैं हाथ जोड़ता हूँ। सेठानी जी के भूत का विश्वास नहीं, जो है सो। कभी हँसता है, कभी रोता है।

ओझा : (मोरपंख घुमाकर)

दिवस में बाघनी मन मोहै, रात में डाकिनी होवै।
जब जब भूत सामने होवै, बोलो हँसे कै रोवै।

मुनीम : (रोते स्वर में) रोवै···रोवै···ओझा जी···रोवै।

केशव : तो मैं उसका रोना ही देखूँगा। जाऊँगा उस कमरे में।

मुनीम : आप, जो है सो (**हाथ जोड़कर**) आप हमसे हजार-पाँच सौ रुपया ले लीजिए, पै कमरे में न जाइए, जो है सो। बात मान लीजिए। आप जाएँगे तो भूत समझेगा कि हमने आपको ओझा जी के साथ भेजा है। मेरी जान जाएगी। इससे कैता हूँ, जो है सो, कै हजार-पाँच सौ···

केशव : घूस देते हो मुनीम जी ? हथकड़ी-बेड़ी डलवा दूँगा। (**सिपाही से**) सिपाही मनसाराम !

[सिपाही आगे बढ़ता है।]

मुनीम : (**दूर हटकर**) नहीं, नहीं, निसपिट्टर साब, ये घूस थोड़े ही है, जो है सो। ये तो हँ-हँ-हँ···घर के लड़कों को···हँ-हँ-हँ मिठाई खाने को···हँ-हँ-हँ···

केशव : अच्छा मनसाराम ! रहने दो।

[सिपाही लौट आता है।]

केशव : (**ओझा से**) अच्छा तो ओझा जी ! चलो उस कमरे में।

मुनीम : (**ओझा से**) नहीं···नहीं, ओझा जी ! आप मती जाओ, निसपिट्टर साहब तो घर के हैं। सिठानी जी का भूत, जो है सो, उनसे कुछ नहीं बोलेगा लेकिन ओझा जी ! तुमको पछाड़ देयगा।

ओझा : हमको पछाड़ेगा ?

निस दिन अगिनि पाप कूँ खाय,
संघै संघै पवन लुकाय।
मन है धीर थिर रहै पौन
सिंघ दहाड़ै बौलै कौन ?

[मोरछल घुमाता है।]

केशव : कोई नहीं बोलेगा, कोई नहीं बोलेगा, ओझा जी ! चलिए भीतर ओझा जी ! मनसाराम ! तुम भी चलो।

मनसा : बहुत अच्छा, हजूर !

मुनीम : तो चले ही जाओगे ? जाओ। जौन बात होय, मुझे दोस मत देना, जो है सो। अपनी करनी, पार उतरनी। आप ही भोगो तो कौन साझा करेगा ? भूत से कोई पार पाया है कि आप ही पाओगे ! जो है सो।

केशव : मैं ही पार पा सकता हूँ और कोई नहीं। चलो ओझा जी !

[ओझा तीन बार धूपदानी घुमाता है और मोरछल झुलाता है। फिर बोलता है—]

ओझा : मेरी भक्ति गुरु की सत्त, फुरो मंत्र ईसरी बाच ! अलख निरंजन !

[पहले ओझा, उसके पीछे केशव और सिपाही का प्रस्थान]

मुनीम : (**अपने सिर पर हाथ रखकर**) हो गया बंटाधार, जो है सो, अब आगे, स्री गोपाल जी रच्छ्या करें।

[नेपथ्य में बक्सों के लुढ़कने की आवाज़ आती है। फिर पतले स्वर में—'मैं खा जाऊँगी ! खा जाऊँगी' की आवाज़। कुछ क्षण बाद केशव का स्वर—'यही है, यही है···पकड़ो पकड़ो।' फिर ओझा ज़ोर से बोलता है—]

ओझा : सर्व भूत प्रेत पिशाच साकनी डाकनीनां जंत्र मंत्रणां बंध-बंध कीलय कीलय, मर्दय मर्दय ऊँ ह्रीं, ऊँ हूं, ऊहैं, स्वाहा स्वाहा···स्वाहा···!

[फिर कुछ लुढ़कने की आवाज़। फिर केशव की आवाज़—'अच्छा, बाहर आओ ! सिपाही ! वो सन्दूक उठाकर लाओ !' प्रत्येक वाक्य पर मुनीम चौंकता है।]

मुनीम : हो गया सब स्वाहा, जो है सो।

[केशव का सेठ दुलीचन्द के साथ प्रवेश। दुलीचन्द वही साड़ी ओढ़े हुए है जो सेठानी का भूत ओढ़े हुए था। वह काँपता हुआ आता है। पीछे-पीछे मोरछल हिलाता हुआ ओझा आँखें चढ़ाए हुए आता है। सिपाही एक सन्दूक लाकर तख्त पर रखता है। ओझा तख्त पर पद्मासन लगा के ध्यान करता है।]

केशव : (**मुस्कराता हुआ**) ओझा ने हिम्मत करके सेठानी के भूत को पकड़ा तो मालूम हुआ कि सेठानी के भूत के रूप में सेठ दुलीचन्द ! क्यों चाचा जी ! इस धोखेबाजी का क्या मतलब ?

[सेठ दुलीचन्द काँपता है।]

केशव : बहुत-से धोखेबाजों को देखा है। यह धोखा चाचा जी ने अच्छा खड़ा किया कि पैसे माँगने वाले देखते ही भाग जाएँ। वाह चाचा जी ! इस कंजूसी की भी कोई हद है !

दुलीचन्द : अब कुछी न पूछो···कुछी न पूछो निसपिट्टर साहब !

केशव : आप मुझे बहुत डाँटा करते थे, चाचा जी ! अब कहिए, मैं आपको गिरफ्तार करूँ ?

दुलीचन्द : तुमारी भलाई करने पर गिरफ्तार करते हो तो कर लो। मैं जो आपको डाँटता था, वो आपके भले के लिए। अगर वो बातें न कहता तो आज आप निसपिट्टर साहब होते ? अब निसपिट्टर हो गए तो कर लो मुझे गिरफ्तार ! भतीजा चाचा को गिरफ्तार कर ले। कलजुग में सभी कुछ हो सके है, मैंने कहा।

केशव : कलजुग की बात छोड़िए, चाचा जी ! जुर्म तो आपने किया है। लोगों को आपने धोखा दिया है।

दुलीचन्द : आज तो सारी दुनिया धोखा देवै है, मैंने भी एक धोखे की टट्टी खड़ी कीनी तो कौन जुरम किया मैंने, निसपिट्टर साहब ? जिसको देखो, वो ही पैसा छीने है। गोरच्छ्या वाले घेरे हैं, इसकूल वाले घेरे हैं, जतीमखाने वाले घेरे हैं, चुनाव वाले घेरे हैं, किस-किससे बचूँ ? तो मैंने भी इनको भगाने के लिए सेठानी जी के भूत का स्वांग धरा। समझा न ?

केशव : अच्छा, तो ये स्वांग बदलिए चाचा जी ! यहाँ कोई पैसा माँगने वाला नहीं। जो माँगने आए थे, वे सब कुछ देकर चले गए, देखिए उस बेंच पर।

मुनीम : गीता जी में लिखाई है कि माँगना नहीं चाहिए, जो है सो।

केशव : अच्छा तो ये साड़ी उतारिए, चाचा जी !

[दुलीचन्द साड़ी उतारता है।]

केशव : सेठानी जी की फटी हुई साड़ी से अच्छा स्वांग बनाया।

दुलीचन्द : आजकल तो लोग तरह-तरह के स्वांग धरे हैं, निसपिट्टर साहब ! कोई गांधी टोपी लगावै है, कोई लाल टोपी लगावै है, कोई जवाहर जाकेट पहने है। तो मैंने भी एक स्वांग धार लीना।

केशव : फिर इसी मौके पर यह स्वांग क्यों रक्खा ?

दुलीचन्द : अब आपसे क्या छिपाना, निसपिट्टर साहब ! आप तो जैसे घरी के हैं। मैंने मुनीम जी से कह दीना था कै जब चन्दा माँगने वाले आमें तो घड़ी का अलारम बजा दिया करो, सेठानी जी का भूत आ जाएगा। तो सब डर के मारे भाग जामेंगे, समझा न ?

केशव : क्यों मुनीम जी ! तुम अलारम बजाते थे ?

मुनीम : अब सेठ जी ने ऐसा ही हुक्म दीना, जो है सो, तो बोई मुझे करना पड़ेगा। अब सेठ जी का मुनीम ठैरा। सेठ जी ने इसीलिए बाहर के कमरे को भूत का कमरा कह दीना था कै कोई उस तरफ नजर भी न उठा सके।

केशव : अच्छा, मनसाराम। ये सन्दूक खोलकर देखो ज़रा।

दुलीचन्द : **(रोकते हुए)** अब सन्दूक में का धरा है निसपिट्टर साहब ! सेठानी जी के कागज धरे होएँगे। उनकी चूड़ियाँ-ऊड़ियाँ होएँगी। मरद लोगों को औरतों की सन्दूक नईं देखनी चाहिए, समझा न ?

ओझा : **(आँख बन्द कर)** अलख निरंजन ! **(हाथ फैलाकर)**

घट घट गोरख घट घट मीन।
पाँच तत्त्व अरु गुन हैं तीन।
भेद भरी सब वस्तु समेटी।
अवधू खोल देख लै पैटी। अलख निरंजन !

केशव : देखिए चाचा जी ! गोरखनाथ जी का वचन है कि इस पेटी में कुछ भेद है। मैं इसे खोल के देखूँगा।

दुलीचन्द : इसमें मेरे सेठानी जी को लिखे गए परेम-पत्तर हैं। इनको देखोगे ?

केशव : पुलिस तो सब देख सकती है चाचा जी ! अच्छा मुनीम जी ! तुम बाहर जाओ।

मुनीम : जैसी मरजी, जो है सो ! **(प्रस्थान)**

केशव : देखिए, चाचा जी ! मुनीम जी को हटा दिया। मुझे आप अपने घर का मानते ही हैं।

दुलीचन्द : अरे, तो क्या परेम-पत्तर दिखला दूँगा ? **(सन्दूक पर बैठ जाता है।)**

केशव : कोई बात नहीं। **(सिपाही से)** मनसाराम ! उस कमरे के कोने में सौ-सौ रुपए के नोटों का बंडल पड़ा हुआ था, तुमने देखा ?

मनसाराम : हाँ, सरकार !

दुलीचन्द : (**घबराकर आँखें फाड़कर**) सौ-सौ रुपयों का बण्डल ? ···कहाँ, कहाँ ? अरे, मेरे रुपयों का बण्डल वहाँ किसने फेंक दिया। मैं देखता हूँ (**उठता है। एक कदम आगे बढ़कर**) नहीं···नहीं, मेरी सन्दूक (**फिर सन्दूक पर बैठ जाता है**) ऐं, सौ···सौ रुपयों का बण्डल ? मनसाराम ! तुम भीतर भी जाना। (**फिर उठता है**) हाय ! रुपयों का बण्डल !··· (**दो कदम चलकर फिर सन्दूक पर बैठता है**) हाय ! पेटी का ताला उसी कमरे में रह गया ?···कमबख्त मुनीम ने जल्दी से अलारम बजा दिया ! मैं ताला बन्द भी नहीं कर पाया। हाय, सन्दूक खुली रह गई !

केशव : अच्छा, तो मैं रुपये का बण्डल देखता हूँ। (**आगे बढ़ता है।**)

दुलीचन्द : नहीं···नहीं···कमरे में कोई नहीं जाएगा···मैं···मैं जाऊँगा अपने रुपये लेने ! (**घबराहट से बार-बार सन्दूक पर उठता-बैठता है**) हाय ! मेरे रुपये, हाय ! मेरी सन्दूक।

[कमरे की ओर एक कदम बढ़ाता है, फिर लौटता है।]

केशव : आपकी सन्दूक यहाँ से कोई नहीं ले जाएगा।

दुलीचन्द : अच्छा-अच्छा, तो मैं अभी आता हूँ···सन्दूक खोलना मती···परेम-पत्तर हैं···और···और···कुछ नहीं है।···खोलना मती···अभी···रुपयों का बण्डल और ताला लेके आता हूँ···

[शीघ्रता से भीतर जाता है।]

केशव : (**दुलीचन्द के भीतर जाते ही मनसाराम से**) अब सन्दूक खोलो !

[मनसाराम सन्दूक खोलता है। उसमें से रुपयों के बण्डल निकालता है।]

मनसाराम : हुजूर ! ऊपर दस हज़ार की रकम हरेक बण्डल पै लिखी है। एक, दो··· (**मन में गिनता है**) नौ···दस···

केशव : पूरे एक लाख···एक लाख रुपयों के नोट ? (**आश्चर्यपूर्ण मुद्रा**)

[दुलीचन्द का प्रवेश]

दुलीचन्द : (**आते हुए**) यह ताला-चाबी ज़रूर है···कोई नोट का बण्डल है नहीं वहाँ। (**खुली हुई सन्दूक को देखकर कराहते हुए**) हूँ···ये क्या ! हाय गोपाल जी ! मर···गया ! (**सिर पकड़ करके बैठ जाता है**) हाय ! झूठ-मूठ मुझे बहकाकर सन्दूक से उठा दिया। ये ताला-चाबी ले भी लो। झूठ ही कह दिया नोट के बण्डल कमरे में हैं···

केशव : चाचा जी ! नोट के बण्डल कमरे में नहीं, यहाँ हैं। इतना रुपया···एक लाख··· आपने इस तरह रक्खा है ! (**नोटों की ओर संकेत कर**) ये सब प्रेम-पत्र हैं जो आपने सिठानी जी को लिखे हैं ?

दुलीचन्द : रुपया किस प्रेम-पत्र से कमती है और फिर किसी के बाप का क्या ! मैंने··· मर-मरके कमाया है, ये मेरी लच्छमी माता है। (**नोट इकट्ठे कर समेटने लगता है।**)

केशव : इन लक्ष्मी माता पर आपने इनकमटैक्स दिया है ?

दुलीचन्द : लच्छमी माता पर इनकमटैक्स ? तो क्या देवी-देवताओं पै भी इनकमटैक्स लगे है। श्री गोपाल जी गौएँ चराते थे उनपै कितना इनकमटैक्स लगाओगे ? निसपिट्टर साहब ! जसोदा मैया और बलदाऊ का भी इनकमटैक्स बताओ ! (**ओझा से**) तुम्हीं बताओ, ओझा जी ! तुम गोरखनाथ को जानो हो ! बताओ बाबा गोरखनाथ ने कित्ता इनकमटैक्स दीना है !

ओझा : तत्त्व समझो अवधू, तत्त्व समझो !

नदी कहै मैं प्यासी गोरख, अन्न कहै मैं भूखा।
अगन कहै मैं जाड़ों मर गई, घिरत कहै मैं रूखा !

सबने अपने-अपने ढंग से टिकस भरा है—बिना टिकस के सब मरा है !

केशव : (**खुली हुई सन्दूक को गहरी नजर से देखकर**) अच्छी मेरी नज़र उस कागज़ पर पड़ रही है जो कुछ जला हुआ है। ज़रा उसे निकालो।

दुलीचन्द : नहीं···नहीं···वो तुम्हारे देखने लायक नहीं है।

केशव : (**तीव्रता से मनसाराम से**) क्या वो भी प्रेम-पत्तर है, उसे निकालो।

मनसाराम : हुजूर ! आपके कमरे में घुसते ही सेठ जी यह कागज़ जला रहे थे। मैंने उनसे छीनकर सन्दूक में रख दिया।

दुलीचन्द : यह···यह···परेम···पत्तर···है।

केशव : यह प्रेम-पत्र ऐसा है जिस पर सरकारी सील लगी हुई है। सरकार भी आपके प्रेम-पत्रों पर सही करती है।

[कागज ध्यान से पढ़ता है।]

दुलीचन्द : (**ऊपर देखकर**) हे गोपाल जी, जैसे तुमने अघासुर को मारा था ओसाई हमें भी मार दो। हाय ! मुनीम जी ने इस दुकान में थोड़ा-सा ज़हर भी नईं रखा जिससे मैं तुम्हारी सरन में पहुँच जाता। अब ज़िन्दगानी खतम हो गई। (**उँगलियों पर जपता हुआ**) गोपाल जी···गोपाल जी···गोपाल जी···।

केशव : (**आश्चर्य से**) अच्छा, तो यह बात है ! यह दस्तावेज़ आपने छिपाकर क्यों रक्खा है और उसे जलाने क्यों जा रहे थे ?

दुलीचन्द : (**जपता हुआ**) गोपाल जी···गोपाल जी···गोपाल जी।

केशव : गोपाल जी नहीं···यह दस्तावेज़ ! यह आपका प्रेम-पत्र है ? इस दस्तावेज़ को आपने अभी तक छिपाकर क्यों रखा ?

दुलीचन्द : (**गिरे मन से**) छिपाकर नहीं रक्खा निसपिट्टर साहब ! रुपयों के साथ बरसों से रक्खा था। मुझे उसका ध्यान ही नहीं रहा।

केशव : जब ध्यान ही नहीं था तो उसे जलाने क्यों जा रहे थे ? अच्छा तो अब ध्यान दीजिए। देखिए, सेठ जी ! यह दस्तावेज़ तख़्त पर बैठे हुए ओझा जी के बाबा का लिखा हुआ है। (**ओझा की ओर संकेत कर**)

दुलीचन्द : (**आश्चर्य से चकित होकर**) इन ओझा जी के बाबा का ! बिलकुल झूठ।

(पैंतरा बदलकर) बिलकुल झूठ।

केशव : झूठ नहीं, इस पर सरकारी मुहर लगी हुई है। यह दस्तावेज़ ओझा जी के बाबा का ही है। **(ओझा से)** ओझा जी महाराज ! सेठ जी की तरह तुम भी अपना बाना बदल लो।

ओझा : **(हाथ उठाकर)** अलख निरंजन !

[ओझा अपना वेश उतारता है। अपने असली रूप में आता है।

दुलीचन्द : **(आश्चर्य-मिश्रित करुण स्वर में)** अरे अचल ! तू है ? हाय बेटा अचल ! तू इतने दिनों तक कहाँ रहा ? तू पृथिमीं का सुरग बनाते-बनाते मुझे नरक में डाल गया। हाय ! तू घर से चला गया तो घर जंगल जैसा लगने लगा बेटा ! तेरा रास्ता देखते-देखते सेठानी जी चली गईं, अब मैं भी चला जाऊँगा···बेटा !

अचल : चाची जी ! मैं इस घर में नहीं रहा तो क्या हुआ। आपके दर्शन तो मैं दूर से ही कर लेता था। इस वक्त भी कर लिए।

दुलीचन्द : अरे, तो क्या ओझा बन के दरसन करता था ? ऐसे दरसन करो कि अब मुझे गोपाल जी के दरसन करने सुरग जाना पड़ेगा।

केशव : **(दृढ़ता से)** नहीं, अभी स्वर्ग नहीं जाएँगे। अपनी धोखेबाज़ी का सबूत देख के जाएँगे। देखिए, यह दस्तावेज़ अचल के बाबा और आपके पिता स्वर्गीय रामगोपाल का है। इसमें उन्होंने लिखा है।···देखिए, मैं पढ़कर सुनाता हूँ। **(पढ़ते हुए)**

'मैं यह दस्तावेज़ ईश्वर को साक्षी करके अपने होश-हवास में लिख रहा हूँ। अब जीवन के दिन थोड़े ही रह गए हैं इसलिए मैं यह वसीयत करता हूँ कि मेरी सारी जायदाद का एकमात्र उत्तराधिकारी मेरा नाती अचल प्रकाश हो। वह इस समय अट्ठारह वर्ष का है। जब तक वह इक्कीस वर्ष का न हो तब तक उस जायदाद की देखभाल मेरा पुत्र दुलीचन्द करेगा। दुलीचन्द बहुत कंजूस है। मेरी तरह वह दान-धर्म में विश्वास नहीं रखता। मेरी जायदाद का ठीक उपयोग वह नहीं कर सकेगा। मेरे दूसरे बेटे रामस्वरूप का पुत्र अचल बड़ा होनहार है। इसलिए मैंने अपनी सारी जायदाद अचल के नाम लिख दी है। मेरी दूसरी दूकान के मालिक अचल के पिता रामस्वरूप रहेंगे।

'वसीयत लिख दी कि सनद रहे और वक्त पर काम दे।

'दस्तखत—सेठ रामगोपाल के खुद। तारीख 15-9-1950। इस पर वकील श्री सूर्यनाथ पाडे के दस्तखत हैं और कोर्ट की सील है।'

समझे सेठ दुलीचन्द ?

दुलीचन्द : **(उदासी से)** समझना क्या है, निसपिट्टर साहब ! सब गोपाल जी के सामने ही तो है ? समझा न ?

केशव : दुनिया के सामने हो···तब बात है। अचल !···तुम्हें मेरी हार्दिक बधाई ! तुम इस सारी सम्पत्ति के अधिकारी हो ! इस दस्तावेज़ के अनुसार··· **(सोचकर)** तुम···छब्बीस···हाँ, छब्बीस वर्ष के हो। यह अधिकार तो तुम्हें पाँच वर्ष पहले

ही मिल जाना चाहिए था—क्यों सेठ जी ?

दुलीचन्द : अब मुझे तो अचल बच्चा ही दीखे था। फिर उसकी जनम-तिथि भी मुझे याद नहीं···और मैं उससे कब बात करता ? उसे तो तसवीरें बनाने से फुर्सत ही नहीं मिलती थी····'पिरथिमीं का सुरग' और फिर एक भिकारन के बच्चे को बचाने के लिए चला भी गया।

केशव : इस समय तो यहाँ मौजूद है। इस जायदाद का अधिकार उसे इसी समय मिलेगा।

अचल : केशव ! यह जायदाद मुझे नहीं चाहिए, इसे चाचा जी के पास ही रहने दो !

केशव : क्यों रहने दूँ ? जब धन पर एक साँप कुंडली मारकर बैठता है···

दुलीचन्द : अच्छा। अब मुझे साँप भी कहोगे ? कह लो, समझा न ? निसपिट्टर साहब हो, तो सब कुछ कह सकते हो।

केशव : काम तो चाचा जी ! आपने ऐसा ही किया है कि साँप बनकर धन पर बैठे रहे।

दुलीचन्द : अरे, तो मैं उसकी रच्छ्याई तो करता रहा।

केशव : अच्छी रक्षा की, चाचा जी ! अब तो आपका केस कोर्ट में जाएगा (**सिपाही से**) मनसाराम ! वह ताला-चाबी है। सन्दूक बन्द कर चाबी अचल के हाथ में दो।

मनसाराम : जो हुकुम (**ताला बन्द कर चाबी अचल के हाथ में देता है।**)

दुलीचन्द : अब मुझे मारो, चाहे बचाओ ! अब तो गोपाल जी ने महाभारत कराई दीना।

केशव : चाचा जी ! यह महाभारत अब कचहरी में होगा।

अचल : नहीं केशव ! चाचा जी को छोड़ दो। यह इनका पहला अपराध है। कंजूसी कोई जुर्म नहीं है। इन्होंने इनकमटैक्स के रुपये ही बचाए हैं, मैं वे भर दूँगा। चाचा जी ही रुपया जमा कर देंगे।

केशव : अच्छा, सोचूँगा इस पर। लेकिन मुझे खुशी है कि सेठानी जी के भूत ने न्याय करा दिया। तुम्हें तुम्हारा अधिकार मिल गया।

दुलीचन्द : बेटा ! तुमने मुझे बचा लिया तो अब मैं तुम्हारा मुनीम ही बन जाऊँगा। मुनीम···वो मुनीम तो मक्कार था। घड़ी का अलारम बजाता था। जैसे पाँच बरस का बच्चा है। अब तो असली मुनीमी मैं अपने बेटे अचल की करूँगा, समझा न ?

अचल : नहीं चाचा जी ! अब भी आप सेठ दुलीचन्द ही रहेंगे। जैसी आप आज्ञा देंगे, वैसा ही करूँगा।

केशव : (**दुलीचन्द से**) देखा आपने अचल के चरित्र को ? आपने उसे धोखा दिया और उसने आपको इज्जत दी।

दुलीचन्द : निसपिट्टर साहब ! आखिर भतीजा तो मेरा ही ठैरा। अचल की बातों से मैंने अपनी ज़िन्दगानी बिलकुल बदल दीनी, अब स्री गोपाल जी की असली पूजा करूँगा। तुम सब भी मेरे साथ चलो।

केशव : अच्छा ! तो अभी तक नकली पूजा करते थे ? (**सिपाही से**) मनसाराम !

उस बेंच पर जो-जो चीज़ें पड़ी हैं वे सब मुनीम जी से कहकर सही-सही जगह पहुँचा दो।

मनसाराम : जो हुकुम।

अचल : चीज़ें तो पहुँचती रहेंगी देर-सबेर। अभी तो हम लोगों को श्री गोपाल जी की पूजा में पहुँचना है।

केशव : उसी सेठानी जी के भूत वाले कमरे में ?

दुलीचन्द : अरे, अब तो सब कमरे बेटे अचल के हैं। जय स्री गोपाल जी, जय स्री गोपाल जी।

केशव : अच्छा, चलो अचल, चाचा जी की असली पूजा देखी जाए।

अचल : हाँ चलो।

दुलीचन्द जय स्री गोपाल···जय स्री गोपाल !

[सबका प्रस्थान।]

[परदा गिरता है।]

तृतीय अंक

[सेठ दुलीचन्द की नई दूकान। दूसरे दृश्य की अपेक्षा और भी भड़कीले ढंग से सजी हुई है। मुनीम बिहारीलाल तख्त पर बैठा है। उसके सामने सन्दूक है जिस पर बही खुली है।]

दुलीचन्द : (टहलते हुए) मुनीम जी ! अपनी नई दूकान ऐसी चमकी है···ऐसी चमकी है, जैसे सेठानी जी के माथे पै बिंदिया चमकती थी···समझा न ?

मुनीम : अरे सेठ जी ! उनकी बिंदिया तो घर में चमकती थी···अपनी नई दूकान तो दुनिया में चमक रही है, जो है सो।

दुलीचन्द : अरे, धीरज धरो, समझा न ? अभी हमारा माल दिसावरों में जाएगा, दिसावरों में। विलायत के लोग कहेंगे कि सेठ दुलीचन्द के व्यौपार में हमारी पत्ती भी डाल दो—दो पैसे का हिस्सा ही मिला लो। हमारे मुनाफे में दो पैसे की पत्ती भी लाखों में जाएगी।

मुनीम : पत्ती तो खजूर के पेड़ से भी ऊँची जाएगी, जो है सो।

दुलीचन्द : अरे, धल्ले अचल अपनी जायदाद अपनी कोठड़ी में। उसकी कुछ हम परवाह करें हैं, समझा न ? हमारी जायदाद तो महलों से ऊँची जा रही है, महलों से। वहाँ पहले व्यौपार हज़ारों में होता था···यहाँ अब लाखों में लो, लाखों में। अरे, हमने बनस्पती, भट्ठे की ईंटों, पपीते के बागों और चमड़े की दूकानों के ठेके ऐसे ले लिए

कि तबले का ठेका भी उसके सामने मात खा जाए है, समझा न ?

मुनीम : सो तो है ही सेठ जी, जो है सो।

दुलीचन्द : अब कहो—लोग कहवें हैं कि घी में बनस्पती क्यों मिलावो हो ? तो जे तौ सनातन से रीति चली आई है। मुनीम जी ! भागवत में लिखी है कि ब्रजविहारी गोवर्धनधारी किशन मुरारी जगत के परमात्मा होके गोपियों के साथ रास रचाते थे। समझा न ? कहाँ किशन मुरारी और कहाँ ब्रिरिज को गोपी। है नई ? दोनों में रास होता था। दोनों मिलते थे, तो अगर घी में बनस्पती मिलता है तो जैसे किशन और गोपी का रास हो रिया है। अब मैं धरम का मानने वाला, इस रास की शोभा को न बढ़ाऊँ ? समझा न ?

मुनीम : नहीं सेठ जी, अब आज दुनिया में आपसे बढ़के कौन धरम को मानने वाला है, जो है सो।

दुलीचन्द : और यो कहो कि भट्ठे का ठेका क्यों लो हो, सो भी सुन लो। पहले जमाने में राधा जी अपने पैरों में लाल महाउर लगाती थीं—अरे महाउर न ? उससे चरनों की कैसी सोभा हो जाती थी। हाय-हाय ! **(ऊपर देखकर)** हे राधे ! तो मुनीम जी ! महाउर से रंगे चरनों की सोभा ही न्यारी थी। सो लाल ईंटों का चूरा अगर लाल मिरचों में मिल जाए तो राधा जी के महाउर लगे चरनों की सोभा हो जाए ! आ-ह-ह-ह···आ-ह-ह-ह !

मुनीम : सेठ जी ! आपके सिवाय, जो है सो, कौन राधा जी के चरनों का धियान कर सकता है ?

दुलीचन्द : अब जेई समझो, मुनीम जी ! आजकल धरम के मरम को कोई समझता नई। अब खानगी लोग कहे हैं कि सेठ जी ! तुम काली मिरचों में पपीते के बीज क्यों मिलाओ हो। अरे, भले आदमी ! धरम की वात समझो ! स्री भागवत जी चिल्ला-चिल्ला के पुकार रही हैं, किशन जी भी काले थे और उद्धव जी भी काले थे। दोनों जब सिंघासन में बैठते थे। तो क्या न्यारी सोभा होवे थी ! तो काली मिरच के साथ जब पपीते के बीज मिलते हैं तो जैसे लोगों के कहने के आगे भागवत जी की बात न मानूं ?

मुनीम : नहीं, जरूर मानिए सेठ जी ! आप न मानेंगे तो कौन मानेगा ? जो है सो।

दुलीचन्द : और एक बात और सुन लो। हमारे एजेन्ट कहें हैं कि तुम चाय की पत्तियों में चमड़े का खुरचन क्यों मिलाते हो ? अरे भले आदमी ! इतना नई समझते कै गांधी जी ने चमारों को भी हरिजन बना दिया ! हम तो एक कदम आगे बढ़के कहते हैं कि चमारों के खुरचे हुए चमड़ों को हम माथे पै चढ़ाते हैं, चढ़ाते ही नहीं अपनी चाय में मिलाके आचमन करते हैं। अब लोगों के कहने से हम गांधी जी की वात न मानें ? अरे, हमको भी तो देश की सेवा करने दो। चमड़े को क्यों दूर फेंकते हो ! अरे वो भी तो गऊ माता का चमड़ा है ! है कै नहीं, बोलो ?

मुनीम : आपने तो एक ढेले से दो चिड़ियाँ मारी हैं, जो है सो। एक तरफ गांधी जी का अछूतोद्धार दूसरी तरफ गऊ माता की सेवा। वाह, सेठ जी, आप तो मरम की

बात जानते हैं जो है सो।

दुलीचन्द : और हमने तो ऐसी हिकमत सोची है कि वो तसवीर बनाने वाला वो हमारा भतीजा अचल तसवीरें ही बनाता रहे। रुजगार कहीं तस्वीर बनाने से होता है ? पृथिमीं का सुरग तस्वीर बनाता है। अरे सुरग कहीं कागज की तस्वीर पै बनता है। सुरग बनता है रुजगार में। नईं समझे ?

मुनीम : समझता हूँ सेठ जी, जो है सो।

दुलीचन्द : उसे बखूबी से समझ लो। सुरग में कौन रहता है ?

मुनीम : (दुहराकर) सुरग में कौन रहता है···?

दुलीचन्द : अरे सुरग में रहते हैं नारायन जी !

मुनीम : जी हाँ, सुरग में नारायन जी रहते हैं।

दुलीचन्द : और नारायन जी के पैर कौन दबाती हैं ?

मुनीम : लच्छमी जी !

दुलीचन्द : लच्छमी जी न ?

[तो जहाँ लच्छमी जी हैं उहाँ अपने पैर दबवाने के लिए नारायन जी अपने-आप पहुँच जाएँगे।]

मुनीम : (दुहराकर) अपने आप पहुँच जाएँगे।

दुलीचन्द : तो लच्छमी जी सेठ दुलीचन्द की दूकान में हैं ? है कै नहीं ?

मुनीम : हैं।

दुलीचन्द : तो जब लच्छमी जी सेठ दुलीचन्द की दूकान में हैं तो नारायन जी भी यहीं हैं।

मुनीम : हैं, जो है सो।

दुलीचन्द : तो जहाँ लच्छमी जी और नारायन जी हैं, वहाँ सुरग हुआ कै नहीं ?

मुनीम : हुआ।

दुलीचन्द : तो 'पृथिमीं का सुरग' सेठ दुलीचन्द की दूकान में ठैरा के नईं ?

मुनीम : ठैरा।

दुलीचन्द : तो अचल के कागज पैसे कैसे उतर सकता है ?

मुनीम : नईं उतर सकता।

दुलीचन्द : तो अचल के पास सुरग नहीं है, तो लच्छमी जी भी नईं हैं और नारायन जी भी नईं हैं।

मुनीम : नईं हैं, जो है सो।

दुलीचन्द : ऐसे आदमी के पास लच्छमी जी रैती भी नईं हैं।

मुनीम : हाँ, कैसे रह सकती हैं, जो है सो।

दुलीचन्द : जब दस्तावेज़ कैती थी कै अचल पुरानी दूकान का मालिक है। तो कैने का मतलब जे है कि उस दूकान में लच्छमी जी कैद हैं।

मुनीम : कैद तो हुई हैं, जो है सो।

दुलीचन्द : सो हमने लच्छमी जी को कैद से छुड़ाने का उपाय कीना है ।

मुनीम : सो कैसे सेठ जी !

दुलीचन्द : (**पास आकर धीमे स्वर में**) वो जो सन्दूक थी न, जिसमें एक लाख रुपये थे ? उस सन्दूक को उड़ा लिया जाए । (**ज़ोर से**) बस, लच्छमी जी कैद से छूट गईं।

मुनीम : वाह···वाह···सेठ जी, आपने बहुत अच्छी तरकीब की बात सोची, जो है सो ! पर···मुस्किल की बात जे है कै बो सन्दूक कैसे उड़ाई जाए !

दुलीचन्द : अरे तो हमने सिरीमती भागवत जी यों ही थोड़े पढ़ी है, उसका इन्तजाम भी कर लीना है ।

मुनीम : कर लीना है, वाह-वाह, सेठ जी ! अरे सिंसार के बनाने वाले विषकर्मा भी आपकी बराबरी नईं कर सकें हैं । तौ क्या इन्तजाम कर लीना है ?

दुलीचन्द : अरे, तुमको सुरत हो गयी कि पिछले जमाने में एक भिकारन आई थी जिसको अचल ने हरा दुसाला दे दिया था जिसमें मेरे पाँच हज्जार के नोट थे ।

मुनीम : हाँ, हाँ, मंगल ने बतलाया था, जो है सो ।

दुलीचन्द : उस कमबख्त भिकारन का लड़का बीमार था जिसको उढ़ाने के लिए अचल ने मेरा हरा दुसाला दीना था ।

मुनीम : हाँ, दीना था ।

दुलीचन्द : सो अब वो लड़का बड़ा हो गया है । उसका नाम है···क्या नाम है ? अच्छा-नाम है···हाँ···याद आ गया, कुन्दन ! चार रोज पहले आया था । अचल के यहाँ भी उसका आना-जाना है । सो उसने कहा (**पास आकर धीमे स्वर में**) कि सेठ जी, कहो तो अचल भैया की लाख रुपये वाली सन्दूक तुम्हारे घर पहुँचा दूं । मैंने कहा—'वाह बेटा ! मैं भी येई सोच रिया था । बड़ी ऊँची बात सोची । मौका पाके भूत वाले कमरे में घुस जाना और वो एक लाख की पेटी उड़ा लाना मुँह अँधेरे । किसी को कानोकान पता न चले !' उसने कहा—'अभी लो सेठ जी ! ये तो मेरे बायें हाथ का खेल है ।' मैंने कहा—'तो उड़ा के ले आ, पट्ठे ।'

मुनीम : वाह-वाह ! सेठ जी, आपने कैसा भिड़ाया ! लोहे को लोहे से काटा, जो है सो । कुन्दन पर अचल का भरोसा हैई । वो इस सफाई से उठाएगा कि दुनिया को कानो-कान पता न लगेगा, जो है सो !

दुलीचन्द : पै उसने हमसे कहा कै सेठ जी, एक हज़ार रुपये लगेंगे । हमने कहा, एक हज़ार ? एक हज़ार तो बहुत होते हैं । क्यों मुनीम जी !

मुनीम : हाँ, होते तो बहुत हैं पै एक लाख का भी तो मामला है ।

दुलीचन्द : एक लाख का मामला है । मैंने उससे पाँच रुपये कहा । अरे बड़ी शुभ संख्या है पाँच पाण्डव थे—भागवत जी में पाँच कन्या हैं, साधु-संन्यासी लोग पाँच अगिन तापते हैं । मैंने कहा, 'अरे, तू भी पाँच रुपये की अगिन ताप ले !'

मुनीम : फिर उसने क्या कहा, सेठ जी ?

दुलीचन्द : कहेगा क्या···लालच बुरी बलाय ! समझा न ? उसने कहा कि मैं एक लाख की पेटी लाऊँ और तुम मुझको पाँच रुपये दो ! मैंने कही कै अरे उस दिन एक

बोझेवाले पै पाँच हज़ार की पेटी उठवा के लाया था सो मैंने उसे चवन्नी दी थी। तुमको तौ पाँच रुपये देता हूँ। कुछ कम है ? वो नईं माना तौ मैंने सवा पाँच कहा। वो जाने लगा तो मैंने कहा कि ऐसे भरोसे का आदमी चला जा रिया है। तो मैंने दस कहा फिर भी नईं माना। तब मैंने जी कड़ा करके पचास की बोली बोल दी।

मुनीम : बड़ी हिम्मत का काम किया, सेठ जी !

दुलीचन्द : अरे दुनिया तो पैसे की गुलाम है। उसने कहा कि अगर पाँच की ही बात है तो आपको पाँच हज़ार देना चाहिए।

मुनीम : फिर ?

दुलीचन्द : अरे हज़ार की बात सुनके तो मेरा दिल धड़कता था, पाँच हज़ार की बात पै तो जय राधे गोपाल हो जाता। बड़ी मुश्किल से पाँच सौ पै राज़ी हुआ।

मुनीम : राज़ी हो गया ? वाह, वाह, सेठ जी ! कोई भाव ठहराय तो आपको सामने कर दे ! तो वो कुन्दन लाख रुपये की पेटी कब लाएगा ?

दुलीचन्द : आज···अभी···अब आताई होगा पेटी लेके ! वो कहता था—बड़ा जोख़म का काम है, सेठ जी ! जो केसो नाम का पुलस निसपिट्टर आया है, वो बड़ा जालम है। बड़ा जालम ! अरे, उसी ने तो दस्तावेज़ निकाल के सब चौपट कर दिया, नईं तो कौन जानता था कै दुकान की सारी जायजात अचल की है। समझा न ?

मुनीम : नहीं, सेठ जी ! केसव से चौकन्ना रैना चाइए। उसकी आँखें, जो है सो, ऐसी चढ़ी थीं कि जैसे सबको फाँसी पै चढ़ा देगा।

दुलीचन्द : मुनीम जी ! सो तो हई है। एक बात और है मुनीम जी ! कुन्दन कैता था कै जब मैं पेटी लाऊँ तो दूकान में किसी को भी नईं रहना चाहिए। न जाने किसके पेट में बात नै पचै। पुलस में रपोट कर दे। सो तुमको भी हटना पड़ेगा। अरे, मेरा विश्वास तौ तुम पै है। कोई तुमारा गला भी काट ले तो पेट कोई गुपत बात नईं उगलैगा, पै कुन्दन किसी का भरोसा नईं करता।

मुनीम : कोई बात नईं, सेठ जी, कोई बात नईं। मैं अबी से हट जाता हूँ।

दुलीचन्द : सो तो तुम हटी जाओगे, एक लिफाफे में पाँच सौ के नोट निकाल करके मेरे हाथ में दे दो, जिससे मामला तुर्त-फुर्त हो जावे, नईं तो किसी ने कुछ सूँघ लिया तौ लक्ष्मी जी का नाम बदनाम हो जाएगा। समझा न ?

मुनीम : अभी लो, जो है सो।

[मुनीम बही हटाकर सन्दूक खोलता है। गिनकर पाँच सौ के नोट लिफाफे में रखता है और सन्दूक बन्द करके लिफाफा सेठ जी के हाथ में देता है—]

लीजिए सेठ जी, पूरे पाँच सौ के नोट हैं।

दुलीचन्द : अरे, तुम कढ़े नईं, मुनीम जी, अरे पाँच सौ नईं, चार सौ के रखो ! कह देंगे, भूल हो गई गिनने में। अगर उसने चुपचाप लिफाफा ले लिया तो पाँच सौ के बदले में चार सौ··· (**हँसते हुए**) ऐं···पाँच सौ के बदले में चार सौ···ऐं···चार सौ···चार सौ फिर वो थोड़े माँगने आएगा ?

मुनीम : आप बहुत ऊँची बात करते हैं सेठ जी ! जो है सो। अच्छा दीजिए।

[मुनीम लिफाफा लेकर एक नोट निकालकर सन्दूक में रखता है और दुलीचन्द को देकर बही में लिखता है।]

मुनीम : चार सौ···चार सौ···इसे किस मद में डालूँ ?

दुलीचन्द : अरे, कर दो अचल के पुराने हिसाब में दाखल ! इसमें क्या होवै है।

मुनीम : बहुत अच्छा ! ये बात आपने अच्छी सुझाई ! जो है सो।

[बही में लिखता है।]

दुलीचन्द : अच्छा ! अब तुम जाओ, मुनीम जी ! अब कुन्दन आता ई होगा। कहीं उसने तुम्हें देख लिया तो मामला बिगड़ जाएगा। हाँ, सुनो, ज़रा मंगल को भेजते जाना।

मुनीम : बहुत अच्छा, जो है सो (**जाने लगता है।**)

दुलीचन्द : और सुनो, मंगल से कहना कै आज उसको उसके काम पै वैसी चार आने मिलेगा याने पच्चीस पैसे ! सरकार ने भी क्या हिसाब लगा दिया। पहले चार आने कहने में उतना दिल नईं धड़कता जितना पच्चीस पैसे कहने में दिल धड़कता है। कहाँ चार और कहाँ पच्चीस···पच्चीस···हाय पच्चीस···चार से छः गुना ज्यादा···

मुनीम : मैं तो मंगल से चार आने ही कहूँगा, बल्के चवन्नी, जो है सो।

दुलीचन्द : अरे, तुम कढ़े हुए मुनीम हो। तुम्हारी क्या तारीफ करूँ ! समझा न ? मंगल को भेजते जाना।

मुनीम : बहुत अच्छा सेठ जी ! जै गोपाल जी की।

दुलीचन्द : जै गोपाल जी ! जै गोपाल जी !

[मुनीम का प्रस्थान]

दुलीचन्द : मुनीम जी भी मेरी तारीफ करेंगे कि मैंने भी कैसा सौदा ठीक किया है ! पाँच सौ···नहीं, नहीं, चार सौ में एक लाख ! वाह रे गोवर्धनधारी ! तुमने एक उँगली पै गोवर्धन पर्वत उठाया था, मैंने भी चार सौ पै एक लाख उठाया ! वाह, वाह ! भगवान, होय तो ऐसा हो ! कै भक्त को भी अपने बराबर बना ले।

[मंगल का प्रवेश]

मंगल : जय गोपाल जी, सेठ जी !

दुलीचन्द : अरे, वाह रे मंगल। तू भी इत्ता अच्छा नौकर है कि गोवर्धनधारी के पास भी इत्ता अच्छा नौकर न होगा। मेरे काम में अपने को ऐसा घुला देता है जैसे समझा न, जैसे नमक, जो है सो, पानी में घुल जाता है। वाह रे नौकर ! क्या कर रहा था ?

मंगल : सेठ जी, आपकी जो फटी पगड़ी थी न, उसको सिल के रंग रहा था।

दुलीचन्द : अरे, वाह रे मंगल ! तू तो ऐसा अच्छा सिलाई का काम करता है कि अगर किस्मत भी फट जाए तो उसे सिल के उस पर रंग चढ़ा दे ! अच्छा, कौन-सा रंग दे रहा है पगड़ी में ?

मंगल : कहें जी, तो पीला कर दूँ जी !

दुलीचन्द : पीला ! आहा, पीतम्बरधारी किशन भगवान को भी तो पीला रंग अच्छा लगता है। तू तो ग्यान की बातें भी खूब जानता है। जैसा किशन भगवान का पीला पीतम्बर तैसे ही मेरी पीली पगड़ी, समझा न ?

मंगल : मैंने समझा सेठ जी ! कै आप गिरधर गोपाल जी की पूजा करते हैं तो गिरधर गोपाल जी के पीतम्बर का रंग भी आपको अच्छा लगता होगा जी।

दुलीचन्द : सो बात तो हई है ! समझा न ? अच्छा तेरे इस ज्ञान पै मैं तुझे पच्चीस पैसे···हाँ, हाँ, चार आने···यानी चवन्नी दे दूँगा।

मंगल : सब आपका ही तो है सेठ जी ! आपको देखता हूँ तो लच्छी जी का ध्यान हो आता है जी।

दुलीचन्द : सो तो होगाई, समझा न ? तौ···तौ···एक काम कर। लच्छमी जी को मिठाई का भोग लगा दे।

मंगल : कितना ? सवा पाव लड्डू जी ?

दुलीचन्द : सवा पाव तो बहुत है, मंगल ! सवा छटाँक से भी तो काम चल जाता है। लच्छमी जी खाती थोड़े हैं, देख लेती हैं ! जब देखनई देखना है तो जैसे सवा पाव वैसे सवा छटाँक।

मंगल : वाह सेठ जी ! कैसी धरम की बातें कहते हैं जी।

दुलीचन्द : अब दुनिया देख के ही तो धरम की बात करता हूँ। समझा न ? और तू मुझे समझता है, जब दुनिया मेरे गुनों की परख करेगी तो तेरा नाम भी मेरे नाम के साथ जुड़ा रहेगा, जैसे विशुन भगवान के नाम से···उसका क्या नाम है···? गरुड़, हाँ, गरुड़ का नाम जुड़ा रहता है ! समझा न ?

मंगल : सरकार ! कहते हैं कि जैसे बन्दर को पूँछ प्यारी रहती है, तैसे ही मैं भी सरकार को प्यारा लगता हूँ जी, पर सरकार, आज भोग लगाने की बात कैसी जी ?

दुलीचन्द : अरे, आज मैंने एक पक्का सौदा किया है। समझा न ? ऐसा पक्का, ऐसा पक्का जैसा पक्का कि भगवान के पितम्बर का रंग। वो क्या है, जानता है ? (**आँखें घुमाकर**) एक लाख का माल चार सौ में, समझा न ?

मंगल : वाह सरकार ! आपका सौदा तो कच्चा होताई नईं। और सेठों का व्यापार तो जी मच्छड़ की तरह है जी। गुन-गुन करके कान के पास चिल्लाता तो है मगर चुटकी से पकड़ लो जी तो मर जाए, पर सरकार का व्यौपार तो जोंक जैसा है। बदन में लग-भर जाए तो जोंक हाथी के चमड़े की तरह मोटी हो जावै जी !

दुलीचन्द : अरे मंगल ! तुझे इतना ग्यान कहाँ से आ गया रे ?

मंगल : सब आपके चरनों का पुन्य परताप है जी।

दुलीचन्द : तौ जे परताप तौ बढ़तई जावैगा, समझा न ? और जब तेरी रंगी हुई पीली

पगड़ी पहन के गद्दी पै बैठूँगा तो मालूम होयगा कै पहाड़ की चोटी पै सूरज निकला है, समझा न ?

मंगल : अरे सूरज तो डूब जाता है, पगड़ी थोड़े डूब सकती है जी।

दुलीचन्द : सच कहता है, मंगल, सच कहता है। अच्छा तौ जा, पगड़ी ऐसी रंग दे कि सूरज भी सरमा जाए ! समझा न ?

मंगल : तौ जाऊँ जी, सरकार !

दुलीचन्द : और हाँ, तू अब कमरे में न आइयौ। व्यौपार की बातें होवेंगी—समझा न ? व्यौपार की बातें तो गुपत रखने से ही सिद्ध होय हैं—समझा न ?

मंगल : सेठ जी ! गुपत की बात गुपत में ही सोभा देती है जी। अच्छा तो, साम हो गई। हाथ-मुँह धोएँगे जी ?

दुलीचन्द : व्यौपार करके ही मौं धोऊँगा। समझा न ? अच्छा तू जा। इस कमरे में मत आइयो।

मंगल : नहीं आऊँगा जी सेठ जी ! व्यौपार करने में मेरी बात की कौन कीमत जी !

दुलीचन्द : अरे, बड़ी कीमत है। समझा न ? मौके-मौके पर तूई तौ काम आता है, पर आज की बात न्यारी है। समझा न ?

मंगल : आपकी तौ जी सेठ जी, हरएक बात न्यारी है जी। अच्छा, सरकार ! जै गोपाल जी की।

दुलीचन्द : जै गोपाल, मंगल ! मैं तुझसे बड़ा खुश हूँ, समझा न ?

मंगल : अब आप जी खुस न होएँगे तो का चोर-बदमास खुस होयगा जी, जै गौपाल की। **(सिर झुकाकर जाता है।)**

[मंगल के जाने पर दुलीचन्द सतर्कता से भीतर का दरवाज़ा बन्द कर देता है। फिर आहिस्ते चलकर तख्त के पास आता है। तख्त पर बैठता है, फिर कुछ कदम बाहर के दरवाज़े की तरफ बढ़ाता है, फिर लौटकर धीरे-धीरे तख्त पर बैठता है। गोपाल हरी···गोपाल हरी···जपता है। बाहर के दरवाजे पर खटका होता है। झुककर बाहरी दरवाजे की ओर झाँकता है। फिर लौटकर कमरे की दो बत्तियाँ बुझा देता है, सिर्फ एक बत्ती का हल्का प्रकाश होता रहता है।

एक क्षण बाद एक व्यक्ति काले कपड़े पहने एक सन्दूक लिए प्रवेश करता है। वह फुसफुसाहट के स्वर में कहता है—'सेट जी !']

दुलीचन्द : **(उछलकर)** ले आए सन्दूक, कुन्दन ?

कुन्दन : बड़ी खबरदारी से लाया हूँ। किसी की नज़र मुझपै नहीं पड़ी। काले कपड़े से इसे ढक लिया था।

दुलीचन्द : **(हँसकर)** जैसा बचपन में तूने हरा दुसाला ओढ़ा था, समझा न ? ऊँसा ही तूने सन्दूक को भी उढ़ा दिया। वाह-वा···वाह-वा···

कुन्दन : सेठजी ! जादा बख्त नहीं है। सँभालिए इस सन्दूक को।

[दुलीचन्द सन्दूक लेकर छाती से लगाता है।]

दुलीचन्द : एक लाख···इस सन्दूक में हैं ?

कुन्दन : एक लाख से भी ज्यादा। अचल भैया ने और भी रुपए तो इसमें रखे होएँगे।

दुलीचन्द : हाँ, हाँ, जरूर रखे होएँगे। कुछ भारी भी तो है। डेढ़ लाख होएँगे। समझा न ?

कुन्दन : अब जितने होंय। आपकी किस्मत है, सेठ जी !

दुलीचन्द : अरे, तू बड़ा बहादुर है रे कुन्दन (**प्रसन्नता सेठजी के मन में नहीं समा रही है**) बड़ा बहादुर है ! समझा न ?

कुन्दन : बहादुरी तो बाद में कहना। पहले मेरे पाँच सौ हाथ पै धरिए।

दुलीचन्द : अरे, पाँच सौ की क्या बात, तैंने तो पाँच हज़ार का काम किया है।

कुन्दन : अभी तो वायदे के मुताबिक पाँच सौ दे दो।

दुलीचन्द : अरे, ले लो, ले लो बेटा कुन्दन ! अचल ने तुझे दुसाला दिया था, मैं तुझको पाँच सौ भी न दूँ ? ले ले, तूने तो मुझे डेढ़ लाख की सन्दूक दी है। ले ले अपने पाँच सौ।

कुन्दन : अब तो जल्दी दीजिए।

दुलीचन्द : अरे, तौ सन्दूक तौ भीतर रख आऊँ !

[शीघ्रता में भीतर जाता है। कुन्दन एक बही उठाकर अपने कपड़ों में छिपा लेता है। दुलीचन्द एक बन्द लिफाफा लेके आता है।]

दुलीचन्द : (**लिफाफा देते हुए**) ले भाई, अपना मिहनताना ! समझा न ? बेटे कुन्दन ! तैंने ऐसा काम किया है, समझा न ? कि मैं जनम-जनम तक तुझसे उरिन नहीं हो सकता, बेटे। तू तौ ऐसा काम करता है कि जमराज तक को उसका पता न चले। जमराज तक को, समझा न ?

कुन्दन : अच्छा, सेठ जी, जै गोपाल जी।

[शीघ्रता से जाता है।]

दुलीचन्द : (**प्रसन्नता से उछलकर दोनों बत्तियाँ जलाता है।**)

वाह रे गोवर्धनधारी, किशन मुरारी !
चाहे तो मेरु को छार करै और
चाहे तो छार को मेरु बनावै ॥

हे गोवर्धनधारी ! तेरी लाख-लाख बलिहारी, कै तूने मेरा एक लाख रुपया ब्याज के साथ डेढ़ लाख बना के लौटाया ! धन्न-धन्न ! तूने अपने बखत में सुदामा को ही निहाल नहीं कीना, इस कलजुग में सेठ दुलीचन्द को भी निहाल कर दीना। वाह, वाह रे, प्रभू !

[दुकान में लगी श्री गोपाल जी की तस्वीर के आगे हाथ जोड़ता है। बाहर से किसी के आने की आवाज़। दुलीचन्द अपने कपड़े सँभालकर दरवाजे की ओर बढ़ता है। अचल का प्रवेश]

अचल : चाचा जी ! प्रणाम !

दुलीचन्द : अरे, बेटा अचल ! वाह बेटा ! अच्छा है न ? बहुत दिनों बाद दीखा, मैंने कहा। अरे सब ठीक है न ? तेरा मुँह उदास-उदास है। बेटा, तबीयत तो ठीक है ! समझा न ?

अचल : आपके आशीर्वाद से ठीक है, चाचा जी।

दुलीचन्द : और रुज़गार तो ठीक चलै है ? मैंने तो तुझसे कहा था कै अब तस्वीर-उसवीर बनाना छोड़ दे। रुज़गार में तसवीर बनाना ऊँसा ही है जैसे माखनचोरी-लीला में गौचरावन-लीला।

अचल : सब लीलाएँ ठीक हैं, चाचा जी ! मैं अपने एक कार्य में आपकी आज्ञा लेने आया हूँ।

दुलीचन्द : किसी ने कोई बदमासी तो नहीं कीनी ?

अचल : आपके रहते मुझसे बदमाशी कौन कर सकता है ? एक बात में आपकी आज्ञा लेने आया हूँ।

दुलीचन्द : कहो-कहो बेटा ! तुम तो लाखों में एक हो। पृथिमीं का सुरग बनाते हो।

अचल : सब आपका आशीर्वाद है चाचा जी ! बात यह है चाचा जी, कि मैं एक ट्रस्ट कायम करना चाहता हूँ। हमारे देश में तीन वर्ग बहुत दुखी हैं···

दुलीचन्द : तीन बरग क्या, देस के सभी बरग दुखी हैं, पै सेठों का बरग तो दुखी नहीं है ?

अचल : (**मुस्कराकर**) नहीं, सेठों की बात नहीं कर रहा हूँ। मैं दूसरी बात कर रहा हूँ। तो जिन तीन वर्गों को ठीक होना चाहिए उसमें है साधुओं का वर्ग, अन्धे-लूलों का वर्ग और भिखारियों का वर्ग।

दुलीचन्द : और चोरों का वर्ग ?

अचल : उसके लिए तो हमारे केशवकुमार काफी हैं। तो साधुओं का वर्ग ऐसा है कि वह भोले-भाले आदमियों को बहकाता है, जोगिया कपड़ों में वह झूठे धर्म का डंका पीटता है।

दुलीचन्द : अरे पै वो तो गोवर्धनधारी किशन मुरारी का कीर्तन करते हैं, ध्यान धरते हैं।

अचल : मेरे कहने का मतलब ये नहीं कि सभी साधू अधर्मी हैं। कुछ तो बहुत पहुँचे हुए हैं। लेकिन अधिकांश साधू जनता को धोखा ही देते हैं। मैं चाहता हूँ कि देश में स्थान-स्थान पर आश्रम बनें और वहाँ जनता को इन साधुओं के द्वारा सच्चे धर्म की शिक्षा दी जाए।

दुलीचन्द : वाह, वाह, ये तो पुण्य का काम होगा, अचल बेटे !

अचल : दूसरा वर्ग लँगड़े और लूलों का है। इनको सही ढंग से काम सिखलाया जाए और वे ऐसे काम कर सकें जिससे इज़्ज़त के साथ अपनी ज़िंदगी बिता सकें।

दुलीचन्द : बहुत अच्छा···बहुत अच्छा···बेटे !

अचल : और तीसरा वर्ग भिखारियों का है। ये रात-दिन घर-घर माँगते फिरते हैं।

कोई काम नहीं करते। इनके द्वारा संगठित श्रम-दान होना चाहिए। मैं ऐसे केन्द्रों की स्थापना करना चाहता हूँ जहाँ भिखारी लोग मेहनत करके देश की सम्पत्ति बढ़ा सकें।

दुलीचन्द : वाह-वाह, तू तो सचमुच पृथिमीं पै सुरग बनाना चाहता था। अब वो ही देखो, वो उस दिन भिकारन आई थी। तुमने हरा दुसाला दिया सो दिया, ऊपर से हमारे पाँच हज़ार रुपये लेकर भाग गई थी। ऐसे भिकारियों के बारे में तुमने बहुत ठीक सोचा। अचल बेटे, इनसे तो खूब कसकर काम लिया जाए तब एक पैसा दिया जाए। और···और कुछ बोझा ढोने वालों के बारे में सोचा ?

अचल : वे तो मेहनत करते ही हैं। तो आपकी आज्ञा है कि मैं एक ऐसा ट्रस्ट कायम करूँ ?

दुलीचन्द : अब तुम्हारे पास सारी जायदाद का रुपया है बेटे ! तुम सब कुछ कर सकते हो। समझा न ?

अचल : तब ठीक है। और चाचा जी, मैं उस ट्रस्ट का नाम 'श्री सेठ दुलीचन्द ट्रस्ट' रखना चाहता हूँ।

दुलीचन्द : अरे बेटे ! धन्न है, धन्न है, समझा न ? अब तुम्हीं हमारा नाम उजागर न करोगे तो और कौन करेगा ? गिरवरधारी किसन मुरारी की मुझ पर किरपा है तो तुमको ये बात सुझा दी। वाह, वाह, बेटे तुम्हारी क्या तारीफ करूँ, जो है सो।

अचल : अच्छा यह बतलाइए चाचा जी, कि वो जो कुन्दन है न ? वो आपके पास पुरानी सन्दूक पहुँचा गया ?

दुलीचन्द : **(आँखें फाड़कर)** आँ···आँ··· पुरानी सन्दूक ?···

अचल : हाँ, पुरानी सन्दूक ! मैंने सोचा कि आप उसी सन्दूक में जिन्दगी-भर रुपये रखते रहे हैं। आपको उससे बड़ा मोह हो गया होगा और वैसी सन्दूक बनने में अभी देर लगेगी तो मैंने सोचा कि कुन्दन के हाथ वह सन्दूक आपके पास पहुँचा दूँ। तो वह सन्दूक आपके पास पहुँच गई !

दुलीचन्द : वो···वो···एक लाख रुपया···वाली···जी···

अचल : हाँ···वही एक लाख रुपयेवाली सन्दूक, उसमें आपने जो रुपया···कहा था···

दुलीचन्द : तो कुन्दन तो कहता था कि वो···वो···डेढ़ लाख हो गया···?

अचल : डेढ़ लाख क्या···धर्म में लगे तो पाँच लाख समझना चाहिए···चाचा जी ! उससे से वह रुपया निकालकर···

दुलीचन्द : **(घबराहट से)** नि···का···ल···क···र **(सिर पर हाथ रखता है)**

अचल : जी हाँ, वही रुपया निकाल कर तो मैंने ट्रस्ट कायम किया है। आपके नाम का श्री सेठ दुलीचन्द ट्रस्ट। अब उसी सन्दूक में ट्रस्ट के सब कागजात हैं।

दुलीचन्द : **(सिर पर हाथ रखकर)** मर···गया सेठ दुलीचन्द···कागज़ात···कागज़ात रुपये नहीं···?

अचल : अरे चाचा जी ! आप अमर हो गए। इस देश में जितने साधू-भिखारी और

लूले-लँगड़े हैं वे सब आपका जयजयकार मनाएँगे।

दुलीचन्द : तो तुमने लूले-लँगड़े और भिकारियों से जयजयकार मनावाया है हमारा ! तुमने··· (**व्यंग्य से**) वाह बेटा ! अब जयजयकार करने वाला कोई नहीं रहा। तुमने···

अचल : यही तो हमारे देश के हृदय है। इन्हीं का जयजयकार असली जयजयकार है।

दुलीचन्द : ऐसे जयजयकार को लेके क्या करूँगा—हे गिरबरधारी !

अचल : गिरबरधारी जी ने ही तो यह कृपा की कि अपनी पृथ्वी पर स्वर्ग बसा दिया···

दुलीचन्द : (**रोते हुए स्वर में**) अरे इहाँ तौ नरक बसा दिया !

अचल : नरक नहीं, चाचा जी, और मैंने आपकी ओर से यह घोषणा कर दी कि आपने कुन्दन को पाँच सौ रुपये अलग से दान दिया है। उसने पाँच सौ रुपया आपसे माँगा था ? आपने उसे पाँच सौ दे दिया !

दुलीचन्द : अच्छा तो (**कुर्सी पर लुढ़ककर**) तुमने···तुमने उससे कहा था कि वह मुझसे पाँच सौ रुपय माँगे, मैंने कहा।

अचल : कहा तो था लेकिन कोई बात नहीं, अगर आपने नहीं दिया तो मैं दे दूँगा ! हाँ, जब मैंने ट्रस्ट बनाया था तभी मैंने कुन्दन से कह दिया था कि सेठ जी की नई दूकान खूब चल निकली है। उनसे मैं तुम्हें पाँच सौ रुपये दिला दूँगा।

दुलीचन्द : अरे तो क्या मेरी नई दूकान इसीलिए है कि मैं भिकारियों को पाँच-पाँच सौ रुपया देता फिरूँ ?

अचल : दूकान तो दान से ही चलती है, चाचा जी ! खैर, मैं थोड़ी देर बाद आता हूँ।

[नेपथ्य से केशव की आवाज़ आती है।]

केशव : सेठ साहब हैं ?

[केशव का कुन्दन के साथ प्रवेश]

दुलीचन्द : आज तो सत्यानास ही दीखे है, हे कृष्ण मुरारी, रच्छ्या करो।

केशव : चाचा जी, नमस्ते। चाचा जी ! अचल से मालूम हुआ कि आपने भिखारियों की हालत सुधारने के लिए कुन्दन को पाँच सौ रुपयों का दान दिया था। लेकिन आहने जिस लिफाफे में रुपये रखकर दिये थे, वह तो खाली था। यह अभी कुन्दन ने बतलाया।

दुलीचन्द : कुन्दन ने बतलाया तो उससे पूछिए कि उसने खाली लिफाफा क्यों लिया ! इसकी नियत ठीक नहीं मालूम होती निसपिट्टर साहब ! ये दुबारा पाँच सौ रुपया लेना चाहता है।

कुन्दन (**सेठ जी से**) आपने किसलिए पाँच सौ रुपये देने की बात कही थी, बतलाऊँ ? बतला दूँ ?

दुलीचन्द : बतलाओगे क्या ! रुपयों के बारे में झूठ बोल सकते हो तो सब बातों में भी झूठ बोल सकते हो। समझा न ?

केशव : लेकिन (**बही निकालते हुए**) यह बही आपकी दूकान की है ?

दुलीचन्द : अरे ये बही आपके पास कैसे पहुँच गई ? अरे···अरे ये कुन्दन की शैतानी है। मुनीम जी···मुनीम जी !

केशव : मुनीम जी यहाँ नहीं हैं। कहीं और हैं। लेकिन मैं यहाँ हूँ। ओझाजी जी ने जैसे सेठानी जी का भूत पकड़ लिया था, इसी तरह यह बही भी पकड़ में आ गई।

दुलीचन्द : निसपिट्टर साहब ! जलने वाले तो जाली बही भी बना देते हैं, समझा न ? मेरी दूकान चल निकली है तो सब जले-भुने बैठे हैं। बही तक जाली बना देते हैं।

केशव : नहीं सेठ जी ! इस पर आपके दस्तखत हैं खास। इसमें लिखा है···लिखा है··· पढ़ूँ (**पढ़ते हुए**)

इन चीजों की मिलावट हो :

1. लाल ईंटों की पिसी हुई बुकनी 40 मन—लाल मिर्च में।
2. पपीते के बीज 18 मन—काली मिर्च में।
3. चमड़े की छीलन 10 मन—चाय में।
4. डालडा के टिन 118—घी में।

यह मिलावट की क्या बात है ?

दुलीचन्द : अरे किसी आसामी ने हँसी-हँसी में लिख दिया होगा। आप उसे सच माने हैं ? ऐसा हँसी-मजाक तो दूकानों में होता ही रहे है।

केशव : जी नहीं। यह मजाक नहीं है। इस तरह की मिलावट से जनता की जान पर बन आती है, यह आप नहीं समझते।

दुलीचन्द : अरे तो बिना मिलावट के तो दुनिया में कोई चीज भी नहीं है, निसपिट्टर साहब !अरे ज़िन्दगी में सुखी-सुख थोड़े है, उसमें दुख भी तो मिला हुआ है, दिन के साथ रात मिलती है तभी पूरा दिन होवै है। पुन्य के साथ पाप नै होता तो बिहारी किसन मुरारी भवसागर का खेल कैसे खेलते ? और···और मिलावट की बात खराब होती तो आप जे बतलाइए कि गंगा जी के साथ जमुना जी क्यों मिलतीं ? संगम कैसे होता ? अरे उसी से तो पिरागराज का महातम है ! अरे गंगा मैया—जमना मैया ! तुम दोनों ने अच्छा संगम कीना जिसको लेके लोग मुसीबत में फँसते हैं। हाय-हाय !

केशव : संगम की बात दूसरी है, यह तो जुर्म ! जब लोग जुर्म करते हैं तो फँसते ही हैं। अब आपकी दूकान की चीज़ें जाँच के लिए दिल्ली भेज रहा हूँ। जैसी रिपोर्ट आएगी, वैसा ही काम किया जाएगा !

दुलीचन्द : अब काम करना तो आपके हाथ में है, निसपिट्टर साहब ! आप चाहें तो गधे को घोड़ा बना दें, चाहें घोड़े को गधा ! बना दो गधा हमको।

[अचल का प्रवेश]

अचल : (**कुन्दन से**) कुन्दन ! तुम्हारा नाम श्रमदान के स्वयं सेवकों में लिख गया है। तुम मेरी दूकान से पाँच सौ रुपये लेकर संगठन का कार्य आरम्भ करो। मैंने इसका इन्तज़ाम कर दिया है।

कुन्दन : मैं जा रहा हूँ, अचल भैया ! नमस्ते।

[सबको नमस्ते कर प्रस्थान]

केशव : (**अचल से**) चाचा जी फिर फँसे अचल !

दुलीचन्द : अब पुलिस के लोग चाहें तो भगवान को फँसा सकते हैं, समझा न ? मैं तो खैर आदमी हूँ। पै मालूम हो गया कै ये सारी दुनिया एक गोरखधंधा। हे गोरखनाथ जी ! तुमने काहे तो औतार लिया था जिससे अपने धन्धे से तुम हमारा धन्धा ही चौपट कर रहे हो, मैंने कहा।

अचल : चाचा जी, अब आपके ट्रस्ट से तो हमारे देश का धन्धा ठीक ही चलेगा।

दुलीचन्द : केशव तो मेरे धन्धे को दिल्ली भेज रहा है। अब तो देखता हूँ कि दुनिया मेरे लायक नहीं रह गई। अब तो दुनिया छोड़ के चला जाऊँगा।

केशव : नहीं, दुनिया छोड़ने की बात नहीं है, आप ये धन्धा छोड़ दीजिए।

दुलीचन्द : जब दुनिया छोड़ दूँगा तो ये धन्धा तो छूट जाएगा, गोविन्द हरी ! (**ऊपर देखकर**) ले लो मुझको अपनी सरन में। अब दुनिया मेरे पीछे ऐसे पड़ गई जैसे कालिया नाग के पीछे पड़ गए थे !

अचल : चाचा जी ! आप कालिया नाग तो हैं नहीं !

केशव : लेकिन जालिया नाग तो हैं ही।

दुलीचन्द : निसपिट्टर साहब; आप ये नहीं देखते कै भगवान ये माया ही जाली बनाई है। आप किस-किस का केस दिल्ली भेजेंगे ? अब तो दुनिया में मेरा गुज़ारा नहीं हो सकता। बेटा अचल ! ये दुकान भी तुम सँभालो। निसपिट्टर साहब, अब मेरा केस दिल्ली न भेजकर भगवान के पास भेज दो।

केशव : चलिए अच्छा है, सेठ जी ने अपना धन्धा छोड़ दिया, यह दूकान भी अचल को दे दी। एक ट्रस्ट कायम हो गया जिससे देश की बेकार जनता काम लग जाए। गांधी जी 'चेंज आफ हार्ट', यानी मन में परिवर्तन हो जाना सबसे बड़ी बात समझते थे।

दुलीचन्द : तो अब मेरा केस दिल्ली तो नहीं भेजोगे ?

केशव : इस बात पर तो मैं अचल से बातें करूँगा क्योंकि अब यह दूकान उसी की है। अचल तो अब इस दूकान का भी मालिक है।

दुलीचन्द : हे दुनिया के सामी किसन मुरारी, अब मेरा केस तुम अपने हाथ में ले लो। मैं तो अब जाता हूँ।

[जल्दी से प्रस्थान करता है।]

केशव : यह केस तो तुम्हारे चाचा जी का है। मैं शहर के उन सारे केसों की जाँच करूँगा जिनमें चोरबाज़ारी और मिलावट चलती है।

अचल : केशव, मिलावट की बात तो अपनी जगह पर है। वनस्पति घी तक आज बाज़ारों से गायब हो रहा है। गोदामों के तलघरों में छिपाकर रक्खा जाता है कि त्यौहारों के मौके पर जनता से दूने दाम वसूल किए जाएँ, बेचारी जनता तड़पती है और ये रोज़गारी लोग उनकी लाशों पर बैठकर कहकहे लगाते हैं। हमारे देश का इतना पतन हो जाएगा, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

केशव : मैंने तो प्रण किया है कि या तो मैं इस देश से चोरबाज़ारी और धोखेबाज़ी बन्द कर दूँगा या नौकरी छोड़ दूँगा।

[रामनामी दुपट्टा सिर पर बाँधकर और श्याम हरि दुपट्टा कंधे से ओढ़कर दुलीचन्द आता है। माथे पर लम्बा टीका।]

दुलीचन्द : स्याम हरी···स्याम हरी।···क्यों निसपिट्टर साहब, मैंने सुना कै तुम नौकरी छोड़ दोगे—छोड़ दो···छोड़ दो। मैंने भी दुनिया छोड़ दी। हम दोनों साथ चलेंगे। समझा न ! अचल के कहने के मुताबिक पृथिमीं पर सुरग बनाएँगे। तुम अब निसपिट्टर न रहकर मेरे चेले बन जाओ। मैं धूनी रमाऊँगा तुम हमारी चिलम भरना।

केशव : चिलम तो बाद में भरूँगा पहले आप इस दूकान पर अचल का नाम तो भरिए।

दुलीचन्द : अरे, दिल पै भरा है तो रजिस्टर पर तो भर ही जाएगा। अब रजिस्टर दिल से बड़ा थोड़े ही है। समझा न ?

अचल : और लिखने की बात क्या है; सेठ जी की ज़बान कागज़ की लिखा-पढ़ी से ज़्यादा कीमती है।

केशव : क्या सेठ जी ने सचमुच ही दूकान छोड़ दी ?

दुलीचन्द : अरे, मैंने दूकान नहीं छोड़ी, दूकान ने मुझे छोड़ दीना। ये तो सब धोखे की टट्टी है···गोविन्द हरी···गोविन्द हरी···अब तो दुनिया भी साली छोड़ देने लायक है।

केशव : दुनिया आपकी साली है सेठ जी ?

दुलीचन्द : अरे, तुमने फिर सेठानी जी की याद दिला दी। हे सेठानी···कृष्ण हरी···हे सेठानी···कृष्ण हरी···दोनों में से एक ही मेरे पास आ जाओ···पिरिथिमीं में सुरग यहीं बन जाएगा।

[कहते हुए जाता है। केशव और अचल उनकी ओर मुस्कराकर देखते हैं।]

[परदा गिरता है।]

जय बाङ्ला

प्रारंभिक शब्द

इतिहास के दर्पण में बाङ्ला देश का नर-संहार बड़े भयानक रूप में प्रति-बिम्बित होगा। एक महादैत्य और मुट्ठी-भर पूर्वी बंगाल के लोग—किन्तु ऐसे लोग जिन्होंने अन्याय और हिंसा का प्रतिकार अपना रक्त देकर किया है। उन्होंने अपनी वेदी को सच्चे अर्थों में आत्म-बलि की वेदी बना दिया है।

संसार में किस मानव के मन पर इस भीषण अत्याचार की प्रतिक्रिया न होगी? कवि और नाटककार तो स्वयमेव ही संवेदनशील होते हैं।

मैंने जब इस ऐतिहासिक हत्याकाण्ड पर लिखसे की इच्छा व्यक्त की तो अनेक आत्मीय बन्धुओं ने मुझे प्रोत्साहित किया। इनमें श्री रामानुग्रह प्रसाद वर्मा, डा० रामधन शर्मा, श्री गोपीनाथ श्रीवास्तव, श्री देवीदीन त्रिवेदी, डा० रामफेर त्रिपाठी, डा० त्रिलोकीनाथ सिंह और कुमारी रेवा शर्मा प्रमुख हैं। इनके प्रति आभार मानता हूँ।

नाटक में घटनाएँ सत्य हैं, नाम कल्पित हैं।

—रामकुमार वर्मा

पात्र-सूची

(प्रवेशानुसार)

पुरुष

फ़रीद ख़ाँ :	:	पाकिस्तानी हवलदार, आयु 30 वर्ष
अब्दुल्ला : ख़ाँ	:	फ़रीद ख़ाँ का सहायक, आयु 25 वर्ष
यूसुफ़	:	फ़ातिमा का ख़ाविन्द, फलों का व्यापारी, आयु 48 वर्ष
शिशिर दा	:	मुक्ति फ़ौज का स्वयंसेवक, आयु 26 वर्ष
फ़ीरोज़ ख़ाँ	:	बलूचिस्तानी सिपाही, आयु 28 वर्ष
हुसेन ख़ाँ **रशीद ख़ाँ** **सुलेमान** **हफ़ीज़** **रसूल**	:	शमशेर जंग के पाकिस्तानी सिपाही
शमशेर जंग	:	पाकिस्तान की फ़ौज का कप्तान, आयु 26 वर्ष
धीरेन्द्रनाथ	:	ढाका विश्वविद्यालय का विद्यार्थी, आयु 24 वर्ष
सिपाही आदि		

स्त्री

फ़ातिमा	:	यूसुफ़ हुसेन की बीवी, आयु 45 वर्ष
सक़ीना	:	फ़ातिमा की बच्ची, आयु 6 वर्ष
सूफ़िया	:	फ़ातिमा की पड़ोसिन, आयु 50 वर्ष
सुधारानी	:	धीरेन्द्र की वाग्दत्ता, आयु 20 वर्ष

प्रथम अंक

काल : 27 मार्च सन् 1971
समय : संध्या के 7 बजे

स्थान : ढाका में धान मंडी रोड नं० 18 के बगल की गली में यूसुफ़ हुसेन का मकान। नेपथ्य में रुक-रुककर गोलियों के चलने की आवाज़।

[परदा उठने पर यूसुफ़ हुसेन के मकान का बरामदा दीख पड़ता है। शाम हो जाने के कारण सारे वातावरण में हल्का-सा प्रकाश रह गया है। बरामदे के आगे खुला हुआ आँगन है जिसमें लालटेन टाँगने का खंभा है। बरामदे में एक चटाई बिछी है और कोने में सब्जियों और फलों की टोकरियाँ रखी हुई हैं। पास ही बाँस और नारियल की रस्सी बने हुए दो-तीन मोढ़े रखे हुए हैं।

बरामदे की चटाई पर सक़ीना बैठी हुई है। कुछ डरी हुई-सी है। लकड़ी का एक खिलौना उसके हाथ में है। फिर बाहर गोली चलने की आवाज़ होती है। फ़ातिमा घबराई हुई बरामदे में आती है।]

सक़ीना : (**करुण स्वर में**) अम्मा, ये गोली फिर चलने लगी।

फ़ातिमा : हाय ! ये गोलियाँ फिर चलने लगीं और वो नहीं आए ! अभी तक नहीं आए। हाय अल्ला ! वो कहाँ रह गए ! इन गोलियों के चलने से······

सक़ीना : (**बीच ही में**) ये गोलियाँ क्यों चल रही हैं, अम्मा ?

फ़ातिमा : क्या बताऊँ, क्यों चल रही हैं। पाकिस्तानी फ़ौज के सिपाही हमें चारों तरफ से घेर रहे हैं। कहीं इधर न आ जाएँ।

सक़ीना : चारों तरफ से क्यों घेर रहे हैं, अम्मा ?

फ़ातिमा : अब तू बहस कर रही है। कहीं से गोली आकर लग न जाए ! तू अन्दर जाकर बैठ। हाय ! तेरे अब्बा अभी तक नहीं आए !

सक़ीना : अँधेरे में कहीं रास्ता न भूल गए हों ?

फ़ातिमा : कोई अपने घर का रास्ता भूलता है ? मैं उन्हें खोजने जाती हूँ, तू बगल में मक़सूद भाई के घर चली जा।

सक़ीना : नहीं अम्मा ! मैं नहीं जाऊँगी। तुम भी मत जाओ। मुझे डर लगता है। गोलियाँ चल रही हैं।

फ़ातिमा : सच है, मैं जाऊँगी भी कहाँ, पता नहीं, तेरे अब्बा कहाँ होंगे ! कहीं

पाकिस्तानी सिपाहियों के हाथों में न पड़ गए हों ! पिछले दो दिनों से फ़ौज के सिपाही ढाका शहर को लूट रहे हैं, दूकानें जला रहे हैं, बेकुसूर लोगों को गोलियों से मार रहे हैं। मैं इन सब्ज़ियों और फलों की टोकरियों को अन्दर रख लूँ, नहीं तो ये भी लुट जाएँगी।

सक़ीना : (**पुकारकर**) अम्मा ! मेरा गुड्डा भी अन्दर रख लो न ? लगता है, बेचारा गोलियों की आवाज़ सुनकर ज़मीन पर गिर पड़ा। मेरा गुड्डा ?

[अपना गुड्डा उठाती है।]

फ़ातिमा : तू अपने गुड्डे के गिरने की बात कहती है ! न जाने कितने बेकुसूर इन्सान गोलियाँ खाकर गुड्डों की तरह गिर रहे हैं।

सक़ीना : और काठ के टुकड़ों से बना हुआ मेरा रंगीन घर ! इसे भी तो किसी कोने में छिपा दो, अम्मा !

फ़ातिमा : (**रुककर देखते हुए**) ये घर ? इससे बड़े-बड़े घरों में आग लगाई जा रही है, बेटी। शहर की बड़ी-बड़ी इमारतें जलकर ख़ाक हो रही हैं। अपने रंगीन घर को भी कमबख़्त पाकिस्तानियों को दे दे। वे इसमें भी आग लगा दें।

सक़ीना : मैं क्यों दे दूँ, अम्मा ? मेरा इतना अच्छा घर है। पाकिस्तानी सिपाहियों से कह दूँगी कि मेरे गुड्डे के साथ तुम लोग भी इस घर में रह सकते हो।

फ़ातिमा : (**व्यंग्य से**) वे रहेंगे ? अगर पाकिस्तानी सिपाही ऐसे होते तो अपना बाङ्ला देश भी तो उनके लिए एक ख़ूबसूरत घर हो सकता था लेकिन वे लोग तो ज़ालिम हैं। वे मुहब्बत से रहना नहीं जानते, शैतानों की तरह आग लगाना जानते हैं।

[फिर गोली चलने की आवाज़।]

फ़ातिमा : आय ! यह फिर गोली चली। मैं दरवाज़ा बन्द कर दूँ, कहीं कोई सिपाही भीतर न आ जाए !

[दरवाज़ा बन्द करने जाती है।]

सक़ीना : दरवाज़ा बन्द कर दोगी तो अब्बा कैसे भीतर आएँगे, अम्मा ?

फ़ातिमा : वे पीछे के दरवाज़े से आ जाएँगे, जहाँ से वे हमेशा आते हैं। लेकिन वे अभी तक नहीं आए। न जाने कहाँ रह गए !

सक़ीना : लालटेन जला दो न, अम्मा ! रास्ते में उजेला हो जाएगा। अँधेरे में डर भी लगता है।

फ़ातिमा : सारे ढाका शहर में अँधेरा ही अँधेरा है तो यहाँ अँधेरा क्यों न होगा ! लेकिन ले आ भीतर से माचिस, लालटेन जला दूँ।

सक़ीना : (**भीतर जाते हुए**) अभी लाई, अम्मा ! (**प्रस्थान**)

फ़ातिमा : मैं तो उन्हें जाने से रोक रही थी। कहते थे कि अपने फलों की दूकान देख लूँ। ठीक तरह से बन्द है कि नहीं। लेकिन खुली और बन्द होने से क्या ! उन पाकिस्तानी सिपाहियों को आग लगानी है तो वे आग लगा के ही रहेंगे, चाहे

दूकान खुली हो, चाहे बन्द हो। नौ बजे सुबह से गए हैं, शाम के सात बजने जा रहे हैं। कहते थे, ग्यारह बजे तक आ जाएँगे और अभी तक नहीं आए···नहीं

सक़ीना : (**नेपथ्य से**) अम्मा ! माचिस तो ख़ाली है।

फ़ातिमा : लो, आज माचिस भी ख़तम हो गई ! (**ज़ोर से**) मकसूद भाई के घर से माँग ले माचिस।

सक़ीना : (**नेपथ्य से**) अच्छा, अम्मा !

फ़ातिमा : अब गोलियों की आवाज़ बन्द हो गई है, लगता है, फ़ौज के सिपाही दूसरी तरफ़ चले गए। वहाँ भी वो आग लगाएँगे। हाय ! दो दिनों से आग लगी है सारे शहर में। मुझे तो ये आसार पहले ही दिखाई दे रहे थे। मैंने कितनी बार सक़ीना के अब्बा से कहा कि सब्ज़ी मंडी से दूकान उठा लो। यहीं कहीं पास रख लो। आने-जाने में तकलीफ़ होती है लेकिन वो नहीं माने और आज यह दिन आया कि उनका कहीं पता नहीं है।···कहीं पता नहीं है। मैं उन्हें कहाँ देखने जाऊँ। (**सिसकियाँ**)

[सक़ीना के साथ सुफ़िया का प्रवेश]

सुफ़िया : बहिन फ़ातिमा, मक़सूद इधर आया ? अरे, तुम रो रही हो ?

फ़ातिमा : (**सिसकियाँ लेते हुए**) बहिन सुफ़िया, वो अभी तक नहीं आए। बड़ी देर से रास्ता देख रही हूँ। नौ बजे से गए हैं, ग्यारह बजे आने को कह गए थे। सात बज रहे हैं, अभी तक नहीं आए।

सुफ़िया : आते होंगे। मकसूद भी तो नहीं आया। कर्फ्यू लगते ही कहीं छिप गए होंगे। मौका पाकर आ जाएँगे। तुमने माचिस माँगी थी। यह लो, (**माचिस देती है**) उजेला कर लो। अँधेरा बड़ा भयावना लगता है।

सक़ीना : (**कुछ करुणा से**) अम्मा बहुत रोती हैं।

सुफ़िया : रोने से क्या होगा, फ़ातिमा। देखो, मक़सूद भी नहीं आया। अखबार का रिपोर्टर होने से उससे कोई बोलेगा तो नहीं, फिर भी मुझे उसके न आने से फिक्र तो है ही। लेकिन वो लोग ज़रूर आ जाएँगे। इतमीनान रक्खो।

फ़ातिमा : (**कुछ शांत होकर**) तुम कहती हो—मन में भरोसा होता है।

सुफ़िया : माचिस से लालटेन जला लो।

फ़ातिमा : आज माचिस ख़तम हो गई। मेरी ज़िन्दगी भी ख़तम हो जाती तो अच्छा था। (**खंभे से लालटेन उतारती है।**)

सुफ़िया : इतना गम न करो। (**सक़ीना से**) बेटी सक़ीना, तुम अन्दर बैठो।

सक़ीना : अच्छा बुआ। जाती हूँ। (**प्रस्थान**)

[फ़ातिमा बैठकर लालटेन जलाने लगती है।]

सुफ़िया : मेरा बेटा मक़सूद भी नहीं आया। न जाने कहाँ घूमता है। 'इत्तेफ़ाक' अख़बार का रिपोर्टर है न ? कहता था—ख़बर लेने जा रहा हूँ। पता नहीं किसकी ख़बर लेगा और किसको ख़बर देगा। मुझे सुनाता था कि सोलह तारीख़

को पाकिस्तान के सदर याहिया अपने शेख साहब से बातें करने आए। बाद में भुट्टो मियाँ भी बुला लिए गए। पच्चीस तारीख तक बातें करते रहे, लेकिन बातें करने का तो एक बहाना था। यहाँ समझौते की बातें करने का तो स्वाँग भरा जा रहा था, और उधर छः जहाज़ भर के पाकिस्तानी सिपाहियों को चिटगाँव में उतार दिया।

फ़ातिमा : (**लालटेन खंभे पर टाँगती हुई**) छः जहाज़ों से पाकिस्तानी सिपाही !

सुफ़िया : हाँ, पाकिस्तानी सिपाहियों से भरे छः जहाज। साठ हज़ार सिपाही···हाँ, साठ हज़ार सिपाही—यही तो मक़सूद कहता था—पहले से ही गोला-बारूद से लैस थे, ऊपर से छः जहाज़ भर के और सिपाहियों को भेज दिया। और जब अपनी पाकिस्तानी फ़ौज इस तरह तैयार कर ली तो पच्चीस तारीख को एकदम से बातचीत ख़त्म करके छब्बीस को सदर याहिया हवाई जहाज़ से कराची उड़ गए। और सुना है, आज मियाँ भुट्टो भी दूसरे हवाई जहाज़ से उड़ गए।

फ़ातिमा : बड़े धोखेबाज़ हैं ये लोग, बहिन !

सुफ़िया : धोखेबाज़ ? धोखेबाज़ ही नहीं, क़ातिल। जाने से पहले उन्होंने अपनी फ़ौज को न जाने क्या हुक्म दे दिया कि उन्होंने ढाका में हज़ारों बेकसूर और बेगुनाह इन्सानों को मौत के घाट उतार दिया ! घरों में आग लगा दी !

फ़ातिमा : लेकिन हमारा कसूर क्या है, बहिन ! कि हमें गोली से मार डाला जाए, हमारे घरों में आग लगा दी जाए।

सुफ़िया : कुसूर यही है कि हम बाङ्ला देश की दौलत से पाकिस्तान को मालामाल नहीं बनाना चाहते। हमारा नेता मुजीब नेशनल मजलिस में बाङ्ला देश के लोगों का हक़ माँगता है। वह चाहता है कि 'मार्शल ला' का क़ानून वापस जाए। वह चाहता है कि फ़ौज के जो सिपाही शहर में घूम रहे है उन्हें वापस बुलाया जाए। वह चाहता है कि बाङ्ला देश के जो लोग फ़ौज के सिपाहियों से बेकुसूर मारे गए हैं, उनकी जाँच कराई जाए। और वह चाहता है है कि नेशनल मजलिस के लिए अवामी लीग के जो लोग चुने गए हैं, उनको बाङ्ला देश की हिफ़ाजत करने का हक़ मिले।

फ़ातिमा : मैं यह सब कुछ नहीं समझी, बहिन ! लेकिन शेख़ साहब सचमुच हमारे रहनुमां हैं। लेकिन इन सब बातों से मेरे मियाँ को क्या लेना लेना-देना था जिससे वो अब तक यहाँ नहीं आ सके।

(**सुनकर**) सुनो, पाकिस्तानी सिपाहियों के इधर आने की आवाज़ फिर सुनाई दे रही है।

[नेपथ्य में जूतों की ज़ोर से खटपट और दरवाज़े पर भीषण प्रहार]

बाहर से आवाज़ : यही मकान है···यही मकान है।

सुफ़िया : (**फ़ातिमा से**) मैं देखूँ, मेरे मकान में तो लोग नहीं घुस आए ? मैं जाती हूँ। (**शीघ्रता से प्रस्थान**)

बाहर से कड़ी आवाज़ : दरवाज़ा खोलो।

फ़ातिमा : (घबराकर) हाय, अल्ला ! ये कौन हैं ? मैं···मैं···दरवाज़ा नहीं खोलूँगी।

बाहर से आवाज़ : दरवाज़ा खोल, सुअर के बच्चे !

फ़ातिमा : (कांपती आवाज़ में) घर···घर में मियाँ नहीं हैं।

बाहर से आवाज़ : मियाँ जहन्नुम में गया—तू तो है मियाँ की बीवी, कमीनी। दरवाज़ा खोलती है नहीं ! दरवाज़ा खोल !

फ़ातिमा : (दृढ़ता से) मैं दरवाज़ा नहीं खोलूँगी।

बाहर से आवाज़ : देखता हूँ, कैसे दरवाजा नहीं खोलती, शैतान की बच्ची !

बुलन्द आवाज़ : घर में आग लगा दो अब्दुल्ला ! दरवाज़ा आपसे आप खुल जाएगा।

अब्दुल्ला : कोई हूर की लौंडी हो, हुज़ूर ! तो लुत्फ़ आ जाए।

दूसरी आवाज़ : फेहरिस्त में तो यूसुफ़ के घर लड़की भी लिखी है, हुज़ूर !

बुलन्द आवाज़ : दरवाज़ा खोलती है कि नहीं ?

फ़ातिमा : नहीं खोलूँगी···नहीं खोलूँगी।

बुलन्द आवाज़ : ज़ोर का धक्का देकर दरवाज़ा तोड़ दो, हमीद !

हमीद : अभी तोड़ता हूँ।

[ज़ोर से धक्के की आवाज़ ! दरवाज़ा टूट जाता है। दरवाज़े के टूटते ही चार पाकिस्तानी सिपाही बन्दूकें हाथ में लिए घुस आते हैं। दालान में रखे हुई मोढ़े तोड़ते हैं, चटाई फाड़ते हैं, गुड्डे को पैरों से कुचलते हैं और खिलौने घर को 'किक' लगाते हैं। फ़ातिमा एक कोने में बैठ जाती है। एक सिपाही उसे पकड़कर सामने लाता है।]

फ़रीद खाँ : हरामज़ादी ! दरवाज़ा ! क्यों नहीं खोला, बोल।

अब्दुल्ला : जानती नहीं कि **(फ़रीद खाँ को संकेत कर)** सरदार साहब ने आवाज़ दी थी।

फ़ातिमा : (डरकर) मेरे मियाँ घर पर नहीं हैं। हम ग़रीब हैं, आपकी ख़ातिर किसी तरह नहीं कर सकते।

फ़रीद खाँ : दोज़ख़ की कुत्ती। ख़ातिर यों ही नहीं होती, ख़ातिर कराई जाती है। बोल, तेरे मियाँ··· **(सोचते हुए)** क्या नाम है···

अब्दुल्ला : (बीच ही में) यूसुफ़ हुसैन !

फ़रीद खाँ : यूसुफ़ हुसैन। किधर गया सूअर।

फ़ातिमा : आप उन्हें गाली न दें।

फ़रीद खाँ : ओ हो। बड़ी शरीफ़ज़ादी है। सच बतला—यूसुफ़ सूअर का बच्चा कहाँ है ?

फ़ातिमा : वो घर में नहीं हैं।

फ़रीद खाँ : घर में नहीं है ? झूठ बोलती है। मियाँ को घर के भीतर छिपा दिया और कहती है, घर में नहीं है।

फ़ातिमा : मैं सच कहती हूँ, वो घर में नहीं हैं।

फ़रीद ख़ाँ : सच की बच्ची ! हमें धोखा देती है ? बंगाली का बच्चा यूसुफ़ घर में छिपा होगा। खुद तो कमबख्त औरत बनकर घर में छिप गया और औरत को मर्द बनाकर सामने कर दिया ! (**अट्टहास**) मर्द औरत—औरत मर्द (**शैतानी अट्टहास। अब्दुल्ला से**) अब्दुल्ला ! घर की तलाशी लो। सूअर का बच्चा यूसुफ़ अन्दर छिपा होगा।

अब्दुल्ला : अन्दर नहीं होगा, हुज़ूर। हमने उसे सब्ज़ी मंडी में दूकान बन्द कर किसी के घर में छिपते हुए देखा है।

फ़रीद ख़ाँ : तो उसे वहीं क़त्ल क्यों नहीं कर दिया ?

अब्दुल्ला : उसे किसी सिपाही ने क़त्ल कर दिया होगा, हुज़ूर। करफ़्यू में कोई निकला नहीं कि ढेर कर दिया जाता है। वह बचकर कहाँ जाएगा ?

फ़रीद ख़ाँ : ठीक है, इन सब कमबख्तों की सफ़ाई करना है। हमारी फ़ेहरिस्त में इस घर के और आदमियों की तफसील क्या है ?

अब्दुल्ला : (**काग़ज़ निकालकर देखते हुए**) हुज़ूर ! इस घर में मियाँ-बीवी के साथ एक लड़की भी है।

फ़ातिमा : (**विह्वल होकर**) साहब ! वह बच्ची है···वह बच्ची है···

फ़रीद ख़ाँ : (**ज़ोर से**) ख़ामोश। बेवकूफ़ औरत ! एक लफ़्ज भी मुँह से निकला तो मुँह तोड़ दिया जाएगा। हाँ, तो एक लड़की भी है ?

अब्दुल्ला : जी, हुज़ूर !

फ़रीद ख़ाँ : उस लड़की की उम्र क्या है ?

अब्दुल्ला : (**कागज़ देखते हुए**) सोलह बरस !

फ़रीद ख़ाँ : (**जाँघ पर हाथ मारकर**) शाबास ! सोलह बरस ! हमारे बहुत काम की है।

अब्दुल्ला : (**सहसा घबराकर**) जी···जी···हुज़ूर। माफ कीजिए। ग़लती से···ग़लती से पढ़ गया ? उम्र सोलह बरस की नहीं, छः बरस की है। धुँधलके में छः को सोलह पढ़ गया।

फ़रीद ख़ाँ : बेवक़ूफ़ हो तुम। सिर्फ़ छः बरस की ? ख़ैर···कोई बात नहीं। उस लड़की को घर से बरामद करो।

फ़ातिमा : (**बिखरकर**) नहीं···नहीं···हुज़ूर। उसे मत पकड़िए···वह मासूम है, बेकुसूर है। हमने कोई ख़ता नहीं की। उसे छोड़ दीजिए।

फ़रीद ख़ाँ : चुप रह। बदज़ात ! (**सिपाहियों से**) सिपाही ! बरामद करो।

दोनों सिपाही : जो हुक्म। (**दोनों शीघ्रता से घर के भीतर घुस जाते हैं।**)

फ़ातिमा : (**रोते हुए**) बच्ची की कोई ख़ता नहीं···हमारी कोई ख़ता नहीं।

फ़रीद ख़ाँ : (**अधिकारपूर्वक**) तुम लोगों की यही ख़ता है कि तुम सब बंगाली हो। हमारी इसलामाबाद की सरकार ने तस्फ़िया किया है कि बंगाल का हर एक इंसान चाहे हिन्दू हो, चाहे मुसलमान, क़त्ल कर दिया जाए। बगालियों का नामोनिशान दुनिया के पर्दे से हटा दिया जाए। तुम सब बगाली हो।

फ़ातिमा : बंगाली होना खुदा की नज़र में कोई गुनाह नहीं है, हुज़ूर। कोई गुनाह नहीं है।

फ़रीद ख़ाँ : (धक्का देकर) ये हमें मज़हब का फ़लसफ़ा सिखाती है, कमबख्त औरत !

[दो सिपाही सक़ीना को पकड़कर लाते हैं]

सक़ीना : (रोकर पुकारते हुए) : अम्मी ! अम्मी ! ये मुझे पकड़ रहे हैं। मुझे छोड़ दो···मुझे छोड़ दो···

फ़ातिमा : मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ···इसे छोड़ दीजिए···छोड़ दीजिए, हुज़ूर !···हम सब मर जाएँगे इसके बिना। **(सिसकती है।)**

फ़रीद ख़ाँ : तुम्हें मरने की कोशिश नहीं करनी पड़ेगी। **(सिपाहियों से)** सिपाहियो ! इसे बाहर ले जाओ। इसे हवा में उछाल कर संगीनों पर झेला जाएगा···हवा में उछालकर संगीनों पर···

[सिपाही सकीना को बाहर ले जाते हैं। सकीना रो-रोकर अम्मी···अम्मी पुकारती है।

फ़ातिमा : (सिपाहियों के पीछे दौड़ती हुई) सक़ीना···सक़ीना···मेरी बच्ची ! छोड़ दो उसे···छोड़ दो उसे···

फ़रीद ख़ाँ : (धक्का देकर नीचे गिराकर) पीछे हट, बंगालन !
दोज़ख़ में भी तेरे लिए जगह नहीं है···और इस दुनिया में भी नहीं। **(अब्दुल्ला से)** अब्दुल्ला ! इसकी सफ़ाई करो।

अब्दुल्ला : जो हुक्म। **(बन्दूक तानकर फ़ातिमा पर फायर करता है।)**

फ़ातिमा : (उठकर गिरते हुए) सक़ीना···सक़ी···ना···सक़ी···**लुढ़क कर गिर जाती है।)**

फ़रीद ख़ाँ : शाबास, अब्दुल्ला ! आज यह तुम्हारा चालीसवाँ शिकार है। इन कमबख़्तों की मौत से ही पाकिस्तान ज़िन्दा रहेगा। पाकिस्तान···ज़िन्दाबाद !

[शान से अब्दुल्ला के साथ प्रस्थान करता है। एक क्षण सन्नाटा। दूसरे क्षण नेपथ्य से यूसुफ़ का स्वर।]

यूसुफ़ : फ़ातिमा ! फ़ातिमा ! बेटी सक़ीना !

[सहमे हुए ढंग से यूसुफ़ का प्रवेश।]

यूसुफ़ : फ़ातिमा ! फ़ातिमा ! **(सहसा फ़ातिमा के खून से सने शरीर को देखकर चीख़-भरे स्वर में)** फ़ा···ति···मा ! **(फ़ातिमा के समीप बैठ जाता है)** फ़ातिमा ! यह क्या हो गया !

फ़ातिमा : (टूटे हुए स्वर में) तुम···तुम···सक़ीना···।

यूसुफ़ : (फ़ातिमा के सिर को अपनी गोद में रखकर) फ़ातिमा ! फ़ातिमा ! आँखें खोलो। देखो, मैं यूसुफ़ हूँ। किसी तरह बचकर आया हूँ···लेकिन···लेकिन तुम

नहीं बच सकीं। पाकिस्तान के सिपाहियों ने···तुम्हें गोली मार दी ! यह क्या हो गया ! सक़ीना कहाँ है ?

फ़ातिमा : (**टूटे हुए स्वर में**) सक़ीना···पाकिस्तान के सिपाही···सिपाही···संगीन पर झेलकर···उसे···मेरी बच्ची को···मारेंगे···मेरी बच्ची··· (**सिसकी**)

यूसुफ़ : ऐसा नहीं हो सकता···फ़ातिमा। ऐसा नहीं होगा। मैं अभी जाता हूँ···अभ जाता हूँ···

फ़ातिमा : नहीं···नहीं···वे तुम्हें···तुम्हें···भी गोली मार देंगे।

यूसुफ़ : नहीं मैं जाऊँगा···देखूँगा कि मेरी सक़ीना कहाँ है।

फ़ातिमा : तुम मत जाओ···मत जाओ, मेरे मालिक ! मैं···मैं ही उसे खोजने···जा रही हूँ। अगर···अगर तुम्हें मेरी···सक़ीना की लाश···मिल जाए तो उसे···मेरी बच्ची···को मेरी कब्र के पास ही···दफ़्न कर देना। मेरी सक़ी··· (**झटके के साथ सिर लुढ़क जाता है।**)

यूसुफ़ : (**पुकार कर**) फ़ातिमा···फ़ातिमा··· (**समीप ही बैठकर सिसकने लगता है**) फ़ातिमा। पाकिस्तान के कुत्तों ने तुम्हें हलाक कर दिया। तुम इस तरह चली गईं। हाय ! अगर मैं भी तुम्हारे साथ होता···तो···तो हम-तुम साथ जाते। सक़ीना को वो लोग इस तरह नहीं छीन सकते थे। ओह, फ़ातिमा ! तुम चली गईं ! तुम मुझे छोड़कर चली गईं ! (**झकझोरता है**) उठो ! हम-तुम दोनों सक़ीना को खोजेंगे। उठो फ़ातिमा ! (**फिर झकझोरता है**) तुम···नहीं उठती। चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा। (**पुकारकर**) पाकिस्तानियो ! मुझे भी उस जगह पहुँचा दो जहाँ मेरी फ़ातिमा और सक़ीना चली गई हैं। कहाँ हैं पाकिस्तान के सिपाही। (**दरवाज़े तक जाता है**) ज़ालिम फ़ातिमा को मारकर चले गए···चले गए। फ़ातिमा ! मैं भी अब तुम्हारे पास आता हूँ। कहाँ है मेरी छुरी···
(**दौड़कर घर के अन्दर से छुरी लाता है**) फ़ातिमा ! मैं तुम्हारे बग़ैर ज़िन्दा नहीं रहूँगा। मैं भी तुम्हारे पास आता हूँ। मैं भी आता हूँ। (**ऊपर छुरी तानता है। उसी समय बाहर से ध्वनि उठती है—**)
'जय बाङ्ला !'

बाहर से आवाज़ : यूसुफ़ !···यूसुफ़···

[शिशिर दा का प्रवेश।]

शिशिर दा : यूसुफ़···ओह ! यह क्या ? तुम्हारे हाथ में छुरी ? यह तुम क्या कर रहे हो ?

[छुरी फेंककर सिसकता हुआ शिशिर दा से लिपट जाता है।]

यूसुफ़ : (**बिलखते हुए**) शिशिर दा ! शिशिर दा ! देखो, फ़ातिमा को गोली मार दी उन खूँख्वार सिपाहियों ने और सक़ीना को उठा ले गए···मेरी बच्ची सक़ीना को···

शिशिर दा : शान्त···यूसुफ़। ढाका के हरएक घर में यही हो रहा है। सैकड़ों फ़ातिमाओं को गोली मारी गई है और हज़ारों सक़ीनाएँ पत्थर पर पछाड़ी गई हैं।

यूसुफ़ : (**आँसू भरकर**) पत्थर पर नहीं, शिशिर दा! हवा में उछालकर संगीनों पर झेलेंगे वो ज़ालिम! संगीनों पर···मेरी मासूम सक़ीना को···

शिशिर दा : ये जुलमी क्या-क्या नहीं करेंगे, यूसुफ़! तुम उन लोगों से कैसे बचे?

यूसुफ़ : करफ्यू लगते ही मैं और मक़सूद बच्चू ख़ाँ के पिछवाड़े छिप गए।

शिशिर दा : बच्चू ख़ाँ को भी तो उन्होंने उसी के घर के सामने गोली मार दी।

यूसुफ़ : हाँ, शिशिर दा। मैंने उसकी लाश देखी थी। मक़सूद रिपोर्टर होने से शरणार्थियों के साथ ढाका से बाहर चला गया और मैं फ़ौजियों की आँखें बचाते यहाँ पहुँचा। यहाँ अपने घर का यह हाल देखा। अब मैं भी ज़िन्दा नहीं रहूँगा, शिशिर दा! मेरी फ़ातिमा को गोली मार दी गई, मेरी सक़ीना संगीनों की नोक पर टँगी होगी···मैं भी मर जाऊँगा···मैं भी मर जाऊँगा···शिशिर दा! इस छुरी से ख़ुदकुशी करूँगा।

शिशिर दा : (**आवेश से**) सँभलो, यूसुफ़! अपने को सँभालो। इस तरह ख़ुदकुशी करने से क्या होगा? पाकिस्तानी ख़ुश होंगे कि उनकी एक गोली बच गई और तुम अपने-आप हलाक हो गए। जो पाकिस्तानी सेना ख़ून की प्यास में पागल हो गई है, उसकी प्यास में तुम अपने ख़ून का एक घूँट और भरोगे? यूसुफ़! क्या तुम इतने बुज़दिल हो कि अपनी फ़ातिमा और सक़ीना के ख़ून का बदला लिए बिना ही इस दुनिया से चले जाओ। बोलो, क्या तुम इतने बुज़दिल हो कि जनरल टिक्का ख़ाँ के इस क़त्ले-आम को तुम सिर झुका के झेल लो?

यूसुफ़ : नहीं···नहीं···शिशिर दा! नहीं।···

शिशिर दा : इस क़त्ले आम के शिकार सिर्फ़ हिन्दू ही नहीं हैं, हज़ारों मुसलमान भी हैं जिन्हें नमाज़ पढ़ते वक्त गोली मारी गई है। इनमें विद्यार्थी हैं, अध्यापक हैं, अवामी लीग के कार्यकर्त्ता हैं, स्त्रियाँ हैं और बच्चे हैं, जो अपनी माँ की गोद में मार डाले गए। तो तुम अपने फ़र्ज़ के लिए ज़िन्दा रहो।

यूसुफ़ : (**सँभलकर**) ज़िन्दा रहूँगा, शिशिर दा!

शिशिर दा : जिस बाङ्ला देश की मिट्टी को काज़ी नजरुल इस्लाम की आवाज़ ने ज़िन्दा किया है, वहाँ के ज़िन्दा लोग ख़ुदकुशी करके मिट्टी बन जाएँ! क्या यह शर्म की बात नहीं है? जिस रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'शोनार बाङ्ला' का राष्ट्रगान दिया है, उस रवीन्द्रनाथ ठाकुर का अपमान नहीं है? जिस मुजीब ने सारे बाङ्ला देश को अपने अधिकारों के लिए जगाया है, क्या उस मुजीब का अपमान नहीं है?

यूसुफ़ (**मुट्ठी बाँधकर**) यह अपमान नहीं होगा, शिशिर दा!

शिशिर दा : पाकिस्तान चाहता है कि बंगाल का नाम ही इस दुनिया से मिटा दिया जाए, भले ही उसे बीस लाख आदमियों को क़त्ल करना पड़े। लेकिन मैं कहता हूँ कि पाकिस्तान जितने भी आदमियों को क़त्ल करेगा, बाङ्ला देश का नाम ख़ून की

फ़ुहारों से उतना ही ऊँचा उठेगा। और जो बाङ्‌ला देश के लिए क़त्ल हुए हैं, वे आसमान में सूरज और चाँद की तरह चमकते रहेंगे, इसलिए उनकी जय बोलो ! माँ फ़ातिमा की जय बोलो ! (**फ़ातिमा के शरीर की ओर संकेत करते हुए**) माँ फ़ातिमा ! तुमने बाङ्‌ला देश की हरी भूमि पर अपने ख़ून का जो गुलाब उगाया है, उसकी सुगन्धि से संसार के दूसरे देश और भारत, बाङ्‌ला देश की रक्षा करने के लिए कटिबद्ध हो जाएँगे।

यूसुफ़ : (**उमंग से**) जय बाङ्‌ला !

शिशिर दा : आओ, हम माँ फ़ातिमा के इस पवित्र शरीर को बाङ्‌ला भूमि के हरे रंग वाले वस्त्र से ढक दें। इसे हरा वस्त्र उढ़ा दो, यूसुफ़।

यूसुफ़ : हमारी बाङ्‌ला वसुन्धरा का हरा रंग। यही करूँगा। (**प्रस्थान**)

शिशिर दा : कल ही हमारे शेख़ मुजीबुर्रहमान ने मुक्ति फ़ौज के संगठन का ऐलान किया है। हम उस फ़ौज के सैनिक बनकर अपने बाङ्‌ला देश को आज़ाद करेंगे।

[यूसुफ़ हरा वस्त्र लाता है। यूसुफ़ और शिशिर दा फ़ातिमा के मृत शरीर को प्रणाम कर उस पर हरा वस्त्र उढ़ाते हैं। फिर प्रणाम करते हैं।]

शिशिर दा : जय माँ फ़ातिमा ! तुम्हारे शरीर के रक्त की एक-एक बूँद बाङ्‌ला देश के मस्तक पर अभिषेक की रेखा बनेगी। यूसुफ़ ! तुम भी मुक्ति फ़ौज के एक हिम्मतवर सेनानी हो। मेरे साथ हज़ारों जवान हैं जो स्थान-स्थान पर छिपे हुए हैं। हम सब अपनी स्वतंत्रता का युद्ध लड़ेंगे। एक-एक जवान का जिस्म फ़ौलाद का होगा जिस पर पाकिस्तान की गोली उछलकर पाकिस्तान के सिपाहियों के जिस्म को ही फाड़ देगी। हम अपने देश की क्रांति-ज्वाला इतनी ऊँची उठाएँगे कि उत्तर का हिमालय भी द्रवित होकर हमारी पवित्र बाङ्‌ला भूमि के चरणों को धोने के लिए प्रवाहित हो जाएगा। मेरे साथ बोलो, 'जय बाङ्‌ला !'

यूसुफ़ : (**उच्च स्वर से**) जय बाङ्‌ला !

सम्मिलित स्वर में : जय बाङ्‌ला !

[धीरे-धीरे परदा गिरता है। नेपथ्य में बाङ्‌ला देश का राष्ट्रगीत गूँजता है—
'आमार शोनार बाङ्‌ला, आमि तोमाय भालो वाशि']

दूसरा अंक

काल : 28 मार्च 1971

समय : संध्या, 5 बजे

स्थान : ढाका में पाकिस्तानी सिपाहियों की चौकी।

[एक बड़ा-सा कमरा जो साधारण ढंग से सजा हुआ है। कमर के बीचो-बीच एक टेबल है जिसके पास एक कुर्सी है। उस पर बैठने वाला व्यक्ति दर्शकों को अपने सामने देख सकता है। दाहिने-बायें एक-एक बेंच है। मंच के दाहिने जो बेंच है, उस पर एक सिपाही बैठा हुआ है। उसी बेंच के बगल में एक कोठरी है जो बाहर से बंद है। सिपाही कभी उठकर मंच के एक कोने से दूसरे कोने तक फ़ौजी ढंग से चलता है, फिर बेंच पर बैठ जाता है। सिपाही के बड़े बालों से लगता है कि वह बलूचिस्तान का है। वह जैसे ही घूमकर बेंच पर बैठता है कि बंदूक लिए हुए एक सिपाही तेज़ी से प्रवेश करता है।]

सिपाही : फ़ीरोज़ खाँ। क्या इस चौकी पर और कोई सिपाही नहीं है?

फ़ीरोज ख़ाँ : ओ, डाका शैर में लूट-मार करने वास्ते एक बजे से सब सिपाही चला गया ऐ।

सिपाही : और तुम नहीं गए?

फ़ीरोज ख़ाँ : अम बिलोचिस्तान से लड़ने वास्ते लाया गया ऐ। लूट-मार करने वास्ते नइँ।

सिपाही : अरे, तू बिलकुल बुद्धू है। भले आदमी! ख़ुदा ने कितना ख़ूबसूरत मौक़ा दिया है। ढाका शहर मालामाल है। सोना, चाँदी, जवाहरात और सबसे ऊपर बीवी। जनरल याह्या ख़ाँ का लाख-लाख शुक्र है कि जो बात हम ख्वाब में भी नहीं सोच सकते थे, उसका अम्बार उन्होंने हमारे सामने लगा दिया। कहाँ हम एक बीवी के लिए तरसते थे, कहाँ क़िस्म-क़िस्म की दर्जनों बीवियाँ रंगीन पत्थरों की तरह रास्ते-रास्ते बिखरी पड़ी हैं।

फ़ीरोज ख़ाँ : ख़ुदा का ख़ौफ करो, बंदे। मुल्क में जंग ओता है, दुश्मन का मुल्क जीतने के लिए, बीवी बटोरने वास्ते नइँ। बीवी अमेशा शरीफ ख़ान्दान का ईज़्ज़त ओता ऐ।

सिपाही : वाह रे इमाम! तू किसी मस्जिद में जाके बैठ। फ़ौज में क्यों भरती हुआ?

फ़ीरोज ख़ाँ : (**उठकर**) फ़ौज में इसलिए बरती उआ कि अम मर्द आदमी ए। मर्द आदमी बंदूक चलाएगा—लड़ाई में आगे बड़ के दुश्मन पर वार करेगा। चोर का माफ़िक लूट-मार नइँ करेगा।

सिपाही : इसीलिए सब सिपाही चले गए, तुझे पहरे पर छोड़ गए। बाङ्ला देश की दौलत से सब सिपाही मालामाल हो जाएँगे, तू ऐसा ही मुफ़लिस बना रहे। (**सहसा**) अच्छा, कमरे में बच्ची है?

फ़ीरोज़ खाँ : ओ बेचारा ज़ार-ज़ार रोता था। उस मासूम ने कौन-सा गुनाह किया ऐ। तुम अपना ताकत बच्चे पर दिखाएगा ? ये कौन-सा बहादुरी ऐ। उसका माँ-बाप भी खोदा जाने किदर ऐ।

सिपाही : सब मौत के घाट उतार दिए गए होंगे। उस बच्ची को भी हलाक करना है। लेकिन तू तो दरियादिल है। तुझसे बहस करना फ़िज़ूल है। (**शीघ्रता से**) अच्छा, तो मैं भी जाता हूँ ? चौकी पर कोई सिपाही नहीं है, होशियारी से पहरा देना। चलूँ देखूँ हज़ार रुपया हाथ लगेगा और (**हँस कर**) चार-पाँच बीवियाँ।

फ़ीरोज़ खाँ : ऐसा जंग मरद आदमी का वास्ते ईज़्ज़त का बात नईं ऐ।

सिपाही : वाह रे बलूची ! मरद आदमी घर पर बैठ के पहरा दे। (**व्यंग्य की हँसी**) अच्छा तो मैं जाता हूँ।

[शीघ्रता से प्रस्थान।]

फ़ीरोज़ खाँ : (**टहलता हुआ**) ये पाकिस्तान का जंग ऐ। हम वापस जाएगा, बाबा ! इस तरा का जंग ऐवान का जंग ऐ, इन्सान का जंग नईं।

[फिर टहलने लगता है। कुछ ही क्षण में शिशिर दा का प्रवेश।]

शिशिर दा : (**गुनगुनाते हुए**) सारे जहाँ से अच्छा पाकीसताँ हमारा।
हम बुलबुले हैं उसकी वो गुलसिताँ हमारा।
··· ···गुलसिताँ हमारा ऽ ऽ ऽ ··· ··· ···

फ़ीरोज़ खाँ : तुम बउत आचा गाना गाता ऐ। तुम पाकिस्तान का आदमी ऐ ? तुम बी जाओ। गाना गाने से क्या ओगा, लूट-मार करो। सोना, चाँदी और बीवी से मालामाल बन जाओ। डाका शैर दुम्बा का माफ़िक ऐ—तुम शेर का माफ़िक उसको खाओ।

शिशिर दा : इस चौकी में इस वक्त और कोई सिपाही नहीं है ?

फ़ीरोज़ खाँ : सब लूट-मार करने गया ऐ। बीवी लूटता ऐ, सोना लूटता ऐ, मकान में आग लगाता ऐ।

शिशिर दा : सचमुच ढाका शहर की हालत अच्छी नहीं है। मैं तो अकबार का रिपोर्टर हूँ। सब जगह का हाल लेता हूँ, यहाँ भी इसीलिए चला आया।

फ़ीरोज़ खाँ : इस जागा कौन-सा बात ऐ। अखबार में लिक देना कि पाकिस्तान का सिपाही जंग नईं लड़ता, शेर के माफ़िक मासूम लोगों को गाली मारता ऐ। शरीफ़ घर की बीवी लूटता है। छोटे-छोटे बच्चों को क़ैद में डाल के हलाक करता ऐ।

शिशिर दा : आप···आप पाकिस्तान के सिपाही होके इस तरह बोलते हैं !

फ़ीरोज़ खाँ : अम पाकिस्तान का नईं, बलूचिस्तान का सिपाही ऐ। अमको धोका से इदर लाया। पाकिस्तान का जनरेल बोला कि बारत में इसलाम कतरे में ऐ। बारात का लोग आमरा मसजिद पर गोलीबारी करता ऐ। कुरान जलाता ऐ। आमरा मजब कतरे में डालता ए, तो तुम चलो और इसलाम को बचाओ।

शिशिर दा : तो आपने देखा कि भारत के लोगों ने मसजिद पर गोलाबारी की ? कुरान जलाई ?

फ़ीरोज़ खाँ : ओ, बारत तो गांदी का देश ऐ। ओ तो अइंसा-अइंसा, सतियाग्रै की बात कैता ऐ। ओ ए कबी नईं कर सकता। पर अमको बारत में नईं लाया। बाङ्ला देश में लाया। ईदर अमने अपनी आँकों से देका, ओ ईलाई ! ऐसा तो बलूचीं ओके आम कबी नईं किया।

शिशिर दा : आपको मालूम है, एक दिन में पाकिस्तान के सिपाहियों ने बाङ्ला देश के तीन लाख मासूम लोगों को क़त्ल किया।

फ़ीरोज़ खाँ : ओ तो अम देका। रास्ता में चलता बेकसूर इन्सान पर मशीनगन चलाता। लड़की का बाल पकड़कर गसीटता और उस पर दस जवान कूद पड़ता। बूड़ी माँ के सामने उसके बेटे को काट के ऊसका टूकरा कर देता। ओ ईलाई ! आम तो ऐरान ओ गया।

शिशिर दा : यह ज़ुल्म है पाकिस्तान का ! और वह दुनिया के सामने अपने हर काम को ठीक बताकर अपना प्रोपागेण्डा करता है।

फ़ीरोज़ खाँ : ओ दुनिया के सामने रोता ऐ। इस्लाम का वास्ते आय-तोबा करता ऐ और कूद ? कूद अवाई जआज़ से मसजिदों पर गोलीबारी करता ऐ। कूरान जलाता ऐ और गरीब-बाङ्ला देश के आदमियों को बेड़-दूम्बा की तरा अलाल करता ऐ। बाबा ! आम बलूचिस्तान लौट जाएगा।

शिशिर दा : आप सच्चे सिपाही मालूम देते हैं। सच बात कहने में आपको कोई हिचक नहीं मालूम देती। आप सचमुच ही बहादुर सिपाही हैं।

फ़ीरोज़ खाँ : बलूचिस्तान का अर एक सिपाही लड़ाई लड़ेगा लेकिन ईमान से लड़ेगा। जो उसके सामने आता ऊट के बैट जाता ए, उस पर गोली नईं चलाएगा।

शिशिर दा : आप जैसे सिपाहियों से मुल्क की इज़्ज़त होती है। एक बात जानना चाहता हूँ।

फ़ीरोज़ खाँ : आँ···आँ···पूचो···पूचो···

शिशिर दा : कल रात पाकिस्तानी सिपाहियों ने धान मंडी के 18 नवम्बर के मकान पर हमला किया। घर का आदमी उस वक्त मौजूद नहीं था। उसकी बीवी थी और एक छः बरस की बच्ची। पाकिस्तानी सिपाहियों ने बीवी को तो गोली मार दी और उसकी बच्ची को उठाकर संगीनों से छेदने के लिए उठा लाए। मुझे मालूम है कि पाकिस्तानी सिपाही अपनी लूट-मार में उसे अभी मार नहीं पाए। वह बच्ची इस चौकी की एक कोठरी में बन्द है। क्या यह सही है ?

फ़ीरोज़ खाँ : ये सच ऐ। सिपाई उसको मारना चाते थे पर रोते-रोते बेओश बन गया। सिपाई कैते थे कि जब ओश में आएगा तब उसके रोने का लुत्फ़ उटा के उसको संगीनों से चेदेगा। अबी ओ लड़की (**कोठरी को संकेत कर**) इस कोटरी में ऐ। रात में पाकिस्तानी सिपाही उसको अलाक करेगा।

शिशिर दा : आप तो सच्चे सिपाही हैं, बलूचिस्तान के सरदार ! आपको ऐसे बेकुसूर

बच्चों पर रहम नहीं आता ?

फ़ीरोज़ ख़ाँ : वऊत रअम आता ऐ। लेकिन जब अम सिपाई बन के आए ऐ, तब अम क्या करेगा ?

शिशिर दा : आप बहुत कुछ कर सकते हैं। आप उसकी जान बचा सकते हैं। वह छः बरस की बच्ची ! उसका क्या क़ुसूर हो सकता है ? आप उसकी जान बचा दीजिए।

फ़ीरोज़ ख़ाँ : पर अम क्या करेगा ?

शिशिर दा : आप उस बच्ची को मुझे दे दीजिए। मैं उसको सही जगह पहुँचा दूँगा। मुझ पर भरोसा कीजिए, मैं पाकिस्तानी नहीं हूँ। 'इत्तिफ़ाक़' अख़बार का रिपोर्टर हूँ।

फ़ीरोज़ ख़ाँ : ये तो ठीक बात ऐ। हम बरोसा करेगा लेकिन जब कोई सिपाई उसके बारे में पूचेगा, अम क्या कएगा ?

शिशिर दा : आप कह दीजिए, बच्ची होश में आ गई थी। एक सिपाही ने उसे अपनी संगीन पर उछालकर उसके रोने का लुत्फ़ लिया। मर जाने पर उसे कहीं फेंक दिया।

फ़ीरोज़ ख़ाँ : किदर फेंक दिया !

शिशिर दा : हज़ारों बच्चे रास्ते-रास्ते मारकर फेंके गए हैं। बच्ची को मारकर उन्हीं में फेंक दिया।

फ़ीरोज़ ख़ाँ : आँ, ये बात सई ऐ। लेकिन आम जूट नईं बोलेगा। अच्छा, तो तुम उस बच्ची को किदर ले जाएगा ?

शिशिर दा : उस बच्ची की माँ को तो मार डाला है। उसका बाप ज़िन्दा है। वह बच्ची के बिना बहुत रोता है। उसी को दे दूँगा।

फ़ीरोज़ ख़ाँ : तुम सच बोलते ? तुम तो उसे नईं मारेगा ?

शिशिर दा : मैं इस बच्ची का चाचा हूँ, उसको क्यों मारूँगा ? फिर रिपोर्टर हूँ।

फ़ीरोज़ ख़ाँ : तो तुम इस बात को अकबार में चापेगा ?

शिशिर दा : इस बात को तो नहीं छापूँगा पर यह छापूँगा कि बलूचिस्तान के सिपाही बहुत बहादुर होते हैं। वो सच्चे इन्सान हैं, हिम्मतवर हैं, जंग में लड़ाई लड़ना जानते हैं। चोरी से लूट नहीं करते। बिना हथियार लोगों पर गोली नहीं चलाते। बहुत बहादुर हैं, बहुत बहादुर हैं। बहादुर हैं।

फ़ीरोज़ ख़ाँ : तुम बउत अच्छा वो है···रिपो···रिपो···

शिशिर दा : रिपोर्टर।

फ़ीरोज़ ख़ाँ : हाँ रिपो···रिपोर···रिपोरटर। पर बलूचिस्तान के सिपाई का सच्चा ख़बर ज़रूर चापेगा ?

शिशिर दा : ज़रूर छापूँगा !

फ़ीरोज़ ख़ाँ : अच्चा, तो तुमको अबी लड़की देगा।

[फ़ीरोज़ ख़ाँ शीघ्रता से कोठरी खोलकर जाता है और बेहोश सक़ीना को शिशिर दा के हाथों में देता है। शिशिर दा उसे सँभाल कर लेता है।]

फ़ीरोज ख़ाँ : अबी तक बेचारा बेओशी में ऐ।

शिशिद दा : बहुत-बहुत शुक्रिया। आपको इस लड़की की जान वचाने का सवाब मिलेगा। अच्छा मैं जाता हूँ।

फ़ीरोज ख़ाँ : तुमारा नाम क्या ए ?

शिशिर दा : मेरा नाम शिशिर कुमार है।

फ़ीरोज ख़ाँ : शीशीर कूमार।

शिशिर दा : और मैं आपका नाम जान सकता हूँ ?

फ़ीरोज ख़ाँ : आमरा नाम क्या ! बन्दे का तो कोई बी नाम ओ सकता ऐ। परवरदिगार का करम ऐ। बन्दे को फ़ीरोज़ ख़ाँ कैते ऐं।

शिशिर दा : बहुत अच्छा, फ़ीरोज़ ख़ाँ साहब ! बहुत बहुत शुक्रिया, सलाम !

फ़ीरोज ख़ाँ : सलाम। रिपो···रिपो···क्या बोलता था (**सिर खुजला कर**) रिपोट··· अच्चा, अच्चा, रिपोर्ट लिकाएगा।

शिशर दा : ज़रूर···ज़रूर··· (**प्रस्थान**)

फ़ीरोज ख़ाँ : जल्दी-जल्दी जाओ।

[फ़ीरोज़ ख़ाँ कोठरी का दरवाज़ा बन्द करके फिर बेंच पर बैठ जाता है। ऊपर देखकर परवरदिगार को धन्यवाद देता है। फिर पहले की तरह टहलने लगता है।]

फ़ीरोज ख़ाँ : लड़की का जान···लड़की का जान बचाने के लिए परवरदिगार सबाब देगा···अमारा क्या। सबाब मिले···न मिले। इनसान का माफ़िक मासूम बन्दे पर ···रहम···रहम किया।

[फिर बेंच पर बैठ जाता है। नेपथ्य में जूतों की खटपट, पाँच सिपाही पूरी फ़ौजी वर्दी में बन्दूक लिए क़हक़हे लगाते हुए आते हैं।]

पहला सिपाही : (**हुसेन ख़ाँ**)आह्ह्ह्। आज तो सैकड़ों बंगालियों को जहन्नुम रसीद किया। (**हँसता है**) जहन्नुम रसीद ! सुनते हो, रशीद मियाँ ? मैंने एक मुहल्ले में फ़रमान जारी किया कि जितने यहाँ रहने वाले हैं वो सब एक घंटे के भीतर अपनी जवान बीवियों और लड़कियों को फ़ौजी अफ़सरों के हवाले कर दें और यहाँ से भाग जावें, नहीं तो गोली से उड़ा दिए जाएँगे। जब इस काम में देर होने लगी तब हमने मशीनगन लगाकर क़रीब दो सौ आदमियों को वहीं ढेर कर दिया। वो उठ भी नहीं सके और हम पचास जवान उनके घरों में घुस गए। बिजली की तरह··· तूफ़ान की तरह···(**अट्टहास**) बीवियाँ-लड़कियाँ डर कर ऐसे सहम गईं जैसे बिजली के सामने मैना। (**ठठाकर हँसते हुए**) बिल्ली के सामने मैना—मैना (**हँसते हुए शब्दों में**) मै—ना—

[फ़ीरोज़ ख़ाँ मुँह बनाता है।]

सब : वाह वा ! सुभान अल्लाह !

रशीद : और हुसेन ख़ाँ ! मेरी बहादुरी सुनो। अस्पताल में एक बड़ा नामी-गरामी डाक्टर था। उसका नाम··· (**सोचते हुए**) उसका नाम हाँ, उसका नाम था, सुलेमान !···कमबख्त बंगाली। हमने अस्पताल में घुसकर उससे कहा—अबे बंगाली ! अस्पताल में जितनी नर्सें हैं, उनको हमारे हवाले कर दे। जब वो बातें बनाने लगा तो मैंने उसके सीने में ताक के ऐसी गोली मारी कि वह वहीं चित हो गया। हमने अस्पताल में घुसकर सभी नर्सों को पकड़ा और गाड़ी में बिठलाया। वे मुर्गियों की तरह 'कुड़-कुड़' करती रहीं। (**हँसते हुए शब्दों में**) कुड़···कुड़ (**अट्टहास**) कुड़-कुड़ ! सुलेमान ख़ाँ ! कुड़···कुड़···!

[फ़ीरोज़ ख़ाँ फिर मुँह बनाता है।]

सब : वाह वा···शाबास !

सुलेमान : अरे यार ! ये औरतें और नर्सें तो आफ़ीसरों के पास जाएँगी। मैंने तो अपने साथियों के साथ एक दुमंज़िले मकान में पिट्रोल छिड़ककर दो गोले फेंके। आग लगाई। घर के लोग भागे। उन पर मशीनगन चलाई। थोड़ी देर में घर से निकला बाप और उसकी दो बेटियाँ···दो बेटियाँ। हमने बाप को तो गोली मार दी और उन दोनों बेटियों को हथिया लिया। वाह रे, मेरे शेर ! एक साथ दो बेटियाँ ! वो इस वक्त नसीर मियाँ के कब्ज़े में हैं। तुम तो जानते हो, हफ़ीज़ !

सब : वाह वा···शाबास !

हफ़ीज : अरे, छोड़ो इन बातों को ! लड़कियाँ और बीवियाँ तो हरएक को मिलेंगी ही, लेकिन गोली मारने का लुत्फ़ तो मैंने उठाया है।

हुसेन ख़ाँ : वो कैसे ?

हफ़ीज : एक लड़का नारियल के पेड़ पर चढ़ा था। कर्फ़्यू का साइरन बजते ही वो उतरने लगा। मैंने कड़ककर कहा—वहीं ठहर जा, सुअर के बच्चे ! नारियल तोड़ के नीचे फेंक ! जब वो नारियल तोड़-तोड़ के फेंक रहा था तो उसके हाथ ऊपर थे, पैर नीचे। मैंने सोचा ऐसे अच्छे निशाने पर मैं गोली मारूँ। मेरे साथ था हमीद। उसने कहा—मैं गोली मारूँगा। मैंने कहा—अबे, लाटरी डाल ले। मैं हाथों में मारूँ तू पैरों में, या मैं पैरों में तू हाथों में। सिक्का उछाला। जीत मेरी रही। मैंने हाथों में गोली मारी, उसने पैरों में। लड़का धड़ाम से गिरा। नारियल के साथ लड़का। मैंने हँसकर कहा—देखा हमीद ! इन्सानी नारियल कैसा होता है ! (**हँसकर**) इंसानी नारियल ! तुम तो देख रहे थे, रसूल।

सब : क्या ख़ूब। सुभान अल्लाह !

रसूल : ठीक ऐसा ही हाल तो मेरा था। रूपाली सिनेमा है न ? जब हमने उसमें आग लगा दी तो बाहर हम लोग आग फैलने का तमाशा देख रहे थे। भागती भीड़ तो गोलियों का शिकार हो रही थी, मैंने एक लड़का पकड़ा। उससे कहा—अबे, सिनेमा की इमारत के सामने जो झंडा चढ़ाने का पोल है न ! उस पर यह ले···यह काला

झंडा चढ़ा दे । लड़का डरा हुआ तो था ही, वह पोल पर चढ़ने लगा । पोल बहुत चिकना था, लड़का बार-बार चढ़कर नीचे खिसक आता था । हमारी बंदूकों की चमचमाती संगीनों से डरकर वह हर बार पोल पर चढ़ने की कोशिश करता और हम क़हक़हे लगाते । आखिर बड़ी मुश्किल से वह पोल के ऊपर चढ़ा और उसने पोल पर झंडा फहरा दिया । उसने हँसकर कहा—हुज़ूर ! मैंने झंडा चढ़ा दिया । मैंने कहा—शाबास ! झंडा चढ़ाने का इनाम देता हूँ ! और मैंने 'धाँय' से बंदूक की गोली दागी । लड़का धड़ाम से नीचे गिरा । धाँय···और···धड़ाम । (**अट्टहास**) धाँय और···धड़ाम ।

[बलूची मुँह बनाता है ।

हुसेन खाँ : (फ़ीरोज़ खाँ से) और तुम मियाँ बलूची ! तुम उस बच्ची पर पहरा देने का लुत्फ़ लूटते रहे । यहाँ हमने बैंक आफ़ आस्ट्रेलिया लूटने का लुत्फ़ हासिल किया । सौ सोने के बिस्कुट···मियाँ ! सौ सोने के बिस्कुट ! मेरा यह बैग बहुत भारी हो गया ! तुमने कुछ लूटा, मियाँ रशीद !

रशीद : हमने ? हमने उस रोज़ कुष्टिया में इस्लामी ज्वेलर्स को लूटा था । कमबख्त तिजोरी की चाबी ही नहीं दे रहा था, जब हमारी बन्दूक देखी तो कुरते से चाबी फेंक दी । तिजोरी खोली । बहुत-सा माल हाथ लगा । चार मोती की मालाएँ तो बन्दे के हाथ लगीं । मेरी चार बीवियाँ हैं न ? हरएक के लिए एक मोती की माला । अपने लिए मैंने दो हीरे की अँगूठियाँ बरामद कीं । बारह-बारह हज़ार की होंगी ।

हफ़ीज़ : और मुस्लिम ज्वेलर्स को मैंने लूटा । लेकिन ज़्यादा सामान हाथ नहीं लगा । गाडरेज की आलमारी जल्दी टूटी ही नहीं । सिर्फ़ पन्द्रह घड़ियाँ हाथ आईं । मैंने दो अपने पास रखीं, बाकी साथियों में बाँट दीं ।

सुलेमान : असली माल तो हबीब बैंक में मिला । दस लाख के करेंसी नोट । सब कैप्टन साहब के कब्ज़े में हैं, लेकिन मैंने बीच में ही दस हज़ार के नोट तिड़ी कर दिए ।

रसूल : और यूनाइटेड बैंक का मैनेजर ताली लेकर भाग रहा था । हमने गोली मार-कर उसका काम तमाम कर दिया । बैंक खोला गया । उसमें से मैंने आठ हज़ार का माल हथिया लिया ।

हुसेन : खैर, ये सब तो हमारा हक़ है । जब हम अपनी जान हथेली पर रखकर धावा बोलते हैं तो यह ज़रूरी है कि उस धावे में जो भी माल मिले, वो हमारा हो । लेकिन एक हादसा बहुत बुरा गुज़रा ।

रशीद : वह क्या ?

हुसेन : वह यह कि ढाका यूनीवर्सिटी से हम लोग पढ़नेवाली लड़कियों को घेरकर लाए । सिपाहियों ने उन्हें आपस में बाँट लिया । मुश्ताक़ अहमद के हाथ एक बहुत खूब-सूरत लड़की पड़ी । जब मुश्ताक़ उस लड़की को अपने कमरे में ले जाने लगा तो उस लड़की ने उसके कलेजे में छुरी भोंक दी ।

रशीद : 'भोली-भाली शक्ल वाले होते हैं ज़ल्लाद भी।'

फ़ीरोज़ खाँ : शाबास। (**हाथ पर हाथ मारकर**)

हुसेन : बलूची ने शाबासी किसे दी ? लड़की को या रशीद के शेर को ? लेकिन न जाने कैसे उस कमबख्त लड़की के पास छुरी पहुँची। मुश्ताक़ बेचारा वहीं ढेर हो गया !

सुलेमान : बड़ी हिम्मतवर लड़की थी !

हुसेन : सूबेदार साहब ने हुक्म दिया कि उस लड़की को गोली मार दी जाए लेकिन इस बलूची ने न जाने क्या कहकर उसे बचा दिया। नामर्द बलूची। (**फ़ीरोज़ खाँ को घूरता है**)

फ़ीरोज़ खाँ : (**उठकर**) नामर्द बोलेगा तो तुजे जअन्नुम रसीद करेगा।

हुसेन : क्या जहन्नुम रसीद करेगा ! पाकिस्तान का सिपाही जिस तरह हमला बोलता है, तू बोलेगा ?

फ़ीरोज़ खाँ : इम्मत का बात ! कुश्ती लड़ेगा ? सिर तोड़ देगा !

सुलेमान और रशीद : ओ जाने दो, जाने दो। आपस में लड़ना ठीक नहीं। कप्तान साहब आते होंगे। (**व्यंग्य से**) बलूची है, हमारी बात क्या समझेगा !

हुसेन : बात सब समझता है, सिर्फ डींग हाँकना जानता है। इसीलिए इसे सिर्फ़ पहरा देने का काम सौंपा है। वह भी एक छह बरस की बच्ची का पहरा। (**ज़ोर से**) कैसी है वह बच्ची ? उसे होश आया ?

फ़ीरोज़ खाँ : जब तुमको ओश नईं ए तो उसको ओश कैसे आएगा ?

हुसेन : निकालो उस बच्ची को। हम उसके गरम जिस्म से अपनी संगीनों को ठंडा करेंगे। निकालो उस बच्ची को।

फ़ीरोज़ खाँ : अम उसको निकाल दिया।

सब : (**चौंककर**) निकाल दिया ? कैसे ?

फ़ीरोज़ खाँ : तुम अज़ारों बच्चों को मारते, अम एक को ज़िन्दा किया।

रशीद : (**आश्चर्य** से) ज़िन्दा किया ?

हफ़ीज़ : अपने को मसीहा समझता है, मसीहा।

हुसेन : कड़े स्वर से) ठीक-ठीक बोलो, बच्ची कहाँ है ?

[इतने में बाहर बूट की खटपट सुनाई देती है। सब चौकन्ने हो जाते हैं। कप्तान शमशेर जंग का प्रवेश। सब फ़ौजी ढंग से सलाम करते हैं।]

शमशेर : (**कुर्सी पर बैठकर**) एक ज़रूरी आर्डर है।

सब : क्या हुक्म है, हुज़ूर।

शमशेर : कोमिल्ला के सिपाहियों को तीन सौ बन्दूकें फौरन भेजनी हैं।

रशीद : जो बन्दूकें अमरीका से आई हैं, इस वक़्त तो हमारे पास वहीं हैं।

हुसेन : कुछ हथियार चीन से भी आए हैं।

शमशेर : ठीक है, उन्हीं बन्दूकों को भेजा जाए। (**हुसेन खाँ से**) हुसेन खाँ ! तुम

सूबेदार याक़ूब ख़ाँ को एक ख़त भेजोगे कि तीन सौ बन्दूकें, तीन हज़ार कारतूस और छः सौ हथगोले रवाना किए जा रहे हैं।

हुसेन ख़ाँ : जो हुक्म हुज़ूर।

शमशेर : और साथ में उस लड़की को भी भेज दो जिसने मुश्ताक़ अहमद को छुरा मार दिया था। लड़की खूबसूरत है। याक़ूब ख़ाँ को पसन्द आएगी। वो जैसा चाहेंगे, उसके साथ सलूक करेंगे। चाहे उसे क़त्ल करें, चाहे बीवी बनाकर रक्खें।

हुसेन ख़ाँ : जो हुक्म, हुज़ूर।

शमशेर : एक मोटर बोट का इन्तज़ाम करो, समझे ? सब सामान और वो लड़की उसमें बिठलाकर पद्मा नदी से रवाना करो।

हुसेन ख़ाँ : जो हुक्म, हुज़ूर।

शमशेर : उसके साथ पहरे पर रशीद जाएगा।

सुलेमान : इस बलूची को भी भेज दीजिए। बात-बात पर वह हम लोगों से बहस करता है।

बलूची : उज़ूर ! अम चुप रैने वाला आदमी ऐ। ये फ़िज़ूल बक-बक करता ऐ।

हुसेन : और हुज़ूर ! वह जो छः बरस की बच्ची इसके पहरे में रक्खी थी वह गायब है। न जाने इस बलूची ने उसे कहाँ भेज दिया !

शमशेर : कोई बात नहीं। वह जाएगी कहाँ। हमारे हाथ से क़त्ल नहीं हुई, किसी दूसरे सिपाही के हाथ से क़त्ल हो जाएगी ? फिर जहाँ हज़ारों बच्चे हलाक हुए हैं, वहाँ एक हुआ, न हुआ, एक ही बात है। हाँ, तो फ़ीरोज़ ख़ाँ, तुम उस बोट पर रशीद ख़ाँ के साथ जाओगे।

फ़ीरोज़ ख़ाँ : उज़ूर का उकम ओगा तो ज़रूर जाएगा।

शमशेर : हुसेन ख़ाँ ! पद्मा नदी के किनारे जो हमारा मल्लाह क़ादिर हुसेन है, उससे मोटर बोट का इन्तज़ाम करने को कहो।

हुसेन : जो हुक्म हुज़ूर !

शमशेर : दो मोटर बोट, तीन सौ बन्दूकें, तीन हज़ार कारतूस, छः सौ हथगोले, एक लड़की, रशीद हुसेन और···और फ़ीरोज़ ख़ाँ, सात अदद।

हुसेन ख़ाँ : बहुत अच्छा हुज़ूर !

शमशेर : साथ में सूबेदार याक़ूब ख़ाँ के लिए तुम एक ख़त भी लिखोगे।

हुसेन ख़ाँ : जो हुक्म, हुज़ूर !

शमशेर : अच्छा, आज के क़त्लेआम में कितने सिपाहियों ने क्या कमाल किया ? हुसेन ख़ाँ ?

हुसेन ख़ाँ : हुज़ूर ! आज मैंने 65 आदमियों को क़त्ल किया।

शमशेर : रशीद ?

रशीद : आज हुज़ूर ! मैंने 50 आदमियों को क़त्ल किया।

शमशेर : बस ? रसूल !

रसूल : हुज़ूर ! मैंने 105 आदमियों को क़त्ल किया।

शमशेर : शाबास ! हफ़ीज़ तुमने ?

हफ़ीज : हुज़ूर ! हबीब बैंक को लूटने में ज़्यादा वक़्त लग गया। मैंने सिर्फ़ 15 आदमियों को हलाक किया।

शमशेर : कोई बात नहीं। हबीब बैंक तो लूटा। सुलेमान, तुमने ?

सुलेमान : हुज़ूर ! मैंने गिना तो नहीं। लेकिन क़रीब-क़रीब 20 बच्चों, 30 बूढ़ों और 15 लड़कियों को मैंने संगीन से छेदा है।

शमशेर : शाबाश ! तुम सबको इस ज़िन्दगी में बीवियाँ और बिहिश्त में हूरें नसीब होंगी।

हफ़ीज : क्या बात कही है, हुज़ूर ने।

शमशेर : हमारे सामने सबसे अहम बात यह है कि हमें मशरिक़ी पाकिस्तान को नये सिरे से बसाना है। उसमें एक भी बंगाली नहीं रहेगा। सब मग़रिबी पाकिस्तान के लोग होंगे। मग़रिब और मशरिक़ के दोनों हिस्से इन्सान की आँखों की तरह एक ही बात देखें, एक ही बात समझें।

हुसेन ख़ाँ : हुज़ूर का नज़रिया लाजवाब है।

शमशेर : अच्छा, अब तुम लोग जाओ। आज के क़त्लेआम से तुम लोग थक गए होगे, अब आराम करो। कल फिर हमें इस्लाम की ख़िदमत में कमबख़्त बंगालियों को दोजख में दाखिल करना है।

[सब फ़ौजी सिपाही क्रम से सलाम करते हैं और जाने के लिए उद्यत होते हैं।]

शमशेर : **(हुसेन ख़ाँ को रोककर)** और सुनो, हुसेन ख़ाँ। मोटर बोट में जो लड़की जाएगी, उसके हाथ-पैर रस्सियों से कसकर मोटर बोट में बाँधना होगा। नहीं तो वह पदमा नदी में कूदकर ख़ुदकुशी कर सकती है। यहाँ की लड़कियाँ ख़ुदकुशी बड़ी आसानी से कर गुज़रती हैं।

हुसेन ख़ाँ : जो हुक्म। मैं अच्छी तरह कसकर बाँध दूँगा।

शमशेर : फ़ीरोज़ ख़ाँ ! तुम भी मोटर बोट में जाने के लिए तैयार हो जाओ।

फ़ीरोज ख़ाँ : बउत आच्चा। अम जाने को तैयार ऐ।

शमशेर : **(हाथ उठाकर)** ख़ुदा हाफ़िज़।

[एक ओर से सिपाहियों का और दूसरी ओर से शमशेर जंग का प्रस्थान।]

[धीरे-धीरे परदा गिरता है।]

तीसरा अंक

काल : 29 मार्च
समय : रात के ग्यारह बजे
स्थान : पद्मा नदी का तट

[भयानक सुनसान। नदी की कल-कल ध्वनि अविरत गति से हो रही है। बीच-बीच में किसी पक्षी के बोलने की ध्वनि। झींगुरों की आवाज़। आकाश में हलकी चाँदनी चारों ओर की हरियाली पर पड़कर एक स्वप्न-सृष्टि कर रही है।

शिशिर दा अपने को काले वस्त्रों में छिपाए हुए, स्टेनगन लिए हुए घूर रहा है। उसकी गहरी दृष्टि एक-एक झाड़ी के भीतर भी देखना चाहती है। इतने में एक व्यक्ति अपने को छिपाता हुआ एक कोने से निकलता है।]

शिशिर दा : (**ज़ोर से ललकार कर**) कौन है ?

[वह नहीं बोलता।]

शिशिर दा : (**अधिक ज़ोर से**) कौन है ? अगर जवाब नहीं देगा तो गोली मार दूंगा।

[बन्दूक तानता है।]

व्यक्ति : (**घिघियाते हुए**) मैं···मैं···बेकुसूर हूँ।

शिशिर दा : पाकिस्तानी जासूस ?

व्यक्ति : नहीं, नहीं, मैं पाकिस्तानी जासूस नहीं हूँ। मुझे छोड़ दो।

शिशिर दा : सामने आओ। देखूँ, तुम कौन हो।

व्यक्ति : (**डरे हुए स्वर में**) मैं···मैं···एक विद्यार्थी हूँ। (**सामने आता है**) किसी तरह फ़ौजियों की गोलियों से बचकर निकल आया हूँ। मुझे गोली मत मारो···मत मारो। (**ज़मीन पर बैठकर गिड़गिड़ाता है**) मैंने···मैंने अवामी लोग का साथ नहीं दिया।

शिशिर दा : तो हमारी दृष्टि में तुम गद्दार हो। तुम्हें मैं गोली मारूँगा। (**बन्दूक तानता है।**)

व्यक्ति : नहीं, नहीं, मैं गद्दार नहीं हूँ···मैं कुछ नहीं हूँ। मैं गद्दार नहीं हूँ। मैं पाकिस्तानी नहीं हूँ···मैं कुछ नहीं हूँ।

शिशिर दा : तो इस तरह घबराते क्यों हो ? कुछ नहीं हो तो इन्सान तो हो।

व्यक्ति : (**पैरों में गिरकर**) तो···तो मेरी रक्षा कीजिए···मैं···मेरे सब साथी मारे गए···मेरे सब साथी···

शिशिर दा : (**उत्साह के स्वरों में**) तुम तो नहीं मारे गए। तो ज़िंदा इन्सान का सबूत दो। सीधे खड़े होना सीखो। तुम बाङ्ला देश के नौजवान हो, यदि मरना ही है तो एक जवान की तरह मरो। इस तरह घिघियाकर कायरों की मौत मरने में तुम्हें शर्म नहीं आती ? अपनी मातृभूमि बाङ्ला देश को अपमानित कर तुम

नौजवान कैसे कहला सकते हो ?

व्यक्ति : मुझे माफ़ कीजिए। लेकिन जो घटना मेरे सामने घटी है, उसे देखकर बड़े से बड़े हिम्मतवर की हिम्मत छूट जाएगी। मेरे सामने बेकुसूर इन्सानों को गोलियों से भूना गया है। वे कराहते हुए मौत की गोद में सो गए, उनकी कराहें इस समय भी मेरे कानों में गूँज रही हैं।

शिशिर दा : ऐसी घटनाएँ पिछली पच्चीस तारीख से हो रही हैं। ऐसा नर-संहार संसार के इतिहास में कभी नहीं हुआ। लेकिन तुम···तुम अपना पूरा परिचय दो। तुम कौन हो ? कहाँ रहते हो ?

व्यक्ति : आप···आप···मेरा परिचय पाकिस्तानी सिपाहियों को तो नहीं देंगे ? वे एक ही गोली में मुझे मार डालेंगे।

शिशिर दा : विश्वास करना सीखो युवक। मेरा नाम शिशिर कुमार है। मैं मुक्ति फौज का संगठनकर्त्ता हूँ। बाङ्ला देश का सिपाही हूँ। तुम्हारा परिचय मुक्ति फौज के सिपाहियों को मिल सकता है, पाकिस्तानी भेड़ियों को नहीं।

व्यक्ति : (**शिशिर दा के चरण छूकर**)आपको प्रणाम करता हूँ। आप धन्य हैं कि आपने अपनी मातृभूमि की सेवा का व्रत लिया है।

शिशिर दा : मेरी प्रशंसा मत करो। अपनी बात कहो।

व्यक्ति : शिशिर दा ! मेरी कथा बहुत ही करुण है। मैं ढाका विश्वविद्यालय में पढ़ता था। मेरा नाम धीरेन्द्र नाथ है। 26 तारीख की रात में पाकिस्तानी सेना ने हमारे विश्वविद्यालय को घेर लिया और उसकी इमारतों में ऐसी आग लगाई कि उसे देखकर पत्थर जैसा दिल भी पानी-पानी हो जाता। उन्होंने छात्रावास के भीतर घुसकर सोते हुए छात्रों पर गोलियाँ चलाकर उन्हें हमेशा के लिए सुला दिया।

शिशिर दा : और उस समय तुम कहाँ थे ?

धीरेन्द्रनाथ : गोलियों की आवाज़ से मेरी नींद खुल गई। सामने गोलियाँ चल रही थीं। मैं अपने कमरे की पीछे की खिड़की से कूदकर भागा। गोलियों से बचने के लिए मैं एक पेड़ पर चढ़ गया और रात-भर पेड़ की पत्तियों में छिपा हुआ सारा काण्ड देखता रहा। हाय ! कितने बेकुसूर विद्यार्थी थे जो बचने के लिए टेबुलों की आड़ में छिप गए थे। फौजियों ने उन्हें खोज-खोजकर गोलियों से भून डाला। फिर उन्होंने अध्यापकों के घरों को घेरा। वे उन्हें समझाने के लिए बाहर निकले तो उन्हें भी गोलियों से उड़ा दिया गया। जिन छात्रों और अध्यापकों को किसी भी पार्टी से कोई लगाव नहीं था, उन्हें बेरहमी से न जाने क्यों मौत के घाट उतार दिया !

शिशिर दा : पाकिस्तान चाहता है कि जितने नवयुवक और पढ़े-लिखे लोग हैं, उन्हें पहले खत्म कर दिया जाए, नहीं तो वे जनता में बाङ्ला देश के विचारों का फिर प्रचार करेंगे ? पाकिस्तान बाङ्ला देश को हमेशा के लिए मिटाना चाहता है। वह उसे दूसरा पंजाब बनाकर अपने तानाशाही दल का बहुमत तैयार करना चाहता है।

धीरेन्द्रनाथ : आप ठीक कहते हैं। इसीलिए रात-भर वह नर-संहार होता रहा। छात्रा-

वास की मंजिल पर न जाने कितने छात्र मरे पड़े थे। सुबह फौजियों ने छात्रावास के नौकरों को हुक्म दिया—'जितने प्रोफेसर और छात्र मरे पड़े हैं, उन्हें घसीटकर नीचे लाओ, सुअर के बच्चो!' नीचे फुटबाल मैदान था। नौकरों ने सभी मरे हुए प्रोफेसरों और छात्रों को नीचे घसीटकर मैदान में डाल दिया।

शिशिर दा : बड़ा भयानक दृश्य होगा!

धीरेन्द्रनाथ : फिर नौकरों को हुक्म दिया गया कि वे एक बड़ी कब्र खोदें। नौकरों ने कब्र खोदी। उस कब्र में इन मरे हुए प्रोफेसरों और छात्रों को डालने का हुक्म दिया गया और कहा गया—'हरामियो! तुम भी मुरदों के पास खड़े होकर सलाम करो।' डरे हुए नौकरों ने हुक्म की तामील की। दूसरे ही क्षण फौजियों की गोलियों ने उनके जिस्म के चिथड़े-चिथड़े कर दिए और उनकी लाशें प्रोफेसरों और छात्रों की लाशों के साथ कब्र में गिर पड़ीं। जो विश्वविद्यालय एक दिन पहले विद्या का केन्द्र था, वह एक ही रात में श्मशान घाट बन गया! शिशिर दा! श्मशान घाट!

शिशिर दा : पाकिस्तान के फौजियों के लिए भी वह श्मशान घाट बनेगा।

धीरेन्द्रनाथ : और भी भयानक बात यह है, शिशिर दा, कि यूनिवर्सिटी के अहाते में जितनी लड़कियाँ रहती थीं, फौजियों ने उन सबका अपहरण किया। उनमें सुधारानी···सुधारानी···

शिशिर दा : सुधारानी? सुधारानी कौन?

धीरेन्द्रनाथ : सुधारानी—एक लड़की थी जिसके साथ अगले महीने मेरा विवाह होने को था। वह क्या जानती थी कि विवाह-वेदी के स्थान पर उसे अत्याचारों की बलिवेदी के सामने सिर झुकाना पड़ेगा और सिन्दूर के स्थान पर रक्त से उसकी माँग भरी जाएगी।

शिशिर दा : (सोचते हुए) बहुत-सी लड़कियों की माँग रक्त से भरी गई है। पाकिस्तानी सिपाही बाङ्ला देश की लड़कियों का अपहरण इसलिए कर रहे हैं कि उनसे वे ऐसी सन्तान पैदा करें जो खूँख्वार बनकर पाकिस्तान के पंजाबी मुसलमानों की इन्सानियत में आग लगा दें और अपनी कट्टर धर्मान्धता से बाङ्ला देश की हरियाली को वीरान बना दें। क्या तुम यह सब सहन कर सकते हो?

[धीरेन्द्रनाथ कुछ नहीं बोल रहा है।]

शिशिर दा : (**ज़ोर** देकर) बोलो, बोलते क्यों नहीं। क्या तुम यह सब कुछ सहन कर सकते हो? तुम जवान हो। तुम्हारे शरीर में गरम रक्त हिलोरें ले सकता है। क्या तुम यह सहन कर सकोगे कि बाङ्ला देश, जिसकी नसों में काज़ी नज़रुल इस्लाम का अग्नि-गीत गूँज रहा है, इस धर्मान्धता की आग में झुलसकर रह जाए?

धीरेन्द्रनाथ : लेकिन···लेकिन पाकिस्तानियों ने लाखों आदमियों का खून किया है, हम कुछ थोड़े-से आदमी क्या कर सकते हैं?

शिशिर दा : क्यों? क्यों नहीं कर सकते? एटम बम अपने आकार में कितना छोटा

होता है, लेकिन जब वह फटता है तो बड़े से बड़े भूमि-खंडों में आग लग जाती है ? हम संख्या में भले ही कम हों, लेकिन अगर संगठित हो जाएँ तो बड़ी-से-बड़ी पाकिस्तानी सेना को धूल में मिला सकते हैं।

धीरेन्द्रनाथ : आप ठीक कहते हैं, शिशिर दा।

शिशिर दा : और मैं तो यह कहता हूँ कि हम लोग डर क्यों गए हैं ? अगर सारे ढाका शहर के लोग, चटगाँव के लोग, कुष्टिया के लोग, नारायणगंज के लोग एक साथ पाकिस्तानी सेना पर टूट पड़ते तो भले ही हज़ारों लोग गोलियों से चिथड़े बन जाते लेकिन पाकिस्तानी सेना का कहीं नामोनिशान न रह जाता। बाङ्ला बेतार केन्द्र सूचना देता है कि 29 मार्च को पाकिस्तानी फौज ने तीन लाख बेगुनाह लोगों का कत्ल किया। एक दिन में तीन लाख ! अगर यही तीन लाख मिलकर आक्रमण करते तो पाकिस्तान की सहायता करने वाले अमेरिका और चीन भी दुम दबाकर भाग खड़े होते।

धीरेन्द्रनाथ : लेकिन हम लोग साहस के साथ एक साथ इकट्ठे नहीं हो सके !

शिशिर दा : तो अब हो सकते हैं। हमारे शेख़ मुजीबुर्रहमान चटगाँव के भूमिगत केन्द्र से मुक्ति फ़ौज का संचालन कर रहे हैं। हमारी मुक्ति फ़ौज के जनरल मेजर ज़िया खाँ ने पाकिस्तान के खूनी आक्रमण को रोकने के लिए कमर कस ली है। उन्होंने आदेश दिया है कि जब तक बाङ्ला देश पूर्णरूप से स्वतन्त्र नहीं हो जाता तब तक हम युद्ध करते रहेंगे ? हमारे पास काफी हथियार भले ही न हों, हिम्मत और साहस तो है जो हथियारों से कहीं ज़्यादा तेज़ है। हम छिपकर दुश्मन पर आक्रमण करेंगे और उसकी खून की प्यास उसी के खून से ठंडी करेंगे।

धीरेन्द्रनाथ : तो मुझे भी मुक्ति फ़ौज में भरती कर लीजिए। हम बाङ्ला देश की स्वतन्त्रता के लिए युद्ध करेंगे। अगर मरना है तो देश के लिए मरेंगे। जो-जो व्यक्ति पाकिस्तानियों की गोलियों से मारे गए हैं, उनके रक्त की धारा में पाकिस्तानियों के रक्त की धारा मिलाकर रहेंगे और मैं प्रण करता हूँ कि सुधारानी के अपहरण का बदला मैं पाकिस्तानियों को मौत के घाट उतारकर लूँगा।

शिशिर दा : एक सुधारानी क्यों ? सैकड़ों हज़ारों बाङ्ला देश की कुमारियाँ हैं जिनके अपमान का बदला हमें अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर लेना है। मेरे पास दो बंदूकें हैं। एक तुम ले लो। बन्दूक चलाना जानते हो ?

धीरेन्द्रनाथ : मैं यूनिवर्सिटी में एन० सी० सी० का सार्जेन्ट रहा हूँ। बन्दूक चलाने की शिक्षा साथियों को देता रहा हूँ।

शिशिर दा : ठीक है, तुम सच्चे अर्थ में सैनिक बनोगे। (**दूसरी बन्दूक देता है।**)

धीरेन्द्रनाथ : (**बन्दूक लेकर**) बहुत धन्यवाद ! अब यह बन्दूक मेरी चिर संगिनी रहेगी। (**बन्दूक सामने उठाकर**) ओ आग उगलने वाली बन्दूक ! तू ऐसी आग उगल कि उससे सारा पाकिस्तान जलकर भस्म हो जाए और बाङ्ला देश तेरी आग के प्रकाश में अपनी महानता का स्वर्ण शिखर फिर से देख ले।

शिशिर दा : साधु ! मैं प्रसन्न हूँ कि हमारे नौजवान अपना कर्त्तव्य नहीं भूले हैं। हम

सब मिलकर रवि बाबू के उस राष्ट्र-गीत को सार्थक करेंगे—

'आमार शोनार बाङ्ला, आमि तोमाय भालो बाशी।'

इस देश ने शताब्दियों से संसार को ज्ञान दिया है, क्रांति के ज्वालामुखी का विस्फोट किया है और ललित कलाओं के इन्द्रधनुष इस पृथ्वी पर उगाए हैं। उसमें अपार जीवनी शक्ति है। अत्याचार का यह छोटा-सा तूफ़ान क्या उसका कुछ बिगाड़ सकेगा ? असम्भव ! एक बार नहीं सौ बार असम्भव ! जब तक हम जीवित रहेंगे तब तक··· **(एक ओर घूरकर)** यह···यह कौन आ रहा है ? सावधान ! **(बैठकर अपनी बन्दूक सँभालता है।)**

धीरेन्द्रनाथ : वहीं खड़े रहो, नहीं तो गोली से उड़ा दिए जाओगे।

[धीरेन्द्रनाथ भी अपनी बन्दूक सँभालता है।]

व्यक्ति : (नेपथ्य से) जय बाङ्ला !

[एक व्यक्ति का चौंकने के ढंग से प्रवेश]

व्यक्ति : जय बाङ्ला !

[शिशिर दा और धीरेन्द्र बन्दूकें नीचे करते हैं।]

व्यक्ति : (अपना काला लबादा उतारते हुए) शिशिर दा !

शिशिर दा : कौन ? यूसुफ़ ?

यूसुफ़ : जी हाँ, मैं वही यूसुफ़ हूँ जिसकी बच्ची की तुमने जान बचा दी। मैं ज़िन्दगी-भर के लिए तुम्हारा गुलाम हूँ।

शिशिर दा : ये सब बातें कहने की ज़रूरत नहीं है।

यूसुफ़ : (धीरेन्द्रनाथ की ओर संकेत करते हुए) ये महाशय कौन हैं ?

शिशिर दा : ये ढाका विश्वविद्यालय के छात्र हैं। अब मुक्ति फौज के सैनिक हैं। इनका नाम धीरेन्द्रनाथ है। **(धीरेन्द्र से)** धीरेन्द्रनाथ ! ये हमारे मित्र यूसुफ़ हुसेन हैं।

यूसुफ़ : (धीरेन्द्रनाथ से) जय बाङ्ला !

धीरेन्द्रनाथ : जय बाङ्ला !

यूसुफ़ : एक गुप्त समाचार देना चाहता हूँ।

शिशिर दा : दो। शीघ्र दो। धीरेन्द्रनाथ के सामने कहने में कोई हानि नहीं।

यूसुफ़ : तो कहता हूँ। गुप्त रूप से यह सूचना मिली है कि पाकिस्तानी सिपाहियों के पास हथियार पहुँचाने के लिए एक मोटर बोट पद्मा नदी से इसी ओर आ रहा है और वह इसी किनारे लगने वाला है।

शिशिर दा : वह कितनी देर में इस जगह पहुँच जाएगा।

यूसुफ़ : उनके आने में देर नहीं है।

शिशिर दा : तो तुम उत्तर दिशा की ओर उन झाड़ियों में छिप जाओ। मैं यहीं रहूँगा। धीरेन्द्रनाथ पश्चिम की दिशा में रहेंगे। जैसे ही मोटर बोट किनारे लगे, हम तीनों एक के बाद एक गोली चलाएँगे।

यूसुफ़ : ठीक है।

धीरेन्द्रनाथ : मैं ऐसे निशाने से गोली चलाऊँगा कि मोटर बोट में छेद हो जाए।

शिशिर दा : नहीं, मोटर बोट को डुबाना नहीं है। उसमें रखे हुए हथियार हमें अपने काम में लाने हैं। हमें मोटर बोट के चालक और उसमें बैठे सिपाहियों को मारना है।

धीरेन्द्रनाथ : अच्छा, ठीक है। मैं ऐसा ही निशाना लगाऊँगा।

शिशिर दा : तो हमें शीघ्र ही अपनी दिशाएँ ले लेनी चाहिए (**यूसुफ़ से**) यूसुफ़ ! तुम उस ओर जाकर छिप जाओ।

[यूसुफ़ इंगित दिशा में शीघ्रता से चला जाता है।]

(**धीरेन्द्रनाथ से**) धीरेन्द्रनाथ ! तुम उस ओर जाकर छिपो। (**धीरेन्द्रनाथ शीघ्रता से इंगित दिशा की ओर बढ़ जाता है**) मैं यहीं छिप कर निशाना लूँगा।

[शिशिर दा घुटने टेककर बन्दूक साधता है। थोड़ी देर तक सन्नाटा। धीरे-धीरे मोटर बोट आने की ध्वनि सुनाई देती है। चारों ओर निस्तब्धता है। कुछ क्षणों में मोटर बोट का सिरा दिखलाई देता है। उसी क्षण तीनों ओर से तीन बन्दूकों की 'धांय···धाँय···धाँय' आवाज़ होती है। 'या ख़ुदा', 'या अल्ला', 'या इलाही', 'मारे गए', 'मारे गए' की करुण कराह सुनाई देती है। थोड़ी देर में यूसुफ़ और धीरेन्द्र दो घायल सिपाहियों को पकड़कर लाते हैं। दोनों को ज़मीन पर डाल देते हैं।

सिपाही : (**कराह लेकर**) या ख़ुदा···या ख़ुदा···धोखा। ज़ालिम ने···ज़ालिम ने··· कलेजे में···गोली···मार दी। ओह ! मरा···मरा (**तड़पकर मर जाता है। दूसरा सिपाही कराहता रहता है।**)

धीरेन्द्रनाथ : मेरे निशाने से बोट चलाने वाला सिपाही तो वहीं ढेर हो गया। शायद आपकी गोली से यह सिपाही ख़त्म हो गया और यूसुफ़ की गोली से यह दूसरा सिपाही घायल हुआ है।

शिशिर दा : ठीक निशाने पर गोलियाँ बैठीं। अच्छा धीरेन्द्रनाथ ! तुम इस मरे सिपाही की जेबों की तलाशी लो। देखो, कोई ज़रूरी कागज़ात और (**यूसुफ़ से**) तुम यूसुफ़ ! मोटर बोट का सामान देखो।

यूसुफ़ : बहुत अच्छा। मोटर बोट में कुछ और भी होगा, अँधेरे में कुछ दिखा नहीं, शायद किसी को मोटर बोट में बाँध भी रखा है। (**शीघ्रता से जाता है।**)

शिशिर दा : (**कराहते हुए सिपाही पर टार्च की रोशनी डालकर चौंकता है**) अरे, आप ? बलूची फ़ीरोज़ ख़ाँ ?

फ़ीरोज ख़ाँ : (**कराहते हुए**) कौन बोलता।

शिशिर दा : मैं हूँ शिशिर कुमार, अख़बार का रिपोर्टर। आपसे पहले मुलाक़ात हुई थी।

फ़ीरोज ख़ाँ : (**कराहते हुए**) ओ रिप···रिपोटर। तुम हमारा दोस्त। तुम हमको

गोली क्यों मारा ?

शिशिर दा : (**पास बैठकर**) मैं नहीं जानता था कि आप भी मोटर बोट में हैं। ओह ! आपने मुझ पर कितना अहसान किया था कि एक मासूम बच्ची की जान बचाकर उसे मुझे सौंप दिया था ।

फ़ीरोज ख़ाँ : पैले अमको पानी पिलाओ बाबा । अमारा गला सूक गया।

शिशिर दा : (**धीरेन्द्रनाथ से**) धीरेन्द्रनाथ ! आगे कुछ हटकर बाईं ओर जो हमारा कैम्प है, वहाँ से जल्दी पानी लाओ।

धीरेन्द्रनाथ : अभी लाया ।

शिशिर दा : जल्दी लाओ।

[धीरेन्द्रनाथ का शीघ्रता से प्रस्थान]

फ़ीरोज ख़ाँ : अमको जास्ती चोट नहीं नईं लगा। एक गोली हात में और एक गोली पाँव में लगा है । अम इसका परवा नईं करता, लेकिन खून जासती निकला है ।

शिशिर दा : मैं अभी पट्टी बाँध देता हूँ। (**अपने बैग से पट्टी निकालता है और पैर में पट्टी बाँधना शुरू करता है।**)

फ़ीरोज ख़ाँ : परवरदिगार का शुकर है कि जिस तरा रसीद ख़ाँ को गोली लगा, उस तरा हमको नईं लगा। अमारा जान सलामत ऐ।

शिशिर दा : आपने उस रोज़ बच्ची की जान बचाई थी, ख़ुदा उसी का सबाब आपको दिया। आप इस तरफ़ न देखिए, मैं पट्टी बाँधता हूँ। अच्छा, खान साहब ! जो बच्ची आपने मुझे दी थी, उसके बारे में कोई पूछताछ तो नहीं हुई ?

फ़ीरोज ख़ाँ : पूचताच क्यों ओता ! अमसे एक सिपाई ने पूचा तो हम बोला कि तुम हज़ारों बच्चों को मारते, हम एक को ज़िन्दा किया।

शिशिर दा : वाह, आपने क्या बात कही !

फ़ीरोज ख़ाँ : अम तो बाबा, सच बात कैना जानता ए। जूट से तो परवरदिगार ख़फ़ा ओता।

शिशिर दा : नहीं, आपने बच्ची की जान बचाकर सचमुच ही पुण्य का काम किया ।

[धीरेन्द्रनाथ पानी लेकर आता है।]

धीरेन्द्रनाथ : यह पानी पी लीजिए। (**लेटे-लेटे ही कुछ उठकर पानी पीता है।**)

शिशिर दा : धीरेन्द्रनाथ ! उस सिपाही की जेब की तलाशी लो।

धीरेन्द्रनाथ : अभी देखता हूँ ।(**मरे हुए सिपाही की जेब देखता है।**)

फ़ीरोज ख़ाँ : आँ, इस सिपाई के जेब में चीटि ऐ।

शिशिर दा : वह अभी देखी जाएगी ।

फ़ीरोज ख़ाँ : बाबा ! तुम कीतना अच्चा ऐ कि दुश्मन का मलम-पट्टी कर दिया।

शिशिर दा : आप हमारे दुश्मन नहीं हैं। घायल मनुष्य की सेवा करना हमारा धर्म है।

फ़ीरोज ख़ाँ : ओ तुमारा दरम इंसान का दरम ऐ।

धीरेन्द्रनाथः (**मरे हुए सिपाही के पास से उठकर**) यह एक पत्र है, पढ़ूँ ?

शिशिर दा : हाँ, पढ़कर सुनाओ ।

धीरेन्द्रनाथ : (**पत्र पढ़ता है**) खिदमत में जनाब याकूब ख़ाँ, सूबेदार साहब ! खिदमत में अर्ज़ करता हूँ कि आज मैमनसिंह में हमारे सिपाहियों ने दो हज़ार मकान जलाए, क़रीब नौ हज़ार काफिरों को जहन्नुम रसीद किया। कोमिल्ला के तीन सौ सिपाहियों के लिए हम अमरीका से आई हुई तीन सौ बन्दूकें, तीन हज़ार कारतूस और छः सौ हथगोले भेज रहे हैं। इसके साथ और भी उम्दा सामान है जो हमने बहुत बड़े ज़खीरे से छाँटकर मुहय्या किया है। 450 लड़कियों को आपस में तकसीम कर जो सबसे अच्छी चीज़ है, वह हुज़ूर के लिए है। वह सत्रह बरस की खूबसूरत बला। वह सब तरह से क़ातिल है। यहाँ उसने एक सिपाही को हलाक किया। हम तो उसे देखते ही हलाक हो गए। उसे जैसा चाहें, अपने काम में लाइएगा। इसे मैं हुज़ूर की खिदमत में पेश कर रहा हूँ। हम अपना काम मुस्तैदी से कर रहे हैं। ख़ुदा हाफिज़। पाकिस्तान ज़िन्दाबाद !

खादिम—हुसेन ख़ाँ

शिशिर दा : तो इस मोटर बोट में एक लड़की भी है।

फ़ीरोज ख़ाँ : आँ, बिल्कुल अमारा बेटी की तरह एक चोकरी ऐ।

शिशिर दा : यूसुफ़ तो देखने गया। वह सब सामान इकट्ठा करेगा। यह सामान मुक्ति फ़ौज को दिया जाएगा।

फ़ीरोज ख़ाँ : सब सामान के साथ अम बी एक सामान ऐ। अमको मुक्ति फ़ौज में नईं देगा ?

शिशिर दा : अवश्य। आप मुक्ति फ़ौज में भरती होना चाहेंगे तो आपको सूबेदार बनाया जाएगा।

फ़ीरोज ख़ाँ : तब तो अम ज़रूर बनेगा।

शिशिर दा : लेकिन अभी यूसुफ़ लौटकर नहीं आया।

धीरेन्द्रनाथ : मैं जाकर देखूँ ?

शिशिर दा : ज़रूर देखो, वह कौन-सी लड़की है, लेकिन पहले तुम इस मरे हुए सिपाही को दफ़न करने का तो प्रबन्ध करो।

फ़ीरोज ख़ाँ : नईं, कोई ज़रूरत नईं। जंगली चिड़िया इसको हज़म करेगा। पाकिस्तान तो आदमी को मार के रास्ते में चोड़ देता है। उसे कुत्ता और गिद्द खाता ऐ।

शिशिर दा : तो आपने देखा कि बाङ्ला देश पर जैसा ज़ुल्म हुआ, वैसा दुनिया के पर्दे पर नहीं हुआ।

फ़ीरोज ख़ाँ : या ईलाई ! बचपन में सुनता था कि जरमनी का इटलर बड़ा ज़ालिम ता। ओ मुल्कों को कुचलता-कुचलता आगे चलता ता। इमारतों को गिराता, कारकाने तोड़ता, अवाई जाज मार के गिराता—लेकिन ओ बेकसूर को इस तरा कत्ल नईं किया। बाङ्ला देश में आके तो इटलर का रू बी डर के मारे कबर में गुस जाएगा।

[यूसुफ़ का प्रवेश]

धीरेन्द्रनाथ : यूसुफ़ आ गया !

यूसुफ़ : शिशिर दा ! मोटर बोट में बहुत से सामान के साथ एक बेचारी लड़की भी है। बेचारी के हाथ-पैर मोटर-बोट में कस दिए गए थे। उसी को खोलने में इतनी देर लग गई।

धीरेन्द्रनाथ : वह लड़की कहाँ है ?

यूसुफ़ : उसे मैं अपने साथ लाया हूँ। (**पीछे देखकर**) वह यह है।

[एक सुन्दर लड़की का प्रवेश। उसकी दृष्टि नीचे है।]

धीरेन्द्रनाथ : (**गहराई से देखकर**) सुधा···रानी।

सुधारानी : (**धीरेन्द्र को देखकर**) धी···र··· (**कंठ अवरुद्ध हो जाता है।**)

[सुधारानी धीरेन्द्रनाथ के पैरों पर गिर जाती है। धीरेन्द्रनाथ उसे उठाता है। सुधारानी सिसकियाँ भरने लगती है।]

शिशिर दा : शान्त···शान्त···चुप हो जाओ, बेटी ! (**धीरेन्द्रनाथ से**) धीरेन्द्रनाथ ! यही सुधारानी है ?

धीरेन्द्रनाथ : हाँ, यह वही सुधारानी है, शिशिर दा ! जिसे छात्रावास की लड़कियों के साथ पाकिस्तान के सिपाही घेरकर ले गए थे। शिशिर दा ! हम लोग हमेशा के लिए बिछुड़ गए थे ! कभी नहीं मिल सकते थे ! तुम्हारी कृपा से हम फिर मिल सके। (**सुधारानी से**) सुधारानी ! ये हमारे बड़े भाई शिशिर दा हैं, इन्हें प्रणाम करो। (**सुधारानी शिशिर दा के चरण स्पर्श करती है।**)

शिशिर दा : (**सुख से**) जीती रहो बेटी ! मुझे प्रसन्नता है कि माँ दुर्गा की कृपा से तुम्हारा उद्धार हो गया।

धीरेन्द्रनाथ : ये यूसुफ़ भाई हैं, मुक्ति फ़ौज के सैनिक। इन्हें नमस्कार करो। (**सुधारानी हाथ जोड़कर नमस्कार करती है।**)

यूसुफ़ : अरे, मैं ही तो इनके बन्धन खोलकर लाया हूँ। अच्छा, मैं जाता हूँ। मोटर बोट में रखी सभी चीज़ों को सहेजना है।

फ़ीरोज ख़ाँ : ओ रे बाई ! अमको प्यास लगी ऐ। पानी पिला दो। बड़ा मैरबानी होगा।

शिशिर दा : यूसुफ़ ! इन्हें पानी और पिला दो और किसी पेड़ की ठंडी हवा में लिटा दो। इस पाकिस्तानी सिपाही को भी रास्ते से हटा दो।

धीरेन्द्रनाथ : मैं यूसुफ़ भाई की सहायता कर दूँगा।

यूसुफ़ : तो आओ, इस तरफ़।

[पाकिस्तानी सिपाही को दोनों नेपथ्य में ले जाकर पुनः आ जाते हैं।]

सुधारानी : यही दुष्ट था जो मुझे गोली मारना चाहता था।

फ़ीरोज ख़ाँ : ओ अम उसको रोका। अम बोला कि इतनी चोटी बच्ची को क्यों गोली से मारेगा ?

सुधारानी : हाँ, आपने रोका था।

फ़ीरोज ख़ाँ : (**यूसुफ़ से**) ओ बाई, अमारा गला सूकता है।

यूसुफ़ : चलिए, आपको ठंडा पानी पिला दूँ, पद्मा नदी का।

फ़ीरोज ख़ाँ : अरे बाई ! अपना आत देगा तब तो अम उटेगा।

यूसुफ़ : मेरे हाथ का सहारा लीजिए। (**सहारा देकर बलूची को उठाता है।**)

फ़ीरोज ख़ाँ : (**शिशिर से**) तुम अमारा जान बाचाएगा। तुम बऊत-बऊत आच्चा ऐ।

शिशिर दा : तुम भी मुक्ति फ़ौज में भरती होगे।

फ़ीरोज ख़ाँ : ज़रूर, ज़रूर। बरती ओगा। बाङ्ला देश में अम दोका काया। अमारा एक उँगली टूट गया। कोई बात नईं। ऊसके बदले अमको (**सुधारानी को संकेत कर**) एक बेटी मिल गया। (**सुधारानी से**) बेटी ! गबराना नईं। अम तुमारा सात है। (**यूसुफ़ के साथ लँगड़ाता हुआ जाता है।**)

शिशिर दा : (**बलूची के जाने की दिशा में देखकर**) कितना ईमानदार आदमी है। पाकिस्तान ऐसे कितने आदमियों धोखा देकर यहाँ लाया है। बहुत दिन नहीं लगेंगे जब पाकिस्तान का यह धोखा न केवल सिपाहियों पर ज़ाहिर होगा, बल्कि सारा संसार पाकिस्तान की धोखेबाज़ियों से परिचित हो जाएगा।

धीरेन्द्रनाथ : मैं तो आज बहुत सुखी हूँ, शिशिर दा, कि आपकी कृपा से मेरी सुधारानी पाकिस्तानियों के ख़ूनी पंजे से छूट सकी।

शिशिर दा : माँ दुर्गा की यह कृपा है कि उन्होंने असम्भव को भी सम्भव कर दिया। सुधारानी ! तुम धीरज रखो। शेख़ मुजीब की दहाड़ से पाकिस्तानियों को बाङ्ला देश से गीदड़ों की तरह भागना पड़ेगा। तुम दुखी मत होना। तुम लोगों पर जो अत्याचार हुए हैं, उन्हें बाङ्ला देश के नौजवान कभी सहन नहीं कर सकेंगे। वे इसका भरपूर बदला लेंगे। (**सुधारानी के हाथ को देखकर सहसा**) अरे, तुम्हारे हाथों पर यह रक्त कैसा ?

सुधारानी : मैंने एक सिपाही का ख़ून किया है, दादा !

शिशिर दा : सिपाही का ख़ून ? किस तरह !

सुधारानी : मैंने अपने आँचल में एक छुरी छिपा रखी थी। जब एक सिपाही मेरा हाथ पकड़कर मुझे अपने कमरे में ले जाने लगा तो मैंने वही छुरी उसकी छाती में भोंक दी। चारों तरफ शोर हुआ तो सिपाहियों ने मेरे हाथ जंजीरों से कस दिए और मुझे बेरहमी से पीटा गया।

धीरेन्द्रनाथ : (**दाँत पीसते हुए**) बेरहमी से पीटा गया ? थू है ऐसे जवानों पर ! जो एक लड़की को बेरहमी से पीट सकते हैं।

शिशिर दा : पाकिस्तानियों की यही हरकतें उनके जनाज़े की आखिरी कीलें होंगी।

सुधारानी : फिर उन लोगों ने निर्णय किया कि मेरे जुर्म की सज़ा देने के लिए मुझे गोली मार दी जाए। लेकिन इन्हीं बलूची सिपाही के बीच में आ जाने से गोली नहीं मारी गई।

शिशिर दा : शाबास ! बलूची सिपाही को इसका पुरस्कार दिया जाएगा।

सुधारानी : मुझे गोली नहीं मारी गई। किसी ने कहा कि मैं बहुत अच्छी शकल की हूँ, मुझे पाकर सूबेदार याकूब खाँ प्रसन्न होंगे। इसलिए मुझे मोटर बोट में बिठला-कर उनके पास भेजने का प्रबन्ध किया गया। मेरे हाथ बोट से भी कस कर बाँध दिए गए जिससे नदी में कूदकर आत्महत्या न कर सकूँ।

शिशिर दा : अब किसी को आत्महत्या करने की आवश्यकता नहीं है, अब बाङ्ला देश की रक्षा करने की आवश्यकता है।

धीरेन्द्रनाथ : हाँ, सुधारानी ! आज हमारा देश संकट में है। हम सबको उसकी रक्षा करनी है। दुर्गा माँ की कृपा से और शिशिर दा की सहायता से तुम्हारी रक्षा हो गई। हमारा-तुम्हारा विवाह तो अवश्य होगा किन्तु हम लोग विवाह की वेदी पर तब बैठेंगे जब हम अपने बाङ्ला देश को पाकिस्तानियों के पंजे से स्वतन्त्र कर लेंगे। यह तुम्हें स्वीकार है ?

सुधारानी : मैं यह स्वीकार करती हूँ। जबकि बाङ्ला देश की हज़ारों लड़कियों पर भीषण अत्याचार हो रहे हैं तब मैं यह सोच भी नहीं सकती कि मैं विवाह करूँ। जब हज़ारों व्यक्ति आज अत्याचारों से कराह रहे हैं तब उन कराहों के बीच मेरे विवाह के मंगल वाद्य बजेंगे ! जब हमारी बहनें पाकिस्तानियों की काल-कोठरियों में बैठकर आँसू बहा रही होंगी तब क्या मैं विवाह की वेदी पर बैठकर आभूषणों से अपना शरीर सजाऊँगी ?

शिशिर दा : साधु, साधु, सुधारानी ! तुम वास्तव में बंग-कन्या हो ! तुम्हारे इन विचारों से बंग भूमि दुगुनी हरियाली से लहलहा उठेगी।

शिशिर दा : शिशिर दा ! मुझे भी मुक्ति फ़ौज का कोई कार्य दीजिए।

शिशिर दा : बाङ्ला देश की स्वतन्त्रता के युद्ध में जो सैनिक घायल होंगे, तुम उनकी सेवा-सुश्रूषा करोगी। यही नहीं, यदि हमारी गोली से हमारे क्षेत्र में कोई पाकिस्तानी सिपाही घायल हो तो तुम उसकी भी परिचर्या करोगी। मानव-सेवा हमारा धर्म है।

सुधारानी : मैं आपकी आज्ञा से मुक्ति फ़ौज का प्रत्येक कार्य करूँगी।

धीरेन्द्रनाथ : मुक्ति फ़ौज तुम्हें पाकर धन्य होगी।

शिशिर दा : सुधारानी ! तुम बाङ्ला देश की दुर्गा हो !

सुधारानी : मैं माँ दुर्गा से प्रार्थना करूँगी कि बाङ्ला देश अमर हो !

शिशिर दा : जय दुर्गा ! जय बाङ्ला !

सब समवेत रूप में : जय दुर्गा ! जय बाङ्ला !

[धीरे-धीरे परदा गिरता है।]

अग्निशिखा

वस्तु-संकेत

इतिहास के अविस्मरणीय परिच्छेदों में राजनीति को नवीन परिभाषा देने वाले आचार्य चाणक्य का व्यक्तित्व अद्वितीय है। काले वर्ण और कुरूप शरीर में बुद्धि का वैभव इतना विराट था कि ज्ञात होता है कि किसी काले मेघ-मण्डल में विद्युत की प्रभा सारे आकाश को क्षणमात्र में प्रखर प्रकाश से परिपूर्ण कर रही है। तक्षशिला में आचार्यत्व का दायित्व ग्रहण कर उन्होंने न केवल देश-विदेश के सहस्रों विद्यार्थियों को शास्त्र की शिक्षा दी वरन् शस्त्र के अमोघ संचालन की क्रिया से राजनीति के क्षेत्र में क्रान्ति उपस्थित की। अपने अमर ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' में उन्होंने स्वयं इस बात की घोषणा की :

ऐन शस्त्रं च शास्त्रं च नन्दराज गता च भूः,
अमर्षेणोद् धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतं।

शस्त्र और शास्त्र से ही जीवन में विजय प्राप्त की जा सकती है, इसका स्पष्ट प्रमाण सम्राट् चन्द्रगुप्त का ऐतिहासिक व्यक्तित्व है जो आचार्य चाणक्य की बुद्धि की विचक्षणता और अन्तर्दृष्टि से ही विकसित हुआ। राजनीति और समाजशास्त्र दोनों के संतुलन से ही मानव और मानव-समाज की व्यवस्था हो सकती है। दोनों में से यदि किसी एक की उपेक्षा कर दी जाए तो जीवन की विधा अव्यवस्थित ही जाएगी, जिस प्रकार दो नेत्रों में से किसी एक में ही अंजन लगाकर दूसरा यों ही छोड़ दिया जाए तो मुख के सौंदर्य में विरूपता आ जाती है ! आचार्य चाणक्य ने जितना अधिक मगध राज्य को व्यवस्थित किया, उतना ही अधिक मगध के समाज को भी। जब समाज व्यवस्थित है तो परिवार व्यवस्थित है और जब परिवार व्यवस्थित है तो हर व्यक्ति अपना दायित्व समझता है। तभी तो घर के घर खुले रहते हैं और उनमें ताले लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। चोरी नहीं होती और यदि किसी मनोगत असंतुलन में होती भी है तो उसके लिए इतना कड़ा दण्ड होता है कि हाथ ही काट डाले जाते हैं जिससे चोरी करने वाला व्यक्ति जीवन-भर के लिए कलंकित हो जाता है। इससे किसी व्यक्ति के मन में चोरी करने का साहस ही नहीं होता। यही सामाजिक व्यवस्था है जो किसी शस्त्र की तेज़ धार से कम नहीं है।

आचार्य चाणक्य की राजनीतिक अंतर्दृष्टि पर तो अनेक नाटक लिखे गए हैं किन्तु उनकी सामाजिक दृष्टि पर किसी नाटक में प्रकाश नहीं डाला गया। यह तो सर्वविदित

है कि चाणक्य ने अपनी राजनीति में गुप्तचरों की जो प्रबल संस्था संगठित की थी, उसमें शत्रु की कोई अभिसंधि सफल नहीं हो सकती थी किन्तु वे गुप्तचर केवल राजनीति के क्षेत्र में ही कार्यरत नहीं थे, समाज के प्रत्येक स्तर का ज्ञान भी रखते थे और उसकी सूचना आचार्य चाणक्य के पास निरंतर पहुँचती रहती थी। इन्हीं वृत्तों और अन्तर्वृत्तों से वे समाज के प्रत्येक क्षेत्र को व्यवस्थित करते थे और मनुष्य की दुष्प्रवृत्तियों पर अंकुश रखते थे। उनके अर्थशास्त्र के 'दंड अधिकरण' से यह स्पष्ट हो जाता है।

प्रस्तुत नाटक के प्रथम अंक में उनकी इसी समाज नीति के अन्त:संघर्षों का चित्र है जो मैंने नाटक साहित्य में लाने का प्रयत्न किया है।

आचार्य चाणक्य के साथ सम्राट् चन्द्रगुप्त का व्यक्तित्व भी संबद्ध है।

बौद्ध और ब्राह्मण ग्रंथों में उनके संबंध में जो उल्लेख मिलते हैं उनसे ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य असाधारण व्यक्ति था। अपने वैभवशाली शासन-काल में उसने सिकन्दर महान् के सेनापति सेल्यूकस को ईस्वी पूर्व 305 में पराजित किया और उसकी पुत्री से विवाह किया। इस अभूतपूर्व विजय से इस सम्राट् ने अपने देश की वीरता के इतिहास को ग्रीस के इतिहासकारों तक पहुँचा दिया।

इधर वर्षों से चन्द्रगुप्त मौर्य के सम्बन्ध में एक निन्दनीय बात कही जाती थी कि वह मुरा नाम की शूद्रा का पुत्र था। प्रवाद यहाँ तक था कि चन्द्रगुप्त मौर्य शूद्रा मुरा से उत्पन्न नन्द ही का पुत्र था। इसी मुरा के नाम से चन्द्रगुप्त के साथ 'मौर्य' का वंश चला। यह बात बिल्कुल ही मिथ्या है। चन्द्रगुप्त मौर्य वंश का संस्थापक नहीं था। उसने इस वंश को नहीं चलाया, क्योंकि महात्मा बुद्ध के समय में मौर्य वंश के अस्तित्व का उल्लेख पालि साहित्य में पाया जाता है। मौर्य वंश को पालि साहित्य में क्षत्रिय वंश कहा गया है। इससे सिद्ध है कि चन्द्रगुप्त की कल्पित दासी माता 'मुरा' के नाम से मौर्य वंश का आरंभ नहीं हुआ। यदि मुरा के नाम से आरंभ होता तो 'मौर्य' के स्थान में 'मौरेय' होता। यदि चन्द्रगुप्त मौर्य वंश का प्रवर्त्तक होता तो महात्मा बुद्ध के समय में मौर्य वंश का अस्तिस्व असंभव होता।

चन्द्रगुप्त मौर्य को नीच कुलोत्पन्न प्रसिद्ध करने में मुद्राराक्षस के रचयिता विशाखदत्त का बहुत बड़ा हाथ है अथवा यों कहना चाहिए कि विशाखदत्त के शब्दों का यथार्थ न समझकर व्याख्याकारों ने भारी भूल की है और अर्थ का अनर्थ कर दिया है। 'मुद्राराक्षस' नाटक में कई स्थलों पर चाणक्य चन्द्रगुप्त को 'वृषल' शब्द से सम्बोधित करता है। संस्कृत में 'वृषल' शब्द का अर्थ है 'शूद्र' या 'नीच'। नाटक के एक स्थल में चाणक्य द्वारा भरे दरबार में चन्द्रगुप्त के प्रति 'वृषल' शब्द का प्रयोग किया गया है। साधारणतया किसी व्यक्ति के प्रति 'वृषल' का प्रयोग अपमानसूचक तथा कुत्सित अर्थ में होता है। अब विचारणीय बात यह है कि चन्द्रगुप्त चाणक्य का प्रिय शिष्य था, विशेष रूप से उसके स्नेह का पात्र था। क्या कोई भी आचार्य अपने सबसे प्रिय शिष्य को 'वृषल' कहकर उसका अपमान कर सकता है? यदि एक क्षण के लिए यह मान भी लिया जाए कि चन्द्रगुप्त वास्तव में वृषल अर्थात् शूद्र था और चाणक्य ने यथार्थ शब्द का ही प्रयोग किया तो भरे दरबार में चन्द्रगुप्त

के 'वृषलत्व' की घोषणा करना न केवल चन्द्रगुप्त का अपमान था वरन् स्वयं चाणक्य का अपमान होता। शूद्र के सचिव बनने से चाणक्य जैसे ब्राह्मण तथा महापंडित की महत्ता घट जाती।

यदि यह कहा जाए कि चाणक्य ने ब्राह्मणत्व के अभिमान या अहंकार के भाव से प्रेरित होकर चन्द्रगुप्त का जानबूझकर भरे दरबार में अपमान किया तो सहसा सम्राट् और चन्द्रगुप्त जैसा पराक्रमी शत्रु कभी उस अपमान को सहन न करता। शक्ति-सम्पन्न प्रभुत्व के कारण न केवल वीर-शिरोमणि चन्द्रगुप्त के लिए वरन् साधारण से साधारण राजा के लिए भी भरे दरबार में इस प्रकार का अपमान असह्य होता। इसलिए 'मुद्राराक्षस' नाटक में चन्द्रगुप्त के प्रति प्रयुक्त 'वृषल' शब्द का अर्थ शूद्र नहीं हो सकता। इस शब्द का वास्तविक अर्थ कुछ और ही है।

चन्द्रगुत मौर्य ने सीरिया की राजकुमारी सेल्यूकस की पुत्री से विवाह किया। इस प्रकार चन्द्रगुप्त की महारानी एक यूनानी रमणी थी। यूनानी राजकुमारी तो सेवा-सुश्रूषा करने के लिए यूनानी दासियों तथा परिचारिकाओं का चन्द्रगुप्त के महल में होना कोई आश्चर्य की बात नहीं हो सकती। यूनानी दासियाँ और परिचारिकाएँ यूनानी भाषा ही जानती होंगी और चन्द्रगुप्त को यूनानी भाषा में महाराज कहती होंगी। महाराज के लिए उस समय यूनानी भाषा में प्रचलित शब्द था बेसिलम (Basileos)।

चन्द्रगुप्त के दरबार में एक यूनानी राजदूत मेगस्थनीज़ नामी रहा करता था। इस दूत के अंगरक्षक तथा दूसरे सहकारी अवश्य ही यूनानी रहे होंगे। ये सब चन्द्रगुप्त को यूनानी भाषा में ही महाराज कहते रहे होंगे। इस प्रकार चन्द्रगुप्त के राजमहल और राजदरबार में यूनानी शब्द 'बेसिलस' अर्थात् 'महाराज' का प्रचुर प्रचार हो गया होगा। 'बेसिलस' का प्राकृत रूप है 'बसल', इसी का संस्कृत रूपान्तर है 'वृषल'। मेरी सम्मति में मुद्राराक्षस नाटक में चन्द्रगुप्त के प्रति प्रयुक्त 'वृषल' शब्द का वास्तविक अर्थ है 'महाराज'। विशाखदत्त ने इसी अर्थ में 'वृषल' का प्रयोग किया था। लेकिन पीछे से यूनानी शब्द 'बेसिलस' के लोप हो जाने से 'वृषल' का वास्तविक अर्थ अज्ञात हो गया। व्याख्याकारों और टीकाकारों ने 'वृषल' शब्द का यथार्थ अर्थ न समझकर चन्द्रगुप्त को 'शूद्र' बना दिया और उसके साथ घोर अन्याय किया।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त मौर्य क्षत्रिय था जिसकी वंश-परम्परा महात्मा बुद्ध के समय से चली आती थी। चन्द्रगुप्त मौर्य अद्भुत वीर और महा-पराक्रमी था। उसके संबंध में इतिहासकारों ने प्रशस्तियाँ लिखी हैं जो उसे संसार के सम्राटों में महान् घोषित करती हैं। स्वर्गीय डा० बेनी प्रसाद लिखते हैं:

चन्द्रगुप्त मौर्य ने कम से कम सारे उत्तर भारत में एक राज्य स्थापित कर दिया था।[1]

डा० ताराचन्द लिखते हैं:

चन्द्रगुप्त युद्धप्रिय और उत्साही शासन था और उसने पश्चिमी प्रान्तों की

1. हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता (1931), डा० बेनीप्रसाद, पृ० 298

विजय प्रारम्भ की ।[1]

श्री जयशंकर प्रसाद ने चन्द्रगुप्त मौर्य पर विशेष अध्ययन और अन्वेषण कर चन्द्रगुप्त नाटक लिखा है। उस नाटक की भूमिका में भी उन्होंने चन्द्रगुप्त को अत्यन्त पराक्रमशाली लिखा है। निम्नलिखित अवतरणों से चन्द्रगुप्त के वीरत्व और पराक्रम की सूचनाएँ मिलती हैं—

"ग्रीक ग्रंथकारों के द्वारा हम यह पता पाते हैं कि ई० पूर्व 326 में उसी समय चन्द्रगुप्त शत्रुओं से बदला लेने के उद्योग में अनेक प्रकार का कष्ट मार्ग में झेलते-झेलते भारत की अर्गला तक्षशिला नगरी में पहुँचा था। तक्षशिला के राजा ने भी महाराज पुरु से अपना बदला लेने के लिए सिकन्दर के लिए भारत का द्वार मुक्त कर दिया था। उन्हीं ग्रीक ग्रंथकारों के द्वारा यह पता चलता है कि चन्द्रगुप्त ने एक सप्ताह भी अपने को परमुखापेक्षी नहीं बनाए रखा और वह क्रुद्ध होकर वहाँ से चला गया।"[2]

यह अनिश्चित है कि सिकन्दर को मगध पर आक्रमण करने को उत्तेजित करने के लिए ही चन्द्रगुप्त उसके पास गया था अथवा ग्रीक युद्ध की शिक्षा-पद्धति सीखने के लिए वहाँ गया था। उसने सिकन्दर से तक्षशिला में अवश्य भेंट की, यद्यपि उसका कोई कार्य वहाँ नहीं हुआ पर उसे ग्रीकवाहिनी रणचर्या अवश्य ज्ञात हुई जिससे कि उसने पर्वतीय सेना से मगध राज्य का ध्वंस किया ।[3]

क्रमश: वितस्ता, चन्द्रभागा, इरावती के प्रदेशों को विजय करता हुआ सिकन्दर विपासा तट तक आया और मगध राज्य का प्रचण्ड प्रताप सुनकर उसने दिग्विजय की इच्छा को त्याग दिया और 325 ई० पूर्व में फिलिप नामक पुरुष को क्षत्रप बनाकर काबुल की ओर गया। दो वर्ष के बीच चन्द्रगुप्त उसी प्रान्त में घूमता रहा और जब वह सिकन्दर का विरोधी बन गया था तो उसी ने पार्वत्य जातियों को सिकन्दर से लड़ने के लिए उत्तेजित किया जिसके कारण सिकन्दर को इरावती से पाटल तक पहुँचने में दस मास समय लग गया और इस बीच में नये आक्रमणकारियों से सिकन्दर को बहुत क्षति हुई ।[4]

सिकन्दर के भारतवर्ष में रहने ही के समय में चन्द्रगुप्त द्वारा प्रचारित सिकन्दर द्रोह पूर्ण रूप से फैल गया और इस प्रकार कुछ पार्वत्य राजा चन्द्रगुप्त के विशेष अनुगत हो गए में। उनको रणचतुर बनाकर चन्द्रगुप्त ने एक अच्छी शिक्षित सेना प्रस्तुत कर ली थी जिसकी परीक्षा प्रथमत: ग्रीक सैनिकों ने ली। इसी गड़बड़ से फिलिप मारा गया और उस प्रदेश के लोग पूर्ण रूप से स्वतंत्र बन गए। चन्द्रगुप्त को पर्वतीय सैनिकों से बड़ी सहायता मिली और वे उसके मित्र बन गए। विदेशी शत्रुओं के साथ भारतवासियों का युद्ध देखकर चन्द्रगुप्त एक रणचतुर नेता बन गया। धीरे-धीरे उसने सीमावर्ती लोगों को एक में मिला लिया। चन्द्रगुप्त और पर्वतेश्वर विजय के हिस्सेदार हुए और

1. हिन्दुस्तान का इतिहास (1934), डा० ताराचन्द, पृष्ठ 64
2. चन्द्रगुप्त (श्री जयशंकर प्रसाद), सं० 2002, प्रस्तावना, पृष्ठ 23
3, 4. वही, पृष्ठ 24

सम्मिलित शक्ति से मगध पर राज करने के लिए चल पड़े।[1]

अपमानित चन्द्रगुप्त बदला लेने के लिए खड़ा था। मगध राज्य की दशा बड़ी शोचनीय थी। नन्द आन्तरिक विग्रह के कारण जर्जरित हो गया था। चाणक्य-चालित म्लेच्छ सेना कुसुमपुर को चारों ओर से घेरे खड़ी थी। चन्द्रगुप्त अपनी शिक्षित सेना को बराबर उत्साहित करता हुआ सुचतुर रण-सेनापति का कार्य करने लगा।

पन्द्रह दिन तक कुसुमपुर को बराबर घेरे रहने के कारण और बार-बार खण्ड-युद्ध में विजयी होने के कारण चन्द्रगुप्त एक प्रकार से मगध-विजयी हो गया।[2]

केवल नन्द को ही पराजित करने से चन्द्रगुप्त को एक बड़ा विस्तृत राज्य मिला जो कि असम से लेकर भारत के मध्यप्रदेश तक व्याप्त था।[3]

इस समय चन्द्रगुप्त का शासन भारतवर्ष में प्रधान था और छोटे-छोटे राज्य यद्यपि स्वतंत्र थे, पर वे भी चन्द्रगुप्त के शासन से सदा भयभीत होकर मित्र-भाव का बर्ताव रखते थे। उसका राज्य पांडिचेरी और कानानूर से हिमालय की तराई तक तथा सतलज से असम तक था।[4]

उपर्युक्त अवतरणों से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त सद्वंश क्षत्रिय था और उसने जीवन-भर युद्ध ही में अपने जीवन की चरम सफलता देखने का प्रयत्न किया। उसने ग्रीक सैन्य-संचालन और संगठन की ऐसी अपूर्व शिक्षा प्राप्त की थी कि वह अपने समय का बड़ा तेजस्वी वीर और रणकुशल नेता बन गया था। उसका आतंक सर्वव्यापी था और प्रतापी शत्रुओं को अशान्त कर देने वाला था। हमारे भारतीय साहित्य में चाणक्य और चन्द्रगुप्त के इतिहास के इतिवृत्त पर कुछ नाटक लिखे गए हैं। इन सभी नाटकों में मैंने यह अनुभव किया है कि चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व के साथ न्याय नहीं किया गया। यद्यपि यह नाटक विविध दृष्टिकोणों से लिखे गए हैं तथापि किसी दृष्टिकोण में भी चन्द्रगुप्त, जो अत्यन्त पराक्रमी, वीर और शक्ति में अप्रतिम था, अपने व्यक्तित्व में उभर नहीं सका। पहले तो उसे शूद्र मानकर हमारी दृष्टि में उसे राजोचित मर्यादा से हीन चित्रित किया गया, फिर आचार्य चाणक्य के व्यक्तित्व का बोझ उस पर सभी कालों में ज़िरह-बख्तर की भाँति लदा रहा। ज़िरह-बख्तर से उसकी रक्षा अवश्य हुई किन्तु उस पर इतना बोझ पड़ा रहा कि स्वाभाविकता के साथ वह अंग-संचालन भी नहीं कर सका। चन्द्रगुप्त ने अपने आचार्य की नीति से सदैव विजय प्राप्त की, चन्द्रगुप्त ने उन्हें सदैव ही आचार्य के नाते मस्तक झुकाया किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि चन्द्रगुप्त इतना गया-बीता नरेश था कि उसे अपनी राजोचित मर्यादा और आत्मसम्मान का भी ज्ञान नहीं था। जिसने सिकन्दर के सम्पर्क में आकर शासक और विजेता के आदर्शों को समझा और असभ्य पर्वतीय सेनाओं का संगठन किया, भयानक रणों में सम्मुख रहकर असीम

1. चन्द्रगुप्त (जयशंकर प्रसाद), सं० 2002, प्रस्तावना, पृष्ठ 26
2. वही, पृष्ठ 28
3. वही, पृष्ठ 32
4. वही, पृष्ठ 33

साहस और धैर्य से उनका नेतृत्व किया; जीवन और मृत्यु की विभाजक सूक्ष्म रेखाओं पर विद्युत्-गति से चला और तलवार की धार जो जीवन-सूत्र के टुकड़े करने के लिए सदैव झूलती रही उसे सदैव चुनौती देता रहा, वह चन्द्रगुप्त चाणक्य के सामने इतना दब्बू और आतंकित बना रहा कि अपनी राजनीतिक-सामाजिक मर्यादा की हानि देखकर वह उसका प्रतिकार भी नहीं कर सका और अपने आत्म-सम्मान के संबंध में अपने अखंड वीरत्व की एक चिनगारी प्रकट नहीं कर सका ? निस्संदेह यह चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व के प्रति भारी अन्याय हुआ है। इस संबंध में हम तीन नाटक प्रतिनिधि रूप से लेते हैं। पहला नाटक श्री विशाखदत्त रचित 'मुद्राराक्षस' है जो संस्कृत में लिखा गया और जिसकी रचना पाँचवीं शताब्दी के आसपास की है। दूसरा नाटक स्वर्गीय श्री द्विजेन्द्रलाल राय रचित 'चंद्रगुप्त' है, जिसकी रचना सन् 1909 में बंगला भाषा में हुई और तीसरा नाटक 'चंद्रगुप्त' स्वर्गीय श्री जयशंकर प्रसाद रचित है, जिसकी रचना हिन्दी में सन् 1931 में हुई। संस्कृत, बंगला और हिन्दी के इन तीनों प्रतिनिधि नाटकों में चंद्रगुप्त के व्यक्तित्व के प्रति उचित न्याय नहीं किया गया। चाणक्य और चंद्रगुप्त के इतिहास से संबंध रखने वाले इतिवृत्त में (जिस पर उपर्युक्त तीनों नाटकों की रचना हुई है) केवल एक ही प्रसंग ऐसा है जिसमें चंद्रगुप्त के व्यक्तित्व के उभरने का अवसर आता है। वह प्रसंग है 'कौमुदी महोत्सव' का। कुसुमपुर की विजय के उपरान्त सम्राट चंद्रगुप्त शरद्काल की पूर्णिमा के अवसर से लाभ उठाकर अपनी विजय को मंगलमयी और आनन्ददायिनी बनाने के लिए 'कौमुदी महोत्सव' की घोषणा करता है और चाणक्य उसका निषेध कर देता है। चंद्रगुप्त की यह कुसुमपुर में प्रथम राज-घोषणा है और उसके निषेध से चंद्रगुप्त का क्षुब्ध होना स्वाभाविक है।

उपर्युक्त नाटकों में 'कौमुदी महोत्सव' प्रसंग पर कम या अधिक चर्चा की गई है। चंद्रगुप्त ने अपने अधिकारों के लिए संघर्ष भी करना चाहा है किन्तु वह न तो संघर्ष ही कर सका है और न अपने मनोविज्ञान में स्वाभाविकता ही ला सका है। इतिहास ग्रन्थों में मुझे जो चंद्रगुप्त का व्यक्तित्व मिला है उसके प्रति हमारे साहित्य में न्याय नहीं हो सका, मुझे ऐसा लगता है। मुद्राराक्षस नाटक में चन्द्रगुप्त धीरोदात्त नायक रहकर भी 'छल-कलह' से ही काँप उठता है। आर्य चाणक्य द्वारा आश्वासन पाकर भी कि 'तू झूठी कलह करके कुछ समय तक स्वतन्त्र होकर अपना प्रबन्ध आप कर ले।' उसे बड़ा-पाप' सा लगता है और चाणक्य का अभिनय-क्रोध देखकर ही घबड़ाकर कहता है, 'अरे ! क्या आर्य को सचमुच क्रोध आ गया ?' आर्य चाणक्य की राजनीति के आवर्त में वीरवर चन्द्रगुप्त तिनके की तरह चक्कर खा रहा है। श्री द्विजेन्द्रलाल राय ने चन्द्रगुप्त का वीरत्व प्रदर्शन एक रूठे हुए बालक की मनचली हास्यास्पद मनोवृत्ति की भाँति चित्रित किया है। राय महाशय के नाटक से दिए गए उद्धरण के पूर्व दृश्य में चाणक्य चन्द्रकेतु के जाने के उपरान्त स्वगत-कथन में कहता है—'एक महान् पवित्र उज्ज्वल राज्य छोड़कर मैं कहाँ जा रहा हूँ ! अब भी उसका आलोक-मंडित शिखर दिखाई पड़ रहा है। तब सब कुछ अंधकार में लुप्त हो जाने के पहले ही क्यों न लौट चलूँ ? पिशाची ! छोड़ दे, लौट जाऊँ। नहीं-नहीं—कहाँ लौट जाऊँगा ! कौन हाथ पकड़कर

ले जाएगा ? मिथ्या, प्रवंचना, चौर्य, हत्या इन सबका भी तो एक राज्य है। इसमें बुरा क्या है !' आदि-आदि और चन्द्रगुप्त एक अदूरदर्शी सम्राट् की भाँति सैनिकों से चाणक्य को बन्दी करने को कहता है। जब सैनिक आगे बढ़ते हैं तो चाणक्य बड़े ही शान्त भाव से हाथ के संकेत से उन्हें रोक देते हैं। और सैनिक सम्राट् के आदेश की अवहेलना करते हुए रुक भी जाते हैं। चाणक्य के चले जाने के बाद चन्द्रगुप्त चन्द्रकेतु से खीजे हुए बालक की भाँति कहता है—'चन्द्रकेतु ! मैं तुम्हारा उपदेश नहीं चाहता। तुम्हारे अनुरोध से मैंने चाणक्य को एक बार क्षमा कर दिया था—पर मैंने गलती की थी। ब्राह्मण की मजाल तो देखो ! मैं महाराज हूँ, फिर भी कोई शक्ति नहीं है। भाई को क्षमा करने की भी मुझमें क्षमता नहीं, मानो राज्य का मैं कोई भी नहीं हूँ। केवल एक महाराज का अभिनय कर रहा हूँ। इस व्यंग्य अभिनय से तो सीधी-सादी गुलामी अच्छी।'

राय महाशय ने बहुत अधिक भावुकता से दोनों चरित्रों—चंद्रगुप्त और चाणक्य—को मर्यादा के पद से गिरा दिया है।

प्रसाद जी ने श्री राय महोदय का अनुकरण करते हुए भी अपनी विशेषता रखी है। उन्होंने सुलझे हुए ढंग से चाणक्य और चन्द्रगुप्त दोनों के महत्त्व और गौरव का अच्छा प्रतिपादन किया है। भावनातिरेक से उनके चरित्र विकृत होने से बच गए हैं किन्तु प्रणय के चक्रव्यूह में चाणक्य और चन्द्रगुप्त दोनों ही मार्गभ्रष्ट-से होते दीख रहे हैं। वीरत्व से कहीं अधिक प्रेम चन्द्रगुप्त को धर्म से हो गया है और संन्यास के सूने क्षणों में चाणक्य पर भी राजनीति के स्थान पर प्रेम की स्मृतियाँ प्रहार कर बैठती हैं। चाणक्य और चन्द्रगुप्त में गुरु-शिष्य का ऐसा कठिन-कठोर संबंध है कि चन्द्रगुप्त अपने महान व्यक्तित्व से उद्भूत अधिकार की अवहेलना में एक वाक्य भी स्पष्ट कंठ से नहीं कह सकता और चाणक्य उसका स्पष्टीकरण करना अपने महान् 'ब्राह्मणत्व' के आदर्श से बहुत नीचा समझता है और ऐसा व्यवहार करता है कि चन्द्रगुप्त एक मच्छर की तरह उसके कानों के पास कुछ भनभना गया और उसने हाथ की हवा से उसे दूर कर दिया या उस स्थान से चला गया।

चन्द्रगुप्त और चाणक्य के इस गंभीर चरित्र-चित्रण का उत्तरदायित्व मैंने अपने ऊपर लेने का साहस किया है। इस संबंध में बौद्ध तथा ब्राह्मण ग्रंथों, मेगस्थनीज़ तथा चन्द्रगुप्त के इतिहास से संबंध रखने वाले समस्त ग्रंथों के अध्ययन को मैंने प्रमुख स्थान दिया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र का अनुशीलन कर मैंने तत्कालीन वातावरण की अंतर्दृष्टि प्राप्त करने की चेष्टा की है। मैंने अपना कथानक मुद्राराक्षस की कथावस्तु के अनुसार ही रखा है जिसमें कुसुमपुर की विजय के उपरान्त 'कौमुदी महोत्सव' के मनाए जाने का आयोजन है। पाटलिपुत्र का भौगोलिक ज्ञान मैंने मेगस्थनीज़ और हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता से लेकर कौमुदी-महोत्सव की सजावट अपनी कल्पना से प्रस्तुत की है। चन्द्रगुप्त के इतिहास से उसका जो व्यक्तित्व मिला है उसे मैंने मनोविज्ञान में इस प्रकार सुसज्जित किया है कि चन्द्रगुप्त के द्वारा प्रयुक्त समस्त उपमाएँ भी वीर रस से परिपूर्ण हैं।

राजनर्त्तकी और चन्द्रगुप्त का वार्तालाप चन्द्रगुप्त के वीरत्व के साथ राजसी

प्रकृति का प्रतीक है जिससे वह वास्तव में धीरोदात्त नायक बनता है । चाणक्य का ऐसे अवसर पर आ जाना जबकि चन्द्रगुप्त राजनर्त्तकी को पुरस्कार देने जा रहा है, मेरे नाटकीय कथावस्तु का प्रथम कौतूहल है । चन्द्रगुप्त और चाणक्य का अपने दृष्टिकोण के आधार पर जो विवाद हुआ है वह प्रत्येक के स्पष्ट कंठ से निकला है और दोनों के व्यक्तित्व का पूर्ण परिचायक है। इसी अंग की साहित्य में प्रथम बार अभिव्यक्ति और स्पष्टता के लिए मैंने नाटक की रचना और सजावट की है । दोनों अपने-अपने क्षेत्र के अधिकारी हैं और विशेषता इस बात में है कि दोनों अपनी मर्यादा में रहकर सागर की भाँति गर्जन करते हैं और अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व की मान्यता के लिए प्रबल कारण उपस्थित करते हैं। दोनों के द्वारा दिए हुए कारण अपनी विशेष परिस्थितियों में सत्य हैं और विवेकपूर्ण भी। नीति और कूटनीति में चाणक्य अवश्य श्रेष्ठ है और अन्त की घटना ही उसे श्रेष्ठ प्रमाणित कर देती है, जैसा कि ऐतिहासिक सत्य है । मैं अपनी कल्पना में वैभवशाली होते हुए भी ऐतिहासिक वातावरण और सत्य के प्रतिकूल नहीं जा सकता था, अत: अन्त में चन्द्रगुप्त को कहना ही पड़ा कि 'कौमुदी महोत्सव नहीं होगा ।' किन्तु इसके पूर्व दोनों महापुरुषों के व्यक्तित्व को अपनी महानता में उभरने का पूर्ण अवसर दिया गया है। अन्तिम घटना जिसमें राजनर्त्तकी अलका और वसुगुप्त के वास्तविक व्यक्तित्व का उद्घाटन होता है, चाणक्य की वाक्शक्ति, अन्तर्दृष्टि, नीति और तर्क की महानता को सिद्ध करने के लिए ही नियोजित की गई है। आशा है, मेरे इस प्रयास में हमारे देश के महान सम्राट चन्द्रगुप्त को अपने व्यक्तित्व के प्रकाशन के लिए यथेष्ट बल और वाणी प्राप्त हो सकेगी ।

'राक्षस' के सम्बन्ध में भी एक विशेष बात कहनी है। महाराज नन्द के मन्त्री 'राक्षस' का वास्तविक नाम क्या था, यह इतिहास या साहित्य के किसी ग्रन्थ से ज्ञात नहीं होता। 'राक्षस' अत्यन्त नीति-निष्णात था। राजनीति में वह इतना प्रखर था कि आचार्य चाणक्य अपनी बुद्धि में स्थिर रहते हुए भी कभी-कभी उससे भयभीत हो जाते थे। 'राक्षस' की राजनीति कभी-कभी इतनी भयावह हो जाती होगी कि आचार्य चाणक्य ने उसे 'राक्षस' नाम दे दिया हो, ऐसा ही मेरा अनुमान है ।

प्रस्तुत नाटक के द्वितीय अंक में मैंने 'राक्षस' की राजनीति का दिग्दर्शन कराने का प्रयास किया है। मेरा अनुमान है कि कुसुमपुर में 'कौमुदी महोत्सव' के आयोजन का प्रस्ताव राक्षस के एक गुप्तचर द्वारा ही चन्द्रगुप्त के समक्ष रखा गया कि जब चन्द्रगुप्त अपने आनन्दोत्सव में असावधान हो जाए तो राक्षस अपनी नीति से आचार्य चाणक्य को हतप्रभ करते हुए सम्राट् चन्द्रगुप्त को समाप्त कर दे। किन्तु कौमुदी महोत्सव के आयोजन में चन्द्रगुप्त भले ही असावधान हो, चाणक्य सतर्क हैं और वे 'राक्षस' की नीति को विफल बना देते हैं। चाणक्य और राक्षस दोनों की राजनीति इतनी प्रखर है कि वह अग्निशिखा की भाँति प्रज्वलित हो उठती है । यही नाटक की सार्थकता है ।

समाज-नीति और राजनीति के क्रोड में पोषित यह नाटक आचार्य चाणक्य,

सम्राट् चन्द्रगुप्त और अमात्य राक्षस के ऐतिहासिक व्यक्तित्व पर वास्तविक प्रकाश डाल सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। पहले मैंने 'कौमुदी महोत्सव' शीर्षक एक एकांकी की रचना की थी। एकांकी होने के कारण उसने केवल एक प्रसंग की 'चोट' पर ही अपनी उँगली रखी थी। उनकी पूर्व-पीठिका क्या थी, वे कैसे प्रेरित हुए और किस राजनीति की ग्रंथि में वे उलझे थे, इसका सम्पूर्ण स्पष्टीकरण इस नाटक में हुआ है। मौर्यकालीन इस नाटक से यदि हमारे देश के यशस्वी महापुरुषों के चरित्र की वास्तविकता का बोध हो सका तो यह मेरी नाट्य-कला का सौभाग्य होगा।

—रामकुमार वर्मा

पात्र-सूची
(प्रवेशानुसार)

पुरुष

सारंग, हिमांशु	:	आचार्य चाणक्य के शिष्य
सोमदत्त	:	विक्रमपुर जनपद का निवासी
चाणक्य	:	सम्राट् चन्द्रगुप्त के महामात्य
शिखरसेन	:	पावापुरी का निवासी
रविसेन	:	शिखरसेन का पुत्र
पुरुषदत्त	:	अश्वाध्यक्ष
भद्रभट्ट	:	गजाध्यक्ष
बालगुप्त	:	सम्राट् चन्द्रगुप्त के सम्बन्धी, अब आचार्य राक्षस के समर्थक
राक्षस	:	स्वर्गीय महाराज नन्द के महामात्य
मलयकेतु	:	सम्राट् पर्वतक के युवराज
भागुरायण	:	मलयकेतु का मित्र
वसुगुप्त	:	कुसुमपुर के समाहर्ता
यशोवर्मन	:	कुसुमपुर के अन्तपाल
पुष्पदन्त	:	कुसुमपुर के कार्यान्तिक
चन्द्रगुप्त	:	मगध के सम्राट्

रोहित, चर, सैनिक,
दौवारिक, सेवक आदि।

स्त्री

रोहिणी	:	सोमदत्त की पत्नी
सुवासिनी	:	स्वर्गीय महाराज नन्द की प्रमुख राजनर्त्तकी
अलका	:	स्वर्गीय महाराज नन्द की नर्त्तकी

प्रथम अंक

[आचार्य चाणक्य की कुटी। कोने में तिल और जव की राशि। एक ओर औषधि पीसने की सिल टिकी हुई है, दूसरी ओर कुश की राशि है। सामने खुला हुआ आँगन है जिसमें किनारे-किनारे फूलों की क्यारियाँ हैं। छप्पर पर कूष्माण्ड की बेल है। सामने कुटी का दरवाजा बन्द है। हर स्थान पर स्वच्छता और पवित्रता का वातावरण है।

आँगन के दोनों ओर दायें-बायें रास्ते हैं। दाहिनी ओर का रास्ता बाहर जाता है और बाईं ओर का कुटी के पार्श्व तक है। उसी के समीप बैठने के लिए भूमि ऊँची कर दी गई है।

परदा उठने पर दीख पड़ता है कि चाणक्य का शिष्य सारंग लकड़ियों का गट्ठा बाँध रहा है। कुल्हाड़ी पास ही पड़ी है। वह लकड़ियों को तरतीब से रखता है, फिर रस्सी कसने का प्रयत्न करता है। माथे का पसीना पोंछते हुए वह फिर लकड़ियों को कसता है। कसते हुए वह नेपथ्य की ओर देखता हुआ पुकारता है—]

सारंग : हिमांशु !···हिमांशु···

हिमांशु : (**नेपथ्य में दूर से**) आ रहा हूँ, सारंग !

सारंग : कितनी मेहनत से ये लकड़ियाँ काटी हैं। आचार्य ने जैसे नंद वंश काट डाला, वैसे ही मैंने ये लकड़ियाँ काटीं। (**हँसकर**) यह एक नंद इधर खिसक रहा है। (**एक लकड़ी पीछे खिसकाता है**)···अरे हिमांशु !

हिमांशु : (**नेपथ्य में पास से**) आ गया, सारंग !

सारंग : अरे आओ भी ! पेड़ से लकड़ियाँ कटती ही नहीं थीं जैसे अमात्य राक्षस की राजनीति हो। किन्तु मैंने काट ही डालीं।

[हिमांशु का प्रवेश। वह लँगड़ाता हुआ आता है।]

हिमांशु : (**देखकर**) ओ हो, तुम तो बहुत-सी लकड़ियाँ काटकर ले आए। जैसे लकड़ियाँ न हों, शत्रु की भुजाएँ हों।

सारंग : आचार्य की राजनीति से अब पाटलिपुत्र में शत्रु खोजने पर भी नहीं मिलते। (**लकड़ियों के गट्ठे की ओर देखकर**) अच्छा, इन लकड़ियों को तो मैं बाँध चुका। (**माथे का पसीना पोंछता है**) इन्हें पीछे ले जाना है। कुछ सहायता कर दो न !

हिमांशु : अभी लो। (**लँगड़ाता हुआ आगे बढ़ता है।**)

सारंग : अरे, तुम लँगड़ाते हुए क्यों चल रहे हो ?

हिमांशु : मैं कुश उखाड़ रहा था। जैसे ही पैर आगे बढ़ाया, कुश का पैना डंठल पैरों में चुभ गया। (**बैठ जाता है।**)

सारंग : (**देखकर**) देखूँ ! हाँ···कुश का डंठल ही तो है। यह कभी हमारे आचार्य के पैरों में भी चुभा था। वे सभी विद्याओं में पारंगत होकर विवाह की इच्छा से नगर में आ रहे थे, तभी उनके पैरों में कुश का डंठल चुभ गया। उन्होंने प्रण किया कि जब तक इन बाधक कुशाओं का सर्वनाश न कर लूँगा, तब तक कोई दूसरा कार्य नहीं करूँगा।

हिमांशु : हाँ, मैं जानता हूँ। उन्होंने अपने मार्ग के सभी कुशाओं को उखाड़ा ही नहीं, उनकी जड़ों में मट्ठा भी भरा जिससे पृथ्वी के भीतर उनका मूल ही नष्ट हो जाए।

सारंग : किंतु भूमि के इस भाग के कुश-समूह अभी तक अपना सिर उठाए हैं कि देखें, तुम हमें कहाँ तक नष्ट करते हो !

हिमांशु : और आज उसके डंठल ने मेरा पैर छेद ही डाला। देखो, यह डंठल कितना गहरा चुभ गया है।

सारंग : हाँ, बहुत गहरे चला गया। लाओ, मैं निकाल दूँ। अरे, रक्त भी निकल आया है। यहाँ उसका सिरा है, मैं खींचूँ ?

हिमांशु : ओह, बड़ा कष्ट है। उसे मत छुओ।

सारंग : शत्रु का तो सिर पकड़कर खींच ही लेना चाहिए। आचार्य ने नंद के साथियों को इसी तरह खींचकर नष्ट किया है। देखें, जी कड़ा करो। मैं डंठल का सिरा खींच देता हूँ।

हिमांशु : (**कराहकर**) आह !

[सारंग डंठल का सिरा निकालकर कोने में फेंक देता है।]

सारंग : बहुत नुकीला डंठल था।

हिमांशु : मेरा तो रोम-रोम सिहर उठा। (**उठ खड़ा होता है।**)

सारंग : यह बात आचार्य से मत कहना, नहीं तो उनका क्रोध फिर उभर आएगा। वे फिर अपने हाथों से कुशाओं को उखाड़ने के लिए बैठ जाएँगे और उनकी जड़ों में मट्ठा भरने लगेंगे।

हिमांशु : अब वे ऐसा क्यों करेंगे ? अब तो वे सम्राट् चन्द्रगुप्त के महामात्य हैं। उनके पास सहस्रों सेवक हैं और हम शिष्यगण भी हैं जो सरलता से उनका कार्य करेंगे।

सारंग : किंतु वे छोटे से छोटा कार्य अपने ही हाथों से करते हैं। महामात्य की महानता तो उनके चरणों को चूमकर भूमि में ही लोट रही है।

हिमांशु : सचमुच। वे महानता का महत्त्व जीवन के सत्य में मानते हैं, जीवन के वैभव में नहीं।

सारंग : उनके जीवन का वैभव ही क्या है ! (**हँसकर**) महामात्य, महामंत्री, इतने विशाल मगध साम्राज्य के महामात्य ! उनका विशाल स्थान देखते हो, (**कुटी को संकेत कर**) यह छोटी-सी कुटी, जिसका छप्पर भी झुका हुआ है। इस कोने में तिल की राशि, उस कोने में जव का समूह, इसे भी हम भिक्षा में माँगकर लाए हैं। यज्ञ के लिए ये समिधाएँ (**लकड़ी के गट्ठे की ओर संकेत करता है**) जिन्हें हम अभी काटकर लाए हैं। इन समिधाओं से वे यज्ञ करेंगे और इसी तिल और जव से उनके भोजन का प्रबन्ध होगा। महामात्य के घर की यह सम्पदा देखी ?

हिमांशु : सचमुच इस त्याग की कोई सीमा नहीं है, सारंग ! जिस मगध राज्य की सीमाएँ पंचनद प्रदेश तक फैली हैं, उस राज्य का महामंत्री कितने वैभव और विलास में रह सकता है ! उसके निवास के लिए आकाश को चूमने वाले महलों का निर्माण हो सकता है, किन्तु वही महामंत्री एक कुटी में—किसी भी दिन गिर पड़ने वाली कुटी में—निवास करता है, और भोजन ? षट्रस भोजन के स्थान पर वह तिल और धान पर अपना निर्वाह करता है।

सारंग : एक बार सम्राट् चन्द्रगुप्त ने निवेदन किया था कि महामात्य ! मैं सुगांग प्रासाद में निवास करता हूँ। आपके लिए भी एक प्रासाद का निर्माण होना चाहिए।

हिमांशु : तब हमारे आचार्य ने क्या कहा ?

सारंग : हमारे आचार्य ने कहा—वृषल ! प्रजा का विश्वास ही मेरा प्रासाद है जो आकाश से भी ऊँचा है। फिर मुझे किसी अन्य प्रासाद की क्या आवश्यकता है ?

हिमांशु : हमारे आचार्य वास्तव में महामात्य हैं। इतना अधिकार अपनी बाहुओं में समेटकर भी वे सामान्य नागरिक की भाँति जीवन व्यतीत करते हैं और प्रजा के कल्याण की बात सोचते रहते हैं। उन्होंने अर्थशास्त्र का निर्माण किया है जिससे समाज व्यवस्थित हो। समाज तो राजनीति का ही अंग है। बिना स्वस्थ समाज के राजनीति स्वस्थ नहीं रह सकती। ये दोनों राज्य की दो आँखें हैं।

[नेपथ्य में दूर से किसी नारी की सिसकियाँ सुनाई पड़ती हैं। कान देकर। किसी स्त्री का करुण स्वर।]

सारंग : संसार में तो कष्ट के ताने-बाने कसे हुए हैं। उन्हीं से जीवन का वस्त्र बुना गया है। फिर स्त्री की भावना में तो इतने घाव होते हैं कि ज़रा छूते ही वे रिसने लगते हैं। (**सिसकियाँ अधिक पास आती हैं।**)

हिमांशु : किंतु ये सिसकियाँ कितनी करुण हैं !

सारंग : तुम्हारी भाँति उस स्त्री के पैर में भी कुश का डंठल चुभ गया होगा। तुम्हारे मुख से कराह निकली, उसकी आँखों से आँसू।

हिमांशु : किंतु मार्ग चलते किसी स्त्री का रोना कोई अर्थ रखता है। (**सहसा**) अरे, ये सिसकियाँ तो आश्रम के पास ही सुनाई दे रही हैं।

सारंग : तो वह स्त्री महामात्य की सेवा में अपना दुःख निवेदन करने के लिए आई

होगी । फिर, चलो हम लोग ये समिधाएँ जल्दी से कुटी के पीछे रख दें। आचार्य देखेंगे तो कहेंगे कि हम लोग समय पर अपना कार्य नहीं करते। तुम भी कुएँ पर जाकर अपने पैर का रक्त धो डालो। आश्रम का पानी भी भर लेना। मैं आकर उठवा लूँगा। तो···जल्दी चलो।

[दोनों शिष्य लकड़ी का बोझ उठाकर ले जाते हैं। स्त्री की सिसकियाँ और पास आती हैं।]

नेपथ्य में पुरुष का स्वर : रोहिणी ! धीरज धरो। अधिक आँसू मत बहाओ।

[स्त्री और अधिक सिसकियाँ लेती है।]

पुरुष-स्वर : मत रोओ। हम लोगों का कष्ट शीघ्र ही दूर होगा।

[सारंग का प्रवेश। वह सिसकियाँ सुनकर द्वार तक जाता है।]

सारंग : (देखकर) आप लोग कौन हैं ? भीतर आइए।

[एक ग्रामीण नागरिक और उसकी स्त्री का प्रवेश। स्त्री सिसकियाँ ले रही है।]

ग्रामीण नागरिक : (हाथ जोड़कर) प्रणाम करता हूँ। मेरा नाम सोमदत्त है, ब्रह्मचारी ! मेरे पिता यज्ञदत्त हैं। ये मेरी पत्नी रोहिणी है। हम लोग विक्रमपुर जनपद के निवासी हैं। **(रोहिणी से)** रोहिणी ! ब्रह्मचारी के सामने रोना ठीक नहीं। चुप हो जाओ। **(स्त्री की सिसकियाँ धीमी पड़ जाती हैं।)**

रोहिणी : (विगलित कंठ से) प्रणाम करती हूँ।

सारंग : (हाथ उठाकर) स्वस्ति !

ग्रामीण नागरिक : हम लोग महामात्य का स्थान जानना चाहते हैं।

सारंग : महामात्य का स्थान यही है।

सोम : यही है ! महामात्य का स्थान यही है ! परिहास तो नहीं करते ब्रह्मचारी ?

सारंग : इसमें परिहास की क्या बात है ? महामात्य यहीं निवास करते हैं।

रोहिणी : यहीं निवास करते हैं ?

सोम : अरे, उनके लिए तो ऊँचे-ऊँचे महल होंगे, बड़ी-बड़ी, अट्टालिकाएँ होंगी। यह तो हम जैसे लोगों के रहने योग्य कुटी है।

सारंग : महामात्य इसी कुटी में रहते हैं। प्रजाजन के लिए जब महल खड़े नहीं होते तो महामात्य अपना अधिकार नहीं समझते कि वे महलों में रहें। महामात्य तो प्रजा के बन्धु हैं। बन्धुओं को एक समान रहना चाहिए।

रोहिणी : महाराज नंद के अमात्य तो बड़े-बड़े महलों में रहते थे। कभी प्रजाजनों से मिलते भी नहीं थे।

सारंग : तभी तो महाराज नंद का राज्य समाप्त हो गया। सम्राट् और महामात्य तो शासन-सरिता के दो तट हैं जिनसे जनता की लहरें मिलकर विश्राम पाती हैं।

सोम : तुम सत्य कहते हो, ब्रह्मचारी ! लोगों ने भी कहा कि महामात्य चाणक्य जनता

के प्रत्येक व्यक्ति से मिलते हैं। वे सामान्य कुटी में रहते हैं किंतु अपने गुप्तचरों से पूर्ण सुरक्षित हैं। हमें विश्वास नहीं हुआ कि वे एक सामान्य कुटी में रहते हैं। हमने लोगों से पूछा तो उन्होंने यही स्थान बतलाया।

सारंग : लोगों ने ठीक ही स्थान बतलाया। महामात्य यहीं निवास करते हैं।

रोहिणी : तब तो मैं भी उनके दर्शन करूँगी। उनसे मिलने का कौन-सा समय है ?

सारंग : वे सब समय प्रजा से मिल सकते हैं, क्योंकि प्रजा के हित के लिए ही वे अपने जीवन की उपयोगिता समझते हैं।

सोम : इस समय वे मिल सकते हैं ?

सारंग : अवश्य मिल सकते हैं।

सोम : कहाँ होंगे वे इस समय ?

सारंग : कुटी के गर्भ-गृह में हैं। वे वहीं राजनीति की गुत्थियाँ सुलझाया करते हैं।

सोम : हम उन्हें अपनी करुण कथा सुनाने आए हैं।

रोहिणी : यदि वे हमारी दुःख-भरी कथा सुन लें तो हम कृतार्थ होंगे।

सारंग : अच्छी बात है, मैं उन्हें अभी सूचित करता हूँ। आप लोग इस स्थान पर अपना-अपना आसन ग्रहण करें।

[दोनों ऊँची भूमि पर आसन ग्रहण करते हैं।]

रोहिणी : इतने बड़े राज्य के स्वामी को हमारी करुण-कथा सुनने का अवकाश कहाँ मिलेगा ?

सोम : ब्रह्मचारी तो कहते हैं कि वे प्रजाजनों का कष्ट दूर करने के लिए सदैव ही समय निकाल लेते हैं।

रोहिणी : और हमारा कष्ट उनके बिना कौन दूर कर सकता है ! बेटी अपराजिता की आँखों से जो निरन्तर आँसू बहते रहते हैं, उन आँसुओं की पीड़ा कौन जान सकता है ! माँ होकर भी मैं अपनी बेटी का दुःख दूर नहीं कर सकती। (**सिसकी**)

सोम : धीरज रखो रोहिणी ! महामात्य हमारी करुण कथा सुनकर अवश्य कुछ उपाय करेंगे।

रोहिणी : किंतु हम लोग अपनी बात कहकर उनका समय—बहुमूल्य समय तो नष्ट नहीं कर देंगे ?

सोम : जो महापुरुष होते हैं, रोहिणी ! वे छोटी बातों को बड़ी बातों से अधिक महत्त्वपूर्ण समझते हैं। समय उनका सेवक हो जाता है, वे समय के सेवक नहीं होते। वे तो···

[सारंग का प्रवेश]

सारंग : नागरिक ! आचार्य अभी आ रहे हैं।

सोम : मैं बहुत कृतज्ञ हूँ, ब्रह्मचारी ! कि तुमने कष्ट उठाकर आचार्य के समीप तक हमारी प्रार्थना पहुँचाई।

रोहिणी : तुम बहुत अच्छे हो ब्रह्मचारी ! दुखियों की पीड़ा तुम समझते हो। आचार्य

महापुरुष होकर भी हम लोगों के सुख-दुःख में भाग लेते हैं। उनका समय तो नष्ट होगा···

सारंग : समय नष्ट नहीं होगा, देवि !

रोहिणी : उनकी कृपा है, फिर अपनी करुण-कथा हम कहें भी तो किससे कहें, और उसे सुनने का अवकाश उन्हें छोड़कर किसके पास होगा ?

[नेपथ्य में पादुकाओं की ध्वनि]

सारंग : आचार्य आ रहे हैं। (**प्रस्थान**)

[सब शांत होकर खड़े हो जाते हैं। आचार्य चाणक्य का प्रवेश। श्याम वर्ण, गैरिक वस्त्र, जटाएँ, रुद्राक्ष की माला।

सोम : (**हाथ जोड़कर**) महामात्य की सेवा में प्रणाम।

रोहिणी : (**हाथ जोड़कर**) महामात्य की सेवा में प्रणाम।

चाणक्य : (**गम्भीर स्वर में**) स्वस्ति ! तुम यज्ञदत्त के पुत्र सोमदत्त हो और ये तुम्हारी पत्नी रोहिणी है ?

सोम : हाँ महामात्य !

चाणक्य : यह बहुत बुरा हुआ कि अपनी कन्या अपराजिता के विवाह के लिए तुमने जो संपत्ति एकत्र की थी, वह चोरी चली गई।

रोहिणी : महामात्य ! आपको यह सब ज्ञात है !

सोम : यही करुण कथा सुनाने के लिए हम दोनों आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं किंतु ···किंतु हमारे बिना बतलाए ही आप यह सब जानते हैं ! आप महान् हैं, महामात्य !

चाणक्य : (**रोहिणी से**) क्यों महाभागे ! तुम्हारा हार भी चोरी चला गया ?

रोहिणी : महामात्य ! कितनी कठिनाई से अनेक पण बचाकर मैंने अपनी बेटी के विवाह के लिए वह हार बनवाया था, वह भी चोरी चला गया।

चाणक्य : वह हार पाँच सौ पणों के मूल्य का था ?

रोहिणी : हाँ महामात्य ! बड़ी कठिनाई से मैंने पाँच सौ पण एकत्र किए थे। सोचा था, मेरा हृदय जिससे शीतल होता रहा उस कन्या के विवाह में एक रत्न-जटित हार देकर उसका हृदय शीतल करूँगी किन्तु···किन्तु···

चाणक्य : किंतु वह चोरी चला गया।

रोहिणी : माँ की ममता पर उस निर्दयी चोर को दया नहीं आई। (**सिसकियाँ**)

चाणक्य : शान्त, शान्त, महाभागे ! माता की ममता पर कोई आघात नहीं कर सकेगा। राज्य का यह कर्त्तव्य होगा कि वह चोरी करने वाले को तुम्हारे सामने उपस्थित करे। यदि उसने आत्महत्या नहीं की तो वह शीघ्र ही तुम्हारे सामने उपस्थित कर दिया जाएगा। उस समय चोरी के अपराध में उसके दोनों हाथ कटे होंगे।

रोहिणी : (**विह्वल होकर**) दोनों हाथ कटे होंगे !

चाणक्य : राज्य का नियम तो यही है। चोरी के अपराध के लिए ऐसा दण्ड दिया जाए कि चोर जीवन-भर कलंकित रहे। वह फिर से ऐसा अपराध न कर सके और जनता की सम्पत्ति सुरक्षित रहे।

रोहिणी : यह तो बड़ा कठिन दण्ड है, महामात्य ! एक बार के अपराध पर जीवन-भर कष्ट भोगना पड़े।

सोम : आपके शासन की सतर्कता से मेरी खोई संपत्ति तो मिल ही जाएगी किन्तु क्या ऐसा संभव नहीं है कि राज्य-विधान चोर को सामान्य-सा दण्ड दे दे।

रोहिणी : हाँ, महामात्य ! उसके हाथ क्यों काट डाले जाएँ ?

चाणक्य : नारी की करुणा से राज्य संचालित नहीं होते महाभागे ! राज्य चोर को क्षमा नहीं कर सकता। अच्छा ! विक्रमपुर के निवासी !तुमसे कुछ प्रश्न पूछूँगा। उनके उत्तर तुम्हारे मुख से ही कहलाना चाहता हूँ। तुम्हारी कन्या का विवाह स्थिर हो गया था ?

सोम : स्थिर हो गया था, महामात्य ! हम लोगों ने विवाह की तैयारी भी कर ली थी, किंतु आशा निराशा में परिणत हो गई।

चाणक्य : वर ने कन्या को देखा था ?

सोम : हाँ, महामात्य ! देखा था। वह सुयोग्य और सज्जन है।

चाणक्य : उसका नाम रविसेन है ?

सोम : हाँ, महामात्य ! रविसेन ही उसका नाम है।

चाणक्य : कन्या अपराजिता ने रविसेन के दर्शन कर लिए थे ?

रोहिणी : मैंने ऐसा अवसर दिया था, महामात्य ! कि मेरी पुत्री रविसेन का परिचय प्राप्त कर सके।

चाणक्य : (**टालते हुए**) दोनों में विवाह की इच्छा थी ?

सोम : हाँ, महामन्त्री ! वर के मित्रों से ज्ञात हुआ था कि वह इस सम्बन्ध से बहुत प्रसन्न था। उसने यह भी कहा था कि यदि वह विवाह करेगा तो मेरी कन्या के साथ, अन्यथा अविवाहित ही रहेगा।

चाणक्य : किंतु यह विवाह नहीं हो सका।

सोम : नहीं, वर के पिता को जब यह ज्ञात हुआ कि उसके पुत्र की इच्छा मेरी कन्या के साथ विवाह करने की है तो उसने इसे स्वीकार नहीं किया।

चाणक्य : स्वीकार नहीं किया !

सोम : वर का पिता अपने को पद में ऊँचा मानता है। वह अपने पद को कन्या के गुणों से अधिक महत्त्व देता है, इसलिए उसने इस विवाह के लिए अपनी स्वीकृति नहीं दी।

चाणक्य : (**सोचते हुए**) स्वीकृति नहीं दी ! पुत्र ने क्या सोचा ?

सोम : जहाँ तक मुझे सूचना मिली, इस अस्वीकृति से पुत्र बहुत निराश हुआ। वह किसी से नहीं बोलता था। अपने कक्ष में बैठा हुआ न जाने क्या-क्या सोचता रहता था। अपने पिता से भयभीत होने के कारण उनसे कुछ भी नहीं कह सकता था।

चाणक्य : (**रोहिणी से**) महाभागे ! अपनी कन्या के मन की स्थिति तुम्हें ज्ञात हो सकी ?

रोहिणी : विवाह के सम्बन्ध में कन्याएँ अधिक नहीं बोल सकतीं, महामात्य ! मेरी कन्या ऊपर से तो हँसती और मुस्कराती थी किंतु मन ही मन वह उदास थी। जो कार्य वह कुशलता से कर सकती थी, उसमें भी उससे भूल हो जाती थी। कुछ खोई-खोई-सी रहती थी। कभी मैं उसके पास जाती तो मेरे समीप आने का भान भी उसे न होता !

चाणक्य : ऐसी स्थिति हुई। (**सोमदत्त से**) फिर तुमने क्या किया पुरुष ?

सोम : मैंने वर के पिता से बार-बार प्रार्थना की, किंतु उन्होंने प्रत्येक बार मेरी प्रार्थना को ठुकरा दिया।

चाणक्य : फिर तुमने दूसरे स्थान पर विवाह के लिए प्रयत्न किया।

सोम : और मैं क्या करता, महामात्य ? कन्या बड़ी हो रही थी जैसे साँझ के पहर गहरे होते चले जाते हैं। उसका विवाह तो करना ही था। अविवाहिता कन्या से कितने दिनों तक पिता अपने घर की शोभा बढ़ा सकता है ? वसन्तश्री को किसी उपवन में सीमित नहीं किया जा सकता।

चाणक्य : (**मुस्कुराकर**) तुम कवि भी ज्ञात होते हो, नागरिक !

सोम : कुसुमपुर का वातावरण कलात्मक है, आचार्य ! उसी से मैं सोचता हूँ कि पिता तो एक चित्रकार की भाँति अपनी कन्या का रेखा चित्र ही प्रस्तुत करता है, विवाह उस रेखा चित्र में रंग भरता है।

चाणक्य : तो फिर उस रेखा चित्र में रंग भरने का प्रयत्न किया ?

सोम : हाँ, आचार्य ! जब रविसेन के पिता ने सम्बन्ध अस्वीकार किया तो मैंने दूसरे वर की खोज की। यह सम्बन्ध स्थिर हो ही गया था कि मेरे घर से वस्त्र और आभूषणों की चोरी हो गई।

रोहिणी : हमें तो ऐसा लगता है, आचार्य कि कन्या का ऋण चुकाए बिना ही हम लोगों के प्राण निकलेंगे। (**सिसकी**)

चाणक्य : ऐसा नहीं होगा, महाभागे ! तुम्हारी कन्या का विवाह होगा, तुम्हारी सम्पत्ति तुम्हें प्राप्त होगी।

रोहिणी : धन्य है महामात्य ! आपके लिए कुछ भी करना असम्भव नहीं है।

सोम : आप महान् हैं, महामात्य !

चाणक्य : और तुम जानते हो, सोमदत्त ! चोर कौन है ?

सोम : मैं क्या जानूं, महामात्य !

चाणक्य : चोर है रवि···सेन···।

सोम और रोहिणी : (**चौंककर**) रवि···सेन··· !

चाणक्य : हाँ, रविसेन। रविसेन तुम्हारी कन्या से सचमुच ही प्रेम करता है। जब उसका विवाह तुम्हारी कन्या से नहीं हो सका और उसने सुना कि तुम अपनी कन्या का विवाह किसी दूसरे स्थान पर निश्चित करने जा रहे हो, तो वह इसे सहन नहीं

कर सका। वह नहीं चाहता था कि तुम्हारी कन्या का विवाह किसी अन्य व्यक्ति के साथ हो। उसके पास इस विवाह को रोकने का कोई उपाय नहीं था। उपाय यही हो सकता था कि वह विवाह के वस्त्राभूषणों की चोरी कर ले जिससे विवाह की व्यवस्था ही न हो सके।

सोम : आपने ठीक ही सोचा महामात्य ! वह अकेले बैठकर मन ही मन उपाय भी सोचता रहा होगा।

रोहिणी : हाय ! जिसका हम सम्मान करते वही चोर बन गया।

चाणक्य : मानव-मन में ईर्ष्या और द्वेष का विष-दन्त है, महाभागे ! आकाश की विद्युत्-रेखा भले ही प्रकाशपूर्ण हो, किंतु जब वह भूमि पर गिरती है तो भूमि का हृदय विदीर्ण हो जाता है।

रोहिणी : तो यदि रविसेन ने चोरी की है तो उसके दोनों हाथ ही कट जाएँगे ! वह एक बार हम लोगों से मिलने आया था, कितना विनीत ! कितना सौम्य ! कितना सद्गुणी ! उसी को ऐसा दण्ड मिलेगा ?

चाणक्य : राज्य का विधान तो ऐसा ही है, महाभागे ! यह विधान उद्दंड, सौम्य और क्रूर, सद्गुणी और दुर्गुणी में भेद नहीं रखता।

रोहिणी : तो हम अपना अभियोग लौटा लेते हैं, महामन्त्री !

सोम : हाँ महामात्य ! हम लोग दुगुना परिश्रम कर, भूखे रहकर, सम्पत्ति एकत्र कर लेंगे। किसी के हाथ कटवाने से तो अच्छा है कि हम अपनी विपत्ति के दिन स्वयं ही काट लें।

चाणक्य : किन्तु राज्य का कर्त्तव्य है कि वह जनता में चोरी की प्रवृत्ति न बढ़ने दे। इसीलिए चोरों को दण्ड देने का विधान है।

[एक सेवक का प्रवेश]

सेवक : (**सिर झुकाकर**) महामात्य की जय हो। एक वृद्ध पुरुष आपकी सेवा में आना चाहते हैं।

चाणक्य : वृद्ध पुरुष ! मैंने उन्हें आने का आदेश भेज दिया था। उन्हें आने दो।

रोहिणी : आपको हम लोगों ने कष्ट दिया, महामन्त्री ! हमें क्षमा करें।

सोम : आप दुखियों पर दया करते हैं किंतु हमारा भाग्य ही ऐसा है कि अमृत का सरोवर हमारे सामने है और हम चाहते हुए भी अमृत के भागी नहीं हैं।

[एक वृद्ध पुरुष का प्रवेश]

वृद्ध : (**सिर झुकाकर**) महामात्य की जय हो। मेरा नाम शिखरसेन है, मैं पावापुरी का निवासी हूँ।

चाणक्य : तुम रविसेन के पिता हो ?

सोम : (**उत्साहित होकर**) यही वे हैं, यही वे हैं, महामात्य !

चाणक्य : शांत ! शांत !

शिखर : हाँ, महामात्य ! रविसेन मेरा ही पुत्र है। मैं नहीं जानता था कि वह मुझसे इतना विरक्त हो जाएगा। वह तीन दिनों से घर नहीं आया, न जाने कहाँ होगा (**सोमदत्त से**) सोमदत्त जी ! आप उसे जानते हैं, उसे तो आपने देखा होगा।

सोम : मैं तो उन्हें अच्छी तरह से जानता हूँ किन्तु मुझे कोई सूचना नहीं है कि वे इस समय कहाँ हैं।

रोहिणी : (**देखकर**) अच्छा, ये रविसेन के पिता हैं ?

शिखर : हाँ, मैं ही रविसेन का अभागा पिता हूँ। वह कुछ दिनों से उदास रहने लगा था। भोजन भी ठीक तरह से नहीं करता था। अपने कक्ष में बैठा-बैठा न जाने क्या सोचा करता था। तीन दिन पहले वह मुझसे बिना कुछ कहे न जाने कहाँ चला गया। अभी तक घर नहीं लौटा, महामात्य ! गुप्तचरों द्वारा आपसे साम्राज्य की कोई बात छिपी नहीं है। उनसे निश्चय ही पता चल जाएगा कि मेरा पुत्र कहाँ है।

चाणक्य : आपका पुत्र उदास क्यों रहता था, यह जानने की चेष्टा कभी तुमने की ?

शिखर : सम्भवतः उसके विवाह का सम्बन्ध जो सोमदत्त जी की पुत्री से होने जा रहा था, उसकी स्वीकृति मैंने नहीं दी।

सोम : भगवन् ! इसीलिए नहीं दी कि ये पद में श्रेष्ठ हैं।

चाणक्य : पद की श्रेष्ठता स्थायी नहीं है नागरिक ! वह आज है, कल नहीं है। फिर तुम्हारे पद से क्या तुम्हारे रक्त का रंग सामान्य रक्त से भिन्न हो गया है ? क्या तुम्हारी साँस लेने की क्रिया भिन्न है ? क्या शरीर की अवस्थाएँ तुम्हारा स्पर्श नहीं करतीं ? क्या तुम्हारा शैशव, यौवन और वार्द्धक्य अन्य व्यक्तियों की अवस्थाओं से भिन्न है ?

शिखर : नहीं है, महामात्य !

चाणक्य : तो पद की श्रेष्ठता क्या महत्त्व रखती है ? आचार और संस्कार की श्रेष्ठता मानव-जाति के किसी भी व्यक्ति में हो सकती है। वृद्ध पुरुष ! मनुष्य का एक ही पद है और वह पद है मानवता के सोपान पर प्रतिष्ठित होना।

शिखर : आपका कथन सत्य है, महामात्य !

चाणक्य : और पद का महत्त्व कार्य से है और कोई भी कार्य हीन नहीं है। यदि मानव अपने पदों के मुखौटे लगाकर एक-दूसरे के बीच में खाइयाँ खोद डाले तो क्या मानवता टुकड़े-टुकड़े नहीं हो जाएगी ? तब गीदड़ों की माँदों में और मनुष्य के परिवारों में क्या अन्तर रह जाएगा ? मानव एक है, उसकी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार उसके पद हैं और उन पदों के अनुसार उनके कार्य हैं। पद मानवता को नहीं बाँधते, मानवता पदों को बाँधती है।

सोम : आप धन्य हैं, महामात्य ! सत्य का विवेचन कितना स्पष्ट है।

चाणक्य : वृद्ध पुरुष ! तुम कौन हो ! पद वहीं तक मान्य है जहाँ तक सत्कार्यों का सम्बन्ध है, सत्कार्यों से ही मानवता का श्रृंगार होना चाहिए।

शिखर : मैं भ्रांति में था, महामात्य ! मुझे क्षमा करें।

चाणक्य : रविसेन तुमसे इसलिए विरक्त हो गया कि तुमने अपने पद के दम्भ में उसके हृदय के अनुराग को नहीं समझा। ऐसी स्थिति में वह आत्महत्या भी कर सकता है।

शिखर : (**विह्वल होकर**) आत्महत्या ! आत्महत्या ! ओह ! वह आत्महत्या न करे। मैं उसके विवाह की स्वीकृति दे दूँगा।

सोम : बस तो महामात्य ! रविसेन की खोज करा दीजिए।

रोहिणी : महामंत्री की जय; प्रभु कोई भी कार्य आपके लिए कठिन नहीं है।

शिखर : वह तीन दिनों से न जाने कहाँ है। वह सोमदत्त जी की कन्या के साथ विवाह के प्रस्ताव से बहुत प्रसन्न था किन्तु मैंने अपनी मूर्खता से उसके विवाह की स्वीकृति नहीं दी। वह इतना विनीत था कि मुझसे एक शब्द भी नहीं कह सका। तीन दिनों तक उदास घर में बैठा रहा फिर बिना कुछ बतलाए वह न जाने कहाँ चला गया। महामात्य ! कहीं उसने आत्महत्या तो नहीं कर ली, हाय ! वह मेरा एकमात्र पुत्र है। उसके बिना मैं अपना जीवन कैसे व्यतीत कर सकूँगा।

चाणक्य : और यदि वह चोर हो गया हो, तो ?

शिखर : फिर भी वह मेरा बेटा है, प्रभु ! यदि उसे चोरी का दण्ड दिया जाए तो वह मेरा ही अपराध होगा। मैंने ही उसे घर से जाने के लिए बाध्य किया। दण्ड मुझे दिया जाए। मेरे दोनों हाथ काट दिए जाएँ। अपने कटे हाथों से ही मैं अपने बेटे को हृदय से लगा लूँगा।

चाणक्य : भावुक मत बनो, शिखरसेन। अपराधी को दण्ड स्वयं ही भोगना पड़ता है। मृत्यु की भाँति दण्ड भी व्यक्ति विशेष के लिए निर्धारित है। (**पुकारकर**) सारंग !

नेपथ्य से : आया गुरुदेव !

[सारंग का प्रवेश]

सारंग : आज्ञा गुरुदेव !

चाणक्य : हिमांशु कहाँ है ?

सारंग : वे पास ही कुएँ पर गए हैं। वहाँ से शीघ्र ही आवेंगे।

चाणक्य : उसे मेरे पास भेजना।

सारंग : जो आज्ञा। (**प्रस्थान**)

चाणक्य : (**शिखरसेन से**) मुझे प्रसन्नता है, शिखरसेन ! कि तुमने अपनी भूल स्वीकार कर ली। यदि रविसेन ने चोरी की है तो उसके दोनों काट दिए जाएँगे। (**सोमदत्त से**) ऐसी स्थिति में जब शिखरसेन ने तुम्हारी कन्या से अपने पुत्र के विवाह की स्वीकृति दे दी है तो सोमदत्त ! तुम अपनी कन्या का विवाह ऐसे अपराधी से कर सकोगे ? अब पद की श्रेष्ठता का प्रश्न नहीं है, प्रश्न है कटे हुए हाथों का।

सोम : मैं विचार कर उत्तर दूँगा, महामात्य !

चाणक्य : (**रोहिणी से**) तुम क्या कहती हो, महाभागे ?

रोहिणी : मैं अपनी बेटी का हृदय जानती हूँ। उसके सुख में मेरा सुख है। मुझे रविसेन

से बेटी का विवाह कर देने में कोई आपत्ति नहीं होगी।

चाणक्य : साधु ! महाभागे !

[हिमांशु का प्रवेश]

हिमांशु : (**हाथ जोड़कर**) आज्ञा गुरुदेव !

चाणक्य : तुम कुएँ पर थे ?

हिमांशु : आश्रम का पानी भर रहा था। एक विशेष बात निवेदन करनी है।

चाणक्य : सुनूँगा।

हिमांशु : जब मैं आश्रम का पानी भर चुका तब एक मनुष्य शीघ्रता से आया और कुएँ की जगत पर चढ़ गया। संभवतः वह आत्महत्या करने के लिए कुएँ में कूदना ही चाहता था कि मैंने पकड़ लिया।

चाणक्य : वह रविसेन था ?

हिमांशु : हाँ गुरुदेव ! अनेक बार पूछने पर और भय दिखलाने पर उसने अपना नाम बतलाया—रविसेन।

शिखर : (**उद्विग्नता से**) रविसेन···रविसेन···मेरा बेटा···मेरा बेटा···कहाँ है ?

सोम : रविसेन है ?

रोहिणी : (**करुण स्वर से**) रवि···सेन···

चाणक्य : रविसेन को तुम अपने साथ लाए ?

हिमांशु : वे द्वार पर हैं, गुरुदेव।

चाणक्य : तुम्हारे कंधे पर यह गठरी कैसी है ?

हिमांशु : इसी गठरी को लेकर रविसेन आत्महत्या करने जा रहा था। मैंने यह गठरी उससे छीन ली। नहीं जानता, इसमें क्या है, यों बहुत भारी है, गुरुदेव !

चाणक्य : (**सोमदत्त से**) नागरिक सोमदत्त ! यह गठरी लेकर देखो, इसमें क्या है। इसमें तुम्हारी सम्पत्ति होगी। (**सोमदत्त बैठकर गठरी खोलने लगता है।**)

सोम : (**हर्षयुक्त विह्वलता से**) ओह ! इसमें···इसमें···तो मेरी···वही संपत्ति है, आचार्य ! जो चोरी चली गई थी।

रोहिणी : (**प्रसन्नता से**) और···और···यह मेरा···हार है। जिसे···जिसे मैंने अपनी ···बेटी के लिए···

चाणक्य : (**मुस्कराकर**) और देखो, क्या है।

रोहिणी : यही···यही···वह वस्त्र है जिसे पहनकर···जिसे पहनकर मेरी बेटी विवाह की···हाँ, विवाह की वेदी पर बैठती।

चाणक्य : एक कलश भी दीख पड़ता है। उसमें स्वर्ण-मुद्राएँ हैं ?

सोमदत्त : (**कलश का ढक्कन खोलकर**) हाँ महामंत्री ! स्वर्ण-मुद्राएँ···स्वर्ण-मुद्राएँ भी हैं।

चाणक्य : तो अपनी सम्पत्ति स्वीकार करो सोमदत्त ! महाभागे ! अपना हार सहेजकर रखें। (**हिमांशु से**) हिमांशु ! अपराधी को उपस्थित करो।

हिमांशु : जो आज्ञा। **(प्रस्थान)**

चाणक्य : शिखरसेन ! तुम्हारा पुत्र मिल गया। नागरिक सोमदत्त और महाभागे रोहिणी, तुम्हारा भविष्य में होने वाला जामाता भी मिल गया। किन्तु यह स्पष्ट है कि उसने नागरिक सोमदत्त की सम्पत्ति की चोरी की। दूसरा अपराध उसने यह किया कि वह आत्महत्या करने के लिए कुएँ पर गया। दोनों अपराधों का दण्ड बहुत भयानक होगा। चोरी के अपराध में उसके हाथ काटे जाएँगे और आत्महत्या के अपराध में उसके मस्तक पर सदैव के लिए कबंध का रूप अंकित किया जाएगा। मैं अब रविसेन से बातें करूँगा। आप सब मेरे विश्राम-कक्ष में स्थान ग्रहण करें।

सोमदत्त : हमें भी यहाँ रहने की आज्ञा दे दीजिए।

शिखर : हम लोग भी यदि यहाँ रह सकें तो कृपा होगी।

चाणक्य : नहीं। आप लोगों की उपस्थिति से मैं किसी प्रकार की बाधा नहीं होने दूँगा। आवश्यकता होने पर आप लोगों को आने का आदेश दूँगा। **(पुकारकर)** हिमांशु !

नेपथ्य से : आज्ञा गुरुदेव !

[हिमांशु का प्रवेश]

चाणक्य : ये नागरिक मेरे विश्राम-कक्ष में स्थान ग्रहण करेंगे। इन्हें आदरपूर्वक ले जाओ।

हिमांशु : **(नागरिकों से)** चलिए।

चाणक्य : रविसेन को इस कक्ष में भेजो।

हिमांशु : जो आज्ञा। **(सबके साथ प्रस्थान)**

चाणक्य : **(टहलते हुए)** चोरी और आत्महत्या ! पद इतना ऊँचा उठ जाए कि मनुष्य अपनी सात्त्विक वृत्ति छोड़ दे और जीवन इतना नीचे गिर जाए कि आत्महत्या··· आत्महत्या···

[रविसेन का प्रवेश]

रवि : महामात्य को प्रणाम !

चाणक्य : **(सिर उठाकर)** रविसेन ? **(फिर टहलते हुए)** रविसेन नाम का एक सुन्दर युवक विनीत, सौम्य और सद्गुणी। नागरिक सोमदत्त की कन्या से उसका विवाह स्थिर होता है। युवक कन्या को देखकर उसे अपना हृदय दे बैठता है। **(मुस्कराकर)** ऐं···अपना हृदय दे बैठता है किन्तु पिता शिखरसेन अपने पद की श्रेष्ठता से इस विवाह के लिए अपनी स्वीकृति नहीं देता। पुत्र के हृदय को आघात लगता है। वह शोण के तट पर जाकर प्रहरों सोचता रहता है। क्या यह सत्य है ?

रवि : सत्य है, महामात्य···किन्तु मेरा कथन···

चाणक्य : **(तीव्रता से)** मेरे प्रश्न के उत्तर से अधिक उत्तर न दो युवक ! तो यह सत्य

है। जब कन्या के विवाह की वार्ता दूसरे परिवार में चलती है तब उसे यह बात सहन नहीं होती। क्या यह सत्य है ?

रवि : सत्य है, महामात्य !

चाणक्य : युवक किसी भी परिस्थिति में उस कन्या का विवाह अन्यत्र होना नहीं देख सकता। वह विवाह के रोकने का दूसरा उपाय नहीं देखता। वह सोचता है कि यदि विवाह की सम्पत्ति का हरण कर लिया जाए तो विवाह रुक सकता है। क्या यह सत्य है ?

रवि : सत्य है, अमात्य !

चाणक्य : वह अपने मित्र वसन्तसेन से अपने मन की बात कहता है और अपनी समस्या का समाधान चाहता है। वसन्तसेन उसे समझाता है किन्तु वह प्रेम में इतने गहरे उतर गया है कि कोई भी बात उसकी समझ में नहीं आती। वह कन्या का अपहरण करने की बात सोचता है किन्तु कन्या अपने पिता के नियंत्रण में है। कन्या का अन्यत्र विवाह रोकने के लिए वह विवाह की सम्पत्ति का ही अपहरण करता है। वह अनुभव करता है कि उसने चोरी की है; इस अपराध के लिए उसके दोनों हाथ काट डाले जाएँगे, उस दण्ड से बचने के लिए वह आत्महत्या का प्रयत्न करता है, क्या यह सत्य है ?

रवि : यह सत्य है।

चाणक्य : वसन्तसेन मेरा गुप्तचर है, उसके द्वारा घटना का सत्य मेरे सामने स्पष्ट है। रविसेन ! तुमने अपने मित्र वसन्तसेन की बात क्यों नहीं मानी ?

रवि : महामात्य ! क्षमा करें। जब अनुराग प्रेम में परिणत होता है तो विवेक गुरुजनों की भाँति उस स्थान से हट जाता है और इस प्रकार मेरा प्रत्येक कार्य विवेक से नहीं, प्रभु ! प्रेम की असफलता से परिचालित था।

चाणक्य : सच्चा प्रेम कभी असफल नहीं होता, युवक ! और वह संयोग में उतना शक्तिशाली नहीं होता जितना वियोग में।

रवि : संभव है, प्रभु !

चाणक्य : (ज़ोर देकर) संभव नहीं है युवक ! सत्य है। संयोग में प्रेम शरीर का स्पर्श पाकर संतुष्ट हो जाता है किन्तु वियोग में वह आत्मा के समीप पहुँचकर प्राणों के कण-कण में व्याप्त हो जाता है। यह तुमने अनुभव भी किया होगा, युवक !

रवि : हाँ आचार्य ! मैंने अनुभव किया है।

चाणक्य : तो प्रेम असफल कैसे हुआ ? फिर आत्महत्या की तुला पर प्रम का गुरुता कैसे तौली जा सकती है ? और यह आत्महत्या क्या है ! जैसे कोई बसन्त के फूलों को मसल दे, कोकिल को बाण से मार दे, सरिता की धारा मरुभूमि में सुखा दे और सुगंधि को श्मशान की ओर मोड़ दे। यह आत्महत्या जीवन के प्रति, परिवार के

प्रति और समाज के प्रति एक जघन्य अपराध है ।

रवि : मैं इसे स्वीकार करता हूँ, महामात्य !

चाणक्य : इसलिए कि परिवार और समाज की रक्षा का भार राज्य पर है, राज्य इस जघन्य अपराध का दण्ड देगा ।

रवि : मैं प्रार्थना करता हूँ प्रभु ! कि मुझे दण्ड दिया जाए। मेरे अंग दण्ड के लिए व्याकुल हैं ।

चाणक्य : **(हँसकर)** हाँ, जब तुम आत्महत्या जैसा दण्ड स्वयं अपने को दे रहे थे तो बहुत सामान्य होंगे । अस्तु, राज्य का दण्ड यह है कि जो हाथ चोरी जैसा पाप करते हैं, उन्हें इस शरीर में नहीं रहना चाहिए । उन्हें कटकर अलग-अलग हो जाना चाहिए ।

रवि : **प्रभु !** हाथ तो शरीर के ही भाग हैं, इसलिए आपकी बड़ी कृपा हो यदि मेरे सारे शरीर को ही काट देने की आज्ञा दें । मेरा जीवन सब प्रकार से अभिशप्त है ।

चाणक्य : **(मुस्कराकर)** सब प्रकार से अभिशप्त है ? जीवन भी कभी अभिशप्त होता है ? तुम आत्महत्या को वध का रूप देकर चोरी के अपराध से मुक्त होना चाहते हो ? तुम बहुत चतुर अपराधी ज्ञात होते हो । अच्छा, युवक ! चोरी का दण्ड यह है कि तुम्हारे दोनों हाथ काट दिए जाएँ और आत्महत्या का दण्ड यह है कि तुम्हारे मस्तक पर बिना सिर के शव का चिह्न अंकित कर दिया जाए। तुम दक्षिण दिशा के कक्ष में जाकर वधिक की प्रतीक्षा करो ।

रवि : जो आज्ञा ।

चाणक्य : **(पुकारकर)** हिमांशु !

नेपथ्य से : आज्ञा गुरुदेव !

चाणक्य : रविसेन को दक्षिण दिशा के कक्ष में विश्राम दो और नागरिक सोमदत्त को कक्ष में प्रवेश दो ।

हिमांशु : जो आज्ञा । **(रविसेन के साथ प्रस्थान)**

चाणक्य : **(सोचते हैं)** जिन युवकों को धनार्जन करना चाहिए, वे धन की चोरी करते हैं और जिन्हें···जिन्हें···देश पर बलि होना चाहिए···वे प्रेम पर बलि होते हैं । ऐसे युवक···

[सोमदत्त का प्रवेश]

सोम : प्रणाम करता हूँ, आचार्य !

चाणक्य : तुम आ गए, नागरिक सोमदत्त ? युवक रविसेन ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया है। उसने चोरी की है। इस अपराध पर उसके दोनों हाथ काट दिए जावेंगे।

सोम : किन्तु आचार्य ! मैंने उसे क्षमा कर दिया और फिर चोरी की गई सम्पत्ति भी मुझे मिल गई ।

चाणक्य : किन्तु चोरी का अपराध तो अपने स्थान पर है ।

सोम : आप महान हैं, चाचार्य ! आपने एक ओर जहाँ राजवंशों का विनाश किया है वहाँ आपने एक नये राजवंश का निर्माण भी किया है । आपमें अपार शक्ति है आचार्य ! आप अमृत को विष बना सकते हैं और विष को अमृत ।

चाणक्य : ये छद्मवेशी शब्द हैं, नागरिक ! इन शब्दों से राजनीति नहीं चलती, कार्यों से चलती है।

सोम : कार्य तो आपके अनुचर हैं, महामात्य, राजनीति आपकी सेविका है ।

चाणक्य : अधिक नहीं नागरिक ! प्रशंसा सदैव कार्यों को पंगु बना देती है। यहाँ तक कि वह क्रियाशील को समाप्त कर उसके ऊपर सुनहली समाधि बना देती है।

सोम : मैं प्रशंसा नहीं कर रहा, आचार्य ! आपके कार्यों के इतिहास का वर्णन कर रहा हूँ।

चाणक्य : मेरे कार्यों का इतिहास मेरा अर्थशास्त्र है । उसमें मैंने दंडों की पूर्ण व्यवस्था की है।

सोम : उन दंडों की गुरुता और लघुता पर भी तो आपने विचार किया है। आपने न्याय की तुला पर प्रत्येक दंड को तौला भी है।

चाणक्य : ज्ञात होता है नागरिक, तुमने मेरा अर्थशास्त्र ध्यान से देखा है।

सोम : इसीलिए आचार्य, मैं आपकी कृपा की भिक्षा माँगता हूँ ।

चाणक्य : भिक्षा माँगने की आवश्यकता नहीं है नागरिक ! प्रत्येक दंड की दृष्टि के अनुसार व्यवस्था है।

सोम : तो आप कृपा की दृष्टि से दंड का विचार करने का अनुग्रह करें।

चाणक्य : क्या इसलिए कि चोरी की गई सम्पत्ति प्राप्त हो गई है ? इसलिए कि अपराधी ने अपना दोष स्वीकार कर लिया है ? और क्या इसलिए कि आपने उसे क्षमा कर दिया है? उस दृष्टि से मैं दंड पर विचार करूँ ?

सोम : ऐसा ही विचार कीजिए, प्रभु !

चाणक्य (मुस्कराकर) तो मेरे अर्थशास्त्र के अनुसार उस पर इस प्रकार विचार हो सकता है : 'व्यावहारिक कर्म चतुष्कम्' । लौकिक व्यवहार में चार प्रकार के दंड हो सकते हैं :

षड् दण्डा : छः दण्डों का आघात ।

प्सते कशा : सात कशाघात ।

द्वावुपरि निबन्धा : हाथ-पैर बाँधकर उल्टा लटकाना ।

उदक नासिका च : नाक में नमक का पानी डालना ।

रविसेन का अपराध गुरुतर है अतः उसकी नाक में छः मास तक नमक का पानी प्रतिदिन छः घण्टे तक डाला जाएगा ।

सोम : यह तो बड़ा कष्टकर होगा, प्रभु ! इस शारीरिक दण्ड के अतिरिक्त अन्य कोई दण्ड नहीं हो सकता, आचार्य ?

चाणक्य : चतुष्पंचाशत्पणों का दण्ड : उसे 450 पणों का अर्थदण्ड देना होगा।

सोम : धन्य हैं प्रभु। इतना विकल्प और दीजिए कि उसकी ओर से मैं अर्थदण्ड अर्पित करूँ। वह अर्थदण्ड मैं अभी दे सकता हूँ।

चाणक्य : सावधान नागरिक, यह दण्ड अपराधी द्वारा अर्पित होगा।

सोम : तो अपराधी को मैं यह सम्पत्ति ही दे दूँगा, प्रभु ! वही प्रभु की सेवा में अर्पित करे।

चाणक्य : (**पुकारकर**) हिमांशु !

नेपथ्य से : आज्ञा, गुरुदेव ?

[हिमांशु का प्रवेश]

चाणक्य : शिखरसेन उपस्थित हों।

हिमांशु : जो आज्ञा ! (**प्रस्थान**)

चाणक्य : नागरिक ! जिसे तुम अपना जमाता बनाना चाहते थे, उसे तुम किसी प्रकार का शारीरिक दण्ड नहीं दिलाना चाहते ? प्रेम-सम्बन्धों में धन का महत्त्व कम हो जाता है।

[शिखरसेन का प्रवेश]

शिखरसेन : महामात्य की सेवा में प्रणाम !

चाणक्य : शिखरसेन, तुम्हारे पुत्र रविसेन ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया है। आत्महत्या का प्रयत्न किया। आत्महत्या का दण्ड उसे दिया जाएगा।

शिखरसेन : वह कैसा दण्ड होगा, आचार्य ?

चाणक्य : 'तस्याभिस्तांगे ललाटे स्यात् व्यवहार पतनाय आत्मवधे कबन्धः' जिस प्रकार का अपराध किया हो, उसका सूचक चिह्न उसके ललाट पर अंकित किया जाए। आत्महत्या करने के प्रयत्न पर उसके ललाट पर बिना सिर के शव का चिह्न अंकित किया जाएगा।

शिखरसेन : ललाट पर ऐसा चिह्न अंकित होने पर तो आचार्य ! वह जीवन-भर कलंकित होगा ! क्या इसे आप क्षमा नहीं करेंगे, आचार्य !

चाणक्य : विष्णु शर्मा चाणक्य अपराध होने पर क्षमा नहीं करता किन्तु परिस्थिति के अनुसार मेरे क्रोध और क्षमा की व्यवस्था है। कन्या के सौभाग्य के लिए क्षमा कर सकता हूँ।

शिखर : तो आपकी क्षमा का कोष अनन्त है, प्रभु ! एक कन्या के सौभाग्य के लिए ही उसे क्षमा किया जाए।

चाणक्य : मेरे अर्थशास्त्र के अनुसार आत्महत्या का दण्ड विकल्प रूप से कम से कम यह हो सकता है—'तस्यातिक्रमे उत्तमो दण्डः'। इसके बदले उसे उत्तम साहस का दंड देना होगा।

शिखर : उत्तम साहस का दंड कितना है, प्रभो ?

चाणक्य : एक सहस्र पण।

शिखर : वह मैं प्रस्तुत करने की आज्ञा चाहता हूँ।

चाणक्य : दण्ड तो अपराधी को ही देना होगा।

शिखर : इसका प्रबन्ध हो जाएगा, प्रभु !

चाणक्य : (**हँसकर**) दोनों की मनोवृत्ति मैं जानता था। (**पुकारकर**) हिमांशु !

नेपथ्य से : आज्ञा गुरुदेव !

चाणक्य : रविसेन दक्षिण दिशा के कक्ष में होगा, उसे यहाँ उपस्थित करो।

हिमांशु : जो आज्ञा। (**प्रस्थान**)

चाणक्य : सोमदत्त और शिखरसेन ! आज तो मगध का इतिहास यूनान और ईरान के इतिहास से संबद्ध हो गया है, उसका कारण चन्द्रगुप्त की वीरता और ब्राह्मण की राजनीति है। आज हमारा सम्राट् चन्द्रगुप्त यूनान के इतिहास का 'सन्द्रोकोतस' है। बिना शक्ति के किसी देश की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती और बिना दण्ड के प्रजा के सुख और सन्तोष की व्यवस्था नहीं हो सकती। दण्ड ही वह तुला है जिसके एक ओर आतंक है और दूसरी ओर प्रजा की सुरक्षा है। बिना आतंक और सुरक्षा की भावना के किसी राज्य की समृद्धि सम्भव नहीं है।

[हिमांशु का प्रवेश]

हिमांशु : गुरुदेव ! रविसेन द्वार पर उपस्थित हैं।

चाणक्य : उन्हें प्रवेश दो।

हिमांशु : जो आज्ञा। (**प्रस्थान**)

चाणक्य : शिखरसेन ! तुमने अपने पुत्र को जीवन-भर के लिए कलंकित होने से बचा लिया। और सोमदत्त ! तुमने अपनी सद्भावना से रविसेन को कटे हाथों से वंचित कर दिया। स्नेह और सद्भावना के दो तटों में अब रविसेन का जीवन-प्रवाह सरलता से बह सकता है, यदि कोई अपराध फिर से न करे।

[रविसेन का प्रवेश। वह दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता है।]

चाणक्य : (**हँसकर**) प्रणाम करने के लिए तुम्हारे दोनों हाथ सुरक्षित हैं, रविसेन ! मैंने तुम्हारे कक्ष में कालपाशिक वधिक को जाने की आज्ञा नहीं दी। अपराध करने पर तुम्हें दण्ड तो मिलना ही चाहिए किन्तु अपराध स्वीकार कर लेने और चोरी की सम्पत्ति प्राप्त हो जाने पर उस दंड में कुछ सशोधन हुआ है।

रवि : मैं तो प्रत्येक प्रकार का दंड सहन करने के लिए प्रस्तुत हूँ, आचार्य।

चाणक्य : तुम्हारा साहस प्रशंसनीय है, किन्तु ये जो तुम्हारे पिता शिखरसेन हैं, इन्होंने आत्महत्या के अपराध पर राज्य को उत्तम साहस का दंड एक सहस्र पण देना स्वीकार किया है।

रवि : यह उनका वात्सल्य है, आचार्य ! किन्तु अपने अपराध का दंड मुझे स्वयं ही सहन करना चाहिए।

चाणक्य : और ये जो सोमदत्त हैं, जिनकी कन्या से तुम विवाह करना चाहते थे, ये तुम्हारी चोरी के अपराध में 450 पण का दंड सहन करना चाहते हैं।

रवि : यह उनकी उदारता है, किन्तु यह भी मुझे स्वीकार नहीं।

चाणक्य : तो फिर आत्महत्या और चोरी का दंड तुम सहन करोगे ?

शिखर : (**वात्सल्य से**) मेरे वत्स ! ऐसी स्थिति न आने दो। देखो, मेरी इस वृद्धावस्था में मुझे ऐसा कष्ट न दो । रविसेन ! मैं तुम्हारा पिता···पिता होकर तुमसे प्रार्थना करता हूँ।

रवि : पिताजी ! ऐसा न कहिए, पाटलिपुत्र का नागरिक होने के नाते मुझे राजदंड सहन करने का पूरा साहस होना चाहिए । अपराध तो पुत्र करे और उस अपराध का दंड पिता को सहन करना पड़े। यह कभी सम्भव नहीं होगा।

सोम : मेरी भी प्रार्थना है रविसेन ! कि तुम अपने पुरुषार्थी जीवन को सुरक्षित रखो।

रवि : पुरुषार्थी जीवन का अर्थ उत्तरदायित्व वहन करने में है, जो कुछ भूलें मुझसे हुई हैं उनका दायित्व मुझ पर, केवल मुझ पर है।

चाणक्य : पाटलिपुत्र को ऐसे ही नागरिकों की आवश्यकता है ।

शिखर : आचार्य, पुत्र का यह प्रथम अपराध क्षमा किया जाए। और (**रवि से**) वत्स ! मैंने अब समस्त प्रतिबंध हटा लिए हैं । तुम प्रसन्नतापूर्वक सोमदत्त जी की पुत्री से विवाह कर सकते हो ।

सोम : मैं धन्य हो गया शिखरसेन ! तुम्हारी उदारता मैं कभी नहीं भूल सकूँगा। मेरी कन्या के जीवन में सुख का संचार करने वाले महापुरुष ! तुम निश्चय ही धन्य हो !

रवि : आचार्य ! अपराध मैंने किया है, इसलिए राज्य ने जिस दंड की व्यवस्था की है, उसे मैं स्वयं सहन करूँगा। सोमदत्त जी भी मेरे अपराध-भाजन के लिए किसी प्रकार भी दंड के भागी न होंगे।

सोम : किन्तु मैं इसे दंड न मानकर अपना अहोभाग्य ही मानूँगा ।

रवि : ऐसा नहीं होगा श्रेष्ठि प्रवर ! अपराध मेरा है और दंड का भागी भी मैं ही हूँ। (**चाणक्य से**) प्रभु ! आपसे मैं विनम्र प्रार्थना करना चाहता हूँ कि आप यदि दंड का विकल्प स्वीकार करते हैं तो कृपया मुझे छः मास की अवधि प्रदान करें, मैं अपने कठोर परिश्रम से दोनों दंडों के उपयुक्त धन उपार्जित कर राज्यकोष में अर्पित कर दूँगा । मैं स्वय अर्पित कर दूँगा ।

शिखर : पुत्र के इस आत्मसम्मान से मैं सुखी हूँ। (**चाणक्य से**) आचार्य प्रवर ! यह छोटी-सी अवधि इसे प्रदान करने की कृपा करें ।

सोम : मैं भी आचार्य प्रवर से प्रार्थना करता हूँ कि यह थोड़ी-सी अवधि स्वीकृत की जाए ।

चाणक्य : (**मुस्कराकर**) स्वीकार करता हूँ। फिर···फिर···रविसेन के विवाह की स्थिति क्या होगी ?

शिखर : मेरी पूर्ण स्वीकृति है प्रभु ! (**हाथ जोड़ता है।**)

सोम : (**सिर झुकाकर**) मैं धन्य हो गया महाप्रभु !

चाणक्य : रविसेन ! तुम कृतार्थ हुए ?

रवि : प्रभु का आशीर्वाद है। आपके न्याय और दण्ड की व्यवस्था से हम सब कृतार्थ हुए।

चाणक्य : इसकी सूचना महाभागा रोहिणी को भी दी जाए। (**पुकारकर**) हिमांशु !

नेपथ्य से : आज्ञा गुरुदेव !

[हिमांशु का प्रवेश]

चाणक्य : जो समिधाएँ तुम और सारंग एकत्रित कर चुके हो उन्हें वेदी के समीप रखो। मेरे यज्ञ करने का समय हो गया है। आज विचित्र परिस्थिति है। दंडित व्यक्ति और दंड देने वाला व्यक्ति समान रूप से यज्ञ में प्रवृत्त होगा। यह जीवन-यज्ञ है। अब आप सब लोग जा सकते हैं।

सब : महामात्य चाणक्य की जय !

चाणक्य : (**हाथ उठाकर**) पाटलिपुत्र की समृद्धि में प्रत्येक व्यक्ति की सेवा और साधना हो। नन्द के मंत्री राक्षस की छद्मवेशी नीति से कुसुमपुर की रक्षा हो !

[धीरे-धीरे परदा गिरता है।]

द्वितीय अंक

स्थान : कुसुमपुर से बाहर एक वनप्रान्त।
समय : रात्रि का अन्तिम प्रहर।

[चारों ओर घनी वृक्ष-राजि। हरी भूमि का एक लम्बा समतल जिसके मध्य में एक सुसज्जित कुटी बनी हुई है जिसके भीतर प्रकाश हो रहा है। उसके चारों ओर नाना प्रकार की पुष्पित लताएँ हैं जो इस समय अंधकार में नहीं दीख पड़तीं।

कुटी के सामने मध्य में बैठने का ऊँचा स्थान है। उसके चारों ओर बैठने के लिए कुछ ऊँची उठी हुई भूमि है।

रात्रि का अन्तिम प्रहर है, अभी उषा वेला में कुछ विलम्ब है। श्यामलता लिए हुए वातावरण है। एक रहस्यमय शून्यता चारों ओर छाई हुई है। झींगुरों की झनकार और दो-एक पक्षी नींद से जागकर बोल उठते हैं।

दो व्यक्ति अपने को काले वस्त्रों में छिपाए हुए धीरे-धीरे सधे हुए पैरों से प्रवेश करते हैं। उनके हाथों में जलती हुई मशालें हैं जिनसे उनके पैरों के समीप तक ही उजाला फैलता है। वे कुछ दूर चलकर रुक जाते हैं, फिर स्पष्ट किन्तु धीमे स्वर में बात करते हैं।]

एक : पुरुषदत्त ! देखो, यहाँ आस-पास कोई छिपा तो नहीं है ?

पुरुषदत्त : हमारे सेनानायक की सतर्कता से यहाँ किसी की पहुँच नहीं है। फिर भी हम देख लें। तुम भी देख लो, भद्रभट।

[वे चारों ओर जाकर मशाल सामने कर देखते हैं।]

पुरुषदत्त : कोई···कोई नहीं है। यह बात दूसरी है कि ब्राह्मण चाणक्य इन पेड़ों और पौधों को भी चलने-फिरने की शक्ति दे दे और वे गुप्तचर बन जाएँ।

भद्रभट : जब तक हमारे आचार्य राक्षस इस कुटी (**संकेत करता है**) में हैं, चाणक्य के गुप्तचर भी पेड़ और पौधे बन जाएँगे।

पुरुषदत्त : तो जो पेड़ और पौधे यहाँ दीख रहे हैं, वे पहले ब्राह्मण चाणक्य के गुप्तचर थे !

[दबी हुई हँसी]

भद्रभट : (**रोककर**) हँसो मत, पुरुषदत्त ! कहीं आचार्य राक्षस की निद्रा में बाधा न पड़े। उनकी कुटी पास ही है।

पुरुषदत्त : आचार्य राक्षस तो ब्राह्म मुहूर्त में ही शय्या त्याग देते हैं। वे इस समय या तो ध्यान में होंगे या राजनीति की कोई गुत्थी सुलझा रहे होंगे।

भद्रभट : तब तो हमें और शान्त रहना चाहिए। कहीं उनकी शान्ति भंग न हो।

पुरुषदत्त : हम लोग कुछ दूर हट चलें। (**कुछ दूर हट जाते हैं**) अब तो उजाला हो रहा है। पूर्व में उषा की लालिमा फैल रही है। हमें अपनी मशालें बुझा देनी चाहिए।

भद्रभट : तुम ठीक कहते हो।

[दोनों अपनी-अपनी मशालें बुझाते हैं। धीरे-धीरे मंच पर प्रकाश की आभा फैलती है।]

पुरुषदत्त : चारों ओर साफ दिखलाई देने लगा। (**नेपथ्य की ओर संकेत कर**) देखो, उस ओर कोई आ रहा है। हमें इस कोने में छिप जाना चाहिए।

[दोनों शीघ्रता से मंच के एक कोने में छिप जाते हैं। एक बलिष्ठ व्यक्ति एक स्त्री को सहारा देते हुए प्रवेश करता है। व्यक्ति राजसी वस्त्र पहने हुए है। ज़री के वस्त्र, सिर पर कलगी, कंठ में रत्नहार, किन्तु उसका वेश कुछ अस्तव्यस्त-सा हो रहा है। स्त्री युवती है। वह सुन्दरी है और उसकी वेश-भूषा अत्यन्त आकर्षक है। वह नीला रेशमी वस्त्र पहने हुए है, पीला उत्तरीय, शरीर पर अनेक आभूषण, केशों में पुष्पों का श्रृंगार, माथे पर केसर की पत्रावली, ज्ञात होता है वह स्नान कर अंग-राग लगा चुकी है, किन्तु वह इस समय अत्यन्त उदास और शिथिल है।]

व्यक्ति : हम लोग यहाँ ठीक तरह से पहुँच गए। अब कोई चिन्ता की बात नहीं। (**पीछे देखकर**) ओह···वे भाग गए। नीच···नारकी···सुवासिनी ! कैसा विचित्र जाल रचा था उन पापियों ने।

सुवासिनी : यदि आप···आप···ठीक समय पर न पहुँच जाते तो मेरी···मेरी क्या दुर्दशा होती···महाराज बालगुप्त, मैं तो आत्महत्या कर लेती किन्तु किसी प्रकार वहाँ न जा सकती। मेरे भाग्य में क्या यही होना था ! **(अश्रु)**

बालगुप्त : इतनी निराश न हो, सुवासिनी। धैर्य रखो। यह तो संयोग की बात थी कि मैं आचार्य राक्षस का गुप्त संदेश पाकर उसी मार्ग से आ रहा था। मैं क्या जानता था कि ब्राह्म मुहूर्त में भी उस दुष्ट चाणक्य के गुप्तचर तुम्हारा अपहरण करने के लिए जाल बिछाए बैठे हैं।

सुवासिनी : सम्राट् नन्द के संसार से चले जाने पर मुझे संसार में कहाँ स्थान था ? भगवान तथागत के चरणों में प्रणाम करने के लिए मैं ब्राह्म मुहूर्त में ही अपने उपवन से पुष्प-चयन कर रही थी तभी गैरिक वस्त्रों में दो संन्यासी आए। मैंने उन्हें प्रणाम किया किन्तु उनकी भंगिमा देखकर मुझे सन्देह हुआ। वे मुझे राजसी वैभव का स्वप्न दिखलाने लगे। अनेक प्रकार प्रलोभनों से वे मुझे दुष्ट चाणक्य के पास ले जाना चाहते थे। जब मैंने विनयपूर्वक जाना अस्वीकार किया तो उन्होंने बल-प्रयोग की धमकी दी।

बालगुप्त : हाँ, मैंने दूर से ही देख लिया था कि वे आपस में कुछ विचित्र संकेत कर रहे हैं। मैं भी पहले समझा कि वे संन्यासी हैं, फिर विश्वास हो गया कि वे दुष्ट चाणक्य के गुप्तचर हैं। मैंने उन्हें ललकारा, जब वे नहीं हटे तो मैंने वह गुप्तिका निकालकर उन पर आक्रमण कर दिया।

सुवासिनी : हाँ, यह तो मैंने देखा कि आपने अकेले होकर किस साहस से उन दोनों पर आक्रमण किया। यदि वे अपने को न बचा लेते तो उनके प्राणों की रक्षा नहीं हो सकती थी। ओह ! आप कितने शक्तिशाली हैं ! कितने पराक्रमी हैं, महाराज !

बालगुप्त : पहले तो उनमें से एक ने मुझ पर धोखे से आक्रमण करना चाहा, किन्तु मैं सावधान था। मैंने अपनी गुप्तिका का हाथ ऐसा दिया कि उसकी दंतिका दूर जा गिरी। उसे देखकर दूसरा छद्मवेशी संन्यासी भाग खड़ा हुआ।

सुवासिनी : गुप्तचरों में साहस ही कितना होता है, महाराज ! वे तो केवल बातों और घटनाओं की चोरी करते हैं। किन्तु आप कितने महान हैं। आपने आज मेरी रक्षा कर स्वर्गीय सम्राट् नन्द की राजसभा की मर्यादा रख ली, कुसुमपुर की लज्जा रख ली।

बालगुप्त : यह तो मेरा कर्त्तव्य था सुवासिनी ! आप स्वर्गीय सम्राट् नन्द की रंगशाला की प्रमुख नर्त्तकी ! राजरानी के वैभव के समान आपका वैभव ! समस्त कुसुमपुर आप पर गर्व करता रहा है। उन दुष्टों से आपकी रक्षा हुई, यह सुनकर हमारे महामंत्री राक्षस बड़े ही प्रसन्न होंगे। उन्हें आपकी बड़ी चिन्ता थी। आपकी सुरक्षा के लिए ही उन्होंने मुझे आदेश दिए थे।

सुवासिनी : यह उनकी बड़ी कृपा है। पर वे इस समय कहाँ हैं, यह भी मैं नहीं जानती, नहीं तो मैं सदैव के लिए उनकी शरण में चली जाती।

बालगुप्त : उनका स्थान मुझे ज्ञात है, मैं आपको वहीं तो ले चल रहा हूँ। ऐसी ही उनकी आज्ञा थी।

सुवासिनी : आपकी कृपा से मैं जीवन-भरे उऋण नहीं हो सकूँगी।

बालगुप्त : ऐसी कोई बात नहीं। यह तो मेरी तुच्छ सेवा है। आपके प्रति और महामंत्री राक्षस के प्रति। वे ही दुष्ट चाणक्य के कुचक्रों से आपकी रक्षा कर सकते हैं, कुसुमपुर की जनता को बचा सकते हैं। हम उनके पास ही चलेंगे।

सुवासिनी : किन्तु मैं तो चलते-चलते थक गई हूँ महाराज ! अब तो मुझसे चला नहीं जाता।

बालगुप्त : तो अब चलना ही कितना है। कुछ ठहरकर विश्राम लें, देवी सुवासिनी।

सुवासिनी : यह स्थान तो निरापद है ? किन्तु···किन्तु···अभी कुछ देर पहले मैंने दो अग्निशिखाओं को यहाँ जलते देखा है।

बालगुप्त : (**हँसकर**) वे आचार्य राक्षस के यश की शिखाएँ होंगी।

सुवासिनी : किन्तु वे शीघ्र ही बुझ गईं।

बालगुप्त : आचार्य राक्षस की राजनीति इसी प्रकार के धोखे में डालने वाली है। वह कभी प्रकट होती है, कभी गुप्त हो जाती है। जब वह कुसुमपुर पर शासन करती है तो प्रकट हो जाती है, जब दुष्ट चाणक्य से संघर्ष लेती है तो गुप्त हो जाती है।

सुवासिनी : पता नहीं, मेरे साथ उनकी राजनीति कैसी होगी !

बालगुप्त : आपके साथ ? आप तो महाराज नन्द के मदनोत्सव की सर्वश्रेष्ठ नर्त्तकी रही हैं और आपका नृत्य उतना अधिक कुसुमपुर के विलास-कक्षों में नहीं हुआ जितना आचार्य राक्षस के हृदय पर।

सुवासिनी : महाराज ! क्या मेरा ऐसा सौभाग्य है ?

बालगुप्त : मैं जानता हूँ। (**एक ओर कुछ शब्द सुनकर जोर से**) कौन है, उधर !

[पुरुषदत्त और भद्रभट निकलकर प्रणाम करते हैं।]

बालगुप्त : (**भद्रभट से**) तुम्हारा परिचय ?

भद्रभट : अंकुश, श्रीमन् !

बालगुप्त : अच्छा, तुम गजाध्यक्ष हो। हाथियों की सेना के स्वामी।

भद्रभट : (**सिर झुकाकर**) श्रीमन् !

बालगुप्त : और (**पुरुषदत्त को लक्ष्य कर**) तुम ?

पुरुषदत्त : वल्गा, श्रीमन् !

बालगुप्त : अश्वाध्यक्ष हो ? घोड़ों की सेना के स्वामी।

पुरुषदत्त : (**सिर झुकाकर**) श्रीमन् !

बालगुप्त : इन संकेत-शब्दों से ज्ञात होता है कि तुम महामंत्री राक्षस के सेवक हो ! देवी सुवासिनी को प्रणाम करो। ये स्वर्गीय सम्राट् नन्द की रंगशाला की अधिष्ठात्री हैं।

[दोनों प्रणाम करते है। सुवासिनी हाथ के संकेत से प्रणाम स्वीकार करती है।]

पुरुषदत्त : संभवत: महाराज हम दोनों को जानते हों। हम दोनों कभी आचार्य चाणक्य और सम्राट् चन्द्रगुप्त के संरक्षण में थे। उन्होंने हमारा तिरस्कार कर दिया। महाराज ! आप भी तो सम्राट् चन्द्रगुप्त के सम्बन्धी हैं।

बालगुप्त : अब नहीं हैं। अब हम कुमार मलयकेतु और आचार्य राक्षस के सम्बन्धी हैं।

सुवासिनी : महामंत्री के बाहर आने का समय हुआ !

पुरुषदत्त : अभी बाहर नहीं आए देवि ! हम लोग भी उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

बालगुप्त : किसलिए ?

पुरुषदत्त : कुमार मलयकेतु महामंत्री से मिलने के लिए आ रहे हैं। यही सूचना हम महामंत्री की सेवा में पहुँचाना चाहते थे।

बालगुप्त : इसमें कोई छल तो नहीं है, पुरुष ?

पुरुषदत्त : छल से मुक्ति पाने के लिए ही हम दोनों महामंत्री की शरण में आए हैं। हम दोनों पहले आचार्य चाणक्य के अधिकार में थे। (**भद्रभट को लक्ष्य कर**) ये भद्रभट हाथियों की सेना के अध्यक्ष थे और (**अपने को लक्ष्य कर**) यह सेवक अश्वों की सेना का अध्यक्ष था। अविश्वासी चाणक्य ने हम दोनों को मद्य पीने वाला और वासना में लिप्त रहने वाला घोषित कर हमसे अधिकार छीन लिया। हमसे छल किया गया, महाराज !

भद्रभट : ऐसी स्थिति में केवल महामंत्री राक्षस ही हमें शरण दे सकते थे।

सुवासिनी : तुम्हारा कथन सत्य है।

पुरुषदत्त : और उन्होंने हमें शरण दी। उन्होंने हमारा अधिकार हाथियों और घोड़ों की सेनाओं पर पूर्ववत् ही रक्खा। इसके साथ ही उन्होंने हमें कार्यवाहक भागुरायण के पास भेज दिया। भागुरायण ने हमें कुमार मलयकेतु का स्नेह दिलाया। आज कुमार मलयकेतु ने हमें परम विश्वासी मानकर हमारे द्वारा अपने आगमन का संदेश कहलाया है।

बालगुप्त : साधु ! कब तक कुमार मलयकेतु यहाँ आ जाएँगे ?

पुरुषदत्त : वे कार्यवाहक भागुरायण की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन्हें लेकर वे महामन्त्री के पास आवेंगे। अभी उनके आने में कुछ विलम्ब हो सकता है।

बालगुप्त : अच्छा, तुम लोग कुटी के पिछले भाग में विश्राम लो। मैं यह संवाद महामंत्री से निवेदन करूँगा।

दोनों : (**हाथ जोड़कर**) जैसी आज्ञा। प्रणाम।

[दोनों का प्रस्थान]

बालगुप्त : आपने यहाँ भी चाणक्य की दुष्टता देखी ? उपकार का बदला देना तो वह जानता ही नहीं है। एकमात्र अपना ही स्वार्थ-साधन। दूसरी ओर महामंत्री राक्षस कितने महात्मा हैं ! वे अपने हित की चिन्ता न करते हुए दूसरे का उपकार करने में सुख मानते हैं और स्वामिभक्त इतने हैं कि सम्राट् नन्द की मृत्यु होने के पश्चात् भी वे अपने स्वामी की स्मृति में आँसू बहाते हुए उनके कार्यों का ही साधन करते

हैं। ऐसे महामन्त्री राक्षस की शरण में आप आई हैं। उनके संरक्षण में भय का क्या स्थान ? अब आप प्रसन्न हो जाएँ।

सुवासिनी : मैं उनके संरक्षण में सब प्रकार से प्रसन्न रहूँगी।

बालगुप्त : किन्तु दुःख यही है कि नन्दवंश के समाप्त होने पर कुसुमपुर की राजनीति इन्द्रायण फल के समान हो गई है, जो देखने में तो आकर्षक है किन्तु स्वाद में तिक्त। ज्ञात नहीं होता कि यह वर्तुल राजनीति कंठ को अलंकृत करनेवाली माला है या दंशित करने वाली सर्पिणी।

सुवासिनी : फिर कुसुमपुर की इस राजनीति में नारी कहाँ रहेगी, महाराज ?

बालगुप्त : नारी ? ओह ! नारी की भृकुटियों में ही तो संसार-भर की राजनीतियों की लिपि है। जब उनकी पलकें झुक जाती हैं तो न जाने कितने सिंहासन उठ जाते हैं और जब उसकी पलकें उठती हैं तो न जाने कितने राजवंश गौरव के शिखर से गिर जाते हैं।

सुवासिनी : फिर भी, बेचारी दुर्बल नारी।

बालगुप्त : नारी शरीर से भले ही दुर्बल हो किन्तु मन से वह ब्रह्मास्त्र से भी अधिक शक्तिशालिनी है। आप भी शक्तिशालिनी हैं, फिर आप तो नर्त्तकी हैं, देवि ! आपके उठे हुए हाथ की मुद्रा में सूर्य उठता है और झुके हुए हाथ की मुद्रा में चन्द्र अस्त होता है। जब आप नृत्य में चक्राकार घूमती हैं, तो देवि ! नक्षत्रों की कक्षाएँ बन जाती हैं।

सुवासिनी : (**मुस्कराकर**) सम्राट् नन्द तो कवि थे ही, आप भी कवि हैं, महाराज !

बालगुप्त : (**भावावेश में**) नारी की प्रेरणाओं से ही कवि अपनी भावनाओं में रंग भरता है। देवि ! उसकी लहराती केश-राशि को ही रात्रि का प्रथम प्रहर समझ कर कवि वहीं शयन करता है और उसके अरुण ओंठों की उषा में वह अपने जीवन का प्रभात देखता है। नारी-सौन्दर्य कवि के जीवन का आदि है और वही अन्त भी।

सुवासिनी : और मध्य ?

बालगुप्त : मध्य ? कवि के जीवन में मध्य नहीं होता, देवि ! उसके यौवन की अवधि वृद्धावस्था तक चलती जाती है। तब उसके शरीर और मन में संघर्ष होता है किन्तु विजय मन की ही होती है। टूटी डाल पर भी कोकिल बोलता है और सूखी झाड़ी के कोने में भी एक फूल झाँकने लगता है। जब जीवनाकाश निराशा के घने बादलों से छा जाता है तब किसी फटे बादल के कोने से हलकी-सी धूप निकल आती है। टूटी डाल का कोकिल, सूखी झाड़ी का फूल और फटे बादल से निकली धूप उस कवि का यौवन ही तो है जो देवि ! बीतकर भी नहीं बीतता और चुककर भी नहीं चुकता !

सुवासिनी : (**प्रसन्न होकर**) वाह ! बड़ी अच्छी विवेचना की महाराज आपने कवि-जीवन की।

बालगुप्त : यह कवि-जीवन नारी की परिक्रमा उसी प्रकार करता है जिस प्रकार सप्तर्षि

मण्डल अनादि काल से ध्रुव नक्षत्र की परिक्रमा करता चला आ रहा है।

सुवासिनी : इस प्रशंसा का क्या पुरस्कार चाहिए, कवि ?

बालगुप्त : मदनोत्सव में आपकी मुस्कान और नृत्य का संगीत।

सुवासिनी : किसी समय एक महारानी ने एक महाराज से दो वरदान पाए थे। आज एक महाराज एक दासी से दो वरदान चाहते हैं ?

बालगुप्त : आप दासी नहीं हैं देवि ! आप राजरानी हैं और फिर ये दोनों वरदान अभिषेक के हैं। वनवास का एक भी नहीं।

[चर का प्रवेश]

चर : स्वामी ने जिज्ञासा की है कि महाराज बालगुप्त देवी सुवासिनी सहित आ गए ?

बालगुप्त : हाँ, मैं ही महाराज बालगुप्त हूँ और ये देवी सुवासिनी हैं।

चर : महाराज बालगुप्त की जय ! देवी सुवासिनी की जय ! स्वामी बाहर आ रहे हैं।

बालगुप्त : (**सँभलकर अपना वेश ठीक करते हुए**) हम सेवा में प्रस्तुत हैं।

सुवासिनी : मुझे कुछ भय लगता है, महाराज !

बालगुप्त : महामंत्री के समक्ष भय क्या है।

सुवासिनी : हृदय बहुत व्यथित है, महाराज !

बालगुप्त : महामंत्री आ रहे हैं।

[कुटी का द्वार खुलता है। महामंत्री राक्षस का कुटी के बाहरी भाग में प्रवेश। बलिष्ठ गौर शरीर, राजसी वस्त्राभूषण, कंठ में रत्नहार, माथे पर त्रिपुण्ड, घुँघराले लंबे केश जो कंधों पर बिखरे हुए हैं।]

बालगुप्त : (**आगे बढ़कर**) महामंत्री की जय !

सुवासिनी : (**आगे बढ़कर**) महामंत्री की जय !

राक्षस : महाराज बालगुप्त ! मुझे आशंका थी कि कुसुमपुर पर चन्द्रगुप्त मौर्य का अधिकार हो जाने पर देवी सुवासिनी का अपहरण हो सकता है और वह भी ऐसे समय जब सारा कुसुमपुर निद्रा में लीन रहे। इसीलिए मैंने आपके पास सन्देश भेजा था कि रात्रि रहते आप देवी सुवासिनी के निवास-स्थान से होते हुए आवें जिससे मेरी आशंका की संभावना के पूर्व ही आप वहाँ पहुँचें।

बालगुप्त : हाँ, महामंत्री। आपका अनुमान सत्य था।

सुवासिनी : (**बिखरकर**) प्रभु ! कितने दूरदर्शी··· कितने महात्मा हैं। यदि आपने महाराज बालगुप्त को ठीक समय पर न भेजा होता तो दुष्ट चाणक्य के दो छद्म-वेशी गुप्तचर मुझे कहाँ ले जाते, मैं नहीं जानती। आप···आप···प्रभु ! प्रजा के पालक हैं···नारी के रक्षक हैं···आप···प्रभु ! (**सिसकियाँ**) आपने मेरे जीवन की रक्षा की···मेरे सम्मान की रक्षा की···आपने···आपने···!

राक्षस : (**हाथ उठाकर**) शान्त···शान्त···देवि सुवासिनी ! नारी के सम्मान की रक्षा करना प्रत्येक पुरुष का कर्त्तव्य है। फिर हमारे स्वर्गीय सम्राट् नंद यह सारा दायित्व

मुझे सौंप गए हैं···और आप···आप तो समस्त कुसुमपुर की शोभा रही हैं··· सम्राट् नन्द की श्रृंगारशाला की अधिष्ठात्री ! आपकी रक्षा तो होनी ही चाहिए थी। (**महाराज बालगुप्त से**) महाराज बालगुप्त ! साधुवाद ! आपने चाणक्य के गुप्तचरों से देवी सुवासिनी की रक्षा की। इसके लिए···उचित पुरस्कार की व्यवस्था ··

बालगुप्त : नहीं महामंत्री ! मैंने आपकी आज्ञा का पालन मात्र किया है। चाणक्य के गुप्तचर संन्यासी वेश में थे। उनके पास शस्त्र भी थे। जब देवी सुवासिनी ने उनके साथ जाना स्वीकार नहीं किया तो वे बल-प्रयोग करने लगे। मैंने दूर से देख लिया। जब मैंने उन्हें रोका तो उन्होंने शस्त्र निकाल लिए। मैंने उनसे द्वंद्वयुद्ध कर उन्हें भाग जाने के लिए विवश किया···

राक्षस : आपको किसी प्रकार चोट तो नहीं लगी ?

बालगुप्त : महामंत्री ! मुझे द्वंद्वयुद्ध का अभ्यास है। गुप्तचरों में शक्ति ही कितनी थी।

राक्षस : तो इस प्रकार देवी सुवासिनी की रक्षा हुई।

बालगुप्त : इन्हें आपका स्थान ज्ञात नहीं था। मैं इन्हें सम्मानपूर्वक आपकी आज्ञानुसार यहाँ ले आया।

राक्षस : साधु ! महाराज ! आप मौर्य चन्द्रगुप्त के सम्बन्धी हैं, आपको क्या पुरस्कार दूँ किंतु हमारे पक्ष में आ जाने के कारण आपके सम्मान में इतनी वृद्धि की जाएगी कि मौर्य चन्द्रगुप्त के पास रहते कभी संभव न होती।

बालगुप्त : महामंत्री ! आप महान हैं।

राक्षस : देवि सुवासिनी ! इस घटना से आप अशान्त होंगी। मार्ग चलने से थक भी गई होंगी। आप मेरे विश्राम-कक्ष में आसन ग्रहण करें।

सुवासिनी : (**करुण स्वर में**) मेरा आसन तो सम्राट् नंद की समाधि के समीप होना चाहिए, महामंत्री ! (**सिसकियाँ**)

राक्षस : शांत हों, देवि ! आपका यह दुःख समस्त कुसुमपुरवासियों का दुःख है।

राक्षस : साधु महामंत्री ! जिस प्रकार अग्नि की शिखाएँ धूम को अपने मस्तक पर धारण करती हैं, उसी प्रकार आपकी तेजोमयी नीति ने कुसुमपुर के विषाद को अपने मस्तक पर धारण कर लिया है।

राक्षस : किंतु धूम की भाँति जनता का विषाद तो कालान्तर में आकाश में विलीन हो जाएगा। किंतु मेरा हृदय···मेरा भग्न हृदय···सम्राट् नंद के वियोग में चिता की भस्म की भाँति भूमि पर ही बिखरा होगा।

सुवासिनी : नहीं महामंत्री ! वह भी भगवान शंकर के शरीर का श्रृंगार होगा।

राक्षस : मुझसे आपकी सहानुभूति है, देवि ! अब आप विश्राम करें। (**पुकारकर**) रोहित !

नेपथ्य से : उपस्थित हुआ, प्रभु !

[**रोहित का प्रवेश**]

राक्षस : देवी सुवासिनी विश्राम करना चाहती हैं। इन्हें विश्राम-कक्ष में पहुँचाओ।

रोहित : जो आज्ञा, प्रभु !

राक्षस : प्रस्थान करें।

सुवासिनी : प्रणाम महामंत्री !

[रोहित के साथ सुवासिनी का प्रस्थान]

राक्षस : स्वर्गीय सम्राट् नंद के आश्रितों पर चाणक्य की बड़ी क्रूर दृष्टि है।

बालगुप्त : किंतु आपके संरक्षण में किसी को किसी प्रकार का भी भय नहीं है।

राक्षस : यह सब सम्राट् नंद की प्रेरणा है जो मुझे समर्थ बना सकी है। **(स्मरण कर)** हाँ, कुमार मलयकेतु के आने की सूचना लेकर पुरुषदत्त और भद्रभट आने वाले थे। वे इस समय तक आ चुके होंगे। वे आए ?

बालगुप्त : वे आ गए हैं। इस समय वे कुटी के पिछले भाग में ठहरे हुए हैं।

राक्षस : उन्होंने कुमार मलयकेतु के आने की सूचना दी ?

बालगुप्त : हाँ, महामंत्री ! कुमार मलयकेतु शीघ्र ही यहाँ पहुँच रहे हैं।

राक्षस : उनका सहयोग भी हमें प्राप्त हो रहा है, महाराज बालगुप्त ! अब अपनी विजय में मुझे कुछ भी संदेह नहीं है। आपकी, हमारी और कुमार मलयकेतु की सम्मिलित सेना को संसार की कोई शक्ति पराजित नहीं कर सकती। जब हमारी सेना तीव्र मरुत् की भाँति आक्रमण करेगी तो मौर्य की सेना सूखे पत्तों की भाँति बिखरने के लिए दिशाएँ भी नहीं पा सकेगी।

बालगुप्त : आपके ही नेतृत्व में यह सब होगा, महामंत्री !

राक्षस : किंतु सेना की शक्ति तो आपकी होगी, महाराज ! आप मौर्य के निकट संबंधी हैं किंतु आपकी प्रतिभा और शक्ति का सम्मान मौर्य ने नहीं किया और मौर्य ने क्या, उस ब्राह्मण चाणक्य ने नहीं किया। चाणक्य के संस्कार दरिद्रता के हैं, वह राजसी मर्यादा के महत्त्व का अनुभव नहीं कर सकता, इसलिए उसने आपके लिए एक छोटा-सा वार्षिक शुल्क निर्धारित किया। क्या आपकी स्थिति तक्षशिला के किसी विद्यार्थी जैसी है ?

बालगुप्त : महामंत्री ! वह प्रसंग न छेड़ें। मुझे कष्ट होता है।

राक्षस : कष्ट होना स्वाभाविक है। एक राजा की मर्यादा किसी विद्यार्थी की स्थिति से भिन्न है। एक महापुरुष को अल्प शुल्क पर जीवन-निर्वाह करने का आदेश देना कष्टकर नहीं तो क्या है। किंतु सिंह गीदड़ नहीं बन सकता। वह तो किसी वन-प्रान्त में निर्भीकता से विचरण करेगा। उसी प्रकार आपकी शोभा सिंहासन पर है, छोटे से शुल्क पर नहीं। महाराज !

बालगुप्त : साधु महामंत्री ! आप ही राजत्व का मूल्य आँकना जानते हैं।

राक्षस : और यह समझ लें महाराज ! चाणक्य की कूटनीति ही उसके लिए घातक बनेगी। राज्य स्थिर रहते हैं राजनीति से कूटनीति से नहीं। कूटनीति से तो षड्यंत्र चलते हैं। राज्य सर्वदेशीय है और षड्यंत्र एकदेशीय ! राज्य स्थायी है, षड्यंत्र

अवसर-विशेष का है। मैं राजनीति से विजय प्राप्त करने में राज्य का गौरव समझता हूँ, चोर की भाँति षड्यंत्र से जीवों की हत्या करना नहीं जानता। यह हत्या राज्य के लिए कलंक है। जिस राज्य की नींव में कूटनीति से वध किए गए शवों के समूह हैं वह राज्य क्या कल्याणकर हो सकता है? राज्य कल्याणकर होता है दीनों, हीनों, निर्बलों और निर्धनों को सम्पन्न कर उनकी मंगलकामनाओं से !

बालगुप्त : आप धन्य हैं, महामंत्री ! आपकी राजनीति इतनी शक्तिशाली है कि उस बूढ़े मंत्री चाणक्य ने आपको 'राक्षस' नाम दे रक्खा है। यही तो उसके भय का सूचक है।

राक्षस : इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। 'राक्षस' नाम से ही राज्य का नियमन हो ! राज्य प्रमुख है, नाम का क्या महत्त्व है !

बालगुप्त : आप राज्य की मर्यादा समझते हैं, इसीलिए तो मैं आपके पक्ष में आ गया हूँ।

राक्षस : इसके लिए आभारी हूँ किंतु मौर्य ने भी आपको लोभी और लालची के नाम से पुकारा है। किंतु क्या आप लोभी हैं? सूर्य यदि पृथ्वी से जल का आकर्षण करता है, तो क्या वह लोभी है? पेड़ अपनी जड़ों से रस खींचते हैं तो क्या वे लोभी हैं? रत्नाकर के गर्भ में रत्नों का समूह है तो क्या वह लोभी है? सूर्य, वृक्ष और रत्नाकर संपत्ति ग्रहण कर उसे वितरित करते हैं। आपको लोभी कहना आपकी उदारता का अपमान करना है।

बालगुप्त : आप स्थिति को कितनी अच्छी तरह समझते हैं, महामंत्री !

राक्षस : मौर्य चन्द्रगुप्त दक्षिण का प्रदेश जीत कर लौटे हैं। जब हमारी सम्मिलित सेना चन्द्रगुप्त पर विजय प्राप्त करेगी तो दक्षिण का वही प्रदेश आपके शासन में होगा। तब आपका राज्याभिषेक होगा, महाराज !

बालगुप्त : मैं आपके पक्ष में आकर कृतार्थ हुआ, महामंत्री !

[चर का प्रवेश]

चर : महामंत्री की जय ! कुमार मलयकेतु के आगमन की ध्वनि सुनाई दे रही है। **(चर का प्रणाम कर प्रस्थान)**

राक्षस : ठीक है, वे आएँ। मैं उन्हें बुलवाया है। मैंने कुमार मलयकेतु से बातें करूँगा। मैं उनके हृदय को शान्त करना चाहता हूँ। वे अपने पिता के वध से दुखी हैं। महाराज ! आप जाएँ। आपको एक विशेष कार्य सौंपना चाहता हूँ। आप सब प्रकार से एक कुशल शासक हैं। सुनिए, जब हमारी सम्मिलित सेनाएँ चन्द्रगुप्त की सेना पर आक्रमण करें तो कुसुमपुर की जनता का प्रत्येक नागरिक हमारा समर्थन करे। चाणक्य का कोई गुप्तचर कुसुमपुर के नागरिकों में असंतोष और विद्रोह के बीज न बो सके। आपकी सतर्क दृष्टि कुसुमपुर के प्रत्येक पटल में सामाजिक भावना

को संतुलित रखे। बिना सामाजिक व्यवस्था के राजनीतिक विजय कोई अर्थ नहीं रखती।

बालगुप्त : आपका कथन यथार्थ है, महामंत्री ! मैं आपकी आज्ञा के प्रत्येक अक्षर को चरितार्थ करूँगा।

राक्षस : आपसे ऐसी ही आशा है। अच्छा, अब आगामी कार्य आपकी प्रतीक्षा कर रहा है।

बालगुप्त : (**सिर झुकाकर**) जैसी आज्ञा ! महामंत्री की जय ! (**प्रस्थान**)

राक्षस : (**बालगुप्त के जाने की दिशा में देखते हुए**)···यद्यपि बालगुप्त के कार्य विश्वसनीय होते जा रहे हैं फिर भी उन पर दृष्टि रखना आवश्यक है। जो अपने सम्राट् चन्द्रगुप्त के प्रति स्वामि-भक्ति में स्थिर नहीं रह सका···उस पर पूर्ण विश्वास तो···तो नहीं किया जा सकेगा।

नेपथ्य में : कुमार मलयकेतु की जय !

राक्षस : (**आगे बढ़कर**) स्वागत कुमार !

[भागुरायण सहित कुमार मलयकेतु का प्रवेश। भागुरायण एक सामन्त के वेश में है और मलयकेतु राक्षसी वस्त्रों और रत्नहारों से विभूषित हैं। सिर पर उष्णीष और कलगी। वे हाथ उठाकर प्रवेश करते हैं।]

राक्षस : कुमार की जय ! कुमार को मार्ग में असुविधा तो नहीं हुई ?

मलयकेतु : महामंत्री के समीप पहुँचने के उत्साह में असुविधा भी सुखकर ज्ञात होती है।

भागुरायण : महामंत्री ! कुमार मलयकेतु आपसे मिलने के लिए वैसे ही उत्सुक थे जैसे विशाल पर्वत-खण्ड से निकला हुआ महानद सागर से मिलने के लिए गतिशील हो उठता है। अनेक झाड़ियों और झंखाड़ों से मार्ग अवरुद्ध हो जाता था किंतु कुमार ने किसी प्रकार भी रुकने का अवकाश नहीं लिया।

राक्षस : यह कुमार की मुझ पर विशेष कृपा है।

मलयकेतु : कृपा नहीं, महामंत्री ! यह आपकी शक्ति है जिसने मुझे आप पर विश्वास करने का सुयोग प्रदान किया। आपका निमंत्रण मिलते ही मैंने अपने को महान् सौभाग्यशाली समझा। आप जैसा महामंत्री जिस राज्य का संचालन करे वह राज्य निष्कंटक हो सकता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि छल-प्रपंच करने वाले, अपने को कूटनीति में पारंगत घोषित करने वाले आततायियों का सिर कुचल दिया जाए।

भागुरायण : हमारे महामंत्री दुष्ट चाणक्य की भाँति कुटिल और आततायी नहीं हैं। ये सज्जन हैं अतः ये राजनीति के अतिरिक्त अन्य किसी नीति में विश्वास नहीं करते किंतु जिस प्रकार छल से चाणक्य ने कुमार के पिता पर्वतक के जीवन का नाश किया है, क्या वह सहन करने योग्य है ?

राक्षस : कुमार ! उस घटना से मेरा हृदय अत्यन्त व्याकुल है, मैं नहीं समझता था कि

मानवता इतनी गिर सकती है कि अल्प लाभ के लिए एक सहायक मित्र की हत्या कर दी जाए। कुमार ! अपने शोक को आप मेरे हृदय में देखें।

मलयकेतु : महामंत्री ! उस घटना के स्मरण मात्र से मेरे रोम-रोम में अग्निशिखा प्रज्वलित हो जाती है। दुरात्मा चाणक्य ने मेरे पिता को वचन दिया था कि यदि आप अपने अन्य गणराज्यों की सहायता से मुझे युद्ध में सहायता देकर कुसुमपुर पर विजय प्राप्त करा दें तो आधा राज्य आपको अर्पित कर दिया जाएगा।

भागुरायण : और मौर्य चन्द्रगुप्त ने भी इसका समर्थन किया था।

राक्षस : इसे मैं जानता हूँ।

मलयकेतु : मेरे पिता ने उस दुरात्मा चाणक्य पर विश्वास किया। उन्होंने अपनी और अपने समस्त गणराज्यों की सेना लेकर चन्द्रगुप्त की सेना के साथ कुसुमपुर पर आक्रमण किया। विजय प्राप्त करने के पश्चात् जब आधा राज्य देने का प्रश्न आया तब उस दुरात्मा चाणक्य ने एक उत्सव मनाया।

भागुरायण : ऐसा उत्सव मनाया कि महाराज पर्वतक चाणक्य के प्रति क्षण-क्षण में अधिक विश्वासी बनते गए।

राक्षस : मुझे इसकी भी सूचना है।

मलयकेतु : महामंत्री ! उस उत्सव के अन्त में उस दुरात्मा चाणक्य ने मेरे पिता से यह निवेदन किया कि कुसुमपुर की एक अत्यन्त सुन्दरी राजकन्या आप जैसे शक्तिशाली महापुरुष के दर्शन करना चाहती है। मेरे सरल पिता ने चाणक्य का यह प्रस्ताव स्वीकार किया। राजभवन में वह राजकन्या आई और उसने अपने सौन्दर्यासिव के साथ मेरे पिता को इतना आसव पान कराया कि वे संज्ञाहीन हो गए। उस आसव के प्रभाव से वे फिर उठ नहीं सके। उनका देहावसान हो गया। वह आसव नहीं था, महामंत्री ! विष था···हलाहल विष··· (**विगलित और करुण स्वर**)

राक्षस : कुमार ! धैर्य रखें। यह बड़ी करुण कथा है।

मलयकेतु : उनके देहावसान से आधा राज्य देने का अभिनय उस दुरात्मा चाणक्य ने एक क्षण में समाप्त कर दिया। पिता ही आधे राज्य के अधिकारी थे। जब पिता नहीं तो आधा राज्य भी नहीं।

राक्षस : क्यों नहीं ? आप उनके उत्तराधिकारी हैं। वह आधा राज्य आपको मिलना चाहिए।

मलयकेतु : यह दुरात्मा चाणक्य ने माना ही कब ? उसका तर्क है, बात पर्वतक और हमारे बीच की है। कुमार के अधिकार के सम्बन्ध में कोई चर्चा ही नहीं हुई। उसका यह राजनीतिक अभिनय कितना क्रूर है।

राक्षस : कोई चिन्ता की बात नहीं, कुमार। चाणक्य ने आपके पिता को आधा राज्य देने का अभिनय ही समाप्त किया, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेरे द्वारा कुसुमपुर को पूरा राज्य देने का सत्य शीघ्र ही आपके सामने प्रत्यक्ष होगा। मेरा प्रण वज्र की वह रेखा होगी जिसे चाणक्य की कूटनीति की काली घटा कभी मिटा न सकेगी।

मेरे प्रण की वज्र रेखा उसी काली घटा से उत्पन्न होगी।

मलयकेतु : साधु ! साधु !

भागुरायण : निस्सन्देह ! महामंत्री की नीति में इतनी शक्ति है कि वे स्वर्ग के राज्य को भी जीतकर आपके चरणों में समर्पित कर देंगे। कुमार ! विपत्ति जितनी ही भयानक होगी, महामंत्री की नीति उतनी ही शक्ति-सम्पन्न होगी। कसौटी जितनी काली होती है, स्वर्ण की रेखा उतनी ही स्पष्ट और ज्योतिर्मय होती है।

मलयकेतु : तुम्हारा मुझे विश्वास है, महामंत्री ! अपने पिता के वध से मैं इतना क्रोधित हुआ था कि चाणक्य का सौ बार वध करने पर भी शान्त न होता। सर्प-कुंडली की भाँति उसकी बँधी हुई शिखा को मैं अपने पैरों से कुचलता और उसकी कुटिल दृष्टि को अग्निशलाकाओं से दग्ध करता।

[आग्नेय दृष्टि से देखकर सिंह की भाँति टहलते हैं।]

राक्षस : शान्त ! शान्त ! कुमार ! महाराज नन्द के कुल का विनाश करने के कारण मेरा क्रोध तो पहले से ही चाणक्य पर था, अब आपके पिता के वध से वह चरम सीमा तक पहुँच गया है। अब आपके और हमारे क्रोध की अग्निशिखा युद्धभूमि में ही प्रज्वलित होगी। आप सम्पूर्ण कुसुमपुर के सम्राट् होंगे और मौर्य चन्द्रगुप्त यदि आपके चरणों की परिसेवना में अपने शेष जीवन को सार्थक करना चाहेगा तो इसकी अनुमति भी आपसे प्राप्त करनी होगी। चाणक्य की शिखा युद्धभूमि में योगिनियों और पिशाचों के कंठों की माला बनेगी। कुछ दिन के लिए और धैर्य धारण करें।

मलयकेतु : धैर्य ?...धैर्य ही तो धारण कर रहा हूँ। क्योंकि मुझे विश्वास है कि समस्त आर्यावर्त में चाणक्य की नीति से संघर्ष लेने की शक्ति और क्षमता यदि किसी में है तो तुममें है, महामंत्री ! तुममें है। गजराज का गर्व केवल सिंह ही चूर कर सकता है।

राक्षस : कुमार ! कुछ लोग अधिकार के लिए संघर्ष करते हैं, कुछ लोग प्रतिशोध के लिए विपक्षी को ललकारते हैं, यहाँ अधिकार और प्रतिशोध दोनों ही सर्प-जिह्वा की भाँति एक हो गए हैं। कुमार ! चाणक्य हमारी सम्मिलित शक्ति से इस प्रकार दंशित होगा कि संसार-भर के उपचार उसे जीवित नहीं कर सकेंगे।

भागुरायण : विश्वास रखिए, कुमार ! महामंत्री जो एक बार कह देते हैं वह विधाता का लेख बन जाता है। वह दिन दूर नहीं है जब महामंत्री की कुशल नीति से आप समस्त उत्तरी भारत के सम्राट् होंगे और देश-विदेश के शासक आपके चरणों में अपना मस्तक झुकाकर अपने को सौभाग्यशाली समझेंगे।

मलयकेतु : तो मैं आश्वस्त हुआ। अपने हृदय की शान्ति के लिए भी मैं महामंत्री की सेवा में आना चाहता था। मैं जानता था कि यदि मुझे कहीं भी शान्ति मिल सकती है तो वह केवल महामंत्री राक्षस के समीप पहुँचने पर ही मिल सकती है।

राक्षस : कुमार ! हमारे पास गज-सेना और अश्व-सेना पर्याप्त है। भद्रभट हाथियों की

सेना का संचालन करेगा और पुरुषदत्त अश्व-सेना का। हाथियों का आक्रमण सामने से होगा और अश्व-सेना का आक्रमण दाहिनी और बाईं ओर से होगा। हाथियों की सेना के पीछे मेरी सेना होगी और मौर्य चन्द्रगुप्त की सेना पर आपकी सेना पीछे से आक्रमण करेगी। नदी की धारा में पड़े हुए तिनकों की भाँति मौर्य के सैनिक किनारा भी न पा सकेंगे।

मलयकेतु : अच्छा महामंत्री ! अब हम चलेंगे। भागुरायण, चलो। महामंत्री ! मैं अपने शिविर में ही रहूँगा और तुम्हारे संकेतों की प्रतीक्षा करूँगा।

राक्षस : जैसी कुमार की आज्ञा होगी, वैसा ही होगा। कुमार की जय ! (**पुकारकर**) रोहित !

नेपथ्य से : उपस्थित हुआ, प्रभु !

[रोहित का प्रवेश]

राक्षस : सेवक, सैनिकों को सजग करो। कुमार प्रस्थान करेंगे।

रोहित : जो आज्ञा। (**प्रस्थान**)

राक्षस : कुमार ! अपना मन शान्त रखें। मैं यथासंभव शीघ्र ही आपके अवसाद को विजय में परिणत करूँगा।

मलयकेतु : ऐसा ही हो, महामंत्री !

राक्षस : कुमार की जय !

[कुमार मलयकेतु हाथ उठाते हैं और भागुरायण के साथ जाते हैं।]

राक्षस : (**कुमार के जाने की दिशा में देखते हैं। फिर धीरे-धीरे टहलते हैं**) यह···यह अन्तिम संघर्ष है। किन्तु एक बात से···एक बात से सावधान रहना है। कुमार मलयकेतु की सेना में···सेना के अधिकारियों में···चाणक्य के गुप्तचर हो सकते हैं···हो सकते हैं···जिस प्रकार राजकोष में अनेक खोटी मुद्राएँ चली आती हैं, उसी प्रकार सेना में भी···सेना में भी छद्मवेशी सैनिक हो सकते हैं। देखूँगा···निरीक्षण करूँगा। (**टहलते हुए**) पहले सुवासिनी से बातें करूँगा। (**पुकारकर**) रोहित !

नेपथ्य से : उपस्थित हुआ, प्रभु !

[रोहित का प्रवेश]

राक्षस : देवी सुवासिनी से बात करना चाहता हूँ।

रोहित : जो आज्ञा। (**प्रस्थान**)

राक्षस : (**टहलते हुए**) सुवासिनी···सम्राट् नन्द के मदनोत्सव की प्रमुख राजनर्त्तकी··· क्या वह मेरी राजनीति में सहायक हो सकती है ? राजनीति में नर्त्तकी···राजनीति में नारी···!

[सुवासिनी का प्रवेश]

सुवासिनी : महामंत्री की जय !

राक्षस : कुसुमपुर की लक्ष्मी !···स्वागत ! आपको इतनी देर प्रतीक्षा करनी पड़ी। आपके सुकुमार शरीर ने इन विश्राम के क्षणों में विकलता तो अनुभव नहीं की? एकान्त का सुख कभी-कभी काँटे की भाँति कसक सकता है।

सुवासिनी : प्रभु की स्मृति ही कुसुमों की शय्या थी। उसी पर शयन करती रही। उस विलास-सुख में विकलता कहाँ।

राक्षस : (**टहलते हुए**) एक बात पूछूँ, देवि सुवासिनी ! ब्राह्मण चाणक्य ने अपनी राजनीति में मुझे 'राक्षस' नाम दिया है। आपको इस नाम से भय तो नहीं लगता?

सुवासिनी : द्वितीया का चन्द्र वक्र है, प्रभु ! किन्तु सदा शिव के मस्तक पर वह कितना शोभाशाली है।

राक्षस : सम्राट नन्द की सेवा में रहते हुए आप कवि-कल्पना में कुशल हो गई हैं। ठीक है, अपनी कल्पना के अनुसार आप सदाशिव की भाँति सदैव ही कुसुमपुर का मंगल करेंगी।

सुवासिनी : मंगल? महामंत्री ! मंगल क्या होगा। उस दुरात्मा चाणक्य के संकेत से महाराज नन्द का वध किस क्रूरता से किया गया और ये आँखें देखती रहीं। जिन महाराज नन्द के अट्टहास की ध्वनि में मेरे मंजीर की ध्वनि गूँजती रही, उनका मरणोन्मुख चीत्कार आज भी मेरे कानों में गूँज रहा है ! मुझसे कुसुमपुर का कुछ भी मंगल नहीं हुआ, महामंत्री ! कुछ भी मंगल नहीं हुआ। मैं अभागिनी हूँ···मैं अभागिनी हूँ। (**सिसकियाँ**)

राक्षस नहीं देवि ! यह अभाग्य तो मेरा है कि मेरी राजनीति सात्त्विक होने का दंभ भरती रही। उसे मैंने छल का केन्द्र नहीं बनने दिया। यह भूल मेरी है कि मैंने चाणक्य को मनुष्य समझा। वह मनुष्य नहीं है, देवि ! उसका शरीर भले ही मनुष्य जैसा हो किन्तु उस शरीर में एक हिंसक भेड़िये की आत्मा है, जिसे निरंतर रक्त की प्यास रहती है।

सुवासिनी : इसमें कोई सन्देह नहीं, महामंत्री।

राक्षस : किन्तु अतीत को वर्तमान में लाने से क्या लाभ। महाराज नन्द की आत्मा हम लोगों की भक्ति देखकर स्वर्ग में अवश्य शांति प्राप्त करती होगी। हमें कुसुमपुर की रक्षा करनी है।

सुवासिनी : इसके लिए मेरी सेवाएँ सदैव समर्पित हैं।

राक्षस : मैं यह सुनकर सुखी हुआ। अभी कुमार मलयकेतु आए थे। आप जानती हैं कि उनके पिता की हत्या भी दुष्ट चाणक्य की कूटनीति से हो गई। हमारी भाँति वे भी क्रोध और शोक से आन्दोलित हैं। चाणक्य और चन्द्रगुप्त से प्रतिशोध लेने के लिए वे भी कटिबद्ध हैं। उनकी सेना हमारी सेनाओं से मिलकर एक ऐसा प्रलय उत्पन्न करेंगी जिसमें चन्द्रगुप्त की सारी सेना सदैव के लिए नष्ट हो जाएगी।

सुवासिनी : मैं कुछ निवेदन करूँ। यदि दुष्ट चाणक्य ने फिर किसी कूटनीति का आश्रय लेकर आपमें और मलयकेतु में भेद डाल दिया तो क्या उस प्रलय के पूर्व ही चाणक्य

कोई नवीन छल की सृष्टि न कर लेगा ?

राक्षस : राजनीति में भी आपकी बुद्धि कार्य करती है। आप भी मेरे कार्यों में सहायक हो सकती हैं।

सुवासिनी : मेरा जीवन धन्य होगा।

राक्षस : आप···नहीं तुम कुसुमपुर में सौभाग्य की सृष्टि करोगी।

सुवासिनी : मैं कृतार्थ हुई, स्वामी ! यह तो मेरा सौभाग्य होगा किन्तु अब मुझे अपने सौभाग्य से भी भय लगने लगा है क्योंकि मैं देखती हूँ कि विधाता भी सत्य का समर्थन नहीं करता। वह चाहता है कि इस संसार में आततायियों का ही साम्राज्य हो और सात्त्विक वृत्ति के महात्मा सदैव ही प्रताड़ित होते रहें।

राक्षस : किन्तु यह मान लेने से तो जीवन की प्रगति ही अवरुद्ध हो जाएगी, सुवासिनी !

सुवासिनी : आपकी इस बात से मेरे हृदय में साहस का उदय होता है। पहले मैं महाराज नन्द की रंगशाला की नर्तकी थी, अब यदि आपकी आज्ञा होगी तो मैं राजनीति के मंच पर भी नृत्य करूँगी और आपकी बुद्धि की ताल पर ही मेरे नूपुरों की ध्वनि होगी।

राक्षस : और यह नूपुरों की ध्वनि मेरे हृदय में भी न जाने कब से गूँज रही है, सुवासिनी !

सुवासिनी : (**हर्षोल्लास से**) सच ? महामंत्री ! क्या यह सेविका इतनी भाग्यशालिनी है ? क्या उसका भाग्य इन्द्राणी के भाग्य की भाँति है ?

राक्षस : सुवासिनी राजनीति की वीथिकाओं पर चलने से मुझे अवकाश नहीं है किन्तु यदि तुम मेरे हृदय में झाँककर देखो तो उन वीथिकाओं के कोनों में न जाने अनुराग के कितने कुंज हैं जिनमें तुम्हारे नूपुरों की ध्वनि निरंतर गूँज रही है। और मैं राजनीति की भरी तालों के बीच किसी रिक्त ताल में तुम्हारे नूपुरों की ध्वनि सुन लेता हूँ।

सुवासिनी : प्रभु ! स्त्री का हृदय अनुराग के रहस्य पहिचानता है। पुरुष की भंगिमाएँ स्त्री से छिपी नहीं रहतीं। वह जान लेती है कि पुरुष की किस दृष्टि में विराग है और किस दृष्टि में अनुराग और लालसा। पुरुष के कर-संचालन की दिशा से वह पहले से ही परिचित रहती है। यदि स्त्री अनुरक्त है तो वह पुरुष को मिलन-सुख दे सकती है अन्यथा पुरुष के प्रयत्न पानी के बुलबुलों की भाँति फूट जाते हैं और नारी की गति जल की भाँति अपनी ही दिशा में प्रवाहित होती रहती है।

राक्षस : इसीलिए तो नारी सर्व-विजयिनी है।

सुवासिनी : स्वामी ! आज मैं शब्दों से स्पष्ट करना चाहती हूँ कि भले ही यह सेविका महाराज नन्द की रंगशाला की नर्त्तकी थी किन्तु उसने यह सेवा इसलिए स्वीकार की थी कि वह आपकी दृष्टि के अमृत का पान करती रहे। आपकी स्वीकृति ही मेरी रंगशाला थी और आपकी मुस्कान ही मेरे नृत्य की गति थी। महाराज नंद का पुरस्कार मैं इसलिए स्वीकार कर ी थी कि वह पुरस्कार आपके हाथों से प्रदान किया जाता था। महाराज नन्द का अनुग्रह तो एक रत्नजटित मन्दिर था किन्तु

उस मन्दिर में जो देवता की मूर्ति थी, वह आपकी ही छवि थी, प्रभु !

राक्षस : तुम वास्तव में प्रेममयी हो, सुवासिनी ! आज से तुम स्पष्ट रूप से मेरी प्रणयिनी हो।

सुवासिनी : ओह, स्वामी ! मैं कृतार्थ हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं धन्य हूँ !! **(उमंग से)** आज मेरा सौभाग्य इतना विस्तृत हो गया है कि क्षितिज-रेखा भी ओछी पड़ गई है। मेरा सुख इतना गहरा हो गया है, कि सागर भी उथला ज्ञात होता है और आनन्द इतना मादक हो गया है कि सुगन्धि भी वायु के कंधों से उतर गई है। मैं धन्य हूँ, स्वामी ! मैं कृतार्थ हूँ, प्रभु !

राक्षस : तुम जितनी सुन्दर हो, उतनी ही सुन्दर तुम्हारी भावनाएँ भी हैं। अब हम दोनों अपने प्रणय का प्रयोग राजनीति में किसी प्रकार करेंगे !

सुवासिनी : सेविका ने तो पहले ही निवेदन किया था कि स्वामी की आज्ञा होगी तो सेविका राजनीति के मंच पर भी नृत्य करेगी ?

राक्षस : तो सुनो। मौर्य चन्द्रगुप्त कल दाक्षिणात्य विजय कर कुसुमपुर लौट रहे हैं। कल शरद् की पूर्णिमा भी है। उन्होंने दक्षिण से ही यह सूचना भेजी है कि शरद् पूर्णिमा के पवित्र पर्व पर कुसुमपुर में कौमुदी महोत्सव हो। मंत्री चाणक्य मुझसे भयभीत है। वह नहीं चाहता कि कल कौमुदी महोत्सव हो, किन्तु मैं चाहता हूँ कि कौमुदी महोत्सव हो।

सुवासिनी : आप ? आप चाहते हैं कि कौमुदी महोत्सव हो ? आप मलयकेतु के मित्र होकर चन्द्रगुप्त के प्रस्ताव का समर्थन करेंगे ?

राक्षस : हाँ, एक विशेष दृष्टि से चाहता हूँ कि कल कौमुदी महोत्सव हो और कौमुदी महोत्सव होगा।

सुवासिनी : आपकी नीति की गहराई तक मेरी बुद्धि नहीं पहुँच रही है।

राक्षस : तुम उस कौमुदी महोत्सव में मौर्य चन्द्रगुप्त के समक्ष नृत्य कर सकोगी ?

सुवासिनी : मैं आपके अतिरिक्त किसी के समक्ष नृत्य नहीं करूँगी। मेरे नूपुरों की ध्वनि सुनकर देखने वालों की दृष्टि में न जाने कितनी वासना के बिन्दु उभरते हैं। देवता के चरणों में समर्पित होने वाले पुष्पों का हृदय बेध कर लोग माला बनाकर अपने गले में डाल लेते हैं। मैं किसी के समक्ष नृत्य नहीं करूँगी, मौर्य चन्द्रगुप्त के समक्ष तो कदापि नहीं।

राक्षस : मेरे समक्ष प्रणय के साथ-साथ राजनीति भी है, देवि ! मैं राजनीति की दृष्टि से ही तुम्हारे नृत्य की योजना चाहता हूँ।

सुवासिनी : यों तो आपकी आज्ञा से यह सेविका श्मशान में भी नृत्य कर सकती है।

राक्षस : तो इसे श्मशान का ही नृत्य समझो।

सुवासिनी : श्मशान का नृत्य ? वहाँ तो कौमुदी महोत्सव होगा। महाराज नन्द के शोक की संध्या में क्या मैं शत्रु की शरद्-ज्योत्स्ना को निमंत्रण दूँगी।

राक्षस : वह शत्रु की शरद्-ज्योत्स्ना न होगी; वह उसके विनाश की भयानक अर्धरात्रि होगी।

सुवासिनी : अर्धरात्रि ? किस प्रकार, मेरे देवता ?

राक्षस : जिस प्रकार कुमार मलयकेतु के पिता पर्वतक का विनाश एक राजकन्या द्वारा किया गया उसी प्रकार तुम्हारे ही नृत्य के द्वारा मौर्य चन्द्रगुप्त का विनाश किया जाएगा ।

सुवासिनी : मैं यह कार्य किस प्रकार कर सकूँगी ?

राक्षस : इसकी योजना दिन में सोचकर बनाई जाएगी ।

सुवासिनी : (**सोचते हुए**) योजना सोच···कर···बनाई···जाएगी।···सोचकर बनाई जाएगी··· (**सहसा**) यदि मैं कुछ संशोधन करूँ ?

राक्षस : मैं स्वागत करूँगा ।

सुवासिनी : कहूँ ? अभी कहूँ ?

राक्षस : नहीं···और यहाँ नहीं ।

सुवासिनी : कारण ?

राक्षस : इस बाहरी शिविर में वायु भी राजनीति की गुप्त वार्ताएँ चुरा लेती है ।

सुवासिनी : आप राजनीति के आचार्य हैं । मैं राजनीति में और नृत्य में कुछ अन्तर ही नहीं समझती । कैसी मूर्खा हूँ । (**हँसी**)

राक्षस : नहीं, अनेक बार राजनीति में ही नृत्य होता है और नृत्य में राजनीति । कौमुदी महोत्सव के अवसर पर नृत्य में ही राजनीति की भूमिका होगी ।

सुवासिनी : आपकी प्रत्येक भूमिका में भूमि का सौभाग्य है !

राक्षस : रात्रि के प्रथम प्रहर में मैं गुप्तचर वसुगुप्त से भी बात करूँगा ।

सुवासिनी : फिर, इस समय मुझे क्या आज्ञा है ?

राक्षस : इस समय ? कुसुमपुर की लक्ष्मी ! कल के नृत्य की भाँति इस समय ऐसा नृत्य हो जिससे दिशाएँ धन्य हो जाएँ । आकाश के अंचल में प्रभात की किरणें तुम्हारे नृत्य का अनुकरण करने लगें । बाल-रवि का प्रकाश तुम्हारे अंगों की छाया लेकर एक दूसरी सुवासिनी का चित्र भूमि पर बना दे और तुम्हारे नृत्य की भंगिमाओं में आत्म-विभोर हो जाए । तुम्हारा नृत्य वास्तव में विजय-नृत्य हो । अग्निशिखा की भाँति दिशा को आलोकित करे ।

सुवासिनी : (**सिर झुकाकर**) अग्निशिखा की भाँति ? जैसी आज्ञा, प्रभु !

[सुवासिनी नृत्य की भंगिमा लेकर नृत्य आरम्भ करती है और महामंत्री राक्षस अनुराग से उसकी ओर देखते हैं ।]

[धीरे-धीरे पर्दा गिरता है ।]

तृतीय अंक

स्थान : कुसुमपुर
समय : संध्या

[बाहर चारों ओर कोलाहल हो रहा है। बीच-बीच में तुरही का नाद उठता है। और घंटों की आवाज भी सुन पड़ती है। धीरे-धीरे वह ध्वनि क्षीण होती है। राजकक्ष में समाहर्त्ता वसुगुप्त और अन्तपाल यशोवर्मन बातें कर रहे हैं।]

वसुगुप्त : आज कुसुमपुर की जनता का कोलाहल कितना उभरा हुआ है! ढाल के मध्य भाग की भाँति वह किसी भी तलवार का वार रोकने के लिए आगे बढ़ आया है। कुसुमपुर का उत्साह एक ढाल की तरह है, जिस पर विद्रोह की तलवार भी कुंठित हो जाएगी। अब तो अन्तपाल यशोवर्मन का संदेह दूर हो गया होगा!

यशोवर्मन : वसुगुप्त! सन्देह पानी का बुलबुला नहीं है जो एक क्षण में भंग हो जाता है। संदेह तो धूमकेतु की रेखा है जो आकाश में एक छोर से दूसरे छोर तक फैली रहती है। और धूमकेतु जानते हो किस बात का प्रतीक है—भय का, आशंका का, अमंगल का।

वसुगुप्त : किन्तु भय, आशंका और अमंगल तो नहीं हैं। नन्दवंश का विनाश होते ही ये ढाक के तीन पात की तरह अलग हो गए।

यशोवर्मन : अलग-अलग भले ही हो गए हों, पर हैं तो।

वसुगुप्त : अब रहे भी नहीं। जब शक, यवन, पारस और वाह्लीक राजाओं के साथ महाराज चन्द्रगुप्त ने कुसुमपुर में प्रवेश किया तो सारी प्रजा ने उनका स्वागत किया। क्या इस कोलाहल में तुमने प्रजाजनों के उत्साह की सरिता उमड़ते हुए नहीं देखी?

यशोवर्मन : देखी, किन्तु इस उत्साह के बीच ऐसे कंठ भी हो सकते हैं जिनमें व्यंग्य और परिहास की ध्वनि हो। नन्द के प्रति राजभक्ति अभी निष्प्राण नहीं हुई है। हरी घास में कुश और कंटक भी होंगे।

वसुगुप्त : तो वे निर्मूल कर दिए जावेंगे।

यशोवर्मन : किन्तु आपको क्या ज्ञात नहीं है कि महाराज नन्द के मंत्री राक्षस की नीति छद्मवेश धारण कर चलती है? नन्द नहीं है किन्तु नन्द के मंत्री तो हैं जो छिपकर कुसुमपुर से बाहर चले गए हैं।

वसुगुप्त : तो हमारे पास भी पहिचानने वाली आँखें हैं। (**जन-रव फिर बढ़ता है**) देखो, यह जन-रव बढ़ रहा है! वातायन बन्द कर दो!

यशोवर्मन : हाँ, बात ही नहीं सुन पड़ती। (**वातायन बन्द कर देते हैं।**)

वसुगुप्त : तो सम्राट् चन्द्रगुप्त ने जब कुसुमपुर में प्रवेश किया तो पहला कार्य तो यहाँ की शासन-व्यवस्था ठीक करना है।

यशोवर्मन : आचार्य चाणक्य के मस्तिष्क में राजनीति के न जाने कितने व्यूह प्रतिदिन

बनकर बिगड़ते हैं, उनसे अधिक राजनीति की व्यवस्था कौन कर सकता है ?

वसुगुप्त : तो क्या सम्राट् चन्द्रगुप्त का मस्तिष्क केवल बाहु-बल का केन्द्र ही है ?

यशोवर्मन : हाँ, आचार्य चाणक्य की नीति और सम्राट चन्द्रगुप्त के बाहु-बल ने ही तो नन्दवंश को समाप्त किया है। नन्दवंश की विलासिता-संध्या सम्राट् चन्द्रगुप्त की यश-चन्द्रिका के सामने अधिक देर तक नहीं रुक सकी।

[नेपथ्य में 'सम्राट् चन्द्रगुप्त की जय' का घोष।]

वसुगुप्त : (**उत्सुकता से**) सम्राट आ गए ? तो क्या जनता का इतना कोलाहल उन्हीं के स्वागत के लिए था ? वातायन खोलकर देखो, यशोवर्मन !

यशोवर्मन : मैं देखता हूँ। (**वातायन खोलते हैं। जन-रव फिर तीव्रता से सुनाई पड़ता है**) हाँ, जनता उत्सुकता से पुष्पों के हार उछाल रही है। महाराज ने अंतरंग प्रकोष्ठ के सिंह-द्वार से प्रवेश कर लिया है; उनका वेश इस समय दर्शनीय है। विस्तीर्ण ललाट, उठी हुई नासिका और बड़े-बड़े अरुण नेत्र। वे नागरिकों से कुछ कह भी रहे हैं। कहते समय उनकी वाणी में वीरत्व उसी प्रकार गुंजायमान होता है जैसे दिशाओं में दूर से आती हुई प्रतिध्वनि सिमट कर अन्तिम स्वर में गूँजती है। उनकी भौंहों में स्वाभाविक रूप से बल पड़े हुए हैं जैसे दृष्टि के ऊपर आकांक्षाएँ वक्र होकर दुहरी हो गई हैं। घुँघराले मुक्त केशों पर मुकुट है, जिसकी कलगी सिर के हिलने मात्र से लज्जाशील नारी-दृष्टि की भाँति झुक जाती है। भुजदण्डों में शक्ति का संचय है। ज्ञात होता है जैसे वे राज्य के मेरुदण्ड हैं। सैनिकों जैसा वेश, हृदय पर मोतियों की माला, कमर में मखमली म्यान के भीतर खड्ग। बड़ा उत्साहपूर्ण वेशविन्यास है उनका !

वसुगुप्त : (**प्रसन्नता से**) सचमुच, सम्राट् वीर रस के प्रतीक हैं। वह दौवारिक आया।

[दौवारिक का प्रवेश]

दौवारिक : महाराज की जय ! सम्राट् का आगमन हो रहा है।

वसुगुप्त : हम लोग भी उनके स्वागत के लिए उत्सुक हैं। तुम जाओ, बाहरी द्वार पर पुष्प-वर्षा हो !

दौवारिक : जो आज्ञा। (**प्रस्थान**)

यशोवर्मन : सम्राट् ने तक्षशिला में ग्रीक सैन्य-संचालन का जो कौशल देखा है, उस कौशल के बल पर तो वे समस्त भारत पर अपना साम्राज्य स्थापित कर सकते हैं। उन्होंने विदेशी राजनीति को स्वीकार कर किसी भविष्य-कार्यक्रम की नींव डाली है, यह बहुत कम लोग जानते हैं।

वसुगुप्त : राजनीति के साथ नारी ! यही तुम्हारे कहने का तात्पर्य है ? (**दबी हुई सम्मिलित हँसी**)

[सम्राट् की जय-ध्वनि के बाद सम्राट् चन्द्रगुप्त का कार्यान्तिक पुष्पदन्त के साथ प्रवेश।]

वसुगुप्त और यशोवर्मन : (सम्मिलित स्वर में) सम्राट् की जय !

चन्द्रगुप्त : समाहर्त्ता वसुगुप्त ! कुसुमपुरी का वैभव मैंने देखा। मुझे ऐसा ज्ञात होता है जैसे युद्ध की भैरवी ने कषाय वस्त्र धारण कर लिए हैं और वह संन्यासिनी हो गई है। नगर की शोभा मलीन है जैसे तलवार की झंकार वायु में विलीन हो गई है। नागरिकों का यह उल्लास श्रृगालों का कोलाहल जैसा ज्ञात होता है जिसे हमें मनुष्यत्व देना है । नागरिकों से कहला दो कि अब ये अपने घर जावें।

वसुगुप्त : जो आज्ञा, सम्राट्। (**प्रस्थान**)

[धीरे-धीरे जन-रव शान्त हो जाता है।]

चन्द्रगुप्त : और अन्तपाल यशोवर्मन ! जो तेज मैंने ग्रीक सैनिक के सेवकों में देखा था वह कुसुमपुर के प्रतिष्ठित नागरिकों तक में नहीं है। यहाँ के व्यक्तियों में स्पष्ट बात कहने का साहस नहीं है। एक छल है, एक विडंबना है जो सोन नदी की भाँति कुसुमपुर को घेरे हुए है । उसे बन्धन-मुक्त करो, यशोवर्मन !

यशोवर्मन : मुझे विश्वास है, सम्राट् ! आचार्य चाणक्य की नीति से कुसुमपुर एक कुसुम के समान सुन्दर और आपकी कीर्ति की भाँति निर्मल हो जाएगा।

[वसुगुप्त का प्रवेश]

चन्द्रगुप्त : संभव है। आचार्य चाणक्य की नीति ने कुसुमपुर की राजनीति में ऐसे चक्रव्यूह की रचना की है, जिसमें अराजकता का पथ मृत्यु-दीवार पर जाकर समाप्त होता है। और उस मृत्यु-दीवार की नींव में जानते हो क्या है ? समस्त नन्दवंश चिर-निद्रा में शयन कर रहा है ।

वसुगुप्त : और उस नन्दवंश की आँखों में विलासिता का मद अन्तिम क्षणों तक रहा है ।

चन्द्रगुप्त : मुझे इस बात का दुःख है; किन्तु राजनीति कृपाण की धार का मार्ग है। जो व्यक्ति विलासिता का बोझ अपने सिर पर रखकर चलता है, वह उस कृपाण को निमंत्रण देता है कि वह उसके शरीर के दो टुकड़े कर दे। मैं आचार्य चाणक्य के चक्रव्यूह की मृत्यु-दीवार को जीवन का प्रकाश-स्तम्भ बनाना चाहता हूँ।

वसुगुप्त : सम्राट् के बाहु-बल में और आचार्य चाणक्य की नीति में यह क्षमता है।

चन्द्रगुप्त : आचार्य चाणक्य की सहायता से जो कुछ भी अभी तक हुआ है, उसके प्रति नागरिकों को असंतोष तो नहीं होना चाहिए। तक्षशिला के अनुभव से मैं कुसुमपुर की सभी बाधाएँ दूर करना चाहता हूँ। शासन का मापदण्ड प्रजा का सन्तोष और सुख होना चाहिए।

यशोवर्मन : सम्राट् का कथन सत्य है।

चन्द्रगुप्त : इसीलिए मैं एक महोत्सव का आयोजन करना चाहता हूँ—कौमुदी महोत्सव। शरद् ऋतु की आज पूर्णिमा है। इसलिए समाहर्त्ता वसुगुप्त के प्रस्ताव के अनुसार मैंने मध्याह्न में इस निर्णय की घोषणा कर दी है। प्रकृति की इस चन्द्रमयी निर्मलता

में जनता के हृदय की समस्त पाप-वासनाएँ धुल जावें। कौमुदी महोत्सव इस भाँति कुसुमपुर का महान राजनीतिक पर्व है।

वसुगुप्त : सम्राट् ! कुसुमपुर के सिंह-द्वार ने अभी तक शृगालों का स्वागत किया है। आपके प्रवेश ने ही सिंह-द्वार का नाम सार्थक किया।

चन्द्रगुप्त : तुम प्रसन्न कर देने वाली बात कह सकते हो, वसुगुप्त ! इसलिए मैंने तुम्हें कुसुमपुर का नागरिक होने पर भी 'कर' एकत्रित करने वाले समाहर्त्ता का नवीन पद दिया है। तुम मधुर बातें कहकर अच्छी तरह 'कर' एकत्रित कर सकते हो।

वसुगुप्त : यह सम्राट् की कृपा है।

चन्द्रगुप्त : फिर प्रजा का सन्तोष ही मेरे सुख का अग्रदूत है। (**कार्यान्तिक पुष्पदन्त को सम्बोधित करते हुए**) कार्यान्तिक पुष्पदन्त ! कौमुदी महोत्सव के लिए कुसुमपुर के नागरिकों में उत्सुकता है ?

पुष्पदन्त : सम्राट् ! जिस समय से कौमुदी महोत्सव का संवाद नागरिकों के समीप पहुँचा है उस समय से प्रत्येक नागरिक ने शूद्र महापद्म नन्द की क्रूरता के उपसंहार में आपकी उदारता का 'भरत वाक्य' जोड़ दिया है। सम्राट् ने आचार्य चाणक्य की सहायता से शस्त्र, शास्त्र और पृथ्वी का उद्धार किया है। आपका कुसुमपुर में प्रवेश शस्त्र-विजय का सूचक है, जिसमें शास्त्र का संतोष और पृथ्वी का कल्याण है।

यशोवर्मन : प्रजा-वर्ग में से कुछ व्यक्ति नन्दवंश के समर्थक हो सकते हैं और नन्दवंश के विनाश से उनका क्षुब्ध होना स्वाभाविक है, इसलिए कौमुदी महोत्सव के सम्बन्ध में सम्राट् की घोषणा असंतोष को सुख और ऐश्वर्य से भरकर उसमें राजभक्ति की तरंग उठा सकती है। कौमुदी महोत्सव में कुसुमपुर के निवासी अपनी नगरी की शोभा देखकर अपने वैर-विरोध को भूल सकते हैं। नगरी का ऐश्वर्य देखकर उनके विचारों की दिशा में परिवर्तन हो सकता है। किन्तु हमें यह उत्सव सतर्कता से देखना चाहिए।

वसुगुप्त : सतर्कता से देखने की ऐसी विशेष आवश्यता नहीं है। नगरी का ऐश्वर्य जननी का ऐश्वर्य है। जननी का ऐश्वर्य देखकर किस पुत्र को प्रसन्नता न होगी ! अपरिचित व्यक्ति की ओर से आई हुई कल्याण-कामना भी जब रुचिकर ज्ञात होती है तो सम्राट् ! आप जैसे उदारमना सम्राट् की ओर से की गई कल्याण-कामना नागरिकों के हृदय में सम्राट् के प्रति भक्ति और श्रद्धा की मंदाकिनी प्रवाहित किए बिना नहीं रहेगी।

चन्द्रगुप्त : ऐसा ही हो ! (**कार्यान्तिक पुष्पदन्त से**) क्यों कार्यान्तिक पुष्पदन्त ! कौमुदी महोत्सव का क्या प्रबन्ध किया गया है ?

पुष्पदन्त : सम्राट् ! कौमुदी महोत्सव के अवसर पर कुसुमपुर को सजाने में नायक ने अपनी सारी शक्ति लगा दी है। सोन और गंगा के संगम पर एक शत नौकाओं को सम्राट् के शुभ नाम के आकार में सजाकर उन पर चालीस हाथ ऊपर आकाश-दीपों की व्यवस्था की गई है, जिससे शरद-चन्द्रिका के हास के साथ सम्राट् का नाम भी

दीपों का आलोक-मण्डल बनाता हुआ नागरिकों के हृदयों में प्रवेश कर जावे।

चन्द्रगुप्त : यह मनोवैज्ञानिक चातुर्य है, और ?

पुष्पदंत : नगर के काष्ठ-प्राचीर के चौंसठ द्वारों पर मंगल-कलशों की तरंगें सुसज्जित होंगी। दूर से ऐसा ज्ञात होगा कि कुसुमपुर प्रकाश का एक सरोवर है जिसमें चारों ओर से दीप-किरणों की चौंसठ तरंगें प्रवाहित हो रही हैं।

चन्द्रगुप्त : यह सौन्दर्य-रचना सराहनीय है !

पुष्पदन्त : सम्राट् ! प्राचीर पर जो पाँच सौ सत्तर अलिन्द हैं उनमें नगर की उतनी ही बालाएँ मणिजटित आभूषणों से अपने को सुसज्जित कर प्रकाश के आलोक में नृत्य करेंगी। उनके नृत्य में जब उनके रत्न प्रकाश की किरणों में आलोकित होंगे तो ज्ञात होगा जैसे किरणों के कमलों में प्रकाश-बिन्दुओं के भ्रमर क्रीड़ा कर रहे हैं।

चन्द्रगुप्त : यह तो बहुत सुन्दर होगा !

पुष्पदन्त : और सम्राट् ! प्राचीर के चारों ओर जो सोन नदी की नहर है उसमें सहस्रों दीपदान होंगे। ज्ञात होगा जैसे नगर के चारों ओर दीपों की आकाश-गंगा बहती जा रही है।

वसुगुप्त : सम्राट् ! नायक पुरस्कार का अधिकारी है।

चन्द्रगुप्त : निस्संदेह, और कार्यान्तिक पुष्पदन्त ! तुम इस बात की घोषणा कर दो कि इस महोत्सव में जितने भी पण व्यय किए जाएँ वे राजकोष से व्यय न होकर मेरे 'चन्द्रकोष' से व्यय किए जाएँ। यद्यपि इस उत्सव से प्रजा-वर्ग का मनोरंजन होगा तथापि इसका व्यय-भार मैं वहन करूँगा।

वसुगुप्त : यह सम्राट् की उदारता है। शूद्र राजा महापद्म तो प्रजा से सहस्र-सहस्र पण लेकर उन्हें अपने विलास में व्यय करते थे और प्रजाजनों को उसी अवसर पर प्राण-दण्ड का पुरस्कार मिलता था। अपने को एकराट् घोषित करते हुए भी वे प्रजा-जनों के हृदयों में अणु-मात्र भी स्थान नहीं बना सके थे। यही अवस्था उनके पुत्र धननन्द के समय में थी।

चन्द्रगुप्त : वसुगुप्त ! अपने समारोह को इन अरुचिकर चर्चाओं से क्षत-विक्षत मत होने दो।

वसुगुप्त : मुझसे भूल हुई, सम्राट् ! मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ।

चन्द्रगुप्त : और कार्यान्तिक पुष्पदन्त ! प्रजा-भवनों का शृंगार कैसा होगा ?

पुष्पदन्त : सम्राट् ! प्रजा-भवनों की श्रेणी में विविध रंग के प्रकाश-तोरणों की व्यवस्था है। ऐसा ज्ञात होगा जैसे रात्रि में भी सम्राट् की राजधानी सप्त रंगों के इन्द्रधनुष विविध नृत्य-मुद्राओं में सजे हैं।

वसुगुप्त : और इस अवसर पर सम्राट् के समक्ष नन्दवंश की राजनर्त्तकी के नृत्य की व्यवस्था भी तो होनी चाहिए ?

यशोवर्मन : यह समय तो नगरी की शोभा देखने का होगा, नर्त्तकी की शोभा देखने का नहीं।

वसुगुप्त : नगरी की शोभा देखने के अनंतर सम्राट् विश्राम भी तो चाहेंगे ! विश्राम के

क्षणों को निद्रालु बनाने के लिए राजनर्त्तकी के नृत्य की आवश्यकता भी होगी।

चन्द्रगुप्त : कार्यान्ति पुष्पदन्तक ! जाओ, और नायक से कौमुदी महोत्सव की व्यवस्था शीघ्र करने के लिए कहो। मेरे 'चन्द्रकोष' से उसे पाँच सहस्र पण के पुरस्कार की सूचना भी दो। कौमुदी महोत्सव के प्रारम्भ का संकेत मुझे तूर्यनाद से मिलना चाहिए।

पुष्पदन्त : जो आज्ञा सम्राट् ! (**प्रस्थान**)

चन्द्रगुप्त : नायक वास्तव में पुरस्कार का अधिकारी है। कुसुमपुर में ऐसी सौन्दर्य-रचना संभवत: पहली बार होगी ! क्यों वसुगुप्त ?

वसुगुप्त : निस्संदेह, सम्राट् ! कुसुमपुर में रहते मेरा इतना जीवन व्यतीत हुआ; किन्तु महाराज नन्द ने विलासिता की थाह पाकर भी कभी अपनी नगरी का ऐसा शृंगार नहीं किया। यह श्रेय आपके ही शासन को होगा कि कुसुमपुर सचमुच सौन्दर्य का कुसुम बन सका।

चन्द्रगुप्त : वसुगुप्त ! तुम्हारी प्रशंसा अतिशयोक्तियों से भरी होती है। इतनी प्रशंसा सुनकर मुझे कभी-कभी सन्देह होने लगता है।

वसुगुप्त : किस सम्बन्ध में, सम्राट् ?

चन्द्रगप्त : जो तुम कहते हो, उसकी यथार्थता में।

वसुगुप्त : सम्राट् परीक्षा करके देख लें। सत्य को सत्य कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है, सम्राट् ! और फिर सम्राट् भी तो स्पष्ट वक्ता हैं। सम्राट् स्वयं इस बात को समझते होंगे ?

चन्द्रगुप्त : चन्द्रगुप्त रण-नीति के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझना चाहता, वसुगुप्त ! समाहर्त्ता के नवीन पद पर तुम्हारी नियुक्ति के सम्बन्ध में भी महामंत्री चाणक्य ही समझें। इस सम्बन्ध में उनसे पूछने का मुझे अवकाश ही नहीं मिला।

यशोवर्मन : आचार्य चाणक्य से पूछना बहुत आवश्यक था, सम्राट् !

वसुगुप्त : यशोवर्मन ! तुम्हें मेरा अपमान करने का कोई अधिकार नहीं। तुम मुझे द्वन्द्व-युद्ध के लिए प्रेरित करते हो।

यशोवर्मन : सम्राट् के सेवक और आचार्य महामंत्री चाणक्य के शिष्य होने के नाते मैं द्वन्द्व-युद्ध के लिए प्रस्तुत हूँ, वसुगुप्त ! सम्राट् ! मैं द्वन्द्व की आज्ञा चाहता हूँ।

चन्द्रगुप्त : यशोवर्मन ! यह राजकक्ष है, समरांगण नहीं। कौमुदी महोत्सव को रक्त का अभिषेक नहीं चाहिए। तुम्हें भी इतने शीघ्र क्षुब्ध नहीं होना चाहिए, वसुगुप्त !

वसुगुप्त : सम्राट् ! मैं क्षमा चाहता हूँ। किन्तु सत्य की रक्षा हो।

चन्द्रगुप्त : अवश्य होगी। और आज कौमुदी महोत्सव में सौन्दर्य की भी रक्षा होगी। हाँ, तुम राजनर्त्तकी के सम्बन्ध में क्या कह रहे थे ?

वसुगुप्त : सेवक यही निवेदन कर रहा था, सम्राट्, कि सम्राट् के विश्राम-क्षणों को निद्रालु बनाने के लिए राजनर्त्तकी के नृत्य की आवश्यकता हो !

चन्द्रगुप्त : हाँ, होनी चाहिए।

वसुगुप्त : तो सम्राट् ! मैंने उसकी सज्जा के लिए विशेष प्रबन्ध करा दिया है। वह

राजप्रासाद के उत्तर कक्ष में वेश-भूषा से सुसज्जित है ।

चन्द्रगुप्त : मेरी इच्छाओं के पूर्व ही कार्य की आयोजना करने वाले वसुगुप्त ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ । कौमुदी महोत्सव में सदैव मेरे साथ रहोगे ।

वसुगुप्त : यह मेरा सौभाग्य है, सम्राट् !

चन्द्रगुप्त : इस अवसर पर मुझे तक्षशिला का स्मरण हो आता है, उस तक्षशिला का जिसमें अट्ठारह विषयों की शिक्षा दी जाती थी। सहस्रों विद्यार्थी थे । वहाँ मेरे एक मित्र थे । तुमने भी उनका नाम सुना होगा। प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ कात्यायन ।

वसुगुप्त : वे तो व्याकरण-निर्माता पाणिनि के अभ्यास-सिद्ध शिष्य प्रसिद्ध हैं, सम्राट् !

चन्द्रगुप्त : हाँ। मैं आयुर्वेद, धनुर्वेद और शल्य सीखता था और कात्यायन वेद और व्याकरण । पाणिनि के व्याकरण-सूत्र भाषा और साहित्य के पूर्व ही चलते थे । उसी प्रकार तुम्हारे कार्य भी मेरी इच्छा के पूर्व ही हो जाते हैं।

वसुगुप्त : आप मुझे आदर देते हैं, प्रभु !

चन्द्रगुप्त : वहीं आचार्य चाणक्य से मैत्री हुई । नीति-निष्णात आचार्य चाणक्य के समान बुद्धि और अन्तर्दृष्टि में आज समस्त आर्यावर्त्त में एक भी व्यक्ति नहीं है। यह मेरा सौभाग्य है कि वे मेरे आचार्य और महामंत्री हैं ।

यशोवर्मन : सम्राट् ! आचार्य चाणक्य की नीति अमर होने की क्षमता रखती है । राज-नीति के साथ आयुर्वेद आदि में भी आचार्य चाणक्य निपुण हैं। चीन के एक राजकुमार अपनी नेत्र-पीड़ा की चिकित्सा कराने के लिए तक्षशिला आए थे । आचार्य चाणक्य ने एक सप्ताह की चिकित्सा में ही उन्हें स्पष्ट दृष्टि प्रदान की ।

चन्द्रगुप्त : यह मैं जानता हूँ, उनकी राजनीति पर मुग्ध होकर तक्षशिला शासक आम्भीक उन्हें तक्षशिला में ही रखना चाहता था । किन्तु उन्होंने वहाँ रहना स्वीकार नहीं किया । उन्होंने मुझे आश्वासन दिया था कि हम दोनों एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना करेंगे ।

यशोवर्मन : और सम्राट् ! उनका कथन अंत में कितना सत्य निकला !

चन्द्रगुप्त : सत्य क्यों न होता, मानवी हृदय को पहिचानने की अंतर्दृष्टि उनमें इतनी अधिक है कि वे एक ही क्षण में उसका सम्पूर्ण कार्यक्रम स्पष्टतः बतला सकते हैं। वे कार्य करने की शैली जानते हैं । अपूर्व शक्ति, अपूर्व साहस और अपूर्व बुद्धि का विचित्र समन्वय उनमें हुआ है ।

यशोवर्मन : वे नर-रत्न हैं, सम्राट् ! आपके सहयोग से वे राज्य को निष्कंटक बना देंगे ।

चन्द्रगुप्त : मैं भी ऐसा ही अनुमान करता हूँ, किन्तु कौमुदी महोत्सव के सम्बन्ध में भी मैं आचार्य चाणक्य से परामर्श नहीं कर सका । संग्राम की उलझनों ने अवकाश ही नहीं दिया; किन्तु इसकी सूचना तो उन्हें अवश्य मिल चुकी होगी !

वसुगुप्त : वे आपकी इच्छा का समर्थन ही करेंगे । कौमुदी महोत्सव की उपयोगिता और सामयिकता तो वे अपनी अन्तर्दृष्टि से अवश्य ही देख चुके होंगे । तो अब समय अधिक हो रहा है । सम्राट् राजनर्त्तकी के नृत्य के सम्बन्ध में क्या निर्णय करते हैं ?

चन्द्रगुप्त : उसका क्या नाम है ?

वसुगुप्त : 'अलका', सम्राट्। वह अनिंद्य सुन्दरी और अद्वितीय नृत्य-कला की सम्राज्ञी है।

चन्द्रगुप्त : मैं पहले उसे देखना चाहूँगा।

वसुगुप्त : अवश्य, सम्राट् ! वह राजप्रासाद के उत्तरी कक्ष में वेशभूषा से सुसज्जित है। आज्ञा हो तो उसे सम्राट् की सेवा में निरीक्षणार्थ उपस्थित करूँ ?

चन्द्रगुप्त : ऐसा ही हो।

वसुगुप्त : जो आज्ञा, मैं उसे अभी सम्राट् की सेवा में उपस्थित करता हूँ। (**प्रसन्नता के साथ प्रस्थान**)

चन्द्रगुप्त : अन्तपाल यशोवर्मन ! आज राजनर्त्तकी अलका का नृत्य देखकर मैं कुसुमपुर की उत्कृष्ट नृत्य-कला का परिचय पा सकूँगा।

यशोवर्मन : मैं सम्राट् की सेवा में एक निवेदन करना चाहता हूँ।

चन्द्रगुप्त : निवेदन करो।

यशोवर्मन : विलासी नंदवंश की राजनीति में यह राजनर्त्तकी अलका है।

चन्द्रगुप्त : यह राजनर्त्तकी अलका ?

यशोवर्मन : हाँ, सम्राट् ! राजनर्त्तकी के जीवन का यह सबसे बड़ा अभिशाप है कि वह नंदवंश के विनाश का कारण बनी। और इस तरह वह निर्दोष नहीं कही जा सकती।

चन्द्रगुप्त : निर्दोष ? वह सब प्रकार से दोषी कही जानी चाहिए। गौतम ने अहल्या को शाप क्यों दिया ? क्या अहल्या ने अपने सदाचार से अपने सौन्दर्य की रक्षा नहीं की थी, फिर क्यों उसने इन्द्र को नहीं पहिचाना ? शची का सौभाग्य अप्सराओं को बाँटने वाले इन्द्र की लालसा का भी परिचय चाहिए। वैसे ही क्या अलका महाराज नन्द को नहीं पहिचान सकी ? क्या महाराज नन्द की आँखों में उसके अंगराग की अरुण रेखाएँ विद्युत् बनकर नहीं चमक उठीं ? यशोवर्मन ! तुम जानते हो, आकाश की उल्का प्रकाश से ओतप्रोत रहती है; किन्तु जब वह उदित होती है तो समस्त संसार में अमंगल की आशंका क्यों होती है ?

यशोवर्मन : जब सम्राट् ऐसा सोचते हैं तो उसके नृत्य की अनुमति क्यों दे रहे हैं ?

चन्द्रगुप्त : केवल कौमुदी महोत्सव को शोभा-संपन्न करने के लिए और कुसुमपुर की जनता के मन में यह संतोष उत्पन्न करने के लिए कि सम्राट् चन्द्रगुप्त ने महाराज नन्द के आश्रितों के साथ सहानुभूति का व्यवहार किया। तुम जानते हो, यशोवर्मन ! महाराज नन्द के लिए जो विष था, उसे मैं अमृत में परिणत करना चाहता हूँ।

यशोवर्मन : सम्राट् तक्षशिला के स्नातक हैं। सम्राट् जानते हैं कि राजनीति में राज-नर्त्तकी का क्या स्थान है।

चन्द्रगुप्त : वही स्थान जो कृपाण की धार को ढकने के लिए म्यान का होता है। राज-नीति रूपी कठोर कृपाण का आतंक छिपाने के लिए राजनर्त्तकी रूपी आवरण आवश्यक है; किन्तु वह आवरण कृपाण की धार को कुंठित नहीं करता। राजनीति

की परुषता प्रजा की दृष्टि से ओझल रहना आवश्यक है।

यशोवर्मन : सत्य है सम्राट् !

चन्द्रगुप्त : किन्तु महाराज नन्द की राजनीति राजनर्त्तकी से कुंठित हो गई। तलवार ही म्यान बनकर रह गई, मैं राजनर्त्तकी को म्यान बनाकर रखना चाहता हूँ। (**रुककर**) क्या कारण है, मुझे कौमुदी महोत्सव के प्रारम्भ की सूचना तूर्य द्वारा नहीं सुन पड़ी ?

[वसुगुप्त का प्रवेश]

वसुगुप्त : सम्राट् ! राजनर्त्तकी सेवा में उपस्थित है।

चन्द्रगुप्त : उपस्थित करो ! वह मेरे कक्ष के वातावरण को संगीत और नृत्य से मुखरित करे।

वसुगुप्त : जो आज्ञा, सम्राट् ! (**प्रस्थान**)

चन्द्रगुप्त : अन्तपाल यशोवर्मन ! नृत्य और संगीत कौमुदी महोत्सव की वह प्रस्तावना है जिसमें उमंग की रूपरेखा मंगल के रंग में सुसज्जित होती है। नृत्य में ऐसी मनोहर भावनाएँ हैं जिनमें सुख का रहस्य जागता है।

[वसुगुप्त के साथ राजनर्त्तकी अलका का प्रवेश]

अलका : सम्राट् की सेवा में अलका का प्रणाम स्वीकार हो !

[अत्यन्त सुकुमार भाव से प्रणाम करती है।]

चन्द्रगुप्त : (**हाथ उठाकर**) कुसुमपुर की श्री और शोभा की अधिवासिनी बनो। (**यशोवर्मन से**) यशोवर्मन ! तुम जा सकते हो।

यशोवर्मन : जो आज्ञा, सम्राट् ! मेरा निवेदन है कि इस नृत्य-समारोह में आचार्य चाणक्य भी सम्मिलित हों।

चन्द्रगुप्त : (**हँसकर**) आचार्य चाणक्य ? राजनीति को कविता से मिलाना चाहते हो ? मुझे कोई आपत्ति नहीं। यदि चाहो तो उन्हें यहाँ भेज सकते हो। वे भी राजनीति के कुचक्रों से थक गए होंगे, उन्हें भी विश्राम की आवश्यकता होगी। राजनीति का मस्तिष्क आज नृत्य और कविता से हृदय की सहानुभूति प्राप्त करे।

वसुगुप्त : जो आज्ञा, सम्राट् ! (**प्रस्थान**)

चन्द्रगुप्त : राजनीति और कविता ! (**राजनर्त्तकी से**) क्यों राजनर्त्तकी, तुम राजनीति की ताल पर नृत्य कर सकती हो ?

अलका : सम्राट् ! अभी तक तो राजनीति ही मेरे नृत्य की ताल थी। किन्तु मैंने इसकी ओर कभी ध्यान दिया ही नहीं। राजनर्त्तकी का राजनीति से क्या सम्बन्ध, सम्राट् ! वह तो राज्य की अनुचरी-मात्र है।

चन्द्रगुप्त : (**हँसकर**) इन्हीं छद्मवेशी शब्दों से अनुचरी स्वामिनी बन जाती है। राजनर्त्तकी ! महाराज नन्द तुम पर मोहित थे या तुम महाराज नन्द पर मोहित थीं ?

अलका : सम्राट्, मुझे क्षमा करें। सच्ची नारी मोहित नहीं होना चाहती, वह आत्म-

समर्पण करना चाहती है। जो नारी मोहित होती है, वह अपने रूप का व्यापार करती है, हृदय का समर्पण नहीं।

चन्द्रगुप्त : तुम किस व्यापार में विश्वास करती हो—रूप के व्यापार में या हृदय के व्यापार में ?

अलका : हृदय का व्यापार नहीं होता, सम्राट् !

चन्द्रगुप्त : तो हृदय का समर्पण सही।

अलका : उस समर्पण की कोई भाषा नहीं होती, सम्राट् ! जिस समर्पण में भाषा होती है, वह व्यापार बन जाता है, और हृदय का व्यापार कभी नहीं होता।

चन्द्रगुप्त : पर महाराज नन्द तो हृदय का व्यापार करते थे। और उस व्यापार में वे अपना सारा साम्राज्य हार गए। क्या यह बात सत्य नहीं है ?

अलका : सत्य है, सम्राट् ! किन्तु पुरुष तो व्यापारी है, वह अपने व्यापार में सब कुछ लुटा सकता है।

चन्द्रगुप्त : पुरुषों के प्रति तुम्हारी बहुत हीन दृष्टि है, राजनर्त्तकी !

अलका : उसी प्रकार जैसे पुरुषों की नारियों के प्रति हीन दृष्टि है, सम्राट् ! वे नारी को विलासिता की सामग्री बनाकर छोड़ देते हैं।

चन्द्रगुप्त : किन्तु कोई नारी बलपूर्वक विलासिता की सामग्री नहीं बनाई जा सकती। वह अपनी विजय के लिए विलासिता की सामग्री बनती है और दोष पुरुषों को देती है।

अलका : सम्राट् राजनीति के आचार्य हैं और सेविका राजनीति के पैरों से कुचली हुई धूल है। सम्राट् ! मैं क्या निवेदन कर सकती हूँ !

चन्द्रगुप्त : किन्तु राजनर्त्तकी ! धूल भी सिर पर चढ़ सकती है।

अलका : हाँ, सम्राट् ! जब वह पैरों से ठुकराई जाती है। किन्तु सेविका का यह अधिकार नहीं।

चन्द्रगुप्त : अधिकार नहीं, राजनर्त्तकी ! यह तो उसकी गति है। गति में अधिकार का आडम्बर नहीं होता, उसमें शक्ति की विद्युत् होती है। और तुममें वह शक्ति की विद्युत् है जिसने आकाश का हृदय चीरते हुए तड़पकर नन्द जैसे विशाल शाल वृक्ष को धराशायी कर दिया।

अलका : तब तो मुझे विद्युत् की भाँति ही पृथ्वी में विलीन हो जाना चाहिए, सम्राट् !

चन्द्रगुप्त : किन्तु राजनर्त्तकी महासती सीता नहीं बन सकती जो भूमि में विलीन हो जावे। राजनर्त्तकी को राज्य का शृंगार करना पड़ता है।

अलका : यह मेरे जीवन का अभिशाप है, सम्राट् ! ऐसे फूलों का क्या सौन्दर्य जो किसी शव पर बिखेर दिए जाते हैं। आज आपके चरणों पर गिरकर मैं अपने जीवन से मुक्त हो जाऊँगी।

चन्द्रगुप्त : निराशा की बातें मत करो, राजनर्त्तकी ! तुम जानती हो, आज कौमुदी महोत्सव है। कुसुमपुर की जनता मेरे साथ आनन्द-विभोर हो जाना चाहती है। तुम्हें मधुर गायन से वातावरण को गुंजित करना है।

अलका : सम्राट् की जो आज्ञा। किन्तु आज से मैं राजनर्त्तकी का पद त्याग दूँगी और आपके चरणों की धूल में शयन कर अमर हो जाऊँगी।

चन्द्रगुप्त : राजनर्त्तकी ! तुम्हारा यह वार्त्तालाप महाराज नन्द से नहीं हो रहा, सैनिक चन्द्रगुप्त से हो रहा है। मुझे अपने चरणों की धूल वीरों की परम्परा के लिए छोड़नी है, राजनर्त्तकियों की परम्परा के लिए नहीं; किन्तु मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। कुसुमपुर के नागरिकों को नृत्य-शिक्षा दो और उसका मंगलाचरण आज कौमुदी महोत्सव में तुम्हारे नृत्य से हो। नृत्य प्रारम्भ करो, जिससे कुसुमपुर का वायुमंडल तुम्हारे नूपुरों के स्वरों का वाहक बनकर कौमुदी महोत्सव का निमंत्रण प्रत्येक दिशा में पहुँचा दे।

वसुगुप्त : अलका ! तुम्हें कुसुमपुर के आदर्श नृत्य का परिचय सम्राट् को देना है। इस समय तुम्हें ऐसा नृत्य करना है कि सम्राट् नृत्य-विभोर होकर अपने जीवन के समस्त विषाद को भूल जाएँ।

चन्द्रगुप्त : मुझे तो कोई विषाद नहीं है, वसुगुप्त !

वसुगुप्त : सम्राट् को विषाद ही क्या हो सकता है ! सम्राट् तो सैनिक हैं। सैनिकों को विषाद कैसा ! मैं तो यही कहना चाहता था कि कुसुमपुर के नागरिकों के हित-चिन्तन में लगा हुआ आपका मन जो थका हुआ है···

चन्द्रगुप्त : ठीक है, राजनर्त्तकी ! नृत्य प्रारम्भ हो।

अलका : जो आज्ञा सम्राट् की !

[प्रणाम कर नृत्य प्रारम्भ करती है। कुछ देर नृत्य करने के बाद मधुर कंठ से गीत गाती है।]

आज मधुमय कुसुमों के द्वार—
 द्वार पर है अलि का गुंजन !
सजीली थी मधुवन की गली,
समीरन धीरे-धीरे चली,
फूल के पास खिल गई कली,
और नभ से संध्या ने उतर,
 लगाया आँखों में अंजन !
आज मधुमय कुसुमों के द्वार—
 द्वार पर है अलि का गुंजन !

[थोड़ी देर तक नृत्य होता रहता है। अन्त में सम्राट् के मुख से प्रशंसा के शब्द निकलते हैं।]

चन्द्रगुप्त : बहुत सुन्दर, राजनर्त्तकी अलका ! तुम जितनी सुन्दर हो, उतना ही सुन्दर तुम्हारा नृत्य है। यह लो अपना पुरस्कार !

[चन्द्रगुप्त अपने गले से मोतियों की माला उतारते हैं। सहसा आचार्य चाणक्य का प्रवेश ।]

चाणक्य : पुरस्कार नहीं दिया जावेगा, सम्राट् !

चन्द्रगुप्त : **(आश्चर्य से रुककर)** महामंत्री चाणक्य !

चाणक्य : सम्राट् ! आग बुझ जाने पर भी आग की राख गरम रहती है, उसे तुम हाथ में नहीं उठा सकते। तुम इतने थोड़े समय में कैसे मान बैठे कि कुसुमपुर की आग इतनी शीतल भस्म हो गई है कि उसमें कुसुमों की क्यारियाँ सजाई जाएँ ?

चन्द्रगुप्त : महामन्त्री ! चन्द्रगुप्त ने कुसुमों की क्यारियों में नहीं, समरांगण में अपने जीवन का वैभव देखा है। उसने नूपुरों की झनकार में नहीं, तलवारों की झनकार में अपने जीवन का संगीत गाया है। आपने यह कैसे समझ लिया कि चन्द्रगुप्त के क्षणिक मनोविनोद में उसका समरांगण कुसुम की क्यारी बन गया ? आपको यह समझना चाहिए कि यह क्षणिक विश्राम भविष्य के युद्ध की भूमिका है।

चाणक्य : और सम्राट् चन्द्रगुप्त, यदि इस क्षणिक विश्राम में ही जीवन का अन्त हो गया तो ? तुम्हारे भविष्य के वैभव का समरांगण ही कहीं तुम्हारे शव का श्मशान बन गया तो इस विश्राम के क्षण को तुम क्या कहोगे ?

चन्द्रगुप्त : आर्य ! विश्राम के क्षणों की सीमा क्या और कितनी है, यह जानने के लिए चन्द्रगुप्त के पास पर्याप्त विवेक···

चाणक्य : **(बीच ही में)**···नहीं है। यही समझकर मैं अपने साथ सैनिक लाया हूँ। **(पुकारकर)** सैनिको ! राजनर्त्तकी और समाहर्त्ता को अपने नियंत्रण में लो।

[सैनिक नेपथ्य से निकलकर आगे बढ़ते हैं ।]

वसुगुप्त : सम्राट् ! राजमर्यादा भंग हो रही है, रक्षा कीजिए !

चन्द्रगुप्त : महामंत्री ! वसुगुप्त अपने नवीन समाहर्त्ता हैं।

चाणक्य : किन्तु इस समय वे बन्दी हैं। सैनिको, दोनों को नियंत्रण में लो। यदि कोई विरोध हो, तो बल प्रयोग हो !

वसुगुप्त : **(करुण स्वर में)** मैं निर्दोष हूँ, मैं निर्दोष हूँ, सम्राट् ! महामंत्री ! मैं निर्दोष हूँ।

अलका : **(अत्यन्त करुण स्वर में)** मेरा स्पर्श कोई न करे। मैं नारी हूँ। नारी की मर्यादा सुरक्षित हो, सम्राट् ! नारी की मर्यादा सुरक्षित हो। मैं स्वयं नियंत्रण में होती हूँ। हाय, नारी नियंत्रण में, जीवन-भर नियंत्रण में ! **(विह्वल हो जाती है।)**

चन्द्रगुप्त : **(आगे बढ़कर)** आर्य चाणक्य !···

चाणक्य : कुछ मत कहो इस समय, सम्राट् चन्द्रगुप्त ! चाणक्य अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह समझता है। सैनिको ! दोनों को नियंत्रण में लेकर दूसरे कक्ष में जाओ !

सैनिक : जो आज्ञा ! **(दोनों को बन्दी कर सैनिकों का प्रस्थान)**

चन्द्रगुप्त : यह राजमर्यादा की सबसे बड़ी अवहेलना है, महामन्त्री ! जिस राजमर्यादा

की पूजा हमने रक्त चढ़ाकर की है, उसी राजमर्यादा को तुच्छ सैनिक अपने पैरों की धूल से कलंकित करें ! यह कैसी राजनीति है ? आज कौमुदी महोत्सव के अवसर पर···

चाणक्य : कौमुदी महोत्सव ?

चन्द्रगुप्त : हाँ, कौमुदी महोत्सव। क्या आपने मेरी घोषणा नहीं सुनी ?

चाणक्य : वह सुनने योग्य नहीं थी।

चन्द्रगुप्त : आप राजमर्यादा का इतना अपमान कैसे कर रहे हैं, महामन्त्री ! कौमुदी महोत्सव की घोषणा कुसुमपुर में मेरी प्रथम राजघोषणा है।

चाणक्य : वह राजघोषणा प्रारम्भ होने से पूर्व ही समाप्त हो गई।

चन्द्रगुप्त : (**आश्चर्य से**) समाप्त हो गई ! किसने यह साहस किया ?

चाणक्य : मैंने, आर्य चाणक्य ने।

चन्द्रगुप्त : इसीलिए मुझे घोषणा का तूर्य नहीं सुन पड़ा। तो आपने कौमुदी महोत्सव की घोषणा नहीं होने दी ?

चाणक्य : नहीं, मैंने ही घोषणा नहीं होने दी।

चन्द्रगुप्त : मैं कारण जानना चाहता हूँ।

चाणक्य : मैं कारण नहीं बतला सकता।

चन्द्रगुप्त : सम्राट् कौन है, चन्द्रगुप्त या चाणक्य ?

चाणक्य : चन्द्रगुप्त।

चन्द्रगुप्त : फिर सम्राट् चन्द्रगुप्त की आज्ञा की अवहेलना क्यों हो रही है ?

चाणक्य : इसलिए कि वह आज्ञा किसी मचले बालक के हठ की तरह है।

चन्द्रगुप्त : फिर भी उसकी रक्षा होनी चाहिए।

चाणक्य : नहीं, बालक आग पकड़ना चाहता है। उसे आग पकड़ने की सुविधा नहीं दी जा सकेगी।

चन्द्रगुप्त : यह तुम्हारा गर्व है, महामन्त्री !

चाणक्य : यह तुम्हारा अज्ञान है, सम्राट् !

चन्द्रगुप्त : (**क्रुद्ध होकर**) महामन्त्री ! कुसुमपुर की विजय में तुम्हारा हाथ रहा है, तो क्या इतनी छोटी-सी विजय ने ही तुम्हारे गर्व की चिनगारी को फूँक मारकर लपट में परिवर्तित कर दिया ? यह गर्व उस चिता की ज्वाला है जिसमें तुम्हारी राजनीति जलकर भस्म हो सकती है !

चाणक्य : मुझे इसकी चिन्ता नहीं है, सम्राट् ! गर्व मेरे अन्तःकरण का अधिकार है। वह राज्य से अनुशासित नहीं है। किन्तु मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि चाणक्य के गर्व की चिनगारी स्वर्ग के राज्य को प्राप्त करके भी लपट नहीं बनेगी। हाँ, अपमान के हल्के झोंके से ही यह दावाग्नि बनकर तुम्हारे वैभव के नन्दन वन को क्षण-भर में भस्म कर सकती है। क्या तुम नन्दवंश के विनाश की पुनरावृत्ति देखना चाहते हो ?

चन्द्रगुप्त : आर्य चाणक्य ! सैनिक चन्द्रगुप्त विलासी नन्द नहीं है जो पतन के गर्त के

मुख पर खड़ा होकर हलकी-सी राजनीति के धक्के की प्रतीक्षा करे। मौर्य चन्द्रगुप्त हिमाद्रि की तरह सुदृढ़ है, जिसे महामन्त्री चाणक्य की कुटिल राजनीति रूपी आँधियों के झोंके एक कण-भर भी विचलित नहीं कर सकते।

चाणक्य : मौर्य चन्द्रगुप्त ! क्षत्रियत्व क्या इतना पतित हो गया कि वह ब्राह्मणत्व पर पदाघात करे ! क्या तुम जानते हो कि मौर्य हिमाद्रि की भाँति सुदृढ़ कैसे हो पाया ? उसकी सुदृढ़ता को धारण करने वाली पृथ्वी इसी ब्राह्मण की राजनीति है। यदि वह शक्ति एक क्षण के लिए अलग हो जाए तो हिमाद्रि इतने वेग से नीचे गिरेगा कि वह अपने साथ समीपवर्ती वृक्षों को भी लेकर समुद्र-तल में चला जाएगा और जब समुद्र की तरंगें इसी ब्राह्मण के चरणों में लोटने के लिए आवेंगी तब यह ब्राह्मण उस ओर देखेगा भी नहीं।

चन्द्रगुप्त : आर्य चाणक्य ! संसार में जितने प्रतापशाली राज्य हुए हैं क्या वे सब महा-मंत्री चाणक्य की राजनीति के बल पर ही हुए हैं और जहाँ महामन्त्री चाणक्य नहीं हैं, वहाँ किसी राज्य की स्थापना भी नहीं है ? क्या सारे राज्यों की शक्ति महामन्त्री चाणक्य की शक्ति से ही भिक्षा माँगकर संसार में चली है और क्या चन्द्रगुप्त इतना हीन है कि उस शक्ति के बल पर ही विजय प्राप्त करता है ? तब जाने दो ऐसी शक्ति को। उसे मैं आज ही दूर करता हूँ। महामन्त्री चाणक्य ! तुम महामन्त्री पद से मुक्त किए गए।

चाणक्य : मौर्य ! लो अपना अस्त्र। (**फेंक देते हैं**) यह कलंक इसी समय दूर करता हूँ। राजमन्त्री राक्षस की राजनीति के कुचक्र में आने वाले चन्द्रगुप्त ! क्या मैं अपनी शिखा खोलकर फिर विनाश की प्रतीक्षा करूँ ? जिस ब्राह्मण की शिखा-सर्पिणी ने नन्दवंश को एक ही दंशन में समाप्त कर दिया, क्या मौर्य भी उस सर्पिणी पर हाथ रखना चाहता है ? जिस चन्द्रगुप्त को अपना आत्मीय समझ कर कुसुमपुर के सिंहासन पर आरूढ़ कराया, उसी चन्द्रगुप्त के विनाश से क्या श्मशान को सुसज्जित करूँ ? वाह रे ब्राह्मण ! ब्रह्मज्ञान में जीवित रहने वाला आज राज्य के कुचक्रों से लांछित हो रहा है। आज अपने सृष्टि-सागर का विष मैं ही पी रहा हूँ, किन्तु चन्द्रगुप्त ! मुझमें कालकूट को भी पी जाने वाले नील-कंठ की शक्ति है। समझते हो ?

चन्द्रगुप्त : समझता हूँ चाणक्य (**शस्त्र उठाते हुए**) यह शस्त्र अब मेरे अधिकार में है। आज से मैं समस्त राजनीति अपने बाहुबल में केन्द्रित कर कुसुमपुर का शासन करूँगा और विद्रोह के सर्पों को जलाने के लिए महायज्ञ करूँगा।

चाणक्य : करो, इसी समय से करो वह महायज्ञ और उसमें तुम भी विनष्ट हो जाओ ! आज कौमुदी महोत्सव करो और अपने नवीन समाहर्त्ता और राजनर्त्तकी के रूप में अपनी मृत्यु को निमन्त्रण दो।

चन्द्रगुप्त : मेरे आनन्दोत्सव से ईर्ष्या करने वाले चाणक्य ! तुम यही कहो। ब्राह्मण को इन ऐश्वर्यों से द्वेष होना स्वाभाविक है।

चाणक्य : आत्मचिन्तन में जो ऐश्वर्य है, क्षत्रिय, वह इन तुच्छ भड़कीले वैभवों में नहीं है

और वह वैभव जो अपने साथ मृत्यु लिए हुए है ! शत्रु के गुप्तचरों और विष-कन्याओं पर विश्वास करने वाला सम्राट् एक ही पदक्षेप में मृत्यु का आलिंगन उसी भाँति करता है जैसे एक ही उछाल से पतिंगा दीपशिखा के भीतर जलती हुई मृत्यु में भस्म हो जाता है। तुम भी भस्म हो जाओ और अपने वैभव का जला हुआ धुआँ अपने पीछे छोड़ जाओ !

चन्द्रगुप्त : अपनी राजनीति में अविश्वासी बने हुए चाणक्य ! तुम प्रत्येक व्यक्ति को गुप्तचर और प्रत्येक नारी को विषकन्या समझ सकते हो। राज्य-सीमा की रेखा पर रेंगती हुई तुम्हारी आँखों की पुतलियाँ काले कीड़े की तरह केवल निरीह जीवों की हिंसा करना ही जानती हैं। महामन्त्री की विशेषता···

चाणक्य : महामंत्री मत कहो, मौर्य ! मैं अब तुम्हारा महामंत्री नहीं हूँ। मैं भी तुम्हें सम्राट् नहीं कह रहा हूँ। मैं केवल एक ब्राह्मण हूँ। वह ब्राह्मण जिसकी शिखा बहुत दिनों तक खुली रही और वह तभी बाँधी गई जब उसने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार नन्दवंश का विनाश कर दिया। अब उसके सामने केवल दो ही मार्ग हैं। या तो वह पुनः अपनी शिखा खोलकर मौर्यवंश के विनाश की प्रतिज्ञा करे या क्षितिज की भाँति अपनी बाहुओं को फैलाकर नक्षत्रों के नेत्रों से विश्वंभरा पृथ्वी को अपनी करुणा और शांति से सींचे। तब समस्त सृष्टि में उसका राज्य होगा, पशु-पक्षी उसके सहचर होंगे और वायु के झकोरों में झूमकर साम गान करता हुआ तुम्हें क्षमा करेगा।

चन्द्रगुप्त : यह तपोवन नहीं है, आर्य ! और चन्द्रगुप्त क्षमा का न तो पात्र है, न अभिलाषी। अब तपोवन के होमकुण्ड में हिंसा करो या कुश-कंटक चरने वाले हरिणों को क्षमा करो; किन्तु जाने के पूर्व अपने नवीन समाहर्त्ता वसुगुप्त तथा राज-नर्त्तकी अलका पर लगाए हुए लांछन का निराकरण करना होगा। और यदि यह लांछन असत्य निकला तो राज्य का दण्ड-विधान अपराधी को पहचानता है। यह मेरा अन्तिम आदेश है।

चाणक्य : अपने नवीन महामन्त्री को प्रथम आदेश दो, मौर्य ! मैं तुम्हारे समक्ष सत्य के उद्घाटन के लिए बाध्य नहीं हूँ।

चन्द्रगुप्त : जो ब्राह्मण सत्य के उद्घाटन को अपना धर्म न समझे, उसे मैं किस संज्ञा से सम्बोधित करूँ ?

चाणक्य : सत्य का उद्घाटन मैं अपनी इच्छा से कर सकता हूँ। किन्तु इस उद्घाटन के अनन्तर मैं एक क्षण भी यहाँ नहीं ठहर सकूँगा। यह वातावरण अभिशाप बनकर मेरे रोम-रोम में तीव्र प्रतिहिंसा की ज्वाला उत्पन्न कर रहा है।

चन्द्रगुप्त : सर्वप्रथम प्रमाण उपस्थित किया जाए।

चाणक्य : (पुकारकर) सैनिक !

[सैनिक का प्रवेश]

सैनिक : आज्ञा, महाराज !

चाणक्य : समाहर्त्ता वसुगुप्त और राजनर्त्तकी अलका को उपस्थित करो।

सैनिक : जो आज्ञा। **(प्रस्थान)**

चाणक्य : चन्द्रगुप्त ! प्रजा के संस्कार जल्दी नहीं छूटते। इस समय भी महाराज नन्द से सहानुभूति रखने वाले व्यक्ति कुसुमपुर में विद्रोह की लपटों के स्फुलिंग बने हुए हैं। राजमन्त्री राक्षस कुसुमपुर के नागरिकों में अविश्वास के बीजों पर अपनी नीति का जल सींच रहा है। कुसुमपुर के समस्त कार्यों में षड्यन्त्र का जाल जयकार के छद्मवेश में चारों ओर घूम रहा है और तुम कौमुदी महोत्सव में असावधान होकर विषकन्या का स्पर्श करना चाहते हो, चन्द्रगुप्त ! मैं अपने निस्पृह नेत्रों में सब कुछ देख रहा हूँ और तुम देखकर भी कौमुदी महोत्सव की शीतलता में हलाहल पान करने जा रहे हो ! मैं फिर यही कहना चाहता हूँ··· **(सैनिक का वसुगुप्त और अलका के साथ प्रवेश)** अच्छा ! समाहर्त्ता वसुगुप्त और राजनर्त्तकी अलका! सैनिक ! तुम जाकर द्वार पर अपना स्थान ग्रहण करो। **(सैनिक का प्रणाम कर प्रस्थान। वसुगुप्त को सम्बोधित करते हुए)** समाहर्त्ता वसुगुप्त ! मुझे दुःख है कि मैंने तुम्हें सैनिकों के नियंत्रण में रखा। मैं जानता हूँ कि तुम सम्राट् चन्द्रगुप्त के विश्वासपात्र नवीन समाहर्त्ता हो।

वसुगुप्त : मैं समाहर्त्ता नहीं हूँ, महामन्त्री ! यदि समाहर्त्ता होता तो सम्राट् समाहर्त्ता का अपमान इस भाँति नहीं देख सकते थे।

अलका : (करुण स्वर में) और नारी का अपमान आज तक कुसुमपुर के कक्ष में नहीं हुआ, मैं अपमानित नहीं हुई हूँ, सम्राट् !

चन्द्रगुप्त : (दृढ़ता से) निस्सन्देह ! मैं दोनों के अपमान का प्रतिकार करूँगा।

चाणक्य : (वसुगुप्त से) सम्राट् से तुमने आश्वासन पा लिया है, समाहर्त्ता। और **(राजनर्त्तकी से)** राजनर्त्तकी ! तुम्हें भी सम्राट् के बाहुओं की शीतल छाया प्राप्त हो चुकी है; किन्तु **(वसुगुप्त से)** मैं भी जानना चाहता हूँ, समाहर्त्ता ! राजनर्त्तकी से तुम्हारा परिचय कितना पुराना है ?

वसुगुप्त : मैं राजनर्त्तकी का नाम भी नहीं जानता, महामन्त्री ! मुझे तो कौमुदी महोत्सव की घोषणा के कुछ समय पूर्व राजनर्त्तकी का परिचय मिला।

चाणक्य : तुम कुसुमपुर के निवासी हो, समाहर्त्ता !

वसुगुप्त : कुसुमपुर के एक ग्राम अमरावती का निवासी हूँ। मैं वहाँ का अन्तपाल था।

चाणक्य : तो तुम कुसुमपुर में कब से निवास करते हो ?

वसुगुप्त : मैंने कहा न, महामन्त्री ! मैं कुसुमपुर का नहीं, अमरावती का निवासी हूँ।

चाणक्य : सम्राट् चन्द्रगुप्त ने तुम्हें कुसुमपुर में पाया या अमरावती में ? उन्होंने तुम्हें अपना समाहर्त्ता बनाने में तो कुसुमपुर की नागरिकता को ही ध्यान में रखा होगा ?

वसुगुप्त : मैं कुसुमपुर में निवास नहीं करता, महामन्त्री ! मैं अमरावती से कुसुमपुर आया अवश्य करता हूँ।

चाणक्य : वर्ष में कितनी बार आया करते हो ?

वसुगुप्त : मैं कह नहीं सकता ।

चाणक्य : (**कठोर स्वर में**) प्रश्न की अवहेलना नहीं हो सकती । ठीक उत्तर दो ।

वसुगुप्त : महाराज नन्द के प्रमुख उत्सवों में आया करता था ।

चाणक्य : गत वर्ष वसंतोत्सव में सम्मिलित हुए थे ? अमरावती के अन्तपाल ?

वसुगुप्त : हाँ, महामन्त्री !

चाणक्य : वसन्तोत्सव में राजनर्त्तकी अल्का ने नृत्य किया था । तुमने उसे देखा था ?

वसुगुप्त : हाँ, महामंत्री ।

चाणक्य : तब तुम अलका के नाम से परिचित हो ?

वसुगुप्त : हाँ, महामन्त्री ।

चाणक्य : अभी तुमने कहा कि मैं अलका का नाम भी नहीं जानता और कहा कि कौमुदी महोत्सव के कुछ समय पूर्व राजनर्त्तकी का परिचय मिला ।

वसुगुप्त : मैं राजनीति की बातें प्रकट नहीं करता ।

चाणक्य : (**हँसकर**) बड़े राजनीतिज्ञ हो । अच्छा, राजनीति की बातें मत कहो । सीधा उत्तर दो, तुम राजमन्त्री राक्षस के गुप्तचर कब हुए ?

वसुगुप्त : महामन्त्री ! मैं दुष्ट राक्षस को जानता भी नहीं हूँ ।

चाणक्य : उसी तरह जिस तरह तुम राजनर्त्तकी को नहीं जानते थे ?

वसुगुप्त : (**चन्द्रगुप्त से**) सम्राट् ! मेरे सम्मान की रक्षा कीजिए ।

चन्द्रगुप्त : मैं रक्षा करूँगा । पहले महामन्त्री आचार्य चाणक्य के प्रश्नों के उत्तर दे दो ।

वसुगुप्त : मैं उत्तर देने में असमर्थ हूँ, सम्राट् ! कौमुदी महोत्सव के इस अवसर पर मैंने अधिक आसव पान कर लिया है । इसी कारण मेरे उत्तर ठीक नहीं हैं ।

चाणक्य : कोई हानि नहीं, समाहर्त्ता ! मैं तुम्हें और भी आसव पान करने के लिए दूँगा, जिससे तुम्हारे लिए यह कौमुदी महोत्सव और भी मंगलमय हो ।

वसुगुप्त : मैं अधिक आसव पान करना राजधर्म के प्रतिकूल समझता हूँ, महामंत्री !

चाणक्य : अभी तुमने कहा कि अधिक आसव पान करने के कारण मैं ठीक उत्तर नहीं दे सकता । अब कहते हो, मैं अधिक आसन पान करना राजधर्म के प्रतिकूल समझता हूँ ।

वसुगुप्त : मैं राजनीति के रहस्य आपके समक्ष खोलने में असमर्थ हूँ ।

चाणक्य : बार-बार राजनीति ! प्रत्येक प्रश्न में राजनीति ! राज्य का समाहर्त्ता राज्य के महामंत्री से राजनीति के रहस्य नहीं कहना चाहता ? और आसव पान करने में भी तुम्हारी राजनीति है ! हाँ, तुम्हारी नहीं, मेरी है । समाहर्त्ता ! यदि तुम नहीं चाहते तो मैं तुमसे राजनीति के रहस्य खोलने के लिए नहीं कहूँगा । कविता की बातें कहूँगा । कविता की बातें कर सकते हो ? उत्तर दो ! जो आसव वन्य कुसुमों की सुगन्धि लिए हुए है, वह इतना मादक क्यों होता है ?

वसुगुप्त : मैं नहीं जानता, महामंत्री !

चाणक्य : तुम नहीं जानते, मैं जानता हूँ । जो आसव वन्य कुसुमों की सुगन्धि लिए हुए है वह इतना मादक इसलिए है कि उसे सुन्दरियाँ अपने हाथ से पान कराती हैं,

ऐसी सुन्दरियाँ जिनके नेत्रों में आसव है। वे तुम्हारे आसव को देखते हुए अपने नेत्रों का आसव उसमें ढालकर उसे और भी मादक बना देती हैं।

वसुगुप्त : आप तो राजनीति और कविता दोनों में पारंगत हैं, महामंत्री !

चाणक्य : चाणक्य की सूखी शिराओं में कविता कहाँ ! किन्तु तुम्हारी इच्छानुसार मैं राजनीति के रहस्यों के बदले तुम्हें कविता देना चाहता हूँ। एक बात और पूछूँ ? सुन्दरियों के नेत्रों में अधिक मादकता है या अधरों में ?

वसुगुप्त : इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है, महामंत्री !

चाणक्य : राजनीति के रहस्यों से भी कठिन, समाहर्त्ता ! जिसमें तुम पारंगत हो। अमरावती के अन्तपाल और महाराज नन्द के वसंतोत्सव में सम्मिलित होने वाले वसुगुप्त के लिए यह प्रश्न कठिन नहीं है। महाराज नन्द के वसंतोत्सव में 'अनंग-क्रीड़ा' का आयोजन हुआ था ?

वसुगुप्त : हाँ, महामंत्री !

चाणक्य : और तुम उसमें सम्मिलित हुए थे। तब तो तुम जानते ही होगे की सुन्दरियों के नेत्रों से अधिक अधरों में मादकता होती है। होती है समाहर्त्ता ? (**तीव्र स्वर में**) उत्तर दो।

वसुगुप्त : हाँ, महामंत्री !

चाणक्य : तो जो आसव सुन्दरियाँ अपने अधरों से लगाकर देती हैं उसमें और भी अधिक मादकता होती है ? (**तीव्र स्वर में**) उत्तर दो।

वसुगुप्त : हाँ, महामंत्री !

चाणक्य : अब मुझे तुमसे कोई प्रश्न नहीं पूछना। तुमसे इतने प्रश्न पूछकर मैंने तुम्हें जो कष्ट दिया है, उसके लिए मैं तुम्हें पुरस्कार देना चाहता हूँ। और वह पुरस्कार यह है कि तुम राजनर्त्तकी अलका के अधरों से स्पर्श किए गए मादक आसव का एक घूँट···

अलका : (**विह्वल होकर**) क्षमा कीजिए, महामंत्री ! मैं आसव का स्पर्श नहीं करूँगी। आज तक न मैंने आसव पान किया है और न पान कराया है। मैं क्षमा की भीख माँगती हूँ, महामन्त्री !

चाणक्य : कौमुदी महोत्सव में पुरस्कार मिलता है, देवी ! भीख नहीं। (**पुकारकर**) सैनिक ! (**सैनिक का प्रवेश**) आसव का एक चषक उपस्थित करो।

सैनिक : जो आज्ञा ! (**प्रस्थान**)

अलका : (**बिलखकर**) महामंत्री ! मेरा जीवन अभिशाप से परिपूर्ण है। मैं राजनर्त्तकी बनकर नारी भी नहीं रह पाई। मैं संसार की सबसे बड़ी विडंबना हूँ, मैं पाप की कालिमा हूँ, मैं गौरव की ज्वाला हूँ। मैं···मैं···

चाणक्य : नहीं, देवी ! तुम महाराज नन्द की नर्त्तकी हो। अनिद्य सुन्दरी, कलापूर्ण नृत्य की सम्राज्ञी ! हाँ, मुझे दुःख है कि तुम्हारा जीवन···(**सैनिक चषक लेकर आता है**) क्या ले आए चषक ? हाँ, मैं अपने साथ ही तो लाया था आसव और चषक। लो, तुम इसका पान करो, राजनर्त्तकी !

अलका : महामंत्री ! मुझे आसव पान न कराओ, मुझे विष दे दो, भयानक हलाहल दे दो, उससे शान्ति मिलेगी। मेरी जिह्वा पर सर्प-दंशन चाहिए, सर्प-दंशन, सर्प-दंशन, महामंत्री !

चाणक्य : सर्प-दंशन तुम्हें नहीं चाहिए, राजनर्त्तकी ! किसी और को चाहिए। (**सैनिक से**) सैनिक ! बलपूर्वक यह आसव राजनर्त्तकी को पान कराओ ! (**सैनिक राजनर्त्तकी को बलपूर्वक आसव पान कराता है। अनिच्छापूर्ण लड़खड़ाती हुई साँस में मदिरा पान करने की आवाज़**) बस, रहने दो। (**सैनिक राजनर्त्तकी के अधरों से चषक हटाता है**) अब यह आसव राजनर्त्तकी के अधरों को छूकर और भी मादक बन गया। अब कौमुदी महोत्सव के समाहर्त्ता वसुगुप्त को उनका पुरस्कार चाहिए। सैनिक ! यह शेष आसव समाहर्त्ता वसुगुप्त पान करेंगे।

वसुगुप्त : सम्राट् ! मेरी रक्षा कीजिए। मैं यह आसव पान नहीं करूँगा, नहीं करूँगा।

चाणक्य : सैनिक ! वसुगुप्त को शेष आसव बलपूर्वक पान कराओ।

[सैनिक बलपूर्वक आसव पान कराते हैं। घुटते हुए कंठ की आवाज़।]

वसुगुप्त : (**लड़खड़ाते शब्दों में**) ओह ! घोर···हलाहल···आग···की···ज्वाला ! सर्प-दंशन···सर्प···दंशन···महामंत्री, चाणक्य ! तुम···राज···मंत्री···राक्षस···पर···विजयी···हुए। कौमुदी महो···त्···सव···नहीं···हो···सका···राजमंत्री राक्षस ने···जो···योजना···बनाई···थी···राजनर्त्तकी···राजनर्त्तकी सुवासिनी ने ···स्वयं···नृत्य···न कर···अलका··· के द्वारा···जो षड्यंत्र किया···वह···वह निष्फल हुआ···अलका···मुझे···क्षमा। कौमुदी···महो···त्···सव···कौ···मु ···दी···म···हो···त्···स···व ! नहीं···नहीं···हो···सका···

[प्राण छूट जाते हैं।]

चन्द्रगुप्त : ओह, विषकन्या है ! राजनर्त्तकी विषकन्या है ! अधरों से स्पर्श किया गया आसव···हलाहल···बन गया ! समाहर्त्ता···

चाणक्य : समाहर्त्ता अब इस संसार में नहीं है, चन्द्रगुप्त ! अब अलका···

अलका : सम्राट् ! क्षमा कीजिए। महामंत्री ! प्राणों की भिक्षा दीजिए। मैं निर्दोष हूँ, सम्राट् ! मैं आपके चरण चूमकर···

[चरणों पर गिरने के लिए आगे बढ़ती है।]

चाणक्य : पीछे हटो ! पीछे हटो, चन्द्रगुप्त ! (**चन्द्रगुप्त पीछे हटते हैं**) यह तुम्हारे पैरों में अपने दाँत चुभाकर तुम्हें मृत्यु-मुख में ढकेल देगी। यह इसका अन्तिम प्रयोग है। नारी रूप में भयानक सर्पिणी विषकन्या ! राजमंत्री राक्षस ने कौमुदी महोत्सव का प्रस्ताव वसुगुप्त से कराकर असावधान चन्द्रगुप्त को विषकन्या के प्रयोग से नष्ट करने की चाल सोची थी। सैनिको ! राजनर्त्तकी को बन्दी करो। इसका प्रयोग शत्रु पर ही किया जाएगा। (**सैनिक राजनर्त्तकी को बन्दी करते हैं**)

समाहर्त्ता वसुगुप्त राक्षस का गुप्तचर था और राजनर्त्तकी अलका विषकन्या। इस सत्य का उद्‌घाटन मैंने अपनी इच्छा से किया है और इस उद्‌घाटन के अनन्तर मैं एक क्षण भी यहाँ नहीं ठहर सकूँगा। मेरा मार्ग छोड़ दो। हटो ! तपोवन मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। चन्द्रगुप्त ! अपने विश्वासपात्र समाहर्त्ता वसुगुप्त का अन्तिम संस्कार और कौमुदी महोत्सव का आयोजन दोनों साथ-साथ करो और अपना राज्य सँभालो ! **(प्रस्थान)**

चन्द्रगुप्त : (विह्वल स्वरों में) आर्य चाणक्य ! महामंत्री चाणक्य ! चन्द्रगुप्त को तुम्हारी आवश्यकता है। महामंत्री चाणक्य के विना यह राज्य नष्ट हो जाएगा, चन्द्रगुप्त नष्ट हो जाएगा। महामंत्री चाणक्य ! कौमुदी महोत्सव नहीं होगा। **(चाणक्य के पीछे शीघ्रता से जाते हैं। उनकी ध्वनि क्रमशः क्षीण होती सुनाई पड़ती है)** कौमुदी महोत्सव नहीं होगा !···कौमुद्री महोत्सव नहीं होगा !!··· कौमुदी महोत्सव नहीं होगा !!!

[धीरे-धीरे परदा गिरता है।]

□

संत तुलसीदास

दो शब्द

डाक्टर रामकुमार की पुस्तकों पर भूमिका लिखने में मुझे बड़ा संकोच होता है। वह इतने प्रकांड विद्वान तथा महान प्रतिभासंपन्न हैं कि उनकी कृतियों के लिए वही न्याय कर सकता है जिसमें ये दोनों ही गुण हों। अभी गत वर्ष मैंने उनका 'उत्तरायण' महाकाव्य पढ़ा था और इस वर्ष मुझे उनका 'संत तुलसीदास' सुनने तथा पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। नाट्य-क्षेत्र में तो सचमुच डा० रामकुमार पूर्ण सम्राट् की गौरव-गरिमा के साथ विचरण करते हैं। उनके पाठकों ने उन्हें 'एकांकी सम्राट्' की उपाधि यों ही नहीं दी। हिन्दी में निःसन्देह एकांकी को इतने उच्च स्तर पर उन्होंने उठाया, पर उनके बहु-अंकी नाटक भी उतने ही पूर्ण तथा प्रभावशाली हैं। नाट्य तथा अभिनय-कला के मर्मज्ञ होने के कारण उनकी प्रतिभाशाली लेखनी नाट्य-जगत में जिस सहज भाव से महान कृतियों का अवतरण कराती है, उसे देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है।

महाकवि संत तुलसीदास के जीवन में जैसा संघर्ष रहा है और उनके कृतित्व ने उनके यशःकाय को जिस प्रकार जरा-मरण के भय से मुक्त बनाया है, उन जीवन-परिस्थितियों तथा प्रातिभ चेतना के विकट द्वन्द्व को नाटक के रूप में भावों के गम्भीर उत्थान-पतन तथा कला की मितव्ययिता के साथ प्रस्तुत-प्रदर्शित करना महान साहस का कार्य है जो डा० रामकुमार की रस-सिद्ध लेखनी ही से संभव हो सकता था। इस नाटक के प्रत्येक अंक में तुलसी के जीवन, भाव-संघर्ष तथा आत्मविश्वास के ऐसे मार्मिक स्थलों का रहस्योद्घाटन हुआ है जो मानव-मन की श्रद्धा-आस्था पर एक अद्भुत, अनिर्वचनीय तथा प्रेरणाप्रद प्रभाव छोड़े बिना नहीं रहता।

रत्नावली के प्रति युवक तुलसी का अगाध प्रेम किस प्रकार राम की अनन्य तन्मय भक्ति में परिणत हुआ और पारिवारिक जीवन की मर्यादा से प्रेरित पतिप्राणा पत्नी के भावनामय उपदेशों ने किस प्रकार 'रामबोला' के हृदय में मंथन पैदा किया उसका दिग्दर्शन भी लेखक ने अत्यन्त सुज्ञ तथा मार्मिक ढंग से किया है। उस युग के वातावरण तथा चरित्रनायक की मानसिक स्थिति का चित्रण इतनी कुशलता से संपन्न हुआ है कि महाकवि तुलसी की जीवन-साधना का दृश्य आँखों के सम्मुख प्रत्यक्ष रूप में खड़ा हो उठता है।

तुलसी जन-मानस के कवि हैं इसलिए डा० रामकुमार ने इस नाटक में लोक-

तत्त्व का नियोजन बड़े स्वाभाविक ढंग से किया है। परिस्थिति को स्वाभाविक और मनोरंजक बनाने के लिए नाटककार प्रायः विनोद या व्यंग्य का आश्रय लेते हैं किन्तु आवश्यक यह है कि यह विनोद या व्यंग्य अस्वाभाविक और सायास न हो। डा० रामकुमार ने इस प्रयोग को अपनी प्रतिभा से और भी आगे बढ़ाया है। वह हास्य या व्यंग्य का प्रयोग इस ढंग से करते हैं कि उससे परिस्थिति न केवल अनुरंजक बनती है प्रत्युत उसके माध्यम से उदात्त की संपुष्टि भी हो जाती है। इस प्रकार डा० रामकुमार के हास्य से नाटक की कथावस्तु में मनोरंजन के साथ परिस्थितिजन्य उदात्त भावना भी बनी रहती है। विनोद के माध्यम से उदात्त की संपुष्टि नाटककार के शिल्प की कसौटी है। इस नाटक में 'जागेसुरी पंडित' विनोदी पात्र होते हुए भी नाटक में कुतूहल की सृष्टि करता है। उसकी हीनता ही प्रकारान्तर से उदात्त की संपुष्टि करती चलती है।

मानस चतुःशती के सम्बन्ध में इधर अनेक प्रकार के आयोजन तथा समारोह देश-भर में हुए हैं। किन्तु डा० रामकुमार के कवि-हृदय की इस अप्रतिम भावभीनी श्रद्धांजलि के महत्त्व को इनके बीच आँकना संभव नहीं। उनका यह स्वल्प कृतित्व भी असंदिग्ध रूप से अपने चरित्रनायक के ही समान जरा-मरण-भय से ऊपर है। डा० रामकुमार का समस्त परिवार श्रीरामचन्द्रजी का भक्त तथा उपासक है, उन्हें भी भगवत्कृपा के कण प्राप्त हैं अन्यथा वह ऐसी सरल भाषा में सीधे-सादे ढंग से इतनी महान प्रभावशाली कृति का सृजन करने में समर्थ नहीं होते। इस नाटक को पढ़ने के बाद मैं डा० रामकुमार से यही आग्रह करता हूँ कि "नयी चेतना के वैभव से गढ़ो नया मन, भाव-बोध-गरिमा से मंडित हो जग-जीवन।" एवमवस्तु!

—सुमित्रानन्दन पन्त

अपनी बात

मेरे शैशव के संस्कारों में रामचरितमानस का विशिष्ट स्थान है। मेरे पूज्य पिताजी रामलीला करने वाली मंडलियों को अपने घर पर आमंत्रित करते थे और हमारे बंगले के सामने ही रामलीला हुआ करती थी। संत तुलसीदास का रामचरितमानस तबले और हारमोनियम के साथ बड़े मधुर कंठ से गाया जाता था और बच्चे उसमें अपना सुर मिलाया करते थे। हम लोग राम और सीता बने हुए बालकों से बातें करते थे और अगर वे अपने सजे वेश में कभी मुस्करा देते थे तो हमारे हृदय में आनन्द की धारा बह जाती थी। कुछ बड़े होने पर पिताजी हम लोगों से भोजन के अनन्तर रामचरितमानस का स्वर से पाठ कराया करते थे और हम लोगों से अनेक प्रसंग कंठस्थ कर लेने को कहते थे। तभी से हमारे जीवन में रामचरितमानस का विशेष महत्त्व हो गया था। यहाँ तक कि रामटेक (नागपुर) में लोगों ने कहा कि एक लड़की के सिर पर एक चुड़ैल आ गई। वह बड़े ज़ोरों से अपना सिर हिलाती है। पिताजी ने कहा कि रामचरितमानस के बालकांड का सत्रहवाँ सोरठा पढ़ो :

बंदउँ पवनकुमार, खल वन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम सर चाप धर।।

मैंने यह सोरठा पढ़ा और थोड़ी देर में उस लड़की के सिर से चुड़ैल भाग गई। तब से रामचरितमानस पर मेरे बाल-हृदय में आस्था हो गई।

हाई स्कूल में मानस का अयोध्या कांड, बी० ए० में बाल कांड और एम० ए० में सम्पूर्ण मानस पढ़ा। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्राध्यापक होने पर एम० ए० के छात्रों को संत तुलसीदास का विशेष अध्ययन कराया और हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास लिखने में संत तुलसीदास पर दो सौ से अधिक पृष्ठ लिखे। 'तुलसी के लोकतत्त्व' पर शोध-प्रबन्ध भी लिखाया। आगे चलकर दीक्षा-गुरु पं० रामदयाल पुराणिकजी से रामचरितमानस सामने रखकर गुरु-दीक्षा ग्रहण की। वह संत तुलसीदास के कृतित्व के साथ मेरे साहचर्य का संक्षिप्त इतिहास है।

श्री दशरथ के अजिर में विहार करने वाले श्रीराम 'मंगल भवन अमंगलहारी' हैं। महाकवि तुलसीदास ने श्रीराम के व्यक्तित्व को इतना लोकव्यापी और मंगलमय रूप दिया है कि उसके स्मरण-मात्र से हृदय से पवित्र और उदात्त भावनाएँ जाग उठती

हैं। परिवार और समाज की मर्यादा स्थिर रखते हुए उनका चरित्र इतना महान है कि उन्हें मर्यादा-पुरुषोत्तम के रूप में स्मरण किया जाता है। वह पुरुषोत्तम होने के साथ ही दिव्य गुणों से विभूषित हैं। वह ब्रह्म रूप ही हैं। वह साधुओं के परित्राण और दुष्टों के विनाश के लिए ही पृथ्वी पर अवतरित होते हैं। श्रीराम के चरित्र में इतने अधिक गुणों का एकसाथ समावेश होने के कारण जनता उन्हें अपना आराध्य मानती है। महाकवि तुलसीदास ने अपने ग्रन्थ रामचरितमानस में राम का पावन चरित्र अपनी कुशल लेखनी से लिखकर देश के धर्म, दर्शन और समाज को इतनी अधिक प्रेरणा दी है कि शताब्दियाँ बीत जाने पर उनका 'मानस' मानव-मूल्यों की अक्षुण्ण निधि के रूप में मान्य है।

महाकवि तुलसी का रामचरितमानस नाना पुराण निगमागम-सम्मत है। उन्होंने अपनी कथा में उन समस्त वेद-विहित परम्पराओं का निर्वाह किया है जो भारतीय समाज में मान्य थीं। यही कारण है कि तुलसी ने राम का उदात्त रूप वर्णन करते हुए उन समस्त धार्मिक दृष्टिकोणों का समन्वय कर दिया है जो किसी सीमा तक विरोधी होते हुए भी ब्रह्म की परम सत्ता का समर्थन करते हैं। इसी आधार पर उन्होंने जन-भाषा मानस की रचना करते हुए भारतीय विचारधारा को जनता की ऐसी भावभूमि पर प्रवाहित कर दिया है, जहाँ भाषा और भावों का अलगाव समाप्त हो जाता है। और यह ग्रन्थ समस्त भारतीय भाषाओं का एक आदर्श ग्रन्थ बन जाता है। जीवन की समस्यामूलक वृत्तियों के समाधान और उसके व्यावहारिक प्रयोगों की स्वाभाविकता के कारण तो आज यह विश्व-साहित्य का महान ग्रन्थ घोषित हुआ है और इसका अनुवाद संसार की प्रायः समस्त प्रमुख भाषाओं में हो गया है।

मानस के अन्तर्गत राम के चरित्र के आख्यान में प्रमुख रूप से चार दृष्टियाँ लक्षित होती हैं: (1) आध्यात्मिक स्तर पर श्रीराम के प्रति भक्ति : (2) धर्मों की मूलभूल एकता; (3) समाज की संगठित व्यवस्था; (4) श्रीराम के चरित्र को आदर्श मानकर नैतिक और चारित्रिक मूल्यों की रक्षा।

इन चारों दृष्टियों के समन्वय में भारतीय संस्कृति की एकता की संपुष्टि होती है और इसीलिए रामचरितमानस को एक राष्ट्रीय ग्रन्थ कहा जा सकता है।

रूस में मैंने प्रसिद्ध समीक्षक तिखानोव से प्रश्न किया था कि, 'सियाराम मय सब जग जानी' के आस्तिक कवि तुलसीदास का रामचरितमानत ग्रंथ आपके देश में इतना लोकप्रिय क्यों है? उन्होंने उत्तर दिया था—आप भले ही राम को अपना ईश्वर मानें, हमारे समक्ष राम के चरित्र की यह विशेषता है कि उससे हमारे वस्तुवादी जीवन की प्रत्येक समस्या का समाधान मिल जाता है। इतना बड़ा चरित्र समस्त विश्व में मिलना असम्भव है।

ऐसा संत तुलसीदास का रामचरितमानस है।

हमारे देश में ही नहीं, विदेशों में भी मानस चतुश्शती मनाई जा रही है। इस अवसर पर मानस चतुश्शती समिति ने मुझसे आग्रह किया कि मैं संत तुलसीदास पर एक सम्पूर्ण नाटक लिखूँ। जिन संत तुलसीदास के मानस ने मेरा सम्पर्क बाल-काल से

ही रहा है, उन पर नाटक लिखने का आग्रह मेरे मन को अच्छा लगा और मैंने एक मास में ही वह नाटक लिख लिया। पाँच अंकों में संत तुलसीदास का जीवन इसमें समाहित हो गया है। उनके बाल-काल से उनके उत्कर्ष-काल तक ही कथा इस नाटक में है। उनके मरणकाल का चित्र खींचना (संवत् सोरह सै असी, असी गंग के तीर) मुझे रुचिकर नहीं हुआ क्योंकि जो तुलसीदास आज घर-घर में बसे हुए हैं, उनका मरण कैसा? वह अमर हैं और जब तक मानवता के मूल्य मान्य होंगे, तुलसीदास अपनी कृतियों के माध्यम से जीवित रहेंगे।

इस नाटक के लिखने में सबसे अधिक चिन्तन मुझे दूसरे अंक में करना पड़ा, जहाँ तुलसीदास रत्नावली से अलग होते हैं। आसक्ति के चरम बिन्दु से जो अनासक्ति की रेखा तक सीधे पहुँचते हैं, उनके मानसिक संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व की कितनी गहरी संवेदना है, उसे वास्तविकता देने के लिए मुझे तुलसीदास के मानसिक उद्वेलन में डूबने की आवश्यकता थी। मैं उस स्थिति को कहाँ तक स्पष्ट कर सका हूँ यह सुधी समीक्षक कह सकेंगे।

तुलसीदास जनकवि हैं अतः उनके जीवन में जितना लोकतत्त्व समा सकता था, उसे लाने की चेष्टा मैंने की है। तुलसीदास के जीवन की उदात्त भावभूमि के लिए मैंने उनके विरोधी तत्त्वों का भी विश्लेषण किया है। कहीं-कहीं इस विरोध को स्पष्ट करने के लिए हास्य तत्त्व भी नियोजित हुआ है, किन्तु इस हास्य से तुलसीदास के जीवन की भूमिका अपने उदात्त स्तर से न गिरे, इसका ध्यान मैंने सदैव रखा है। शान्त के साथ हास्य का संयोजन कुछ वैसा ही है जैसे वर्षा में सूर्य निकल आए, किन्तु उस सूर्य की किरण से वर्षा की कोई हानि न हो प्रत्युत इन्द्रधनुष की सृष्टि हो जाए। मेरा यह नाटक मानस चतुश्शती की वेदी पर एक श्रद्धा-सुमन का समर्पण समझा जाए, यही प्रार्थना है।

मेरी साहित्य-साधना में सदैव रुचि रखने वाले अपने सुहृद महाकवि सुमित्रा-नन्दन पंत के प्रति किन शब्दों में अपनी कृतज्ञता व्यक्त करूँ जिन्होंने इस नाटक के दो शब्द लिखकर इसका महत्त्व बढ़ा दिया है। संयोग से मानस के मर्मज्ञ डा० बलदेव प्रसाद मिश्र प्रयाग आए। उन्होंने यह नाटक सुना। सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अपनी बहुमूल्य सम्मति दी, इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। मेरी पत्नी लक्ष्मी और पुत्री राजलक्ष्मी ने मेरे शिथिल क्षणों को उत्साह की संजीवनी दी। इस नाटक की प्रतिलिपि करने में श्री वेदप्रकाश द्विवेदी ने जो सहायता दी है, उसके लिए उन्हें आशीर्वाद देता हूँ। अब आप नाटक पढ़ने का कष्ट करें।

—रामकुमार वर्मा

पात्र-सूची
(प्रवेशानुसार)

पुरुष

पुत्तन	:	पहलवान
चन्दनसिंह	:	ठाकुर
हुसैनी	:	जुलाहा
जागेसुरी	:	पंडित
बालक रामबोला	:	तुलसीदास
बाबा नरहरिदास	:	वाराह क्षेत्र के सन्त
पद्माकर	:	रत्नावली के भाई
दीनबन्धु पाठक	:	रत्नावली के पिता
संत तुलसीदास	:	
रामस्वरूप	:	संत तुलसीदास का सेवक
गंगाराम	:	ज्योतिषी
अब्दुर्रहीम खानखाना और उनके चार मुसाहिब		
जगजीत	:	ठाकुर
बेनीमाधव दास	:	साधु
शिवादत्त, उमादत्त	:	शैव पंडित
रामसजीवन, चार भक्त आदि		

स्त्री

जानकी	:	एक लड़की
रत्ना	:	तुलसीदास की पत्नी
मालिनी, पुष्पा	:	रत्ना की सखियाँ
रूपा	:	मालिनी की बच्ची

पहला अंक

स्थान : घाघरा और सरयू के पावन तट पर सूकरखेत
समय : प्रातःकाल, प्रथम प्रहर

[परदा उठने पर दिख पड़ता है कि चौराहे के बगल में मन्दिर के पास खुली हुई ज़मीन है। यहाँ पुत्तन पहलवान बैठकें लगा रहे हैं। प्रत्येक बैठक पर उनके मुख से साँस का झोंका निकल आता है। ठाकुर चन्दनसिंह उनकी बैठकें गिन रहे हैं।]

चन्दनसिंह : निन्यानवे, सौ, एक सौ एक—बस, पुत्तन पहलवान ! एक सौ एक बैठकें हो गईं। अपने बदन से पसीना पोंछ डालो।

पुत्तन : (**उठकर पसीना पोंछते हुए भरे गले से**)एक सौ एक बैठकें हो गईं ? ठीक है। क्या कहूँ, चन्दनसिंह, मेरे तन में हड्डी नहीं है, फौलाद है, फौलाद !अगर तुम कहो तो हुमायूँ बादशाह को कन्धे पर लादकर सारे सूकरखेत का चक्कर लगा आऊँ। लेकिन किसी ने मेरी ताकत की कदर ही नहीं की।

चन्दनसिंह : कदर तो गाँव के लोग करते ही हैं, पर सारी दुनिया के लोग तो कदर तब करें जब तुम सरदार अब्बूखाँ से भिड़ जाओ। उसने हमारे गाँव में आग लगा दी।

पुत्तन : आग लगा दी ? अरे हम अब्बूखाँ के तन-बदन में आग लगा देंगे। उसे एक ही दाँव में चित कर देंगे। हम पहलवान हैं पहलवान ! पर सोचते हैं कि हम पंडित लोग ठहरे, उसे चित करने में छू गए तो दस बार नहाना पड़ेगा। इसीलिए कुछ बोलते नहीं।

[बैसाखी लगाए हुए हुसैनी जुलाहे का प्रवेश]

हुसैनी : (**आते ही**) पाँलागी, पंडित पहलवानजी; जै रामजी, ठाकुर साहब !

पुत्तन : (**मजाक करते हुए**) कहो, डेढ़ टाँग के जुलाहे ! कबीर साहब तुम्हारी आधी टाँग भी ले गए क्या ?

हुसैनी : कबीर साहब तो सन्त-महात्मा थे। वो तो बिना टाँग वालों को भी रास्त दिखला गए। पर यह बतलाओ कि तुमने बेचारे बच्चे रामबोला को कहीं देखा है ? सुना है कि वो भीख माँगते हुए सूकरखेत आ गया है।

चन्दनसिंह : कौन ? वो ? रामबोला ? जो ज्योतिषी आत्माराम का लड़का है ?

पुत्तन : (**गर्व से**)अरे, मुझसे पूछो। महा अभागा लड़का निकला। ज्योतिषी आत्माराम

ने अपनी जलघड़ी कटोरी की लकीर पंचांग से मिलवाई तो कहा कि अभुक्तमूल नक्षत्र में पैदा हुआ है। ऐसा बालक हिंसा करने वाला होता है। महतारी-बाप के लिए काल है।

चन्दनसिंह : (**सिर हिलाकर**) हाँ, सुना तो मैंने भी है।

पुत्तन : अरे, महतारी हुलसिया तो थोड़ी देर में ही सुरग सिधार गई। बाप ने चुनियाँ दासी से कहा कि इस अभागे को गाँव के बाहर फेंक आ !

हुसैनी : हाय ! हाय ! अगर लड़का बुरी साइत में पैदा हुआ तो इसमें बेचारे लड़के का कौन दोस ?

पुत्तन : दोस जे के उसके पूरव जनम के करम ही ऐसे थे ! न पूरव जनम में ऐसे करम करता न इस जनम में ऐसे नक्षत्र में पैदा होता।

चन्दनसिंह : फिर क्या हुआ ? चुनियाँ दासी ने उसे गाँव से बाहर फेंका ?

पुत्तन : फेंका तो नहीं, पर उसने कहा कि जमना पार हमारी सास पारबती रहती है। उसी के पास छोड़ आऊँ ? बाप ने कहा कि तू कहीं ले जा, पर मेरी नज़रों से इसे दूर कर दे।

हुसैनी : चुनियाँ दासी ने अकलमन्दी का काम किया। कम से कम उसे फेंका तो नहीं।

पुत्तन : तो इसमें कौन अकलमन्दी का काम किया ? यह लड़का ही ऐसा था कि जिसने इसे अपने पास रक्खा, उसी पर बज्जर टूटा।

चन्दनसिंह : (**आश्चर्य से**) कैसा वज्जर टूटा, भाई ?

पुत्तन : अरे, चुनियाँ बच्चे को तो ले गई, पर कुछ ही दिनों में उसे साँप ने काट लिया। लड़के का अभाग ही साँप बनकर काट गया। बस, फिर चुनियाँ की साँस-भर रह गई।

चन्दनसिंह : और चुनियाँ की सास को तो कुछ नहीं हुआ ?

पुत्तन : अरे, वो भिकारन थी। उसे क्या होता ? माँग-माँगकर खाती थी और बच्चे को खिलाती थी। बच्चा भी उसके साथ दर-दर भीक माँगता था। (**भिखारी के स्वर में**) 'रामजी के नाम पर दे···दो···एक मुट्ठी आटा।' और लोग डाँटकर कहते थे—भाग यहाँ से···मँगता कहीं का। सबेरे-सबेरे इसे एक मुट्ठी-भर आटा दे दो··· जैसे इसके बाप ने यहाँ भंडार भरकर रख दिया है। हट जा दरवाज़े से ! भाग नहीं तो सिर फोड़ दूँगा !

हुसैनी : (**गहरी साँस लेकर**) इंसान भी इंसान पर कैसी मुसीबत डालता है !

पुत्तन : अरे, और सुनो, एक दिन आँधी-पानी में चुनियाँ की सास की झोंपड़ी गिर पड़ी और वो उसी में दबकर मर गई। जिसने इस लड़के का साथ दिया, उसे काल खा गया।

हुसैनी : (**दुःख से**) हाय ! हाय ! ये बच्चा भी कितना बदकिस्मत निकला कि मुसीबत जैसे कदम-कदम पर उसका रास्ता देखती थी।

चन्दनसिंह : सचमुच आत्माराम ज्योतिषी का कहना ठीक ही था कि यह बड़ा अभागा बालक है। फिर क्या हुआ ?

पुत्तन : होता क्या ? कन्धे पर झोली और हाथ में एक पतली लकड़ी लेकर जाति और कुजाति के टुकड़े माँगकर खाता था । कभी-कभी कुत्तों के लिए जो सूखे टुकड़े फेंक दिए जाते थे, उन्हीं से पेट भरता था । लकड़ी से कुत्तों को दूर हटाता था और उन टुकड़ों को ही उठाकर राम का नाम लेकर खाता था । चार चने कहीं मिल गए तो जैसे चारों पदारथ उसके हाथ आ गए ।

चन्दनसिंह : यों तो आज के ज़माने में सभी को खाने-पीने की दिक्कत है, लेकिन इस लड़के पर भगवान को थोड़ी भी दया नहीं आई ।

हुसैनी : लेकिन किस्मत इम्तहान भी तो लेती है, ठाकुर साहब ! देखना, आगे चलकर यही लड़का ऐसा निकलेगा कि लोग दाँतों तले उँगली दवाएँगे ।

पुत्तन : अरे, दबा चुके । लेकिन अचरज तो जे है कि इतनी मुसीबतों में भी लड़का मरा नहीं, ज़िन्दा है ।

हुसैनी : जिसको खुदा रक्खे, उसका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता, भाई !

पुत्तन : हाँ, जे बात तो है । उसकी जिन्दगी इतनी बेसरम है कि उसे मौत भी नहीं आती । पहले उस पर मुझे बहुत गुस्सा आता था लेकिन अब सोचता हूँ कि जो मुसीबतों से इतना सताया गया है उसे और क्यों सताऊँ ? मैंने भी गुस्सा करना छोड़ दिया ।

चन्दनसिंह : क्यों ? क्या तुमने उसे पहले सताया था ?

पुत्तन : बात जे है कि ये रामबोला पहले मेरे लड़के के साथ गुल्ली-डंडा खेलता था । बात-बात में दोनों में लड़ाई हो गई । मुझे जब मालूम हुआ तो मैंने रामबोला को पकड़कर इतना पीटा कि वह अधमरा हो गया । साला मँगतों के कुल में जनम लेकर भले आदमियों के लड़कों पर हाथ उठाता है ! बाद में मुझे मालूम हुआ कि कसूर मेरे लड़के का ही था । अब पछतावा होता है कि मैंने बेचारे रामबोला को बेनाहक पीटा । फिर सुना कि वो यहाँ भीख माँगते हुए सूकरखेत चला आया है । चाहता हूँ कि उसकी झोली में कुछ खाने-पीने की चीज डाल दूँ । प्रायस्चित हो जाए !

हुसैनी : छिः-छिः, पहले अपने गाँव से उसे निकाल दिया, अब उस पर मेहरबानी करते हो ? खुदा तुम्हें कभी माफ नहीं करेगा ।

पुत्तन : अबे, क्या बोलता है, जुलाहे ! तेरी एक टाँग टूटी है, दूसरी भी तोड़ दूँगा । अपने मन की बात कहने लगा तो मुझे सराप देने लगा ?

चन्दनसिंह : भाई ! सचमुच तुम बड़े गुस्सैल हो । एक सौ एक बैठकें क्या लगाने लगे, किसी को ज़िन्दा भी नहीं रहने दोगे ?

पुत्तन : मैं किसी का ताव सहने वाला नहीं । कोई एक बात कहेगा दस सुनाऊँगा ।

चन्दनसिंह : (**नेपथ्य की ओर देखकर**) कोई पंडितजी आ रहे हैं ।

[जागेसुरी पंडित का प्रवेश । बड़े बाल, चन्दन-तिलक, रामनामी दुपट्टा, पीली धोती, पैर में खड़ाऊँ । बोलने में 'स' को 'श' कहते हैं ।]

जागेसुरी : (**ध्यान से उँगलियों पर गिनते हुए**) कर्क, शिंह, कन्या, तुला, ब्रिशचीक, धन ···धन (**प्रसन्न होकर**) हाँ, धन । अब्बू मियाँ शे शौ अशरफी का धन श्वीकार करके भी शही को गलत और गलत को शही कर दिया । (**देखकर**) अरे, तुम शब, जो है शो, हियाँ क्या हिशाव लगा रहे हो ?

चन्दनसिंह : जागेसुरी पंडिज्जी, पैलगी !

हुसैनी : पंडिज्जी ! मेरा भी परनाम है ।

जागेसुरी : शदा शुखी रहो, शदा शुखी रहो, जो है शो । अपने बहनोई के लड़के रामबोला के पीछे-पीछे हम भी शूकरखेत चले आए । हम अपने बहनोई शे कहते थे कि आतमाराम ! तुम भी जोतिशी और हम भी जोतिशी । अगर तुम्हारा लड़का अभुक्तमूल नक्छत्र में जनमा है तो मुझे दे दो । पर उशने दे दिया चुनियाँ दाशी को ।

चन्दनसिंह : उन्होंने सोचा होगा कि कहीं आपको भी वह मुसीबत में न डाल दे, इसलिए दे दिया चुनियाँ को ।

जागेसुरी : दे दिया तो अच्छा किया । अरे, मैंने तो शिष्टाचार के नाते अपनी शज्जनता दिखलाई थी । चाहता थोड़े था कि ऐशे अशगुनिया लड़के को अपने शाथ रखूँ । पर भाई, शुनता हूँ कि वो बड़े शुन्दर कंठ से गा-गाकर भीख माँगता है । अगर अशगुनियाँ न होता और मेरे पाश रहता तो उशको श्थान-श्थान पर, जो है शो, ऐशे गीत गवाता कि मेरे पाश लच्छमी जी का भंडार इकट्ठा हो जाता । जातकाभरण के मध्य, जो है शो, ढुंढिराज जोतिशी का परमाण है कि :

> लाभे शौम्य गणाश्रिते शति जुते शौम्येन शंवीक्षते ।
> नाना काव्य कला-कलाप विधिना शिल्पेन लिप्त्वा शुखम् ।।

हुसैनी : तो ये कहिए कि आप जो उस पर मेहरबानी करते तो अपने फायदे के लिए ।

जागेसुरी : अब शब शंशार इसी तरह से चलता है, जो है शो ।

[घबराई हुई लड़की जानकी का प्रवेश]

जानकी : बाबा ! बाबा ! एक भिखारी के लड़के को कुत्ते ने काट लिया । वो कोने में पड़ा सिसक रहा है । उसको चल के देखो । मैं जाती हूँ । (**प्रस्थान**)

जागेसुरी : अरे, मेख राशि में शनी शंतरण कर रहा है । मेख के बदले कुत्ते ने काट लिया । कौन है वो ?

पुत्तन : (**लापरवाही से**) अरे, वही होगा, रामबोला । कुत्तों से भी तो लड़ता-झगड़ता है । अच्छा काटा कुत्ते ने ! अभागा तो हई है । उसके कारण दूसरों पर मुसीबत पड़ती है । अब भोगे उसका फल । मैं तो जाता हूँ ।

हुसैनी : तुम तो उसकी झोली में खाने-पीने की चीज़ डाल रहे थे ।

पुत्तन : तो उसके घाव पै पट्टी थोड़े बाँधूँगा ? मैं जाता हूँ । चलो चन्दनसिंह । बैठकें तो हो चुकीं, अब डंड बाकी हैं ।

चन्दनसिंह : हाँ, चलो। मुझे तुम्हारे डंड भी तो गिनने हैं।

[दोनों का प्रस्थान]

हुसैनी : देखा पंडिज्जी ! अब दुनिया में किसी के दुःख-दर्द का कोई पूछने वाला नहीं है। अगर पुत्तन महाराज कुत्ते होते तो वो भी बेचारे लड़के को काट लेते। लेकिन चल के देखें, वो लड़का रामबोला तो नहीं है ?

जागेसुरी : (**उँगलियों पर गिनते हुए**) अश्विनी, भरनी, कृत्तिका, रोहिनी, (**फिर ओंठों पर बुदबुदाते हुए**) श्वाती, बिशाखा, अनुराधा···अनुराधा—शत्रह नक्छत्र। इश शमय अनुराधा है तो हो सकता है कि रामबोला ही होय। (**सहसा नेपथ्य में सिसकने का शब्द होता है**) अरे कोई शिशकता हुआ आ रहा है, जो है शो।

[कंधे पर झोली टाँगे, एक हाथ में पतली लकड़ी लिए और फटे कपड़े पहिने सात वर्षीय बालक रामबोला का प्रवेश]

जागेसुरी : अरे, रामबोला तो हई है, जो है शो, मेरा जोतिश झूठ थोड़े है।

रामबोला : (**सिसकियाँ रोककर—प्रसन्नता से**) अरे, मामाजी ! आप हैं ? प्रणाम ! आप यहाँ पर कैसे आए ? और हुसैनी चाचा भी हैं ? सलाम, चाचा !

हुसैनी : जीते रहो, रामबोला ! बेटा, पहले ये बतला कि क्या तुझे कुत्ते ने काट लिया ? हम तो तुझी को खोजते हुए आ रहे हैं।

रामबोला : चाचा ! मैं ऐसा अभागा हूँ कि जिसके सामने पड़ता हूँ वही मुझे काट लेता है। पर आदमी से कुत्ता अच्छा है जिसने मुझे नहीं काटा। कुत्ता और हम दोनों एक ही जाति के हैं। चाचाजी ! दोनों ही टुकड़ों पर पलते हैं। कभी रोटी का टुकड़ा हम पा जाते हैं, कभी कुत्ता पा जाता है। आज हम दोनों के भाग में एक ही टुकड़ा था। दोनों वह टुकड़ा लेने के लिए दौड़े।

हुसैनी : (**आह भरकर**) बस, बस, बेटा ! अब नहीं सुना जाता।

रामबोला : चाचाजी ! रोटी का एक ही टुकड़ा था। मैंने लकड़ी से कुत्ते को हटा दिया और रोटी का टुकड़ा ले लिया। बाद में लगा कि कुत्ता बहुत भूखा है तो वह टुकड़ा कुत्ते को दे दिया। कुत्ता भी भूखा और मैं भी भूखा ! मुझे अपने भाग पर रुलाई आ गई, कुत्ते ने मुझे नहीं काटा।

हुसैनी : एक लड़की तो कह रही थी कि तुझे कुत्ते ने काट लिया।

रामबोला : रोटी के टुकड़े के लिए हम दोनों उलझ गए थे तो लड़की ने समझा होगा कि कुत्ते ने मुझे काट लिया। पर चाचाजी ! मैं बहुत भूखा हूँ।

हुसैनी : मैं अभी तुम्हें अपने साथ ले चलके कुछ खिला दूँगा।

जागेसुरी : अरे, तुम क्या उशे खिलाओगे ? अभी तो दश दिनों तक भोजन का जोग नहीं है। बुध के भीतर मंगल की दशा जो शाक्षात् जमदूत की जैशी है। मानशागरी जोतिश का शिद्धान्त है कि :

अग्निदाहंग, ज्वरंग, तीव्रंग भवेद् रक्त विकारंग।
शतु घात रुजंग चैव बुध मध्ये कुजे शदा ॥

जे मेरा जोतिश कहता है।

रामबोला : ज्योतिष को कहने दीजिए, मामाजी ! रामजी जब देना चाहेंगे तब तो मिलेगा, नहीं तो कुछ नहीं मिलने का। रामजी को पुकारता हूँ, कभी तो पुकार की सुनवाई होगी।

हुसैनी : होगी, ज़रूर से होगी, बेटा रामबोला !

जागेसुरी : अरे बेटा, तू मेरे शाथ डोले, जो है शो, तो मेरे शाथ तुझे भी प्राप्ति होगी। तू नीच भले ही हो पर मेरे शाथ रहने शे तेरी नीचता भंग हो जावेगी। नीच ग्रह का श्वामी जदि केन्द्र में बैठ जाए तो नीच-भंग राज-जोग होता है :

नीचश्थितो जन्मनि जो ग्रहश्थ
तद राशि नाथोपि तदुच्च नाथः।
शचन्द्र लग्नात् जदि केन्द्रवर्ती,
राजा भवेद् धार्मिक चक्रवर्ती।

रामबोला : मामाजी ! मुझे कुछ नहीं होना, बस, रामजी के दरबार में मेरी पुकार लग जाए।

हुसैनी : ज़रूर से लगैगी। रामजी तो दिल को देखते हैं। ये दुनिया के लोग हैं जो रुपया-पैसा देखते हैं।

जागेसुरी : (तीव्र स्वर में) देखो हुशैनी ! तुम मेरे शम्बन्ध में कुछ नहीं कह शकते, हाँ, जो है शो। हम तो लड़के के भले की बात कहते हैं।

रामबोला : मेरे भले की बात क्या कहेंगे ! लोग कहते हैं कि आपने मेरे पिताजी को धोखा दिया। पारबती अम्माँ कहती थीं कि आप पिताजी का सब पैसा चुराकर ले गए।

जागेसुरी : अरे शंशार मिथ्या है, मिथ्या बातें कहता है, तो तुम उशको शही मान लोगे ? तुम्हारी पारबती मैया भिकारन थी और हम शिशार के बहुत बड़े जोतिशी हैं। तो हमारे शौंही, जो है शो, तुम पारबती मैया की बात मानोगे ? भिकारन तो बश, गीत गाना जानती है। वो दुनिया की बात, जो है शो, क्या जाने !

हुसैनी : हम जानते हैं, पंडज्जी ! पारबती मैया जैसी नेक औरत दुनिया में मिलना मुश्किल है। झूठी बातों से तो उसे नफरत थी। बस रामखुदा का सुमिरन करती थी, उनकी शान में गीत गाती थी। उसी ने रामबोला को सीधा-सच्चा बनाया और एत्ता अच्छा गाना सिखलाया।

जागेसुरी : छोड़ो, छोड़ो इश वार्ता को, हुशैनी मियाँ ! शंगीत की शिमश्या दूशरी है, जो है शो। तो अगर पारबती मैया ने रामबोला को शुंदर शंगीत शिखलाया है तो ठीक है। **(रामबोला से)** शुनो रामबोला ! तुम्हारी पारबती मैया ने तुम्हें शंगीत शिखला कर अच्छा किया। उशशे तुमको शदा शुन्दर भिच्छा मिलेगी। कारन कि

तुम्हारा श्वर वहुत मधुर है । जो है शो, पर तुम मेरे शाथ बड़े-बड़े शेठ-शाहूकारों के पाश चलकर शंगीत शुनाओ । मेरे शाथ रहने शे तुम्हारे शामने शम्पत्ति का ढेर लग जाएगा । तुम्हें बीणा जोग का शम्मान मिलेगा । जोतिश कहता है :

अर्थोपेता: शाश्त्र पारंगताश्च
शंगीतज्ञा: पोषकाश्यू वहुर्नाम् ।
नाना शौख्यै रन्विताश्तु प्रवीणा
वीणा जोगे प्राणिनां जन्म जेशाम् ॥

वश, तुम गीत गाते जाओ, जो है शो ।

रामबोला : देखिए, मामाजी ! मैंने आपकी पंडिताई बहुत जान ली । पर मैं गाता हूँ तो अपने रामजी को रिझाने के लिए । रुपयों-पैसों के लिए न कभी गाया है, न गाऊँगा ।

जागेसुरी : तो मरो भूखे, जो है शो । इतने दिनों शे गाते हो, कभी रामजी ने तुम्हारी शुनी ?

हुसैनी : रामजी देर से सुनते हैं मगर अच्छी तरह सुनते हैं ।

रामबोला : बस, भरोसे की बात है, मामाजी ! आपको भरोसा नहीं है, मुझे भरोसा है ।

[एक सौम्य साधु का चारों ओर देखते हुए प्रवेश । बड़ा आकर्षक और भव्य वेश है । सिर पर जटाएँ, बड़ी-बड़ी आँखें, माथे पर रामानन्दी तिलक, गले में तुलसी की माला और काषाय रंग का वस्त्र । एक हाथ में कमंडलु और पैर में पादुकाएँ ।]

साधु : (**आते ही**) जय श्रीराम !! रामजी पर सबको भरोसा होना चाहिए । मैंने तुम्हारी सब बातें सुनी हैं । मैं तुम्हीं को खोजता आ रहा हूँ । तुम्हें कुत्ते ने काटा है ? तुम्हारा नाम क्या है, बेटे ?

रामबोला : स्वामीजी ! मेरा नाम रामबोला है । (**सहसा**) अरे, मैंने आपके पैर तो छुए ही नहीं । (**लज्जित हो चरण स्पर्श करता है ।**)

साधु : (**उठाते हुए**) उठो, उठो, रामजी कल्याण करें । (**जागेसुरी और हुसैनी को संकेत करते हुए**) ये भक्तगण कौन हैं ?

रामबोला : ये हुसैनी चाचा हैं और ये हमारे मामाजी श्री जागेसुरी दुबेजी ।

[दोनों अभी तक आगन्तुक साधु को देख रहे थे । वे शीघ्र ही प्रणाम करते हैं ।]

साधु : प्रभु रामजी कल्याण करें ! (**रामबोला से**) और तुम्हारे पिताजी कहाँ हैं ?

जागेसुरी : इनके पिताजी आतमाराम मेरे बहनोई थे, जो है शो, जोतिशी रहे । जे बालक अभुक्तमूल नक्छत्र में जन्मा । माता मर गयी, पिताजी शंन्याशी हो गए । ये भीख माँगने लगा ।

साधु : आप इसे अपने घर नहीं ले गए ? ये तो आपका भानजा है ।

जागेसुरी : अपने शुभ श्थान में ले जाके क्या हम भी, जो है शो, मृत्यु देवी का श्वागत करते ? ऐशा अभागा बालक शज्जनों को मारके मरेगा । ओम् शान्तं पापम्, ओम् शान्तं पापम् ।

साधु : ऐसी बात मत बोलो, पंडित ! रामजी की इच्छा से ही जीवन-मरण होता है। इसमें बालक का क्या दोष ?

हुसैनी : (**जो अब तक हाथ जोड़े खड़ा है**) जे बात, स्वामीजी, आपने कही। मैं सबसे कहता हूँ : मरना-जीना रामजी खुदा ने अपने हाथ में रक्खा है। रामजी खुदा के हाथ में साँसों की डोरी है। जिसको मरना होता है, उसकी साँस की डोरी कट जाती है।

रामबोला : जब मुझे भीख नहीं मिलती, स्वामीजी, तो हुसैनी चाचा ही मुझे कुछ खाने को दे जाते हैं।

जागेसुरी : (**उतावली से**) जेई तो बात है, जो है शो। जुलाहे के हाथ का भोजन पाके ये भरश्ट जो हो गया है। फिर इशे कौन अपने घर रक्खे ?

साधु : ऐसी बात मत कहो, पंडित ! बालक तो रामजी का स्वरूप है। फिर अभी इसका यज्ञोपवीत भी तो नहीं हुआ है।

हुसैनी : (**गहरी साँस लेकर**) स्वामीजी, कभी-कभी तो इसे भीख भी नहीं मिलती। कुत्तों के लिए फेंके हुए टुकड़ों को खाकर पेट भरता है। हाय ! खुदा रामजी !!

साधु : (**स्मरण कर**) अच्छा, अच्छा, ये वही बालक है जिसे मैं खोज रहा था ? एक लड़की ने मुझसे कहा कि रोटी का टुकड़ा उठाने में एक भिखारी के बालक को कुत्ते ने काट लिया। (**रामबोला से**) तुम वही बालक हो, बेटे ?

रामबोला : हाँ, स्वामीजी ! मैं वही अभागा बालक हूँ। एक कुत्ता रोटी के लिए झपटा था, मुझे काटने के लिए नहीं। मैंने अपनी लकड़ी से कुत्ते को दूर हटा दिया। उसके मुँह से रोटी का टुकड़ा छीन लिया। उसने मुझे काटा नहीं, बस, मुझे देखकर भौंकता रहा।

जागेसुरी : जिशका ग्राश छीना जाएगा, वो भौंकेगा नहीं ? क्या वो तुम्हारे चरण चाटेगा, जो है शो ?

हुसैनी : रोटी का एक टुकड़ा पाने के लिए भी कुत्तों से झगड़ना पड़ता है। हाय ! रामजी खुदा ! आज के ज़माने में इंसान इतना बेरहम हो गया है कि किसी गरीब को भीख भी नहीं देता।

साधु : ऐसा है तो अब इसे भीख नहीं माँगनी पड़ेगी। यह मेरे साथ रहेगा।

जागेसुरी : (**कुतूहल से**) आँय ? श्वामीजी ! जे अभागा बालक आपके शाथ रहेगा ? जान लीजिए कि जे अभुक्तमूल नक्छत्र में पैदा हुआ है। जो इशको अपने पाश रखेगा, उशके प्राणों पर शंकट आया हुआ ही, जो है शो, शमझिए।

ज्येष्ठान्त घटिकैका च मूलश्याथ घटी द्वयम्
अभुक्तमूलमित्युक्तं त्रयोत्पन्न शिशोर्मुखम्।

कहने का तात्पर्य जे कि जेष्ठा नक्छत्र की अन्तिम घड़ी और मूल नक्छत्र की पहली दो घड़ी, इश तीन घड़ी के काल को, जो है शो, अभुक्तमूल कहते हैं। और जो बालक इश अभुक्तमूल नक्छत्र के मध्य में जन्म लेता है, उशके शम्बन्ध में कहते हैं कि :

मूल विरुद्धावयवै शमूलं कुलंहृरत्यैव वदन्ति शन्ताः।

ऐसा बालक मूल शमूल कुल को नष्ट करता है, ऐसा शन्तगण कहते हैं।

साधु : इसकी कोई चिन्ता नहीं। साधुओं का न कोई कुल होता है और न वे इसकी चिन्ता करते हैं।

जागेसुरी : तो तापर्त्य जे कि आप हम शरीखे श्रेष्ठ पंडितों को अपनी शेवा में न लेकर भरष्ट भिखारियों को अपने शाथ रक्खेंगे ?

साधु : (तीव्रता से) चुप रहो, पंडित ! जब ये बालक भगवान राम के नाम में भरोसा रखता है तो संसार की दृष्टि में आप भले ही इसे भिखारी कहें, यह आप जैसे पंडितों से सौ गुना श्रेष्ठ है।

हुसैनी : वाह, स्वामीजी ! वाह स्वामीजी ! कितना अच्छा कहा !!

जागेसुरी : अच्छा, तो ऐशी शम्मति है, जो है शो, आपकी ?

साधु : हाँ, यही मेरी सम्मति है, यही मेरा निर्णय है। क्यों बेटे रामबोला ! तुम मेरे पास रहोगे ?

रामबोला : ऐसा मेरा भाग कहाँ जो आपके चरणों की छाया मुझे मिले !

साधु : नहीं, तुम्हारा ऐसा भाग्य है। तुम मेरे पास रहोगे। तुम्हारे माता-पिता नहीं हैं, कोई सम्बन्धी नहीं है, एक मामाजी हैं तो वे अपने ज्ञान के गर्व में, अपनी हानि के भय से, तुम्हारी छाया से भी दूर भागते हैं। तो तुम अब मेरे पास रहोगे। अब तुम्हें भीख नहीं माँगनी पड़ेगी। रामजी तुम्हारा कल्याण करेंगे।

हुसैनी : (प्रसन्नता से) वाह, स्वामीजी ! रामजी खुदा ने ही आपको भेजा है। नहीं तो ये गरीब बालक इसी तरह भीख माँगते-माँगते मर जाता।

साधु : नहीं, रामजी इसकी रक्षा करेंगे। क्यों बेटे, तुम भूखे हो ? कुत्ते को फेंके गए रोटी के एक टुकड़े से तुम्हारी भूख क्या बुझी होगी ? लो, यह रामजी का प्रसाद।

[कमंडलु में से मिठाइयाँ निकालकर देते हैं।]

रामबोला : हुसैनी चाचा और मामाजी को भी प्रसाद दे दें।

साधु : हाँ, हाँ, उनको भी दूँगा। **(जागेसुरी से)** देखी आपने इस बच्चे की सुशीलता ? स्वयं प्रसाद पाने से पहले वह आपको प्रसाद देने के लिए कहता है।

जागेसुरी : शत्य है, शत्य है, मेरा भानजा होने के कारण ही तो उशमें ऐशी मरजादा है।

साधु : यह तो मेरे सामने प्रत्यक्ष है। बेटा रामबोला ! प्रसाद पाओ। मैं इन लोगों के लिए भी प्रसाद निकालता हूँ।

[प्रसाद निकालने के लिए कमंडलु में हाथ डालते हैं। कमंडलु का प्रसाद समाप्त हो गया है, इसलिए स्वामीजी अपने कंधे पर पड़े हुए अँगोछे की गाँठ खोलने लगते हैं।]

जागेसुरी : (लालच-भरी दृष्टि से रामबोला के हाथ की मिठाई देखकर) राहु मध्ये

चन्द्रमा प्रवेश कर रहा है। शूखी रोटी के टुकड़े और यह श्वादिष्ट मिष्टान्न ? (साधु से) श्वामीजी ! इश बालक को इतना अधिक मिष्टान्न मत खाने दीजिए। शूखी रोटी के बाद मिष्टान्न खाएगा तो उदर में कष्ट हो जाएगा। अभी, जो है शो, बालक है।

हुसैनी : पंडज्जी ! आपके मन में जलन क्यों होती है ? स्वामीजी आपको भी परशाद देंगे।

जागेसुरी : परशाद शे कैशी शुगन्धि निकल रही है ! वाह, वाह, मिष्टान्न का कैशा बढ़िया श्वरूप है, जो है शो, (**होंठ चाटते हुए**) बड़ी ऊँची दूकान का लगता है।

साधु : यह ऊँची दूकान रामजी की है। पर प्रसाद पाने के पहिले कीर्तन करना पड़ता है। (**रामबोला से**) क्यों बेटे, तुम्हें कोई अच्छा भजन आता है ?

रामबोला : हाँ, स्वामीजी, आता है। सुनाऊँ ?

साधु : हाँ बेटे, हो सके तो मधुर स्वर में सुनाओ।

रामबोला : जो आज्ञा।

[रामबोला बड़े मधुर स्वर से गाता है—]

हमारे निर्धन के धन राम।
चोर न लेत, घटत नहिं कबहूँ आवत गाढ़े काम ॥ हमारे०
जल नहिं बूड़त, अगिनि न दाहत दाहत, है ऐसो हरि नाम।
वैकुंठनाथ सकल सुखदाता, सूरदास सुख-धाम ॥
हमारे निर्धन के धन राम ॥
धन राम···

सब : वाह, वाह, बहुत अच्छा गाया !

जागेसुरी : श्वामीजी ! जे बालक रोटी के शूखे टुकड़े खाता है पर बानी देखिए जैशे मधु में शनी हुई है।

साधु : रामनाम बहुत मीठा है, पंडित ! जो इस नाम को लेता है, उसकी वाणी आप से आप मीठी बन जाती है। (**रामबोला से**) क्यों बेटे, ये रामनाम का भजन तुम्हें किसने सिखलाया था ?

रामबोला : पारबती मैया ने सिखलाया था। हम दोनों भीख माँगने निकलते थे तो द्वार-द्वार पर गीत गाना पड़ता था। गीतों के बल पर ही भीख मिलती थी। इसी-लिए पारबती मैया मुझे तरह-तरह के गीत सिखलाती थीं जिनमें भगवान राम का नाम होता था।

साधु : तुम्हारी पारबती मैया ने तुम्हारे मन पर बहुत अच्छे संस्कार डाले। फिर, पारबती मैया कहाँ हैं ?

रामबोला : (**आँख में आँसू भरकर**) एक दिन ज़ोर से आँधी आई। हमारी झोंपड़ी गिर पड़ी। हमारी पारबती मैया उसी के नीचे दब गईं। तब से मैं अकेला रह गया। हाय ! मैं भी पारबती मैया के साथ दब जाता तो कितना अच्छा होता। हम

दोनों साथ चले जाते भगवान के पास।

[आँख से आँसू पोंछता है।]

साधु : रामबोला, दुखी न हो। रामजी की इच्छा है कि अब तुम मेरे साथ रहो। हम दोनों प्रेम से भगवान का भजन करेंगे।

हुसैनी : और बेटा, तुम मीठे सुर से भजन करोगे तो रामजी जल्दी खुश हो जाएँगे।

जागेसुरी : हाँ, तुम्हारा श्वर बहुत मीठा है। जब हमको मीठा लगता है तो भगवान को, जो है शो, मीठा तो लगेगा ही। एक गाना और शुनाओ तो और अधिक प्रशाद प्राप्त होगा।

रामबोला : ये गाना नहीं है, मामाजी, ये भजन है।

साधु : तुम्हारा बहुत अच्छा ध्यान है, बेटे! अच्छा, अब प्रसाद पाओ! (**हुसैनी और जागेसुरी से**) लो, तुम लोग भी प्रसाद ग्रहण करो।

[सबको प्रसाद देते हैं। सब चाव से खाते हैं। जागेसुरी विशेष रूप से मुँह बनाकर खाता है।]

हुसैनी : (**प्रसाद खाते हुए**) महाराज! आप कहाँ से आते हैं? हम लोग तो आपके दरसन पाके धन्न हो गए।

साधु : हुसैनी चाचा! हमारा नाम नरहरिदास है। हम वाराह-क्षेत्र के ही हैं। हम इस ओर आ रहे थे कि एक छोटी लड़की मिली। उसने बतलाया कि भिखारी का लड़का भूख के मारे कुत्तों को फेंके गए टुकड़ों के लिए झगड़ रहा था। उसे किसी कुत्ते ने काट भी लिया। मुझे दया आई और उसे खोजते हुए यहाँ पहुँचा। बालक का नाम रामबोला सुनकर मुझे बड़ा सुख मिला। क्योंकि रामजी की भक्ति ही मुझे अच्छी लगती है। (**रामबोला से**) क्यों बेटे, तुम्हारा नाम रामबोला कैसे पड़ा?

रामबोला : मैं क्या जानूँ, स्वामीजी!

जागेसुरी : अरे महाराज, मुझशे शुनिए। मैं तो इशके जन्म के अवशर पर उपश्थित था। जो है शो, जब इशका जन्म हुआ तो तनिक भी नहीं रोया। इशके मुँह में बत्तीशों दाँत थे! शाक्षात् पाँच वर्ष के बालक जैशा लगता था। और जब ये पिरथिवी पर गिरा तो इशके मुँह शे 'राम' शब्द निकला! इशी कारण इशे रामबोला कहने लगे।

हुसैनी : लोग ये भी कहते हैं कि ये राम का नाम लेके भीख माँगता था तो लोग पुकारते थे—ए रामबोला! ये रोटी का टुकड़ा ले जा।

नरहरिदास : अब इसे जीवन-भर भीख नहीं माँगनी पड़ेगी। रामजी ने इसकी पुकार सुन ली।

रामबोला : (**सहसा**) अरे स्वामीजी, आपने मुझे जो प्रसाद दिया उसमें यह तुलसी-पत्र है। (**हाथ से तुलसी-पत्र उठाकर दिखलाता है।**)

नरहरिदास : अरे वाह, अब तो मान लेना पड़ेगा कि तुझ पर रामजी की कृपा हो गयी। प्रसाद में तुलसी-पत्र! तुझे भक्ति का तुलसी-पत्र मिल गया! आज से तेरा नाम

रामबोला के स्थान पर तुलसी हो गया।

रामबोला : महाराज, मैं तो आपका दास हूँ।

नरहरिदास : अच्छा, तो तेरा नाम हुआ तुलसीदास।

हुसैनी : वाह ! तुलसीदास।

जागेसुरी : तुलशीदाश !

नरहरिदास : हाँ, तुलसीदास ! हम तुझे राम की कथा सुनावेंगे।

तुलसीदास : महाराज, मैं तो अभी अचेत हूँ। रामजी की कथा कैसे समझूँगा ?

नरहरिदास : मैं तुझे बार-बार सुनाऊँगा। तब तो तेरी समझ में आवेगा ? मैं तुझे काशी ले जाऊँगा।

जागेसुरी : अहा, काशी ! अहा, काशी ! महाराज ! काशी में निवाश करने की मेरी भी बड़ी अभिलाषा है। बोल शिव शंकर !

नरहरिदास : हाँ, तो रास्ता है, आप अभी चले जाइए। तुलसीदास मेरे पास रहेगा।

जागेसुरी : पर महाराज ! हुशैनी ने इशका धर्म बिगाड़ दिया है। (**हुसैनी से**) शेखजी ! शत्य-भाषण के लिए छमा कीजिए।

हुसैनी : मेरा तो खयाल है कि कोई धरम दूसरे धरम को नहीं बिगाड़ता। सब धरमों में एक ही सच्चाई है।

नरहरिदास : और फिर सब बच्चे एक ही धर्म के हैं। भगवान के रूप हैं। फिर भी मैं इसका विधिवत् संस्कार करूँगा। उसको पढ़ाऊँगा, लिखाऊँगा, फिर इसे आचार्य शेष सनातन को सौंप दूँगा। इस बालक में विशेष प्रतिभा है। इसलिए यह पुराण, आगम और निगम जल्दी पढ़ जाएगा। श्री रामायण की शिक्षा तो इसे मैं स्वयं दूंगा।

तुलसीदास : महाराज, आज से मैं तुलसीदास बनकर आपकी सेवा करूँगा। रामजी से मेरा प्रेम है तो श्री रामायण मैं बहुत ध्यान से सुनूँगा।

जागेसुरी : महाराज, तब तो हम भी आपके श्रीमुख शे शिच्छा ग्रहण करेंगे। मैं जोतिश शे बालक का भविष्य भी बतलाता रहूँगा :

> उमा गौरी शिवा दुर्गा भद्रा भगवती तथा।
> कुलदेव्यथ चामुंडा रक्षन्तु बालकं शदा ॥

नरहरिदास : अब तो इसकी रक्षा रामजी करेंगे, आप क्यों कष्ट करते हैं ?

हुसैनी : और, स्वामीजी, रामजी हमारी टाँग अच्छी कर देंगे ?

नरहरिदास : अवश्य। विश्वास चाहिए। कहा है :

> मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्।
> यत्कृपातमहं वन्दे परमानन्द माधवम् ॥

आप तो इस टाँग से पर्वत भी लाँघ सकते हैं।

हुसैनी : अरे वाह ! तव तो मैं भी राम खुदा को भजूंगा। राम खुदा ! राम खुदा ! राम खुदा !

नरहरिदास : अच्छा, बालक तुलसीदास, चलो मेरे साथ।

तुलसीदास : जो आज्ञा। (**प्रस्थान**)

[हुसैनी और जागेसुरी प्रसन्नता और कौतुक से मुँह वनाते हुए जाते हैं।]

[परदा गिरता है।]

दूसरा अंक

स्थान : बदरिया ग्राम में दीनबन्धु पाठक का घर

समय : रात्रि का दूसरा प्रहर

[बदरिया ग्राम में दीनबन्धु पाठक का घर सामान्य रूप से सजा हुआ है। दायें-बायें दो दरवाजे हैं। दाहिना दरवाज़ा बाहर की ओर है। बायें दरवाज़े से घर के भीतर का मार्ग है। कमरे के मध्य में एक खिड़की है जिससे आकाश का कुछ भाग देखा जा सकता है। दरवाज़ों और खिड़की पर हलके गुलाबी रंग के परदे पड़े हुए हैं। फर्श पर एक दरी विछी हुई है। कमरे की बायीं ओर एक तख्त है जिस पर बेल-बूटेदार कालीन बिछा हुआ है। बैठने के लिए दो-तीन तिपाइयाँ रखी हुई हैं। एक आल्मारी है जिसमें पुराने पंचांग और कुछ ज्योतिष की किताबें रखी हुई हैं। दीवाल पर रामपंचायतन का बड़ा-सा चित्र लगा है। खिड़की की एक ओर 'राम' और दूसरी ओर 'सीता' लिखा हुआ है। कमरे के दोनों कोनों पर बड़े-बड़े दीपाधार हैं जिन पर तेल के दीपक जल रहे हैं।

यह कक्ष तुलसीदास की पत्नी रत्नावली का है। रत्नावली के बड़े भाई पद्माकर कक्ष की चीज़ों को ठीक कर रहे हैं। रामपंचायतन का चित्र टेढ़ा हो गया था, उसे सीधा करते हैं। कुछ पुरानी मूर्तियों (जो आले में रखी हुई हैं) की धूल साफ करते हुए एक भजन गुनगुनाते जा रहे हैं :

'निर्धन के धन राम···निर्धन के धन राम···' —तुलसीदास अच्छा गाते हैं।

दीनबन्धु पाठक का प्रवेश। प्रौढ़ वय, धोती और अँगरखा पहने हुए हैं, सिर पर पंडिताऊ पगड़ी, माथे पर टीका, गले में माला। हाथ में लकड़ी और पैरों में खड़ाऊँ।]

दीनबन्धु : यह हुआ कैसे ? मुझे तो तनिक भी आशा नहीं थी।

पद्माकर : पिताजी, मुझे भी आशा नहीं थी। मैं राजापुर बड़े बेमन से गया था। दो-तीन बार निराश होकर लौट आया था। वह तो आपका आग्रह था कि सावन में बेटी को घर आना चाहिए। मैं चला गया। तुलसीदास से कहा—पंडित जी! इस बार तो सावन में रत्ना को एक महीने के लिए जाने की आज्ञा दे ही दीजिए। मैं रत्ना को ले जाऊँ, फिर स्वयं ही उसे पहुँचा जाऊँगा।

दीनबन्धु : तुमने ठीक ही कहा। तो तुलसीदास ने क्या कहा?

पद्माकर : कहा क्या! वही अपनी बात दुहरा दी। कहने लगे—'देखिए, पद्माकरजी! रत्ना किसी भी हाल में अभी नहीं जा सकती। मेरे घर में कोई दूसरा है नहीं। सारा भार रत्ना के सिर है। अगर वह चली जाएगी तो घर कैसे चलेगा, मैं कैसे रहूँगा?'

दीनबन्धु : और पहले कैसे रहते थे, जब अकेले थे? रामायण की कथा बाँचते थे, जो कुछ आरती में चढ़ौती होती थी, उससे काम चलाते थे। अपने हाथ से ही भोजन पकाते थे। जब उनके रूप-रंग को देखकर और उनकी ज्ञानभरी कथा सुनकर मैंने उनसे रत्ना के विवाह का प्रस्ताव किया तो नाक-भौं चढ़ाकर बोले थे—'देखिए महाराज, मैं हूँ निहंग आदमी। भगवान के भजन में सब समय बिताता हूँ, मैं क्या करूँगा गृहस्थी जोड़कर?'

पद्माकर : और अब रत्ना से विवाह होने पर उन भगवान के भक्त ने ऐसी गृहस्थी जोड़ी है कि जो चीज़ आपके यहाँ नहीं है, वह उन सन्त-महात्मा के यहाँ है। अब तो भगवान की कथा नाम-भर को है।

दीनबन्धु : भगवान की कथा पर एक कथा स्मरण हो आयी। एक सन्त थे। बिलकुल निहंग। अपनी लँगोटी धोने के लिए वे साबुन लाए। साबुन चूहे खा जाते थे तो उन्होंने चूहों को भगाने लिए एक बिल्ली पाली। बिल्ली को दूध मिले इसलिए एक गाय पाली। गाय के लिए एक ग्वाला रखा। ग्वाले को पैसे देने के लिए उन्होंने एक सेठ की मुनीमी की। मुनीम होकर सेठ के यहाँ समय पर जाने के लिए भोजन आवश्यक था। इसके लिए उन्होंने विवाह किया। और विवाह के बाद बच्चे। इस तरह लँगोटी ने उन्हें बच्चों तक पहुँचा दिया।

पद्माकर : कुछ ऐसी ही बात सन्त तुलसीदास की हो गई है। अब कथा से भक्ति नहीं है, अपनी गृहस्थी में भक्ति है।

दीनबन्धु : फिर तुम रत्ना को लाए कैसे? वे तो रत्ना को लाने के लिए सदा मना कर दिया करते थे!

पद्माकर : पिताजी, मैंने भी सोचा कि इस बार रत्ना को लेकर ही आऊँगा। उधर तुलसीदास ने सोचा कि रत्ना को तो जाना है नहीं। रत्ना के न जाने से पद्माकर को दुःख होगा इसलिए उसे अच्छे से अच्छा भोजन करा दिया जाए। अच्छा सामान विसाहने के लिए वे हाट चले गए। मैं जानता था कि वे देर में आएँगे। मैंने रत्ना से कहा कि यह अच्छा मौका है। अब हम लोग घर चले चलें।

दीनबन्धु : अच्छा! तो रत्ना तैयार हो गई?

पद्माकर : इतनी सरलता से तैयार नहीं हुई। हिचकिचाई। कहने लगी कि उनसे पूछे बिना जाना ठीक नहीं है। मैंने उसे आड़े हाथों लिया। मैंने कहा—वाह री, बहिन ! पूछ-पूछ कर तो मैं हार गया। कहीं उन्होंने जाने दिया ? और क्या वे अब जाने देंगे ? उधर पिताजी कहते हैं कि क्या अब मैं रत्ना को अपने जीवन में नहीं देख सकूँगा ? परिवार और पास-पड़ोस के लोग तो कहते हैं कि हमने तुझे हमेशा के लिए बेच दिया है। तेरी सखियाँ पुष्पा और मालिनी ताने देती हैं—पति ऐसा प्यारा हो गया कि सब ममता-मोह भुला बैठीं ! —और माँ··· माँ तो आँखों में आँसू भरकर प्रतिपल तेरी राह देखती है।

दीनबन्धु : तुमने तो घर का पूरा चित्र खींच दिया।

पद्माकर : बस, आपकी और माँ के आँसुओं की बात सोचकर रत्ना तैयार हो गई। थोड़ा-सा सामान लिया। द्वार पर कुंडी चढ़ाई और चल दिए।

दीनबन्धु : तुलसीदास ने लौटकर जब तुम लोगों को न देखा होगा तो बड़े क्रुद्ध हुए होंगे।

पद्माकर : तो इसके लिए क्या किया जा सकता है, पिताजी ? घर रहते तो वह रत्ना को आने न देते। अगर रत्ना को लाना था तो और कोई उपाय नहीं था। तुलसी जी अगर रूठेंगे तो उन्हें मना लिया जाएगा।

दीनबन्धु : अच्छी बात है। देखा जाएगा। रत्ना रास्ते में बोलती-चालती रही ?

पद्माकर : रास्ते में तो उदास थी पर यहाँ आकर माँ से मिली तो प्रसन्न हो गई। हँस-हँसकर बातें कर रही है।

दीनबन्धु : हाँ, बहुत दिनों की बिछुड़ी बेटी जब माँ से मिलती है तो दुःख की बातें भी हँस-हँसकर कहती है। अच्छा, अब एक महीने तो रत्ना यहीं रहेगी, सावन-भर। देखो, उसे किसी तरह का कष्ट न होने पाए। मैं तो अभी जा रहा हूँ। आज एक जजमान के मंगल-पर्व है। शायद रात-भर वहीं रहना पड़ जाए।

पद्माकर : हाँ, मंगल-पर्व में एक रात तो लग ही जाती है। तो प्रातःकाल ही लौटेंगे ?

दीनबन्धु : बेटी रत्ना आई है। चाहता तो हूँ कि न जाऊँ, पर व्यवहार बिगड़ जाएगा। जब उनके घर कोई उत्सव होता है तो मुझे ही बुलाते हैं।

पद्माकर : नहीं-नहीं, आप चले जाएँ। कोई बात होगी तो मैं देख लूँगा। फिर रात भी तो चढ़ रही है। अब थोड़ी देर बाद सोना ही तो है।

दीनबन्धु : अच्छी बात है। तो मैं चलता हूँ। **(प्रस्थान)**

पद्माकर : (स्वगत) रत्ना अभी तक बातें कर रही होगी, नहीं तो यहाँ आए बिना न रहती। उसकी बातें ही ऐसी हैं कि रात बीत जाए और उसकी बातों का छोर न मिले। **(पुकारकर)** रत्ना ! ओ रत्ना ! ! **(रुककर फिर पुकारकर)** रत्ना ! सुनती ही नहीं।

[नेपथ्य से—'आई, भैया !']

पद्माकर : उससे मिलने के लिए सारा कुनबा भी तो जुड़ गया है।

[अत्यन्त सुन्दरी रत्ना का प्रवेश। नीले परिधान में उसका गौर वर्ण अत्यन्त आकर्षक लग रहा है। खुले हुए लहराते केश, मानो सावन के मेघ लहरा कर उसके केशों में लीन हो गए हैं। माथे पर कस्तूरी बिन्दु, नेत्रों में अंजन और उल्लास की कान्ति, कानों में फूलों के झुमके, मानो एक नवीन शकुन्तला पृथ्वी पर अवतरित हुई हो। कटि में किंकिणी, पैरों में नूपुर और जावक। उसके साथ दो सखियाँ हैं। एक का नाम है पुष्पा और दूसरी का नाम है मालिनी। दोनों ही रत्ना की समवयस्का हैं। दोनों ही सुन्दर हैं। लगता है कि दो लताएँ वसन्त ऋतु में फूलकर हरी-भरी हो गई हैं। दोनों के वस्त्र और आभूषण सुरुचि के द्योतक हैं।]

रत्ना : भैया, आपने पुकारा (**सखियों से परिचय कराते हुए**) ये पुष्पा और ये मालिनी मुझसे ऐसी चिपट गई हैं जैसे गीला कपड़ा तन से चिपट जाता है। इतनी रात हो गई, जाने का नाम ही नहीं लेतीं।

पद्माकर : मेरी बातों से गीला कपड़ा सूख जाएगा, इसलिए मैं तो जाता हूँ। इन्हें अपने तन से लिपटाए रहो। (**प्रस्थान**)

रत्ना : देखा, पुष्पा ! मेरे भाई ऐसे तेजवान हैं कि तुम लोग कहीं सूख न जाओ, इस-लिए दूर भागते हैं।

पुष्पा : किसी अच्छी के पाले पड़ेंगे तो अपने-आप सूख जाएँगे। ये ऐसे सूरज हैं कि कुछ दिनों बाद चाँदनी फैलाएँगे, चाँदनी !

मालिनी : अरी पुष्पा, चाँदनी क्या फैलाएँगे, अमावस हो जाएँगे, अमावस !

[दोनों खिलखिलाकर हँसती हैं।]

रत्ना : मेरे भैया ऐसे होने से तो रहे। तुम बतलाओ कि तुमने किसको अमावस के अँधेरे में छिपा लिया है ?

मालिनी : मैं क्या छिपाऊँगी। तुम्हीं ने बेचारे तुलसीदास को अपना ऐसा चेला बनाया है कि बेचारे राम की कथा कहने के बदले अब तुम्हारी कथा कहते फिरते हैं।

रत्ना : (**हँसकर**) मेरी कथा क्या कहेंगे, मालिनी ! पर मैं उन्हें बिना जतलाए चली आई हूँ, पता नहीं उन्हें कैसा लगा होगा।

पुष्पा : कैसा लगा होगा ? मैं बतलाती हूँ। वे तुम्हें उसी तरह खोज रहे होंगे जैसे अजगर चुहिया को खोजता है, चुहिया को ! (हँसी)

मालिनी : चुहिया नहीं, मृगनयनी, मृगनयनी ! कहीं हाथ से निकल गई तो खोजना कठिन हो जाएगा।

रत्ना : तुम हँस रही हो, पर मेरे मन में आता है कि मैं उनकी आज्ञा के बिना चली आई हूँ तो जैसे मुझसे कोई पाप हो गया है।

पुष्पा : बड़ी भक्तिन, इसमें पाप की क्या बात है ? लड़की अपने नैहर आती है तो क्या कोई पाप करती है ?

रत्ना : इनकी बात अलग है। ये मेरे बिना रह नहीं सकते।

मालिनी : तो यह कहो कि तुमने इतना गहरा जाल बिछा रखा है कि जो पंछी उसमें

फँसा, फँसकर रह गया।

रत्ना : मेरा न कोई जाल है न वे बेचारे पंछी, पर हाँ, इतना अवश्य है कि वे मेरे विना अपने राम की कथा भी नहीं कहते। कथा बाँचने जाते हैं तो मुझे भी अपने साथ ले जाते हैं।

पुष्पा : अच्छा, साथ ले जाते हैं? तब तो तुम उनके साथ ही बैठती होगी व्यास गद्दी पर ?

रत्ना : नहीं, बैठती तो मैं स्त्रियों के बीच ही में हूँ। वे सबसे कथा कहते हैं, पर देखते रहते हैं मेरी तरफ।

मालिनी : तो यह कहो कि वे मेरी रत्ना के मुखचन्द्र के चकोर बन गए हैं।

रत्ना : अब तुम कविता मत करो। पर मेरा इतना सौभाग्य तो अवश्य है कि मेरे पति मेरे सिवाय किसी और को नहीं देखते।

मालिनी : देखेंगे क्या ! तुमने जादू का अंजन जो लगा दिया है उनकी आँखों में।

[नेपथ्य में एक बालिका का मचला हुआ स्वर—अम्माँ···अम्माँ !]

मालिनी : मेरी बेटी मुझे खोजते हुए आ पहुँची। सोकर उठी होगी, घर में मुझे नहीं देखा तो 'अम्माँ, अम्माँ' की पुकार लगा उठी।

रत्ना : अच्छा, तुम्हारी बेटी इतनी बड़ी हो गई ? पिछली बार मैंने उसे देखा था तो (**हाथ से बतलाकर**) इतनी छोटी-सी थी।

मालिनी : तुम बहुत दिनों बाद भी तो आई हो।

[एक पाँच वर्षीया बालिका का ठुमकते हुए प्रवेश]

बालिका : (**हाथ बढ़ाकर**) अम्माँ···अम्माँ !

मालिनी : आ जा मेरे पास, बेटी ! (**गोद में बैठाती है।**)

रत्ना : क्या नाम रखा है इसका ?

मालिनी : उन्होंने ही इसका नाम रखा है, रूपा।

रत्ना : वाह ! जैसा नाम है, ठीक वैसी ही है। (**रूपा की ओर हाथ बढ़ाकर**) आ बेटी आ, मेरी गोद में आ।

मालिनी : जाओ बेटी ! ये तेरी मौसी हैं। इन्हें प्रणाम करो।

रूपा : (**मचले स्वर में**) परनाम करने से क्या होगा ? मेरा गुड्डा जो खो गया है।

रत्ना : अरे, तेरा गुड्डा खो गया है ? हाय, हाय, बड़ा खराब है। मेरे पास आ जा। मैं तेरा गुड्डा खोजकर ला दूँगी।

रूपा : (**पुनः मचले स्वर में**) कहाँ से खोजकर ला दोगी ? अगर उसे मिलना ही होता तो वह खोता ही क्यों ?

मालिनी : ऐसी बात नहीं। तेरा गुड्डा मिल जाएगा।

रूपा : मैं बहुत देर से उसे खोज रही हूँ। मुझे नींद भी नहीं आई। वह बुरा मानकर कहीं चला गया। मेरी गुड़िया बैठी रो रही है।

पुष्पा : तेरी गुड़िया ने कुछ कह दिया होगा, गुड्डा रूठकर चला गया।

रूपा : (**रूठे स्वर में**) मेरी गुड़िया तो सीधी-सादी है। वह क्या कहेगी ? मेरा गुड्डा ही बुरा मानकर कहीं भाग गया। चलो, चलकर उसे अभी खोजो। अभी चलो।

मालिनी : अच्छा, अभी चलती हूँ। तेरा गुड्डा खोज देती हूँ। (**रत्ना से**) अच्छा, रत्ना बहिन ! अब चलती हूँ। रूपा बहुत मचल रही है। कल आऊँगी। तुम भी थक गई होगी। रात बहुत चढ़ आई है, आराम करो।

पुष्पा : आराम करो ! यह आराम करेंगी ? रात-भर उनके सपने देखेंगी।

रत्ना : (**परिहास से**) जैसे तुम देखा करती हो।

मालिनी : तुम दोनों ही देखा करो और नींद न आए तो तारे देखकर रात बिताया करो। (**खिड़की में से आकाश को देखते हुए**) अरे, रात कितनी गहराने लगी ! सप्त ऋषि कितने ऊपर चढ़ गए !

पुष्पा : (**उठकर देखते हुए**) अरे हाँ, सचमुच सप्त ऋषि ऊपर आ गए। बेचारे ध्रुव नक्षत्र के चक्कर लगाते रहते हैं। इन्हीं की आदत बेचारे तुलसीदास ने सीख ली होगी कि हमारी रत्ना के चारों ओर चक्कर लगाते नहीं थकते।

मालिनी : अरे, चक्कर लगाएँ। मेरी रत्ना तो ध्रुव नक्षत्र बनकर यहाँ बैठी है।

पुष्पा : कहीं ऐसा न हो कि चक्कर लगाते-लगाते यहाँ पहुँच जाएँ।

मालिनी : पहुँच भी सकते हैं। पर मेरी रत्ना रानी तो ऐसी ध्रुव नक्षत्र हैं कि उनको देखेंगी तो उलटे उन्हीं के चक्कर लगाने लगेंगी।

रत्ना : तुमने मुझे समझ क्या रखा है ! मैं जहाँ हूँ, बिलकुल अटल हूँ।

पुष्पा : देखूँगी कि तुम कितनी अटल हो। अच्छा, चलो, मालिनी बहिन !

मालिनी : हाँ, चलो। (**रूपा से**) चलो बेटी, तुम्हारा गुड्डा खोज दूँ। पर रात में कहाँ मिलेगा ?

रूपा : (**दुखी स्वर में**) नहीं मिला तो मेरी गुड़िया सब दिन रोती रहेगी। (**मचलकर**) जल्दी चलो।

मालिनी : नहीं, नहीं, जल्दी चलते हैं। (**रत्ना से**) अच्छा, रत्ना बहिन ! चलते हैं। कल मिलेंगे।

पुष्पा : अरे, अब तो हमारी रत्ना बहिन सावन-भर यहीं रहेगी। अच्छा, राम-राम।

रूपा : गुड्डा मिल जाएगा तो मैं भी आऊँगी।

रत्ना : मेरी अच्छी बेटी ! गुड्डा खोजकर जल्दी आना, जल्दी आना, हाँ ?

रूपा : अच्छा, राम-राम।

[सबका राम-राम कर धीरे-धीरे प्रस्थान। रत्ना द्वार तक सबको पहुँचाकर लौटती है। फिर अपने आप—'बहुत देर हो गई।' फिर पुकारती है, 'भैया···भैया !' कोई उत्तर नहीं आता। फिर कहती है—'घर में सब सो गए। अब मैं भी दरवाज़ा बन्द कर सोने जाऊँ।' बाहरी दरवाज़ा बन्द करने जाती है। लौटकर आती है। सोचते हुए कहती है—'पुष्पा कहती है कि कहीं ऐसा न हो कि चक्कर लगाते-लगाते यहाँ पहुँच जाएँ।···कैसे पहुँचेंगे ? उन्हें भी तो अपनी मर्यादा का ध्यान

होगा। अच्छा···चलूँ···' प्रस्थान। कुछ क्षणों तक सन्नाटा रहता है। फिर दरवाज़े पर 'खट्' 'खट्' 'खट्' की आवाज़। तीसरी बार ज़ोर से 'खट्' 'खट्' 'खट्' की आवाज़। रत्ना का प्रवेश]

रत्ना : अरे, क्या पुष्पा है? फिर क्यों लौट आई? क्या कुछ यहाँ भूल गई? (**फिर 'खट्' 'खट्' की आवाज़ होती है। रत्ना दरवाज़ा खोलती है। चौंककर पीछे हट जाती है।**)

रत्ना : (**आश्चर्य से**) अरे, आप! आप!

[युवक तुलसीदास का प्रवेश। अत्यन्त सुन्दर रूप। बड़े-बड़े नेत्र, उठी हुई नासिका, कसे हुए होंठ, पुष्ट शरीर, कुरता-धोती पहने हुए हैं। माथे पर तिलक है जो भीग गया है। गले में तुलसी की माला। नंगे पैर। हाथ में वस्त्रों की एक गठरी, बाल भीगे हुए हैं। अस्तव्यस्त वेश।]

तुलसीदास : हाँ, मैं तुलसीदास! चौंक उठीं?

रत्ना : (**विस्फारित नेत्रों से**) आप!···आप यहाँ कैसे? यहाँ···यहाँ कैसे चले आए?

तुलसीदास : कैसे चले आए? जैसे तुम यहाँ चली आईं! मुझसे बिना पूछे! मैं तुम्हारे भाई के लिए अच्छी-अच्छी चीज़ें बिसाहने के लिए हाट चला गया और मेरे जाते ही तुम अपने भाई के साथ यहाँ चली आईं? जैसे तुम लोग मेरे बाहर जाने की राह देख रहे थे!

रत्ना : ऐसी बात नहीं है···ऐसी बात नहीं है, स्वामी! मेरे भाई मुझे ले जाने के लिए तीन बार आए, एक बार भी आपने उनकी प्रार्थना सुनी? आप घर में रहते तो क्या इस बार भी मुझे आने की आज्ञा देते? यह सावन है—सावन में किस लड़की को नैहर नहीं बुलाया जाता? भाई मुझे लेने के लिए आए···माँ अपनी आँखों में आँसू भरकर मेरी प्रतीक्षा कर रही थीं, पिताजी अपने जीवन में मुझे देखने की आशा छोड़ चुके थे। फिर भी मैं न आती?

तुलसीदास : किन्तु तुम्हारा कर्त्तव्य मेरी ओर भी तो है। मैं चाहता था कि तुम सावन में मेरे साथ रहतीं। सावन की घटाओं के उठने पर तुम्हारे साथ यमुना के किनारे बैठता। तुम्हारे केशों में फूलों के आभूषण सजाता। चातक की भाँति प्रेम की पुकारें उठतीं। इन्द्रधनुष की छाया में हास-विलास होता। क्या मेरी इच्छा उचित नहीं है कि तुम सावन में मेरे साथ रहतीं?

रत्ना : क्या अभी तक नहीं रही? पिछले तीन वर्षों से तो सावन आपके चरणों के समीप ही बीता है। आपने यह क्यों नहीं सोचा कि जिन माता-पिता ने मुझे जन्म दिया है उनके मन की अभिलाषा पूरी करना भी मेरा कर्त्तव्य है?

तुलसीदास : तो तुम्हारे कर्त्तव्य के सामने मेरे प्रेम का कुछ भी मूल्य नहीं है? जिस प्रेम के कारण मैं इस समय मार्ग की अनेक कठिनाइयाँ झेलकर तुम्हारे पास आया हूँ।

रत्ना : ऐसी कठिनाइयों को झेलने की आवश्यकता नहीं थी।

तुलसीदास : तो क्या मेरा आना तुम्हें अच्छा नहीं लगा ?

[रत्ना चुप रहती है।]

तुलसीदास : बोलतीं क्यों नहीं ? क्या मेरे आने पर तुम्हें प्रसन्नता नहीं हुई ? तुमने मेरा स्वागत नहीं किया।

रत्ना : आपका स्वागत ! सिर-आँखों पर, परन्तु मैं तो कहती हूँ कि आपको इस समय नहीं आना चाहिए था।

तुलसीदास : क्यों ? क्यों नहीं आना चाहिए था ? पति का अपनी पत्नी के पास आना किसी प्रकार भी अनुचित नहीं कहा जा सकता।

रत्ना : कहा जा सकता है जबकि उसके आने का अवसर न हो। मैं आपके पास से आई और आप तुरन्त ही मेरे पीछे यहाँ चले आए। आपको अपनी मान-मर्यादा का कुछ ध्यान ही नहीं रहा।

तुलसीदास : कैसी मान-मर्यादा ? प्रेम के समक्ष मान-मर्यादा का कोई मूल्य नहीं, रत्ना ! वसन्त रजनी के क्षणों का हिसाब गिन-गिनकर नहीं लगाया जाता, चन्द्र की कलाएँ जोड़ी नहीं जातीं, स्वयं उदित होती हैं और पूर्णिमा तक पहुँच जाती हैं। प्रेम के प्रवाह में मान-मर्यादा के पहाड़ कट जाते हैं, रत्ना ! शिष्टाचार के करार टूट जाते हैं। कैसी महानता ? कैसी मर्यादा ?

रत्ना : आप अपनी महानता न सोचें, अपनी मर्यादा न समझें, मुझे तो अपनी महानता और मर्यादा समझनी है। आप इतने बड़े सन्त हैं, सोरों और राजापुर में आपका इतना सम्मान है। आप इस घर के जामाता हैं। आपके स्वागत के लिए यहाँ से निमन्त्रण जाना चाहिए। घर के दस आदमी आपको लेने के लिए जाते। मुझे भी गर्व होता कि मेरे स्वामी इतने समारोह से यहाँ लाए गए। यह क्या कि मेरे घर के किसी भी व्यक्ति को सूचना नहीं है और आप रात के समय यहाँ बिना बुलाए किसी अपराधी की तरह छिपकर आए हैं। और···

तुलसीदास : (**बीच ही में तीव्र स्वर से**) रत्ना ! मैं यहाँ अपमानित होने नहीं आया। मैं तुमसे यह कहने के लिए आया हूँ कि तुमको मुझे धोखा देकर नहीं आना चाहिए था, जबकि तुम जानती हो कि मेरा प्रेम भागीरथी की धारा की भाँति पवित्र है। उसके साथ धोखा और छल कैसा ? एक-एक क्षण उभरता है और उसके अन्तराल में तुम्हारा मुख दिखलाई पड़ता है। उषा की प्रथम किरण में तुम्हारा अनुराग राशि-राशि बिखरता है और पक्षियों के कलरव में तुम्हारा गुनगुनाया हुआ संगीत मुझे इस तरह आंदोलित करता है जैसे लहरों पर झूलता हुआ कमल, जो नदी के प्रवाह में न जाने कितनी दूर चला जाता है।

रत्ना : कल्पना अच्छी है ! और आपके प्रेम की मैं सराहना करती हूँ, किन्तु आपके सामने व्यावहारिक जगत् भी तो है, लोक-धर्म भी तो है, कुल-धर्म भी तो है, आपकी शिक्षा-दीक्षा भी तो है। आप उसे एक साथ कैसे भुला सकते हैं ? अपनी मान-

मर्यादा और मेरी लोक-लज्जा की तो रक्षा कीजिए ? मैं तो यही निवेदन करूँगी कि आप इसी समय यहाँ से चले जाएँ। किसी को भी पता न हो कि आप इस तरह छिपकर मेरे पास आए थे। कल मैं अपने भाई को आपकी सेवा में भेजूँगी कि वह आपको यहाँ आने का निमन्त्रण दें। आप आवें। हम सब आपको सिर-माथे लें। आपका यहाँ उचित सम्मान हो। पर इस समय ? इस समय आप यहाँ से जाएँ।

तुलसीदास : और यदि न जाऊँ तो ?

रत्ना : तो···तो···मैं आपसे क्या कहूँ ! यही कहूँगी कि आपको इस प्रकार आने में लज्जा भी नहीं आई ?

तुलसीदास : लज्जा ? लज्जा तो स्त्रियों का आभूषण है, रत्ना ! पुरुषों का नहीं। पुरुष तो प्रेम करने में ही अपना पुरुषार्थ समझता है। और रत्ना, तुम नहीं जानतीं कि मेरा जीवन तुम्हारे बिना वैसा ही है जैसे पानी के बिना मछली का होता है। मैं अपने मन की व्याकुलता शब्दों द्वारा नहीं कह सकता।

रत्ना : मैं यह जानती हूँ। किंतु जीवन इस तरह नहीं चल सकता, स्वामी ! मनुष्य को तो सभी परिस्थितियों का सामना साहस से करना चाहिए। और फिर मुझमें ऐसा है ही क्या ?

तुलसीदास : यह तुम नहीं जानतीं, रत्ना, कि तुम क्या हो ! जब मैं हाट से घर लौटा तो देखा—घर के दरवाज़े पर कुण्डी चढ़ी है। घर में कोई नहीं है। सारा घर ऐसा लगता था कि शरीर से प्राण निकल गए हों और शरीर निश्चेष्ट पड़ा हो। कोई शव से प्यार नहीं कर सकता। इसी तरह मुझे तुम्हारे बिना घर अच्छा नहीं लगा और मैं तुरन्त चल पड़ा।

रत्ना : ऐसे वेश में ?

तुलसीदास : वेश की चिंता मुझे क्या रह गई ? यमुना के किनारे आया। ओह ! कितनी बाढ़ थी यमुना में ! कपड़ों की गठरी बनाकर सिर पर बाँधी और कूद पड़ा जल के प्रवाह में।

रत्ना : हाय ! आपने नौका भी नहीं ली ?

तुलसीदास : अरे, नौका की चिंता कौन करता ? बेचारी यमुना समझती थी कि वही बाढ़ पर है। उस अभागिनी को यह नहीं ज्ञात था कि उसकी बाढ़ से अधिक बाढ़ मेरी वेदना में है। लहरों को चीरते हुए मैं इस पार आ गया। आकर मैंने गठरी से निकालकर कपड़े बदले और यहाँ पहुँच गया। देखो, यह गठरी। (**गठरी दिखलाते हैं।**)

रत्ना : इस गठरी में गीले कपड़े हैं ?

तुलसीदास : हाँ, तैरते समय जो कपड़े गीले हो गए थे, वे मैंने इस गठरी में बाँध लिए।

रत्ना : लाइए, इन्हें सुखा दूँ···या सुखाने से क्या लाभ ? जब आप अभी लौटेंगे तो फिर इन कपड़ों की आवश्यकता पड़ेगी।

तुलसीदास : रत्ना ! अब आकर मैं लौट नहीं सकता। यहाँ आकर मैंने तुम्हें देखा है तो

लगता है जैसे वर्षा हो जाए और वृक्ष धुलकर हरा-भरा हो जाए। तुमसे मिलकर लगा कि आकाश मे बादल हट गए और पूर्ण चन्द्र का प्रकाश फैल गया।

रत्ना : यह सब आपकी कृपा है, पर मैं फिर कहती हूँ कि इस समय आपको मर्यादा का ध्यान रखते हुए लौट जाना चाहिए। घर के सब लोग सो रहे हैं, किसी को आपके आने का पता भी नहीं चलेगा, आपकी मर्यादा सुरक्षित रहेगी।

तुलसीदास : मर्यादा का ध्यान उसे हो जो प्रेम को शिष्टाचार मानता है। मेरा प्रेम आत्मा की पुकार है, जिसकी गूँज में संसार की दिशाएँ भी छोटी हो जाती हैं।

रत्ना : यह आत्मा की पुकार मेरे लिए है ?

तुलसीदास : हाँ, रत्ना ! तुम्हारे लिए, केवल तुम्हारे लिए। रत्ना ! इच्छा होती है कि तुम्हें रत्न की तरह एक मंजूषा में रख लूँ और तुम्हें हृदय में इस तरह छिपा लूँ कि तुम पर किसी की भी दृष्टि न पड़े। जब मैं महाकवि कालिदास का 'मेघदूत' पढ़ता हूँ तो तुम्हारा स्मरण हो आता है। वह कहते हैं :

श्यामास्वग चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छाया शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदी वीचिषु भ्रू-विलासान्
हंतै कस्मिन्क्वचिदपि न ते चंडि ! सादृश्यमस्ति ॥

महाकवि कहते हैं कि 'हे प्रिये ! प्रियंगु की लता में तुम्हारा शरीर, चकित हरिणी के देखने में तुम्हारी चितवन, चन्द्रमा में तुम्हारा मुख, मयूर पंख में तुम्हारे केश, नदी की छोटी-छोटी लहरों में तुम्हारा कटाक्ष, मैं यहाँ देखा करता हूँ, किंतु इनमें से कोई भी किसी प्रकार तुम्हारी समता नहीं कर सकता।' ऐसी ही हो तुम, मेरी रत्ना ! हो न ?

रत्ना : हूँ, सदैव रहूँगी, किंतु ··

तुलसीदास : किंतु नहीं, रत्ना ! शकुन्तला को देखकर दुष्यन्त ने क्या कहा ? कहूँ ?

आ दर्शनात्प्रविष्टा सा मे सुरलोक सुन्दरी हृदयम्,
वाणेन मकरकेतो कृतमार्गमवन्ध्य पातेन ॥

अर्थ समझती हो ? महाकवि कहते हैं :

'कामदेव ने अपने बाण मारकर जो मार्ग बना दिया है, उसमें वह स्वर्गलोक की सुन्दरी शकुन्तला देखने-मात्र से मेरे हृदय में समा गई।'

रत्ना : (**व्यंग्य से**) कहाँ स्वर्गलोक की सुन्दरी शकुन्तला और कहाँ संसार की सामान्य स्त्री रत्ना !

तुलसीदास : किंतु संसार की सामान्य स्त्रियों में ऐसा सौन्दर्य नहीं है, जैसा तुममें है।

रत्ना : आपका प्रेम है जो मेरे सौन्दर्य की सराहना करता है, पर इसकी भी सीमा है।

तुलसीदास : यह सीमा अनन्त है, रत्ना ! मेरे प्रेम की सीमा अनन्त है। तुम्हारे प्रेम को केन्द्र मानकर यह सीमा अनन्त है।

रत्ना : यदि आपके प्रेम की सीमा इस देह के लिए अनन्त है तो इस देह के नष्ट हो जाने पर क्या उसका अन्त नहीं होगा ?

तुलसीदास : (तीव्रता से) रत्ना ! ऐसा मत कहो, रत्ना ! ऐसा मत कहो। ऐसा मैं सुन नहीं सकूँगा।

रत्ना : यह सत्य है, स्वामी ! मैं तो आपके प्रेम की सीमा को देखकर कहती हूँ कि आपके प्रेम की सीमा तो तब अनन्त होगी जब यह आपके प्रभु **(रामपंचायतन की ओर संकेत कर)** राम के प्रति हो, जो स्वयं अनन्त हैं। अनन्त प्रभु में ही प्रेम की सीमा अनन्त होगी। और यह सीमा संसार के भय को भी पीछे छोड़ जाएगी।

तुलसीदास : (हतप्रभ होकर) संसार···के···भय को ··

रत्ना : (दृढ़ता से) हाँ, जिस गहराई से आपका प्रेम मेरे लिए है, मेरे शरीर के लिए है यदि उतनी गहराई से आपका प्रेम प्रभु राम के लिए हो···तो···तो···

तुलसीदास : प्रभु राम···के लिए···प्रभु राम के···लिए···और तुम्हारे लिए ?

रत्ना : मेरे लिए ? जिस तरह आप मेरे बिना एक क्षण नहीं रह सकते यदि उसी तरह आप राम के बिना एक क्षण भी न रहें तो···

तुलसीदास : (सोचते हुए) राम के बिना ? मैंने यही बात···यही बात···न जाने कितनी बार अपनी राम की कथा में कही है पर···पर इतनी गहराई से···इतनी गहराई से मैंने नहीं सोचा। जितनी गहराई से मैं रत्ना को प्यार करता हूँ···उतनी··· उतनी गहराई से क्या मैं राम को प्रेम कर सकूँगा ? जिनकी कथा बार-बार कहते नहीं थकता। **(चीखकर)** हाँ, इतनी ही गहराई से राम को प्यार कर सकता हूँ, रत्ना ! फिर···फिर तुम्हारे प्रति मेरे प्रेम का क्या होगा ? क्या होगा, रत्ना ? राम के प्रति प्रेम हो और तुम्हारे प्रति ? तुमने मेरे प्रेम को क्या कर दिया···क्या दिया ? कर तुम्हारे इस सुन्दर शरीर से मेरी आसक्ति कैसे हटेगी ? **(रुककर)** नहीं हटेगी। नहीं हटेगी, पर···पर···इस ओर रत्ना··· उस ओर राम। **(सिर पकड़कर)** ओह, मैं कहाँ जाऊँ ? **(रामपंचायतन के चित्र को पकड़कर)** बोलो राम ! जैसा प्रेम मैं रत्ना से कर सका, वैसा तुम्हारे प्रति··· तुम्हारे प्रति··· तुमसे हो सकेगा ? हो सकेगा ? बोलो, राम ! बोलो···।

[कुछ क्षणों तक निस्तब्धता]

किसके बिना, कहाँ रहूँ ? राम···रत्ना ! रत्ना और राम ! आज रत्ना के प्रेम की गहराई को लेकर तुम्हें समझा हूँ, राम ! कितनी बार मैंने तुम्हारा नाम लिया पर तुम्हें नहीं समझा ! अब समझ सका हूँ, राम ! **(सिर पकड़कर)** रत्ना ! अब तू कहाँ है ?

रत्ना : मैं यहाँ हूँ, स्वामी ! क्या मैंने कोई अनुचित बात कही ?

तुलसीदास : (स्वस्थ होकर गम्भीरता से) नहीं, रत्ना ! तुमने सत्य बात कही। और उसी सत्य से तुमने मेरे संस्कारों को जगा दिया। **(सोचते हुए)** बाबा नरहरिदास ने जो रामकथा मुझे बार-बार सुनाई थी, संत शेषसनातन ने जो ज्ञान दिया था वह

मैं भूल गया था। तुमने मुझे स्मरण करा दिया, रत्ना ! तुमने मुझे स्मरण करा दिया। (**सोचते हुए**) प्रभु का प्रेम···प्रभु का प्रेम···इतनी गहराई से प्रभु का प्रेम ···अस्थिचर्ममय देह से क्या प्रेम हो ? उसके नष्ट होने पर मेरे प्रेम की सीमा कहाँ रहेगी ? तुमने ठीक कहा, रत्ना ! यदि प्रेम की ऐसी आसक्ति प्रभु राम के प्रति हो तो संसार का बन्धन छूट जाए।

रत्ना : सो तो छूट जाएगा। पर आप बहुत विह्वल हो गए। आप थक गए होंगे। कुछ खा लीजिए। मैं कुछ मिठाइयाँ ला रही हूँ। आते समय मैंने बिसाही थीं।

तुलसीदास : नहीं, नहीं, अब किसी मिठाई में स्वाद नहीं रहा। अब स्वाद तो उस परम सत्य में है जिसका संकेत तुमने किया है—जो वाणी, मन और दृष्टि से अतीत है। कठोपनिषद् में कहा गया है :

'नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।'

अब इसे सही अर्थों में समझ पाया।

रत्ना : मैं अपने को धन्य समझती हूँ कि मेरे छोटे-से कथन से आपने परम सत्य को पहचाना है।

तुलसीदास : पहचाना है। इसलिए अब जाऊँगा।

रत्ना : कहाँ ?

तुलसीदास : अपने घर !···और अब मेरा घर ही कहाँ है ? संसार में जहाँ जाऊँगा वहीं मेरा घर होगा।

रत्ना : (**मुस्कुराकर**) स्वामी ! आप मुझसे परिहास तो नहीं कर रहे हैं ?

तुलसीदास : अभी तक जो कुछ करता रहा वह प्रेम का परिहास था। अब मैं वास्तविक प्रेम के क्षेत्र में जा रहा हूँ। तुम्हीं ने कहा था, अस्थिचर्ममय देह के प्रति प्रेम करने की अपेक्षा प्रभु के प्रति प्रेम करने से संसार का बन्धन छूट जाता है। छूट गया !

रत्ना : मैंने तो अस्थिचर्ममय देह की बात इसलिए कह दी थी कि आप अपनी मर्यादा और लज्जा बचाने के लिए घर लौट जाएँ। आप किसी प्रकार नहीं लौट रहे थे तो मैंने आपकी मर्यादा की रक्षा के लिए ही ऐसी बात कह दी थी कि आप निश्चय ही लौट जाएँ।

तुलसीदास : अब सदैव के लिए लौट रहा हूँ, सदैव के लिए।

रत्ना : (**घबराकर**) सदैव के लिए ? नहीं, नहीं, स्वामी ! मैं नहीं जानती थी कि मेरी एक छोटी-सी बात आपको इस तरह लग जाएगी। कहिए, तो मैं अपनी जीभ काट लूँ। ऐसी बातें तो न जाने कितनी बार कही जाती हैं। आप भी कथा में परम तत्त्व की बात कहते हैं। मैंने कह दिया तो क्या अपराध किया ?

तुलसीदास : अपराध नहीं, रत्ना ! तुमने मुझ पर उपकार किया है। मेरे समस्त सोये हुए संस्कारों को जगा दिया। पहले राम को पुकारता था, फिर माया को पुकारने लगा। माया का दास बनकर मैं अपने को स्वामी समझने लगा।

रत्ना : स्वामी तो आप हैं ही। माया के स्वामी और मेरे स्वामी।

तुलसीदास : यह सब मिथ्या है, रत्ना ! जिस गहराई से मैं तुम्हें प्यार करता रहा हूँ, अब उसी गहराई को समझ रहा हूँ। उसी से···उसी से अब अपने राम को प्यार करूँगा।

रत्ना : कीजिए न। पर आप घर पर रहकर, मेरी सेवाएँ स्वीकार करते हुए भी तो अपने राम से प्यार कर सकते हैं ?

तुलसीदास : एक म्यान में दो तलवारें नहीं रखी जा सकतीं, रत्ना ! एक हृदय में दो प्रेमियों के लिए स्थान नहीं है।

रत्ना : मैं प्रेमी कहाँ, मैं तो दासी हूँ, स्वामी !

तुलसीदास : यह सब माया की भाषा है।

रत्ना : अब मेरी भाषा को आप माया की भाषा कहने लगे ? मैंने थोड़ी-सी हँसी की और आप ऐसी बातें करने लगे ? कहाँ कहते थे—प्यारी रत्ने ! हम दोनों कभी एक-दूसरे से अलग नहीं रह सकते। अभी कहते थे कि मेरा जीवन तुम्हारे बिना वैसा ही है जैसे पानी के बिना मछली का होता है। तो वह मछली कहाँ है जो मेरे बिना तड़पती है ?

तुलसीदास : अब उसे प्रभु के प्रेम का सागर मिल गया है।

रत्ना : (**हँसकर**) पर सागर तो खारा होता है। मेरे प्रेम के सरोवर का जल मीठा है।

तुलसीदास : उससे अधिक मीठा प्रभु राम के प्रेम-सरोवर का जल है।

रत्ना : एक क्षण में आप इतने कैसे बदल गए, स्वामी ? आपने मेरी माता से कहा था कि रत्ना मेरे सिर पर उसी प्रकार शोभायमान रहेगी जिस प्रकार शिवजी के शीश पर चन्द्रकला रहती है। तो अब आप उस चन्द्रकला को छोड़कर अमावस में प्रभु की भक्ति करेंगे ?

तुलसीदास : प्रभु की भक्ति में चन्द्र की एक कला सोलह कलाएँ बन जाती है।

रत्ना : (**घुटने टेककर**) स्वामी ! आप बुरा मान गए ! देखिए, यह ज्ञान का अभिनय बहुत हो चुका। अब मुझमें सहन करने की शक्ति नहीं है। मैंने जो कुछ कहा उसके लिए आप मुझे क्षमा कर दीजिए। आप थक गए होंगे, शयन करें।

तुलसीदास : (**रत्ना को उठाकर**) उठो, रत्ना ! तुम जाकर शयन करो। अब मैं जाऊँगा। मेरे लिए शयन कहाँ ! शयन वे लोग करें जो रत्ना की तरह अपनी पत्नी को प्यार करते हैं।

रत्ना : (**हाथ बढ़ाकर**) नहीं, नहीं, प्रभु ! मुझे छोड़कर आप कहीं न जाएँ। (**सिसकियाँ लेकर**) अब मैं आपको किसी भाँति भी नहीं जाने दूँगी। लोक-मर्यादा की मुझे कोई चिन्ता नहीं ! यदि कोई कुछ कहेगा तो मैं उत्तर दे लूँगी।

[उठकर दो पग आगे बढ़ती है।]

तुलसीदास : कोई उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है। मेरे प्रति यह आकर्षण मोह ही है, रत्ना ! इससे बचो। मेरा क्या है, मैं जीवन-भर भिखारी रहा। भीख माँगता रहा।

विवाह होने पर दाता होने का स्वांग भर लिया। पर मुझे भिक्षा माँगने में ही आनन्द है। इस भिक्षा में मुझे राम के नाम की भिक्षा अवश्य मिल जाएगी।

रत्ना : अवश्य मिल जाएगी। पर अभी न जाएँ, बाहर अँधेरी रात है।

तुलसीदास : वह रात बीत चुकी। प्रभात हो गया। बाहर भले ही अन्धकार हो, मन के भीतर प्रभु के प्रेम का प्रकाश हो गया है। मैं जाता हूँ।

[चलने के लिए उद्यत होते हैं।]

रत्ना : **(सिसकियाँ लेकर)** नहीं, स्वामी ! रुक जाइए।

तुलसीदास : नहीं, रत्ना ! अब जागकर फिर नहीं सोऊँगा।

[नेपथ्य में एक भिखारी तानपूरे पर स्वर से गा रहा है—]

भजो मन, राम-नाम सुखदायी,
भजो मन राम-नाम सुखदायी।
राम-नाम···राम-नाम···राम-नाम···

तुलसीदास : **(हाथ उठाकर)** वह स्वर मुझे पुकार रहा है, रत्ना ! मेरे प्रभु मुझे पुकार रहे हैं। मैं जाऊँगा। **(नेपथ्य में तेज़ी से जाते हुए)** जाऊँगा।

रत्ना : **(पुकारकर)** स्वामी ! मत जाओ। मत जाओ ! स्वामी-ई-ई !

[रत्ना हाथ बढ़ाए हुए गिर पड़ती है।]

[परदा गिरता है।]

तीसरा अंक

स्थान : काशी
समय : रात्रि का दूसरा प्रहर

[सन्त तुलसीदास की कुटी। उसके बाहर चौरस भूमि पर एक चटाई बिछी हुई है। सामने चौकी है, उस पर लिखने की सामग्री है। कुटी के बाहरी ओर राम-पंचायतन का चित्र है। तुलसीदास बैठे हुए चौकी पर कुछ लिख रहे हैं। लिखते समय स्वर से पढ़ते जाते हैं : सिय राम सरूप अगाध अनूप बिलोचन मीननु को जलु है। स्रुति राम कथा, मुख रामु को नाम हिए पुनि रामहिं को थलु है। मति रामहिं सों, गति रामहिं सों, रति राम सों रामहिं को बलु है। सब की न कहै तुलसी के मते, इतनो जग जीवन को फलु है। **(समाप्त होते स्वर से)**···जीवन को फलु है। **(सोचते हुए)** राम का प्रेम···राम से प्रेम। रत्ने ! तू धन्य है। **(टहलते हुए)** कटे एक रघुनाथ संग, बाँधि जटा सिर केस।

हम तो चाखा प्रेम-रस, पतनी के उपदेस !! (फिर दुहराते हुए) हम तो चाखा प्रेम-रस, पतनी के उपदेस !!]

[एक सेवक का प्रवेश]

सेवक : स्वामीजी ! आपने अभी तक विश्राम नहीं किया ?

तुलसीदास : विश्राम ? विश्राम कहाँ, रामरूप ? इस संसार में प्रभु के चरणों को छोड़कर विश्राम कहाँ ? जीवन के सारे कार्य अधूरे लगते हैं, जैसे कोई रेखा हो जो स्थान-स्थान पर टूट गई हो। जब उसमें 'राम' शब्द लिख देता हूँ तो रेखाएँ जुड़ जाती हैं। काल की गति जैसे एक सूखी लता है, राम के नाम से सींचता हूँ तो हरी-भरी हो जाती है और उसमें फूल खिल आते हैं।

रामरूप : महाराज ! आपकी राम-भक्ति तो संसार में प्रसिद्ध है। आपके साथ मैंने न जाने कितने तीर्थों में भ्रमण किया। अयोध्या, पुरी, रामेश्वर, द्वारिका, बदरी-नारायण, मानसरोवर, सैकड़ों सन्तों से सत्संग किया, किन्तु कितने संतों ने आपकी भाँति साधना की ?

तुलसीदास : किसी सन्त की साधना को कम नहीं समझना चाहिए। रामरूप ! सभी अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रभु के उपासक हैं। पिछले चौदह वर्षों में अनेक सन्तों के सत्संग में मैंने इसी तत्त्व को समझा है। जिस पर प्रभु की कृपा होती है वही भक्ति-पथ का अधिकारी होता है। प्रभु को वही जान सकता है जिसे प्रभु अपने-आपको जना देते हैं। इसमें सन्तों का क्या वश ? भक्त तो केवल पुष्प है, प्रभु की कृपा से ही उसमें सुगन्ध आती है।

रामरूप : यही आपने रामचरितमानस में लिखा है, स्वामीजी ! पर एक बात पूछने में संकोच होता है, प्रभु ! आपके मुख से अनेक बार सुना है—'हम तो चाखा प्रेम-रस, पतनी के उपदेस।' इसका क्या रहस्य है, स्वामी ?

तुलसीदास : रामरूप ! मुझे किसी से कुछ नहीं छिपाना। यह मेरे गृहस्थ जीवन की कथा है। अपनी पत्नी के प्रति मेरा प्रेम की कोई सीमा नहीं थी। एक बार उसने परिहास से कह दिया— जितना प्रेम आपका मेरे प्रति है, यदि वैसा ही प्रेम प्रभु राम के प्रति होता तो संसार की बाधा से मुक्ति मिल जाती। जैसे सरस्वती के कंठ से ही यह वाणी निकली हो ! मेरे बचपन के संस्कार जाग उठे। मैंने गृहस्थाश्रम छोड़कर अपने राम की शरण ली। चौदह वर्षों तक तीर्थों में भ्रमण करता रहा पर अनेक बार मेरी स्मृति में मेरी पत्नी रत्ना झाँक जाती है। मैं उसे प्रणाम करता हूँ। कहता हूँ—रत्ना ! तू मेरी पत्नी नहीं, मेरी गुरु है। मैं माया-मोह के अँधेरे में भटक रहा था, तूने मुझे दिव्य प्रकाश से भर दिया। दिव्य प्रकाश ! मेरे राम का दिव्य प्रकाश !

रामरूप : प्रभु ! आपका प्रेम धन्य है। मैं भी आपकी पत्नी को प्रणाम करता हूँ कि उन्होंने संसार को एक महात्मा प्रदान किया।

तुलसीदास : रामरूप ! महात्मा कहकर इस शब्द का उपहास मत करो। मैं क्या हूँ तुम जानते हो ?

> मातु पिता जग जाइ तज्यो विधि हू न लिखी कछु भाल भलाई।
> नीच निरादर भाजन कादर कूकर टूकन लागि ललाई।
> राम सुभाव सुन्यो तुलसी प्रभु सों कह्यो बारक पेट खलाई।
> स्वारथ को परमारथ को रघुनाथ सो साहबु खोरि न लाई ॥

रामरूप : प्रभु ! आप इतने महान होकर भी अपने को इतना हीन मानते हैं ! श्रीराम के सेवक की यही तो विशेषता होती है। एक विनय निवेदन करनी है। आपसे भेंट करने के लिए बड़ी देर से श्री गंगाराम ज्योतिषी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैंने उनसे कहा था कि आप विश्राम कर रहे होंगे, पर आप तो विश्राम की बात ही नहीं सोचते। यदि आज्ञा हो तो उन्हें आने के लिए कह दूँ।

तुलसीदास : श्री गंगारामजी आए हैं ! तो उन्हें आने के लिए कह दो।

रामरूप : जैसी आज्ञा। (**प्रस्थान**)

तुलसीदास : (**अपने आप**) गंगाराम ज्योतिषी ! मेरे मित्र ! मेरे 'रामाज्ञा प्रश्न' से प्रभु राम ने जिनके प्राण संकट से बचाए ! गंगाराम ज्योतिषी !

[गंगाराम ज्योतिषी का प्रवेश]

गंगाराम : नमो नारायण, महात्माजी ! आपने जो आज्ञा दी थी उसके अनुसार बारह हज़ार रुपयों से महावीर स्वामी के बारह मन्दिर बनवा दिए। आज सब मन्दिर पूरे बन गए।

तुलसीदास : बहुत अच्छा ! महावीर स्वामी सबका कल्याण करें ! गंगारामजी ! धन की उपयोगिता तभी है जब वह प्रभु की सेवा में समर्पित किया जाए, या मानव के कल्याण में लगाया जाए।

गंगाराम : आपका कहना यथार्थ है, स्वामीजी ! इसलिए मेरा तो फिर भी निवेदन है कि राजघाट के राजा साहब ने राजकुमारजी के सकुशल लौटने पर सगुन निकालने के लिए जो एक लाख रुपया प्रदान किया था, उसे आप स्वीकार करें।

तुलसीदास : मैं क्यों स्वीकार करूँ ? सगुन तो आपने निकाला था।

गंगाराम : पर वह सगुन आपके ग्रंथ 'रामाज्ञा प्रश्न' से ही तो निकाल सका। और आपने भी मेरे प्राणों का संकट देखकर छः घंटों में ही उसकी रचना कर दी।

तुलसीदास : यह सब प्रभु राम की कृपा है।

गंगाराम : आपकी राम-भक्ति ने कितनों का कल्याण किया है, यह संसार जानता है। कुछ वर्ष पहले चित्तौड़ की महारानी मीरांबाई जब अपने घर वालों द्वारा संकट में डाली गईं और उन्होंने आपसे सम्मति माँगी तो आपने कितना सुन्दर पद लिख भेजा था !

जाके प्रिय न राम वैदेही ।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ।।

तुलसीदास : इसके बाद तो वह द्वारिका चली गईं।

गंगाराम : हाँ, उन्होंने अपने गिरधर गोपाल की वहीं भक्ति की और फिर एक दिन अपने प्रभु में ही लीन हो गईं।

तुलसीदास : वह परम भागवत थीं।

गंगाराम : पर स्वामीजी ! यहाँ काशी में तो कोई भी भागवत नहीं। यहाँ तो शैवगण बड़ा उपद्रव मचा रहे हैं। किसी भी वैष्णव को देखते हैं तो जैसे उनके तन-मन में आग लग जाती है।

तुलसीदास : चाहे जो जिस सम्प्रदाय में हो, मैं तो उसकी भक्ति की तीव्रता देखता हूँ। मेरा उनसे कोई द्वेष नहीं है, पर वे व्यर्थ ही मुझे कष्ट पहुँचाना चाहते हैं। मैंने शिवजी से भी प्रार्थना की :

गाँव बसत वामदेव, मैं कबहुँ न निहोरे ।
अधिभौतिक बाधा भई, ते किंकर तोरे ।।

गंगाराम : यह आपकी सरलता है, स्वामीजी ! कहाँ आप और कहाँ ये शैवगण ! ये लोग धर्म को खण्ड-खण्ड कर सम्प्रदाओं में बाँटना चाहते हैं, जहाँ आप समस्त धर्मों का समन्वय करना चाहते हैं।

तुलसीदास : यही हाल मेरे मित्र टोडर का था। वे धर्मों के समन्वय के पक्ष में थे पर गोसाइंयों ने उन्हें तलवार से काट डाला। हाय !

चार गाँव को ठाकुरो, मन को महा महीप !
तुलसी या कलि काल में अथये टोडर दीप !!

गंगाराम : आप दुखी न हों, महाराज ! टोडर भक्तरत्न थे।

तुलसीदास : प्रभु राम की ऐसी ही इच्छा थी। इस काशी की कदर्थना, उसके गाँव-गाँव, गली-गली में महामारी, पर भूतनाथ शंकर ने किसी प्रकार रक्षा नहीं की।

गंगाराम : आपने जो रामचरितमानस की रचना की है उससे काशी की भूमि का कल्याण होगा। शताब्दियों तक यह ग्रन्थ मानव-समाज की रक्षा करेगा।

[नेपथ्य में तुरही नाद]

गंगाराम : देखिए, मेरी बात का समर्थन तुरहीनाद से हुआ।

[एक सिपाही का प्रवेश]

सिपाही : **(दरबारी अन्दाज से सलाम करता है)** महाराज ! बादशाह सलामत जलालुद्दीन अकबर के पंजहज़ारी मनसबदार बुलन्द इकबाल अब्दुर्रहीम खानखाना साहब तशरीफ ला रहे हैं।

तुलसीदास : **(प्रसन्नता से)** रहीम खानखाना ? वह तो हमारे स्नेही और परम मित्र

हैं। बहुत बड़े कवि भी हैं। वह यहाँ अवश्य आने की कृपा करें।

गंगाराम : (**सिपाही से**) उनसे अर्ज़ करो, वह यहाँ ज़रूर तशरीफ लाएँ।

सिपाही : (**सिर झुकाकर**) जो हुकुम। (**प्रस्थान**)

तुलसीदास : रहीम खानखाना सैनिक होकर भी बहुत अच्छे कवि हैं।

गंगाराम : सचमुच वह बहुत ऊँचे कवि हैं। और फिर, मुसलमान होकर भी भक्ति की ऐसी सुन्दर रचना करते हैं कि बस, रोमांच हो जाता है। उनका एक दोहा इस समय मुझे स्मरण आ रहा है—वह गंगाजी से प्रार्थना करते हैं—

तुलसीदास : (**मुस्कराकर**) आपसे ? गंगाराम से ?

गंगाराम : (**संकुचित होकर**) नहीं, नहीं, गंगा माता से···

अच्युत चरन तरंगिनी, सिव-सिर मालति-माल।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजौ इन्दव-माल॥

वह गंगाजी में स्नान कर विष्णु नहीं बनना चाहते, शिव बनना चाहते हैं, जिससे वह गंगाजी को मस्तक पर रख सकें। विष्णु बनने से तो गंगाजी उनके चरणों से निकलेंगी। वाह, क्या भक्ति है !

(**नेपथ्य से**) बुलन्द इकबाल पंजहज़ारी मनसबदार अब्दुर्रहीम खानखाना साहब तशरीफ ला रहे हैं !

[पूरे राजसी वेश में कुछ मुसाहिबों-सहित अब्दुर्रहीम खानखाना का प्रवेश। ज़री की पगड़ी। ऊपर कलंगी। गले में मोतियों के हार। कमखाब की शेरवानी और रेशमी पायजामा। कमर में कमरबन्द। पैर में ज़री के जूते। उन्हें देखकर तुलसीदासजी और गंगारामजी खड़े हो जाते हैं। खानखाना बाहर ही जूते उतारकर प्रवेश करते हैं। मुसाहिब बाहर चले जाते हैं।]

रहीम : गोसाईं तुलसीदासजी को प्रणाम करता हूँ। अरे, आप लोग बैठिए।

तुलसीदास : स्वस्ति ! खानखाना साहब, आइए। बहुत दिनों बाद आपके दर्शन हुए।

गंगाराम : मैं खानखाना साहब को नमस्कार करता हूँ।

तुलसीदास : (**गंगाराम की ओर संकेत करते हुए**) यह मेरे मित्र ज्योतिषी गंगारामजी हैं।

रहीम : मेरा भी नमस्कार लीजिए। (**हाथ जोड़ते हैं**) कहिए ज्योतिषीजी ! काशी की हालत कब तक अच्छी होगी ?

गंगाराम : अब तुलसीदासजी का 'रामाज्ञा प्रश्न' देखकर बतलाऊँगा।

तुलसीदास : प्रभु राम की कृपा से सब ठीक हो जाएगा। कहिए, आप अच्छी तरह से हैं ?

रहीम : क्या बताएँ, स्वामीजी ! बादशाह सलामत ने मुझे शाही सेना के साथ अहमदाबाद भेज दिया था। गुजरात के मुज़फ़्फ़र ख़ाँ की सेना में सात हज़ार सवार थे और उसने एकसाथ धावा बोल दिया। मेरे पास केवल तीन सौ घुड़सवार और

सौ हाथी थे। अब क्या हो ? तभी मैंने ख्वाजा निज़ामुद्दीन से कहा कि तुम मुज़फ़्फ़र ख़ाँ की सेना के पीछे पहुँचकर आक्रमण करो। उसने ऐसा हल्ला बोला कि मुज़फ़्फ़र ख़ाँ की सेना में भगदड़ मच गई। और जहाँ से हम जीते निकलकर न आते, वहाँ से जीत के डंके बजाते हुए लौटे।

तुलसीदास : प्रभु राम आपको सदैव ही विजय दिलाते रहें। आप जितने अच्छे कवि हैं, उतने ही अच्छे सेनापति भी हैं।

रहीम : यह सब आप जैसे महात्माओं का ही आशीर्वाद है। बादशाह सलामत बहुत खुश हुए। उन्होंने बहुत-से तोहफे देकर कहा कि खानखाना, तुम एक महीने आराम करो। मैंने सोचा, ठीक है। एक महीने में अपना 'बरवै नायिका भेद' पूरा कर लूँगा। फिर सुना कि आप काशी में निवास कर रहे हैं। तो तय किया कि आपके दर्शन करूँ।

तुलसीदास : आपने बड़ी कृपा की।

रहीम : आपके दर्शन करना तो मेरा सौभाग्य है। आपकी कविता से—और विशेषकर आपके रामचरितमानस से मुझे बहुत प्रेरणा मिलती है।

गंगाराम : आप कविता तो बहुत अच्छी लिखते हैं। और बरवै छन्द तो मन छू लेता है।

रहीम : अरे, मैं क्या लिखता हूँ और बरवै छन्द की बात कहते हैं तो वह छन्द ही ऐसा है कि उसके सुनने-मात्र से शरीर रोमांचित हो उठता है। बात यह हुई कि मेरे एक कर्मचारी ने अपने विवाह के लिए कुछ दिनों की छुट्टी ली। विवाह के आनन्द में अधिक दिन बीत गए। कर्मचारी बेचारा चिन्तित हुआ तो उसकी पत्नी ने पति के हाथ मेरी सेवा में एक छन्द लिख भेजा :

प्रेम प्रीति को बिरवा चले लगाय।
सींचन की सुधि लीजो, मुरझि न जाय।।

यह छन्द पढ़कर मेरा मन खिल गया। मैंने कर्मचारी को देर के लिए क्षमा कर दिया। छन्द की ऊपर की पंक्ति में 'बिरवा' शब्द आने से मैंने इस छन्द का नाम 'बरवै' रख दिया। और उसी छन्द में अपना 'नायिका भेद' लिखना आरम्भ किया :

लहरत लहर लहरिया लहर बहार।
मोती जरी किनरियाँ बिथुरे बार।।

गंगाराम : वाह ! वाह ! बहुत सुन्दर छन्द है !

रहीम : महात्माजी के प्रभाव से मैंने भक्ति-सम्बन्धी कुछ दोहे भी लिखे हैं :

धूरि धरत निज सीस पै, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि-पतनी तरी, सो ढूँढ़त गजराज।।

तुलसीदास : आपकी कविता धन्य है ! आपने हमारे प्रभु की दयालुता का सच्चा स्वरूप दिखलाया है।

रहीम : गोसाईंजी ! एक प्रार्थना करने आया हूँ।

तुलसीदास : आज्ञा कीजिए।

रहीम : हमारे शाहंशाह अकबर बादशाह ने आपको अपने दरबार में बुलाकर आपके सम्मान की बात कही है। आपकी बड़ी कृपा होगी यदि आप कुछ समय के लिए उनके दरबार में चलने की कृपा करें। आपकी सेवा में हाथी भेजा जाएगा और आपकी सेवा में खिलअत भेंट की जाएगी। वे आपका ऊँचे से ऊँचा सम्मान करेंगे।

तुलसीदास : रहीम खानखाना, मुझे किसी सम्मान की इच्छा नहीं है। आप जैसे सेना-पतियों का सम्मान होना चाहिए। आप पंजहज़ारी मनसबदार हैं। बादशाह के दरबार की शोभा आप जैसे वीर और प्रतिभाशाली व्यक्तियों से होगी। साधुओं, सन्तों और वैरागियों से क्या होगी ? भला संतों का उस दरबार में क्या काम ? अकबर बादशाह दुनिया के बादशाह हैं, और मैं दुनिया छोड़ चुका हूँ। जिस दुनिया के माय-मोह से मैं दूर हुआ हूँ, उसमें जाना कहाँ तक ठीक है ?

रहीम : ठीक तो नहीं है पर जाने में कोई हानि भी नहीं है।

तुलसीदास : खानखाना साहब, लाभ और हानि की बात भी नहीं है। यह बतलाइए कि जो केवल दुनिया के एक मुल्क का बादशाह है, उसके पास जाना ठीक है या उनके दरबार में जाना ठीक है जो अखिल ब्रह्मांड के नायक हैं। और वह नायक हैं, मेरे राम। उन्हीं राम के नाम का भजन करना मेरे लिए सुख और सन्तोष की बात है।

रहीम : अब आगे कहने के लिए आपने कुछ नहीं रखा, गोसाईंजी !

तुलसीदास : खानखाना, सुनो, मैंने इस विषय पर एक सवैया लिखा है :

> झूमत द्वार अनेक मतंग, जंजीर जुरे मद अंबु चुचाते।
> तीखे तुरंग मनोगति चंचल, पौन के गौनहुंते बढ़ि जाते।
> भीतर चन्द्रमुखी अवलोकति, बाहर भूप खरे न समाते।
> ऐते भये तो कहा तुलसी, जो पै जानकिनाथ के रंग न राते।।

रहीम : वाह गुसाईंजी ! कितना सुन्दर व्यंग्य है, कितनी मधुर कविता है ! आपकी कविता तो संजीवनी है। एक बार तो आपने लिखकर दोहे की एक पंक्ति भेजी थी। (**सोचकर**) शायद कोई ब्राह्मण देवता थे। वह बेचारे धन के बिना अपनी लड़की का विवाह नहीं कर सकते थे। आपने उन्हें मेरे पास भेजा, उसी दोहे की एक अर्थ-भरी पंक्ति लिखकर :

> 'सुर-तिय नर-तिय नाग-तिय यह चाहत सब कोय।'

चाहे किसी वर्ग की नारी हो, अपना विवाह तो चाहती ही है। मैं इस पंक्ति से इतना प्रभावित हुआ कि मैंने आपकी इच्छानुसार उसे काफी धन दे दिया। उस दोहे की दूसरी पंक्ति लिखकर आपकी सेवा में भेज दी थी।

तुलसीदास : आपकी दूसरी पंक्ति मेरी पहली पंक्ति से भी अच्छी थी।

रहीम : क्या अच्छी होगी ! पर मैंने उस दोहे की पूर्ति श्रद्धा से की थी। आपकी पहली पंक्ति थी :

'सुर-तिय नर-तिय नाग-तिय यह चाहत सब कोय।'

और मैंने पूर्ति की थी :

'गोद लिए हुलसी फिरें, तुलसी सो सुत होय।'

गंगाराम : (**उछलकर**) वाह, महाराज, क्या पूर्ति की है !

तुलसीदास : आपने मेरी माता का स्मरण मुझे अवश्य करा दिया।

रहीम : वास्तव में वह माता धन्य है जिसने तुलसी जैसा पुत्र संसार को दिया। अच्छा, महाराज ! अब मैं चलूँगा। मैं बादशाह सलामत को यह सलाह दे दूँगा कि तुलसीदासजी जैसे सन्त को बुलाना ठीक नहीं है। आप ही चलकर उनके दर्शन कीजिए। अच्छा, अब आज्ञा दीजिए। आपकी सेवा में अपनी जीत की खुशी में एक छोटी-सी भेंट लाया हूँ। इसे अस्वीकार न कीजिएगा। यह सौ मोहरों की थैली।

तुलसीदास : पर मुझे इस सम्पत्ति की क्या आवश्यकता है ? इसे आप अपने पास ही रखें या किसी अन्य व्यक्ति को दे दें।

रहीम : नहीं, महाराज ! यदि आप इसे स्वीकार नहीं करेंगे तो मुझे कष्ट होगा। यदि इस थोड़ी-सी भेंट को आप अपने किसी काम में न लावें तो इससे सन्तों का भंडारा कर दें।

तुलसीदास : अच्छी बात है। चित्रकूट में सन्तों का भंडारा होने जा रहा है, उसमें इसका उपयोग कर लिया जाएगा। गंगाराम जी ! इसे सहेज कर रख दो।

गंगाराम : जो आज्ञा। (**थैली लेकर भीतर चले जाते हैं**)

रहीम : तो अब आज्ञा दीजिए। हो सका तो फिर कभी आपके दर्शन करूँगा। प्रणाम करता हूँ।

तुलसीदास : (**हाथ उठाकर**) स्वस्ति !

गंगाराम : (**आकर**) मेरा नमस्कार लीजिए।

रहीम : (**हाथ जोड़कर**) नमस्कार ! (**प्रस्थान**)

गंगाराम : (**रहीम खानखाना को द्वार तक पहुँचाकर लौटते हुए**) रहीमजी राजनीति अच्छी जानते हैं। आपने अकबर बादशाह का जो निमंत्रण अस्वीकार किया उसे सीधे न कहकर वह राजनीतिक भाषा में कहते हैं कि मैं बादशाह सलामत को सलाह दूँगा कि तुलसीदासजी जैसे सन्त को बुलाना ठीक नहीं है, आप ही चलकर उनके दर्शन कीजिए।

तुलसीदास : रहीम खानखाना की भाँति मंत्री, सेनापति, कवि और सज्जन एकसाथ मिलना बहुत कठिन है।

गंगाराम : अच्छा, स्वामीजी ! अब मैं भी आज्ञा लूँगा (**उठते हुए**) आपसे एक प्रार्थना है कि कुछ दिनों के लिए मुझे रामचरितमानस की प्रति दे दी जाए। उसकी प्रति-लिपि कर मैं आपकी सेवा मे उसे लौटा दूँगा।

तुलसीदास : अच्छी बात है, ले जाइए। रामरूप से ले लीजिए।

गंगाराम : आपकी मुझ पर बहुत कृपा है। (**भीतर जाते हैं।**)

तुलसीदास : क्या सोच रहे हो तुम ? यदि मेरी बात सच नहीं मानते तो मेरे सिर पर अपने लट्ठ का प्रयोग कर सकते हो।

व्यक्ति : आया तो मैं इसीलिए था किन्तु···

तुलसीदास : किन्तु क्या···?

व्यक्ति : सोचता हूँ कि मुझे बहकाया गया है।

तुलसीदास : प्रभु जिसकी बुद्धि जैसी कर दें। इस सम्बन्ध में मैं क्या कह सकता हूँ ?

व्यक्ति : मैं तो जगजीत ठाकुर हूँ। मेरे पड़ोसी कुछ शैव पंडितों ने कहा कि तुलसीदास बड़ा पाखंडी है, दंभी है। उसने रामचरितमानस क्या लिखा है, अपने को बहुत बड़ा कवि समझता है। उसकी कथा से लोग शिव की उपासना छोड़कर राम की भक्ति करने लगे हैं। उसका रामचरितमानस चुराकर गंगाजी में बहा दो और उसका सिर फोड़ दो।

तुलसीदास : मेरा तो किसी से द्वेष नहीं है।

जगजीत : यही मैं देख रहा हूँ, तुलसीदास ! तुम रामचरितमानस की प्रति सहज भाव से मुझे दे रहे हो। मुझे अपना मेहमान समझ रहे हो। मेरे आने की बात किसी से नहीं कहोगे। तुम कायर नहीं हो, डरपोक नहीं हो। अपने राम पर तुम्हें इतना अधिक विश्वास है ?

तुलसीदास : प्रभु राम पर सबको विश्वास होना चाहिए।

जगजीत : मैंने शैव पंडितों पर विश्वास किया। उन्होंने मुझसे कहा कि यदि तुम रामचरितमानस की प्रति गंगाजी में बहा दोगे तो हम लोग तुम्हें पचास स्वर्ण-मुद्राएँ देंगे। पचास स्वर्ण-मुद्राएँ !

तुलसीदास : आप कल रामचरितमानस की प्रति ले लीजिए और पचास स्वर्ण-मुद्राएँ अभी ले लीजिए। कुछ देर पहले रहीम खानखाना मुझे स्वर्ण-मुद्राएँ दे गए हैं। मैं अभी लाता हूँ। (**शीघ्रता से कुटी में प्रवेश करते हैं।**)

जगजीत : (**इधर-उधर टहलते हुए**) बाहर के आदमियों को बुलाने के लिए तो नहीं चले गए, तुलसीदास ?···नहीं···नहीं···जो अपनी बातों में इतने सीधे-सादे हैं, वह धोखा कैसे दे सकते हैं ? शैव पंडितों ने मुझे सीधा-सादा समझकर बहका दिया।···वे रामचरितमानस की पोथी बहाने पर पचास मुद्राएँ देंगे···तुलसीदास अभी दे रहे हैं···और···रामचरितमानस की प्रति भी। तुलसीदास ! तुम सच्चे संत मालूम होते हो···रामजी की कृपा से असत्य नहीं बोल सकते। (**सोचते हुए**) मैंने पाप तो नहीं किया ? ऐसे सच्चे सन्त पर लट्ठ से प्रहार ? ओह, नहीं···नहीं··· जिन्होंने मुझे अपना मेहमान कहा···मेहमान···आधी रात का मेहमान ? उसको रुपयों के लोभ से मारूँ ? नहीं। और रामचरितमानस को बहाने से मुझे लाभ ? मुझे क्या लाभ ? पचास मुहरें ? यह पाप करने का पैसा है···पाप का पैसा···! (**तुलसीदास का प्रवेश**)

तुलसीदास : (**आते ही**) लो भक्त ! ये पचास सोने की मुहरें।

जगजीत : (**सोचते हुए**) आप मुझे भक्त कह रहे हैं ?

तुलसीदास : जो व्यक्ति रामचरितमानस को भगवती भागीरथी में पवित्र करेगा वह भक्त ही तो है ।

जगजीत : (**विह्वल होकर**) भक्त ? भक्त ? (**विह्वल होकर तुलसीदास के चरण पकड़ लेता है और रोते हुए कहता है—**)

महाराज ! महाराज ! मुझे क्षमा करो । मैं दुष्ट शैवों के बहकावे में आ गया । क्षमा करो, महाराज ! आप इतने बड़े संत हैं, मैं नहीं जानता था ।

तुलसीदास : उठो, उठो, भाई ! भूलें तो मनुष्य से ही होती हैं । उसको सुधारने वाले प्रभु राम ही हैं । तुम स्वर्ण-मुद्राएँ चाहते हो, ये लो पचास स्वर्ण-मुद्राएँ ।

जगजीत : (**उठकर**) महात्माजी ! मैं कुछ नहीं लूँगा । कुछ नहीं लूँगा । ये तो पाप करने की मुद्राएँ हैं । मैं रामचरितमानस गंगाजी में बहाता उसके बदले में शैव पंडित मुझे पचास सोने की मोहरें देते । आपके रामजी ने मुझे पाप करने से बचा लिया !

तुलसीदास : मेरे ही नहीं, तुम्हारे भी रामजी हैं । तुम उनका भजन करो, तुम्हारे मन की सारी अशांति दूर हो जाएगी ।

जगजीत : नहीं, महाराज ! मैं अपराधी हूँ, मुझे अपनी शरण में ले लीजिए । प्रभु ! (**चरणों पर गिरता है ।**)

तुलसीदास : उठो, भक्त ! प्रभु सब मंगल करेंगे (**तुलसीदास उसे उठाने के लिए झुकते हैं ।**)

[परदा गिरता है ।]

चौथा अंक

स्थान : चित्रकूट में एक मन्दिर के सामने ।
समय : प्रातःकाल —दूसरा प्रहर ।

[जागेसुरी महाराज बड़ी-सी जटा बढ़ाए, रामानन्दी तिलक लगाए, प्रसन्न मुद्रा में प्रवेश करते हैं । वह रामनामी दुपट्टा ओढ़े हैं, पैर में खड़ाऊँ । महावीर हनुमान के इष्ट से जब से तुलसीदास की भक्ति का प्रभाव बढ़ा है, तब से जागेसुरी महाराज भी तुलसी की माला पर 'बजरंगबली', 'बजरंगबली' का जाप करने लगते हैं । उनके पीछे पुत्तन पहलवान बैसाखी लगाए आता है । बाल बिखरे हुए, लम्बा कुरता और तहमद पहने हुए है । नंगे पैर । बैसाखी का सहारा लेकर उचक-उचककर चलता है ।]

जागेसुरी : (**हाथ उठाकर**) जो है शो—

चित्रकूट के घाट पै, भई शंतन की भीर।
तुलशीदाश चंदन घिशै तिलक देत रघुवीर ॥

जो है शो,···तिलक देत रघुवीर ! ! जै बजरंगबली। वाह, वाह, धन्य है ! चित्रकूट की कैशी न्यारी शोभा है ! पवित्र शलिला मन्दाकिनी की धारा तो ऐशे बहती है जैशे अकबरशाह के खज़ाने शे हीरे और मोती उछल-उछलकर ढुलक रहे हैं, जो है शो। **(जल्दी-जल्दी माला जपते हैं।)**

पुत्तन : पर महाराज ! अगर हीरे-मोती हैं तो सब पानी-पानी हो गए हैं।

जागेसुरी : शो तो हई है। जदि पानी न बनते तो हम सब लोग लूट न लेते ? जो है शो, पर चित्रकूट का परताप ऐशा है कि उसके शोंही शंशार की शंपत्ति पानी है पानी। इशीलिए तो हमारा भानजा तुलशीदाश अपनी गिरिश्ती परित्याग करके यहाँ आ गया है। उशने शब तीरथों में निवाश किया परन्तु चित्रकूटजी उशके मन में ऐशे भाए, ऐशे भाए कि वाह :

तुलशीदाश चन्दन घिशै, तिलक देत रघुवीर !

जै बजरंगबली !

पुत्तन : हाँ, महाराज ! आजकल चित्रकूट में जहाँ देखिए संत तुलसीदासजी के नाम ही की चर्चा है।

जागेसुरी : हाँ, जब शे वो रामबोला शे बदलके तुलशीदाश हुआ है, तब शे शमश्त शंशार में उसका जश ऐशा झलक रहा है, ऐशा झलक रहा है जैशे गणेशजी के कपड़ों में गोटा झलकता है, गोटा। वाह, वाह, धन्य है, जो है शो। अब मेरा भानजा है कि हँशी-ठट्ठा। **('जै बजरंग, जै बजरंग' माला जपते हैं।)**

पुत्तन : हाँ, महाराज ! मैंने भी सुना है कि उन्होंने गिरिस्ती छोड़कर चारों धाम की जात्रा करी ! मानसरोवर में अस्नान भी किए। आज यहाँ चित्रकूट में बिराजे हैं। उन्होंने संतों-महंतों के सत्संग में भक्ति की सैकड़ों बैठकें लगाईं।

जागेसुरी : ज़रूर शे बैठकें लगाईं। जै बजरंगबली ! बिना बैठकें लगाए कहीं शत्शंग होता है ? जो है शो। तुम भी एक शौ एक बैठकें लगाते थे, फिर तुम्हारी बैठकों का कैशा हाल है ?

पुत्तन : अब बैठकें कहाँ, महाराज ! दाहिने शरीर पे ऐसा फालिज गिरा है कि अब चलना-फिरना भी कठिन हो गया है। अब तो बैसाखी लगा के ही चल सकता हूँ।

जागेसुरी : हाय ! हाय ! बड़ा कष्ट हो गया, जो है शो। पे देखो, पुत्तन पहलवान ! तुमने बेचारे रामबोला के शरीर के ऊपर जो आक्रमण किया था, उशका फल तुम्हारे शिर पे टूट पड़ा। तुमने, जो है शो, शुना ही होगा कि :

भाग्यं फलति शर्वत्र, न विद्या न च पौरुखम्।

इश शंशार में भाग्य शबशे पहले है। जैशा कर्म करोगे, तैशा फल भोगोगे। **(मन में जपते हुए—'जै बजरंगबली, जै बजरंगबली')**

पुत्तन : हाँ, महाराज ! लगता तो ऐसा ही है । अब तुलसीदास महाराज की सेवा करने आया हूँ ।

[हुसैनी जुलाहे का प्रवेश]

हुसैनी : परनाम, पंडज्जी ! पुत्तन पहलवान को सलाम ! (**पुत्तन को बैसाखी लगाए देखकर**) अरे, पुत्तन पहलवानजी ! तुम्हारी बगल में बैसाखी ?

पुत्तन : अरे, क्या कहें, जुलाहे भाई ! करम के डंड हैं ! !

जागेसुरी : पूर्व शमय में तुम एक शौ एक डंड लगाते थे। अब तुम्हारे ऊपर तुम्हारा करम, जो है शो, एक शौ एक डंड लगा रहा है । (**माला जपने हैं।**)

हुसैनी : हाय ! खुदा राम ! तुम्हारा भी कैसा डंड है कि मेरी बैसाखी लेके पुत्तन पहलवान को दे दी ।

जागेसुरी : (**आश्चर्य से**) अरे, हुशैनी मियाँ, तुम्हारी बैसाखी, जो है शो, कैशे छूट गई ?

हुसैनी : छूट गई, महाराज ! वो मिले थे न स्वामी नरहरिदास ! उनसे मैंने कहा था : महाराज ! क्या रामजी हमारी टाँग भी अच्छी कर देंगे ? उन्होंने मुझे 'चाचा' कहा, कहने लगे—'हुसैनी चाचा ! भरोसा चाहिए। अगर राम खुदा पर भरोसा रखोगे तो इस टाँग से तुम परबत लाँघ सकते हो ।' बस, मैंने राम खुदा पर भरोसा किया ।

पुत्तन : कैसा भरोसा किया ?

हुसैनी : ऐसा किया कि रोज अस्नान करके 'राम खुदा', 'राम खुदा' भज के बिना वैसाखी के चलने की कोशिश करता रहा ।

पुत्तन : अच्छा, बिना बैसाखी के ?

हुसैनी : हाँ, 'राम खुदा' कहा और एक डग चला । फिर दो बार 'राम खुदा' कहा और दो डग चला । बस, इसी तरह 'राम खुदा' का नाम बढ़ाता गया और अपने डग भी बढ़ाने लगा। बढ़ाते-बढ़ाते राम खुदा ने इस लायक बना दिया कि अब बिना वैसाखी के चलता हूँ और कोसों चलता हूँ ।

पुत्तन : अच्छा, कोसों चल लेते हो ?

जागेसुरी : अरे, कोशों का क्या हिशाब करते हो, वो शकल शंशार की परिक्रमा कर शकता है, जो है शो ।

हुसैनी : हाँ, परिकरमा तो कर ही सकता हूँ। चित्रकूट आया हूँ तो इसी टाँग से कामद-गिरि की परिकरमा करूँगा। स्वामी नरहरिदास ने कहा था, 'तुम इस टाँग से परबत भी लाँघ सकते हो ।' क्या कहते हैं : पंगु···पंगु···पंगु···लंग···लंग···इते ···गि···गि···गिरिम् । हाँ !

जागेसुरी : बोल बजरंगबली की जय ! वाह ! धन्य है श्रीरामजी का चमत्कार ! जो है शो, जोतिश कहता है···

पुत्तन : जोतिश चाहे कहे, चाहे न कहे । आँखों के सामने है कि मेरी पहलवानी तो गई और यह एक टाँग का जुलाहा संसार की परिकरमा करने में पहलवान हो गया ।

जागेसुरी : पहलवान ? अरे, मेरा जोतिश कहता है कि—

दशावतारोभुवनैकमल्लौ, अजादि शुरशेवित पाद पद्मः
श्रीरामचन्द्रः पुरुषोत्तमो यं···

आगे क्या कहा है। जो है शो, दश अवतारों को धारन करने वाले ब्रह्मा आदि शुरों शे जिशके चरनारविन्दु शेवित हैं, ऐशे श्रीरामचन्द्रजी महाराज शंशार में एक ही पहलवान हैं—भुवनैके मल्लो···

पुत्तन : महाराज ! मैंने पहलवानी में भगवान की बराबरी की सो फल भुगत रहा हूँ। पहले बहुत घमंड था सो अब पानी-पानी हो गया !

हुसैनी : अब भी, पुत्तन पहलवान ! 'राम खुदा', 'राम खुदा' भजो तो तुम्हारी बैसाखी छूट जाए। हाँ, और जिन रामबोला से तुम दुश्मनी रखते थे उनके दरसन करके उनसे छिमा माँगो। वो रामबोला अब तुलसीदास हो के रामजी के असली भगत हो गए हैं। संसार में उनके नाम की बड़ी धूम है।

पुत्तन : (**गहरी साँस लेकर**) अब ऐसा ही करूँगा, हुसैनी चाचा !

हुसैनी : पहले तो कहते थे—अरे, डेढ़ टाँग के जुलाहे ! अब जब करम का डंड माथे पर गिरा तो अब कहते हैं, हुसैनी चाचा ! देखी रामजी की करामात ?

पुत्तन : जले पर नमक मत छिड़क, जुलाहे ! (**भूल सुधारते हुए**) अरे, माफ करना, हुसैनी ! मुझे ज़रा-सी बात पर गुस्सा आ जाता है। अब सुभाव बदलते-बदलते बदलेगा। गुस्से के कारन मुझसे कभी-कभी गलती हो जाती है।

जागेसुरी : कोई अशम्भव बात नहीं है, पुत्तन पहलवान ! जोतिश का परमान है, जो है शो, कि 'शन्मंगलं मंगलः', तात्पर्ज जे कि मंगल महाराज भी मंगल प्रश्तुत करते हैं। तो तुम्हारा क्रूर श्वभाव भी शुन्दर श्वभाव हो जाएगा, जो है शो।

[चन्दनसिंह का प्रवेश]

चन्दनसिंह : प्रणाम, महाराज ! अरे, पुत्तन पहलवान ! तुम यहाँ ? तुम्हें खोजते-खोजते हम हैरान हो गए। तुम यहाँ कथा-वार्ता कर रहे हो !

पुत्तन : (**गिरे हुए स्वर से**) अब पहलवान मत कहो, चन्दनसिंह ! अब हम संसार के सबसे कमज़ोर आदमी हैं।

चन्दनसिंह : इतने निराश न हो, पुत्तन पहलवान ! मैंने यहाँ संत तुलसीदास से बहुत चिरौरी की कि महाराज ! पुत्तन पहलवान का फालिज ठीक कर दो। संत तुलसीदास अपनी आँखें बन्द कर ध्यान करते रहे—फिर कहा कि श्रीराम-नाम के प्रभाव से सब कुछ ठीक हो सकता है।

हुसैनी : राम खुदा के परभाव से मेरा पैर ठीक हो ही गया।

चन्दनसिंह : हाँ, हुसैनी चाचा पहले बिना बैसाखी के एक डग भी नहीं चल सकते थे। अब तो वह मेरे साथ मीलों पैदल चल लेते हैं।

हुसैनी : और थके नहीं हैं। हाँ···

पुत्तन : इसी तरह अगर महात्मा तुलसीदासजी मेरे फालिज को ठीक कर दें तो क्या बात है !

जागेसुरी : बोल बजरंगबली की जै ! अरे, मेरे भानजे के परभाव शे शंशार के शव शंकट शमाप्त हो शकते हैं। जो है शो। मानशागरी शिद्धांत को शुधार कर कह शकता हूँ—

> ललाटपट्टे लिखिता विधात्रा षष्ठीदिनेयाक्षरमालिका च।
> तुलशी महात्मा करोतिविफलंदीपोजथग्भाग्यघनान्धकारम् ॥

तात्पर्ज जे कि ब्रह्माजी ने माथे पे जो लिख दिया और खष्टी के दिवश जो अक्षर-मालिका शम्पन्न हो गई, उशको तुलशी महात्मा विफल कर देते हैं, जैशे घोर अन्धकार के भाग्य को दीपक, जो है शो, नष्ट कर देता है, जय बजरंगबली !

चन्दनसिंह : आप सच कहते हैं, पंडितजी। काशी में भुलईसाह एक कलवार था। मर गया। लोग उसे श्मशान ले जा रहे थे। उसकी स्त्री रोते-रोते पीछे आ रही थी कि संत तुलसीदास मिल गए।

हुसैनी : अच्छा, फिर क्या हुआ ?

चन्दनसिंह : उसने तुलसीदास को प्रणाम किया। तुलसीदास ने कहा—'सौभाग्यवती भव।' स्त्री ने कहा—'महाराज ! मेरा पति तो मर गया है !' तुलसीदास ने उसके पति की अर्थी खुलवाई और रामजी का चरणामृत उसके मुँह में डाल दिया। यह लो, भुलईसाह उठके राम-नाम का कीर्तन करने लगा !

हुसैनी : अरे, हमारे राम खुदा कोई मामूली चीज़ हैं ?

पुत्तन : भाई चन्दनसिंह ! मौत को ज़िंदगी में बदल देना तो बड़ी बात है, मेरा फालिज साला किस गिनती में है। इसे ठीक करा दो। अगर ठीक हो जाए तो मैं तुलसी महात्मा के सामने सौ डंड लगा के परनाम करूँ।

हुसैनी : राम खुदा पे भरोसा रखो।

जागेसुरी : अरे, तुलशीदाश ने तो ऐशा चमत्कार किया है, जो है शो, कि एक ठाकुर की लड़की को लड़का बना दिया। ये श्री रघुनाथजी की शेवा का परमान है। तुलशी ने श्वयं कहा है—

> तुलशी रघुबर शेवतहिं मिटिगो कालो काल।
> नारि पलटि शो नर भयो, ऐशे दीनदयाल ॥

हाँ, ऐसे दीनदयाल। जै बजरंगबली की !

[बाबा बेनीमाधवदास और ज्योतिषी गंगाराम का प्रवेश। बाबा बेनीमाधवदास का प्रवेश साधुओं जैसा है। सिर पर जटा, माथे पर चन्दन का टीका। डाढ़ी। गले में माला। पीला उत्तरीय और पीली धोती। पैर में खड़ाऊँ। हाथ में कमंडलु। ज्योतिषी गंगाराम के सिर पर पगड़ी। माथे पर चन्दन का टीका। तनीदार अँगरखा, धोती। पैर में रस्सी की पनही। गले में अँगोछा।]

गंगाराम : नमस्कार, पंडितजी।

बेनीमाधव : पंडितजी ! नमो नमः ।

जागेसुरी : शदा शुखी रहो ! नमो नमः ! नमो नमः ! ये पुत्तन पहलवान और हुशैनी भी मेरे शाथ चित्रकूट चले आए।

गंगाराम : बहुत अच्छा ! बहुत अच्छा !

[पुत्तन पहलवान और हुसैनी भी प्रणाम करते हैं।]

गंगाराम : आशीर्वाद ! आशीर्वाद! धर्म में आप सबकी बुद्धि रहे। (**जागेसुरी से**) पंडितजी, तुलसीदासजी यहाँ क्या आए, सारा चित्रकूट उनके दर्शनों के लिए उमड़ आया।

जागेसुरी : क्यों नहीं, क्यों नहीं, जो है शो, जैसे सुन्दर प्रशून के प्रश्फुटित होने शे जावत् शंशार के भ्रमर शमूह एकत्रित हो जाते हैं तिशी भाँति मेरे भानजे तुलशीदाश के यहाँ आगमन शे शमश्त चित्रकूट लोभायवान होके चित्र-विचित्र ढंग शे एकत्रित हो गया है, जो है शो।

बेनीमाधव : तब तो बहुत अच्छा समाज जुड़ेगा। आज तुलसीदासजी के सम्मान में एक भंडारा होगा। भगवान राम की पूजा होगी। उनके दर्शन से जनता का हृदय पवित्र हो जाएगा।

गंगाराम : लोग बड़ी-बड़ी भेंट चढ़ाने के लिए लाए हैं। तुम क्या लाए हो, पुत्तन पहलवान ?

पुत्तन : महाराज, हम क्या लाएँगे, हम तो अपना सारा दुख-दर्द भगवान रामजी को चढ़ाने के लिए लाए हैं।

बेनीमाधव : अच्छा, यह चढ़ावा है ?

हुसैनी : महाराज, मैं अपनी बैशाखी रामजी को चढ़ाने के लिए लाया हूँ।

जागेसुरी : अरे हुशैनी, तुम क्या रामजी शे मशखरी करते हो, जो है शो ? श्रीरामजी के चरनों में क्या कोई चोट है जो तुम उनको अपनी बैशाखी शमर्पित करोगे ?

बेनीमाधव : अरे, यह तो भक्त की अपनी भावना है।

गंगाराम : (**जागेसुरी से**) पंडितजी, आप बतलाइए, आप इस भंडारे के लिए क्या लाए हैं ?

जागेसुरी : हम ? अरे, हमारे पाश क्या नहीं है ? हमारे पाश सबशे बड़ी वश्तु है ? पूछो, कौन-शी वश्तु है ? तो वो है, जो है शो, आशीर्वाद। उश आशीर्वाद के शोंही शब वश्तु है। हम मन्दाकिनीजी में अभी श्नान करके आते हैं। तब हम आशीर्वाद देंगे। चलो, पुत्तन पहलवान ! चलो हुशैनी ! जै बजरंगबली !

पुत्तन : चलिए, मन्दाकिनीजी के जल से मेरे पैर को आराम मिलता है।

हुसैनी : और मेरे मन में 'राम खुदा' को जपने की लौ लगती है।

जागेसुरी : तो फिर चलो तुम लोग। शुभश्य शीघ्रम्। जै बजरंगबली ! जो है शो !

[जागेसुरी पंडित, पुत्तन पहलवान और हुसैनी चाचा का प्रस्थान]

गंगाराम : ये लोग तो गए। पता नहीं कब तक आवेंगे। और शायद आएँ भी न। पर भंडारे की धूम चित्रकूट में खूब जमेगी। सब जाति के लोग इकट्ठे हो रहे हैं। और राम की कथा से लोगों को बड़ा प्रेम हो गया है।

बेनीमाधव : ज्योतिषीजी ! संत तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना बहुत अच्छे ढंग से की है। वेद से लेकर पुराणों तक का सार रामजी के चरित्र में ऐसा सजाया है कि अपढ़ से अपढ़ आदमी तक उसके रस में डूब जाता है। और···और भक्ति का सही रास्ता पा जाता है।

गंगाराम : मैंने, बेनीमाधवजी, बाल्मीकि रामायण पढ़ी है। है तो बड़ा सुन्दर काव्य, पर वह संस्कृत में है। साधारण जनता उसका रस नहीं ले पाती।

बेनीमाधव : गंगारामजी, इसीलिए तो संत तुलसीदास ने अपना रामचरितमानस जन-भाषा में लिखा है। जनता रामजी का चरित्र ठीक ढंग से समझ ले इसीलिए बाल्मीकिजी ने तुलसीदास का अवतार धारण किया है। अरे, नाभादासजी ने लिखा ही है कि :

> संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लियो।
> कलिकुटिल जीव निस्तार हित बाल्मीकि तुलसी भयो॥

गंगाराम : परन्तु, स्वामीजी, एक बात समझ में नहीं आई। बहुत बार मन में आया कि तुलसीदासजी से पूछूँ, पर हिम्मत नहीं पड़ी। तुलसीदास का वैराग्य देखकर मन की उठी हुई बात मन में ही रह जाती है। बात यह है कि तुलसीदासजी पहले भी राम-कथा कहते थे, फिर उन्होंने बदरिया के दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से विवाह कर लिया, अच्छी गिरस्ती जमाई। फिर न जाने क्यों सब कुछ छोड़कर सन्त-महात्मा बन गए। और इतना अच्छा रामचरितमानस लिखा। कहाँ इतना मोह, कहाँ इतना वैराग्य ?

बेनीमाधव : यह सब संस्कारों की बात है, गंगारामजी ! बाबा नरहरिदास ने अपने बचपन में ही ऐसे संस्कारों के बीज बोए कि उन्हें तो अंकुरित होना ही था। फिर मन की गति भी विचित्र होती है। जितनी आसक्ति के साथ हम किसी वस्तु को प्यार करते हैं, यदि मन के भीतर का विश्वास टूट जाए तो हम उतनी विरक्ति के साथ उसका परित्याग कर देंगे। सुनते हैं कि तुलसीदास अपनी पत्नी रत्नावली को बहुत प्यार करते थे, उनके बिना एक पल भी नहीं रह सकते थे। पर रत्नावली ने किसी भावुकता में ऐसी बात कह दी होगी कि तुलसीदासजी उसे सहन नहीं कर सके होंगे। और तभी उनके मन में बचपन में डाले गए भक्ति के संस्कार जाग उठे होंगे और उन्होंने घर-बार छोड़कर संन्यास ले लिया।

गंगाराम : और ऐसा संन्यास लिया कि फिर अपने घर की ओर देखा भी नहीं।

बेनीमाधव : संन्यासी घर-बार की ओर कभी नहीं देखता। वह तो अनेक तीर्थों में ही अपना जीवन व्यतीत करता है। और तुलसीदासजी ने भी यही किया। वह तीर्थ-यात्रा पर निकल गए। प्रयाग, काशी, अयोध्या और फिर चारों धाम की या

यहाँ तक कि वह मानसरोवर तक गए।

गंगाराम : अच्छा ? इसमें तो बड़ा समय लगा होगा ?

बेनीमाधव : अरे चौदह वर्ष से ऊपर लग गए। स्थान-स्थान पर सत्संग करते। फिर काशी में जाकर रामकथा कहने लगे।

गंगाराम : मैंने राजघाट में सुना था कि काशी के शैव पंडितों ने इन्हें बड़ा कष्ट दिया।

बेनीमाधव : अरे, मैं तो उनके साथ था। वहाँ के शैव पंडितों ने इन्हें अनेक बाधाएँ दीं। उन्होंने इनका रामचरितमानस तक नष्ट करने का प्रयत्न किया, पर वे कुछ नहीं कर सके। मुझे तो डर है कि यहाँ चित्रकूट में भी यहाँ के शैवगण कुछ गड़बड़ न करें। पर मुझे विश्वास है कि प्रभु रामचरितमारस की सदैव रक्षा करेंगे।

गंगाराम : अच्छा, बेनीमाधवजी, तुलसीदास ने रामचरितमानस कब लिखा ?

बेनीमाधव : संवत् 1631 में। उन्होंने स्वयं लिखा है :

संवत सोरह सै इकतीसा।
कथा करौं हरि-पद धरि सीसा॥

दूसरी पंक्ति में तुलसीदासजी ने 'हरि' शब्द बड़ा सुन्दर रखा है। कथा करौं हरि-पद धरि सीसा। 'हरि' का अर्थ वानर भी होता है। इसमें संकेत हनुमानजी का भी है।

गंगाराम : सुनते हैं, तुलसीदासजी को हनुमानजी का बड़ा इष्ट है ?

बेनीमाधव : यह तो प्रत्यक्ष है। बंगाल के एक क्रोधी पंडित रविदत्त शास्त्री तुलसीदासजी से शास्त्रार्थ करने आए। वह हार गए। हार जाने पर उन्हें बड़ा क्रोध आया और वह तुलसीदासजी को मारने दौड़े। पर महान आश्चर्य! उन्हें दिखा कि तुलसीदास जी के सामने हनुमानजी खड़े हैं। जिस तरफ देखते, उसी जगह उन्हें हनुमानजी अपनी गदा लिए हुए दिखलाई दिए। वह दौड़कर तुलसीदासजी के चरणों में गिर पड़े। सचमुच तुलसीदासजी को महावीर हनुमानजी का इष्ट है।

गंगाराम : इस कलियुग में तुलसीदासजी का जीवन धन्य है···

बेनीमाधव : यदि धन्य न होते तो हनुमानजी उनसे रामचरितमानस जैसा ग्रंथ ही क्यों लिखवाते ? जहाँ तुलसीदासजी की कलम रुकी कि हनुमानजी ने उसे सम्हाल लिया।

गंगाराम : हनुमानजी ने तुलसीदासजी को सम्हाला और तुलसीदासजी ने मुझे।

बेनीमाधव : तुलसीदासजी ने तुम्हें सम्हाला, सो कैसे ?

गंगाराम : आप राजघाट के राजकुमार के शिकार की बात नहीं जानते ?

बेनीमाधव : नहीं, बीच-बीच में जगन्नाथनी के दर्शनों के लिए जाता रहा।

गंगाराम : कुछ मास पूर्व राजघाट के राजकुमार शिकार खेलने के लिए जंगल में गए। वहाँ उनके साथी को बाघ ने मार डाला।

बेनीमाधव : (आह भरकर) हाय ! हाय ! यह तो बहुत बुरा हुआ।

गंगाराम : इस पर यह खबर फैल गई कि बाघ ने राजकुमार को मार डाला। राजा साहब ने मुझे बुलाया। मैं उस समय प्रह्लाद घाट पर रहता था। ज्योतिष की विद्या में तो मेरा नाम था ही। राजा साहब ने बुलाया और कहा—'सुनिए, ज्योतिषीजी, आप अपनी ज्योतिष विद्या से बतलाइए कि राजकुमार के सम्बन्ध में क्या बात निकलती है। अगर बात सच निकलती है तो मैं आपको एक लाख रुपए का पुरस्कार दूँगा और अगर झूठ निकलती है तो आपको प्राणदण्ड।'

बेनीमाधव : (**विस्फारित नेत्रों से**) ऐं! यह तो बड़ी भयानक बात थी।

गंगाराम : अरे, मैं भी बड़े संकट में पड़ गया। अब क्या करूँ? सो मैं सन्त तुलसीदास जी के शरण में आया। उसने कहा—(**हाथ जोड़कर**) 'सन्त महाराज, अब तो मेरे प्राण गए। कोई उपाय कीजिए जिससे मेरे प्राण बचें।' तुलसीदासजी ने कहा—'गंगारामजी, चिन्ता मत करो। रामजी तुम्हारी रक्षा करेंगे।' ऐसा कहके उन्होंने हनुमानजी का स्मरण करके छः घंटे में एक सगुन की पुस्तक लिख डाली—'रामाज्ञा प्रश्न'।

बेनीमाधव : छः घंटे में 'रामाज्ञा प्रश्न'!

गंगाराम : और क्या! सरस्वतीजी तो उनके कंठ में बैठी ही थीं। 'रामाज्ञा प्रश्न' छः घंटे में पूरा हो गया। मैंने उस 'रामाज्ञा प्रश्न' से सगुन निकाला। दूसरे दिन राजा साहब से कहा—'महाराज, राजकुमारजी कल जंगल से सकुशल लौट रहे हैं।'

बेनीमाधव : और राजकुमारजी लौट आए?

गंगाराम : अरे, तुलसी महात्मा का सगुन कहीं झूठ निकल सकता है? राजकुमारजी लौट आए और राजा साहब ने एक लाख रुपये मुझे पुरस्कार में दे दिए।

बेनीमाधव : वाह! तुलसीदासजी की पोथी ने तो लक्ष्मी की वर्षा कर दी।

गंगाराम : और क्या! मैं एक लाख रुपया लेकर तुलसीदासजी के पास गया। कहा कि 'महाराज, यह संपत्ति आपकी है।' पर वाह रे महात्मा? उन्होंने रुपया छुआ भी नहीं। कह दिया—'गंगारामजी, यह रुपया आपका है। राजा साहब ने आपको दिया है, तो आपका है।' मैंने कहा—'नहीं, महाराज, आपकी पोथी 'रामाज्ञा प्रश्न' का ही यह प्रताप है। इसी से मैंने राजकुमारजी के आने का सगुन निकाला जो बिलकुल सही उतरा। इसलिए सारी विद्या आपकी है।' उन्होंने कहा कि यदि आपकी श्रद्धा ऐसी है तो बारह हज़ार रुपये से हनुमानजी के बारह मन्दिर बनवा दीजिए—सो मैंने बनवा दिए।

बेनीमाधव : जब तुलसीदासजी का ऐसा त्याग है तभी तो उनके पास इतनी सिद्धि है।

[दो शैव पंडितों का प्रवेश। पहले का नाम शिवदत्त है, दूसरे का उमादत्त। दोनों का वेश लगभग एक-सा ही है। शिखा को छोड़कर सारा सिर मुँडा हुआ। मस्तक पर त्रिपुंड। गले में रुद्राक्ष की माला। सारा शरीर नंगा है, सिर्फ नीले वस्त्र की तहमद बाँधे हुए हैं। पैर नंगे हैं। शिवदत्त हकलाकर बोलता है।]

शिवदत्त : क् क् क् क्यों जी, स् स् सुना है कि तु तु तु तुलसीदास के लिए एक भंडारा

होने जा रहा है ?

उमादत्त : और उन्होंने सब लोगों को इकट्ठा कर शिवजी की पूजा का विरोध करना आरम्भ कर दिया है। इसीलिए उन्होंने रामचरितमानस लिखा है ?

बेनीमाधव : ऐसी बात तो नहीं है। श्री रामचरितमानस की कथा से शिवजी की पूजा का विरोध हो, ऐसी तो कोई बात नहीं है।

उमादत्त : ऐसी बात क्यों नहीं ? मैं सब जानता हूँ कि यह एक षड्यंत्र है। हम लोगों ने तुलसीदास को काशी से हटाया तो वह यहाँ आकर रामभक्ति का नाम लेके शिवजी महाराज से द्रोह करना सिखला रहे हैं।

शिवदत्त : क् क् क् क्या तुम स् स् स् समझते हो कि हम लोग इस ब् ब् ब् बहकावे में आ (**मुँह फाड़कर**) ···आ सकते हैं ?

गंगाराम : नहीं महाराज, यहाँ बहकाने की कोई बात नहीं है। और सब लोग बहकावे में आ सकते हैं, पर शैव धर्म के प्रबल समर्थक श्री मधुसूदन सरस्वतीजी तो बहकावे में नहीं आ सकते ? उन्होंने तुलसीदासजी से शास्त्रार्थ किया और प्रसन्न होकर एक श्लोक कहा :

आनन्द कानने ह्यस्मिन् तुलसी जंगमस्तरुः ।
कविता मंजरी यस्य राम भ्रमर भूषिता ।।

मधुसूदन सरस्वतीजी का यह श्लोक आपने सुना होगा ?

उमादत्त : श्लोक तो कविता है, धर्म नहीं है। मधुसूदन सरस्वतीजी ने हँसकर श्लोक कह दिया होगा। हम धर्म पर आपसे शास्त्रार्थ कर सकते हैं।

बेनीमाधव : शान्त हो जाइए। शास्त्रार्थ करने की आवश्यकता नहीं है। तुलसीदासजी की भक्ति का किसी धर्म से विरोध नहीं है।

शिवदत्त : हो···हो या न हो। प् प् प् पर हम तो श् श् शास्त्रार्थ क् क् क् करेंगे। अ अ अ अच्छा बतलाइए कि त् त् त् तुम्हारे राम स् स् स् सीता के पास क् क् क् कोई वाहन है ? ह् ह् ह् हमारे शिवजी का वाहन न् न् न् नन्दी और प् प् प् पार्वतीजी का व् व् व् वाहन सिंह अलग। एक घ् घ् घ् घर में दो-दो वाहन और तुम्हारे राम स् स् स् सीता के पास एक भी नहीं (**परिहास की मुद्रा**)

बेनीमाधव : जो राम-सीता सर्वत्र व्याप्त हैं उन्हें किसी वाहन की आवश्यकता नहीं है।

शिवदत्त : तो···तो शिव और पार्वतीजी भी त् त् त् तो स् स् सर्वत्र हैं।

उमादत्त : देखो, भाई, ये लोग तुमसे शास्त्रार्थ क्या करेंगे, ये तो तुलसीदास के भाट हैं, भाट ! इनसे यही कहो कि ये तुलसीदास के भंडारे में योग न दें।

गंगाराम : मैं तो कहता हूँ, सन्तजी, आप भी इस भंडारे में योग दीजिए। राजा-रंक सब तुलसीदास के भंडारे में योग देते हैं।

शिवदत्त : त् त् त् तो क् क् क् क्यों योग देते हैं ?

बेनीमाधव : उसका एक कारण है। लोग इसलिए योग देते हैं क्योंकि तुलसीदासजी महावीर हनुमान के भक्त हैं। और हनुमानजी, जानते हैं, कौन हैं ?

उमादत्त : (शिवदत्त से) बतला दो भाई, कौन हैं हनुमान ?

शिवदत्त : न् न् न् नहीं, तुम ब् ब् ब् बतला दो। ह् ह् ह् हम ध्यान क् क् क् कर रहे हैं (**आँखें बन्द कर लेते हैं।**)

बेनीमाधव : (**मुस्कराकर**) आप ध्यान मत कीजिए। मैं बतलाता हूँ। शिवजी के ग्यारह रूप हैं कि नहीं ?—एकादश रुद्र।

शिवदत्त : हाँ, हाँ, ए ए ए एकादश रुद्र !

बेनीमाधव : तो हनुमानजी एकादश रुद्र में से ही एक रुद्र हैं। वह स्वयं शिवजी के अवतार हैं। और शिवजी रामजी से इतना प्रेम करते हैं कि उन्होंने हनुमानजी का रूप लेकर प्रतिक्षण प्रभु राम का साहचर्य प्राप्त किया है। आपने तुलसीदासजी का रामचरितमानस पढ़ा है ?

उमादत्त : पढ़ा तो नहीं है। बस, नाम भर सुना है।

बेनीमाधव : तो जब पढ़ा नहीं है तो आप कैसे कह सकते हैं कि उसमें शिवजी की भक्ति नहीं है ? रामचरितमानस के आरंभ में ही एक श्लोक है :

भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।
याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम् ॥

गंगाराम : और लंका कांड के आरम्भ में ही भगवान राम ने अपने श्रीमुख से कहा है।

सिवद्रोही मम दास कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा ॥
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी ॥

संकर प्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही मम दास।
ते नरि करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ वास ॥

उमादत्त : अच्छा, ऐसा लिखा है ?

शिवदत्त : य् य् य् यह तो ह् ह् ह् हमें क् क् क् किसी ने यह नहीं बतलाया।

बेनीमाधव : हम आपको बतलाते हैं। आप स्वयं रामचरितमानस पढ़ लीजिए।

शिवदत्त : त् त् त् तो क्यों उ उ उ उमादत्त जी, स् स् स् समझ लिया जाए।

उमादत्त : हाँ, समझ लिया जाए।

गंगाराम : तो आप लोग जाइए और संध्या समय तुलसीदास के भंडारे में आइए।

शिवदत्त : क् क् क् क्यों उ उ उ उमादत्त जी, आ आ आ आएँ ?

उमादत्त : हाँ, आएँ।

शिवदत्त : अ अ अ अच्छा, आएँगे। जय शिवशंकर !

उमादत्त : अच्छा, आएँगे। जय शिवशंकर ! (**दोनों का प्रस्थान**)

गंगाराम : लोगों के मन में कितनी भ्रांतियाँ हैं ! व्यर्थ ही तुलसीदासजी से लोगों के मन में ईर्ष्या होती है।

बेनीमाधव : इन सबों से सावधान रहना चाहिए। बहुत-से शिवभक्त ऐसे हैं जो विरोध करने में ही अपनी शिवभक्ति समझते हैं।

गंगाराम : तुलसीदासजी के सामने सब फीके पड़ जाएँगे। जिस काम के लिए आए थे वह रह ही गया। इस मन्दिर (**संकेत करते हुए**) के पुजारी से कहना था कि आज संध्या समय जो तुलसीदास के लिए भंडारा होगा, उसका पूरा प्रबन्ध करके रखें।

बेनीमाधव : पुजारीजी तो स्वयं प्रबन्ध चाहते थे; फिर भी चलिए उनसे कह दें।

गंगाराम : चलिए, कह दीजिए।

[दूसरी ओर से दोनों का प्रस्थान। कुछ ही क्षणों में बाहर की ओर से जागेसुरी, पुत्तन पहलवान और हुसैनी का प्रवेश।

जागेसुरी : (**हाथ उठाकर**) जै बजरंगबली की! आहा हा, जो है शो! (**विकृत स्वर में गाता है—**)

जिन चरनन शे निकशी शुरशरि शंकर जटा शमाई।

(**मुग्ध होकर**) आहा! जब भगवान विष्णु के चरनों शे शुरशरि की धारा निकशी तो लगता होगा जैशे किशी बड़े ग्रन्थ शे हमारी पंडिताई निकश रही है। क्यों, पुत्तन पहलवान, है न? मन्दाकिनी की धारा में श्नान करने शे ऐशा लग रहा है जैशे मिष्टान्न खाने शे शरीर पुलकित हो जाता है।

पुत्तन : महाराज, मेरे फालिज को भी आराम पहुँचा है।

हुसैनी : और मैं तब से मन में 'राम खुदा', 'राम खुदा' ही भज रहा हूँ।

जागेसुरी : तो बश, जो है शो, निशि-बाशर मन्दाकिनी जी में स्नान किया करो। जैशे राहु-केतु जी भी अच्छे ग्रह के शाथ बैठके शुभ फल देने लगते हैं तिशी भाँति मेरे शाथ रहके, जो है शो, तुम्हारा फालिज बिच्छू के विष के शमान उतर जाएगा। क्यों हुशैनी, है न?

हुसैनी : अजी महाराज, जिस तरह जल से धोने से कपड़े की माँडी उतर जाती है उसी तरह पुत्तन महाराज का फालिज उतर जाएगा। मेरा पैर तो ऐसा ठीक कर दिया राम खुदा ने जैसे कि करघे में लगा हुआ टूटा सूत जुड़ जाए।

जागेसुरी : जै बजरंज! यह शब मेरे शत्शंग का प्रभाव है, जो है शो। तुम दोनों जदि मेरी शेवा करोगे तो शब शंकटों शे पार हो जाओगे। अच्छा, आज जो मंदाकिनीजी के तीर पर एक शेठ ने चढ़ोत्री की थी उशशे भोजन-पान की व्यवशथा की जाए। फटिक शिला पे आशन लगा के क्षुधा देवी को प्रशन्न करेंगे। क्यों, पुत्तन पहलवान?

पुत्तन : हाँ, खाने का रोग तो पंडितजी, मुझे पहलवानी के दिनों से ही है।

हुसैनी : पर पंडितजी, आज तो सन्त तुलसीदास के लिए एक बहुत बड़ा भंडारा हो रहा है।

जागेसुरी : अरे, तो भंडारे में भी शम्मिलित होंगे। अधिकश्य अधिकम् फलम्, पर यह

हमारा ही परताप है कि तुलशीदाश के लिए भंडारे की व्यवश्था हो रही है। बोल बजरंग ! मिष्टान्न की शोंधी शुगन्धि का आकर्षण बड़ा प्रबल हो रहा है। दो-दो प्रबन्ध ! एक शेठ का और दूशरा तुलशीदाश के भंडारे का।

पुत्तन : हाँ, चलिए, पंडितजी।

जागेसुरी : विधाता ने हम लोगों को पंख प्रदान नहीं किए, नहीं तो इशी शमय उड़के प्रश्थान करते। हे महावीर श्वामी ! तुमने थोड़े ही शमय में शमुद्र शंतरण किया। कुछ वैशी ही शक्ति हमको भी प्रदान कर दो। जै बजरंग ! जै बजरंग !

[सबका प्रस्थान]

[परदा गिरता है।]

पाँचवाँ अंक

स्थान : चित्रकूट
समय : संध्याकाल

[चित्रकूट में मन्दिर का विशाल कक्ष। वह बड़े सुन्दर ढंग से सजा हुआ है। स्थान-स्थान पर भगवान राम, शंकर विश्वनाथ, महावीर हनुमान तथा आदिशक्ति दुर्गा के चित्र लगे हुए हैं। स्थान-स्थान पर दीपाधारों की व्यवस्था है। द्वार पर वंदनवार तथा दीवारों पर सुगन्धित फूलों की मालाएँ सजी हुई हैं।

फर्श पर दरी बिछी हुई है। उस पर एक सुन्दर कालीन है। बीच में व्यास गद्दी और तकिया। सामने तिपाई पर रेशमी वस्त्र बिछा हुआ है। उस पर रामचरितमानस की पोथी सजी हुई है। अगरबत्तियों का धूम उठ रहा है। व्यास गद्दी से हटकर कुछ भक्तगण बैठे हैं। हुसैनी जुलाहा कक्ष के प्रवेश-द्वार के समीप कोने में बैठा हुआ है। बेनीमाधवदास अपने दिव्य साधु वेश में हैं। मन्दिर के पुजारी रामसजीवन खड़े हुए अगरबत्तियाँ जला रहे हैं। ज्योतिषी गंगाराम भगवान के चित्रों पर फूल-मालाएँ सजा रहे हैं। चारों ओर एक दिव्य वातावरण है।]

गंगाराम : सन्त तुलसीदासजी के आने में अब कितना विलम्ब है चन्दनसिंह ?

चन्दनसिंह : बस, आते ही होंगे। मन्दाकिनीजी में स्नान कर वह मन्दिर में भगवान के दर्शन कर रहे थे।

पुत्तन : आज तो स्वाजी ने मन्दाकिनीजी में देर तक स्नान किया था। मैं भी उसी जगह स्नान कर रहा था।

हुसैनी : (कोने से) और उन्होंने पुत्तन पहलवान को आसीर्वाद भी दिया था। उससे पुत्तन पहलवान के पैरों का आधा दर्द तो दूर हो ही गया होगा।

पुत्तन : अरे, अब तो मैं बिना वैसाखी के कुछ दूर चलने भी लगा।

बेनीमाधव : सन्त तुलसीदास पर जनता की बड़ी श्रद्धा हो गई है। जिसे देखो वही सन्तजी के सामने अपने दुःख-दर्द की बात कहने लगता है।

चन्दनसिंह : आपका कहना सही है। अभी चार दिन ही की तो बात है। एक ब्राह्मण देवता अपनी दरिद्रता से दुःखी होकर मन्दाकिनीजी में डूबकर आत्महत्या करने जा रहे थे।

गंगाराम : अच्छा ? किसी ने उन्हें रोका नहीं ?

चन्दनसिंह : बहुतों ने रोका, पर वह किसी की बात मानते ही नहीं थे। उसी समय वहाँ तुलसीदासजी पहुँचे। उनकी दीन दशा से दुखी होकर महात्माजी ने मन्दाकिनी जी से प्रार्थना की और उसमें से एक पत्थर उठाकर ब्राह्मण देवता को दे दिया। उसके प्रभाव से उनकी दरिद्रता सदैव के लिए दूर हो गई।

गंगाराम : वह पत्थर पारस पत्थर रहा होगा।

चन्दनसिंह : महात्माजी के हाथ के स्पर्श से पत्थर भी पारस पत्थर हो गया। पर उसी दिन से मन्दाकिनी में दरिद्रमोचन शिला प्रकट हो गई।

एक भक्त : हम तो ओई सिला पे बैठकें अबै हाल आ रए हैं।

दूसरा भक्त : हम सोई उतै गए हते।

तीसरा भक्त : बा सिला को ऐसो परताप है कि ऊ पे बैठतई मन हरीरौ हो जात है।

चौथा भक्त : अरे, हमाई सुनो। हमाए कहूँ सौ रुपैया आ हिरा गए ते। ढूँढ़त-ढूँढ़त बिट्या गए। हे भगवान ! अब का करें ? हम तुरतई बा दरिद्रमोचन सिला पे गए। मन्दाकिनी जू सें बिनती करी—हे परमेसरी ! हमाए रुपैया मिल जाएँ। उते तें घरै आए। एलो, जे जाँघाँ रुपैया ढूँढ़-ढूँढ़ कै हार गए ते, बई जाँघाँ बे रुपैया महाराज बिराजे हैं। और तो और, बे एक सौ सें एक सौ ग्यारह हो गए ! हे परमेसरी ! जा तुम्हाई कौन कला आय ? और बाबा तुलसीदास को कैसो परताप आय !

दूसरा भक्त : वाह, धन्न है बाबा तुलसीदास जू की म्हैंमा।

पहला भक्त : ऐंसी म्हैंमा आय कि मन्दाकिनी महारानी साईं बाबा तुलसीदास जू के बस में हो गई हैं। जैसी बाबा जू कैंत हैं ऊँसई मन्दाकिनी मैया जू कर देत हैं।

तीसरा भक्त : अब जे तो बाबा जू की तपस्या है। हर कोई ऐंसो चमत्कार थोरई कर सकत है।

चन्दनसिंह : सचमुच सन्त तुलसीदासजी की तपस्या आसान नहीं है। चौदह वर्षों तक सत्संग और नाम-भजन हर कोई नहीं कर सकता। आत्मारामजी आज जीवित होते तो अपने लड़के की प्रसिद्धि सुनकर धन्य हो जाते। तब समझते कि अभुक्तमूल नक्षत्र में उत्पन्न हुआ बालक कैसा होता है।

बेनीमाधव : (**माला जपना रोककर**) और माता हुलसी ! उन जैसी भाग्यवती माता कौन होती जिनके पुत्र की महिमा ओर-छोर फैली है।

गंगाराम : पुत्तन पहलवान्न, तुलसीदासजी के मामा जागेसुरी पंडित नहीं दिखे ?

पुत्तन : उनसे कहा तो था कि आज तुलसीदास महाराज की कथा होगी, वहाँ चलना है। फिर पता नहीं कहाँ चले गए !

हुसैनी : मैंने भी उनसे अरदास की थी पंडितजी, राम खुदा की मेहरबानी से ऐसा संजोग जुड़ा है कि तुलसीदास महाराज कथा कहेंगे, पे उन्होंने कहा—'तुलशीदाशजी की कथा के शुनने का अवशर तो मिलेगा और मिलता रहेगा, जो है शो, परन्तु आज एक जजमान के यहाँ श्वादिष्ट भोजन का अवशर प्राप्त भया है, तो मैं तो उशी श्थान पर जाऊँगा।'

गंगाराम : कोई बात नहीं। जागेसुरी पंडित तो ऐसे हैं कि अगर एक ओर भगवानजी हों और दूसरी ओर मिष्टान्न, तो वह पहले मिष्टान्न को प्रणाम करेंगे।

हुसैनी : अब उनका तो यह सुभाव ही है, पंडितजी ! पर मैं तो कहता हूँ कि जो रस राम-कथा में है वो मिनठान में कहाँ धरा है !

गंगाराम : हाँ, कथा की तो बात ही अलग है। फिर जब वह कथा सन्त तुलसीदास की हो !

चन्दनसिंह : तो फिर, पंडितजी, आज किस प्रसंग की कथा होगी ?

गंगाराम : यह तो सन्त तुलसीदासजी की रुचि है। जिस प्रसंग को लेंगे, उसी में रस बरसेगा।

पहला भक्त : पुस्प वाटका कौ प्रसंग होय तौ का कहने हैं ! महारानी सीता जू गौरी जू के पूजन खों पधारी हैं। बई बखत दोऊ भैया राम जू और लछमन जू फूल चुनवे के लाने आए। आहा ! कैसौ नोनो रूप है। मैंने एक गीत सुनौ है। मरजी होय तौ सुनावा। हओ, सुनाउत हौं (**पहले कुछ खाँस के, फिर ग्राम-गीत के स्वर में**) :

देखे-देखे दोइ बीर, बगिया में स्याम सलोना।
ए बगिया में स्याम सलोना, री स्याम सलोना।
देखे-देखे दोइ बीर, बगिया में स्याम सलोना।
स्याम सलोना
करें री सखि टोना
री हंस के-से छौना
लिए हैं कर दोना।
बाँधे जरकस चीर, बगिया में स्याम सलोना
देखे-देखे दोइ बीर, बगिया में स्याम सलोना।।

दूसरा भक्त : अरे वाह भैया ! तुम सोइ मजा दै सकत हौ। कैसों खपसूरत गीत है :
हंस के-से छौना, लिए हैं कर दोना।···वाह ! वाह !

पहला भक्त : अरे, कछू नईं, भैया ! ऊँसई कछू रामजी कौ सुमरन कर लेत हौं।

तीसरा भक्त : पुस्प वाटका तौ ठीक है मनों बा में कछू उपदेस नईं हाँ।

चौथा भक्त : तौ फिर लै लौ बालकांड कै उत्तर कांड :

बाल कौ आदि और उत्तर कौ अन्त
जो जानै सो पूरौ सन्त !

दूसरा भक्त : पै हमें सन्त कौन बनने ? हमें तो कथा सुहात है। कछू कथा कौ भाग बताऔ।

तीसरा भक्त : पै हँसी-खुशी की कथा भओ चाइएँ। रोवे-रुआवे की कथा भैया, हाँ, हमें नईं सुहाय।

पहला भक्त : और जो कहूँ रामजी के रूप की बात कही जाए तौ ?

तीसरा भक्त : तौ बा कथा असल है। भगवान साच्छात् अँखियन के सोंही आ ठाढ़े हो जात।

दूसरा भक्त : तौ रामजी कौ रूप तो बनवासई में निखरत है। लोग-लुगाई उनकी अबाई सुन कें अपनों काम-काज आ बिसर जात।

गंगाराम : हाँ, अच्छा याद आया। जब रामजी गंगापार उतरते हैं तब ग्राम के नर-नारी उन्हें देखकर अपना सब काम-काज भूल जाते हैं और उनके समीप आ जाते हैं। उसी समय एक तापस आता है जो अपने नेत्रों से राम के रूप-रस का पान करता है। यह तापस कौन है ?

चन्दनसिंह : हाँ, ग्राम के नर-नारी जब रामजी के सम्बन्ध में बातें करते हैं तब यह तापस महाराज बीच में ही कूद पड़ते हैं। न इनके नाम का पता, न गाँव का। उनके आने से नर-नारियों की बातचीत बीच ही में टूट जाती है। यह महाशय राम, सीता, लक्ष्मण के चरण छूते हैं, निषाद को गले लगाते हैं और फिर रामजी को ऐसे देखते हैं जैसे किसी भूखे को अच्छा भोजन मिल गया हो। फिर पता नहीं वह कब और कैसे चले जाते हैं।

गंगाराम : हाँ, यह कुछ उखड़ा-सा प्रसंग है। इसका मेल किसी प्रकार कथा के प्रवाह से बैठता ही नहीं। तुलसीदासजी तो बहुत अच्छे प्रबन्धकार हैं, पता नहीं उन्होंने यह बेसिर-पैर का प्रसंग बीच में कैसे डाल दिया।

चन्दनसिंह : और मनोरंजक बात यह है कि इस तापस की बात कहकर तुलसीदासजी नर-नारियों की बात जहाँ से छूटी थी, वहीं से फिर कहने लगते हैं।

गंगाराम : कुछ लोग तो कहते हैं कि तापस का यह प्रसंग क्षेपक है, किसी और ने लिख दिया। क्यों बेनीमाधवजी, आपकी क्या राय है ?

बेनीमाधव : कोई-कोई तो मेरा नाम लेते हैं। मैं तुलसीदास की संगति में सदैव रहता हूँ। मैंने ही यह प्रसंग लिखकर रामचरितमानस में मिला दिया, यह सोचकर कि इस महान ग्रंथ के साथ मेरी रचना का प्रचार भी हो जाएगा। पर यह समझने की बात है, मैं ऐसा कैसे कर सकता हूँ। मानस की पवित्रता में अपनी अयोग्यता से कैसे लांछन लगा सकता हूँ ?

चन्दनसिंह : तो सन्त तुलसीदासजी से क्यों न असली बात पूछ ली जाए ?

बेनीमाधव : यह भी ठीक है। कोई भी कथा-प्रसंग हो, तुम यह बात छेड़ देना और तापस का प्रसंग ले आना।

पहला भक्त : हाँ, जा बात नोंनी रही। कथा की कथा और संका-समाधान अलग।
चन्दनसिंह : अब तो संत तुलसीदासजी को आना चाहिए।
बेनीमाधव : भगवान की आरती करने में कुछ समय लग गया होगा।

[नेपथ्य में शंख-ध्वनि होती है।]

सब लोग : (**एक स्वर में**) आ गए संत तुलसीदासजी।

[सब नेपथ्य की ओर देखते हैं। ध्वनि होती है—'संत तुलसीदासजी की जय ! जय ! जय !!' कुछ शिष्यों के साथ संत तुलसीदासजी का प्रवेश। समस्त शरीर तेज से देदीप्यमान हो रहा है। गौरवर्ण, सिर पर जटा, माथे पर रामानंदी तिलक, गले में तुलसी की माला। हृदय और बाहुओं पर चन्दन से 'राम' लिखा हुआ है। श्वेत वस्त्र। पैर में पादुकाएँ। वह पादुकाएँ उतारकर व्यास गद्दी पर बैठ जाते हैं। सब मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम करते हैं और दाहिने-बाएँ बैठ जाते हैं। गंगाराम उठकर उनकी आरती उतारते हैं। तुलसीदासजी हाथ उठाकर आशीर्वाद देते हैं। सब आरती को प्रणाम करते हैं और स्वस्थ होकर अपने आसनों पर बैठ जाते हैं।]

चन्दनसिंह : महाराज ! चित्रकूट के वासी आपके दर्शन कर कृतार्थ हो गए।
तुलसीदास : (**कुछ अस्फुट स्वरों में, आँख बन्द कर**) श्रीराम, जय राम, जय जय राम ! (**स्पष्ट कंठ से**) संतो ! चित्रकूट में हमारे रामजी का निवास है। इसीलिए तो आप जैसे संतों के हमें दर्शन हुए। चित्रकूट के रज-कणों में हमारे प्रभु राम, सीता और लक्ष्मण के चरण-चिह्न अंकित हैं। यहाँ का वन उनका विहार-स्थल है। इस स्थान का स्मरण आते ही मैंने लिखा :

अब चित चेतु चित्रकूटहिं चलु।
भूमि बिलोकि राम पद अंकित,
बन बिलोकि रघुवर बिहार थलु॥

गंगाराम : वाह महाराज ! भगवान राम ने तो यहाँ रहकर चित्रकूट को पवित्र कर दिया। आपने चित्रकूट पर कविता लिखकर कविता को अमर कर दिया।
तुलसीदास : गंगारामजी ! मेरी कविता तो रामजी का स्मरण करने का साधन-मात्र है। इसे कविता न कहिए, इसे भगवान राम की वन्दना कहिए।
बेनीमाधव : यह वन्दना ही उच्चकोटि का काव्य है, महाराज ! इसी में आपने रामचरितमानस लिखकर संसार के मानव-मात्र का बड़ा कल्याण किया है। यहाँ बैठे हुए सभी भक्तों की प्रार्थना है कि हम सब आपके श्रीमुख से श्रीरामचरित-मानस की कथा सुनें।
एक भक्त : महाराज ! एक तो हमारे बड़े भाग, के आपके दरसन पाए। दूसरो बड़ो भाग जे, के आपके मुखारबिन्द से कथा सुनें—जा सोई रामजी की।
दूसरा भक्त : आपकी रामायन सुनन खों हमारी घरवारी सोई आई है, मनों लाज-

सरम सें वा दरवज्जे की ओट में आ बैठी है। (पुकारकर) अरी, सुन लै री, रामजी की कथा ! महात्माजी के परतच्छ मुँह सें !

तीसरा भक्त : हाँ, सबई तो सुन रहे हैं। और महात्माजी, आपकी भाँस बड़ी मीठी है। हमने भुनसारें आपके मुँह सें पिरारथना सुनी हती।

चौथा भक्त : जौ तो नदी-नाव संजोग आय कै चित्रकूट जू में आप बिराजे हैं। और हम सोई आपके चरनों के लिंघा आ गए।

गंगाराम : हाँ, महाराज ! ऐसा पवित्र अवसर कब मिलेगा ? यों तो आपका काव्य सैकड़ों बरसों तक गाया जाएगा, पर आपके श्रीमुख से सुनने का सौभाग्य हमें मिले तो हम जैसा भाग्यशाली कौन होगा ?

तुलसीदास : (**गम्भीरता से**) संतो ! यह महावीर हनुमानजी की कृपा और भगवान शंकर का प्रसाद है कि मैं भाषा में श्रीरामजी का पावन चरित्र लिख सका। भगवान शंकर ने ही मेरे ग्रंथ का नाम 'रामचरितमानस' रखा :

रचि महेस निज मानस राखा।
पाइ सुसमय सिवा सन भाखा॥
ताते रामचरितमानस वर।
धरेउ नाम हिय हेरि हरष हर॥

बेनीमाधव : वाह ! वाह ! भक्त पर भगवान की कृपा तो रहती ही है। अच्छा, तो अब प्रार्थना है कि आप अपनी कथा का आरंभ करें। श्रीरामचरितमानस की पोथी का पहला पृष्ठ तो खुला ही है।

तुलसीदास : श्री रामजी समर्थ हैं। मैं उनको प्रणाम कर वन्दना से ही आरंभ करता हूँ (**स्वर से, जो अत्यन्त मधुर है**) :

जेहि सुमिरत सिधि होइ, गण नायक करि वर वदन।
करहु अनुग्रह सोइ, बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥
मूक होंहि वाचाल, पंगु चढ़इं गिरि गहन।
जासु कृपा सु दयाल, द्रवहु सकल कलि मल दहन॥
नील सरोरूह स्याम, तरुन अरुन वारिज नयन।
करहु सो मम उर धाम, सदा छीर सागर सयन॥
कुंद इंदु सम देह, उमा रमन करुना अयन।
जाहि दीन पर नेह, करहु कृपा मरदन मयन॥
बन्दहुँ गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नररूप हरि।
महा मोह तम पुंज जासु बचन रवि कर निकर॥

[तुलसीदास जी हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं।]

सब लोग : (**सम्मिलित स्वर से**) संत तुलसीदास महाराज की जय !

तुलसीदास : प्रभु रामचन्द्र महाराज की जय ! उनके नाम की जय ! संतो ! कलियुग

में राम-नाम का बहुत माहात्म्य है :

कलिजुग सम जुग आन नहिं, जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

गंगाराम : महाराज ! आपने नाम का तत्त्व अच्छी तरह समझा है। जैसा आपने राम-नाम से स्नेह किया, वैसा आज तक किसी ने नहीं किया।

तुलसीदास : राम का नाम ही ऐसा है, गंगाराम, कि वह मन को रमा लेता है :

राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी बाहर भीतरहुँ जो चाहेसि उजियार॥

संतो ! अन्य दीपक तो कभी न कभी बुझ जाते हैं, राम-नाम तो ऐसा मणि-दीप है जो कभी नहीं बुझता। सदैव प्रकाश फैलाता रहता है। यदि इस दीप को मुख-रूपी द्वार की जीभ-रूपी देहली पर रख दिया जाए तो भीतर और बाहर दोनों तरफ उजाला हो जाता है।

चन्दनसिंह : भीतर और बाहर से क्या तात्पर्य है, स्वामीजी ?

तुलसीदास : जैसी जिसकी भावना है, वैसी उसकी अनुभूति है। भीतर से तात्पर्य हृदय से और बाहर से तात्पर्य जगत् से समझा जा सकता है। राम-नाम के मणि-दीप से हृदय तो पवित्र होता ही है, संसार का वास्तविक रूप भी समझ में आने लगता है। भीतर से मानसिक भक्ति का भी अर्थ लिया जा सकता है और बाहर से धार्मिक आचारों का। भीतर से निर्गुण ब्रह्म की अनुभूति का और बाहर से सगुण-साकार ब्रह्म के स्वरूप का।

गंगाराम : वाह, महाराज ! 'देहरी-दीपक न्याय' से आपने देहरी पर रखे हुए दीपक की ज्योति का आधार लेकर राम-नाम के प्रभाव का कैसा अच्छा निरूपण किया है। आपने अपने मानस में साकार ब्रह्म का विशेष रूप से ऐसा मोहक वर्णन किया है कि शरीर का रोम-रोम प्रफुल्लित हो जाता है। जब आप रामजी का रूप-वर्णन करने लगते हैं तो लगता है—आपकी कविता-सरस्वती रामजी के रूप की आरती उतारती है।

सब लोग : (सम्मिलित स्वर से) धन्य है ! धन्य है !

बेनीमाधव : आपका कहना सत्य है, गंगारामजी। राम, सीता और लक्ष्मण जब बनवास के लिए निकलते हैं तो जो ग्राम मार्ग में पड़ते हैं उनके नर-नारी रामजी का आना सुनकर अपना सब काम-काज भूलकर उन्हें देखने के लिए आते हैं। मुझे तो आपके मानस का बहुत-सा भाग कंठस्थ है। देखिए, आप लिखते हैं :

सुनत तीर बासी नर नारी।
धाए निज निज काज बिसारी॥
लखन राम सिय सुन्दरताई।
देखि करहिं निज भाग बड़ाई॥

गंगाराम : क्यों महाराज, जब तीरवासी नर-नारी इस प्रकार लक्ष्मण, राम और सीताजी की सुन्दरता का वर्णन करते हुए अपने सौभाग्य की प्रशंसा करते हैं, उसी समय एक तापस आ जाता है। यह तापस कौन है? आपने इसका कहीं नाम भी नहीं लिखा।

[तुलसीदासजी मौन होकर ध्यानमग्न हो जाते हैं।]

बेनीमाधव : हाँ, महाराज, रामजी जिन-जिन ऋषियों और तपस्वियों से मिले हैं उनका नाम आपने रामचरितमानस में लिखा है। भरद्वाज, वाल्मीकि, अत्रि, शरभंग आदि ऋषियों के नाम का स्पष्ट उल्लेख है, इस तापस के नाम का कहीं उल्लेख नहीं है।

तुलसीदास : (**गम्भीरता से**) क्या उल्लेख करने की आवश्यकता है? देखिए, मैं पढ़ता हूँ (**स्वर से**) :

तेहि अवसर एकु तापस आवा।
तेज पुंज लघु बयसु सुहावा॥
कवि अलखित गति बेषु बिरागी।
मन करम बचन राम अनुरागी॥
सजल नयन तनु पुलक निज, इष्ट देव पहिचानि।
परेउ दंड जिमि धननि तल, दसा न जाइ बखानि॥

[तुलसीदासजी का कंठ गद्गद हो जाता है और नेत्रों में अश्रु भर आते हैं।]

राम सप्रेम पुलकि उर लावा।
परम रंक जनु पारस पावा॥
मनहुँ प्रेम परमारथ दोऊ।
मिलत धरे तनु सब कह कोऊ॥
बहुरि लषन पायन्ह सोइ लागा।
लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा॥
पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा।
जननि जानि सिसु दीन्ह असीसा॥
कीन्ह निषाद दंडवत तेही।
मिलेउ मुदित लखि राम सनेही॥
पियत नयन पुट रूपु पियूषा।
मुदित सुअसनि पाइ जिमि भूखा॥

[तुलसीदासजी के नेत्रों से अश्रु बहते हैं।]

बेनीमाधव : महाराज, बड़ा मार्मिक प्रसंग है।

गंगाराम : महाराज, आपकी दशा देखकर तो मुझे कुछ और ही लगता है—जैसे यह तापस कोई बहुत ही बड़ा रामभक्त है। वह शायद कवि भी है। रामजी उसके

इष्टदेव हैं। उनको देखते ही वह अपने तन की सारी दशा भूल जाता है।

बेनीमाधव : वन में बहुत-से तपस्वी घूमते-फिरते हैं—कई ऐसे हैं जिनकी गति कोई देख नहीं सकता : 'अलखित गति बेषु बिरागी।' वह तपस्वी मनसा, वाचा, कर्मणा प्रभु राम का अनुरागी होगा।

गंगाराम : पर उस तपस्वी का कोई नाम भी तो लिया जाना चाहिए। और उसका उल्लेख भी आगे-पीछे होना चाहिए। ऐसा महान तपस्वी जिसके इष्टदेव भगवान राम हैं और जो उन्हें देखते ही भूमि पर लकुटी की भाँति गिर जाता है, सामान्य तपस्वी नहीं होगा। ऐसी दशा सुतीक्षण को छोड़कर किसी भी तपस्वी की नहीं हुई। किन्तु सुतीक्षण तो अरण्य कांड में प्रभु से मिला है। यह प्रसंग तो अयोध्या कांड का है। यह कोई दूसरा तपस्वी है जो महान होते हुए भी अनाम है। और तुलसीदासजी कहते हैं कि उसका उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं है !

बेनीमाधव : मुझे तो उस तपस्वी के सारे गुण अपने सन्त तुलसीदासजी में दृष्टिगत होते हैं। यह तपस्वी उनका मानस-चित्र हो सकता है।

गंगाराम : और तापस-सम्बन्धी छन्द पढ़ते समय तो, महाराज, ऐसा लगा कि यह तापस और कोई नहीं···आप ही का रूप है; आप हैं।

तुलसीदास : (**भावनाओं के उद्रेक में बेनीमाधवदास और गंगाराम की बातें सुनने के बाद जैसे कल्पना-लोक में देख रहे हैं**) मेरे राम···जा···रहे हैं। उनके साथ··· उनके साथ भाई लक्ष्मण और···और भगवती सीता माता भी हैं। वे प्रयाग से··· प्रयाग से···चित्रकूट जा रहे हैं।···मार्ग में यमुना मिलती है। 'उतरि नहाये जमुन जल, जो सरीर सम स्याम।' जैसे···प्रभु राम का···श्याम स्वरूप देखकर युमना ने भी···अनन्त काल से प्रतीक्षा···प्रतीक्षा करते हुए अपना जल···अपना जल भी श्याम कर लिया हो।

बेनीमाधव : धन्य है आपकी भक्ति की दृष्टि, महाराज !

तुलसीदास : (**उसी पहले जैसे भाव में**) प्रभु का आगमन···आगमन सुनकर···यमुना के किनारे रहने वाले स्त्री-पुरुष···स्त्री-पुरुष अपने-अपने काम भूलकर दौड़ पड़े हैं। यमुना के किनारे···यमुना के किनारे···यह मेरी जन्मभूमि···जन्मभूमि राजापुर है। श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजी का सौन्दर्य देखने के लिए···मेरे ग्राम के···सभी नर-नारी···इकट्ठे हो गए हैं। कौन है जो पीछे रह जाएगा ?

बेनीमाधव : उसी समय तापस का आगमन होता है।

तुलसीदास : (**स्वप्नमग्न की भाँति**) आज मेरे इष्टदेव मेरी जन्मभूमि के समीप से जा रहे हैं। तो···तो···जन्मभूमि का कौन-सा अभागा व्यक्ति इस पवित्र अवसर का लाभ नहीं उठाएगा ? तो इन सब···नर-नारियों के पीछे कोई आता है···कोई आता है···तापस···तापस···मैं···मैं···

बेनीमाधव : धन्य है, महाराज !

तुलसीदास : (**विह्वल होकर**) तापस···तापस (**भावावेश के स्वर में**) तापस-रूप मैं हूँ। मैं···मैं···तुलसीदास ! आज मेरी जन्मभूमि धन्य है ! आज मेरे भगवान मेरी

जन्मभूमि में आए हैं। नर-नारी आपस में बातों में उनके वनवास पर दुखी हो रहे हैं। मैं···मैं सामने पहुँच जाता हूँ। (**जैसे कल्पना में देखते हुए**) यह मेरे इष्टदेव भगवान राम हैं···यह···यह लक्ष्मण हैं···और यह मेरी माता···भगवती सीता हैं। एक ओर निषाद खड़े हुए हैं। मेरी···आँखों में आँसू हैं।···शरीर में रोमांच हो आया है। मैं···अपने इष्टदेव के श्रीचरणों में दंडवत् गिरता हूँ···मेरे राम··· मेरे राम मुझे हृदय से·· हाँ, हृदय से लगा लेते हैं जैसे···जैसे किसी रंक को पारस मिल गया हो। सब लोग कहते हैं कि यह प्रेम···प्रेम और परमार्थ का मिलन है। (**ध्यानमग्न हो जाते हैं।**)

बेनीमाधव : सचमुच यह प्रेम और परमार्थ का मिलन है। प्रेम और प्रभु में कोई अन्तर नहीं है। जहाँ प्रेम है, वहाँ प्रभु हैं। जहाँ प्रभु हैं, वहाँ प्रेम है।

तुलसीदास : (**पिघले स्वर में**) यह लक्ष्मण हैं! मैं उनके चरणों में गिरता हूँ। वह अनुरागपूर्वक उमंग कर मुझे हृदय से लगा लेते हैं। यह···यह···सीता माता के चरणों··चरणों की धूल है। उसे मैं अपने सिर पर रखता हूँ। वह मुझे अपना शिशु मानकर आशीर्वाद दे रही हैं। और निषाद ? निषाद जब मुझे भगवान राम का स्नेही जानकर प्रणाम करता है तो मैं उसे हृदय से लगा लेता हूँ। नेत्र-रूपी दोनों से मैं प्रभु का···प्रभु का रूपामृत पान कर रहा हूँ। ऐसा आनन्द···ऐसा आनन्द जैसे किसी भूखे को अच्छा भोजन प्राप्त हो गया हो।

गंगाराम : आपका प्रेम धन्य है, महाराज ! ऐसा प्रेम इस कलियुग में किसके हृदय में होगा।

बेनीमाधव : प्रेमस्वरूप संत तुलसीदास का मानस-प्रेम इतना गहरा है कि उन्होंने त्रेता प्रभु राम को कलियुग में भी देख लिया। अतीत वर्तमान में परिणत हो गया।

गंगाराम : मानस के इस तापस प्रसंग की पंक्तियाँ बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं :

कवि अलखित गति बेषु बिरागी।
मन करम बचन राम अनुरागी॥

हमारे तुलसीदासजी कवि भी हैं, राजापुर में भगवान के आगमन से उनके हृदय में जो उद्वेग हो गया है उसकी गति कौन देख सकता है—ऐसी स्थिति में जब वह मनसा, वाचा, कर्मणा श्रीराम के चरणों में अनुराग रखते हैं ?

बेनीमाधव : आप सही कहते हैं, गंगारामजी। सारे मानस में न जाने कितने संत और तपस्वियों का वर्णन है। किसी ने भी क्रम से राम, लक्ष्मण और सीता के चरण स्पर्श नहीं किए। यह तुलसीदासजी ही ऐसे तापस हैं जिन्हें तीनों का प्रेम प्राप्त है और वह अपने आराध्य के राजापुर आने पर अपने मन की श्रद्धा रोक नहीं सके।

चन्दनसिंह : और यह भी देखिए कि तापस के आने से पहले नर-नारी प्रभु को देखकर अपने भाग्य की सराहना कर रहे थे। तापस के प्रेम को देखकर सब अवाक् रह गए। जब तापस अपने प्रभु से मिलकर उनकी सौन्दर्य-सुधा का पान करने लगा तब फिर नर-नारी अपना पूर्व प्रसंग जोड़कर बात करने लगे :

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे।
जिन पठये बन बालक ऐसे॥

बेनीमाधव : अयोध्या के संतों को भ्रम हो गया कि नर-नारियों की बातों के ठीक बीच में यह विषयान्तर का प्रसंग कैसा ? कहीं यह प्रसंग प्रक्षेप तो नहीं ? कहीं यह प्रसंग मैंने ही तो नहीं जोड़ दिया ? मैंने उनकी मूर्खता पर हँसते हुए उनका तिरस्कार किया। मैंने कहा—'मूर्खो ! तुम लोग संत तुलसीदासजी के प्रेम की चरम सीमा का अनुभव नहीं कर सके। और फिर यह भी सोचने की बात है कि संत तुलसीदासजी की प्रतिभा क्या मुझमें है कि मैं इतना सुन्दर प्रसंग लिख सकूँ ? यह प्रसंग सन्त तुलसीदासजी के भक्तिपक्ष का अनोखा उदाहरण है।'

तुलसीदास : **(स्वस्थ होकर)** भक्तजनो ! यह आप लोगों की कृपा है कि आपने मेरे भावों को समझा है। प्रभु का स्मरण आने पर मेरा हृदय विह्वल हो गया। अब मानस की कथा कल होगी।

चन्दनसिंह : जैसी आज्ञा।

बेनीमाधव : गंगारामजी, मानस की आरती कीजिए।

सब लोग : तुलसीदास महाराज की जय हो !

तुलसीदास : प्रभु राम की जय हो !

बेनीमाधव : अब आरती कीजिए।

गंगाराम : अभी करता हूँ।

[गंगाराम थाल में आरती-दीप सजाकर मानस की आरती करते हैं। तुलसीदासजी तथा अन्य सब सन्त खड़े हो जाते हैं। गंगाराम के स्वर में स्वर मिलाकर सब आरती गाते हैं—]

आरति श्री रामायणजी की।
कीरति कलित ललित सिय पी की॥
गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद।
बाल्मीक बिज्ञान बिसारद।
सुक सनकादि सेस अरु सारद।
बरनि पवनसुत कीरति नीकी॥ आरति श्री···
गावत बेद पुरान अष्ट दस।
छहों शास्त्र सब ग्रंथन को रस।
मुनि जन धन सन्तन को सरबस।
सार अंस सम्मत ही की॥ आरति श्री···
गावत सन्तत संभु भवानी।
अरु घट सम्भव मुनि बिज्ञानी।
ब्यास आदि कवि बर्ग बखानी।
कागभुसुंडि गरुड़ के ही की॥ आरति श्री···

कलि मल हरनि बिषय रस फीकी।
सुभग सिंगार मुक्ति जुवती की।
दलन रोग भव भूरि अमी की।
तात मात सब बिधि तुलसी की ॥
आरति श्रीरामायणजी की···

[सब लोगों की ओर से पुष्प वर्षा होती है।]

सब लोग : रामायणजी की जय ! सन्त तुलसीदासजी की जय !

[पुनः पुष्पवर्षा के बाद परदा गिरता है।]

□

जय आदित्य

भूमिका

(नाटक की रूपरेखा)

इस महान् देश के इतिहास में सम्राट् हर्षवर्धन का व्यक्तित्व अद्वितीय है। विपत्तियों की घटाएँ जब चारों ओर से गर्जन करती हैं तब इस महान् सम्राट का साहस विद्युत की भाँति तड़प उठता है। उसका कृपाण विद्युत-वेग से शत्रुओं पर गिरता है और उनका हृदय विदीर्ण कर देता है। शत्रु-राज्यों के चारों ओर घिरे रहने पर उसने अपनी अकेली शक्ति से सबको पराजित कर समस्त उत्तरी भारत में अपना राज्य स्थापित किया और 42 वर्षों तक ऐसा प्रतापी शासन किया कि किसी भी विरोधी शक्ति को सिर उठाने का साहस नहीं हुआ। शासन की सुव्यवस्था के साथ उसने गुणी जनों और विद्वानों को आश्रय दिया और प्रत्येक पाँचवें वर्ष प्रयाग क्षेत्र में राज्य की समस्त सम्पत्ति का दान कर याचकों और दानार्थियों को विस्मय में डाल दिया। चीनी यात्री ह्वेनसाँग जो उसके राज्य-काल में भारत आया, वह ऐसे सम्राट् को देखकर चकित रह गया। इस भाँति सम्राट् हर्ष में मानवता के सभी गुण आभूषणों की भाँति सुसज्जित थे। सम्राट् हर्ष शक्तिशाली, पराक्रमी और साहसी तो थे ही, वे स्वयं कवि थे, विद्वान थे और दानवीर कर्ण की भाँति मुक्त हस्त से सर्वस्व दान भी कर सकते थे।

सम्राट् हर्ष के जन्म के समय में इतिहासकारों में मतभेद है। उनका जन्म 586 से 590 ईस्वी के बीच में हुआ माना जाता है। वे 16 या 17 वर्ष की अवस्था में सिंहासनासीन हुए। शैशव से ही वीरत्व के बीज उनमें निहित थे। उनके पिता प्रभाकर-वर्धन पुष्यभूति वंश के थे, जिस वंश की स्थापना छठी शताब्दी के आरम्भ में हुई। गुप्त साम्राज्य के विघटन के उपरान्त जो स्वतन्त्र राजवंश स्थापित हुए थे, उनमें पुष्यभूति वंश प्रमुख था। इस वंश में नरवर्धन, आदित्यवर्धन और प्रभाकरवर्धन प्रमुख थे। वे सब सूर्य के अनन्य भक्त थे। छठी शताब्दी में सूर्योपासना का प्रचार भी बहुत था। देश के अनेक स्थानों पर सूर्यदेव के बड़े कलापूर्ण मन्दिर स्थापित हो गए थे।

इस पुष्यभूति वंश में प्रभाकरवर्धन बड़े शक्तिशाली और प्रतापी सम्राट् थे। उन्होंने पश्चिमी पंजाब के हूणों, राजस्थान के गुर्जरों और गुजरात प्रदेश के लाटों को पराजित कर अपने अधीन कर लिया था। उन्होंने 'परम भट्टारक' एवं 'महाराजाधिराज' की उपाधियाँ धारण की थीं।

प्रभाकरवर्धन आदित्य देव (सूर्य) के उपासक थे। बहुत दिनों तक उनके कोई सन्तान नहीं हुई। आदित्य देव की उपासना से उन्हें तीन सन्तानों की प्राप्ति हुई।

सबसे बड़ा पुत्र राज्यवर्धन था। उसके जन्म के अवसर पर एक मास तक उत्सव मनाया गया। समय व्यतीत होने पर हर्षवर्धन अपनी माता यशोमती के गर्भ में आए। महाकवि बाण के हर्ष-चरित के अनुसार राज-ज्योतिषी तारक ने घोषणा की कि "मान्धाता के समय से लेकर अब तक चक्रवर्ती राजा के जन्म के लिए उपयुक्त ऐसे शुभ योग में सम्पूर्ण संसार में कोई दूसरा व्यक्ति उत्पन्न नहीं हुआ है।" और यह बात इतिहास द्वारा प्रमाणित हुई।

'हर्षवर्धन के जन्म के तीन वर्ष बाद रानी यशोमती के गर्भ से राज्यश्री का जन्म उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार शची के गर्भ से जयन्ती का और मैना के गर्भ से पार्वती का हुआ था।' इस प्रकार प्रभाकरवर्धन के दो पुत्र राज्यवर्धन और हर्षवर्धन थे और एक पुत्री राज्यश्री थी।

दोनों राजकुमारों तथा राजकुमारी राज्यश्री को राज-कुल की मर्यादा और प्रतिष्ठा के अनुसार उच्च शिक्षा दी गई। राजकुमारों को सैनिक शिक्षा के अन्तर्गत सभी अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग की दक्षता प्राप्त हुई। साथ ही व्याकरण, शिल्प, चिकित्सा, तर्कशास्त्र तथा काव्य की शिक्षा भी दी गई। वे थोड़े समय में ही शस्त्राभ्यास और शास्त्राभ्यास में पारंगत हो गए। राजकुमारी राज्यश्री को नृत्य और संगीत के साथ-साथ विविध कलाओं में भी शिक्षित किया गया।

जब राज्यश्री यौवन के द्वार पर आई तब पिता प्रभाकरवर्धन ने विविध राज्यों के विवाहेच्छुक राजकुमारों के 'धावकों' को निमंत्रित किया। मालवा का राजकुमार देवगुप्त तो स्वयं छद्म वेश में थानेश्वर आया किन्तु वृद्ध पिता ने कन्नौज के मौखरि नरेश ग्रहवर्मा को सब प्रकार से योग्य पाकर उसके साथ राज्यश्री का विवाह कर दिया।

विवाह के उपरान्त महाराजा प्रभाकरवर्धन ने अपने राज्य की सुरक्षा पर पुनः ध्यान दिया। सन् 604 ईस्वी में थानेश्वर राज्य की उत्तर-पश्चिम सीमा पर लुटेरे हूणों ने उपद्रव मचा रखा था। महाराजा प्रभाकरवर्धन ने बड़े राजकुमार राज्यवर्धन को एक विशाल सेना के साथ हूणों को पराजित करने के लिए भेजा।

राज्यवर्धन को विदा करने के उपरान्त ही महाराजा प्रभाकरवर्धन तीव्र ज्वर से पीड़ित होकर शैया पर पड़ गए। उनका रोग असाध्य हो गया। आयुर्वेदशास्त्र के अष्टांग में कुशल चिकित्सक सुषेण और रसायन भी निराश हो गए। उन्होंने अपने ज्ञान की व्यर्थता के प्रायश्चित में अपना शरीर अग्नि को समर्पित कर दिया। इस घटना में रानी यशोमती अपने पति के जीवन से और भी निराश हो गयी। वैधव्य से बचने के लिए उन्होंने अन्य रानियों के साथ धधकती हुई चिता में प्रवेश कर विपत्ति की कसौटी पर अपने पातिव्रत की कंचन-रेखा खींच दी। हर्षवर्धन ने अपनी माता से अपना दृढ़ संकल्प छोड़ने के लिए अश्रु-भरे नेत्रों से प्रार्थना की किन्तु रानी यशोमती अपने निश्चय पर दृढ़ रहीं। कुछ समय पश्चात् महाराजा प्रभाकरवर्धन का भी देहावसान हो गया।

हूणों को पराजित कर जब राज्यवर्धन लौटे तो उन्हें अपने माता के आत्मदाह और पिता के मरण का समाचार मिला। वे इतने शोक-संतप्त हुए कि उन्होंने राज्यभार

हर्ष पर छोड़कर संन्यास ग्रहण करने का संकल्प ले लिया। हर्ष भरत की भाँति इतने भ्रातृ-भक्त थे कि उन्होंने राज्य-भार अस्वीकार करने का उतना ही दृढ़ संकल्प भाई के सामने रखा।

उसी समय यह समाचार मिला कि राजा प्रभाकरवर्धन की जैसे ही मृत्यु हुई वैसे ही मालवा के दुष्ट स्वामी देवगुप्त ने राज्यश्री के पति महाराजा ग्रहवर्मा की हत्या कर दी। हत्या करने के बाद उसने राज्यश्री को कन्नौज के कारागार में चोर की स्त्री की भाँति बन्धन में डाल दिया। लौह शृंखलाओं से उसके हाथ कस दिए गए और पैरों में बेड़ियाँ डाल दी गईं।

यह सुनते ही राज्यवर्धन क्रोध से उन्मत्त हो उठा। वह संन्यास ग्रहण का संकल्प छोड़कर मालवा वंश का नाश करने के लिए उद्यत हो गया। उसने कहा कि 'उद्दंड शत्रु का नाश करना ही मेरी तपस्या है।' वह दस हजार अश्वारोहियों की सेना लेकर थानेश्वर से चल पड़ा। इस बीच मालवा के राजा देवगुप्त ने गौड़ राजा शशांक से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। राज्यवर्धन ने अपनी वीरता से दोनों देशों की सेनाओं को पराजित कर दिया किन्तु गौड़ राजा शशांक ने झूठे सम्मान और शिष्टाचार से राज्यवर्धन के साथ अपनी सुन्दरी कन्या के विवाह का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। इस प्रस्ताव के साथ उसने राज्यवर्धन को अपने महल में निमंत्रित किया। राज्यवर्धन ने विश्वास कर उसके महल में प्रवेश किया, दुष्ट राजा शशांक ने राज्वयर्धन को निरस्त्र और एकाकी पाकर भोजन के समय वधिक द्वारा उसका सिर कटवा दिया।

कन्नौज के कारागार में पड़ी हुई राज्यश्री की मानसिक स्थिति कितनी दयनीय थी, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। उनकी दशा देखकर किसी गुप्त नामक कुल-पुत्र ने अन्तःपुर की समस्त स्त्रियों सहित उन्हें मुक्त करा दिया। राज्यश्री कारागार से मुक्त होकर विन्ध्यवन की ओर चली गईं जहाँ उन्होंने शोक के वशीभूत होकर अपने को चिता की अग्नि में होम करने का संकल्प लिया।

राज्यवर्धन की हत्या पर हर्षवर्धन को इतना कष्ट और रोष हुआ कि उन्होंने शपथ ली : "यदि कुछ ही दिनों के भीतर मैं पृथ्वी को गौड़ों से रहित न कर दूँ और उन समस्त राजाओं के (जो अपने धनुषों की चपलता के कारण उत्तेजित हुए हैं) चरणों की बेड़ियों की झंकार से प्रतिध्वनित न कर दूँ तो मैं पतंग की भाँति जलती हुई अग्नि में अपने को झोंक दूँगा।" (हर्ष-चरित)

किन्तु राज्यश्री की दुर्दशा सुनकर उन्होंने तुरन्त ही अपनी समस्त शक्ति विन्ध्यवन में राज्यश्री की खोज में लगा दी। जिस समय राज्यश्री चिता में प्रवेश करने जा रही थीं, उसी समय हर्षवर्धन वहाँ पहुँच गए और उन्होंने राज्यश्री को आत्मदाह से बचा लिया। उसे अपने साथ लेकर वे गंगा तट पर अपने शिविर में लौट आए।

वर्धन वंश की यह ऐतिहासिक गाथा कितनी रोमांचकारी है। सम्राट् हर्षवर्धन पर विपत्तियों के बादल किस भयानकता से घुमड़े और स्वजनों की मृत्यु के कितने शल्य उनके हृदय में चुभे, ऐसा उदाहरण इतिहास में किसी नरेश का नहीं है किन्तु जिस अदम्य साहस से उन्होंने इन विषम और विषाक्त परिस्थितियों का सामना किया, यह उनके

महान् व्यक्तित्व का परिचायक है। इस व्यक्तित्व से उन्होंने विपत्तियों पर विजय ही प्राप्त नहीं की अपितु 42 वर्ष तक बड़ी योग्यता और सफलता के साथ शासन भी किया। उनका निधन सन् 648 में हो गया।

उनके सम्बन्ध में डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी ने लिखा है :

"हर्ष के चरित्र में समुद्रगुप्त और अशोक दोनों के गुणों का समन्वय है। समुद्रगुप्त की भाँति विभिन्न दिशाओं में विजय प्राप्त करके उन्होंने सम्राट् का पद प्राप्त किया तथा देश की ऐतिहासिक एकता को पुनः स्थापित किया। उसके उपरांत युद्ध को सदैव के लिए तिलांजलि देकर अशोक की भाँति अपनी सम्पूर्ण शक्ति को शान्ति के कार्यों में लगाया और देश की भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति में योग देकर उसके सांस्कृतिक व्यक्तित्व तथा महानता को विकसित किया।"

इस महान् चरित्र पर प्रस्तुत नाटक की रचना की गई है। पात्रों के चरित्र-निरूपण में तत्कालीन परिस्थितियों की प्रतिक्रिया में जो मनोविज्ञान अंकुरित हुआ है, उसका विकास पात्र विशेष के संस्कारों से पोषित हुआ है। घटनाओं का संघर्ष कुतूहल को जन्म देता है जिससे नाटक की प्रगति में स्वाभाविक गतिशीलता देखी जा सकती है। 'आदित्य' की उपासना से भी वर्धन वंश का विकास हुआ तथा 'आदित्य' पर अडिग आस्था रखने के फलस्वरूप ही हर्षवर्धन ने कठिन से कठिन कार्य सम्पादित किए, इसीलिए नाटक का नाम 'जय आदित्य' रखा गया है। हर्षवर्धन महान् विजेता, महान् शासक, महान् धर्मपरायण, महान् विद्यानुरागी और महान् सभ्यता और संस्कृति के पोषक थे।

आशा है, उनके चरित्र से देश के नवयुवकों को प्रेरणा मिलेगी।

—रामकुमार वर्मा

पात्र-सूची

पुरुष

हर्षवर्धन	:	थानेश्वर के राजकुमार, फिर भारत के सम्राट्
माधवगुप्त कुमारगुप्त	:	मालवनरेश के बंधक पुत्र
सिंहनाद	:	थानेश्वर के सेनापति
देवगुप्त	:	मालव का राजकुमार, फिर मालवाधिपति
ग्रहवर्मा	:	कन्नौज के अधिपति
कुंतल	:	हर्षवर्धन का दूत
संवादक	:	राज्यश्री का दूत
दिवाकरमित्र	:	बौद्ध धर्म के आचार्य
सुबन्धु तारक	:	दिवाकर मित्र के शिष्य

महामंत्री, दौवारिक, प्रतिहारी, चारण,
भिक्षु, शिष्य, सैनिक आदि।

स्त्री

राज्यश्री	:	हर्षवर्धन की बहिन और कन्नौजराज ग्रहवर्मा की रानी
मेनका विराजिका	:	राज्यश्री की सहचरियाँ
शिप्रा	:	चित्रक की पत्नी

प्रथम अंक

स्थान : थानेश्वर
काल : 603 ईस्वी
समय : प्रातः 8 बजे

[महाराज प्रभाकरवर्धन के प्रासाद का बाहरी कक्ष, चन्द्रशालिका। स्थान-स्थान पर रंगीन कंचुक पड़े हुए हैं। फर्श पर संगमरमर की चित्रकारी। दोनों ओर कोनों में रति और प्रीति की प्रतिमाएँ। मंगल प्रदीप अब भी जल रहे हैं। अगरु-पात्र से सुगंधित धूम के यत्र-तत्र बादल उठ रहे हैं। बाहरी द्वार के समीप दाहिनी ओर पुष्प-बाण संधान किए कामदेव और बाईं ओर तांडव नृत्य करते हुए महारुद्र की प्रतिमा।

यवनिका उठने के पूर्व ही नृत्य-ध्वनि। यवनिका उठने पर राजकुमारी राज्यश्री (आयु 14 वर्ष) पूर्ण रूप से सुसज्जित होकर नृत्य कर रही है। मुख पर हल्की मुसकान, केशों में पुष्प-हार, मस्तक पर केसर की पत्रावली, बड़े-बड़े नेत्रों में अंजन, ओंठों पर सु-राग रंजन, चिबुक पर कस्तूरी-बिन्दु, कानों में शिरीष-कलिकाएँ, कंठ में रत्न-हार, कटि में किंकिणी, पैरों में नूपुर। नील चीनांशुक की कंचुकी, शृंगार रस के मात्र स्थायी भाव की भाँति वक्षस्थल जिसमें संचारियों का योग नहीं है। बेंजनी रंग का उत्तरीय और हरित अधोवस्त्र, पैरों में जावक।

राजकुमारी राज्यश्री संपूर्ण शोभा और शृंगार को अंग-अंग में समेट कर नृत्य कर रही है। ताल और लय की गति में उसके अंगों का संचालन इतना ललित है जैसे अलकनन्दा की लहरें भागीरथी की धारा से मिल रही हैं। कुछ देर नृत्य करने के उपरान्त राज्यश्री अपने नूपुर ठीक कर फिर नृत्य करने लगती है। नेपथ्य से नारी कंठ से टोड़ी राग में मधुर गीत सुन पड़ता है :

पीर न जानी ओ हो पिया, देखी तिहारी अनोखी रीति।
हमें छाँड़ि के अनत बिलम रहे, कौन देस की रीति।
कौन···देस···की···रीति···

अन्तिम शब्द के समाप्त होते-होते राजकुमारी राज्यश्री की अंतरंग सखी मेनका मंच पर प्रवेश करती है।]

राज्यश्री : (उसे देखकर नृत्य रोकती हुई इठला कर कृत्रिम रोष से) क्यों री ? यह

तेरा मालकोश राग है ? औड़व जाति के राग 'रे' 'रे' और 'प' भी जोड़ देती है ? जैसे इन्द्र के साथ दो अप्सराएँ। यह मालकोश नहीं है, मालकोश की भार्या टोड़ी है।

मेनका : (**मुस्कुराकर पुनः गाती है—**)

> घूमत तानन बानन सों कर चूमत कानन के मृग मोड़ी।
> ताहि नचावन बीन बजावत प्रीतम के गुन गावत टोड़ी ॥

राज्यश्री : (**भौंहें नचा कर**) टोड़ी में बीन बजाकर मृगों को नचाने लगी ?

मेनका : (**मुस्कुरा कर**) मृग क्यों नाचेंगे, राजकुमारी ! अब तो देश-देश के राजकुमार नाचेंगे। कितने राजाओं के दूत महाराज प्रभाकरवर्धन की सेवा में आ चुके हैं कि राजकुमारी राज्यश्री का नृत्य इस मंच पर न होकर किसी राजकुमार के हृदय पर हो !

राज्यश्री : हृदय पर भी नृत्य होता है ? (**हँस कर**) तेरे हृदय पर हुआ है ?

मेनका : मैं तो आपकी सेविका हूँ। इस बात से सुखी हूँ कि राजकुमारी का यह मनोहर नृत्य किसी राजकुमार के हृदय पर होगा।

राज्यश्री : (**विरस होकर**) देख मेनका, ऐसी विचित्र बातें न मैंने सुनी हैं और न सुनना चाहती हूँ। मंच तो मंच है, वह हृदय कैसे हो सकता है ?

मेनका : हृदय तो नहीं हो सकता। दोनों में कोई समानता नहीं क्योंकि मालकोश से मंच नहीं पिघल सकता, हृदय पिघल सकता है।

राज्यश्री : तेरा हृदय पिघल सकता है ?

मेनका : मेरा हृदय तो आपके स्नेह से पहले ही पिघल कर आपके चरणों को धोना चाहता है।

राज्यश्री : और यदि उससे मेरे चरणों का जावक धुल गया तो ?

मेनका : वह और भी निखर आएगा, राजकुमारी और···और वह चरणों से उठकर माँग की रेखा में भर जाएगा।

राज्यश्री : (**कुतूहल से**) माँग की रेखा में ? मैं कुछ समझी नहीं।

मेनका : (**हँस कर**) आगे चलकर समझ जाएँगी। माँग की रेखा तो केसर की रेखा है, उषा-किरण है, वह राग-रंजित वीथी है···वह वीथी···राजकुमारी ! जो पिता के घर से पति के घर जाती है। सब वीथियाँ तो पैरों से चली जाती हैं, यह सिर से चली जाती है···सिर से (**वक्र भृकुटि**)

राज्यश्री : (**हँस कर**) सिर से ? तब तो सिर गेंद की तरह उछलेगा, गेंद की तरह। उसके पैर कहाँ हैं ?

मेनका : मन के भी तो पैर नहीं होते किन्तु वह जगह-जगह भटकता हैं, दौड़ता है। इसी तरह सिर भी वीथिका पर दौड़ेगा और यह वीथिका जहाँ जाती है वहाँ सामान्य सदन भी महल बन जाते हैं।

राज्यश्री : महल बन जाते हैं ? महल तो यहाँ भी है। पिता का यह सौध-सदन क्या

इन्द्र भवन से कम है ? मैं इसे छोड़कर कहीं नहीं जाना चाहती। इतना अच्छा ! महान् ! यहाँ सुवीथिकाएँ हैं, यह सुन्दर कक्ष···चन्द्रशालिका है । **(संकेत कर)** ये रति और प्रीति की प्रतिमाएँ हैं, कितने मंगल प्रदीपाधार हैं। यह पुष्पित अशोक है, यह बाण-संधान किए कामदेव है। कामदेव के धनुष पर फूलों का बाण है **(रुककर जिज्ञासापूर्वक)** अच्छा, कामदेव के धनुष पर फूलों का बाण क्यों बनाया गया है ? क्या इसे पैने बाण नहीं मिलते ?

मेनका : पैने बाणों से अधिक तीखे ये फलों के बाण होते होंगे ।

राज्यश्री : कामदेव भी कवि ज्ञात होता है जो असंभव लगने वाली कल्पनाओं में विश्वास करता है।

मेनका : (हँस कर) प्रेम करते समय कदाचित् प्रत्येक व्यक्ति कवि हो जाता है ।

राज्यश्री : **(झुँझलाकर)** प्रेम···प्रेम···प्रेम, न जाने किसने यह शब्द बनाया है। संयुक्ताक्षर से आरम्भ होता है और फिर रह जाता है अकेला एक अक्षर। इसी शब्द के कारण बाण नहीं मिले तो फूल रख दिए गए।

मेनका : हो सकता है, बाण से चोट भी न लगे और फूल से चारों ओर सुगन्ध फैल जाए। कामदेव सचमुच बड़ा विचित्र है। कहते हैं कामदेव अनंग है और बड़ा सुन्दर है ।

राज्यश्री : जब यह कामदेव अनंग है—उसके कोई अंग नहीं है तो सुन्दरता कहाँ से आ गयी ? हवा को कैसे सुन्दर कह सकते हैं ? सुन्दरता तो अंग से ही होती है। जब अंग नहीं है तो सुन्दरता कहाँ से होगी ?

मेनका : पहले कामदेव का बड़ा सुन्दर शरीर था पर, शिवजी ने क्रोधित होकर उसे भस्म कर दिया तो बेचारा अनंग हो गया, कवि लोग कामदेव की पहली सुन्दरता को ही ध्यान में रख कर उसे सुन्दर कहते हैं, पर अब उस कामदेव को अंग मिल जाएगा ।

राज्यश्री : कैसे ?

मेनका : कामदेव को कन्नौज के राजकुमार श्री ग्रहवर्मा का अंग मिल गया है जो **(मुस्कुराते हुए रुक-रुककर शब्द बोलती हुई)** तुम्हारा वर होकर आने वाला है।

राज्यश्री : **(तिनक कर)** तू घूम-फिर कर उसी बात पर आ जाती है ।

मेनका : मैं क्यों घूम-फिर कर आऊँगी ? कामदेव ही घूम-फिर कर राजकुमार ग्रहवर्मा के शरीर में आ गया है। बेचारा अनंग होकर बहुत दिनों तक बिना शरीर के घूमता रहा । अब उसे शरीर मिल गया । वह वर बन कर हाथी पर चढ़ कर इसी सौध सदन में प्रवेश करेगा।

राज्यश्री : **(कृत्रिम क्रोध से)** जब करेगा, तब करेगा। मुझे ये बातें अच्छी नहीं लगतीं। तू विवाह की बातों में बड़ी रुचि लेती है । जब चाहेगी तब पिता जी से कह कर तेरा विवाह करा दूँगी । तू कामदेव जैसा पति चाहती है न ?

मेनका : **(लज्जित होकर)** राजकुमारी···

राज्यश्री : अच्छा, तू मेरे नूपुर उतार दे। अब मैं अपनी माँ के पास जाऊँगी।

मेनका : अभी उतारती हूँ। (**राज्यश्री के नूपुर उतारने लगती है।**)

राज्यश्री : मैं कभी-कभी सोचती हूँ, मेनका कि विवाह बड़ी विचित्र घटना है। लोग कहते हैं कि हँसी के साथ उसका आरम्भ होता है और रुदन के साथ उसका अन्त। मैं तो तेरा विवाह ऐसा कराऊँगी कि वह हँसी के साथ आरम्भ होगा और अट्टहास में उसका अन्त होगा...अट्टहास में।

[राज्यश्री स्वयं अट्टहास करती है और मेनका नूपुर उतारते हुए लज्जा से झुक जाती है। इसी समय बाहर की बाईं ओर से एक बाण तेजी से आकर भूमि पर गिर पड़ता है।]

राज्यश्री : (**चौंक कर**) यह बाण ? किसका यह बाण है ? कामदेव के बाणों की बात करते-करते यह बाण कहाँ से आ गया ? इस कक्ष में इस बाण के आने का क्या अर्थ है ?

[मेनका भय से नूपुर खोले बिना उठ खड़ी होती है।]

राज्यश्री : किसका लक्ष्य लेकर यह बाण छोड़ा गया है ?

मेनका : (**ध्यान से देखकर**) इस बाण में एक पत्र बँधा हुआ ज्ञात होता है।

राज्यश्री : पत्र ? कैसा पत्र ? किसका पत्र ?

मेनका : यदि आज्ञा हो तो मैं खोल कर देखूँ।

राज्यश्री : हाँ, खोल कर देख। सावधानी से खोलना। कहीं बाण विषमय न हो।

[मेनका बाण से पत्र सावधानी से खोलती है।]

राज्यश्री : कैसा पत्र है ? पढ़ कर सुना।

मेनका : (**पत्र पढ़ते हुए—**)

पुष्यभूति वंश की अनुपम सुन्दरी राज्यश्री की सेवा में मालवा के अधिपति कुमार देवगुप्त का शतशः नमन स्वीकार हो। महाराज प्रभाकरवर्धन के निमंत्रण पर मैंने अपना दूत न भेज कर स्वयं सेवा में उपस्थित होने का साहस किया। मैं जानता हूँ कि इस समय आप नृत्य-कक्ष में हैं, इसलिए यह पत्र आपको एकान्त में भेज रहा हूँ। आपकी सुन्दरता और कला-प्रियता की प्रसिद्धि समस्त संसार में है। मैं इस पत्र द्वारा यह निवेदन करना चाहता हूँ कि आप मुझसे विवाह करना स्वीकार करें। यदि आपकी स्वीकृति मिल जाएगी तो मैं आपके पिता से विवाह का निवेदन करूँगा। यदि आपने या उन्होंने स्वीकार नहीं किया तो मैं आपका बलपूर्वक हरण करूँगा। समस्त देश में मेरी वीरता की ख्याति है। इस पत्र के पृष्ठ पर मेरा चित्र है, उसे देख कर कृपया मुझे स्वीकार करें। इस पत्र पर अपनी स्वीकृति लिखकर दक्षिण दिशा की ओर मेरा बाण लौटा दें। मैं प्रतीक्षा में हूँ।

—आपके सौन्दर्य-सरोज का भ्रमर
देवगुप्त

राज्यश्री : (**क्रोध में भर कर**) देवगुप्त ? देवगुप्त का यह साहस ? क्या उसने पुष्यभूति वंश की राजकुमारी को विलासिनी समझा है ? यदि मेरी या पिता की स्वीकृति उसे प्राप्त नहीं हुई तो वह मेरा हरण करेगा ? देखूँगी कि वह मेरा हरण किस प्रकार कर सकता है ? (**दाँत पीसते हुए**) नीच···नारकी ।

मेनका : सचमुच राजकुमारी ! मालवा के राजकुमार की अशिष्टता किसी प्रकार से क्षमा नहीं की जा सकती ।

[नेपथ्य में कुमार हर्षवर्धन का कंठ-स्वर]

हर्ष : राज्यश्री···ओ राज्यश्री ।

राज्यश्री : (**प्रसन्नता से**) भाई हर्ष आ रहे हैं । ठीक समय पर आए ।

[हर्षवर्धन का प्रवेश]

हर्ष : राज्यश्री ! तू कब तक नृत्य करती रहेगी ? इतना नाचने से तेरे पैर थक न जाएँगे ? तुझे जीवन में बहुत दूर जाना है । (**राज्यश्री की क्रोधमयी मुद्रा देखकर**) ऐं ? क्या बात है ? इतना सुन्दर मुख और उस पर इतना अधिक क्रोध ? क्या बात हो गयी, बहिन ? तू तो सदैव प्रसन्न रहती है, आज क्या हो गया ?

[राज्यश्री क्रोध से मुँह फेर लेती है ।]

मेनका : कुमार ! राजकुमारी का अपमान हुआ है ।

हर्ष : (**आश्चर्य से**) अपमान ? किसने अपमान किया है ? हर्षवर्धन के रहते किसका इतना साहस हो सकता है कि वह उसकी बहिन राज्यश्री का अपमान करे ? मेनका, अपनी एकमात्र बहिन के अपमान के प्रतिशोध का नाम मेरे कृपाण की धार है ।

[तलवार खींच लेते हैं ।]

मेनका : (**देवगुप्त का पत्र आगे बढ़ाते हुए**) यह पत्र इसका साक्षी है । (**मेनका हर्षवर्धन को पत्र देती है । हर्ष उसे शीघ्रता से पढ़ते हैं ।**)

हर्ष : (**क्रोध से दाँत पीसते हुए**) देवगुप्त ? मालवा का राजकुमार देवगुप्त ? वह भूल गया कि उसके पिता महासेन गुप्त को स्वयं मेरे पिता ने रण-भूमि में पराजित किया था । आज उसके पुत्र का यह साहस कि वह मेरी बहिन राज्यश्री का वरण या हरण करे ? ···अंधकार सूर्य का तिरस्कार करना चाहता है । एक लहर समुद्र को निगलना चाहती है ? एक कायर टूटी हुई तलवार से विजय पाना चाहता है ! (**मेनका से**) मेनका ! तू माधवगुप्त और कुमारगुप्त को इसी समय मेरे पास आने की सूचना दे । वे मेरे कक्ष में होंगे ।

मेनका : (**सिर झुका कर**) जो आज्ञा । (**प्रस्थान**)

हर्ष : (**समझाते हुए**) बहिन राज्यश्री ! मुझे दुःख है कि इस अवसर पर जब अनेक राज्यो के संदेश-वाहक यहाँ एकत्र हुए हैं तब इस प्रकार की घटना घटे, किन्तु इससे किसी प्रकार भी चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है ।

राज्यश्री : मैं चिन्तित नहीं किन्तु दुखी हूँ।

हर्ष : मेरे रहते दुःख करने का कोई कारण नहीं है किन्तु मैं जानना चाहता हूँ कि यह पत्र यहाँ आया कैसे ?

राज्यश्री : मैं मेनका के गीत पर नृत्य कर रही थी कि अन्तःपुर के प्राचीर की बायीं ओर एक बाण वेग से आकर भूमि पर गिरा। उस बाण के मुख पर यह पत्र बँधा हुआ था।

हर्ष : इसका अर्थ यह हुआ कि देवगुप्त प्राचीर के बाहर ही कहीं छिपा हुआ खड़ा है और उसने स्वयं बाण में पत्र बाँधकर तुम्हारे पास भेजने की धृष्टता की है। यों तो प्राचीर-रक्षकों की सावधानी से कोई भी व्यक्ति प्राचीर के समीप नहीं पहुँच सकता किन्तु संभव है माधवगुप्त और कुमारगुप्त की सहायता से देवगुप्त वहाँ पहुँच गया हो। किन्तु उसका षड्यन्त्र सफल नहीं हो सकेगा। मैं अभी यहीं उसके दंड की व्यवस्था करूँगा।

राज्यश्री : मुझे इसी बात का दुःख है, भाई ! कि हमारे पिता के प्रताप का सूर्य ऐसे छद्मवेशियों को समाप्त क्यों नहीं कर सका !

हर्ष : कपट की कन्दराओं में छिप कर ऐसे छद्मवेशी अपने को सुरक्षित समझते हैं किन्तु बाहर आते ही वे कीटों की तरह नष्ट हो जाएँगे। अपराधी तब तक अपनी वीरता की घोषणा करता है जब तक उसका अपराध छिपा रहता है। अपराध प्रकट होने पर वह या तो कछुवे की तरह अपने पैर सिकोड़ कर जड़ बन जाता है या अपने अपराध को अधिकार का रूप देकर वह आवश्यकता से अधिक उग्र हो जाता है।

राज्यश्री : देवगुप्त का यह दुःसाहस उसकी उग्रता का ही तो रूप है।

हर्ष : तो उतनी ही उग्रता से उसे दंड दिया जाएगा। यदि कायर बन कर वह राज्य की सीमा से बाहर नहीं भाग गया तो तुम्हारा भाई हर्ष तुम्हारे अपराधी को दंड देना जानता है।

राज्यश्री : मुझे ऐसे भाई पर अभिमान है।

हर्ष : मालव नरेश महासेनगुप्त के पराजित होने पर देवगुप्त के दो छोटे भाई माधवगुप्त और कुमारगुप्त हमारे पिताजी द्वारा बन्धक रूप में रखे गए हैं। मुझे लगता है, तुमसे विवाह का यह प्रस्ताव रख देवगुप्त अपने पिता की हार को जीत में बदलना चाहता है। यह उसकी कूटनीति है और मैं उसका मूलोच्छेद करूँगा।

[मेनका का प्रवेश]

मेनका : (सिर झुका कर) कुमार की जय। माधवगुप्त और कुमारगुप्त द्वार पर हैं।

हर्ष : उन्हें शीघ्र यहाँ भेजो।

मेनका : जैसी आज्ञा। **(प्रस्थान)**

हर्ष : (राज्यश्री से) बहिन ! तुम भीतर जाओ। मैं तुम्हारे अपमान को राज्य का अपमान समझता हूँ। मैं इसका पूरा प्रतिकार करूँगा, तुम किसी प्रकार भी विचलित न होना।

राज्यश्री : मैं सुखी हूँ, भाई !

[राज्यश्री का सोचते हुए धीरे-धीरे प्रस्थान]

हर्ष : (**टहल कर पत्र पढ़ते हुए**) मैं आपके पिता से विवाह का निवेदन करूँगा। यदि उन्होंने स्वीकार नहीं किया तो मैं आपका बलपूर्वक हरण करूँगा। (**स्वगत**) देवगुप्त को संभवतः यह ज्ञात नहीं कि राज्यश्री के हरण के स्थान पर स्वयं उसके प्राणों का हरण होगा। मेरी बहिन राज्यश्री का अपमान···

[माधवगुप्त और कुमारगुप्त का प्रवेश]

दोनों : (**क्रम से**) प्रणाम करता हूँ कुमार।

हर्ष : (**रोषपूर्वक**) कुमारगुप्त और माधवगुप्त ! क्या तुम जानते हो कि वंश का अपमान किसे कहते हैं ?

कुमार : (**आश्चर्य से**) वंश का अपमान ? किसने किया ?

माधव : किसी ने भी किया हो। किन्तु वंश की मर्यादा लांछित करना ही वंश का अपमान है।

हर्ष : तो जब वंश की मर्यादा लांछित होती है तो उसका क्या प्रतिकार है ?

कुमार : वंश की मर्यादा लांछित करने वाले को भयानक दंड दिया जाना चाहिए।

हर्ष : भयानक दंड किस सीमा तक जाना चाहिए ?

माधव : यह भयानक दंड प्राणदंड भी हो सकता है।

हर्ष : कुमारगुप्त और माधवगुप्त ! तुम दोनों मालव-नरेश के पुत्र हो। तुम दोनों को मेरे पिता ने मेरा साथी नियुक्त किया है। तुम दोनों राजनीति-विशारद हो। यदि कोई इस वंश का, इस राज्य का अपमान करता है तो वह प्राण-दंड का अधिकारी है ?

कुमार : अवश्य।

माधव : इसमें कोई सन्देह नहीं है, राजकुमार !

हर्ष : कुमारगुप्त ! मेरे साथी होने के नाते यदि मैं दण्ड न दूँ तो मेरी ओर से क्या तुम उसे दण्ड दे सकोगे ?

कुमार : अवश्य। उसे प्राण-दण्ड दूँगा।

हर्ष : सोच-समझ कर उत्तर दो, कुमारगुप्त !

कुमार : इसमें सोचने की बात ही क्या है ? यदि अपराध किया गया है तो अपराधी अवश्य ही दण्डित होगा। किन्तु मैं जानना चाहता हूँ, राजकुमार ! कि वंश की मर्यादा को लांछित करने वाला वह अपराधी कौन है ?

हर्ष : अपराधी का नाम जानना चाहते हो ? (**रुक कर**) सुनोगे, सुन सकोगे ?

माधव : अवश्य सुनेंगे।

हर्ष : (**दृढ़ता के स्वर में**) अपराधी का नाम है—मालव कुमार देवगुप्त।

दोनों : (**चौंक कर**) देवगुप्त ? हमारे बड़े भाई ?

हर्ष : हाँ, तुम दोनों के बड़े भाई। मालव राज्य के सबसे ज्येष्ठ राजकुमार। बोलो, मर्यादा की हानि करने वाले को···अपने बड़े भाई को···मेरी ओर से प्राण-दण्ड दे सकोगे ?

[दोनों चुप होकर नीची दृष्टि कर लेते हैं]

हर्ष (तीव्रता से) चुप क्यों हो, बोलो।

कुमार : क्या मैं अपने बड़े भाई का अपराध जान सकता हूँ ?

हर्ष : जान कर भी अनजान बन रहे हो, कुमारगुप्त ? तुम्हारे बड़े भाई देवगुप्त इस समय राजधानी में हैं।

[कुमारगुप्त चुप रहते हैं]

हर्ष : उत्तर दो। इस समय वे राजधानी में हैं।

कुमार : हो सकते हैं।

हर्ष : हो सकते हैं ? यह क्यों नहीं कहते कि हैं। सबसे अधिक अमर्यादित बात तो यह है कि मेरे पिता द्वारा मेरी बहिन राज्यश्री के विवाह-प्रस्ताव के लिए विविध राज्यों के आमंत्रित विविध दूतों के बीच वे स्वयं आए। क्या किसी राज्य के राजकुमार के लिए यह अशोभन नहीं है ?

माधव : सामान्य रूप से अशोभन तो है किन्तु वे हमारे भाई हैं, हम लोगों से मिलने के लिए आ सकते हैं। यह कैसे कहा जा सकता है कि वे दूतों की भाँति विवाह-प्रस्ताव करने के लिए आए हैं ?

हर्ष : वे दूतों की भाँति नहीं, भिक्षुक की भाँति आए हैं।

कुमार : भिक्षुक की भाँति ?

हर्ष : हाँ, भिक्षुक की भाँति। और इसका प्रमाण यह पत्र है। यह पत्र उन्होंने राज्यश्री के कक्ष में एक बाण में बाँध कर भेजा है। इसमें उन्होंने राज्यश्री से प्रणय-निवेदन किया है और इसकी स्वीकृति वे राज्यश्री से चाहते हैं। यदि उसने स्वीकृति नहीं दी तो वे उसका बलपूर्वक हरण करेंगे। और इसके लिए वे दक्षिण द्वार पर छद्मवेश में उपस्थित हैं।

कुमार : यह हमें ज्ञात नहीं है।

माधव : मुझसे भी उन्होंने इसकी चर्चा नहीं की।

हर्ष : क्या मालव के राजकुमार असत्य से अपनी रक्षा करना चाहते हैं ? एक राजकुमार का बिना हमें सूचना दिए छद्मवेश में राजमहल के दक्षिण द्वार पर आकर प्रणय-निवेदन करना और बलपूर्वक हरण कर लेने का दुःसाहस करना क्या मेरे राज-कुल का अपमान नहीं है ? पराजित राज्य की विजेता राज्य के प्रति अवज्ञा और धृष्टता नहीं है ? और अपमान का दण्ड प्राण-दण्ड है। मेरी ओर से यह दण्ड क्या अपने भाई को दे सकोगे ?

[दोनों ही चुप रहते हैं।]

हर्ष : जब कर्त्तव्य और भावना में संघर्ष होता है तो निर्बल वाणी मौन हो जाती है। कुमारगुप्त और माधवगुप्त ! मैं तुम्हें धर्म-संकट में नहीं डालना चाहता। हर्षवर्धन में इतनी शक्ति है कि वह स्वयं अपने अपराधी को दण्डित करे। मैं तुम्हें यही आदेश देता हूँ कि दक्षिण द्वार पर प्रतीक्षा करते हुए अपने बड़े भाई देवगुप्त को मेरे पास भेजो। मैं पहले जानना चाहता हूँ कि देवगुप्त ने अपने ही वंश को इस तरह लांछित क्यों किया है ?

कुमार : वास्तव में यह लज्जा की बात है।

हर्ष : मैं यह भी देखना चाहता हूँ, कुमारगुप्त ! कि तुम्हारा बड़ा भाई देवगुप्त कायर तो नहीं है ? दण्ड की बात सुनकर वह डर कर भाग तो नहीं जाएगा ? यदि वह अपना अपराध स्वीकार कर ले, यदि मेरी बहिन राज्यश्री उसे क्षमा कर दे तो उसके दण्ड में संशोधन हो सकता है। तुम दोनों ही जाकर देवगुप्त को तुरन्त मेरे पास आने की सूचना दो, अन्यथा मैं प्रतिहार को आज्ञा दूँगा कि वह उन्हें बन्धन में डाल कर लाए। प्रतिहार से राजकुमार की मर्यादा लांछित न हो, इसलिए तुम दोनों ही जाओ।

कुमार : जैसा आपका आदेश।

[दोनों ही सिर झुका कर जाते हैं।]

हर्ष : (**टहलते हुए**) भाइयों के कर्त्तव्य के कृपाण पर स्नेह का आवरण है। जिस राज्य के नवयुवक अपना कर्त्तव्य नहीं पहिचानते वे अपने साथ अपने राज्य को भी नष्ट कर देते हैं।

[दौवारिक का प्रवेश]

दौवारिक : राजकुमार की जय ! सेनापति सिंहनाद प्रवेश चाहते हैं।

हर्ष : सिंहनाद ? आने दो।

दौवारिक : जो आज्ञा। (**प्रस्थान**)

हर्ष : वर्षा-काल की घटाओं की भाँति चारों ओर से घटनाएँ घटित हो रही हैं। सेनापति न जाने क्या समाचार ला रहे हैं।

[सेनापति सिंहनाद का प्रवेश]

सिंहनाद : राजकुमार की जय हो। एक आवश्यक राज-पत्र मालवा से प्राप्त हुआ है, उसकी सूचना कुमार की सेवा में प्रस्तुत करने आया हूँ।

हर्ष : पिताजी की सेवा में प्रस्तुत नहीं की ?

सिंहनाद : महाराज कन्नौज के राजकुमार श्री ग्रहवर्मा के राजदूत से बातें करने के लिए एकान्त शिविर में हैं। बड़े राजकुमार भी वहीं हैं। वहाँ किसी के प्रवेश की आज्ञा नहीं है। इसीलिए आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।

हर्ष : वह राजपत्र आवश्यक है ?

सिंहनाद : बहुत आवश्यक है, इसीलिए इस नृत्यशाला में आने का साहस किया है। इसके लिए क्षमा करें।

हर्ष : कहाँ है वह राज-पत्र ?

सिंहनाद : (**राज-पत्र बढ़ाते हुए**) प्रस्तुत है। (**राज-पत्र प्रस्तुत करता है।**)

हर्ष : यह गुप्त राज-पत्र है। (**राज-पत्र खोल कर पढ़ते हैं। आश्चर्य मिश्रित गम्भीर स्वर से**) अच्छा, इसके अनुसार कार्य करूँगा। फिर इसकी सूचना पिताजी को भी दे दूँगा। और कोई आवश्यक बात ?

सिंहनाद : शेष सब ठीक है।

हर्ष : आप जाएँ और अभी द्वार पर ही रहें।

सिंहनाद : जैसी आज्ञा। कुमार की जय ! (**प्रस्थान**)

हर्ष : (**टहलते हुए**) तो यह बात है। (**पुकार कर**) दौवारिक !

दौवारिक : (**प्रवेश कर**) आज्ञा।

हर्ष : जब पिताजी चन्द्र-शालिका में आवें तब मुझे सूचित करना।

दौवारिक : जो आज्ञा। (**प्रस्थानोद्यत**)

हर्ष : देखो, कुमारगुप्त और माधवगुप्त आ गए ?

दौवारिक : वे अभी-अभी एक सैनिक के साथ आ गए हैं।

हर्ष : अच्छा, सैनिक भी साथ आ गया। देखो, उन्हें सैनिक के साथ भीतर भेजो।

दौवारिक : जो आज्ञा। (**प्रस्थान**)

हर्ष : ज्ञात होता है देवगुप्त सैनिक के वेश में है। कपट की कसौटी पर दो रेखाएँ मिल रही हैं। कौन कंचन की है और कौन पीतल की ?

[कुमारगुप्त और माधवगुप्त के साथ देवगुप्त का प्रवेश]

देवगुप्त सैनिक वेश में है। उसके हाथ में धनुष और तूणीर में बाण हैं। कुमारगुप्त और माधवगुप्त प्रणाम करते हैं। देवगुप्त दृढ़ता के साथ खड़ा रहता है।

हर्ष : (**गहरी दृष्टि से देखते हुए**) देवगुप्त ! सैनिक वेश बहुत आकर्षक है। राजकुमार नहीं···सैनिक किन्तु छद्मवेशी सैनिक। क्यों सैनिक राजकुमार देवगुप्त ! वर्धन वंश की राज-मर्यादा से अपरिचित हो ?

देवगुप्त : मैंने आपको प्रणाम नहीं किया क्या इसीलिए ? किन्तु राजकुमार ! आपकी क्रोध भरी दृष्टि ऐसी दिशा है जिसमें मेरे प्रणाम का धूमकेतु उदित नहीं हो सकता और उस प्रणाम का महत्त्व ही क्या है जो किसी बाण की तरह लोहे की दीवार से टकरा कर लौट जाए।

हर्ष : तुम्हारा प्रणाम क्या ऐसा ही बाण है जो अपनी नोक में एक पत्र रखता है ? और वह बाण समर-भूमि में न चल कर अन्तःपुरों में प्रवेश करता है, प्राण लेने के स्थान पर प्रणय की भिक्षा माँगता है ?

देवगुप्त : यह किसी क्षत्रिय की रुचि पर है कि वह अपने बाण का प्रयोग प्राण या प्रणय किसी दिशा में भी करे।

हर्ष : ऐसा बाण समर-भूमि में अभिनन्दित है और अन्तःपुर में कलंकित। देवगुप्त ! तुम अपने को क्षत्रिय कहते हो और अपने ही बाण की उचित दिशा नहीं पहिचानते ?

देवगुप्त : पहिचानने की दृष्टि मेरी है, किसी अन्य की नहीं।

हर्ष : इतने दम्भ से राजवंश विनष्ट हो जाते हैं, यह जानते हो ? दंभी राजकुमार ! तुममें दंभ ही नहीं है, तुममें ऐसा दुःसाहस भी है जो किसी भी राजकुमार के लिए कलंक बन सकता है। देवगुप्त ! यदि तुम राजवंश के सच्चे उत्तराधिकारी होते तो वर्धन वंश के राज्य की सीमा पर तुम्हारा यश चारणों द्वारा गाया जाता। तुम बिना सूचना दिए चोर की भाँति आए और अन्तःपुर के प्राचीर की शाल-भंजिका में सर्प की भाँति छिप कर बैठ गए। फूत्कार की भाँति तुमने अपने प्रस्ताव से राज्यश्री की नृत्यशाला विषमयी वायु से भर दी। तुम अनेक राज्यों के दूतों मे भी हीन हो जो अपनी मर्यादा में नगर के शिविरों में निवास कर रहे हैं। बोलो देवगुप्त ! तुमने जो एक राजकुमारी का अपमान किया है, उसका तुम्हें क्या दण्ड दिया जाए ?

देवगुप्त : क्रोध और दण्ड राजनीति के सर्प की दो जीभों की भाँति हैं। दंशन के लिए इतने शब्दों की आवश्यकता नहीं थी।

हर्ष : (**आवेश से**) सावधान ! अपने शब्दों पर नियंत्रण रखो, देवगुप्त ! अपराधी न्यायाधीश के आसन पर बैठकर अनर्गल प्रलाप करना चाहता है ? (**कुमारगुप्त और माधवगुप्त से**) कुमारगुप्त और माधवगुप्त ! तुम दोनों इस स्थान से जाओ। तुम्हारे सामने बड़े भाई का अपमान न हो। भू-कम्प से पृथ्वी का हृदय विदीर्ण तो होता ही है, आसपास के भवन भी ढह जाते हैं।

माधव : कुमार ! इस बात पर विचार करें कि हमारे बड़े भाई के दुःसाहस से हमारे राज्य मालवा और थानेश्वर के बीच की भूमि विदीर्ण न हो। दोनों में संधि का प्रस्ताव सुरक्षित रहे।

कुमार : और कुमार ! यदि इस समय दण्ड का कृपाण क्षमा की म्यान में सुसज्जित रहे तो वर्धन वंश की शोभा होगी।

देवगुप्त : माधवगुप्त और कुमारगुप्त ! मुझे किसी भी दण्ड से उतना कष्ट न होगा जितना तुम्हारी चाटुकारिता से कष्ट हो रहा है। पिता महासेन की पराजय पर तुम लोग यहाँ बंधक के रूप में क्या रहे, तुमने मालवा की कीर्ति से हर्षवर्धन के चरण धोना आरम्भ कर दिया !

हर्ष : हर्ष के चरण हर्ष की कार्य-शक्ति से धोये जाएँगे, चाहे उसमें मालवा की कीर्ति हो चाहे गौड़ देश की कीर्ति हो। माधवगुप्त और कुमारगुप्त ! तुम जाओ। देवगुप्त के गर्व से तुम दोनों भी अपमानित हो रहे हो।

कुमार-माधव : (**एक साथ**) जैसी इच्छा। प्रणाम। (**प्रस्थान**)

हर्ष : देखा देवगुप्त ! तुम्हारा अहंकार तुम्हारे भाइयों को भी असह्य है। तुमने राजकुमारी का तो अपमान किया ही है, तुम्हारे अहंकार की कूटनीति दावानल की

वह ज्वाला है जो निरीह वृक्षों और लताओं को भस्म करने के लिए चाहे जहाँ बढ़ जाती है। इस दावानल को बुझाने के लिए मेरे पास महामेघ की शक्ति है। यह जानते हो, देवगुप्त ?

देवगुप्त : जानता हूँ, हर्ष ! किन्तु दावानल उठाने का मैंने प्रयत्न ही नहीं किया। मैंने तो केवल राजकुमारी के समक्ष अपनी अभिलाषा व्यक्त की।

हर्ष : मेरे समक्ष या मेरे पिता के समक्ष यह अभिलाषा व्यक्त की जा सकती थी या तुम सम्मानित राजकुमारों की भाँति अपना दूत भेज सकते थे और तुम्हारा प्रस्ताव आदर के साथ सुना जाता किन्तु चोर की भाँति प्रस्ताव करना और दस्यु की भाँति हरण करने का दर्प दिखलाना, यह किसी राजकुमार की शोभा नहीं है। राजकुमार तो तुम्हारे दोनों भाई हैं जो कितने सुशील और सौम्य हैं।

देवगुप्त : सुशील और सौम्य नहीं, हर्ष ! चाटुकार हैं और ऐसे चाटुकारों का भाई होने से मैं लज्जा का अनुभव करता हूँ।

हर्ष : अपने अहंकार को सीमा में रहने दो, देवगुप्त ! तुम्हारे पिता महासेन ने इन दोनों कुमारों को शिक्षा के लिए हमारे पास भेजा है।

देवगुप्त : ऐसी शिक्षा को मैं घृणा की दृष्टि से देखता हूँ।

हर्ष : तुम बहुत अभिमानी ज्ञात होते हो, देवगुप्त ! तुमने राज्यश्री का अपमान तो किया ही है, अब अपने भाइयों का अपमान करने का साहस भी तुममें है ?

देवगुप्त : जो भाई स्वयं अपने सम्मान से गिरे हुए हैं, उनका अपमान कैसा ? फिर मैं उनकी भाँति भाग्य में विश्वास नहीं करता। मैं अपने मस्तक पर स्वयं अपनी भाग्य-लिपि लिखने का अभ्यासी हूँ।

हर्ष : इस दुःसाहस में यदि मस्तक ही कट जाए तो भाग्य-लिपि किस पर लिखी जाएगी ? तुम अपनी ही बात सोचो, अभिमानी राजकुमार ! जो बिना राजाज्ञा के हमारे राज्य की सीमा में प्रवेश करता है वह या तो चोर है या दस्यु। और चोर या दस्यु के लिए क्या दण्ड हो सकता है, यह तुम्हारे मालवा का राज्य भी जानता है।

देवगुप्त : राजाज्ञा की नीति का सहारा लेकर आप जो दण्ड चाहें, मुझे दे सकते हैं। मैं देखूँगा कि मैं इसका उत्तर किस प्रकार दे सकता हूँ।

हर्ष : दण्ड सहन करने के अतिरिक्त क्या उत्तर हो सकता है। और दण्ड यही हो सकता है कि इस अपमान से मेरी बहिन राज्यश्री के जितने आँसू गिरेंगे तुम्हारे शरीर से उतनी ही रक्त की बूँदें गिरायी जाएँ।

देवगुप्त : ये रक्त की बूँदें यदि रण-भूमि में गिरें तो मैं अपने को धन्य समझूँगा।

हर्ष : तुमने स्वयं अपना कार्य-क्षेत्र रण-भूमि नहीं रंग-भूमि ही चुना। तुम रण-भूमि के योग्य भी नहीं रह गए। मुझे दुःख यही है कि मैं अपनी बहिन के विवाह पर्व का अभिषेक रक्त की बूंदों से करूँगा। तुमने ऐसा अपराध किया है कि तुम स्वयं अपने पिता से दण्डित हो सकते हो।

देवगुप्त : पिता का दण्ड पुरस्कार है और शत्रु का दण्ड स्वेच्छाचारिता, निरंकुशता।

हर्ष : सावधान देवगुप्त ! अपराधी जब अशिष्ट हो जाता है तब उसका दम्भ अपनी सहस्र जिह्वाओं से बोलता है और दण्ड को निमन्त्रण देता है। अन्तःपुर की पवित्रता भंग करने पर तुम भयानक दण्ड के अधिकारी हो।

देवगुप्त : किसी सिंह को पिंजड़े में डालकर चाहे जिस तरह उसके प्राण लिए जा सकते हैं।

हर्ष : यदि कोई शाखामृग, जो एक डाल से दूसरी डाल पर कूदता है, अपने को सिंह का सम्मान दे, तो स्वयं शाखामृग भी उसका परिहास करेंगे। किन्तु तुम्हारे दुःसाहस का दण्ड निश्चित है। बोलो, तुम्हारी अन्तिम इच्छा क्या है ?

देवगुप्त : मेरा शव एक क्षण भी इस राज्य में न रहने दिया जाए। उसका अन्तिम संस्कार मेरी मातृभूमि में हो।

हर्ष : मातृभूमि में ? उस मातृभूमि में जिसे तुमने अपने कार्यों से कलंकित किया है ? मैं ही ऐसा नहीं कह रहा हूँ, तुम्हारे पिता का भी यह निर्णय है। यह देखो **(मालवा का राज-पत्र खोलते हुए)** मालवा राज्य से तुम्हारे पिता का यह राज-पत्र आया है जिसमें तुम्हारे अपराध पर उन्होंने तुम्हें अपने राज्य से निर्वासित किया है। सुनना चाहते हो ? सुनो··· **(पत्र पढ़ते हुए)** स्थाण्वीश्वर की सेवा में निवेदन है कि आपकी योग्य पुत्री राजकुमारी राज्यश्री के विवाह-प्रस्ताव के लिए मालवा राज्य की ओर से एक दूत आपकी सेवा में भेजा जा रहा था किन्तु मेरे बड़े पुत्र देवगुप्त ने मेरी आज्ञा न मानते हुए स्वयं जाने का निर्णय किया और राजकुमारी राज्यश्री के अपहरण की बात कही। मैंने इस उद्दंडता के अपराध पर उसे मालवा राज्य से निर्वासित कर दिया है। यदि वह वहाँ पहुँचे तो आप उसे यही दण्ड दें कि अपने राज्य थानेश्वर से भी उसे निर्वासित कर दें।

आपका सामन्त
महासेन।

इस पर तुम्हें क्या कहना है ?

देवगुप्त : यह मैं जानता हूँ। पिता पुत्र की महत्त्वाकांक्षा को कब समझ सका है ? फिर यदि ऐसा पिता किसी राज्य का सामन्त हो तो वह इसके अतिरिक्त क्या लिख सकता है ?

हर्ष : जो पुत्र पिता के सम्मान की रक्षा नहीं कर सकता, वह पशु से भी हीन है। यदि तुम्हारे पिता की ओर से यह राज-पत्र न आया होता तो स्थाण्वीश्वर के राज-दण्ड से तुम दण्डित होते। हमें अपने सामन्त की इच्छा माननी चाहिए। उनकी इच्छा से हम तुम्हें इस राज्य से भी निर्वासित करेंगे। तुम अपने पिता का आदर नहीं करते किन्तु हम उनका आदर करते हैं। पिता इस पृथ्वी पर प्रजापति है, उसकी अव-हेलना प्रकृति के प्रति पाप है। भविष्य में पिता का अपमान न हो, इसका ध्यान रखना।

देवगुप्त : भविष्य की बात भविष्य के हाथ में रहने दीजिए।

हर्ष : अशिष्टता स्वयं एक बरसाती नदी है जो मर्यादाओं के किनारे डुबाने में अपनी महानता समझती है। (**पुकार कर**) दौवारिक !

दौवारिक : (**प्रवेश कर**) आज्ञा।

हर्ष : सेनापति सिंहनाद द्वार के बाहर ही होंगे। उन्हें यहाँ आने की सूचना दो।

दौवारिक : जो आज्ञा। (**सिर झुकाकर प्रस्थान**)

हर्ष : देवगुप्त ! अच्छा हुआ बहिन राज्यश्री के विवाह की मंगल वेला में इस राज्य को किसी दण्ड की व्यवस्था नहीं करनी पड़ी। तुम्हारे पिता ने सारा भार अपने ऊपर ले लिया।

देवगुप्त : किसी परतन्त्र पिता का पुत्र होना मेरा दुर्भाग्य है।

हर्ष : इसे अपना सौभाग्य क्यों नहीं समझते कि तुम्हारे पिता की राजाज्ञा ने तुम्हारे प्राणों की रक्षा की।

देवगुप्त : इस प्रकार प्राणों की रक्षा से मृत्यु अधिक सुख दे सकती है।

हर्ष : यदि तुम्हारे पिता की इच्छा न होती तो देवगुप्त, यह सुख तुम्हें अवश्य प्राप्त होता।

[सेनापति सिंहनाद का प्रवेश]

सिंहनाद : राजकुमार की जय !

हर्ष : सेनापति सिंहनाद ! राजकुमार देवगुप्त को बन्धन में न डालते हुए अपने राज्य की सीमा से बाहर कर दो।

सिंहनाद : जो आज्ञा। (**देवगुप्त से**) चलिए, राजकुमार !

हर्ष : देवगुप्त ! यदि मृत्यु का सुख प्राप्त करना चाहो, तो थानेश्वर राज्य का फिर कोई अपराध कर सकते हो।

देवगुप्त : मैं अपने धनुष-बाण से पूछूँगा।

[देवगुप्त सेनापति के साथ गर्व से चला जाता है।]

हर्ष : अहंकार जीवन को उसी प्रकार नष्ट कर देता है जैसे भू-कम्प का एक ही झटका बड़े से बड़े महल को धराशायी कर देता है।

मेरी बहिन राज्यश्री का सम्मान सुरक्षित रहे। प्रभु उसका मंगल करें। जय आदित्य ! (**प्रस्थान**)

[परदा गिरता है।]

द्वितीय अंक

स्थान : कन्नौज
काल : 605 ईस्वी
समय : प्रातः नौ बजे

[राजमहल अत्यन्त सुचारुता से सजा हुआ है। भित्ति-चित्रों की कलात्मकता नाना रंगों से उभारी गयी है। पाट-वस्त्रों की सज्जा से ज्ञात होता है कि अनेक इन्द्रधनुष मन्द वायु की लहर से कक्ष में झूल रहे हैं। भूमि पर फूलों की पंखड़ियों से अनेक प्रकार की आकृतियाँ बनी हुई हैं। अगरु-शलाकाओं से धुएँ के हंस वायु में तिर रहे हैं। कक्ष में मन्दिर जैसी शुभ्रता और पवित्रता है।

राजरानी राज्यश्री की शोभा पार्वती की भाँति है। पातिव्रत का तेज उसके मुख-मंडल पर उदय होती हुई उषा की भाँति निखर रहा है। रेशमी वस्त्रों की सज्जा ऐसी ज्ञात होती है जैसे संतोष के क्रोड़ में सुख निवास कर रहा हो। माथे पर सिन्दूर-बिन्दु और पैरों में जावक। कंठ का रत्न-हार किंकिणी का स्पर्श कर रहा है जैसे प्रभात-किरण ने क्षितिज को आलोकित कर दिया हो। केशों में फूलों की मालाएँ सुसज्जित हैं। किंकिणी में रत्न-जटित दंतिका है।

राज्यश्री कौशेय मंच पर बैठकर सारंग राग में वीणा-वादन कर रही है। कुछ ही देर में प्रसन्न मुद्रा में ग्रहवर्मा का प्रवेश। वह सम्पूर्ण रूप से राजकीय वेश में है। रत्नजटित मुकुट में मोतियों की मालाएँ झूल रही हैं। बड़े-बड़े नेत्रों में सहज ही अरुण रेखाएँ हैं और काली भौंहों के मध्य में मंगल तारे की भाँति अरुण बिन्दु है। उनके आने पर राज्यश्री वीणा-वादन रोक देती है।]

ग्रहवर्मा : (उल्लास के साथ) राज्यश्री ! तुम कितनी मधुर वीणा बजाती हो ! ज्ञात होता है जैसे वासन्ती वायु की लहरें पुष्पों के कानों में प्रेम की बातें करते-करते विह्वल होकर बिखर गयी हैं। जैसे शंकर के जटा-जूट में गूँजती हुई भागीरथी की लहरें पृथ्वी पर आने को मचल रही हैं। जैसे कोकिल ने अपने समस्त कूजन के स्वर वसन्त को समर्पित कर दिए हों और कहा हो कि इनका उपयोग चाहे जिस पर कर लो और वसन्त ने वे सब स्वर तुम्हारी वीणा के तारों में सजा दिए हों। जैसे…

राज्यश्री : (बीच ही में) बस, बस महाराज ! आपके कंठ की वीणा मेरी वीणा से अधिक मुखर है। यदि आपने अपनी प्रशंसा के नूपुर मेरी रागिनी में सजा दिए तो वह इतनी बोझिल बन जाएगी कि चल भी न सकेगी।

[अपनी वीणा उठाकर कोने में रखती है।]

ग्रहवर्मा : उससे तो उसकी झनकार दूर-दूर तक दिशाओं में फैल जाएगी। अब यही देखो, हमारा तुम्हारा विवाह हुए कितने मास व्यतीत हो गए किन्तु दिशाओं–

दिशाओं में तुम्हारे सौन्दर्य, तुम्हारी कला का जय-जयकार अभी तक हो रहा है।

राज्यश्री : जय-जयकार तो आपका हो रहा होगा। आपका बल, विक्रम, सौन्दर्य और चरित्र तो चारों दिशाओं का शृंगार बन गया है। मेरे विवाह के लिए कितने राजकुमारों के प्रस्ताव आए थे ! किन्तु मेरे पिता जी पुरुष-रत्न की पहिचान रखते थे। उन्होंने आपको सबसे अधिक योग्य पाया। उन्होंने मेरे बड़े भाई राज्य-वर्धन से कहा कि कन्नौज के मौखरि वंश के राजकुमार सब प्रकार से उपयुक्त हैं। वे राजवंशों के सिरमौर हैं। शिव के पदचिह्नों की भाँति वे सम्पूर्ण संसार में पूजे जाते हैं। और आप तो पृथ्वी पर ग्रह-पति सूर्य की भाँति सुशोभित हैं।

ग्रहवर्मा : (हँसकर) यह तुम्हारे पिता का मुझ पर विशेष अनुग्रह था और उन्होंने हमारे विवाह की तैयारी कितनी धूम-धाम से की। भोज, संगीत और विविध प्रकार के आमोद-प्रमोद कितने दिनों तक निरन्तर होते रहे। स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध सभी उस उत्सव में सम्मिलित हुए। विवाहोत्सव में भाग लेने के लिए राजागण कितने उत्साह से एकत्र हुए थे।

राज्यश्री : राजागण ही नहीं, सुदूर पूर्व के सभी सामन्तों की रानियाँ भी उस अवसर पर आई थीं, यह देखने के लिए कि मेरी जैसी सामान्य राजकुमारी के लिए कैसा अनन्त प्रभावशाली सूर्य ही पृथ्वी पर उतर आया है।

ग्रहवर्मा : (उत्साह से) तुम सामान्य राजकुमारी हो ? यदि संसार के समस्त पुष्पों की शोभा इन्द्र-धनुष में गूँथ दी जाए तो वह संभवतः तुम्हारे चरणों की छाया के समान हो।

राज्यश्री : आपकी कविता भी किसी राजकुमारी से कम नहीं है जो आपकी वाणी के अन्तःपुर में गुनगुनाती रहती है।

ग्रहवर्मा : मेरी कविता तो अपने स्थान पर है किंतु राजनीति एक क्षण में कितनी दिशाएँ बदलती हैं। हमारे-तुम्हारे विवाह से मौखरि और तुम्हारे पुष्यभूति वंश के बीच मैत्री सम्बन्ध तो स्थापित हो गया किंतु तुमसे विवाह न कर सकने के कारण मालवा का गुप्त वंश हमारा शत्रु हो गया।

राज्यश्री : मालवा के गुप्त वंश का देवगुप्त ?

ग्रहवर्मा : हाँ, देवगुप्त। उसने गौड़ वंश के राजा शशांक से मित्रता कर ली है। गौड़ वंश के राजाओं से हमारी शत्रुता तो ईशान वर्मा के समय से चली आ रही है। तो हमारे वंश का शत्रु गौड़वंशीय शशांक और तुम्हारे वंश का शत्रु गुप्तवंशीय देवगुप्त। हम दोनों के शत्रु परस्पर मित्र बन गए हैं। शशांक और देवगुप्त।

राज्यश्री : देवगुप्त ? मैं तो यह भी जानती हूँ कि देवगुप्त अपने राज्य मालवा से निर्वासित हो चुका था फिर वह मालवा राज्य का अधिकारी कैसे बन गया ?

ग्रहवर्मा : मालवा नरेश महासेन अत्यन्त सौम्य और निष्कपट थे। देवगुप्त ने भारी षड्यन्त्र रचकर अपने पिता को सिंहासन से हटा दिया और मालवा को स्वयं अपने अधिकार में ले लिया।

राज्यश्री : देवगुप्त वास्तव में षड्यन्त्रकारी है। आपसे मेरा विवाह निश्चित हो गया था

फिर भी उसने मेरे अपहरण का जाल रचा था ।

ग्रहवर्मा : तुम्हारे अपहरण का जाल ?

राज्यश्री : हाँ, मैं अपनी नृत्यशाला में सखी मेनका के समक्ष नृत्य कर रही थी कि दक्षिण दिशा से एक बाण आकर भूमि पर गिरा। वह बाण देवगुप्त ने ही छोड़ा था।

ग्रहवर्मा : बाण तुम्हारे तो नहीं लगा ?

राज्यश्री : इस विचार से बाण छोड़ा भी नहीं गया था। उस बाण के सिरे पर एक पत्र बाँधा गया था। उसमें लिखा था कि यदि मैं मालवा के राजकुमार देवगुप्त से विवाह की स्वीकृति नहीं दूंगी तो वह मेरा अपहरण करेगा ।

ग्रहवर्मा : (**क्रोध से**) दुर्विनीत ! दुःसाहसी ! !

राज्यश्री : वह मूर्ख यह नहीं जानता था कि विवाह की स्वीकृति मैं दूंगी या मेरे पिता देंगे। मेनका ने पत्र पढ़कर सुनाया। मैं तो स्तब्ध रह गई। उसी समय भाई हर्षवर्धन वहाँ पहुँच गए। यदि वे उसी समय न आ गए होते तो वह दुष्ट न जाने कौन-सा जाल रचता !

ग्रहवर्मा : (**जिज्ञासा से**) कोई दुर्घटना तो नहीं हुई ?

राज्यश्री : दुर्घटना क्या होती ? भाई हर्षवर्धन ने मालवा के बन्धक रूप में रखे गए माधवगुप्त और कुमारगुप्त को भेजकर देवगुप्त को बुलाया। वह छद्म रूप से सैनिक वेश में था। मेरा यह अपमान करने पर भाई हर्षवर्धन उसे भयानक दण्ड देते किंतु उसी समय सेनापति ने मालवा-नरेश महासेन का राज-पत्र लाकर दिया जिससे ज्ञात हुआ कि देवगुप्त के इस षड्यन्त्र पर स्वयं महासेन ने उसे मालवा से निर्वासित कर दिया है। उसके लिए दण्ड-स्वरूप यह भी लिखा था कि वह थानेश्वर राज्य से भी निर्वासित कर दिया जाए।

ग्रहवर्मा : फिर थानेश्वर राज्य से भी वह निर्वासित हुआ ?

राज्यश्री : हाँ, हमारे सेनापति ने उसे राज्य की सीमा से बाहर कर दिया। विवाह की मंगल वेला में किसी प्रकार का अमंगल न हो, इसलिए भाई हर्षवर्धन ने उसे दण्ड नहीं दिया। नहीं तो देवगुप्त आज संसार में जीवित न रहता ।

ग्रहवर्मा : अब मेरे हाथों वह जीवित नहीं रहेगा। देवगुप्त और शशांक अब परस्पर मित्र बन ही गए हैं। किसी समय भी हम पर आक्रमण कर सकते हैं। कन्नौज की सीमाओं को सुदृढ़ करने के उपरान्त मैं स्वयं ही मालवा पर आक्रमण करूँगा।

राज्यश्री : मुझे विश्वास है कि आप उसे अवश्य दण्ड देंगे। यदि आज मेरे पिताजी जीवित होते तो देवगुप्त और शशांक सिर नहीं उठा सकते थे। हमारे विवाह के बाद पिताजी असाध्य रोग से पीड़ित हो गए और आयुर्वेद-शास्त्र में पारंगत सुषेण और रसायन जैसे चिकित्सक भी उन्हें अच्छा नहीं कर सके। (**नेत्रों में अश्रु**)

ग्रहवर्मा : (**सांत्वना देते हुए**) यह प्रसंग न छेड़ो, राज्यश्री ! धैर्य रखो ।

राज्यश्री : मैं अपने मन को बहुत धैर्य देती हूँ किंतु मन अशांत हो ही जाता है। मन बहलाने के लिए वीणा हाथ में लेती हूँ तो मन न जाने कितनी दुश्चिंताओं से भर जाता है। मेरे पिता का असाध्य रोग और मरण, वैधव्य शोक से बचने के लिए

पिता की मृत्यु से पहले ही माता का आत्म-दाह मेरे हृदय में चिंता की ज्वालाएँ उत्पन्न कर देता है। ऐसा लगता है जैसे किसी मन्दिर में आग लग गई हो और आरती की प्रार्थना भी आग की लपटों में जल गई हो। मेरे विवाह का संगीत पूरा होते ही जैसे वीणा का तार टूट जाए और उस टूटे तार से तर्जनी कट जाए।

ग्रहवर्मा : **(सहानुभूति से)** शांत ! शांत ! राज्यश्री ! अपने मन को सँभालो। समय ही सृष्टि को नियमित करता है। भूमि में बीज सड़कर ही नये पल्लव और पुष्प उत्पन्न करता हैं। परिस्थिति चाहे कितनी भयानक हो···

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी : महाराज की जय हो। महामंत्री एक आवश्यक कार्य से प्रवेश चाहते हैं।

ग्रहवर्मा : महामंत्री ? इस समय ? इस स्थान पर ? मैं तो स्वयं सभा-भवन में पहुँचना चाहता था। **(सोचकर)** अच्छा। **(राज्यश्री से)** तुम विश्राम करो। मैं महामंत्री से बातें कर लूँ।

राज्यश्री : जैसी आज्ञा। **(प्रणाम कर प्रस्थान)**

ग्रहवर्मा : **(स्वगत)** क्या बात हो सकती है। महामंत्री तो इस प्रकार कभी नहीं आते। **(प्रतिहारी से)** अच्छा, जाओ। महामंत्री को आने की सूचना हो।

प्रतिहारी : **(हाथ जोड़कर)** महाराज की जय हो। **(प्रस्थान)**

ग्रहवर्मा : **(सोचते हुए टहलते हैं)** कोई समस्या तो नहीं उठ खड़ी हुई। राज्य का वैभव जहाँ प्रजा को सुख देता है, वहाँ शत्रुओं की ईर्ष्या का कारण भी बनता है।

[महामंत्री का प्रवेश]

महामंत्री : महाराज की जय हो।

ग्रहवर्मा : महामंत्री ! इस समय कैसे कष्ट किया ?

महामंत्री : महाराज ! इन्द्रप्रस्थ के विषयपति एक आवश्यक सूचना लेकर आए हैं।

ग्रहवर्मा : कैसी सूचना ?

महामंत्री : राजनीति ने कूटनीति का रूप ले लिया है, महाराज ! थानेश्वर नरेश, श्री प्रभाकरवर्धन की मृत्यु की सूचना जैसे ही शत्रु राज्यों को मिली वैसे ही मालवा के देवगुप्त और गौड़ देश के शशांक ने हमें निर्बल समझकर हम पर आक्रमण कर दिया। उन दोनों की सम्मिलित सेना हमारे कन्नौज राज्य की सीमा पर है।

ग्रहवर्मा : सीमा की सुरक्षा तो सुदृढ़ है ?

महामंत्री : सुदृढ़ अवश्य है, महाराज ! किंतु यह आक्रमण अचानक हुआ है। शत्रु सेना का एक गुल्म अर्धरात्रि में चोर की तरह सीमा पर आया। सीमा-रक्षकों ने साहस के साथ उस पर आक्रमण किया। शत्रु सेना के अनेक सैनिक मारे गए किन्तु कुछ सैनिक आँख बचाकर झाड़ियों में छिप गए। उनकी खोज की जा रही है।

ग्रहवर्मा : यह कैसे ज्ञात हुआ कि यह सेना मालवा और गौड़ देश की है ?

महामंत्री : हमारे गुप्तचरों ने कल यह सूचना दी कि मालवा और गौड़ देश की

सम्मिलित सेना इन्द्रप्रस्थ और मथुरा से आगे चलकर कन्नौज की ओर बढ़ रही है।

ग्रहवर्मा : हमारे विषय-पतियों ने उन्हें रोका नहीं ?

महामंत्री : विषय-पतियों ने शत्रु सेना से भयंकर युद्ध किया है किंतु शत्रु पक्ष में दो राज्यों की सेनाएँ हैं। विषय-पतियों को कन्नौज से सहायता की आवश्यकता है।

ग्रहवर्मा : अपनी सेनाओं को उस ओर तुरन्त जाने की आज्ञा दो। सेनापतियों को आदेश दो कि वे अपनी पूरी शक्ति लगाकर शत्रु सेनाओं को सीमा पर ही रोकें। मैं स्वयं अपने सेना-गुल्म को लेकर रणक्षेत्र में आ रहा हूँ। (**सोचकर**) हाँ, जो सैनिक झाड़ियों में छिप गए हैं उनकी शीघ्रता से खोज होनी चाहिए। वे हमारे नगर में भी प्रवेश कर सकते हैं और दस्युओं की भाँति भयानक कांड रच सकते हैं।

महामंत्री : छिपे हुए सैनिकों की खोज तो की ही जा रही है। राज्य के कुछ सैनिकों को मैं सीमा की ओर भेज भी रहा हूँ।

ग्रहवर्मा : शीघ्रता कीजिए। मुझे जो आशंका थी वही हो रहा है। मैं जानता था कि मालवा और गौड़ देश मिलकर हम पर आक्रमण कर सकते हैं। वह आक्रमण अचानक और इतने शीघ्र होगा इसकी संभावना नहीं थी किंतु कूटनीति में असंभाव्य कुछ भी नहीं है।

महामंत्री : दोनों देश थानेश्वर नरेश श्री प्रभाकरवर्धन की मृत्यु की प्रतीक्षा ही कर रहे थे।

ग्रहवर्मा : कोई बात नहीं। हम भी निर्बल नहीं हैं। आप रक्षा-गुल्म के सेनापति को शीघ्र ही सूचित करें कि वे अपने सैनिकों सहित अस्त्र-शस्त्रों से तैयार रहें। उनके साथ मैं शीघ्र ही युद्ध-भूमि में जाऊँगा।

महामंत्री : जैसी आज्ञा। (**गमनोद्यत**)

ग्रहवर्मा : और सुनिए। नगर की सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध रहे।

महामंत्री : सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध रहेगा। महाराज की जय ! (**प्रस्थान**)

ग्रहवर्मा : तो युद्ध के बादल हमारी राज्य-सीमाओं को घेर रहे हैं। कोई चिंता की बात नहीं। प्रलयंकर शिव हमारी सेनाओं के साथ हैं।··· (**पुकारकर**) प्रतिहारी !

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी : महाराज की जय हो।

ग्रहवर्मा : महारानी राज्यश्री को यहाँ आने की सूचना दो।

प्रतिहारी : जैसी आज्ञा। (**प्रस्थान**)

ग्रहवर्मा : (**स्वगत**) कुछ क्षण पहले राज्यश्री से इसी विषय पर बातें हुई थीं। कन्नौज की शक्तिशाली परम्परा को घोषित करने का अवसर प्रलयंकर शिव ने मुझे इतने शीघ्र दे दिया। अब विलम्ब करने का समय ही नहीं है।

[राज्यश्री का प्रवेश]

ग्रहवर्मा : आओ, राज्यश्री। राजनीतिक कुचक्र की जो बात मैंने कुछ क्षण पहले तुमसे

कही थी, वह सच हो गई। मालवा का देवगुप्त और गौड़ देश का शशांक अपनी सम्मिलित सेना लेकर कन्नौज पर चढ़ आया है। हमारी सेना सतर्क है किंतु उसका सामना करने के लिए मुझे शीघ्र ही रण-भूमि में जाना है।

राज्यश्री : क्या दीपशिखा में जलने के लिए दो पतंगों ने मृत्यु-यात्रा आरम्भ कर दी ?

ग्रहवर्मा : तुम्हारी मंगल कामना मेरी शक्ति के साथ है। तुम तो जानती हो कि गौड़ वंश का राजा हमसे ईर्ष्या करता रहा है और···और **(मुस्कुराकर)** मालवा का राजा देवगुप्त तुमसे विवाह न कर सकने के कारण प्रतिहिंसा की आग में जलता रहा है। इसीलिए दोनों राज्यों में आपस में संधि हो गई है और दोनों ही मिलकर आक्रमण करने के लिए आए हैं।

राज्यश्री : मैं भी रण-क्षेत्र में आपके साथ चलूँ ? देवगुप्त ने तो मेरी रंग-भूमि में एक बाण छोड़ा था, मैं रण-भूमि में उस पर सहस्रों बाणों से आक्रमण करूँगी।

ग्रहवर्मा : उसके लिए मैं ही पर्याप्त हूँ, तुम्हें कष्ट करने की आवश्यकता नहीं। मैं उसे जीवित पकड़कर तुम्हारे चरणों में डाल दूँगा। पहले तुम्हारे चरणों पर उसका पत्र गिरा था, अब वह स्वयं आकर तुम्हारे चरणों पर गिरेगा।

राज्यश्री : तब देखूँगी कि वह मृत्यु के साथ भी कोई षड्यन्त्र करता है या नहीं। ऐसे व्यक्ति अपने साथ अपने राज्य को भी कलंकित करते हैं।

ग्रहवर्मा : कलंक ही कलंकी को अपने साथ ले जाता है। अच्छा, अब मैं चलूँगा। रण-क्षेत्र मेरी प्रतीक्षा कर रहा है।

राज्यश्री : **(विह्वल होकर)** आप जा रहे हैं ? मेरा हृदय अत्यन्त व्यथित हो रहा है।

ग्रहवर्मा : इस व्यथा को दूर कर मुझे अपनी शुभकामना दो।

राज्यश्री : **(पुकारकर)** मेनका !

मेनका : **(प्रवेश कर)** आज्ञा, स्वामिनी !

राज्यश्री : महाराज युद्ध-भूमि में जा रहे हैं, विदा की सामग्री शीघ्र ला।

मेनका : **(सिर झुकाकर)** जो आज्ञा। **(प्रस्थान)**

ग्रहवर्मा : तुम्हारी मंगल कामना ही मेरा कवच है, तुम्हारा प्रेम ही मेरे युद्ध की शक्ति है और तुम्हारी प्रेरणा ही मेरे शस्त्रों की पैनी धार है।

राज्यश्री : मेरी कामना आपको विजय-श्री प्रदान करे। मैं अपनी आँखें बन्द कर कल्पना करूँगी कि सैनिकों में सबसे आगे आप हैं। आपकी तलवार चक्राकार घूम रही है और शत्रु के सिर कट-कटकर चारों ओर बिखर रहे हैं। रक्त की धाराएँ टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ बना रही हैं और आप विजय प्राप्त कर जय-जयकार के साथ लौट रहे हैं।

[मेनका आरती-पात्र और तलवार लेकर आती है।]

राज्यश्री : **(आरती का थाल लेकर ग्रहवर्मा की आरती कर तिलक करती है और उनके हाथों में तलवार देती है)** जाइए, स्वामी ! युद्ध में आप वज्र बन कर शत्रुओं का नाश करें। आपकी दृष्टि ही शत्रुओं के भागने की दिशा हो और आपकी तलवार

उनकी मृत्यु का द्वार खोल दे।

ग्रहवर्मा : (**तलवार लेकर**) तुम्हारी मंगल कामनाओं में वर्धन वंश की यशस्वी परम्परा है। महाराज प्रभाकरवर्धन ने जिस प्रकार मालवा नरेश महासेन को पराजित कर उसके दोनों पुत्र वन्धक रूप में लिए थे उसी प्रकार मैं शशांक और देवगुप्त को वन्धक रूप में लाकर तुम्हारे चरणों में डाल दगा। आज मेरी सेनाएँ युद्ध में प्रलयाग्नि जला कर मालवा राज्य को सदैव के लिए ध्वस्त कर देंगी।

राज्यश्री : जाइए, स्वामी ! रण-चडी आपके शस्त्रों में आसन ग्रहण करें और आपकी विजयश्री राज्यश्री की भाँति आपका अनुगमन करे।

ग्रहवर्मा : (**हाथ उठाकर**) तथास्तु। प्रियतमे ! विदा ! (**शीघ्रता से प्रस्थान**)

राज्यश्री : (**ग्रहवर्मा के जाने की दिशा में देखती हुई**) प्रियतम ! शीघ्र ही आपकी विजय की दुंदुभी वजे और आप शत्रु का मान-मर्दन कर शीघ्र ही लौटें। (**कक्ष में लगे हुए ग्रहवर्मा के चित्र के समीप जाकर**) प्राणनाथ ! वासन्ती दिवस की संध्या भी नहीं हो पायी और चिन्ताओं के मेघ आकाश में घिर आए। आप युद्ध-क्षेत्र में चले गए। वहाँ आप अपनी ऐसी युद्ध-कला दिखलाएँ कि भविष्य में शत्रु कभी सिर न उठा पाए। मौखरि वंश अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध है। आप उस वंश की भाँति···प्रचंड सूर्य की भाँति अपना प्रताप दिखलाएँ।

[राज्यश्री अपने अश्रु पोंछ कर मेनका को पुकारती है।]

राज्यश्री : मेनका !

मेनका : (**प्रवेश कर**) आज्ञा, स्वामिनी !

राज्यश्री : महाराज गए ?

मेनका : हाँ, स्वामिनी ! द्वार पर सेनापति अश्व लिए प्रतीक्षा कर रहे थे। महाराज शीघ्रता से पहुँचे। अश्व पर आसीन हुए और वायु-वेग से रण-क्षेत्र की ओर बढ़ गए। उनके घोड़े की टापों से उड़ी हुई धूल आकाश में छा गयी।

राज्यश्री : उनके साथ कितने सैनिक थे ?

मेनका : उनके साथ आठ-दस अगरक्षक थे।

राज्यश्री : मेरे हृदय में आशंकाओं के बादल घिर-घिर जाते हैं। देवगुप्त और शशांक सीधा युद्ध नहीं करते, वे कूटनीति के पिशाच हैं। हमारे महाराज को युद्ध-भूमि में कोई पराजित नहीं कर सकता किन्तु शत्रु उनके साथ कहीं कोई छल न करे।

मेनका : हमारे महाराज रण-नीति अच्छी तरह जानते हैं। उनकी वीरता के समक्ष कोई छल नहीं कर सकता।

राज्यश्री : भगवान् आदित्य ऐसा ही करें परन्तु युद्ध में किसी प्रकार का कपट न हो। पूर्णिमा का चन्द्र आकाश के कण-कण में अमृतमयी चाँदनी बिखेरता है किन्तु अकस्मात् उसे राहु ग्रस लेता है। चारों दिशाओं में विस्तार से फैले हुए आकाश में किस दिशा से राहु आ जाता है, यह स्वयं चन्द्र नहीं जानता।

मेनका : स्वामिनी ! यदि राहु और केतु एक साथ मिल जाएँ तब भी महाराज की यश-

चन्द्रिका मलीन नहीं हो सकती।

राज्यश्री : स्वामी के आराध्य भगवान् शिव उनका कल्याण करें। किन्तु सहसा उनके चले जाने से मेरा मन बहुत दुखी हो गया है।

मेनका : मैं चारणों का युद्ध-गीत आपको सुनवाऊँ ?

राज्यश्री : हाँ, उससे कदाचित मेरा मन स्थिर हो सकता है।

मेनका : मैं चारणों को अभी बुलवाती हूँ। (**प्रस्थान**)

राज्यश्री : युद्ध-भूमि में तलवारों का संगीत और यहाँ चारणों का संगीत जैसे युद्ध की विभीषिका के दो किनारे हों।

[संवादक का प्रवेश]

संवादक : (**हाथ जोड़कर**) महारानी की जय ! थानेश्वर से राजकुमार हर्षवर्धन ने एक दूत भेजा है। वह सेवा में उपस्थित होने की आज्ञा चाहता है।

राज्यश्री : (**प्रसन्नता से**) मेरे भाई हर्षवर्धन ने भेजा है ? उसे शीघ्र ही उपस्थित करो।

[संवादक का सिर झुका कर प्रस्थान]

राज्यश्री : (**अपने आप**) हर्ष···भाई हर्षवर्धन ! तुम्हें क्या ज्ञात होगा कि आज कन्नौज में युद्ध की दुंदुभी बज उठी है। तुम्हें ज्ञात होता तो तुम अपनी सारी सेना लेकर मेरी सहायता को आ सकते थे। तुम क्या समझो कि यह युद्ध कितने अचानक हो गया। हर्ष···मेरे भाई हर्ष ! इतना समय भी नहीं है कि मेरी सूचना पाकर तुम शीघ्र ही आ सको। किन्तु मेरे पति की वीरता कैसे स्पष्ट होगी कि उन्होंने अकेले ही दो राज्यों की सेना को पराजित किया।

[संवादक का एक दूत के साथ प्रवेश। दूत के हाथ में एक थाल है जिसमें एक रेशमी वस्त्र और एक पत्र भी है। थाल रेशमी वस्त्र से ढका हुआ है। दूत मस्तक झुका कर प्रणाम करता है।]

राज्यश्री : आओ दूत ! मेरे भाई हर्ष सकुशल हैं ? थानेश्वर में शांति है ?

दूत : महादेवी ! मेरा नाम कुंतल है। मैं कुमार हर्षवर्धन का दूत हूँ। वे और बड़े कुमार राज्यवर्धन सकुशल हैं। (**थाल छोटे मंच पर रखता है।**)

राज्यश्री : हमारे पिता के स्वर्गवास के उपरान्त राज्य की व्यवस्था कैसी चल रही है ?

कुंतल : महादेवी ! हूणों पर विजय प्राप्त कर जब बड़े कुमार राजधानी में आए तो महाराज की मृत्यु पर उनको इतना अधिक शोक हुआ कि उन्होंने राज-काज का दायित्व कुमार हर्ष पर छोड़ कर संन्यास ग्रहण करने का संकल्प ले लिया।

मेनका : संन्यास ?

कुंतल : हाँ महादेवी ! उन्होंने कुमार हर्ष से कहा कि मेरे मन रूपी वस्त्र में जो स्नेह रूपी मल संलग्न है उसे पर्वत शिखर से बह कर आते हुए स्रोतों के स्वच्छ जल से

धोने के लिए मैं संन्यास ग्रहण करना चाहता हूँ। इसलिए मेरे हाथ से राज-काज का भार तुम अपने ऊपर लो।

राज्यश्री : फिर कुमार हर्ष ने क्या कहा ?

कुंतल : कुमार ने उसे स्वीकार नहीं किया। उन्होंने बड़ी नम्रता से कहा—ऐसी आज्ञा देना ठीक वैसा ही है जैसे कोई श्रोत्रिय को सुरा-पान करने, सच्चे सेवक को स्वामी से द्रोह करने, सज्जन पुरुष को अधम के साथ व्यवहार रखने अथवा साध्वी को सतीत्व का त्याग करने के लिए कहे।

राज्यश्री : धन्य है कुमार ! जहाँ राज्य-सिंहासन प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार के षड्यन्त्र और पाप किए जाते हैं वहाँ तुमने भरत का आदर्श सामने रखते हुए अपने बड़े भाई का कितना सम्मान किया है। फिर कुंतल ! राज्य का अधिकार किसके पास है ?

कुंतल : कुमार राज्यवर्धन अपने संकल्प से विचलित नहीं हैं। वे राज-दण्ड सम्भालने के स्थान पर संन्यास-दण्ड ग्रहण करना चाहते हैं। इधर कुमार हर्षवर्धन दृढ़ हैं कि बड़े भाई के रहते वे किसी प्रकार सिंहासन के अधिकारी नहीं होंगे।

राज्यश्री : एक धर्म-युद्ध है।

कुंतल : कुमार हर्षवर्धन ने तो भगवान् आदित्य से यह प्रार्थना भी की कि बड़े भाई ही सिंहासन के अधिकारी हों क्योंकि उन्हें भय था कि पिता की मृत्यु सुनकर वे संसार ही न छोड़ बैठें।

राज्यश्री : राज्य-परिषद् का क्या विचार है ?

कुंतल : राज्य-परिषद् भी किंकर्तव्य-विमूढ़ है। दोनों भाई सिंहासन से विरक्त हैं अतः राज्य-परिषद् ही राज्य का कार्य देख रही है।

राज्यश्री : बड़ी विचित्र परिस्थिति है। यदि यहाँ की स्थिति ठीक होती तो मैं स्वयं थानेश्वर चल कर बड़े भाई राज्यवर्धन को समझाती। वे अपनी एकमात्र प्यारी बहिन का आग्रह कभी न टालते। किन्तु कुंतल ! मैं यहाँ से जा नहीं सकती। हमारे देश पर युद्ध के बादल छाए हुए हैं। गौड़ और मालवा के राजाओं ने हमारे देश पर अचानक ही आक्रमण कर दिया है। हमारे महाराज युद्ध-भूमि में गए हुए हैं।

कुंतल : महादेवी ! मैं इसकी सूचना शीघ्र ही कुमार हर्षवर्धन को देना चाहता हूँ। वे शीघ्र ही आपकी सहायता को पहुँचेंगे। वे तो इतने रण-कुशल हैं कि शत्रु उन्हें देखते ही भाग जाते हैं, जैसे सूर्य के उदय होने पर अन्धकार समाप्त हो जाता है।

राज्यश्री : ठीक है, किन्तु यह सूचना देने में भी कुछ समय लग जाएगा। तब तक हमारे महाराज ही शत्रु के दाँत खट्टे कर देंगे।

कुंतल : ऐसी ही आशा है, महादेवी ! मौखरि नरेश की वीरता तो चारों दिशाओं में गूँजती है। महादेवी ! कुमार हर्षवर्धन ने आपकी सेवा में **(थाल की ओर संकेत करते हुए)** एक पत्र और पाट-वस्त्र उपहार में भेजा है।

राज्यश्री : मेरे भाई मुझे बहुत प्यार करते हैं **(संवादक से)** संवादक ! उस थाल में से पत्र निकाल कर मुझे सुनाओ।

संवादक : जो आज्ञा। **(थाल में से पत्र निकाल कर पढ़ता है—)**

मौखरि वंश की लक्ष्मी प्रिय बहिन राज्यश्री,

भगवान् आदित्य तुम्हें सदैव सकुशल और प्रसन्न रक्खें। तुम किसी बात की चिन्ता मत करना। बड़े भाई पिताजी की मृत्यु पर अत्यन्त शोक-संतप्त हैं। वे राज्य-कार्य से उदासीन हो गए हैं। किन्तु मुझे विश्वास है मेरे बार-बार आग्रह से वे सिंहासन अवश्य स्वीकार कर लेंगे। तुमने मुझ से एक बार आग्रह किया था कि तुम हमारी माता यशोमती का वह उत्तरीय चाहती हो जो उन्होंने चिता पर चढ़ते समय उतार कर दिया था और एक दूसरा उत्तरीय धारण कर आत्म-दाह किया था। उनका वह उतारा हुआ उत्तरीय तुम्हारे आग्रह से भेज रहा हूँ। यह उनका स्मृति-चिह्न है। पूजा करते समय तुम इसे धारण कर लिया करना। अनुभव करना कि हमारी जननी की शक्ति हममें अवतरित हो रही है। जीवन का दुःख भूलने का प्रयत्न करना।

यहाँ सब कुशल है।

तुम्हारा भाई
हर्ष

राज्यश्री : **(विह्वलता से)** कहाँ है मेरी माँ का उत्तरीय? **(शीघ्रता से चल कर थाल का रेशमी वस्त्र हटा कर चीर निकालती है और उसे आँखों से लगा कर सिसकती है)** माँ, माँ! मेरी माँ! तुम हँसते-हँसते चिता पर चढ़ गयीं और हम रोते-रोते जीवन का कष्ट नहीं काट सकते। तुम वीर पत्नी ही नहीं, वीर माँ भी हो। माँ! **(लम्बी सिसकी)**

कुंतल : महादेवी! शान्त हों। वीर माता ने अपना कर्तव्य निभाया। अब वीर-पुत्री भी साहस से अपने कर्तव्य का निर्वाह करें। आप साहसी बनें। शोकावेग से विचलित न हों।

राज्यश्री : माँ की स्मृति हो आयी थी, कुंतल! उन्होंने मुझे कितने वात्सल्य से सींचा। कलाओं में पारंगत किया। विवाह के उपरान्त विदा होते समय उन्होंने कहा था— राजे! यदि प्रभु ने माँ के शरीर में दो प्राण दिए होते तो एक प्राण सदैव ही तेरे पास रहता! **(सिसकी)**

कुंतल : शान्त हो, महादेवी!

राज्यश्री : मेरे स्नेह की निर्बलता के लिए मुझे क्षमा करना, कुंतल! मेरे दोनों भाइयों की सेवा में मेरा प्रणाम निवेदन करना। भाई हर्ष से कहना कि अपनी माँ का स्मृति-चिह्न पाकर मैं कृतार्थ हो गयी। पूजा करते समय मैं उसे अवश्य धारण कर लिया करूँगी। यह भी कह देना कि मालवा और गौड़ देश के राजाओं ने हमारे देश पर आक्रमण कर दिया है। मेरा हृदय इस समय बहुत अस्थिर है इसलिए पत्र नहीं लिख पा रही हूँ। इस युद्ध-काल में तुम्हें रोक भी नहीं सकती।

कुंतल : मुझे रुकना भी नहीं चाहिए, महादेवी ! दोनों कुमारों को मुझे यहाँ के युद्ध की सूचना शीघ्र ही देनी है।

राज्यश्री : अच्छी बात है, तुम जाओ। मेरे भाइयों से प्रणाम कहना।

कुंतल : जैसी आपकी आज्ञा।

राज्यश्री : **(संवादक से)** संवादक ! यह वस्त्र मेरे पूजा-कक्ष में सजा कर रख दो और राजदूत कुंतल को सौ स्वर्ण-मुद्राएँ भेंट दो।

संवादक : जो आज्ञा। **(कुंतल से)** चलो, राजदूत।

[राजदूत कुंतल श्रद्धा सहित प्रणाम कर संवादक के साथ चला जाता है।]

राज्यश्री : मेरे भाई ने मेरे लिए कितना पवित्र और प्रेरक उपहार भेज दिया। मैं उसे जीवन-भर अपने प्राणों के समान रखूँगी।

[मेनका का प्रवेश]

मेनका : **(प्रणाम कर)** स्वामिनी ! चारण-मंडली आ गयी है। द्वार पर है।

राज्यश्री : मैना ! मेरे भाई ने मेरे लिए जो उपहार भेजा, उसे तूने देखा ?

मेनका : हाँ, स्वामिनी ! बड़ा सुन्दर उपहार है। संवादक ने दो क्षण पूर्व उसे मुझे दिखलाया।

राज्यश्री : वह मेरी माँ का उत्तरीय है। आत्म-दाह करने के पूर्व उन्होंने उसे भाई हर्ष को दे दिया था। वही मेरे आग्रह पर भाई ने मेरे पास भेज दिया। मेरे भाई कितने अच्छे हैं !

मेनका : हाँ, स्वामिनी !

राज्यश्री : पूजा करते समय मैं उसे धारण करूँगी। मैं सोचूँगी कि मेरी उपासना में मेरी माँ भी मेरा साथ दे रही हैं।

मेनका : हाँ, स्वामिनी !

राज्यश्री : तू भी क्या मेरी माँ की स्मृति में डूब गई ? अच्छा, सावधान हो जा। माँ तो सदैव ही हम लोगों के साथ हैं। हाँ, तू चारण-मंडली के सम्बन्ध में कुछ कह रही थी।

मेनका : चारण-मंडली आ गयी है। वह द्वार पर है।

राज्यश्री : तो उन्हें भीतर आने दे। तू जानती है कि मेरा मन इस समय अत्यन्त अस्थिर है। उनके संगीत से मुझे शान्ति मिलेगी।

मेनका : जो आज्ञा। मैं चारणों को भीतर बुलाती हूँ। **(प्रस्थान)**

राज्यश्री : युद्ध-क्षेत्र में प्रियतम की तलवार से भैरवी संगीत उठा होगा, यहाँ चारणों का संगीत उसकी प्रतिध्वनि बने।

[चार चारणों का प्रवेश। वे अपने परम्परागत वेश में हैं। चारों आकर प्रणाम करते हैं।]

राज्यश्री : युद्धकाल में उत्साह भरने वाले चारणों ! तुम वीर-गीत सुनाओ।
चारण-प्रमुख : (सिर झुकाकर) जैसी आज्ञा।

[चारणों का दो टुकड़ियों में एक-दूसरे के समक्ष खड़े होकर हाथ की मुद्राओं के संचालन के साथ समवेत स्वर में गायन—]

पहला वर्ग······मौखरि वंश प्रतापी।
दूसरा वर्ग······मौखरि वंश प्रतापी।
पहला वर्ग······जिसने अपनी युद्ध-शक्ति से
सारी पृथ्वी नापी।
दूसरा वर्ग······मौखरि वंश प्रतापी।
पहला वर्ग······बड़े शत्रु जो युद्ध बीच थे
कायर और प्रलापी।
दूसरा वर्ग······कायर और प्रलापी
पहला वर्ग······ग्रहवर्मा के महारोष से
दूसरा वर्ग······ग्रहवर्मा के महारोष से
पहला वर्ग······सारी धरती काँपी।
दूसरा वर्ग······सारी धरती काँपी।
पहला वर्ग······मौखरि वंश प्रतापी।
दूसरा वर्ग······मौखरि वंश प्रतापी।
दोनों वर्ग······ग्रहवर्मा के महारोष से।
सारी धरती काँपी।
मौखरि······वंश······प्रतापी।

[एकाएक विराजिका का शीघ्रता से प्रवेश]

विराजिका : (भयग्रस्त स्वर में) महारानी ! महारानी ! सारे राजमहल में आतंक फैल गया है। सभी भयभीत होकर भाग रहे हैं।
राज्यश्री : (उठकर) भाग रहे हैं ? क्यों ? क्या हो गया।
विराजिका : महादेवी ! भयानक कांड हो गया !
राज्यश्री : कैसा भयानक कांड ? **(चारणों से)** चारणो ! तुम लोग बाहर जाकर देखो। कैसा कांड है।
चारण-वर्ग : जैसी आज्ञा। **(शीघ्रता से प्रस्थान)**
राज्यश्री : (पुकार कर) प्रतिहारी ! प्रतिहारी !!

[नेपथ्य से भयानक अट्टहास की ध्वनि। उसके उपरान्त आदेश के स्वर—अन्तःपुर के सभी कर्मचारियों को अधिकार में ले लो। अधिकार में लो। स्त्रियों को भी नियन्त्रण में लो। बल प्रयोग करो

पुन: अट्टहास की ध्वनि। उसके उपरान्त नारी कंठ से आर्त स्वर—'बचाओ ! बचाओ !' राज्यश्री भीतर आना चाहती है, उसी समय अट्टहास करते हुए देवगुप्त और उसके सहायक सैनिक युक्तिभद्र का प्रवेश]

देवगुप्त : रुको ! रुक जाओ।

[राज्यश्री हतप्रभ होकर रुक जाती है।]

देवगुप्त : (**अट्टहास करते हुए**) राज्यश्री ! मुझे पहिचानती हो ? मैं हूँ, देवगुप्त। दे···व···गु···प्त।

राज्यश्री : (**गहराई से देखकर**) दे···व···गु···प्त (**पुकार कर**) द्वार-रक्षक !

देवगुप्त : (**अट्टहास कर**) द्वार-रक्षक ? इस महल के सारे द्वार-रक्षक और अंग-रक्षक बन्दी बना लिए गए हैं।

राज्यश्री : किसके आदेश से ?

देवगुप्त : मेरे आदेश से। महाराज देवगुप्त के आदेश से (**युक्तिभद्र से**) युक्तिभद्र ! मेरा जय-घोष करो।

युक्तिभद्र : (**उच्च स्वर से**) मालवाधिपति पराक्रमी वीर देवगुप्त की जय !

राज्यश्री : (**कुतूहल से**) देवगुप्त ? जिसने छद्म वेश रखकर मेरे अन्त:पुर में बाण चलाया था।

देवगुप्त : (**दृढ़ता से**) हाँ, वही। पहले राजकुमार देवगुप्त, अब मालवाधिपति महाराज देवगुप्त।

राज्यश्री : तुमने तो हमारे देश पर आक्रमण कर दिया है। महाराज इसका दण्ड देने के लिए रण-क्षेत्र में गए हुए हैं।

देवगुप्त : मेरी सेनाएँ रण-क्षेत्र में हैं, किन्तु मैं यहाँ हूँ।

राज्यश्री : यहाँ किसलिए ? क्या रण-क्षेत्र से भागकर आए हैं ? कन्नौज नरेश के बाणों का आघात सहन नहीं कर सके !

देवगुप्त : यह तो आगे चलकर ज्ञात होगा कि किसके बाणों का आघात कौन सहन नहीं कर सका।

राज्यश्री : तो रण-क्षेत्र से क्यों भाग आए ? क्या छिपने का और कोई स्थान नहीं था ?

देवगुप्त : यही स्थान है, देवि ! यही स्थान है। मैंने ही नहीं मेरे एक सेना-गुल्म ने भी राजमहल में प्रवेश पा लिया है जिसने तुम्हारे अधिकारियों को बन्दी बना लिया है।

राज्यश्री : मेरी सेना के रहते ?

देवगुप्त : तुम्हारी सेना तो रण-क्षेत्र में लड़ रही है।

राज्यश्री : तो उससे बचने के लिए तू यहाँ आया है ?

देवगुप्त : छिपने नहीं, देवि ! तुम्हें अपने हृदय में छिपाने के लिए···

राज्यश्री : (**क्रोध से**) चुप रह दुष्ट। यदि एक शब्द भी आगे कहा तो यह (**दन्तिका**

निकालकर) दन्तिका तेरे शरीर को काट देगी।

देवगुप्त : मेरा हृदय तो पहले ही कट गया है, देवि ! अब शरीर काटकर क्या करोगी ? किन्तु यह समझ लो कि यह शरीर काटने के लिए नहीं, तुम्हें हृदय से लगाने के लिए ही मैंने सुरक्षित रखा है।

राज्यश्री : लंपट देवगुप्त ! एक पतिव्रता नारी के सामने तुझे यह शब्द कहते लज्जा नहीं आती ?

युक्तिभद्र : लज्जा तो आपको आनी चाहिए, महादेवी ! कि आप मालवाधिपति का अपमान कर रही हैं। महाराज देवगुप्त को प्राप्त करने के लिए न जाने कितनी कुमारियाँ आत्म-समर्पण कर चुकी हैं।

राज्यश्री : इसीलिए यह कायर युद्ध से भागकर आया है। मौखरि-नरेश इसे युद्ध-भूमि में खोज रहे होंगे।

देवगुप्त : (अट्टहास कर) युद्ध-भूमि में ? मैंने मार्ग में ही उन्हें खोज लिया। अब वे किसे खोज रहे होंगे ?

राज्यश्री : तो रण-क्षेत्र में जाकर उनकी तलवार से कटने का सौभाग्य प्राप्त कर।

देवगुप्त : उन्होंने मेरे बाण से कटने का सौभाग्य प्राप्त कर लिया है।

राज्यश्री : चुप रह, दुष्ट। युद्ध-भूमि से भागकर आया है और अपनी वीरता का अनर्गल प्रलाप कर रहा है ?

युक्तिभद्र : प्रलाप नहीं, महादेवी ! महाराज देवगुप्त असत्य भाषण नहीं करते। वे कायर नहीं हैं, कायर तो उनके शत्रु हैं। महाराज कुशल रण-नीति जानते हैं। उन्होंने अपनी सेना के एक गुल्म को अर्धरात्रि में कन्नौज की सीमा पर भेज दिया। हम दोनों ही उस गुल्म के साथ थे। आपके सीमा-रक्षकों ने आक्रमण तो किया पर वाह री हमारी रण-कुशलता ! हम लोग उसकी आँख बचाकर झाड़ियों में छिपकर यहाँ आ गए। अब हमारी शक्तिशाली सेनाएँ रण-क्षेत्र में लड़ रही हैं और हम यहाँ हैं। सूर्य स्वयं पृथ्वी पर नहीं आता, अपनी किरणें भेजकर प्रकाश फैलाता है। उसी भाँति हम और महाराज यहाँ हैं और हमारी सेनाएँ रण-क्षेत्र में।

राज्यश्री : तो यह रण-नीति है या छद्म-नीति ! इसी प्रकार की छद्म-नीति मेरे अन्तःपुर में बाण फेंकने के लिए की गई थी ! कायर और दुष्ट ! तुझे यहाँ आने का साहस ही कैसे हुआ ?

देवगुप्त : साहस नहीं, देवि ! प्रेम का आवाहन। वर्षों से मैं विरह में जलता रहा···

राज्यश्री : दुष्ट, पापी ! एक शब्द भी कहा···

देवगुप्त : (**बीच ही में**) शब्द नहीं, देवि ! वाक्य कहूँगा। मेरे पिता ने और हर्ष ने दोनों राज्यों से मेरा निर्वासन किया किन्तु प्रेम के साम्राज्य से भी कभी किसी का निर्वासन हुआ है ?

राज्यश्री : मौखरि नरेश यहाँ होते तो तेरी जिह्वा कटकर मुख के बाहर तड़पती होती।

देवगुप्त : **मौखरि नरेश का सिर भी तड़पता होगा।**

राज्यश्री : (**क्रोध में भरकर**) इस अशुभ वाक्य पर मैं स्वयं तेरी जिह्वा काटूंगी।

[दंतिका निकालकर आगे बढ़ती है किन्तु युक्तिभद्र बीच में आ जाता है।]

युक्तिभद्र : शान्त रहें, देवि ! अब आप पूर्ण रूप से असहाय हैं। हमारे सैनिकों का पूरा अधिकार राजमहल और आप पर है। मैं आपको पूरी स्थिति समझा देता हूँ। जब मौखरि नरेश अपने अंग-रक्षकों के साथ अश्व पर बैठकर रण-क्षेत्र की ओर जा रहे थे, तभी महाराज देवगुप्त ने, जो मेरे पास की झाड़ी में छिपे हुए थे, ऐसा लक्ष्य-वेधी बाण चलाया कि मौखरि नरेश ग्रहवर्मा का सिर कट कर······

राज्यश्री : (**तीव्रता से**) असत्य ! असत्य ! यह असत्य है !

देवगुप्त : यह सत्य है। मेरा प्रहार अचूक है। मैंने ग्रहवर्मा का सिर काट दिया है। अब वे संसार में नहीं हैं।

राज्यश्री : (**रुद्ध कंठ से**) हाय ! यह क्या हो गया ! क्या तूने सचमुच ही मेरे सुहाग में आग लगा दी। (**सिसकियाँ लेते हुए शिथिल होकर बैठ जाती है।**)

देवगुप्त : (**अट्टहास करते हुए**) इन सिसकियों की ध्वनि कितनी मधुर है ! राज्यश्री और इन आँसुओं का प्रवाह ? जैसे कैलास पर्वत से मन्दाकिनी का प्रवाह हो रहा है। युक्तिभद्र ! यह शोभा देखते हो ?

युक्तिभद्र : वाह ! जैसे मानसरोवर में मछलियाँ तैर रही हैं।

देवगुप्त : ये आँसुओं की बूंदें मेरे प्रेम के राजमहल को सींचकर स्वच्छ कर देंगी। (**राज्यश्री से**) राज्यश्री ! तुम्हारे सुहाग में लगी हुई आग, मेरे हृदय में लगी प्रेम की आग से अधिक भयानक नहीं है। इन आँसुओं से सुहाग की आग नहीं बुझेगी, मेरे प्रेम की आग बुझ जाएगी। ये आँसुओं की बूंदें······

राज्यश्री : (**क्रोध से**) नीच ! नारकी ! तेरे हृदय से रक्त की बूंदें भी बहेंगी···

[राज्यश्री अपनी दंतिका से देवगुप्त पर आक्रमण करती है। युक्तिभद्र हाथ थाम लेता है। राज्यश्री शिथिल होकर अचेत हो जाती है। युक्तिभद्र उसे मंच पर लिटा देता है।]

देवगुप्त : युक्तिभद्र, तुमने कभी प्रेम का ऐसा तिरस्कार देखा है ? किन्तु यह तिरस्कार प्रेम के राज-मन्दिर में प्रवेश करने के लिए स्फटिक सोपान है। ये नारियाँ सरलता से आत्म-समर्पण नहीं करतीं···झाड़ियों में गुलाब के फूल की तरह मुस्कराती भी हैं और अपने काँटों से क्षत-विक्षत भी कर देती हैं। राज्यश्री के साथ मुझे नीति का प्रयोग करना होगा। अभी तुम इन्हें कारागार में डाल दो। इनके हाथ-पैर भी शृंखलाओं से कस दो। चेत आने पर इनसे बातें करूँगा। देखूँगा कि ये कितने दिनों तक आत्मसमर्पण नहीं करतीं। हाथ-पैरों की तरह इनका क्रोध भी शृंखलाओं से जकड़ जाए।

युक्तिभद्र : इन्हें अभी कारागार में डालने का प्रबन्ध करता हूँ।

देवगुप्त : कड़ा प्रबन्ध होना चाहिए। मेरा प्रयत्न असफल नहीं होना चाहिए। मैं अब

चलता हूँ। मुझे देखना है कि मौखरि-नरेश के न रहने पर सेना कितनी देर तक युद्ध-भूमि में ठहरती है। तुम यहीं रहना। अब मैं युद्ध-भूमि में जाकर सेना का संचालन करूँगा।

युक्तिभद्र : (**हाथ जोड़कर**) जैसी आज्ञा।

देवगुप्त : राज्यश्री को इतना कष्ट देना कि वह आत्म-समर्पण कर दें। मैं चलता हूँ। जय मालवा ! (**शीघ्रता से प्रस्थान**)

[परदा गिरता है]

तृतीय अंक

स्थान : विन्ध्याटवी
काल : 606 ईस्वी
समय : मध्याह्न 12 बजे।

[विन्ध्याटवी के दिवाकर मित्र का आश्रम। प्रभात की अनुपम शोभा-श्री। पक्षियों का कलरव। तारक मन्द स्वर में पाठ करता हुआ—]

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समाः।
स्वं त्वयि नान्ययेतोस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

(**धीरे-धीरे**) इस लोक में कर्म करते हुए भी सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करे। अतः तेरे लिए इसके अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है कि तू कर्म में लिप्त न हो।

सुबन्धु : (**समीप आता हुआ**) आयुष्मन् !

तारक : क्या है, सुबन्धु ?

सुबन्धु : एक बात कहना चाहता हूँ।

तारक : कहो !

सुबन्धु : तुम मंत्र-पाठ करते हो। अग्निहोत्र करने जा रहे हो पर तुम्हें इस बात का दुःख नहीं है कि रात्रि में विन्ध्याटवी की पूर्वी सीमा पर इतनी बड़ी आग लगी थी।

तारक : आग लगी थी ? यदि मैं इन्द्र होता तो पर्जन्यों से धारासार वृष्टि करता।

सुबन्धु : किन्तु जब तुम इन्द्र नहीं बन सके तो मनुष्यत्व का अभिमान रखने वाले तारक ! तुम्हारा कोई कर्तव्य नहीं रहा ?

तारक : कर्तव्य ? वन में जब आग लग जाए तो मनुष्य किस कर्तव्य का पालन करे ?

सुबन्धु : तुम भूल करते हो तारक ! मनुष्य का कर्तव्य जीवन की रक्षा करना है । तुम वन की आग नहीं बुझा सकते, किन्तु आग में जलते हुए प्राणियों की रक्षा तो कर सकते हो ।

तारक : किस तरह ? भगवान की प्रार्थना करते हुए ?

सुबन्धु : नहीं ! पेड़ पर न जाने कितने पक्षि-शावक होंगे जो उड़ना नहीं जानते । अपने नीड़ों में ही वे जलकर मर जाएँगे । उन्हें तुम नीड़ समेत बचा सकते हो ! चारों दिशाओं में आग लगने पर एक दिशा की आग को फैलने से रोका जा सकता है, जिससे उसी दिशा से जीव-जन्तु भाग सकें ।

तारक : (**हँसकर**) तुम बौद्ध हो न, सुबन्धु !

सुबन्धु : बौद्ध होना जीवन का सत्य है । तथागत ने आर्य सत्य का आख्यान किया है । दुःख, दुःख-समुदय, दुःख-निरोध, दुःख-निरोधगामिनी प्रतिपदा—इन्हीं से चार आर्य सत्यों का आख्यान तथागत ने किया ।

तारक : शास्त्रार्थ न करो, सुबन्धु ! मुझे अग्निहोत्र के लिए देर हो रही है ।

सुबन्धु : मुझे क्षमा करना, तारक ! तुम्हारे अग्निहोत्र में बाधक हुआ । वह तो आचार्य दिवाकर मित्र अभी विन्ध्याटवी से लौटे, तो उन्होंने अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहा कि आज की अग्नि भयानक थी । उन्होंने न जाने कितने पक्षि-शावकों के प्राणों की रक्षा की ।

तारक : अच्छा, यह बात थी ! हाँ, आचार्य तो संध्या को ही लौटने को थे ! हम उनके सम्बन्ध में चिन्तित थे !

सुबन्धु : वे उषाकाल में आए । उन्होंने कहा कि रात-भर वे चारों शिष्यों के साथ अग्नि-होत्र का मार्ग रोकते रहे और अग्नि-शून्य दिशा से जीव-जन्तुओं को भागने की सुविधा देते रहे ।

तारक : वे आश्रम में सूचना भिजवा देते तो अनेक शिष्य पहुँच जाते ।

सुबन्धु : मैंने भी उनसे यही निवेदन किया, किन्तु उन्होंने कहा कि उनके चार शिष्य पर्याप्त थे । फिर जब एक-एक शिष्य समाचार देता और अन्य शिष्य आते, तब तक न जाने कितने जीवों की हानि हो जाती ।

तारक : तो आचार्य को बहुत कष्ट हुआ ।

सुबन्धु : वे कहते हैं कि यही मेरा जीवन-यज्ञ है ।

तारक : तो इस जीवन-यज्ञ के सम्बन्ध में···

[एक भिक्षु के साथ एक स्त्री का प्रवेश]

स्त्री : (**करुण स्वर में**) नहीं, नहीं, मैं किसी को कष्ट नहीं देना चाहती ।

भिक्षु : कष्ट कैसा, देवि ! आचार्य दिवाकर मित्र के आश्रम में कष्ट नहीं है । यहाँ आकर तुम्हारा कष्ट भी दूर हो जाएगा ।

स्त्री : मेरे हाथ में यह कृपाणी और मेरे वस्त्र में रक्त के धब्बे देखकर इस पवित्र आश्रम में कोई क्या कहेगा !

तारक : यही कि आप साक्षात् दुर्गा हैं, देवि ! आपका शुभ नाम क्या है ?

भिक्षु : इनका नाम शिप्रा है । एक डाकू का आक्रमण निष्फल बनाकर इन्होंने उसी पर आक्रमण किया । उसके शरीर का रक्त तो इनकी कृपाणी और वस्त्र पर रह गया, पर वह भाग गया ।

तारक : आप वास्तव में दुर्गा हैं । वह डाकू कौन था, देवि ?

शिप्रा : मेरे पतिदेव विदेश गए हुए हैं । मैं अकेली वन-ग्राम में रहती थी । एक दस्यु ने मेरे एकाकीपन का लाभ उठा कर मेरा धन चुराने के लिए रात्रि में मेरे घर में प्रवेश किया ।

सुबन्धु : विन्ध्याटवी में भी दस्यु हैं !

शिप्रा : मैं जाग रही थी । मुझे जागते देखकर दस्यु ने मुझ पर प्रहार किया, किन्तु सिरहाने रखी हुई पति की तलवार से मैंने आक्रमण रोक लिया ।

तारक : साधु ! साधु ! देवि !

शिप्रा : मैंने उसे घर से निकल जाने को कहा । जब वह नहीं हटा तो मैंने उस पर प्रहार किया । उसके शरीर से रक्त की धारा बह निकली, किन्तु वह भाग गया ।

तारक : तुम धन्य हो, देवि ! तुम्हें तो कोई चोट नहीं लगी ?

शिप्रा : मेरे पैरों में कुछ चोटें अवश्य लगी हैं, किन्तु अधिक नहीं ! मेरे वस्त्र उसके रक्त से अवश्य भीग गए हैं । मैं इसकी सूचना अटवी-सामंत व्याघ्रकेतु को देने के लिए जा रही थी कि महात्मा भिक्षु मुझे यहाँ ले आए ।

सुबन्धु : आपकी क्या सेवा की जाए, देवि ?

भिक्षु : मैंने सोचा, दस्यु से संघर्ष करने में देवी का कंठ सूख गया होगा । आश्रम में ले जाकर इन्हें शीतल जल पिला दूँ !

सुबन्धु : ठीक किया, भन्ते ! (**शिप्रा से**) देवि ! शीतल जल पान कर कुछ विश्राम करें, फिर अटवी-सामन्त के समीप जावें । यह आचार्य दिवाकर मित्र का आश्रम है । यहाँ किसी प्रकार की असुविधा नहीं होगी ।

शिप्रा : धन्यवाद ! मैं शीघ्र ही सामन्त से परिस्थिति का निवेदन करना चाहती हूँ । यदि इस पर ध्यान न दिया जाएगा तो अनेक स्त्रियों के लिए संकट उपस्थित हो सकता है ।

सुबन्धु : आपका कथन यथार्थ है । यदि आप आवश्यक समझें तो मैं भी साथ चलूँ ।

शिप्रा : नहीं, धन्यवाद ! मुझे कोई भय नहीं है, आप कष्ट न करें !

तारक : इस आश्रम में बिना आतिथ्य-ग्रहण किए कोई नहीं जाता, देवि !

शिप्रा : आप जैसे महात्माओं के दर्शन ही अतिथि को तृप्त कर देते हैं । फिर मैं अतिथि भी नहीं हूँ ।

सुबन्धु : अस्तु, आप शीतल जल ग्रहण करें, तब जावें । (**भिक्षु से**) भन्ते ! इन्हें रेवा का शीतल जल पान कराओ ।

भिक्षु : चलो, देवि !

शिप्रा : **मैं कृतार्थ हुई । मैं अभिवादन करती हूँ ।**

सुबन्धु : स्वस्ति !

[भिक्षु के साथ शिप्रा का प्रस्थान]

तारक : कैसी दिव्य शक्ति और कैसा दिव्य सौन्दर्य !

सुबन्धु : तुम्हें अग्निहोत्र के लिए देर हो रही होगी, तारक !

तारक : इस अग्निशिखा की वन्दना किसी अग्निहोत्र से कम नहीं है। मैं सोचता हूँ, सुबन्धु ! कि यदि इस देवी में आक्रमण करने की शक्ति न होती तो क्या होता ?

सुबन्धु : उसके धन का अपहरण। और संसार के दुःखों से छूटने में उसे सुविधा होती। धन संसार का वन्धन ही तो है।

तारक : यदि धन के साथ उसका भी अपहरण हो जाता तो ?

सुबन्धु : आर्यावर्त की नारी इतनी हीन नहीं है कि दस्यु उसका अपहरण करे।

तारक : (**सोचते हुए**) हाँ, यह तो ठीक है। धन का अपहरण ही होता।

[एक सैनिक का प्रवेश]

सैनिक : महात्माओं को प्रणाम !

तारक : कौन हो तुम, सैनिक !

सैनिक : मैं स्थाण्वीश्वर-नरेश महाराज हर्षवर्धन का दूत हूँ। क्या आचार्य दिवाकर मित्र का आश्रम यही है ?

तारक : हाँ ! आचार्य दिवाकर मित्र का आश्रम यही है। किन्तु महाराज हर्षवर्धन के दूत को यहाँ आने की क्या आवश्यकता प्रतीत हुई ?

सैनिक : क्षमा करें, वह निवेदन आचार्य के समक्ष ही किया जा सकेगा।

सुबन्धु : अभी आचार्य स्नान-गृह में हैं। वे उषाकाल ही में विन्ध्याटवी से लौटे हैं।

सैनिक : मैं एक बात पूछ सकता हूँ ?

सुबन्धु : अवश्य !

तारक : यह आश्रम तो सभी प्रश्नों का समाधान है, दूत !

सैनिक : आपके आश्रम में महादेवी आयी थीं।

सुबन्धु : महादेवी ! नहीं ! एक स्त्री आयी थी। अभी-अभी तो वह यहीं थी। रक्त से उसके वस्त्र भीग गए थे।

सैनिक : (**चौंक कर**) रक्त से ?

तारक : उसके हाथ में एक कृपाणी भी थी। उसके मुख पर अलौकिक तेज था।

सैनिक : (**उद्विग्नता से**) वही होंगी। वह होंगी, वही हैं।

तारक : कौन ? कौन वही हैं, दूत ?

सैनिक : महादेवी राज्यश्री ?

सुबन्धु : महादेवी राज्यश्री !

तारक : स्थाण्वीश्वर-नरेश की छोटी बहिन !

सैनिक : हाँ, वे विन्ध्याटवी की ओर चली आयी हैं।

सुबन्धु : विन्ध्याटवी में तो चारों ओर आग लगी थी। सारी रात आचार्य वहीं थे।

तारक : किन्तु वे महादेवी राज्यश्री नहीं होंगी, दूत !

सैनिक : आप कहते हैं कि उनके हाथ में कृपाणी थी।

तारक : कृपाणी तो प्रत्येक नारी के हाथ में रह सकती है। (**सुबन्धु से**)···देखो सुबन्धु, वह स्त्री आश्रम में है ?

सुबन्धु : मैं अभी देखता हूँ। (**प्रस्थान**)

तारक : उसके हाथ में कृपाणी थी। उसके वस्त्र रक्त से भीग गए थे।

सैनिक : उनके पैरों में चोट लगी थी ?

तारक : हाँ, उनके पैरों में चोट अवश्य थी।

सैनिक : तब तो वे महादेवी ही होंगी। लौह-शृंखला से कसे जाने पर उनके पैर अवश्य, क्षत-विक्षत हो गए होंगे।

तारक : लौह-शृंखला ? लौह-शृंखला से नहीं, दूत ! उन्होंने एक दस्यु से युद्ध किया था।

सैनिक : महाराज ग्रहवर्मा का घातक, मालवा-नरेश देवगुप्त किस दस्यु से कम है ? ओह ! क्षमा करें, महात्मा ! आचार्य दिवाकर मित्र से निवेदन करने की वार्ता मेरे मुख से अनायास ही···

तारक : कोई हानि नहीं, दूत ! यह वार्ता मंत्र की भाँति गुप्त और सुरक्षित रहेगी। यह आश्रम नीति का तपोवन है, राजनीति का नहीं (**देखकर**) अच्छा, सुबन्धु आ गए। उस स्त्री का क्या समाचार है, सुबन्धु ?

[सुबन्धु का प्रवेश]

सुबन्धु : खेद है कि वह स्त्री जल पीने के उपरान्त ही आश्रम से चली गयी।

सैनिक : तब मुझे यह सूचना महाराज की सेवा में निवेदन करनी होगी।

तारक : महाराज कहाँ हैं ?

सैनिक : विन्ध्याटवी की पश्चिमी सीमा पर।

सुबन्धु : पश्चिमी सीमा पर ! ठीक है। आग तो पूर्वी सीमा पर लगी थी।

सैनिक : महाराज तीव्र गति से विन्ध्याटवी का एक-एक भाग देखेंगे। वायु की भाँति उनकी गति है। वे अपनी बहिन को खोजकर ही रहेंगे।

तारक : इस प्रसंग से हम दुखित हैं, सैनिक !

सैनिक : महाराज हर्षवर्धन सर्वप्रिय नरेश हैं। तो महात्मन् ! जब आचार्य स्नान-गृह से बाहर आवें तो उन्हें महाराज के आगमन की सूचना अवश्य दे दें।

सुबन्धु : अब तो पूजन-गृह में होंगे। उनके आते ही यह सूचना उनकी सेवा में निवेदित की जाएगी। आचार्य के शिष्यों की ओर से उनका इस आश्रम में स्वागत है।

सैनिक : प्रणाम (**प्रस्थान**)

तारक : महाराज हर्षवर्धन की बहिन ! क्यों सुबन्धु ! क्या वह स्त्री महाराज हर्षवर्धन की बहिन हो सकती है ?

सुबन्धु : मेरे अनुमान से नहीं हो सकती, क्योंकि वह स्त्री कहती थी कि मैं वन ग्रामक में रहती हूँ और मेरे पति विदेश गए हैं। महारानी राज्यश्री के पति कन्नौज के नरेश हैं।

तारक : किन्तु राजनीति में कूटनीति भी तो एक अंग है। सम्भव है, महादेवी राज्यश्री ने छद्मवेश धारण कर दस्यु से युद्ध करने का अभिनय किया हो। कृपाणी पर लगा हुआ रक्त कोई रासायनिक द्रव्य ही हो।

सुबन्धु : मैं यह सब बातें कुछ नहीं जानता। मनुष्य को पहिचानने की सामान्य बुद्धि मुझमें है। उस स्त्री की भाव-भंगिमा से मुझे ज्ञात नहीं होता कि वह राजकुल ही है। फिर इस आश्रम में आकर उस स्त्री को असत्य भाषण करने की क्या आवश्यकता हुई ?

तारक : किन्तु उसके पैर में चोट लगी थी। दूत भी कहता था कि महादेवी राज्यश्री के पैरों में चोट है।

सुबन्धु : ठीक है, किन्तु महादेवी राज्यश्री अकेले यहाँ कैसे आ सकती हैं ? उनके साथ तो अनेक स्त्रियों का समूह होगा।

[एक शिष्य का प्रवेश]

शिष्य : आचार्य पूजा समाप्त कर इस बाहरी कक्ष में आ रहे हैं। (**प्रस्थान**)

सुबन्धु : हमें समस्त घटना-चक्र आचार्य के समक्ष रखना चाहिए।

तारक : और महाराज हर्ष के विन्ध्याटवी तक आ जाने का समाचार जो दूत ने कहा है, वह तो उन्हें सुनाना ही चाहिए। (**आचार्य दिवाकर मित्र का पादुका पहने हुए प्रवेश। सुबन्धु और तारक उन्हें प्रणाम करते हैं।**)

सुबन्धु : भन्ते के श्री चरणों में प्रणाम !

तारक : भन्ते के श्री चरणों में प्रणाम ! आसन ग्रहण कीजिए, भन्ते !

दिवाकर : (**गम्भीर स्वर में**) स्वस्ति। तरुण बीजों को जल न मिलने से जो विकार होता है, वैसा विकार तो किसी के हृदय में नहीं है। माता को न देखने पर शिशु के मन में जो विकार होता है, वैसा विकार तो किसी में नहीं हुआ ?

सुबन्धु : भन्ते ! आशीर्वाद देने के लिए उठे हुए आपके हाथ की शीतल छाया सभी प्रकार के तापों को दूर कर देती है।

तारक : किन्तु, भन्ते ! कुछ देर पहले एक स्त्री आयी थी।

दिवाकर : इस आश्रम में स्त्री ?

सुबन्धु : उसके वस्त्र रक्त से भीगे थे और उसके हाथ में एक कृपाणी थी।

तारक : कहती थी कि उसने एक दस्यु से युद्ध किया है।

दिवाकर : वह स्त्री ! पहले मैं समझा वह महादेवी राज्यश्री है। किन्तु राज्यश्री नहीं हैं। वह स्त्री एक सामान्य गृहस्थ की स्त्री है। दस्यु उसके धन का अपहरण करने के लिए उसके घर में आ घुसा था।

तारक : आप यह कैसे जानते हैं ?

दिवाकर : मैंने लौटते समय उस दस्यु के घावों को धोया था और जड़ी का लेपन किया था। उसने सारी कथा मुझसे कही। अब से उसने दस्यु कर्म सदैव के लिए छोड़ दिया।

सुबन्धु : आपके सम्पर्क में आकर दुष्ट भी अपनी दुष्टता छोड़ देता है।

तारक : एक समाचार और है, प्रभु ! विन्ध्याटवी की पश्चिमी सीमा पर महाराज हर्षवर्धन आए हुए हैं। उनका सैनिक यह सूचना आपको सुनाना चाहता था।

दिवाकर : हर्षवर्धन ! तुम धन्य हो ? आर्यावर्त्त का भविष्य तुम्हारे ही हाथों में है।

तारक : सैनिक ने यह भी कहा कि महाराज तीव्र गति से विन्ध्याटवी का एक-एक भाग देखेंगे। वायु की भाँति उनकी गति है। वे अपनी बहिन को खोजकर ही रहेंगे।

दिवाकर : यह आश्रम उनके साथ होगा।

सुबन्धु : भन्ते ! वह सैनिक कुछ बातें अस्पष्ट ढंग से कह गया। वह मालव-नरेश देवगुप्त को दस्यु कह रहा था। और महादेवी राज्यश्री का नाम भी ले रहा था।

दिवाकर : यह दारुण संवाद है, सुवन्धु ? मैंने इसे वेणुवन की सीमा पर सुना। शिष्य चित्रभानु आश्रम को लौट रहा था कि यह दारुण संवाद मुझे मिला।

तारक : क्या हम लोग उसे सुन सकेंगे, भन्ते !

दिवाकर : मौखरि नरेश महाराज ग्रहवर्मा अब इस संसार में नहीं रहे ! (**मन्द स्वर में**) वे मेरे बाल्य-बंधु थे।

सब : (**चौंक कर**) नहीं रहे ?

दिवाकर : स्थाण्वीश्वर-नरेश प्रभाकरवर्धन की मृत्यु होने पर मालव-नरेश देवगुप्त ने ग्रहवर्मा की हत्या की।

सुबन्धु : घोर अनर्थ !

दिवाकर : और सबसे भयानक बात यह है कि देवगुप्त ने ग्रहवर्मा की हत्या कर उनकी महादेवी राज्यश्री को लौह-शृंखलाओं में कसकर कारागार में डाल दिया।

तारक : सैनिक भी कह रहा था कि लौह-शृंखला से कसे जाने के कारण उनके पैर क्षत-विक्षत हो गए हैं।

दिवाकर : हाँ, वे लौह-शृंखलाओं से कसी गयी थीं; किन्तु गुप्त नामक कुलपुत्र द्वारा वे अन्तःपुर की समस्त स्त्रियों सहित मुक्त हुईं और छिपकर इसी विन्ध्याटवी में आ गयी हैं।

तारक : तब तो हमें उन्हें शीघ्र ही खोजना चाहिए।

सुबन्धु : संभव है, इस समय तक उन्होंने कहीं आत्महत्या कर ली हो। क्योंकि वर्धन वंश की स्त्रियाँ अग्नि को अपनी सहचरी मानती हैं।

दिवाकर : इसलिए मैं कल रात विन्ध्याटवी में रुक गया था। जब मैंने उसमें अग्नि लगी हुई देखी तो मैं उत्सुकता से उन्हीं की खोज करने लगा। मैं केवल पक्षि-शावकों तथा जीव-जन्तुओं की रक्षा कर सका, उन्हें कहीं नहीं पा सका।

तारक : महाराज हर्षवर्धन के हृदय में छोटी बहिन के प्रति इतना प्रेम है कि वे प्रचंड

शत्रु को पराजित किए बिना ही अपना देश मंत्रियों पर छोड़कर राज्यश्री को खोजने के लिए विन्ध्याटवी में सामान्य व्यक्ति की भाँति भटक रहे हैं।

[समीप ही शंख-ध्वनि। शिष्य का प्रवेश]

शिष्य : भन्ते के श्रीचरणों में अभिवादन। महाराज हर्षवर्धन आश्रम में पधारे हैं।

दिवाकर : (**सहसा उठकर**) महाराज हर्षवर्धन ! उनका स्वागत करो !! आयुष्मान् सुबन्धु और तारक ! तुम शीघ्र ही कमण्डल में पैर धोने का जल लाओ। वे स्वयं अमृतमय हैं।

[तारक और सुबन्धु का प्रस्थान]

[फिर शंखनाद। महाराज हर्षवर्धन का माधवगुप्त के साथ प्रवेश]

हर्ष : आचार्य दिवाकर मित्र को हर्ष का प्रणाम !

माधव : माधवगुप्त का अभिवादन स्वीकार हो !

दिवाकर : कल्याण हो राजन् ! कल्याण हो ! मेरे आसन को सुशोभित करें।

हर्ष : भन्ते ! समस्त पृथ्वी को जीतने पर भी जिस सिंहासन पर हर्ष आसीन होगा, वह सिंहासन भी आपके आसन से नीचा ही होगा। आचार्य का आसन श्रद्धा का केन्द्र है। उस पर बैठकर हर्ष लांछित नहीं होगा। मेरे लिए तो पृथ्वी का आसन ऊँचा आसन है।

दिवाकर : राजन् ! आप वीरों में श्रेष्ठ हैं पुरुष-सिंह हैं। आपके लिए तो गुणियों का हृदय ही आसन है।

हर्ष : नहीं, आचार्य ! जिस हर्ष के हृदय की अवस्था ऐसी है कि उसने श्री को शाप मान लिया है, पृथ्वी जिसे महापातक की भाँति ज्ञात हो रही है, राज्य जिसे रोग की भाँति घेरे हुए है, भोग जिसे भुजंग की भाँति ज्ञात होता है, घर जिसे नर्क की भाँति भयानक लगता है, जीवन अयश का केन्द्र और आरोग्य कलंक का विस्तार प्रतीत होता है, जिसके आहार में विष का स्वाद है, वह प्रत्येक आसन से गिर गया है ! आपके पुण्य-दर्शन से उसे कुछ आधार मिले तो उसका सौभाग्य होगा !

दिवाकर : राजन् ! मैं आपके हृदय की स्थिति समझता हूँ। आप राज्य की धुरी धारण करने वाले हैं। आप शान्त और सुखी हों। (**तारक और सुबन्धु का कमण्डल में जल लिए हुए प्रवेश**) तुम आ गए ? अपने मान्य अतिथि के चरणों का प्रक्षालन करो।

माधव : विन्ध्याटवी में कुश-कंटकों से महाराज के चरण क्षत-विक्षत हो गए हैं।

हर्ष : मेरा हृदय चरणों की अपेक्षा अधिक क्षत-विक्षत है, आचार्य !

दिवाकर : सौभाग्य आपके आश्रय में भाग्यवान् है। पौरुष आपके हृदय में धन्य है। क्षत-विक्षत होने पर भी हृदय में मंगल का विकास है। हाँ, सुबन्धु ! चरणों का प्रक्षालन करो।

[सुबन्धु जल लेकर बढ़ता है]

हर्ष : नहीं, आचार्य ! आपके संभाषण-रूपी अमृत से मेरा समस्त शरीर प्रक्षालित हो चुका, अब पैरों का प्रक्षालन व्यर्थ है। आप अपने आसन पर आसीन हों। मेरे लिए यह पृथ्वी ही श्रेष्ठ आसन है। (**पृथ्वी पर बैठ जाता है।**)

दिवाकर : आप जैसे पुण्यात्मा को देखकर मोक्ष की इच्छा रखते हुए भी मुझे मनुष्य-शरीर में श्रद्धा हो गयी है। यह आश्रम सब प्रकार से आपके सत्कार के लिए प्रस्तुत है।

हर्ष : आचार्य हर्ष को किसी सत्कार की आवश्यकता नहीं है। दुर्भाग्य की साँसों ने ही उसे जीवन दिया। महाप्रलय की भाँति पिता का मरण, उसके पूर्व ही जननी यशोमती का अग्नि-प्रवेश, फिर भगिनी-पति ग्रहवर्मा का वध, उसके अनन्तर ज्येष्ठ बन्धु राज्यवर्धन की हत्या और बहिन राज्यश्री को कारागृह—ये सब घटनाएँ उस दुर्भाग्य के चरण-चिह्न हैं जो मेरे जीवन के श्मशान में यात्रा कर रहा है। आचार्य ! दुर्भाग्य की यह यात्रा क्या मेरी जीवन-यात्रा से भी बड़ी हो गयी ?

दिवाकर : राजन्…

हर्ष : जिस प्रकार एक लौह-दण्ड बार-बार पत्थर पर चोट मार कर चिनगारियाँ उत्पन्न करता है किन्तु उस पत्थर को भस्म नहीं करता, उसी प्रकार दुर्भाग्य मुझे तिल-तिल कर जलाता है, भस्म नहीं करता !

दिवाकर : वह भस्म कभी नहीं कर सकेगा, राजन् ! अग्निशिखा वायु का भक्षण कर प्रज्वलित होती है, किन्तु वही वायु जब आँधी बन जाती है, तब अग्निशिखा एक क्षण में समाप्त हो जाती है। आपके हृदय में साहस की वह आँधी है, राजन् !

हर्ष : वह आँधी उस समय से उत्पन्न हुई है, आचार्य ! जब जननी यशोमती ने अग्नि में प्रवेश किया। वैदेही की भाँति अपने पति के सामने ही उन्होंने अग्नि की शीतलता ग्रहण की ! वीर-जाया और वीर-जननी के साहस के समक्ष राज-परिवार और प्रजावर्ग के अनुरोध निर्बल सिद्ध हुए ! मेरे आँसू भी जननी के दृढ़ निश्चय की शिला पर सूख गए ! तब से उनका ही साहस मेरे प्राणों में समा गया है। कष्ट के तीखे काँटों को मैंने उन्हीं साहस की उँगलियों से उखाड़ कर फेंका है और प्रधान अधिकारी अवन्ति द्वारा यह घोषणा करा दी है कि पृथ्वी से उदयाचल तक, सुवेल पर्वत तक, अस्ताचल तक, गन्धमादन पर्वत तक, राजाओं की मुकुट-मणियों के आलोक से बना हुआ छेम मेरे चरणों का कष्ट दूर करेगा। किन्तु आचार्य ! इस समय मेरे चरणों का कष्ट तब दूर होगा, जब इस विन्ध्याटवी में खोयी हुई मेरी बहिन राज्यश्री मुझे मिल जाए। आप इस विन्ध्याटवी के कण-कण से परिचित होंगे। आपको मेरी बहिन राज्यश्री की सूचना है ?

माधव : आचार्य ! महादेवी राज्यश्री के खो जाने से महाराज को बहुत कष्ट है।

दिवाकर : राजन् ! शत्रु से अपमानित होने के भय से राज्यश्री विन्ध्याटवी में आयी है, ऐसी सूचना अवश्य है। आपका साहस और मेरा विश्वास राज्यश्री को अवश्य ही आपके समीप ले आएगा।

हर्ष : आचार्य ! मेरे सभी प्रिय स्वजन संसार छोड़ चुके हैं। एकमात्र छोटी बहिन

राज्यश्री ही बची है। मुझे आशंका है कि पति की मृत्यु हो जाने के कारण कहीं वह भी अपने को अग्नि में समर्पित न कर दे। उसके सामने अपनी जननी का आदर्श है, जिसने अपने पति के आसन्न-वियोग ही में अपने प्राणों की आहुति दे दी थी।

दिवाकर : आश्रम का यह कितना बड़ा सौभाग्य होता यदि वह आपको प्रिय-संवाद का उपहार दे सकता, किन्तु इसी समय मैं आश्रम के सभी शिष्यों को आदेश दूँगा कि वे विन्ध्याटवी की चारों दिशाओं में बिखर कर महादेवी राज्यश्री का पता लगावें। सुबन्धु और तारक !

सुबन्धु : आज्ञा प्रभु !

[एक भिक्षु का प्रवेश]

भिक्षु : आचार्य को प्रणाम ! एक स्त्री आश्रम-द्वार पर है।

हर्ष : **(चीत्कार के स्वर में)** राज्यश्री !

भिक्षु : नहीं, राजन् ! वह स्त्री अभी कुछ देर पहले आश्रम से शीतल जल-पान करके गयी थी। वह आचार्य के दर्शन करना चाहती है।

दिवाकर : शीघ्र ही भीतर लाओ।

भिक्षु : जो आज्ञा ! **(प्रस्थान)**

दिवाकर : वह चित्रक की पत्नी है। उसने दस्यु पर आक्रमण किया था और अपनी कृपाणी से उसके शरीर पर गहरा घाव कर दिया था। वह वीर नारी है।

[शिप्रा का प्रवेश]

शिप्रा : शिप्रा आचार्य के चरणों में प्रणाम करती है।

आचार्य : स्वस्ति !

शिप्रा : मेरा अपराध नहीं है, आचार्य ! मैंने अपनी ओर से अनेक प्रार्थनाएँ कीं, किन्तु उनका परिणाम कुछ नहीं हुआ। अब आप ही रक्षा करें !

आचार्य : मैं जानता हूँ, भद्रे ! किन्तु इसका निर्णय अटवी-सामन्त व्याघ्रकेतु करेंगे। दस्यु पर प्रहार करने में क्या अपराध हुआ, इस आश्रम से उसका कोई सम्बन्ध नहीं।

शिप्रा : किन्तु आचार्य ! व्याघ्रकेतु इसका निर्णय नहीं कर सकते। आपके प्रभाव से ही रक्षा हो सकती है।

आचार्य : भद्रे ! इस समय अवकाश नहीं है। उस पर फिर कभी विचार होगा।

शिप्रा : आचार्य ! इस समय अवकाश निकालना ही होगा। नहीं तो अनर्थ हो जाएगा ! बड़ी भयानक अग्नि की लपटें उठ रही हैं।

आचार्य : उन्हें शान्त करो, भद्रे ! इस समय दूसरी समस्या आश्रम के सामने है। हृदय की ज्वाला शान्त करो।

शिप्रा : आचार्य ! यह समस्या सर्वप्रथम होनी चाहिए। मैं अग्नि की लपटें शान्त नहीं कर सकती। सारा वन-प्रान्त उनसे झुलस रहा है।

आचार्य : क्या कल रात की लगी हुई आग अभी तक नहीं बुझी ?

शिप्रा : मैं यह तो नहीं कह सकती कि वह आग कल रात की लगी हुई है, किन्तु लपटें आकाश तक उठ रही हैं !

आचार्य : इस समय हमारे अतिथि विराजमान हैं । हमें इनका सत्कार करना है।

शिप्रा : मैं अतिथि को प्रणाम करती हूँ और उनसे भी प्रार्थना करती हूँ कि वे एक अबला की रक्षा करें ।

हर्ष : किन्तु तुम अबला नहीं हो, देवि ! तुम दस्यु पर प्रहार कर अपनी रक्षा कर सकती हो ।

शिप्रा : मैं अपनी बात नहीं कर रही हूँ, देव ! एक बाला है जो किसी समय सौभाग्यवती रही होगी। न जाने किस दुःख से अभिभूत होकर वह अग्नि में प्रवेश कर रही है।

हर्ष : (**विह्वल होकर**) वह राज्यश्री है ! कहाँ है, देवि ? वह कहाँ है, शीघ्र चलो ! आचार्य ! उसे बचाने की कृपा कीजिए ।

दिवाकर : भगवान तथागत की यही आज्ञा है । (**शिप्रा से**) भद्रे ! मार्ग बतलाओ। (**सुबन्धु से**) हम अभी चलेंगे, सुबन्धु !

सुबन्धु : तुम भी चलो, तारक ! तुम अन्य शिष्यों को लेकर शीघ्र ही आओ। विलम्ब न हो ।

[हलचल होती है ।]

शिप्रा : मैं उस अभागिनी बाला की सखियों से कह आयी हूँ कि जब तक मैं आचार्य के आश्रम से न लौटूँ तब तक किसी न किसी बहाने तुम उस बाला को चिता पर न चढ़ने देना ।

हर्ष : (**शिप्रा से**) तुम बुद्धिमती हो, देवि ! फिर भी शीघ्र चलो, देवि ! कहीं राज्यश्री अपने को अग्नि में समर्पित न कर दे ! मेरा हृदय कहता है कि वह राज्यश्री ही है ! राज्यश्री ही है ! भगवान् आदित्य मुझे किरणों की गति प्रदान करें ! मैं वायु के वेग से जाऊँ ।

माधव : मैं वाहन का शीघ्र ही प्रबन्ध करता हूँ । (**प्रस्थान**)

शिप्रा : तब शीघ्र ही चलिए, देव ! मैं अश्व भी दौड़ाना जानती हूँ । यदि अश्व हो तो···

हर्ष : अश्व दौड़ाना जानती हो ? अश्व तो अनेक हैं । तुम धन्य हो ! चलो, देवि ! (**आश्चर्य से**) आचार्य ! मैं आगे चल रहा हूँ । (**प्रस्थान**)

चतुर्थ अंक

स्थान : विन्ध्याटवी
काल : 606 ईस्वी
समय : अपराह्न 3 बजे ।

[वनप्रान्त-वृक्षाटवी के समीप चिता जल रही है । चिता के समीप एक स्त्री मंगल-पाठ कर रही है—

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्ताक्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधात ।
शान्तिः ! शान्तिः ! शान्ति :!

आरती करती हुई नारियों के कंठ से बीच-बीच में सिसकियाँ निकल आती हैं । राज्यश्री अनिमेष दृष्टि से चिता की ओर देखती हुई बैठी है । मंगल-पाठ की समाप्ति के बाद वह अपने आप गहरी साँस लेकर कहती है—]

राज्यश्री : मंगल-पाठ समाप्त हुआ । कितनी दिव्य ज्योति है, चिता की ! इस मंगलमय अवसर पर ! अग्नि का पूजन हो, मेनका !

मेनका : स्वामिनी ! अग्नि का पूजन तो सदैव हुआ है, किन्तु इस समय का पूजन कितना कठिन है ! स्वामिनी !

राज्यश्री : अग्नि का पूजन सदैव ही मंगलमय है, मेनका ! विवाह के मंगल पर्व पर मैंने वधू-वेश में भी तो इसी अग्नि का पूजन किया था । क्या जानती थी कि इस भाँति भी पूजन करना होगा । **(सिसकी)**

मेनका : स्वामिनी ! यह स्मृति बड़ी कष्टकर है !

राज्यश्री : **(सिसकी रोककर)** मेरी स्मृति ने वधू-वेश ही धारण किया है, मेनका ! जिसमें अक्षय शृंगार है । उतना ही जितना इस चिता में है । तू भी चिता का यह दिव्य शृंगार देख ! कितना मोहक सिन्दूर लगा रखा है इसने अपनी लपटों में ! इन्हीं सिन्दूरी लपटों में मेरे सुहाग की रेखा भी तो छिप गयी है । **(भावमय होकर)** देवि ! लौटा दो, देवि ! मेरे सुहाग की रेखा । तुम्हारे पास तो सुहाग का भण्डार है, जो कभी भी नहीं घटता । सदैव सरिता के जल की भाँति भरता ही रहता है । अरे ! तुम तो और भी प्रज्वलित हो उठी ! नहीं लौटाओगी मेरा सिन्दूर ? जाने दो, मैं स्वयं तुममें प्रवेश करके अपना सिन्दूर खोज लूँगी या स्वयं सिन्दूर बनकर तुम्हीं में समा जाऊँगी ! **(आगे बढ़ती है ।)**

मेनका : स्वामिनी ! आगे न बढ़ें ।

राज्यश्री : मेनका ! मत रोक मुझे ! इसी प्रकार मेरी जननी यशोमति भी तो आगे बढ़ी थीं । अश्रु से स्नान कर, पति की चरण-रज का तिलक लगाकर उन्होंने भी तो अग्नि का कौशेय धारण किया था ! उस समय मैं उनके दर्शन नहीं कर सकी ! अब मैं उन्हें अग्नि की लपटों में पाकर पूछूँगी—माँ ! तुम राज्यश्री को उसी समय साथ

क्यों न ले आयीं ! (**सिसकी**)

विराजिका : विलाप न करें, महादेवी !

राज्यश्री : विलाप नहीं करती, विराजिका ! मृत्यु के पथ पर आँसू बहाकर उसका मार्ग कोमल बना रही हूँ। मृत्यु मेरी सहचरी बने। मैं भी तो उसी तरह छायामात्र रह गयी हूँ। मैं भी तो अतीत की स्मृतियों की समाधि हूँ !

विराजिका : महादेवी ! आपको खोकर महाराज हर्षवर्धन भी जीवित नहीं रहेंगे।

राज्यश्री : (**स्मृति से बिलख कर**) मेरे हर्ष ! कहाँ हो तुम ! देखो, तुम्हारी छोटी बहिन राज्यश्री कितनी लांछित हुई है ! जिसे तुमने गोद में खिलाया, वही कारागार की वन्दिनी बनी। लौह-शृंखलाओं से उसके पैर कसे गए। हर्ष ! मुझे देखकर तुम लज्जित होगे। मैं अपना कलंकित मुख तुम्हें नहीं दिखलाऊँगी ! नहीं दिखलाऊँगी ! (**सिसकियाँ**)

विराजिका : महादेवी ! इसमें आपका क्या दोष ? संसार की विषम परिस्थितियाँ सभी को लांछित करती हैं।

राज्यश्री : लांछित होने की अपेक्षा मृत्यु अच्छी है, विराजिका ! दुर्भाग्य ने मृत्यु के मंच तक अनेक सोपान बनाए, किन्तु मेरे लिए मृत्यु एक पग भी नीचे नहीं उतरी ! एक पग भी नहीं ! जैसे नीच शत्रु की भाँति वह भी मुझे अपमानित कर रही है। जीवन के कारागार में डालकर वह दूर से ही मेरा परिहास कर रही है। मैं इसे सहन नहीं करूँगी, नहीं करूँगी। (**सिसकियाँ**)

विराजिका : महादेवी !···

राज्यश्री : मेरे भस्म हो जाने के बाद यदि मेरे हर्ष मिलें तो उन्हें यह उत्तरीय दे देना और कहना कि तुम्हारे दिए हुए उपहार के योग्य राज्यश्री नहीं हो सकी। वह अपने दुर्भाग्य के साथ इस माँ के पवित्र उत्तरीय को नहीं जला सकी। प्यारे हर्ष का उपहार ! (**सिसकियाँ लेती हैं**) इसे सँभालकर रखना, विराजिका ! अब ये चिता की लपटें जननी यशोमति की गोद बनना चाहती हैं, मेनका ! चिता पर चढ़ने के लिए अपने हाथ का सहारा दे।

[इसी समय अश्व के समीप आने का शब्द]

शिप्रा : यही वह स्थान है, देवि !

हर्ष : (**पुकार कर**) राज्यश्री !

मेनका : स्वामिनी ! महाराज हर्ष आ गए ! महाराज हर्ष आ गए !

राज्यश्री : (**उद्भ्रान्त होकर**) हर्ष ! हर्ष ! ! (**मूर्छित हो जाती है।**)

[महाराज हर्ष शीघ्रता से दौड़कर आते हैं।]

हर्ष : कहाँ है, कहाँ है मेरी राज्यश्री ? राज्यश्री ! राज्यश्री ! ! यह है ! मेरी बहिन राज्यश्री ! !

[हाथों में उठाकर हृदय से लगा लेते हैं।]

हर्ष : (**भरे हुए कंठ से**) राज्यश्री ! तू कहाँ रही ? नेत्रों की अश्रुधारा से मेरे हृदय को शीतल कर दे !

विराजिका : (**गद्‌गद कंठ से**) महाराज की कंठध्वनि सुनकर महादेवी अचेत हो गयीं। महाराज की सेवा में प्रणाम ! महाराज ठीक समय पर आए। यह जननी यशोमती का उत्तरीय जो स्वामिनी आपको सौंप रही हैं।

मेनका : महाराज की सेवा में प्रणाम। महाराज ! यदि इसी समय न आते तो स्वामिनी चिता में प्रवेश कर जातीं।

शिप्रा : (**विनोद से**) और तुम लोग महाराज का जयघोष करना भूल गयीं ? (**छः नारियों का सम्मिलित कंठ**) महाराज हर्षवर्धन की जय !

[दिवाकर मित्र का शिष्यों सहित प्रवेश]

शिप्रा : आचार्य भी आ गए।

दिवाकर : मैं प्रसन्न हूँ। आपका अनुमान सत्य था, राजन् ! राज्यश्री की रक्षा हुई। उसका और आपका कल्याण हो !

हर्ष : आचार्य, प्रणाम। करता हूँ। यह आपके दर्शनों का फल है कि आज मेरी बहिन जीवित है। (**राज्यश्री को चेत होता है।**)

राज्यश्री : (**चीख कर**) मेरे भाई हर्ष ! मैं अनाथ हुई, पिता गए, माता गयीं, तुमने मुझे उस मार्ग से क्यों लौटा लिया ? मुझे जाने दो ! मुझे जाने दो ! ! मैं जाऊँगी ! (**सिसकियाँ**)

हर्ष : बहिन ! अब वर्धन-वंश में कौन रह गया ! तुम जाओगी तो हर्ष के लिए इस संसार में क्या अवलम्ब रहेगा ? मुझे जीवित रहने दो बहिन ! जीवित रहने दो। इसलिए कि मैं उस नराधम के वंश को धूल में मिला सकूँ, जिसने तुम्हें इस स्थिति में पहुँचाया है। मुझे जीवित रहने दो, इसलिए कि मैं तुम्हारे अश्रु-बिन्दुओं का मूल्य शत्रु के रक्त-बिन्दुओं से चुका सकूँ, बहिन ! तुम्हारे पति, ग्रहवर्मा की हत्या जिस नीच देवगुप्त ने की है, उसके वंश को मैं परशुराम की भाँति इक्कीस बार काटना चाहता हूँ। देवि ! जीवित रहो और मुझे जीवित रहने दो।

राज्यश्री : तुम अवश्य जीवित रहो, भाई ! जीवन में तुम पुरुषार्थ करो, किन्तु जिस बहिन के जीवन में अब कुछ भी शेष नहीं है, उस बहिन को संसार में मत खींचो। जो फूल बिखर गया है, उसकी पंखुड़ियों को तुम फिर न जोड़ो। जो सरिता सूख गयी है, उसमें तुम अंजुलियों से जल मत भरो। चिता मेरी प्रतीक्षा कर रही है, उसे शान्त न होने दो !

हर्ष : बहिन ! मैंने अपनी माँ को ज्वाला में जलते देखा है, पिता को मृत्यु की कालिमा में छिपते देखा है। अब साहस नहीं है कि अपनी छोटी बहिन को जलते हुए देखूँ ! मेरी बहिन ! मेरे हृदय में अनेक चिताएँ जल रही हैं, उनमें छोटी बहिन की चिता प्रलय उत्पन्न कर देगी। उस प्रलय में नष्ट होने से मुझे बचाओ, बहिन !

राज्यश्री : भाई हर्ष ! मैं कहाँ जाऊँ ? पति-हीना नारी की संसार में कौन-सी गति है ?

मैं प्रार्थना करती हूँ कि मुझे अपने पथ से विचलित न करो। मुझे धर्म-संकट में न डालो।

हर्ष : आचार्य ! आप धर्म के प्राण हैं। मेरी बहिन को मार्ग दिखलाइए !

दिवाकर : पुत्रि ! पति-स्मृति पति-प्रेम से अधिक पवित्र है, पति का विरह पति के मिलने से अधिक शक्तिशाली है। तुम पति की स्मृति से जीवन को पवित्र बनाओ।

राज्यश्री : मैं प्रणाम करती हूँ, भन्ते ! मैं आपसे भी चितारोहण की अनुमति चाहती हूँ।

दिवाकर : पुत्रि ! अपने संकल्प का परित्याग करो, क्योंकि तुम्हारे संकल्प से दो जीवन नष्ट होंगे। तुम्हारा और तुम्हारे एकमात्र भाई हर्षवर्धन का। अतः दूसरे के कल्याण-के लिए विचरण करो। आत्मसंतोष का उतना महत्त्व नहीं, जितना दूसरे की प्राण-रक्षा का। अतः अपने शोक का परित्याग करो।

राज्यश्री : शोक का परित्याग करूँ ? तब मुझे काषाय-ग्रहण की आज्ञा प्रदान कीजिए।

हर्ष : (हर्षोल्लास से) साधु ! आचार्य के चरणों में प्रणाम। बहिन । तुम धन्य हो। काषाय-ग्रहण मैं भी करूँगा। किन्तु मेरी एक प्रार्थना है। मैंने शत्रुओं का नाश करने की प्रतिज्ञा की है। वर्धन वंश के प्रताप को आर्यावर्त में प्रतिष्ठित करने की शपथ ली है। जब तक मेरी यह प्रतिज्ञा पूरी न हो, तब तक मेरी बहिन मेरे समीप रहे। जब हर्षवर्धन अपना कार्य समाप्त कर ले, तब अपनी बहिन के साथ वह भी काषाय-ग्रहण करे।

राज्यश्री : आचार्य की क्या आज्ञा है ?

दिवाकर : पुत्रि ! यद्यपि तुम्हारा दुःख बहुत दूर तक पहुँच गया है, फिर भी इस समय पिता और गुरु के समान बड़े भाई की आज्ञा मान्य है। पुनीत रहकर अपना कर्त्तव्य पालन करना ही जीवन-यज्ञ है। इस जीवन-यज्ञ में संसार का कल्याण है।

हर्ष : आचार्य ! आपसे मेरा एक निवेदन है। जब तक मेरी बहिन मेरे समीप रहे, आप धार्मिक कथाओं और विमल उपदेशों से इसे प्रतिबोध कराते रहें। आज से आप मेरे राज्य के आचार्य हुए !

दिवाकर : सत्य की विजय हो !

हर्ष : और शिप्रा ! तूने मुझ पर अत्यन्त उपकार किया है। तू मेरी बहिन राज्यश्री की अंगरक्षिका नियुक्त हुई।

शिप्रा : मैं कृतार्थ हुई, महाराज ! यह मेरा भी जीवन-यज्ञ होगा !

हर्ष : मैं सबसे यथास्थान लौटने की प्रार्थना करता हूँ और यह प्रण करता हूँ कि स्थाण्वीश्वर का वर्धन-वंश आर्य-गौरव को स्थिर करने में भी जीवन-यज्ञ की पूर्ति समझेगा। जय आदित्य !

[सम्मिलित स्वर : महाराज हर्षवर्धन और आर्या राज्यश्री की जय !]

[यवनिका]

जय वर्धमान

अपनी ओर से

महावीर वर्धमान वास्तव में इतने कष्ट-सहिष्णु और लोक-कल्याण के क्रिया-शील क्रान्तिकारी थे कि उनसे किसी भी महापुरुष की तुलना नहीं की जा सकती। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य जैसे महान् व्रतों से उन्होंने मानव-जीवन को वास्तविक संबोधि प्रदान की। एक ओर तो संसार के चरम आकर्षणों से विरक्ति और दूसरी ओर सत्य और अहिंसा के लिए कठोरतम कष्ट सहन करने की क्षमता अन्य किसी साधक में सम्भव हो सकी है ? मानवतावादी दृष्टिकोण उनके समक्ष इतना प्रखर था कि उसमें वर्गवाद और जातिवाद के लिए कोई स्थान ही नहीं था। विचार-समन्वय से सांस्कृतिक एकता को सुदृढ़ करने का दृष्टिकोण उनके सामने था :

मनुष्य जातिरेकैव जाति नामोदयोद्भवा।
वृत्ति भेदात् हितत् भेदाः चातुर्विध्यमिहाश्नुते ॥

—अर्थात् मनुष्य-जाति एक ही है और यह जाति-नाम कर्म के कारण ही उद्भव होता है। वृत्ति-भेद से ही जाति के चार भेद (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) माने जाते हैं। उत्तराध्ययन में उल्लेख है :

कम्मुणा बंभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
बइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥

—अर्थात् कर्मों से ही मनुष्य ब्राह्मण होता है, कर्मों से ही क्षत्रिय, कर्मों से ही वैश्य और कर्मों से ही वह शूद्र होता है।

भगवान् महावीर के चरित्र में मानवता के समस्त गुण एकत्र हैं। उनके जीवन की घटनाएँ इतनी विविधता और विषमता लिए हुए हैं कि उन सभी का परिगणन नाटक जैसी सीमित और संक्षिप्त विधा में सम्भव नहीं है। फिर भी उन घटनाओं को जिनसे भगवान् महावीर की वैचारिक शृंखला संयोजित होती है, इस नाटक में सुसज्जित करने का प्रयास किया गया है। इस भाँति घटनाओं की अपेक्षा मनोविज्ञान की भंगिमाओं को उभारने का अवसर अधिक मिल गया है। भगवान् महावीर का चरित्र तो अपने अखंड व्रत में स्थिर (Static) है किन्तु उनके व्यक्तित्व से संघर्ष करने के लिए जो विषम और विपरीत घटनाएँ (Dynamic) सामने आती हैं उनसे विरोधी पात्रों और

घटनाओं के अन्तर्पट उद्घाटित होते हैं। श्रृंगार के आक्रमण से वैराग्य कितना स्थिर और अटल है, इसके रूप और प्रतिरूप भी सामने आ गए हैं। इस नाटक के लिखने में मुझसे जितना शोध-कार्य सम्भव हो सकता था, वह मैंने करने का प्रयत्न किया है।

यदि मेरे इस नाटक से हमारे देश के राष्ट्रीय और मानवतावादी दृष्टिकोण को प्रश्रय मिलेगा, तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूँगा।

—रामकुमार वर्मा

कथा-सूत्र

विदेह देश की राजधानी वैशाली में ईसा पूर्व 599 में भगवान् महावीर का अवतरण हुआ। मध्य देश में वैशाली बड़ी प्रसिद्ध नगरी थी। वह लिच्छवियों के बल-पराक्रम से तो प्रसिद्ध थी ही, उसकी गण-व्यवस्था, राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक नीति सर्वमान्य थी। नगरी का सौन्दर्य अनेक उपवनों, वाटिकाओं और उद्यानों से आकर्षक था।

वैशाली में गंडक नदी प्रवाहित होती थी। उसके तट पर दो उपनगर बसे हुए थे—क्षत्रिय कुंडग्राम और ब्राह्मण कुंडग्राम। क्षत्रिय कुंडग्राम के अधिपति महाराज सिद्धार्थ थे और उनकी रानी थीं—त्रिशला। इन्हीं के यहाँ चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को भगवान् महावीर का जन्म हुआ।

महावीर के जन्म के पूर्व महारानी त्रिशला को स्वप्न में 16 दृश्य दिखलायी दिए—गजराज, वृषभ, सिंह, स्नान करती लक्ष्मी, फूलों की माला, चन्द्रमा, सूर्य, मीन-युग्म, कलश, सरोवर, सिंधु, सिंहासन, विमान, इन्द्र-भवन, रत्न-राशि और अग्नि। राज-ज्योतिषी ने इन स्वप्नों के आधार पर घोषणा की कि महाराज सिद्धार्थ के यहाँ ऐसा पुत्र होगा जो अपने प्रताप से संसार का कल्याण करते हुए अमर रहेगा। नौ महीने सात दिन के उपरान्त महारानी त्रिशला ने एक सुदर्शन पुत्र को जन्म दिया। महाराज सिद्धार्थ ने आनन्द-विभोर होकर बड़ा उत्सव मनाया। सारा नगर भाँति-भाँति के तोरणों से सजाया गया, दस दिनों तक जनता करमुक्त रही, बन्दी छोड़ दिए गए और नृत्य-गान से नगर का प्रत्येक कोना गूँज उठा। जिस समय से पुत्र गर्भ में आया, उसी समय से राज्य में धन-धान्य और कोष-भंडार की आशातीत वृद्धि हुई, इसीलिए पिता सिद्धार्थ ने पुत्र का नाम 'वर्धमान' रखा।

जैसे-जैसे वर्धमान बड़े होते गए, उनमें रूप, गुण और शक्ति का उदय होता गया। वे अल्पकाल में ही शस्त्र और शास्त्र के विविध अंगों में पारंगत हो गए। एक दिन जब वे क्रीड़ा-भूमि में लक्ष्य-बेध का अभ्यास कर रहे थे, एक हाथी गजशाला से मुक्त हो गया। वह क्रोध से नगर के मार्ग पर निरीह जनता को कुचलता हुआ दौड़ रहा था। तभी कुमार वर्धमान उसके सम्मुख पहुँच गए और क्षिप्र गति से उसकी सूँड़ पर पैर रखकर उसके मस्तक पर बैठ गए। फिर उन्होंने उसके कानों को कुछ इस प्रकार सहलाया कि वह हाथी कुछ ही क्षणों में शान्त होकर ठहर गया और उसने प्रणाम की

मुद्रा में अपनी सूँड़ ऊपर उठा दी। इसी प्रकार जब वर्धमान अपने साथियों के साथ एक वट-वृक्ष के नीचे खेल रहे थे, तभी एक भयंकर नाग फुफकारते हुए बालकों की ओर झपटा। वर्धमान निडर होकर आगे बढ़े और उन्होंने साहस से उसकी पूँछ पकड़कर दूर फेंक दिया। वर्धमान के इन्हीं वीरतापूर्ण कार्यों से उन्हें 'महावीर' कहा जाने लगा।

किन्तु वे बचपन से ही धीर और गंभीर थे। जब वे बीस वर्ष के हुए तो पिता सिद्धार्थ और माता त्रिशला को उनके विवाह की चिन्ता हुई। उनके पास महावीर वर्धमान के विवाह के लिए अनेक राज्यों की सुन्दर-सुन्दर कन्याओं के चित्र और प्रस्ताव प्रस्तुत होने लगे। जब महावीर वर्धमान के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा गया तो उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया। परिवार श्री पार्श्वनाथ का अनुयायी तो था ही, उनके संस्कार विवाह के स्थान पर संन्यास की ओर अधिक उन्मुख हो गए थे।

महावीर वर्धमान का विवाह हुआ या नहीं, इस पर मतभेद है। दिगम्बर सम्प्रदाय का मत है कि उनका विवाह नहीं हुआ किन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदाय मानता है कि उनका विवाह कौंडिन्य गोत्रीय राजकुमारी यशोदा से हुआ था। 'कल्पसूत्र' में विवाह का उल्लेख मिलता है। 'हरिवंश पुराण' में भी इसका निर्देश है :

यशोदयायां सुतया यशोदया पवित्रया वीर विवाह मंगलं।
अनेक कन्या परिवारया सहत्समीक्षतुं तुंग मनोरथं तदा।।

(हरिवंश पुराण, 66-8)

अत: वैराग्य की समस्त भावनाओं के क्रोड़ में भी मैंने महावीर वर्धमान के विवाह का उल्लेख कर दिया है। महावीर वर्धमान अपने माता-पिता का बहुत सम्मान करते थे। उनकी आज्ञा टालना वे पाप समझते थे, इसलिए जब उन्होंने विवाह करने का आदेश दिया तो उसे महावीर अस्वीकार नहीं कर सके। उन्होंने विवाह किया अन्यथा वे संन्यास लेने के पक्ष में ही थे।

श्री रिषभदास रांका लिखते हैं कि 'उनका वास्तविक जीवन तो गृहत्याग के बाद ही शुरू होता है, इसलिए विवाह करने या न करने की बात का कोई महत्त्व नहीं रह जाता।' (भगवान् महावीर और उनका साधना मार्ग, पृ० 7) वे विवाह के उपरान्त भी संन्यास लेना चाहते थे किन्तु माता-पिता को कष्ट देना वे हिंसा का एक रूप मानते थे, इसलिए वे दस वर्षों तक गृहस्थाश्रम में रहे। महावीर की 28 वर्ष की अवस्था में उनके माता-पिता का देहान्त हो गया, इसलिए वे अब संन्यास लेने को स्वतंत्र थे। उन्होंने अपने भाई नदिवर्धन के समक्ष संन्यास ले लेने का प्रस्ताव रखा किन्तु उन्होंने अनुमति नहीं दी। दो वर्षों तक वे किसी प्रकार रुके रहे। जब उनकी पत्नी यशोदा कुछ समय के लिए अपने पिता के घर चली गई थीं, तभी महावीर के मन में वैराग्य की भावना प्रबल हो उठी और उन्होंने गृह त्याग कर संन्यास ले लिया। यह दिन मार्गशीर्ष कृष्ण 10 का था।

संन्यास में महावीर को घोर उपसर्ग सहन करने पड़े। किन्तु उनके मन में संयम और अहिंसा के भाव इतनी दृढ़ता से जमे थे कि वे लेशमात्र भी विचलित नहीं

हुए। बारह वर्षों तक संन्यास-जीवन में उन्होंने भयंकर कष्ट सहे। किसी ग्राम में पहुँचने पर उनके त्याग और तप को न समझने वाले लोग उन पर प्रहार करते किन्तु वे इसका कोई प्रतिकार न करते। सर्प और विष-जन्तुओं का उपद्रव, भयानक शीत और प्रबल ऊष्मा उन्हें कठोर साधना से नहीं डिगा सकी। वे स्वयं कष्ट सहन करते, दूसरों को किसी प्रकार का क्लेश पहुँचाना उन्हें स्वीकार नहीं था। वे मौन रहते, उन्हें भोजन में कोई रुचि नहीं थी, वस्त्रों की कोई चाह नहीं थी। वे स्तुति-निन्दा से परे थे। संन्यासी होकर वे दूर-दूर तक भ्रमण करते रहे। उन्होंने राजगृह, चम्पा, वैशाली, मिथिला, वाराणसी, कौशाम्बी, अयोध्या, श्रावस्ती आदि अनेक स्थानों की यात्राएँ कीं और इन यात्राओं में उन्होंने क्या-क्या कष्ट नहीं सहन किए!

आस्थिक ग्राम के एक चैत्य में शूलपाणि नामक एक यक्ष रहता था। उस चैत्य में वह किसी को नहीं ठहरने देता था। एक बार एक मुनि वहाँ ठहरने के लिए पहुँचे। शूलपाणि ने उनके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। घूमते-घूमते भगवान् महावीर भी उसी चैत्य में पहुँचे। ग्रामवासियों ने उन्हें वहाँ ठहरने से रोका किन्तु भगवान् महावीर तो भय और आशंका से परे थे। वे वहीं पद्मासन लगाकर ध्यान करते रहे। शूलपाणि आया, उसने उन्हें डराया, धमकाया पर उसका महावीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अन्त में उसने चंड कौशिक नाग से उन्हें कटवाना चाहा किन्तु नाग भी निश्चेष्ट हो गया। कहीं-कहीं चंड कौशिक का स्वतंत्र उल्लेख हुआ है जहाँ उसने श्वेतांगी के मार्ग के अरण्य में रहते हुए भगवान् महावीर को काटने का प्रयत्न किया। महावीर ने उससे कहा : 'चंड कौशिक! सोच तो, तू क्या करने जा रहा है?' भगवान् की अमृत वाणी से वह शान्त हो गया। मैंने शूलपाणि के साथ ही चंड कौशिक का उल्लेख किया है। यह नाटकीय शिल्प के लिए आवश्यक था। जब शूलपाणि महावीर का सिर काटने के लिए शूल लेने को चैत्य में जाने लगा तो उसी के नाग चंड कौशिक ने उसे डस लिया। जब वह अपनी प्राण-रक्षा के लिए चिल्लाया तो महावीर वर्धमान ने एक जड़ी से उसके विष को दूर किया।

भगवान् महावीर को साधना-पथ से हटाने के लिए इन्द्र द्वारा अप्सराओं को भेजने का उल्लेख हुआ है। स्वाभाविकता लाने के लिए मैंने वर्धमान के भाई नंदिवर्धन द्वारा उनको प्रेरित करने का नाट्य-प्रयोग किया है।

बारह वर्ष की घोर साधना के उपरान्त जंभिय ग्राम के बाहर ऋजु वालुका नदी के तट पर शाल वृक्ष के नीचे गोदोहन आसन में महावीर को वैशाख शुक्ल 10 के दिन संबोधि प्राप्त हुई।

संबोधि प्राप्त होने के पश्चात् तीस वर्ष तक उन्होंने अपने ज्ञान का प्रचार किया। भगवान् पार्श्वनाथ ने अपने चातुर्याम धर्म में अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरि-ग्रह इन चार व्रतों का आख्यान किया था। महावीर वर्धमान ने इन चार आख्यानों में ब्रह्मचर्य जोड़कर पाँच व्रतों का आख्यान किया और कामदेव के पाँच बाणों को कुंठित कर दिया।

—लेखक

पात्र-सूची
(प्रवेशानुसार)

पुरुष

विजय, सुमित्र	:	महावीर वर्धमान के सखा
महावीर वर्धमान	:	वैशाली नरेश महाराज सिद्धार्थ के कुमार
महाराज सिद्धार्थ	:	वैशाली नरेश
गिरिसेन	:	वैशाली के बलाध्यक्ष
दंडाधिकारी	:	वैशाली का नगर-रक्षक
नन्दिवर्धन	:	महावीर वर्धमान के बड़े भाई
इन्द्रगोप, चुल्लक	:	आंस्थिक ग्राम के निवासी
शूलपाणि	:	यक्ष
दो नागरिक		

स्त्री

त्रिशला	:	वैशाली की राजमहिषी
सुनीता	:	त्रिशला की अंतरंग सेविका
यशोदा	:	महावीर वर्धमान की पत्नी
विशाखा	:	एक दरिद्र विधवा स्त्री
सुप्रिया, रंभा, तिलोत्तमा	:	रूप-गर्विता सुन्दरियाँ
परिचारिका		

पहला अंक

[परदा उठने के पूर्व नेपथ्य से चर्या-पाठ]

अप्पा चेव दमेयव्वो अप्पा हु खलु दुद्दमो।
अप्पा दन्तो सुही होइ अस्सिं लोए परत्थ व ॥

(उत्तराध्ययन 1-15)

—अर्थात् पहले अपना ही दमन करना चाहिए, यही सबसे कठिन कार्य है। ऐसा व्यक्ति जो स्वयं दमन करता है, वह लोक और परलोक में सुखी होता है।

[**स्थान :** वैशाली नगरी में गंडक नदी के तट पर क्षत्रिय कुंडग्राम। उसके समीप एक उपवन। नाना प्रकार के वृक्षों और लताओं की शोभा। वसन्त के फूल और फल।

समय : प्रातःकाल का प्रथम प्रहर। पक्षियों का कूजन।

स्थिति : परदा उठने पर नेपथ्य के दाहिनी ओर से एक बाण आता है। साथ ही नेपथ्य में 'साधु' शब्द गूँजता है। फिर बायीं ओर से बाण आता है और फिर 'साधु' शब्द गूँजता है। कुछ ही क्षणों बाद दोनों दिशाओं से दो क्षत्रिय कुमार आते हैं। एक का नाम विजय है, दूसरे का नाम सुमित्र। दोनों के हाथों में धनुष-बाण हैं। केश खुले हुए, अंगों पर पीत वस्त्र, पैरों में उपानह। वे दोनों आखेटक-वेश में हैं।]

विजय : भाई सुमित्र ! तुमने मेरे बाणों की गति देखी ? लक्ष्य-बेध करने में कितना आनन्द आता है ! ऐसा लगता है जैसे मेरा प्रत्येक बाण सूर्य की किरण है जिसके छूटते ही क्षितिज के बादलों का रूप बिगड़ जाता है और पक्षियों का कलरव जय-गान करते लगता है।

सुमित्र : अरे मेरे बाण की गति तो जैसे विद्युत की गति को भी लज्जित करती है। मैं जब लक्ष्य-बेध करता हूँ तो अनुभव करता हूँ कि शत्रुओं के राज्यों की जो सीमाएँ सीधी थीं वे टेढ़ी होकर संकुचित हो गई हैं और मेरे बाण शत्रुओं के हृदय में आतंक की आँधी उठा रहे हैं।

विजय : यह तो ठीक है किन्तु अब कुमार वर्धमान ने लक्ष्य-बेध पर प्रतिबन्ध लगा दिया है।

सुमित्र : क्षत्रिय कुमार होकर लक्ष्य-बेध पर प्रतिबन्ध ?

विजय : हाँ, क्षत्रिय कुमार होकर लक्ष्य-बेध पर प्रतिबन्ध। वे कहते हैं कि लक्ष्य-बेध में कुशलता अवश्य प्राप्त करो किन्तु इस लक्ष्य-बेध से किसी प्रकार की हिंसा न हो।

सुमित्र : यदि लक्ष्य-बेध में हिंसा-अहिंसा का ध्यान रखा जाए तो लक्ष्य-बेध का कौशल ही क्या रहा ! यह तो वैसा ही हुआ कि शत्रु को ललकारो किन्तु कण्ठ से ध्वनि न निकले।

विजय : यदि इस कुंडग्राम के गणराज्य में रहना है तो ऐसा ही करना पड़ेगा। अब यही देखो, उस पेड़ में कितने मधुर फल लगे हुए हैं। इच्छा होती है कि अपने बाण से लक्ष्य लेकर सारे मीठे फल गिरा लें, सुगन्धित फूलों को झकझोर भूमि पर गिरा लें और माला बनाकर अपनी प्रियतमा के कंठ में डाल दें किन्तु कुमार वर्धमान ऐसा नहीं चाहते।

सुमित्र : क्यों ? क्यों नहीं चाहते ? फूलों और फलों के गिराने में क्या हानि है ?

विजय : वे तो इसे हानि मानते हैं। कहते हैं कि वृक्षों में चेतना है, जीवन है। वे फूलते हैं, फलते हैं। उन पर प्रहार करोगे तो हिंसा होगी। यदि लक्ष्य-बेध करना है तो जड़ पदार्थों पर करो जिनमें चेतना नहीं है।

सुमित्र : जड़ पदार्थों में तो पत्थर हैं जिनमें चेतना नहीं है। वे वर्षों एक ही दशा में पड़े रहते हैं किन्तु पत्थरों पर बाण चलाओगे तो उनकी धार कुंठित नहीं होगी ? फिर लक्ष्य-बेध का क्या कौशल रहा ? सोचो···समझो ! उड़ते हुए पक्षी को बाण से न गिराओ, किसी हिंस्र पशु का भी लक्ष्य न लो। फिर तो धनुष-बाण हमारे शस्त्र नहीं रहे, हाथ के आभूषण हो गए।

विजय : एक बार तो वे बड़े कौतुक की बात कह रहे थे।

सुमित्र : कैसे कौतुक की बात ?

विजय : कहते थे कि तुम्हारे सामने पाँच-पाँच लक्ष्य हैं, तुम इनमें से एक का भी बेध नहीं कर सकते ? उनका लक्ष्य लो।

सुमित्र : अच्छा, पाँच-पाँच लक्ष्य हैं ? सुनूँ तो, वे पाँच लक्ष्य कौन-से हैं ?

विजय : वे पाँच लक्ष्य सुनोगे ? वे हैं—अहिंसा एक, सत्य दो, अस्तेय तीन, अपरिग्रह चार और ब्रह्मचर्य पाँच।

सुमित्र : (**अट्टहास कर**) ये पाँच लक्ष्य हैं ? किन्तु इनका लक्ष्य लिया कैसे जाता है ? ये स्थूल रूप से तो कहीं दिखलायी नहीं देते। फिर उनका लक्ष्य कैसे लिया जाए ?

विजय : भाई, तुम समझे नहीं। स्थूल वस्तुओं का लक्ष्य-बेध तो कोई भी कर सकता है। इस सूक्ष्म लक्ष्य-बेध के लिए दूसरे बाणों की आवश्यकता है।

सुमत्रि : अच्छा सुनूँ, वे दूसरे बाण कौन-से हैं ?

विजय : वे हैं—संयम, त्याग, क्षमा, प्रायश्चित्त और तप।

सुमित्र : ये बाण कहाँ मिलेंगे ? और ऐसा लक्ष्य-बेध किस धनुर्वेद में है ? बन्धु ! यह धनुर्वेद नहीं है, ज्ञान का रूपक है। और यह किसी क्षत्रिय का गौरव नहीं है, किसी ब्राह्मण का भले ही हो।

विजय : यहाँ क्षत्रिय और ब्राह्मण की बात नहीं है, मित्र ! बात है पुरुषार्थ की।

सुमित्र : तो पुरुषार्थ असम्भव बातों में नहीं होता, विजय ! यदि कुमार वर्धमान कहें कि इन्द्रधनुष के रंगों का लक्ष्य-बेध करो तो तुम इन पाँच बाणों से उन रंगों का लक्ष्य-बेध कर सकोगे ?

विजय : मुझसे तो सम्भव नहीं है और यदि सम्भव हुआ भी तो पाँच रंगों के लक्ष्य-बेध के बाद दो रंग तो शेष बच ही जाएँगे।

सुमित्र : (**हँसकर**) उनका लक्ष्य-बेध कुमार वर्धमान कर लेंगे। (**नेपथ्य की ओर देखकर**) अरे, कुमार वर्धमान इसी ओर आ रहे हैं।

विजय : अच्छा ? आ रहे हैं ? अब उनसे लक्ष्य-बेध का रहस्य पूछो।

[सुमित्र और विजय व्यवस्थित होकर सावधान हो जाते हैं। कुमार वर्धमान का प्रवेश। वे अत्यन्त सुन्दर हैं। आकर्षक वेश-भूषा। मुक्त केश, गैरिक उत्तरीय। अधोवस्त्र जैसे ब्रह्मचर्य की भाँति कसा हुआ। रत्न-जटित उपानह। हाथों में धनुष-बाण।]

विजय, सुमित्र : कुमार की जय !

वर्धमान : जय पार्श्वनाथ ! (**क्रम से देखकर**) विजय ! सुमित्र ! तुम दोनों ने लक्ष्य-बेध का अभ्यास किया ? कहाँ-कहाँ लक्ष्य-बेध किया ?

[दोनों नीचे देखते हुए मौन रहते हैं]

वर्धमान : तुम दोनों मौन हो। मौन से भी लक्ष्य-बेध होता है। (**टहलते हुए**) जो अप-शब्द कहता है यदि उसके समक्ष तुम मौन रहे तो तुम्हारे शांत हृदय का तीर अप-शब्दों का चिह्न भी नहीं रहने देगा।

सुमित्र : जिस तीर का नाम आप ले रहे हैं, वह क्षत्रियों के धनुर्वेद में नहीं है, कुमार !

वर्धमान : क्षत्रियों के धनुर्वेद में ? सुमित्र ! वह क्षत्रियों के धनुर्वेद में ही है। 'क्षत्रिय' का अर्थ जानते हो, क्या है ? जो क्षत से—हिंसा से बचा सके। और जो हिंसा से—क्षत से बचा सके, रक्षा कर सके, वही क्षत्रिय है।

सुमित्र : तो आपने हिंसा के भय से इन स्थूल बाणों से लक्ष्य-बेध तो किया न होगा।

वर्धमान : अवश्य किया है। मैं स्थूल बाणों में भी विश्वास रखता हूँ और उनसे लक्ष्य-बेध करता हूँ। मिट्टी के शिखर बनाकर उन्हें बाणों से बेधता हूँ। सूखे पेड़ों पर चिह्न बनाकर उन्हें धराशायी करता हूँ। यहाँ के पेड़ तो हरे-भरे हैं। कितने सजीव हैं ! बढ़ते हैं, फूलते हैं, सुगन्धि देते हैं, फल देते हैं। कितनी सुरम्य चेतना है उनमें ! इन्हें बाणों का लक्ष्य बनाना हिंसा है—घोर हिंसा है। इसीलिए मैं सूखे पेड़ों की खोज में दूर चला गया था।

विजय : आप संसार की प्रत्येक वस्तु को बहुत गहरी दृष्टि से देखते हैं, कुमार !

[सहसा नेपथ्य में भारी तुमुल होता है। घबराहट के स्वरों में कण्ठों से गहरी चीख सुनाई देती है :

भागो ! भागो ! रक्षा करो !
गजशाला से हाथी छूट गया है !
हाय ! वह वृद्ध, कुचल गया !
बचो ! बचो ! भागो ! भागो !
मार्ग से हटो !
हाय ! रक्षा करो ! रक्षा करो !]

वर्धमान : (**चौंककर**) रक्षा की यह पुकार ?···यहीं पास से आ रही है। मैं अभी देखता हूँ। (**चलने को उद्यत**)

विजय : (**विह्वलता से**) आप न जाएँ, कुमार ! हम लोग जाते हैं। ज्ञात होता है कि गजशाला से हाथी छूट गया है। वह लोगों को कुचलता हुआ आ रहा है। कहीं आप पर भी आक्रमण न कर दे।

वर्धमान : मुझ पर आक्रमण कर दे तो अच्छा है ! अन्य व्यक्ति बच जाएँगे।

सुमित्र : नहीं, ऐसा नहीं होगा, कुमार ! हमारे हाथों में धनुष-बाण हैं। आज हमारे हाथों उस हाथी के कुंभ का ही लक्ष्य-वेध होगा।

विजय : इसके पहले कि वह हाथी लोगों को अपने पैरों से कुचले मैं अपने बाणों से उसके पैरों की हड्डियाँ ही टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा।

सुमित्र : विजय ! मैं दाहिनी ओर हूँ, तुम बाईं ओर हो जाओ। हाथी के सामने आते ही हम दोनों एक साथ ही उस पर प्रहार करेंगे।

[दोनों ही मंच के दाहिने-बायें होकर धनुष पर बाण साधते हैं।]

वर्धमान : (**हाथ से वर्जित कर**) नहीं, किसी जीव पर धनुष संधान करना ठीक नहीं होगा।

सुमित्र : किंतु वह जीव पागल है, मतवाला है। उससे अन्य जीवों की हानि है।

विजय : और जब एक जीव से अनेक जीवों की हानि हो रही हो तो उस एक जीव को मारने में कोई हानि नहीं है, कोई हिंसा नहीं है, कुमार !

वर्धमान : जीव अन्ततः जीव ही है। तुम लोग रुको। मैं स्वयं अभी जाकर उस हाथी को देखता हूँ।

सुमित्र : हम लोग भी आपके साथ चलें ? आपका कोई अनिष्ट न हो !

वर्धमान : नहीं, तुम लोग यहीं रहो। तुम लोग क्रोध में आकर कुछ अनिष्ट कर बैठोगे। मैं अकेला जाऊँगा।

विजय : कुमार ! आप रुकें। आप अकेले न जाएँ।

वर्धमान : नहीं, मैं अकेला ही जाऊँगा।

विजय : हाथी पागल हो गया है। वह आप पर भी आक्रमण कर देगा।

वर्धमान : आक्रमण करे तो कर दे। मैं अकेला ही जाऊँगा। तुम लोग यहीं रुको। मेरा आदेश मान्य हो।

[कुमार वर्धमान का शीघ्रता से प्रस्थान]

विजय : (**कुमार के जाने की दिशा में देखते हुए**) कुमार अकेले ही चले गए। हम लोगों को आदेश दे दिया कि हम लोग यहीं रुकें। डर है, कहीं कोई अनिष्ट न हो।

सुमित्र : कुमार का यह साहस अनुचित है। पागल हाथी सामान्य व्यक्ति और राजकुमार में कोई अन्तर नहीं रखेगा। और कुमार उस हाथी को क्या देखेंगे, जब उनके सामने जीवों पर लक्ष्य लेने की बात ही नहीं है।

विजय : कुमार ने व्यर्थ ही हमें रोक दिया, नहीं तो आज बाण चलाने में मेरा कौशल देखते !

सुमित्र : मेरा लक्ष्य-बेध तो अचूक होता। आज तक मेरे बाणों ने लक्ष्य का केन्द्र ही देखा है, उसकी परिधि नहीं।

विजय : यह तो मैं जानता हूँ किंतु आश्चर्य है कि गजशाला से यह हाथी कैसे छूट गया। क्या महावत उसे नहीं रोक सका ?

सुमित्र : महावत असावधान होगा, या प्रयत्न करने पर भी वह उसे नहीं रोक सका होगा। अब कुमार वर्धमान उसे जाकर रोकेंगे।

विजय : वे कैसे रोकेंगे ? धनुष-बाण का प्रयोग तो वे करेंगे नहीं।

सुमित्र : (**हँसकर**) धनुष-बाण का प्रयोग क्यों करेंगे ? वे तो कोई सूक्ष्म बाण चलाएँगे। स्थूल बाण से जीव की हत्या होगी और जीव की हत्या संसार की सबसे बड़ी हिंसा है।

विजय : (**सोचते हुए**) हिंसा हो या न हो, किंतु उस हाथी ने क्रोध में आकर यदि कुमार पर आक्रमण कर दिया तो बड़ा अनर्थ होगा।

सुमित्र : (**लापरवाही से**) कुछ नहीं। क्या अनर्थ होगा ? महाराज सिद्धार्थ हम दोनों को बन्दीगृह में डाल देंगे। हम लोग कुमार के साथ क्यों नहीं गए, हम दोनों ने उनकी रक्षा क्यों नहीं की, इसी अपराध पर वे हम लोगों को बन्दीगृह में अवश्य डाल देंगे।

विजय : क्यों डाल देंगे ? हम लोग तो कुमार के साथ जाने के लिए तैयार थे, कुमार ने ही हमें रोक दिया। इसमें हमारा क्या अपराध ?

सुमित्र : अपराध यही कि हम लोगों ने कुमार वर्धमान को हाथी का सामना करने के लिए जाने ही क्यों दिया ? उन्हें रोका क्यों नहीं।

विजय : मैंने तो उन्हें रोका था। वे रुके ? कहने लगे—हाथी यदि मुझ पर आक्रमण करे तो कर दे।

सुमित्र : जो भी हो, यह अच्छा नहीं हुआ। कुमार अकेले ही चले गए। वे हम लोगों के साथ जाने पर अनिष्ट की बात कह रहे थे पर हम लोग समझते हैं कि उनके अकेले जाने से ही अनिष्ट हो सकता है।

विजय : क्या कहा जाए ! प्रभु पार्श्वनाथ रक्षा करें ! कितना अच्छा होता यदि वे हम लोगों को अपने साथ ले जाते ! यदि वह हाथी कुमार पर आक्रमण करता तो हमें उनकी रक्षा का अवसर मिल जाता। (**मुस्कराकर**) कुछ पुरस्कार मिल जाता !

सुमित्र : रक्षा तो हम लोग करते ही। फिर हमारे धनुष-बाण का कौशल भी जनता पर

स्पष्ट हो जाता। ऐसे ही अवसर पर तो धनुष-बाण की उपयोगिता है।

विजय : (**ठंडी साँस लेकर**) यह अवसर की बात है।

[नेपथ्य में उल्लास की ध्वनि—धन्य है ! धन्य है ! धन्य है !
कुमार वर्धमान की जय !
कुमार वर्धमान की जय !
कुमार वर्धमान की जय !]

विजय : यह जय-ध्वनि कैसी ?

सुमित्र : कुमार वर्धमान की जय ? वहाँ हाथी निरीह जनता को कुचल रहा होगा, यहाँ कुमार वर्धमान पहुँचे और उनकी जय बोली जा रही है !

विजय : (**विवश होते हुए**) कुछ समझ में नहीं आ रहा है।

सुमित्र : चलो, हम लोग चलकर देखें कि बात क्या है।

विजय : कुछ अच्छी ही बात होगी। चलो, हम लोग भी जय-ध्वनि में सम्मिलित हों।

[चलने को उद्यत होते हैं, तभी दो नागरिक शीघ्रता से आते हैं]

एक : क्षत्रिय कुमारों को प्रणाम ! आप लोग कुमार वर्धमान के साथी हैं ?

सुमित्र : हाँ, नागरिक ! किंतु कुमार वर्धमान कहाँ हैं ?

दूसरा : धन्य हैं, कुमार वर्धमान ! साधु ! साधु ! वे जनता के बीच में हैं। चारों ओर से उन पर पुष्प-वर्षा हो रही है।

विजय : (**कुतूहल से**) पुष्प-वर्षा ? कैसे ? किसलिए ? और वह हाथी ?

सुमित्र : वह पागल हाथी जो गजशाला से छूटकर लोगों को कुचलता हुआ आ रहा था ?

पहला : उसी पागल हाथी को तो कुमार ने एक क्षण में अपने वश में कर लिया।

सुमित्र : वश में कर लिया ? कैसे ? क्या उन्होंने धनुष-बाण का प्रयोग किया।

दूसरा : नहीं, श्रीमन् ! वे धनुष-बाण अवश्य लिए हुए थे किंतु उन्होंने धनुष-बाण तो मुझे दे दिया और हाथी के सामने निर्भयता से पहुँच गए।

विजय : निर्भयता से पहुँच गए ? तब हाथी ने क्या किया ?

सुमित्र : वह तो दौड़ता हुआ आ रहा होगा ?

पहला : भयानक आँधी की तरह। जैसे एक गरजता हुआ काला बादल भूमि पर उतर आया है। उसके पैरों की धमक से पृथ्वी काँप रही थी। वह पेड़ों को इस तरह उखाड़ देता था जैसे चुम्बक पत्थर लोहे को अपनी ओर खींच लेता है और आँखें तो इस तरह लाल थीं जैसे दो दहकते हुए अंगारे रखे हों।

विजय : ऐसे भयानक हाथी के सामने पहुँचना कितने साहस का काम था !

दूसरा : ओह ! कुमार में कितना साहस था ! और उनकी आँखों में कितना आकर्षण था !

पहला : श्रीमन् ! कुमार दोनों हाथ फैलाकर उस हाथी के मार्ग में खड़े हो गए। जैसे ही हाथी ने क्रोध से अपनी सूँड़ आगे बढ़ाई वैसे ही कुमार ने उसे पकड़कर अपने

सामने कर लिया और उस पर पैर रखकर वे विद्युत् गति से उसके मस्तक पर बैठ गए। उन्होंने न जाने किस तरह हाथी के कानों को सहलाया कि जो गजराज दो क्षण पहले क्रोध से पागल हो रहा था, वह कुमार को अपने मस्तक पर पाकर तुरंत ही शांत हो गया।

सुमित्र : (आश्चर्य से) शांत हो गया? आश्चर्य! महान् आश्चर्य!

दूसरा : शांत ही नहीं हो गया, वह अपनी सूँड़ उठाकर प्रणाम की मुद्रा में खड़ा हो गया।

विजय : सचमुच! कुमार वर्धमान में अपार साहस और शक्ति है।

पहला : साहस और शक्ति ही नहीं, श्रीमन्! लगता है, उनमें कोई दिव्य विभूति जगमगा रही है। उनको सामने देखकर बड़े से बड़ा क्रोधी शांत हो जाता है।

दूसरा : मुझे तो ऐसा लगता है कि कुमार वर्धमान को अपने मस्तक पर बिठलाने के लिए ही वह हाथी मतवाला हो गया था। कुमार जैसे ही उसके मस्तक पर बैठे कि वह शांत हो गया।

सुमित्र : हम लोग तो बड़े चिंतित हो रहे थे कि वह मतवाला हाथी कुमार पर भी कहीं आक्रमण न कर दे।

विजय : हम लोग भी कुमार की रक्षा के लिए उनके साथ जाना चाहते थे किंतु उन्होंने हमें रोक दिया और अकेले ही दौड़ पड़े।

पहला : उन्हें किसी से रक्षा की आवश्यकता नहीं है। वे अकेले ही सैकड़ों हाथियों का सामना कर सकते हैं।

सुमित्र : वह हाथी अब कहाँ है?

दूसरा : कुमार ने उसे फिर गजशाला में भेज दिया। जैसे ही हाथी शांत हुआ महावत पीछे दौड़ता हुआ आया। कुमार वर्धमान ने उसे हाथी सौंप दिया और वे हाथी से उतर पड़े। नगर की जनता जय-ध्वनि करते हुए उन पर पुष्प-वर्षा करने लगी।

पहला : और हाथी से उतरते ही उन्होंने गजपाल को आज्ञा दी कि जो अभागे व्यक्ति हाथी के पैरों से कुचल गए हैं उनका शीघ्र ही उपचार किया जाए।

विजय : वास्तव में कुमार वर्धमान नर-रत्न हैं।

दूसरा : उन्होंने पुष्प-वर्षा रोककर जनता से कहा कि वे जाकर घायल व्यक्तियों की देख-भाल करें। पुष्प-वर्षा करने की अपेक्षा क्षत-विक्षत व्यक्तियों की सेवा करना जनता का प्रथम कर्त्तव्य होना चाहिए।

सुमित्र : तो इस समय कुमार कहाँ हैं?

दूसरा : वे सबको विदा कर यहाँ आते ही होंगे। उन्होंने कहा था कि उनके साथी सुमित्र और विजय हमारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। आप ही उनके साथी ज्ञात होते हैं।

विजय : हाँ, हम लोगों का यह सौभाग्य है। (**संकेत कर**) ये सुमित्र हैं और मैं विजय हूँ। इस शुभ सूचना के लिए अनेक धन्यवाद।

पहला : तो हम लोग चल रहे हैं। हमें घायलों की सेवा करनी है।

दूसरा : घायलों में एक तो मेरा विरोधी रहा। किंतु जब वह हाथी के पैरों के नीचे आ

गया तो कुमार वर्धमान ने मुझसे कहा कि मुझे ही उसकी सेवा करनी है।

पहला : तो फिर चलो !

दूसरा : हाँ, चलो। (**विजय और सुमित्र से**) अब हमें आज्ञा दीजिए।

दोनों : जय वर्धमान ! (**प्रस्थान**)

सुमित्र : इन लोगों ने अच्छी सूचना दी, पर यह विचित्र बात अवश्य है कि कुमार वर्धमान ने बिना किसी शस्त्र के उस मतवाले हाथी को वश में कर लिया।

विजय : विचित्र अवश्य है। सामान्य व्यक्ति तो ऐसी स्थिति में अपना धैर्य भी खो बैठता है। उन्होंने एक क्षण में हाथी का पागलपन दूर कर दिया। वे किसी अलौकिक शक्ति से विभूषित वीर पुरुष ज्ञात होते हैं।

सुमित्र : सचमुच वे वीर हैं। कुमार की इस वीरता की सूचना से महाराज सिद्धार्थ बड़े प्रसन्न होंगे।

विजय : तो चलो, उन्हें सूचना दी जाए।

सुमित्र : इस समय तक तो उन्हें सूचना मिल गई होगी। फिर भी चलो। हम लोग भी महाराज की प्रसन्नता के भागी बनें। (**नेपथ्य की ओर देखकर**) अरे, कुमार वर्धमान तो इसी ओर आ रहे हैं।

विजय : हम लोगों के पास पुष्प-वर्षा के लिए पुष्प तो हैं नहीं, केवल जय-ध्वनि ही कर सकते हैं।

[कुमार वर्धमान का गंभीर गति से प्रवेश]

सुमित्र : कुमार वर्धमान की जय !

विजय : कुमार वर्धमान की वीरता की जय !

वर्धमान : (**गम्भीर स्वर में**) जय किस बात की ! यह तो सामान्य बात है, विजय ! पहले अपने आपको जीतना आवश्यक है। जो अपने को जीत लेता है, वह संसार की प्रत्येक वस्तु को जीत लेता है।

सुमित्र : निस्सन्देह, आपने यह प्रत्यक्ष कर दिखाया। अभी दो नागरिक आए थे। उन्होंने अभी हमें यह सूचना दी कि आपने बिना अस्त्र-शस्त्र के उस पागल हाथी को अपने वश में कर लिया। उन्होंने कहा कि आपने उन्हें अपना धनुष-बाण देकर निःशस्त्र होकर हाथी का सामना किया। आपको किसी प्रकार का भय नहीं हुआ ?

वर्धमान : जिसे आत्मविश्वास होता है, उसे किसी प्रकार का भय नहीं होता, सुमित्र ! जिसे भय होता है, वह अपनी शक्ति से अपरिचित रहता है।

विजय : तो आपने बिना आक्रमण किए ही हाथी को वश में कर लिया ?

वर्धमान : विजय ! मनुष्य यदि हिंसा-रहित है तो वह किसी को भी अपने वश में कर सकता है। बात यह है कि संसार में प्रत्येक को अपना जीवन प्रिय है। इसलिए जीवन को सुखी करने के लिए सभी कष्ट से दूर रहना चाहते हैं। जो व्यक्ति अपने कष्ट को समझता है, वह दूसरों के कष्ट का भी अनुभव कर सकता है। और जो दूसरों के कष्ट को अनुभव करता है, वही अपने कष्ट को समझ सकता है। इसलिए

उसे ही जीवित रहने का अधिकार है जो दूसरों को कष्ट न पहुँचाये, दूसरों की हिंसा न करे। जो दूसरों के कष्ट हरने की योग्यता रखता है, वही वास्तव में वीर है।

विजय : आप दूसरों के कष्ट समझते हैं। इसलिए आप सच्चे वीर हैं कुमार !

सुमित्र : तो आज से कुमार वर्धमान का नाम 'वीर वर्धमान' होना चाहिए।

विजय : मैं तुमसे पूर्ण सहमत हूँ, सुमित्र ! हमारे कुमार वीर वर्धमान हैं।

सुमित्र : तो अब हम लोग चलें। महाराज सिद्धार्थ वीर वर्धमान की प्रतीक्षा कर रहे होंगे। नागरिकों से उन्हें सूचना दे दी होगी कि किस तरह उन्होंने एक मतवाले हाथी को बिना किसी शस्त्र के अपने वश में कर लिया। वे वास्तव में वीर हैं।

विजय : अवश्य। चलिए, कुमार वीर वर्धमान !

[सब चलने को उद्यत होते हैं किन्तु विजय एक वृक्ष की ओर देखकर रुक जाता है।]

विजय : (**चौंककर**) अरे, यह देखो !

सुमित्र : क्यों ? क्या है ?

विजय : अरे, उस पेड़ की जड़ की ओर देखो !

सुमित्र : ओह ! भयानक सर्प ! कितना बड़ा सर्प है ! हटो, हटो—पीछे हटो, विजय !

वर्धमान : (**विजय से**) पीछे क्यों हट रहे हो ? देखो, वह सर्प कहाँ जाता है।

विजय : (**डरकर**) जायगा कहाँ ? वह हम लोगों को डसने के लिए आ रहा है।

सुमित्र : ओह ! उसने कितना भयानक फन फैला रखा है ! कुमार वर्धमान क्षमा करें, इच्छा होती है कि इसके फन को एक ही बाण में बेध दूँ।

विजय : और यदि लक्ष्य चूक गया तो वह इस तरह झपट पड़ेगा कि भागने का मार्ग भी नहीं मिलेगा।

सुमित्र : तुम जानते हो विजय ! मेरे बाणों का लक्ष्य अचूक होता है। जो दूसरों के प्राण लेता है, उसे मारने में हिंसा नहीं होगी। कुमार वर्धमान मुझे क्षमा करें ! मैं लक्ष्य लेता हूँ। (**धनुष पर बाण संधान करता है।**)

वर्धमान : सुमित्र ! उसे बाण मत मारो। बिना बाण चलाए ही इससे तुम्हारी रक्षा हो जाएगी। तुम व्यर्थ ही भय खाते हो। मैं ही उसे मार्ग से हटा देता हूँ। (**वर्धमान आगे बढ़कर सर्प की पूँछ पकड़कर उसे नेपथ्य में दूर फेंक देते हैं।**)

सुमित्र : (**आगे बढ़कर**) अरे, अरे, कुमार ! वह काट लेगा। इसने आपको काटा तो नहीं ?

विजय : हाय ! कहीं काट न लिया हो। देखूँ। (**पास जाता है।**)

वर्धमान : नहीं। वह मुझे क्यों काटेगा ? मेरे मन में सर्प के लिए कोई बुरा भाव नहीं है। न क्रोध है, न भय है।

सुमित्र : वातस्व में कुमार ! आपके हृदय में अदम्य साहस है।

विजय : यह तो महावीरता है। सुमित्र ! पहले तुमने कुमार के लिए वीर वर्धमान नाम कहा। अब मैं इन्हें 'महावीर वर्धमान' कहता हूँ, महावीर वर्धमान।

सुमित्र : सचमुच—महावीर वर्धमान।

विजय : तो हमें महावीर वर्धमान की जय बोलनी चाहिए।

दोनों : महावीर वर्धमान की जय ! जय ! जय !

दोनों महावीर वर्धमान को प्रणाम करते हैं। महावीर वर्धमान शान्त मुद्रा में खड़े हैं।

[परदा गिरता है।]

दूसरा अंक

(परदा उठने से पूर्व नेपथ्य से चर्या-पाठ)

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे।
मायामज्जव भावेण, लोभं संतोसओ जिणे ॥
(दशवैकालिक 8-39)

—अर्थात् शमन से क्रोध को जीते, मृदुता से अभिमान को जीते, सरलता से माया को जीते, और संतोष से लोभ को जीते।

[**स्थान :** सम्राट् सिद्धार्थ के सभा-कक्ष का बाहरी भाग।

समय : दिन का तीसरा पहर।

स्थिति : सभा-कक्ष में सम्पूर्ण सजावट है। द्वारों और झरोखों पर कौशेय पट। सामने की दीवाल पर स्वामी पार्श्वनाथ का बड़ा-सा चित्र। फर्श पर मलमल के बिछावन। बीच में स्वर्ण सिंहासन जिसमें मोतियों की झालरें लगी हुई हैं। उसके दोनों ओर जरी से मढ़ी हुई भद्र पीठिकाएँ। कोनों में कलापूर्ण प्रतिमाएँ। कक्ष अगरु और चन्दन के धूम से सुवासित है।

सम्राट् सिद्धार्थ क्रोध की मुद्रा में टहल रहे हैं। वय पचास के लगभग है। विस्तीर्ण ललाट, उठी हुई नासिका। क्रोध से ओंठ फड़क रहे हैं। सिर पर किरीट और अंग पर राजसी वस्त्र। पैरों में रत्न-जटित उपानह। उनके सामने बलाध्यक्ष गिरिसेन सैनिक वेश में है। वह अपराधी की मुद्रा में सम्राट् के सामने खड़ा हुआ है। सम्राट् अशान्त होकर क्रोध भरे स्वरों में बोल रहे हैं—]

सिद्धार्थ : तो गजशाला से इन्द्रगज कैसे निकल गया ? गजाध्यक्ष कहाँ थे ! मोटी-मोटी शृंखलाओं में कसा हुआ गज मुक्त होकर राजपथ पर चला गया और द्वार-रक्षक

और नगर-रक्षक नगर-निवासियों के कुचले जाने का कौतुक देखते रहे ? बोलो, गिरिसेन ! यह सब कैसे हुआ ?

गिरिसेन : सम्राट् ! सावधान तो गजाध्यक्ष भी था किन्तु···

सिद्धार्थ : (**बीच ही में**) सावधान ? सावधान होने का यह अर्थ है कि दुर्घटनाएँ घटित होती रहें और नगर-रक्षक उन पर नियन्त्रण न रख सकें ? बादल चारों ओर से घिरे हों और बिजली टूट कर पृथ्वी को ध्वस्त कर दे ? सावधान रहने का यह अर्थ है ?

गिरिसेन : सम्राट् ! अपराध क्षमा हो । गजाध्यक्ष हाथी को स्नान करा रहा था ।

सिद्धार्थ : इस तरह स्नान करा रहा था कि इन्द्रगज निरीह जनता को रक्त से स्नान करा दे ?

गिरिसेन : सम्राट् ! ऐसी संभावना नहीं थी किन्तु उसी समय किसी अज्ञात दिशा से आया हुआ बाण इन्द्रगज को लगा और वह विचलित होकर एक दिशा की ओर भागा । गजाध्यक्ष ने बहुत प्रयत्न किया किन्तु वह उसे वश में करने में असफल रहा । वह गज उत्तर की ओर वेग से दौड़ पड़ा···

सिद्धार्थ : और नगर-रक्षक कहाँ थे ?

गिरिसेन : वे कुमार वर्धमान के क्रीड़ा-क्षेत्र की सुरक्षा में व्यस्त थे ।

सिद्धार्थ : और यहाँ इन्द्रगज के वेग से नागरिक क्षत-विक्षत होते रहे !

गिरिसेन : अधिक नहीं सम्राट् ! गज के मुक्त होने की सूचना पाकर कुछ नगर-रक्षकों ने इन्द्रगज के जाने की दिशा मोड़ दी जिससे वह नगर के निर्जन प्रांतर की ओर जाए और इस कारण···

[नेपथ्य में जय-घोष—'कुमार वर्धमान की जय ! जय ! जय !']

सिद्धार्थ : यह कैसा जय-घोष ?

गिरिसेन : मैं अभी जाकर देखता हूँ । (**शीघ्रता से प्रस्थान**)

सिद्धार्थ : (**और भी अशान्त होकर टहलते हुए**) इन्द्रगज मुक्त होकर नागरिकों को कुचलता हुआ चला जाए और कुमार वर्धमान की जय का घोष हो ? वर्धमान के जन्म से राज्य की सम्पदाओं की वृद्धि हुई और अब निरीह जनता की मृत्यु की वृद्धि हो !

[गिरिसेन का शीघ्रता से प्रवेश]

गिरिसेन : महाराज की जय हो ! धन्य हैं कुमार वर्धमान ? उन्होंने इन्द्रगज को वश में कर लिया ।

सिद्धार्थ : (**कुतूहल से**) वश में कर लिया ? कैसे ? किस तरह ? कुमार वर्धमान ने उस शक्तिशाली इन्द्रगज को ?

गिरिसेन : अब सम्राट् ! यह तो मैं नहीं कह सकता । मैंने इतना ही सुना कि हमारे कुमार वर्धमान ने इन्द्रगज को वश में कर लिया और उसे गजाध्यक्ष को सौंप कर

गजशाला में भेज दिया।

सिद्धार्थ : (**प्रसन्न होकर**) गजशाला में भेज दिया! साधु! साधु!! (**सोचते हुए**) किन्तु वे वहाँ कैसे पहुँचे? वे तो लक्ष्य-बेध का अभ्यास कर रहे थे। कुमार वर्धमान ने इन्द्रगज को वश में कर लिया?···किस भाँति···उन्हें चोट तो नहीं आई···? (**गिरिसेन से**) शीघ्र पूरी सूचना प्राप्त करो।

गिरिसेन : जो आज्ञा। (**प्रस्थान**)

सिद्धार्थ : (**टहलते हुए सोचते हैं**) इन्द्रगज तो भयानक होगा···और मुक्त हुआ गज किसी के भी प्राण ले सकता है। उसे कुमार वर्धमान ने···वर्धमान ने वश में कर लिया? किस भाँति? कैसे?

[उसी क्षण प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी : सम्राट् की जय! क्षत्रिय कुमार विजय और सुमित्र द्वार पर हैं।

सिद्धार्थ : वे भी तो कुमार वर्धमान के साथ लक्ष्य-बेध के लिए अभ्यास करते थे।··· उनसे पूरी सूचना मिलेगी। (**प्रतिहारी से**) उन्हें शीघ्र ही भेजो।

प्रतिहारी : (**सिर झुका कर**) जो आज्ञा। (**प्रस्थान**)

सिद्धार्थ : (**सोचते हुए**) कुमार विजय और कुमार सुमित्र तो प्रातःकाल से ही कुमार वर्धमान के साथ क्रीड़ा-वन में चले गए होंगे। वे तो निरन्तर कुमार के साथ रहते हैं। इन्द्रगज को वश में करने में संभवतः उन्होंने कुमार की सहायता की हो। एक व्यक्ति से मतवाला गज कैसे वश में किया जा सकता है? फिर कुमार वर्धमान की अभी आयु ही क्या है!

[कुमार विजय और कुमार सुमित्र का प्रवेश]

सुमित्र-विजय : (**एक साथ**) सम्राट् की जय!

सिद्धार्थ : विजय और सुमित्र! कुमार कहाँ हैं?

विजय : (**उल्लास से**) महावीर वर्धमान अभी नहीं आए, सम्राट्?

सिद्धार्थ : कहाँ हैं वे? अभी तो यहाँ नहीं आए। सुनता हूँ कि उन्होंने इन्द्रगज को— उस मतवाले इन्द्रगज को वश में कर लिया?

सुमित्र : न केवल इन्द्रगज को वरन् सर्प को भी।

सिद्धार्थ : (**आश्चर्य से**) सर्प को भी? यह सर्प कहाँ था? और सर्प की बात कैसी? बड़ी विचित्र बातें सुना रहे हो आज तुम सब। इन्द्रगज को और सर्प को वश में कर लिया!

विजय : हाँ, सम्राट्! सर्प को भी!

सुमित्र : हाँ, सम्राट्! वे कुमार वर्धमान नहीं, महावीर वर्धमान हैं।

विजय : सम्राट्! जिस समय इन्द्रगज क्रोध से निरीह जनों को कुचलता हुआ आ रहा था, महावीर वर्धमान दोनों हाथ फैला कर उसके सामने खड़े हो गए।

सिद्धार्थ : (**कुतूहल से**) सामने···सामने खड़े हो गए!

विजय : हाँ, सम्राट् ! सामने खड़े हो गए। हाथी ने चिंघाड़ते हुए जब अपनी सूँड़ उनके सामने बढ़ायी तो कुमार को उसके क्रोध पर हँसी आ गई। उन्होंने विद्युत् गति से उस सूँड़ पर पैर रखकर उसके मस्तक पर आसन जमा लिया। फिर पैरों से उसका गला दबा कर उसके कानों को न जाने किस तरह सहलाया कि जो हाथी भूकम्प की तरह धरती को हिला रहा था, वह पहाड़ की तरह अचल हो गया।

सुमित्र : और सम्राट् ! उसी अवस्था में उसने अपनी सूँड़ उठा कर महावीर कुमार को झूमते हुए प्रणाम किया।

सिद्धार्थ : धन्य है, मेरा कुमार वर्धमान ! (**हर्ष से गद्गद हो जाते हैं।**)

विजय : तभी गजाध्यक्ष पीछे से दौड़ता हुआ आया। कुमार ने उसे हाथी सौंप दिया और वे हम लोगों के पास चले आए।

सुमित्र : फिर हम लोग जैसे ही आपकी सेवा में आ रहे थे, एक वट-वृक्ष के तने से निकल कर एक भयंकर सर्प हम लोगों की ओर झपटा। हम लोग डर गए किन्तु कुमार निर्भीक होकर खड़े रहे। उन्होंने आगे बढ़ कर उसकी पूँछ पकड़ी और उसे घुमा कर दूर फेंक दिया। कुमार इतने तेजस्वी ज्ञात होते हैं, सम्राट् ! कि उनके सामने भयानक से भयानक जीव भी निर्जीव-सा हो जाता है।

सिद्धार्थ : साधु ! यह सब भगवान् पार्श्वनाथ की कृपा है। उन्हीं की कृपा ने उन्हें इतना तेजस्वी बना दिया होगा। किन्तु इस समय कुमार वर्धमान कहाँ हैं ?

विजय : हम तो समझते थे कि वे आपकी सेवा में आए होंगे।

सिद्धार्थ : नहीं, वे अभी तक तो यहाँ नहीं आए। फिर वे इतने शालीन हैं कि अपने द्वारा किए गए कार्यों की न वे प्रशंसा करते हैं और न सुनना चाहते हैं। मैं तो स्वयं उनके सम्बन्ध में चिन्तित हूँ।

सुमित्र : तो वे फिर अपने कक्ष में होंगे। यह सत्य है, सम्राट् ! कि वे वीरतापूर्ण कार्य करके भी निस्पृह और निर्विकार बने रहते हैं। जय-घोष सुन कर भी उनके ओंठों पर मुस्कान तक नहीं आई। तो हम लोग उन्हें आपकी सेवा में भेजें ?

सिद्धार्थ : हाँ, मैं उन्हें देखना चाहता हूँ। किन्तु इसके पूर्व इतनी शुभ सूचना देने पर अपना पुरस्कार तो लेते जाओ।

[गले से मोतियों की माला उतारते हैं।]

विजय : इसकी आवश्यकता नहीं है, सम्राट् !

सुमित्र : हम लोग तो इतने से ही कृतार्थ हैं कि महावीर वर्धमान के साहचर्य का सौभाग्य हम लोगों को प्राप्त है।

सिद्धार्थ : फिर भी मेरी प्रसन्नता का उपहार तो तुम्हें लेना ही पड़ेगा।

[सम्राट् सिद्धार्थ प्रत्येक को एक-एक माला देते हैं।]

दोनों : (**माला हाथ में लेकर एक साथ**) सम्राट् की जय ! वीर वर्धमान की जय ! (**प्रस्थान**)

सिद्धार्थ : कितनी शुभ सूचना है ! मेरे कुमार की वीरता की।…तो कुमार वर्धमान अब महावीर वर्धमान हैं, महावीर वर्धमान ! महारानी यह जानती हैं या नहीं ? भले ही वर्धमान महावीर हैं पर उनके तो कुमार हैं। उन्हें कुमार की वीरता की सूचना दूँ। (**पुकार कर**) प्रतिहारी !

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी : (**सिर झुका कर**) सम्राट् की जय !

सिद्धार्थ : प्रतिहारी ! महारानी त्रिशला को यहाँ आने की सूचना दो।

प्रतिहारी : जो आज्ञा। (**प्रस्थान**)

सिद्धार्थ : (**स्वगत**) धन्य ! धन्य कुमार वर्धमान ! नहीं (**जोर देकर**) महावीर वर्धमान ! मैं तुम्हारा पिता होकर अपना महान् भाग्य समझता हूँ। (**प्रभु पार्श्वनाथ के चित्र के समीप जाकर**) प्रभु पार्श्वनाथ ! तुम्हारी इतनी कृपा मुझ पर है कि मैं महावीर वर्धमान का पिता बना। कहाँ ऐरावत की भाँति शक्ति-शाली इन्द्रगज और कहाँ कुमार वर्धमान ! किन्तु कुमार ने इन्द्रगज को वश में कर लिया और वह भयानक सर्प ! उसे फूल की माला की भाँति उठाकर दूर फेंक दिया। (**सिर झुका कर**) प्रभु पार्श्वनाथ ! यह सब तुम्हारी कृपा है। (**हाथ जोड़ते हैं।**)

[महारानी त्रिशला का आगमन]

त्रिशला : महाराज की जय !

सिद्धार्थ : (**उल्लास से**) ओ, त्रिशला ! सुनो, सुनो—तुम्हारे वर्धमान ने…तुम्हारे कुमार ने किस साहस के साथ इन्द्रगज को वश में किया…हाँ, इन्द्रगज को ‥और सर्प को…भयंकर सर्प को इस वेग से ऊपर फेंका कि वह आकाश…हाँ, आकाश में ही रह गया।…तुम्हारे वर्धमान…तुम्हारे कुमार…

त्रिशला : हाँ, महाराज ! मैंने अभी-अभी यह समाचार सुना। परन्तु कुमार हैं कहाँ ? सोचती थी कहीं आपके पास न हों। मैं आपके पास आने ही वाली थी कि आपका सन्देश मिला।

सिद्धार्थ : नहीं, अभी तो यहाँ नहीं आए। मैं स्वयं उन्हें देखने के लिए उत्सुक हूँ।

त्रिशला : जाने कहाँ होंगे। सारे नागरिक उनके चारों ओर एकत्रित होंगे। मुझे तो भय है उनकी वीरता पर किसी की कुदृष्टि न लग जाए।

सिद्धार्थ : माँ के हृदय में आशंका स्वाभाविक है किन्तु हमारे वैशाली राज्य में किसी की दृष्टि ऐसी नहीं है कि कुमार का कुछ अनिष्ट हो। बात तो इसके विपरीत है कि कुमार की दृष्टि से अपशकुन भी शकुन बन जाते हैं, क्रोधी भी शान्त हो जाते हैं और विष भी अमृत बन जाता है।

त्रिशला : महाराज ! यह तो मैंने तभी जान लिया था जब कुमार का जन्म हुआ था। इसके पूर्व मैंने जो गजराज, वृषभ, सिंह, स्नान करती हुई लक्ष्मी आदि के सोलह

स्वप्न देखे थे तो आपके ज्योतिषी ने स्वप्न विचार कर स्वयं कहा था कि मेरा पुत्र धर्म-धुरन्धर और अपार शक्ति धारण करने वाला होगा।

सिद्धार्थ : हाँ, मुझे स्मरण है। ज्योतिषी ने यह भी कहा था कि तुम्हारा कुमार सभी का स्नेह पाकर संसार भर में प्रसिद्ध होगा। उसके उत्पन्न होते ही जो राज्य-वैभव की वृद्धि हुई थी, इसी कारण मैंने उसका नाम 'वर्धमान' रखा था।

त्रिशला : तो क्या उसके नाम के अनुरूप उसके परिवार की वृद्धि भी होगी ?

सिद्धार्थ : अवश्य होगी, इसमें भी क्या सन्देह है ?

त्रिशला : मुझे बहुत बड़ा सन्देह है।

सिद्धार्थ : सन्देह का कारण ? क्या तुम्हारा संकेत कुमार के विवाह की ओर है ?

त्रिशला : हाँ, न जाने कितने दिनों से यह अभिलाषा मैं अपने मन में सँजोये हुए हूँ। किन्तु···

सिद्धार्थ : (**प्रश्नसूचक मुद्रा में**) किन्तु···?

त्रिशला : कुमार की रुचि इस ओर नहीं है। वे एकान्त में बैठे हुए न जाने क्या-क्या सोचा करते हैं। मैंने जब कभी उनसे इस सम्बन्ध में चर्चा की है, उनकी मुख-मुद्रा गम्भीर हो उठी है और वे मेरे पास से उठकर चले गए हैं।

सिद्धार्थ : हाँ, उनके साथियों से भी मुझे ऐसी सूचना मिली है। वे तो किसी स्त्री की ओर देखते भी नहीं।

त्रिशला : मेरी ममता न जाने कहाँ-कहाँ पंख लगाकर उड़ती है। मैं अपनी पलकें बन्द करती हूँ तो न जाने कितनी सुकुमारियों के रूप उभरते हैं जो मेरी पुत्र-वधू बनने के लिए उत्सुक दीख पड़ती हैं किन्तु कुमार वर्धमान की वीतरागी दृष्टि के समक्ष सब कपूर की भाँति उड़ जाती हैं।

सिद्धार्थ : मेरे पास भी न जाने कितने नरेश अपनी पुत्रियों के चित्र भेजते हैं। मैं उन चित्रों को कुमार वर्धमान के समीप पहुँचा देता हूँ किन्तु मुझे किसी प्रकार का उत्तर नहीं मिलता। लगता है जैसे मधुर-से-मधुर संगीत के स्वर दिशाओं की गहराई में डूब गए हैं और कोई प्रतिध्वनि लौट कर उस संगी त का संकेत भी नहीं देती।

त्रिशला : मेरा वात्सल्य भी जैसे इन्द्रधनुष की भाँति निराधार है। (**गहरी साँस**)

[गंभीर मुद्रा में कुमार वर्धमान का प्रवेश]

वर्धमान : माता-पिता के श्री-चरणों में प्रणाम ! (**मस्तक झुकाते हैं।**)

सिद्धार्थ : (**हाथ उठाकर**) स्वस्ति ! विजयी बनो !

त्रिशला : मेरे कुमार ! आओ मेरे पास ! (**आगे बढ़ती हैं**) तुम सदैव सुखी रहो ! अभी-अभी सुना कि तुमने इन्द्रगज जैसे मतवाले हाथी को वश में कर लिया और सर्प को उठाकर दूर उछाल दिया।

सिद्धार्थ : आज तुम्हारी वीरता की प्रशंसा कुंडग्राम एक कण्ठ से कर रहा है। हमारे वंश में तुम जैसा वीर कुमार आज तक नहीं हुआ।

त्रिशला : अभी तो मेरा कुमार संसार को चकित कर देने वाला कार्य करेगा।

वर्धमान : यह आपका अमोघ वात्सल्य है, माँ !

सिद्धार्थ : तुम्हारे साथी तुम्हारी निर्भीकता की प्रशंसा कर रहे थे और कह रहे थे कि तुम कुमार वर्धमान नहीं, महावीर वर्धमान हो।

वर्धमान : यह आपका आशीर्वाद है, पिताजी !

त्रिशला : कुमार ! इन सब वीरतापूर्ण कार्यों के करने में तुम्हें कोई चोट तो नहीं लगी ?

वर्धमान : आपके आशीर्वाद का कवच भी तो मेरे शरीर पर है, माँ ! उससे मैं सभी तरह से सुरक्षित हूँ।

सिद्धार्थ : मुझे तुम पर अभिमान है, कुमार ! चलो, तुम्हारी कुशलता और भावी उन्नति के लिए आज हम प्रभु पार्श्वनाथ जी का पूजन करेंगे।

वर्धमान : जैसी आपकी आज्ञा।

[सिर झुका कर प्रणाम करते हैं। सबका प्रस्थान]

[परदा गिरता है।]

तीसरा अंक

[परदा उठने के पूर्व नेपथ्य से चर्या-पाठ]

अप्पणट्ठा परट्ठा वा कोहा वा जइ वा भया।
हिंसगं न मुसं बूया नो वि अन्नं वयावए॥

(दशवैकालिक 6-12)

—अर्थात् स्वयं के लिए अथवा दूसरों के लिए, क्रोध अथवा भय से दूसरों को पीड़ा पहुँचाने वाला असत्य वचन, न तो स्वयं बोलना चाहिए और न दूसरों बुलवाना चाहिए।

[**स्थान :** महारानी त्रिशला का श्रृंगार-कक्ष

समय : संध्या-काल

स्थिति : यह श्रृंगार-कक्ष राजसी वस्त्रों से सजा हुआ है। कक्ष में अनेक कला-कृतियाँ, पाट वस्त्रों से सुसिज्जत आसदिकाएँ। बीच में एक मखमली कालीन और ज़री से कढ़ा हुआ तकिया। इस समय महारानी त्रिशला कालीन पर बैठी हुई अनेक छाया-चित्रों का अवलोकन कर रही हैं। कुछ चित्र उनके दायें-बायें रखे हुए हैं। एक चित्र का गहराई से अवलोकन करते हुए कहती हैं।]

त्रिशला : तो ये कौशल कुमारी है ! सुन्दर तो बहुत हैं किन्तु लगता है प्रभातकालीन उषा को हिम-राशि ने धूमिल कर दिया है। (**पुकार कर**) सुनीता !

[नेपथ्य से—आई महारानी !]

त्रिशला : अरे, मैं अपने कुमार वर्धमान के लिए एक सुन्दर पत्नी का चयन करने में लगी हूँ और तू न जाने कहाँ है !

सुनीता : (**मंच पर आकर**) महारानी की जय ! सेवा में उपस्थित हूँ।

त्रिशला : देख तो, ये बहुत-से चित्र हैं। न जाने कहाँ-कहाँ की राजकुमारियाँ हैं। कोई छोटी है, कोई बड़ी है, कोई भोली दीखती है और कोई मान करने की मुद्रा में है। चित्रकार ने सभी को गौर वर्ण का बना दिया है। तू मेरी कुछ भी सहायता नहीं करती है।

सुनीता : (**मुस्कराकर**) महारानी ! पुत्र-वधू तो आपको चाहिए। आपकी रुचि ही प्रधान है।

त्रिशला : यह तो ठीक है किन्तु तेरी सम्मति भी तो चाहिए। कभी तुझे भी अपनी पुत्र-वधू का चयन करना होगा।

सुनीता : (**संकुचित स्वर में**) अभी तो, महारानी ! पुत्र भी नहीं है।

त्रिशला : तो हो जाएगा, जल्दी क्या है। पुत्र भी होगा और पुत्र-वधू के आने का भी अवसर मिलेगा। (**एक चित्र उठाकर**) अच्छा, बतला यह चित्र कैसा है ! ये मारुकच्छ की सुन्दरी हैं।

सुनीता : महारानी ! ये तो कच्छप की तरह अपना सिर पीछे खींचे हुए हैं और आँखें तो ऐसी हैं जैसे किसी तट की ओर देख रही हैं।

त्रिशला : इन्हें तट की ओर नहीं, राजमहल की ओर देखना चाहिए। (**दूसरा चित्र उठाकर**) अच्छा, इसे देख ! ये हैं—मल्ल राजवंश की कन्या। कैसी हैं ?

सुनीता : महारानी ! ज्ञात होता है जैसे ये मल्ल-युद्ध करने के लिए अपना दाँव देख रही हैं। इनके आने पर तो अन्तःपुर में मल्ल-क्रीड़ा आरम्भ हो जाएगी।

त्रिशला : मेरा कुमार तो सदैव संन्यास की बातें करता है। वह मल्ल-युद्ध में क्या रुचि लेगा ! भले ही वह मस्त हाथियों को अपने वश में कर ले। अच्छा, देख, यह तीसरा चित्र है—अवन्ति कुमारी का।

सुनीता : अवन्ति कुमारी का ? अच्छा तो है किन्तु ऐसा न हो कि यह अपने राज्य की तो उन्नति करे और हमारे राज्य की अवनति करना आरम्भ कर दे। अवन्ति कुमारी है न ? सुन्दर अवश्य है किन्तु सुन्दरता भी क्या जो मन के भाव प्रकट न कर सके।

त्रिशला : इन तीनों में तो यही अच्छी है। अच्छा, इस चौथे चित्र को देख ! ये कुक्कुट नरेश की राजपुत्री हैं।

सुनीता : (**देखकर**) कुक्कुट नरेश की ? इनको कहीं दाना नहीं मिल रहा है। ये किसी नगर-वधू को अपदस्थ कर सकती हैं।

त्रिशला : नगर-वधू ? इस राजकुल में कोई नगर-वधू ? सुनीता ! सावधान ! ऐसे शब्द मुख से निकालती है ? अच्छा, इन चम्पा कुमारी जी को देखो।

सुनीता : महारानी ! यह चित्र सबसे सुन्दर है। नासिका उठी हुई, नेत्रों में शील, ओंठ जैसे मधु-वर्षण के लिए खुलने ही वाले हैं।

त्रिशला : इसे अलग रख लेती हूँ। **(वह चित्र अलग रखती हैं)** अच्छा, ये मंडलेश्वर की पुत्री हैं। इन्हें देखो !

सुनीता : ये भी अच्छी हैं, महारानी ! इनके मुख के चारों ओर जो ज्योतिमंडल है उससे ज्ञात होता है कि ये शची की पुत्री जयंती हैं। मानवी में देवी। इन्हें भी अलग रख लीजिए, स्वामिनी !

त्रिशला : अच्छी बात है। **(उस चित्र को भी अलग रखती हैं)** आहा, इन्हें देख ! **(एक चित्र उठाते हुए)** ये कलिंग-कन्या हैं, शत्रुजित् की पुत्री।

सुनीता : साधु ! ये तो सभी राजकुमारियों से श्रेष्ठ हैं, महारानी ! आहा ! ऐसा लगता है कि यदि प्रतिपदा का चन्द्र इनके सौन्दर्य की कलाओं को धारण कर ले तो वह पूर्णिमा का चन्द्र बन जाएगा। नेत्र इतने सौम्य हैं कि लगता है इनके चारों ओर श्वेत कमलों की वर्षा हो रही है। इनकी किंचित् मुस्कान ऐसी लगती है जैसे हँसी मुख के भीतर जाकर लौट रही है। महारानी ! राजकुमारी पूर्ण रूप से हमारे कुमार के अनुरूप हैं।

त्रिशला : (उठकर) मैं भी ऐसा सोचती हूँ। प्रातःकाल मैं इस चित्र को बहुत देर तक देखती रही। लगता था जैसे प्रभात का प्रकाश इसी चित्र से निकल रहा है। ज्ञात होता है, कलिंग के तटवर्ती सागर की तरंगों ने इसके केशों को सँवारा है। इसके मस्तक की शोभा में चन्द्र भी आधा हो गया है। इसकी नासिका की रेखा क्षितिज-रेखा की भाँति सुन्दरता के साथ झुकी हुई है, और नेत्र ? नेत्र तो बड़े ही सुन्दर हैं, जैसे सुख और संतोष ही अरुण कमल की अधखुली पंखुड़ियाँ बन गए हैं। यह वास्तव में मेरी पुत्र-वधू बनने के योग्य है। नीचे नाम भी लिखा हुआ है। पढ़ूँ ? य···शो···दा, यशोदा कलिंग-पुत्री होकर भी समस्त शूरसेन राज्य की सुषमा समेटे हुए है।

[धीरे-धीरे कुमार वर्धमान का प्रवेश]

सुनीता : कुमार की जय !

त्रिशला : **(चौंककर देखते हुए)** कुमार ? आओ, आओ, तुम्हारे ही सम्बन्ध में सोच रही थी।

वर्धमान : शूरसेन राज्य की सुषमा कौन समेटे हुए है, माँ ?

त्रिशला : **(मुस्कराकर)** तो तुमने सुन लिया ? सुषमा समेटने वाली है—मेरे वर्तमान की लता में भविष्य की कलिका, जिसमें रूप हँसता है, रंग हँसता है और सुगन्ध बार-बार मुस्करा जाती है।

वर्धमान : तुम तो कविता में बात करती हो, माँ ! स्पष्ट कहो।

त्रिशला : तुमने इतनी विद्या पढ़ी है। तुम पशु-पक्षियों की भाषा भी समझ सकते हो। कविता की मेरी भाषा नहीं समझते ? देखो, मैं अपने इस श्रृंगार-कक्ष को इन चित्रों में जो सबसे सुन्दर है, उससे सुसज्जित करना चाहती हूँ।

वर्धमान : इस श्रृंगार-कक्ष में तो पहले से ही एक से अनेक सुन्दर चित्र सजे हैं। एक चित्र से और क्या शोभा बढ़ जाएगी ?

त्रिशला : (**सुनीता से**) सुनीता ! तू जा। मैं अपने बेटे से अपनी बातें कहना चाहती हूँ।

सुनीता : जैसी आज्ञा। महारानी की जय ! कुमार की जय ! (**प्रस्थान**)

वर्धमान : सुनीता को बाहर क्यों भेज दिया ?

त्रिशला : मेरे और मेरे बेटे के बीच बातें सुनने की अधिकारिणी कोई सेविका नहीं हो सकती।

वर्धमान : तो ऐसी कौन-सी बात है, माँ ?

त्रिशला : वही जो मैं अभी तुमसे कहने जा रही थी।

वर्धमान : तुम तो चित्रों की बात कर रही थीं, माँ !

त्रिशला : हाँ, जिस चित्र की बात कर रही थी वह चित्र कक्ष में लगे हुए सभी चित्रों से सुन्दर और आकर्षक होगा और सबसे बड़ी बात यह होगी कि वह चित्र सजीव होगा। जिसके स्वरों से यह कक्ष मुखरित होगा।

वर्धमान : (**हँसकर**) ओह ? अब समझा, माँ ! किन्तु माँ, ये सारे चित्र नश्वर हैं। एक दिन सब नष्ट हो जाने वाले हैं और सजीव चित्र तो निर्जीव चित्रों से भी पहले रूप-रंग में नष्ट हो जाते हैं।

त्रिशला : इस श्रृंगार-कक्ष में वैराग्य की ये बातें शोभा नहीं देतीं। यह तो कुछ ऐसा ही है जैसे किसी श्रृंगार-मंजूषा में सर्प निवास करने लगे।

वर्धमान : इस शरीर को भी संसार के लोग रत्न-मंजूषा ही कहते हैं किन्तु इसमें पाँच इन्द्रियों के पाँच सर्प निवास करते हैं।

त्रिशला : तेरा ज्ञान तो अभी से संन्यासियों का उदान बन गया है। उस ज्ञान के आचरण का समय भी आएगा किन्तु प्रभात प्रभात ही होगा, सूर्योदय में मध्याह्न की कल्पना करना समय का अपमान करना है।

वर्धमान : असीम धर्म में समय की स्थितियाँ नहीं होतीं, माँ !

त्रिशला : देख, बेटे ! मैं तुझ से शास्त्रार्थ नहीं करना चाहती। अपनी ममता और लालसा के छन्दों से अपना कंठ मुखरित करना चाहती हूँ। चाहती हूँ कि इस कक्ष के ये मूक और निरुपाय क्षण किन्हीं नूपुरों का संगीत अपने हृदय में भरकर समस्त संसार को गुंजित कर दें।

वर्धमान : माँ ! तुम्हारी स्नेह-धारा स्निग्ध और तरल है किन्तु मुझे भय है कि इससे अभिलाषाओं की आग बुझती नहीं है, और भी उग्र हो जाती है।

त्रिशला : इन्हीं अभिलाषाओं से संसार गतिशील होता है, मेरे बेटे ! अच्छा, इधर देख, (**यशोदा का चित्र उठाते हुए**) यह चित्र मुझे सबसे अच्छा लग रहा है। देख,

कितनी सुन्दर आँखें हैं, जैसे कामदेव की अंजुलि में रखे हुए दो पुष्प हैं। नासिका देख, जैसे किसी ने मर्यादा की पतली रेखा खींच कर उसे उठा दिया है। ओंठ तो ऐसे हैं जैसे माधुर्य के दो किनारे हों जिनके बीच वाणी की भागीरथी बहती है। स्वभाव में, शील में, व्यवहार में शची है, कलिंग कुमारी के रूप में अवतरित हुई है। नाम है यशोदा—यशोदा। तूने पूछा था न! शूरसेन राज्य की सुषमा कौन समेटे हुए है? वह यही कलिंग कुमारी यशोदा है। इसके साथ मैं तेरा विवाह करना चाहती हूँ।

[वर्धमान चुप रहते हैं।]

त्रिशला : बहुत दिनों की लालसा तेरे सामने रख रही हूँ।

[वर्धमान फिर चुप रहते हैं।]

त्रिशला : चुप क्यों हो, बेटे? क्या माँ का वात्सल्य तुम्हारे मौन से लांछित नहीं होता?

वर्धमान : माँ! क्या तुम्हारा वात्सल्य केवल विवाह की वेदी का एक फूल मात्र है? तुम्हारे वात्सल्य की माला में तो अनेक फूल हैं, फिर इसी फूल को इतना महत्त्व क्यों देती हो?

त्रिशला : मेरे वात्सल्य का प्रत्येक फूल समान है किन्तु माला में फूलों की स्थिति भी तो महत्त्व रखती है। विवाह वही फूल है जिसकी स्थिति में माला की शोभा और उसका श्रृंगार है।

वर्धमान : माँ! वात्सल्य के फूलों को बिखरा हुआ ही रहने दो, उसकी माला मत बनाओ।

त्रिशला : (**प्रश्नसूचक मुद्रा में**) तात्पर्य?

वर्धमान : यदि मैं विवाह न करूँ तो संसार की क्या हानि होगी?

त्रिशला : संसार की कुछ हानि नहीं होगी, मेरी होगी। और मेरा बेटा मेरी हानि कभी नहीं करेगा।

वर्धमान : आपका बेटा आपकी हानि तो कभी कर ही नहीं सकता किन्तु हानि हो ही कहाँ रही है?

त्रिशला : तू माँ नहीं है, इसलिए पुत्र-वधू की लालसा समझ ही नहीं सकता। तेरे साथ के जितने क्षत्रिय कुमार थे, सबके विवाह हो गए। सबकी माताओं ने अपनी मनचाही पुत्र-वधुएँ प्राप्त कर लीं। आज उनके भवन उल्लास और आनन्द से गूँज रहे हैं। एक हमारा भवन है जिसमें शिशिर का सन्नाटा छाया हुआ है। तेरा विवाह तो अभी तक हो जाना चाहिए था। वह तो मुझे मेरे योग्य कोई कुल-वधू नहीं मिल रही थी। इसलिए तेरा विवाह अभी तक रुका रहा। अब तेरे योग्य एक सुन्दर, सुशील और तेरे यश के अनुरूप कुल-वधू मैंने पा ली है, तो तू कहता है

कि मैं विवाह नहीं करूँगा।

वर्धमान : हाँ, माँ ! मैं विवाह नहीं करना चाहता।

त्रिशला : फिर इस राजवंश की मर्यादा कैसे रहेगी ?

वर्धमान : अच्छी रहेगी। मेरे बड़े भाई नन्दिवर्धन हैं, बहन सुदर्शना है, चाचा सुपार्श्व हैं। इनसे राजवंश का विकास होगा। मेरे पिता स्वयं एक चम्पक वृक्ष के समान हरे-भरे हैं और यश-सौरभ से सम्पन्न हैं।

त्रिशला : यह सब तो ठीक है किन्तु पाटल-लता के एक या दो पुष्पों से उसकी शोभा नहीं होती। उसके सभी वृन्त पुष्पों से परिपूर्ण रहें, तभी उसकी शोभा होती है।

वर्धमान : क्या संसार में शोभा भी स्थायी रहती है, माँ ? यह शोभा उसी प्रकार अवनति को प्राप्त होती है जैसे कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा क्षीण होता जाता है। मैं ऐसी शोभा से प्रभावित नहीं हूँ।

त्रिशला : तेरा ज्ञान मेरी ममता से उतनी ही दूर है जितना आकाश पृथ्वी से है। तू माँ के संस्कारों से अपरिचित है, बेटे !

वर्धमान : संस्कार चंचल हैं, परिवर्तनशील है, माँ ! महासमुद्र की तरंगों की भाँति मृत्यु हमें वश में कर लेती है और संसार देखता रहता है। संस्कारों से अधिक स्मृतिमान धारणा कहीं श्रेष्ठ है।

त्रिशला : तो तू विवाह नहीं करेगा ?

वर्धमान : नहीं माँ ! विवाह नहीं करना चाहता। सारथी द्वारा दमन किए अश्व की भाँति मेरी प्रवृत्तियाँ मेरे वश में हैं। अभिमान-रहित, आश्रव-रहित, अविचलित मेरी स्पृहा है। भाँति-भाँति के आकर्षण नक्षत्रों की भाँति जगमगाते हैं किन्तु यह रात्रि का ही विस्तार है। यह सोने के लिए नहीं है। मैं इसमें जागते रहना चाहता हूँ।

त्रिशला : (**व्यंग्य से**) और मैं शयन कर रही हूँ। इन आकर्षण के नक्षत्रों को मैंने अपने स्वप्नों में उतार लिया है और उन स्वप्नों में अपनी रात बिता रही हूँ, क्यों न ? यही तो तू कहता है किन्तु यह नहीं जानता कि इन वाक्यों से माँ का अपमान होता है।

वर्धमान : अपमान कैसा, माँ ! मान और अपमान तो शीत और उष्ण की भाँति हैं। ये तो इन्द्रियों के विकार हैं, तृण से भी तुच्छ हैं। योग-क्षेम के लिए हमें कुशलता से जीवन व्यतीत करना चाहिए।

त्रिशला : हम लोगों का जीवन कुशलता से व्यतीत नहीं हो रहा है, यह कौन कहेगा ? तुझसे अधिक जानने वाला तो कोई है नहीं। राज्य में पूरी शान्ति, प्रजा का संतोष, राजमहल सुख-सुविधा की सम्पूर्ण सामग्री और इस सबके साथ स्वामी पार्श्वनाथ की पूजा। कुशलता से जीवन व्यतीत करना और किसे कहते हैं ? पर तेरा ज्ञान ही दूसरा है। और वैसा ज्ञान तो मुझ में है नहीं। पर तेरी जननी होने का सौभाग्य मुझे अवश्य प्राप्त है। न जाने कब से मैं तेरे विवाह की आस लगाए हुए हूँ। ऐसी न जाने कितनी कन्याएँ हैं जो नख से शिख तक सुन्दर हैं, सभी गुणों

से सम्पन्न हैं, और तेरी सेवा के लिए लालायित हैं। फिर यह यशोदा तो अपने शील, लज्जा और लावण्य से तो रति को भी लज्जित करती है। इसकी वरमाला स्वीकार कर इसे अवश्य कृतकृत्य होना चाहिए।

वर्धमान : माँ ! स्वयं रति भी मुझसे विवाह का प्रस्ताव करे तो मैं उसे स्वीकार नहीं करूँगा, ऐसा मेरा निश्चय है। मैं विवश हूँ, माँ ! मेरे निश्चय से तुम्हारी आज्ञा टल रही है। तुम्हारी अभिलाषा निर्गन्ध पुष्प की भाँति मेरे विचारों की ऊष्मा से मुरझा रही है। क्या इसके लिए तुम मुझे क्षमा नहीं करोगी ? क्षमा कर दो न, माँ !

त्रिशला : क्षमा ! पुत्र के बड़े से बड़े अपराध पर जननी क्षमा नहीं करेगी तो और क्या करेगी ? और अब मेरी आयु ही कितनी शेष रह गई है ! चाहती थी कि इन आँखों से अपने बेटे के कंठ में वरमाला पड़ते देखती, मेरा आँगल मंगल घटों से सजाया जाता। दीप-माला से नगर की वीथियाँ जगमगा उठतीं, सारे कुंडग्राम में वन्दनवार इन्द्रधनुषों की भाँति सुशोभित होते। नगर-नारियाँ अपने झरोखों और वातायनों से मेरे सुन्दर बेटे की वर-यात्रा देखतीं पर··· **(भरे हुए कंठ से)** अब···अब यह कुछ नहीं होगा···कुछ नहीं होगा। अच्छा है बेटे ! ···अब मैं अपनी अधूरी साध लिए हुए ही मर जाऊँगी···मर जाऊँगी···

[आँखों में आँसू और हल्की-सी सिसकियाँ। त्रिशला अपना मुख वस्त्रों में छिपा लेती हैं।]

[नेपथ्य में—सम्राट् की जय ! सम्राट् की जय ! सम्राट् की जय !]

वर्धमान : माँ ! पिताजी आ रहे हैं। तुम रो रही हो ? माँ ! पिताजी इस कक्ष में आ रहे हैं।

[त्रिशला अपना शिरो वस्त्र सम्हाल लेती हैं, वर्धमान सजग हो जाते हैं। महाराज सिद्धार्थ प्रवेश करते हैं, वर्धमान प्रणाम करते हैं।]

सिद्धार्थ : महारानी त्रिशला और कुमार वर्धमान यही हैं। **(त्रिशला को देखकर)** अरे, महारानी ? तुम्हारी आँखों में आँसू !

वर्धमान : पिता जी ! मैंने माँ का अपमान कर दिया।

सिद्धार्थ : तुम कभी स्वप्न में भी अपनी माँ का अपमान नहीं कर सकते। कोई दूसरी बात होगी। कहो त्रिशला ! क्या बात है ?

वर्धमान : पिताजी ! ये मेरे विवाह की चर्चा कर रही थीं और मैंने इसे स्वीकार नहीं किया। मुझे क्षमा कर दें ! मेरी इन्हीं बातों से माँ का अपमान हो गया। माँ, तुम भी मुझे क्षमा कर दो ?

सिद्धार्थ : त्रिशला ! शान्त हो जाओ। **(त्रिशला कंधे पर हाथ रखते हैं, त्रिशला और जोर से सिसकने लगती हैं और सिद्धार्थ के कंधे पर सिर रख लेती हैं)** शान्त ! शान्त ! त्रिशला ! तुम जाकर विश्राम करो। वर्धमान से मैं बातें करूँगा।

[त्रिशला सिसकते हुए भीतर चली जाती हैं।]

सिद्धार्थ : (**वर्धमान को देखकर**) तो तुमने विवाह का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। क्या तुम माँ की ममता नहीं जानते, वर्धमान? माँ का हृदय एक सरोवर है जिसमें वात्सल्य के कमल खिला करते हैं। यदि उत्तप्त वायु से वे कमल मुरझा जाएँ तो क्या सरोवर की शोभा नष्ट नहीं हो जाएगी? तुम बहुत ज्ञानी हो, क्या तुम अपने ज्ञान से माँ के वात्सल्य का रूप नहीं देख सकते?

[वर्धमान चुप रहते हैं।]

सिद्धार्थ : तुम चुप क्यों हो? राजवंश में विवाह की एक स्वस्थ परम्परा है। वर के लिए अच्छी से अच्छी वधू देखी जाती है। रूप, शील, मर्यादा और वंश की पवित्रता के आधार पर दो वंश वायु की लहरों की भाँति मिलते हैं और यश की सुरभि का संचार होता है। पति और पत्नी ऐसे संसार का निर्माण करते हैं जिसके सामने स्वर्ग भी फीका पड़ जाता है और तुम यह जानते हो कि गृहस्थाश्रम सभी आश्रमों से श्रेष्ठ है।

वर्धमान : पिताजी! क्षमा करें। आपकी सारी बातें नीति-सम्मत हैं किन्तु मन की प्रवृत्ति सभी आश्रमों से श्रेष्ठ है।

सिद्धार्थ : किन्तु प्रवृत्ति की अधिकारिणी तो बुद्धि है और उसके भी अधिकारी तुम हो। इस अधिकार को संगठित करने की आवश्यकता है किन्तु ज्ञात होता है कि तुम्हें यह संगठन स्वीकार नहीं है। कुछ दिनों से मैं ऐसे ही लक्षण देख रहा हूँ। तुम्हारी अवस्था मात्र बीस वर्ष की है पर लगता है कि तुम एक सौ वर्षों के हो! मुझसे भी बड़े! ऐं? मुझसे भी बड़े! (**मुस्कान**)

वर्धमान : मेरी दृष्टि से तो इन्द्र भी आपसे बड़ा नहीं है।

सिद्धार्थ : किन्तु तुम तो हो। मेरे पास तुम्हारे विवाह के लिए न जाने कितने राजवंशों से आग्रह किए जा रहे हैं किन्तु तुम्हारे लक्षणों को देखकर मैं उन्हें अभी तक कोई उत्तर नहीं दे सका।

वर्धमान : पिताजी! यदि आप मेरी प्रार्थना मानें तो उन्हें कोई उत्तर न दें।

सिद्धार्थ : क्यों न दूँ? तुम राजपुत्र हो, वीर हो, बुद्धिमान हो, सुन्दर हो। तुम्हें इस राज्य का उत्तराधिकारी भी होना है।

वर्धमान : पिताजी! मैं इस राज्य का उत्तराधिकारी नहीं होना चाहता, मैं मुक्ति का अधिकारी होना चाहता हूँ।

सिद्धार्थ : मैं यह सुनकर प्रसन्न हुआ किन्तु मुक्ति के अधिकारी होने के लिए अभी बहुत समय है। जीवन के कर्त्तव्यों का पालन करने के उपरान्त तो तुम संन्यास ले ही सकते हो। हमारे पूज्य आदिनाथ ने भी यही किया। उन्होंने सुनन्दा और सुमंगला से विवाह किए। वे पुत्र और पुत्रियों से सम्पन्न हुए। उन्होंने अनेक वर्षों तक राज्य किया, फिर कहीं जाकर अन्त में उन्होंने वैराग्य लिया। इसी प्रकार कालान्तर में तुम भी वैराग्य धारण करना किन्तु पहले अपने जीवन के धर्म को तो पूरा करो।

वर्धमान : पिताजी ! आपके तर्क के विरोध में मैं कुछ नहीं कहना चाहता किन्तु निवेदन यही है कि अब प्रभु आदिनाथ का समय कहाँ रहा ? उन जैसा शरीर, उन जैसी आयु और उन जैसा पौरुष अब कहाँ है ?

सिद्धार्थ : क्यों ? तुम्हारा पौरुष भी अद्वितीय है, कुमार ! उस दिन तुमने उस मतवाले इन्द्रगज को किस प्रकार अपने अधिकार में ले लिया था। वह मत्त होकर निरीह जनता को कुचलता हुआ जा रहा था और तुमने सामने बढ़कर जैसे दृष्टि-मात्र में उनका सारा दर्प और बल एक क्षण में समाप्त कर दिया। यह तुम्हारे पौरुष की विजय नहीं है तो क्या है ?

वर्धमान : पिताजी ! इसे मैं अपनी विजय नहीं मानता। यदि इन्द्रगज के स्थान पर आस्रव-रहित गज पर विजय हो तो मैं उसे अपनी विजय मानूँगा। शील, अहिंसा, त्याग और जागरूकता उस गज के पैर हों, श्रद्धा उसकी सूँड़ हो, उपेक्षा उसके दाँत हों, स्मृति उसकी ग्रीवा हो, प्रज्ञा सिर हो और विवेक उसकी पूँछ हो—ऐसे गज पर विजय प्राप्त कर सकूँ तो मेरी वास्तविक विजय हो !

सिद्धार्थ : तथास्तु ! ऐसे ही हो ! किन्तु अनित्य का, अनात्म का और अनासक्ति का अभ्यास करने पर ही ऐसा होगा। इसके लिए समय की आवश्यकता है और तब तक मेरी इच्छा है कि तुम राज-परिवार के कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुए विवाह करो और प्रजा-पालन करते हुए उसकी रक्षा करो।

वर्धमान : पिताजी ! आपके आदेशों के विपरीत जाने का तो मुझे अधिकार नहीं है किन्तु मेरी दृष्टि में प्रजा की रक्षा करने के बदले यदि मानव-मात्र की रक्षा की जाए तो अधिक उचित होगा। आप देखते हैं कि आज के युग में जातिवाद की विडंबना मानवता को पीस रही है, शूद्रों के साथ पशुवत् व्यवहार होता है और धर्म के नाम पर हिंसा और यज्ञों में पशु-बलि की इतनी अधिकता हो गई है कि रक्त की धाराओं से नदियों का पानी भी लाल हो गया है। निरीह पशुओं को काट कर उनके चर्म एक नदी में इतने डाले गए कि उसका नाम ही चर्मवती हो गया। पशुओं का मांस होम करने से जो धुआँ उठ रहा है उससे यह आकाश भी अपवित्र हो रहा है।

सिद्धार्थ : तुम्हारा कथन सत्य है, कुमार !

वर्धमान : तो पिताजी ! मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं इस राजमहल में ही सीमित न रहूँ, उसके बाहर जाकर मानव-धर्म का पालन करूँ। हमारे प्रभु पार्श्वनाथ ने जिस अहिंसा का आख्यान किया है आज वह कहाँ है ? वैदिक धर्म तो प्रत्यक्ष हिंसा का धर्म बन गया है। ये अश्वमेध-गोमेध यज्ञ क्या हैं ? हिंसा के—मांस-भक्षण के साधन बन गए हैं। वेद-मन्त्र यज्ञकर्मियों की क्रीड़ा के कन्दुक बन गए हैं। दूर-दूर तक आकाश में उछालते हैं और झेलते हैं। उन कन्दुकों में अहंकार की वायु भरी गई है। पशु-बलि करने वाले कहते हैं—वैदिकी हिंसा हिंसा नहीं है किन्तु उस हिंसा से न जाने कितने निरपराध और निरीह पशुओं के प्राणों की हानि हो रही है। यज्ञ-स्तम्भ के नीचे छटपटाते हुए पशुओं का चीत्कार कितना करुण है !

मुझे लगता है कि अपनी प्राण-रक्षा के लिए वे मुझे पुकार रहे हैं ।

सिद्धार्थ : वास्तव में स्थिति यही है। मुझे भी लगता है कि इन यज्ञों में आमंत्रित देवता भी मांस-भक्षी हो गए हैं और रक्त से ही उनकी प्यास बुझती है। जिसे ये यज्ञ-कर्मी जगत्-पिता कहते हैं, वह क्या अपने बच्चों का रक्त पीकर ही सन्तुष्ट होता है ?

वर्धमान : पिताजी ! आप तो सत्य को समझते हैं। दूसरी ओर मानव-समाज के बड़े अंश को अपने से अलग कर दिया है और उसे शूद्र नाम से लांछित करते हैं। वह व्यक्ति जिसके अंग हमारे ही अंगों की भाँति हैं, जिसे हमारे समान सुख-दुःख, प्रेम-घृणा, उत्साह और भय का अनुभव होता है, वह हमसे किस प्रकार भिन्न है ! उसे सामान्य सामाजिक अधिकारों से भी वंचित किया गया है। वह हमारे साथ बैठ नहीं सकता, उठ नहीं सकता, बोल नहीं सकता। यदि वह व्यक्ति जिसे वे शूद्र कहते हैं, वेद-मन्त्र का उच्चारण करता है तो उसकी जीभ काट ली जाती है। उसकी छाया यदि किसी ब्राह्मण पर पड़ जाती है तो उस बेचारे के शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए जाते हैं।

सिद्धार्थ : यह वास्तव में बड़ी निर्मम दृष्टि है किन्तु हमारी प्रजा पर तो ऐसा अत्याचार नहीं होता।

वर्धमान : हमारी प्रजा पर न हो किन्तु समस्त मानवता तो हमारी प्रजा नहीं है। आज मानवता में नैतिकता का कितना ह्रास हुआ है ! सत्य जैसा रत्न उपेक्षित है और असत्य के काँच के टुकड़े संचित किए जा रहे हैं। स्वार्थ ने परोपकार का गला दबा रखा है। दास-दासी स्वामी की सम्पत्ति हैं। यदि वे अपने स्वामी के लिए धन कमा कर नहीं लाते तो उन्हें शारीरिक यातनाएँ सहन करनी पड़ती हैं। और नारियों की दशा कितनी दयनीय है ! वे क्रीतदासियों की भाँति पतियों से लांछित हो रही हैं। विवाह के द्वारा मैं केवल एक नारी की रक्षा करूँगा, अविवाहित रहकर मैं समस्त नारियों की रक्षा करने में समर्थ हो सकूँगा। इसलिए केवल एक नारी का होकर क्या मेरी दृष्टि सीमित नहीं हो जाएगी ?

सिद्धार्थ : (सोचते हुए) मैं समझता हूँ, नहीं होगी। क्या एक लहर के तट में लीन होने पर सागर में लहरों का अन्त हो जाता है ? मेरी दृष्टि में तुम्हारा व्यवहार सागर की भाँति होगा। तुम एक लहर को अपने में लीन कर असंख्य लहरों को तट तक ला सकोगे।

वर्धमान : किन्तु पिताजी ! इससे मेरे कर्मों का अन्त तो न होगा। मैं तपस्या द्वारा कर्म-बन्धन से मुक्त होना चाहता हूँ और यह राज-भवन छोड़ने पर सम्भव हो सकेगा। प्रकृति से मुझे बल मिलेगा। वायु की लहर जो सब स्थलों पर संचरित होती है, मुझे विश्व-प्रेम का सन्देश देगी और उसी से मानव-मात्र का कल्याण संभव होगा।

सिद्धार्थ : तो तुम विवाह भी नहीं करोगे और राज-भवन भी छोड़ दोगे ?

वर्धमान : आपसे ऐसी ही आज्ञा चाहता हूँ।

सिद्धार्थ : फिर मैं बार-बार सोचता हूँ कि उन राजाओं से क्या कहूँ जो प्रतिदिन तुम्हारे

विवाह के प्रस्ताव करते हुए प्रार्थनाएँ करते हैं, उस प्रजा से क्या कहूँ जो तुम्हारे संरक्षण में अपना योग-क्षेम समझती है, उस राजलक्ष्मी के संकेतों पर क्या कहूँ जो राजमुकुट से तुम्हारा अभिषेक करना चाहती है। और मैं अब वृद्धावस्था के क्षितिज पर डूबता जा रहा हूँ, शक्तिहीन होता जा रहा हूँ। क्या पुत्र का यह कर्त्तव्य नहीं है कि वह वृद्ध पिता को सहारा दे ?

[वर्धमान चुप रहते हैं।]

सिद्धार्थ : बोलो, चुप क्यों हो ? तुम्हारे जैसा सात्त्विक नरेश पाकर क्या प्रजा सत्पथ पर नहीं चलेगी ? क्या तुम्हारी राजनीति से राज्य के सब अनर्थ समाप्त नहीं हो जाएँगे ? तुम्हारे शासन में किसको पीड़ा होगी ? तुम अहिंसा को अपना राज-धर्म बना सकते हो। अपनी शक्ति से तुम शत्रुओं का दमन कर प्रजा क्या—मानव-मात्र की रक्षा कर सकते हो। संसार को सुखी बनाकर तुम स्वयं सुखी हो सकते हो।

वर्धमान : किन्तु तपस्या में जो सुख है, पिताजी ! वह राज्य-शासन में नहीं। राज्य-शासन में वैमनस्य हो सकता है, तपस्या में सबसे मित्रता; सिंह और गाय, नकुल और सर्प, विडाल और मूषक सबसे समान सखा-भाव; न राग से विचलित, न द्वेष से कुपित; सदैव ही चित्त में प्रमुदित।

सिद्धार्थ : तपस्या तो सब साधनाओं से महान् है। और मैं कहता हूँ कि तुम अवश्य तपस्या करने जाओ और उस सुख को प्राप्त करो। भगवान् पार्श्वनाथ ने तीस वर्षों तक गृहस्थ-जीवन व्यतीत किया, सत्तर वर्षों तक साधु-जीवन में मानव-कल्याण का सन्देश दिया और सौ वर्ष की अवस्था में सम्मेद शिखर पर तप करने के पश्चात् निर्वाण-पद प्राप्त किया। इसी प्रकार तुम अवश्य तपस्या करने जाओ और निर्वाण-सुख को प्राप्त करो, किन्तु कुछ वर्ष शासन करने के उपरान्त। राज्य-शासन से तुम्हें मनुष्य के स्वभाव, व्यवहार, आचरण आदि समझने का अवसर मिलेगा जिससे तुम मानव-कल्याण का मार्ग सरलता से खोज सकते हो। फिर मेरी यह आन्तरिक अभिलाषा है कि मैंने जिस प्रकार स्वामी पार्श्वनाथ के आदर्शों का पालन करते हुए नगर-लक्ष्मी की सेवा की है, उसी भाँति तुम भी इस वंश-गौरव के यशस्वी प्रतीक बनो। तुम पिता नहीं हो, इसलिए पिता की आकांक्षाओं को नहीं समझते। तुम्हारी माता ने तुम्हारे अनुरूप एक राज-पुत्री का चयन किया है। उसका नाम यशोदा है, जो सब प्रकार से हमारी कुल-वधू बनने के योग्य है। तुम तो ज्ञानी हो। यह अवश्य जानते हो कि माता के हृदय को पीड़ा पहुँचाना भी दारुण हिंसा है। और तुम अहिंसा का प्रचार करना चाहते हो। माता की ममता तो हमारे राज्य में बहने वाली गंडकी की वह धारा है जो अपने अमृतमय नीर से सबको तृप्त करती है।

[नेपथ्य में हलचल]

सिद्धार्थ : यह कैसा शब्द है ?

[एक परिचारिका का शीघ्रता से प्रवेश]

परिचारिका : महाराज की जय ! महारानी अश्रु बहाते-बहाते संज्ञाशून्य हो गईं।

सिद्धार्थ : यह वाणी की हिंसा है। शीघ्र उपचार किया जाए। हम अभी आते हैं।

वर्धमान : पिताजी ! मेरी वाणी से किसी प्रकार की हिंसा न हो, इसलिए मैं माँ के आग्रह और आपके आदेश से विवाह करूँगा। मैं भी माँ की सेवा में अभी चलता हूँ।

सिद्धार्थ : साधु ! साधु ! वर्धमान ! तुम यशस्वी बनो ! अपनी माँ को चैतन्य बनाकर यह शुभ सूचना दो। तुम जैसे आज्ञाकारी पुत्र से यही आशा थी। चलो, तुम्हारी माँ के पास चलें।

[शीघ्रता से प्रस्थान। वर्धमान भी गंभीर मुद्रा में पिताजी के पीछे-पीछे जाते हैं।]

[धीरे-धीरे परदा गिरता है।]

चौथा अंक

[परदा उठने के पूर्व नेपथ्य से चर्या-पाठ]

जे य कंते पिए भोगे लद्धे वि पिट्ठिकुव्वई।
साहीणे चयइ भोए से हु चाइ त्ति वुच्चई।।

(दशवैकालिक 2-1)

—अर्थात् जो व्यक्ति सुन्दर और प्रिय भोगों को पाकर भी उनसे पीठ फेर लेता है, सम्मुख आए हुए भोगों का त्याग कर देता है, वही त्यागी कहलाता है।

[**स्थान :** राजमहल के बाहरी भाग में कुमार वर्धमान का क्रीड़ा-कक्ष।
समय : प्रातःकाल की सुहावनी वेला।
स्थिति : कुमार वर्धमान का यह क्रीड़ा-कक्ष एक सरोवर के किनारे बना हुआ है। इसकी सजावट में शिल्पी ने समस्त सौन्दर्य का आह्वान किया है। स्थान-स्थान पर नृत्य करते हुए मयूरों की आकृतियाँ हैं जो सजीव-सी लगती हैं। प्रकृति के अनेक चित्र दीवालों पर खिंचे हुए हैं। सजे हुए बैठने के स्थान। वातायनों पर पाट-वस्त्र। नीचे मखमली बिछावन। सूर्य की कोमल सुनहली किरणें वातायन से आ रही हैं जैसे वे कुमार वर्धमान और कुल-वधू यशोदा के दाम्पत्य जीवन को सुनहले रंग से रँगना चाहती हैं।

इस समय कुमार वर्धमान कक्ष में निर्विकार भाव से खड़े हुए हैं और यशोदा

उनकी आरती उतार रही है। आरती करने के बाद वह घुटनों के बल बैठकर हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम करती है।]

वर्धमान : (**हाथ बढ़ा कर**) उठो, यशोदा ! उठो ! हमारे वैवाहिक जीवन की यह गतिशील धारा कब तक प्रवाहित होती रहेगी ?

यशोदा : प्रभु ! जब तक हमारे उपवनों में वसन्त की परिक्रमा है, उसमें कोकिल का कूजन है और उस कूजन में माधुर्य की क्षण-क्षण में बहती हुई मंदाकिनी है तब तक हमारे सुख की आकाश-गंगा की ज्योति कभी मन्द नहीं होगी।

वर्धमान : किन्तु सुख की ज्योति तो कुछ दिनों बाद मन्द हो जाती है।

यशोदा : यह सुख अनेक रूप धारण करता है, प्रियतम ! जिस प्रकार आकाश-गंगा में अनेकानेक नीहारिकाएँ होती हैं और नीहारिकाओं की संख्या गिनी नहीं जा सकती, उसी प्रकार सुख के रूपों की संख्या गिनना सम्भव नहीं है।

वर्धमान : और हमारे विवाह में इतने उत्सवों की क्या आवश्यकता थी ?

यशोदा : प्रभु ! जब सूर्योदय होता है तो पूर्व दिशा में भाँति-भाँति के रंगों के वितान क्यों सुशोभित हो जाते हैं ? उषा नव वधू की भाँति क्यों सज-सँवर जाती है ? शीतल, मन्द, सुगन्ध समीर क्यों परिचारिका की भाँति प्रत्येक पुष्प से आज्ञा माँगती है ? विहगों का समूह एक दिशा से दूसरी दिशा में उड़कर क्यों मंगल सन्देश वितरित करता है ? सुख की लहर में हँसी के बुद्‌बुद् बिखरते हैं, प्रियतम !

वर्धमान : किन्तु ये बुद्‌बुद् जल्दी ही फूट जाते हैं, यशोदा !

यशोदा : उनके फूटते ही नये बुद्‌बुद् जन्म लेते हैं, प्रभु ! और उनका यह क्रम अनन्त काल से चलता है और चलता रहेगा।

वर्धमान : किन्तु यह सुख, यह हँसी क्या हमें किसी भ्रम में नहीं डाल देती ?

यशोदा : सुख तो सुख है, और हँसी भी हँसी है। ओह प्रियतम ! जब हमारे विवाह के सम्बन्ध में पूज्य वैशाली सम्राट् की स्वीकृति पहुँची तो सारे नगर में सुख और आनन्द की धारा सहस्रमुखी होकर फूट निकली। अहा ! कितना सुख, कितना आनन्द, कितनी शोभा ! घर-घर में मंगल त्यौहार ? गली-गली में कुंकुम बिखर गया ! आपकी ओर से विलम्ब देखकर हम सब तो निराश हो रहे थे। हम लोग सोचते थे कि जम्बू द्वीप में एक-से-एक गुणशीला सुन्दरियाँ हैं, उनके बीच में मेरी क्या गिनती, किन्तु सुख और आनन्द का प्रवाह तो मेरे नगर में बहना था—मेरे हृदय में बहना था। और उस सुख के प्रवाह ने मुझे आपके चरणों तक पहुँचा दिया।

वर्धमान : तुम्हारे सुख से मैं भी सुखी हूँ, यशोदा ! किन्तु मैं समझता हूँ कि तुमसे विवाह कर मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है।

यशोदा : अन्याय कैसा, देव ! यह कहिए कि आपने मुझे कितना सौभाग्यशालिनी बनाया है ! आपने मेरे साथ विवाह करने की स्वीकृति देकर मेरे जन्मान्तर के मनोरथ पूरे किए हैं। मैंने स्वामी आदिनाथ के चरणों में न जाने कितनी पुष्पांजलियाँ अर्पित

कर प्रार्थना की कि मुझे आपकी सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हो और स्वामी आदिनाथ ने मेरी प्रार्थना स्वीकार की। अब मैं आपकी हूँ, आप मेरे हैं। जब मैं यह सोचती हूँ तो मेरा मन उसी प्रकार नृत्य करने लगता है जिस तरह इस कक्ष में यह **(मयूर को संकेत करते हुए)** मयूर नृत्य कर रहा है। स्वामी आदिनाथ की बड़ी कृपा है कि मेरी प्रार्थना स्वीकार हो गई।

वर्धमान : तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार हुई, यह अच्छा हुआ या बुरा, यह तो स्वामी आदिनाथ ही जानें। मैं कुछ नहीं समझ सका। किंशुक वृक्ष के फूल लाल होते हैं। यह कौन जानता है कि फूलों की लालिमा उसका शृंगार है या उसके हृदय में लगी हुई आग है।

यशोदा : लालिमा तो अनुराग का रंग है, स्वामी ! पूर्व में उषा आती है तो जैसे वह सिन्दूर से शृंगार कर आकाश पर अवतरित होती है। मेरी आरती के थाल में अग्नि तक लाल रंग धारण कर आपकी परिक्रमा करती है।

वर्धमान : किन्तु वह जलती भी तो है।

यशोदा : देवता के अभिनन्दन में जलना भी सौभाग्य की बात है।

वर्धमान : अभिनन्दन चाहे जैसा हो किन्तु उस जलने में धीरे-धीरे स्नेह भी कम हो जाता है और जब स्नेह समाप्त हो जाता है यह अभिनन्दन की आरती भी बुझ जाती है।

यशोदा : मुझे विश्वास है, स्वामी ! यह स्नेह कभी कम न होगा और जिस स्नेह की स्वीकृति मेरी उपासना से हुई है वह तो अटल ध्रुव नक्षत्र की भाँति जगमगाता रहेगा और सुख के सप्तऋषि उसकी परिक्रमा करते रहेंगे।

वर्धमान : किन्तु ध्रुव नक्षत्र तो बिना किसी इच्छा के आकाश में स्थिर है, यशोदा !

यशोदा : यह कौन जानता है कि किसके मन में क्या इच्छा है ! मैं तो अपनी इच्छा जानती हूँ—जीवन भर आपकी सेवा करना।

वर्धमान : और यदि मैं तुमसे सेवा न लेना चाहूँ तो ?

यशोदा : आराध्य कब सेवा लेना चाहता है, यह तो उपासक ही है जो सेवा में सुख मानता है। इधर देखिए, **(वातायन की ओर ले जाती हैं)** यह कितना सुन्दर सरोवर है ! प्रभात-किरणों में ये कमल कितने सुहावने लगते हैं ! भौंरे गूँज-गूँज कर जैसे उनकी विरुदावलियाँ गा रहे हैं। कमल को क्या चिन्ता कि भौंरे उसके पास आते हैं या नहीं। ये भ्रमर ही हैं जो कमल की उपासना करने के लिए न जाने कहाँ-कहाँ से आ जाते हैं।

वर्धमान : ये रस के लोभी हैं, यशोदा ! कमल-कोश में प्रवेश कर रस-पान करते हैं और संध्या होने पर कभी-कभी कमल में बन्दी भी हो जाते हैं।

यशोदा : किन्तु वे मुक्त होने के लिए कमल का कोश काटते नहीं, प्रभु !

वर्धमान : वे न काटें, वे भ्रमर-मात्र ही तो हैं किन्तु यदि मनुष्य चाहे तो अपना बन्धन काट सकता है।

यशोदा : हाँ, मनुष्य अपने को बुद्धि का विधाता समझता है।

वर्धमान : विधाता हो या अनुचर किन्तु मनुष्य के पास विवेक और सन्तुलन है। वह अपना बन्धन इच्छानुसार काट सकता है और मुक्त हो सकता है ।

यशोदा : हाँ, मुक्त होना तो बुरी बात नहीं है ।

वर्धमान : तो यशोदा ! यदि मैं मुक्त होना चाहूँ तो ? (**प्रश्न-मुद्रा**)

यशोदा : (**कुतूहल से**) आप ? आप मुक्त होना···चाहेंगे ?

वर्धमान : हाँ, यशोदा ! पिछले अनेक वर्षों से मैं ऐसा सोच रहा हूँ । यशोदा ! तुम बुरा मत मानना । मैं विवाह के बन्धन में आना ही नहीं चाहता था । यह तो माँ का आग्रह और पिता का आदेश था कि मैं विवाह करूँ । और माता-पिता की आज्ञा मानना आवश्यक था । जब मैंने विवाह की बात नहीं मानी तो माता जी संज्ञा शून्य हो गईं । पिताजी ने कहा कि तुम्हारी अस्वीकृति की यह वाणी ही एक हिंसा है जबकि तुम सबको अहिंसा का उपदेश देते हो । मैं निरुत्तर हो गया । मेरे द्वारा किसी प्रकार की कोई हिंसा न हो, इसलिए मुझे विवाह करना पड़ा ।

यशोदा : और विवाह करने के बाद यदि आप बन्धनों से मुक्त होकर मुझे कष्ट भोगने के लिए छोड़ गए तो क्या यह हिंसा नहीं होगी ? बोलिए !

वर्धमान : तुम्हें कष्ट भोगने की मनोवृत्ति से दूर होना होगा ।

यशोदा : और यदि न होऊँ तो ? इस विवाह के लिए मैंने कितने व्रत-उपवास किए । प्रभु पार्श्वनाथ की प्रतिमा के पार्श्व में बैठकर कितनी प्रार्थनाएँ कीं कि मुझे अपने जैसा ही पति देना और उन्होंने अपने जैसा ही पति आपके रूप में दे दिया ।

वर्धमान : और मैंने भी तो उनसे प्रार्थना की थी कि अपने समान मुझे भी मुक्त बना देना । मैं कल्याणकारी धर्म का अभ्यास करूँ, जिससे मेरा पुनर्जन्म न हो ।

यशोदा : तो समय आने पर आपकी भी प्रार्थना सुनी जाएगी ।

वर्धमान : मैं तो अभी से मुक्त होना चाहता हूँ, यशोदा ! संसार में जितनी वस्तुएँ बन्धन में डालने वाली हैं, उनसे मुक्ति चाहता हूँ ।

यशोदा : मैं आपको बन्धन में नहीं डालूँगी, देव !

वर्धमान : यह तो मेरा मन ही जानता है कि बन्धन क्या है और उससे किस प्रकार मुक्ति मिलेगी । इस संसार में सम्पत्ति और सौन्दर्य सबसे बड़े बन्धन हैं ।

यशोदा : और मैं समझती हूँ कि बन्धन ही मुक्ति के साधन हैं । जिस प्रकार एक शक्तिशाली पुरुष कील से पीट कर कील को निकालता है, उसी प्रकार एक कुशल पुरुष इन्द्रियों के द्वारा ही इन्द्रियों का दमन करता है ।

वर्धमान : यह तो तुम तत्त्व की बात कहती हो, यशोदा ! किन्तु मैंने अभी से बन्धन से मुक्त होना आरम्भ कर दिया है ।

यशोदा : किस प्रकार, स्वामी ?

वर्धमान : तुम बुरा तो नहीं मानोगी, यशोदा !

यशोदा : नहीं, प्रियतम ! आप जिस कार्य को करेंगे, उससे तो मुझे प्रसन्नता ही होगी । बुरा मानने की बात ही क्या है ?

वर्धमान : तो सुनो ! विवाह के अवसर पर तुम्हारे पिताजी ने जो आकर्षक और बहुत

बड़े मूल्य का रत्नहार भेंट किया था, उसका मैंने विसर्जन कर दिया।

यशोदा : विसर्जन कर दिया ? क्यों ? कहाँ ? कैसे ?

वर्धमान : (**सरोवर की ओर संकेत करते हुए**) इसी सरोवर में। कल रात मैं उसे बड़ी देर तक देखता रहा। उसके रत्न अनुराधा नक्षत्र की तारिकाओं की भाँति ज्योति-पूर्ण किरणों से जगमगा रहे थे। लगता था कि ये किरणें ऐसी रश्मि-रज्जुएँ हैं जो मेरे कंठ में अपना पाश डाल देंगी। मैंने इस वातायन से उस रत्नहार को सरोवर में विसर्जित कर दिया।

यशोदा : ओह ! वह कितना सुन्दर रत्नहार था ! वह तो मेरे पिताजी रत्न द्वीप के सागर-तट से आपके लिए ही लाए थे। एक-एक रत्न बड़े मूल्य का था।

वर्धमान : मूल्य होता भी है और नहीं भी होता, यशोदा ! यह तो दृष्टि का लक्ष्य है और संसार में प्रत्येक वस्तु का लक्ष्य होता है। जो वस्तु जहाँ से आती है, उसे वहीं लौट जाना चाहिए। जल से जो रत्न उत्पन्न हुए, उन्हें जल में ही लौट जाना चाहिए।

यशोदा : तब तो मुझे भी अपने माता-पिता के पास लौट जाना चाहिए। ओह ! मैं बहुत अशान्त हो गई हूँ, प्रियतम ! यदि दृष्टि की ऐसी ही गति रही तो किसी दिन मैं भी विसर्जित हो सकती हूँ।

वर्धमान : विसर्जित कौन नहीं होता, यशोदा ? धन-वैभव, रूप-सौन्दर्य अपना समय समाप्त कर सभी विसर्जित हो जाते हैं। अन्त में सत्य ही रहता है। संसार को देखकर जिज्ञासा उत्पन्न होती है, जिज्ञासा से ज्ञान बढ़ता है, ज्ञान से प्रज्ञा जाग्रत होती है और प्रज्ञा से सत्य-बोध होता है। यही सत्य-बोध वास्तव में अन्त तक रहता है। जिस प्रकार एक कुशल धनुर्धारी अपने बाण से बाल के अग्रभाग को बेध देता है, उसी प्रकार साधक वस्तुस्थिति को बेध कर सत्य को जान लेता है।

यशोदा : (**विह्वल होकर**) स्वामी !

वर्धमान : और संसार की आयु उसी प्रकार क्षीण होती जाती है जिस प्रकार अंजुलि से बूँद-बूँद जल टपक जाता है। ये वैभव उसी प्रकार बिखर जाते हैं, जिस प्रकार वायु का प्रबल झोंका सूखे पत्तों को बिखरा देता है।

यशोदा : प्रभु पार्श्वनाथ जी ने भी संभवतः ऐसा ही उपदेश दिया था।

वर्धमान : इस सन्दर्भ में उन्होंने यह भी कहा था कि जिस प्रकार महाजल की धारा सरकंडों से बने पुल को बहा ले जाती है उसी प्रकार मृत्यु भी एक ही आघात में जीवन को बहा ले जाती है।

यशोदा : तो इसका उपाय क्या है, स्वामी ?

वर्धमान : जिस प्रकार यंत्री नहर के पानी को ले जाता है, बाण बनाने वाला बाणों को ठीक करता है, विश्वकर्मा लकड़ी को ठीक करता है, उसी प्रकार सुधीजन अपनी इन्द्रियों का दमन करते हैं।

यशोदा : क्या गृहस्थाश्रम में रहकर इन्द्रियों का दमन नहीं हो सकता ?

वर्धमान : नहीं, यशोदा ! काँटेदार करील वृक्ष की डालियों से जिस प्रकार वस्त्र

निकालना कठिन होता है, उसी प्रकार गृहस्थाश्रम में इन्द्रियों से मुक्ति नहीं मिल पाती। जिस प्रकार आकाश में पक्षियों के उड़ने की दिशा नहीं जानी जाती, उसी प्रकार इन्द्रियों की गति भी समझ के वाहर है।

यशोदा : वास्तव में आपकी वाणी विश्वास उत्पन्न करती है किन्तु अभी तो आपने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया है, इससे मुक्त होने का समय तो अभी नहीं है।

वर्धमान : पहले करने योग्य काम पीछे नहीं करना चाहिए, यशोदा! मन्द गति के योग्य समय शीघ्रगामी होता है और शीघ्र गति के योग्य समय मन्दगामी होता है। यह विवेक से ही संतुलित होता है और उसी में सुख है।

यशोदा : आपको किस सुख की कमी है? आप चारों दिशाओं के विजेता, जम्बू द्वीप के ईश्वर और रथ पति चक्रवर्ती हैं।

वर्धमान : किन्तु मैं पृथ्वी और अग्नि की भाँति न तो किसी से प्रेम करता हूँ और न किसी मे द्वेष।

यशोदा : (**मुस्कराकर**) मुझ से भी नहीं?

वर्धमान : यशोदा! इस समय मैं वर्षा ऋतु में नीड़ में बैठे हुए पक्षी के समान हूँ।

यशोदा : तो वर्षा ऋतु बीत जाने के अनन्तर आप नीड़ का परित्याग भी कर सकते हैं।

वर्धमान : यही सोच रहा हूँ। जैसे वायु आकाश में फैले हुए बादलों को हटा देती है, उसी प्रकार आने वाला समय मेरे समस्त बन्धनों को हटा देगा। मेरा मन मुक्त होकर आनन्द से मिल जाएगा, जैसे गंगा की धारा सागर में जाकर मिल जाती है।

यशोदा : तब मेरा अलंकार धारण करना, सुन्दर वस्त्र पहनना, माला धारण करना, अपने चरणों को लाक्षा से रंजित करना व्यर्थ है।

वर्धमान : यह तुम्हारी इच्छा, मेरे संन्यास-ग्रहण में इनका कोई स्थान नहीं है।

यशोदा : तब आप यह भी सुन लीजिए कि जब आप संन्यास ग्रहण करेंगे तो मैं भी आपके साथ संन्यासिनी हो जाऊँगी।

वर्धमान : तुम्हें बहुत कष्ट होगा, यशोदा! यह सुकुमार शरीर तपस्या के कष्टों को कैसे सहन करेगा?

यशोदा : यदि आपको कष्ट नहीं होगा तो मुझे क्या कष्ट होगा? मेरी धारणा आपके विचारों की अनुगामिनी होगी।

वर्धमान : साधु! साधु! यशोदा! जब तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट ही नहीं होगा तो फिर पिताजी के कथनानुसार हिंसा की बात ही नहीं उठेगी।

यशोदा : आपके प्रत्येक कार्य में मेरी सहमति है। कहो तो अग्नि के समक्ष साक्षी दूँ!

वर्धमान : नहीं, मुझे तुम्हारे वचनों पर विश्वास है।

[इसी समय नेपथ्य में हलचल होती है।]

यशोदा : (**चौंक कर**) यह कैसी अशान्ति?

[नेपथ्य में परिचारिका का स्वर—क्या मैं प्रवेश कर सकती हूँ, स्वामिनी ?]

यशोदा : प्रवेश हो।

[एक परिचारिका का प्रवेश]

परिचारिका : स्वामी की जय ! स्वामिनी की जय ! निवेदन है कि राज्य के दण्डाधिकारी ने एक स्त्री को बन्दी किया है। उसने सरोवर में स्नान करते हुए एक रत्नहार उठा लिया है। यह रत्नहार स्वामी का है, ऐसा दण्डाधिकारी कहते हैं।

वर्धमान : यह वही रत्नहार तो नहीं है जो मैंने सरोवर में विसर्जित किया था।

यशोदा : वही होगा, स्वामी !

वर्धमान : (**परिचारिका से**) दण्डाधिकारी और उस स्त्री को भीतर भेजो।

परिचारिका : जो आज्ञा। (**प्रस्थान**)

वर्धमान : सम्पत्ति का यह स्वभाव है कि जितना ही उसका तिरस्कार करो, वह उतनी ही पास आती है।

यशोदा : और मेरे पूज्य पिताजी ही नहीं, उनकी दी हुई वस्तुएँ भी आपसे इतना प्रेम करती हैं कि वे आपका साथ नहीं छोड़ना चाहतीं।

वर्धमान : किन्तु साथ छूटना तो संसार का नियम है।

[सैनिक वेश में दंडाधिकारी और एक सामान्य स्त्री का प्रवेश]

दंडाधिकारी : (**सिर झुकाकर**) स्वामी की जय ! स्वामिनी की जय ! निवेदन है कि मैं प्रातः सरोज सरोवर की सुरक्षा के लिए वहाँ पहुँचा। देखा कि यह स्त्री स्नान कर छिपते हुए भागने का प्रयत्न कर रही है। जब मैंने इसे रोककर इसके वस्त्रों की जाँच की तो इसके पास से यह रत्नहार प्राप्त हुआ। एक बार मैंने इस रत्नहार को स्वामी के कंठ में देखा था। मैंने अनुमान किया कि स्वामी स्नान करने के लिए सरोज सरोवर गए हों और वहाँ यह रत्नहार उठाना भूल गए हों। यह स्त्री इसे चुराकर भाग रही थी। मैंने इसे बन्दी बना लिया। यह आपकी सेवा में उपस्थित है। यह रत्नहार है। (**सामने की पीठिका पर रत्नहार रखता है**) अब आपकी जैसी आज्ञा हो !

यशोदा : स्वामी का ही यह रत्नहार है।

वर्धमान : हाँ, यह वही रत्नहार है।

दंडाधिकारी : तब तो इस स्त्री ने निश्चय ही चोरी की है।

वर्धमान : (**बंकिम भौंह करते हुए**) चोरी ? तुमने चोरी की है, भद्रे ?

स्त्री : (**सिसकते हुए**) मैं निरपराध हूँ, स्वामी !

यशोदा : दंडाधिकारी ने यह रत्नहार तुम्हारे पास पाया और तुम निरपराध हो ? और तुम रो रही हो ! अपने आँसुओं से तुम अपने अपराध का प्रक्षालन नहीं कर सकतीं। तुम कौन हो ? अपना परिचय दो।

स्त्री : (**सिसकते हुए**) मेरा नाम विशाखा है, स्वामिनी ! मैं क्षत्रिय कुडग्राम में ही निवास करती हूँ। मेरे पति···एक···सामान्य श्रमिक···थे। गत वर्ष उनका देहावसान···हो···गया··· (**अधिक सिसकियाँ लेती है।**)

यशोदा : शान्त ! शान्त ! मुझे इस बात से हार्दिक दु:ख है। पति-विहीन नारी जल-विहीन सरिता होती है, किन्तु इसका अपराध से क्या सम्बन्ध है।

स्त्री : महारानी ! मेरे तीन बच्चे हैं। तीनों भूख से तड़पते रहते हैं। (**सिसकियाँ लेती है**) मेरे पति ने कुछ भी धन नहीं छोड़ा जिससे मैं अपने बच्चों का पोषण कर सकूँ। मैं उन्हें भूख से तड़पते हुए नहीं देख सकती। (**सिसकियाँ**)

वर्धमान : तुमने राज्य को इसकी सूचना क्यों नहीं दी ?

स्त्री : महाराज ! मेरा साहस नहीं हुआ। मुझ अकिंचन स्त्री को राजद्वार तक कौन पहुँचने देता ?

वर्धमान : नहीं, राजद्वार के समक्ष प्रजा का प्रत्येक व्यक्ति पहुँच सकता है।

स्त्री : मेरे पड़ोसियों ने मुझे रोक दिया। कहा—तेरे पहुँचने से राजद्वार अपमानित होगा और तुझे कड़ा दंड मिलेगा। वे लोग मेरे पति से ईर्ष्या करते थे, कदाचित् इसीलिए हम लोगों का तड़पना उन्हें अच्छा लगता था।

वर्धमान : (**दंडाधिकारी से**) दंडाधिकारी ! ऐसे व्यक्तियों को पहचान कर मेरे समक्ष उपस्थित किया जाए।

दंडाधिकारी : जो आज्ञा, स्वामी !

यशोदा : इस समय तुम्हारे बच्चे कहाँ हैं ?

स्त्री : (**फिर सिसकियाँ लेती है**) मैं अपने बच्चों को भूख से तड़पता हुआ नहीं देख सकती थी, महारानी ! इसलिए आज प्रातः उन्हें एक धनी परिवार के द्वार पर छोड़कर मैं आत्महत्या करने के विचार से सरोज सरोवर पर गई।

यशोदा : आत्महत्या करने के विचार से ?

स्त्री : महारानी ! क्षमा करें। माता का हृदय निरीह बच्चों का कष्ट सहन नहीं कर सकता। मैं आत्महत्या का पाप करने के लिए ही सरोवर पर गई थी, स्नान करने के लिए नहीं। वहीं मुझे यह रत्नहार मिला। मैं समझ गई कि यह राज-परिवार का ही हार है। मरने से पहले मुझसे कोई पाप न हो, इसलिए इसे मैं राज-भवन में पहुँचाने के लिए ही आ रही थी कि दंडाधिकारी ने मुझे बन्दी बना लिया। मुझे तो राज-भवन में आने का साहस ही नहीं हो रहा था तो मैंने दंडाधिकारी से ही कहा कि यह रत्नहार राज-भवन में पहुँचा दीजिए किन्तु मेरी प्रार्थना न सुनकर उन्होंने मुझे बन्दी बना लिया।

दंडाधिकारी : सभी अपराधी सत्य नहीं बोलते, श्रीमन् ! मैंने सोचा कि पकड़ लिए जाने पर ही यह अपनी मुक्ति के लिए प्रार्थना कर रही है।

वर्धमान : मुक्ति के लिए प्रार्थना कर रही है ! वह जानती भी है कि मुक्ति का क्या अर्थ है ?

स्त्री : मैं कुछ नहीं जानती, महाराज ! (**सिसकियाँ**) जो चाहें मुझे दण्ड दें। किन्तु यह

मेरा भाग्य है कि मुझे इस रत्नहार के कारण महाराज और महारानी के दर्शन एक साथ हो रहे हैं जो मेरे जीवन में कभी सम्भव नहीं था।

वर्धमान : तुम बुद्धिमती ज्ञात होती हो। (**दंडाधिकारी से**) ठीक है, दंडाधिकारी ! इस स्त्री के स्थान पर जाकर तुम इसके कथन की जाँच करो और यदि इसका कथन सत्य हो—जो होना चाहिए—तो इसके पुत्रों के पोषण की व्यवस्था की जाए। उनका पोषण राज्य की ओर से होगा। उन्हें संरक्षक-शाला में रखो।

दंडाधिकारी : जो महाराज की आज्ञा।

स्त्री : (**चरणों पर गिर कर**) महाराज ! महाराज ! आप कितने धर्मात्मा हैं। न्यायी, प्रजा-पालक, और दीनों का दुःख समझने वाले ! आप जन्म-जन्मान्तरों तक हमारे राजा रहें और हम आपकी प्रजा !

यशोदा : और दंडाधिकारी ! सुनो। यह रत्नहार महाराज के द्वारा परित्यक्त है, इसलिए इस रत्नहार के रत्नों को ऐसे परिवारों में वितरित कर दो जो अर्थाभाव से पीड़ित हैं। इस नारी को भी इस रत्नहार के रत्न प्राप्त हों।

दंडाधिकारी : जो आज्ञा, महारानी !

वर्धमान : (**यशोदा से**) साधु ! यशोदा ! तुमने यह निर्णय करके मुझे अपार सुख और संतोष दिया है। (**दण्डाधिकारी से**) दंडाधिकारी ! इस आज्ञा का शीघ्र पालन हो। और जिन रंक परिवारों को तुम इस रत्नहार के रत्न वितरित करोगे, उनकी सूची तुम भाण्डागारक को दोगे।

दंडाधिकारी : जैसी महाराज की आज्ञा। यदि आदेश हो तो भाण्डागारक ही इन रत्नों का वितरण करें। मैं आपके आदेश की पूर्ति के लिए वहाँ उपस्थित रहूँगा।

[पीठिका से रत्नहार उठा लेता है।]

स्त्री : महारानी धर्म की देवी हैं और महाराज धर्म के देवता !

[झुक कर प्रणाम करती है।]

दंडाधिकारी : (**स्त्री से**) चलो, बाहर चलो।

स्त्री : (**जाते हुए**) महाराज और महारानी की जय !

दंडाधिकारी : (**सैनिक ढंग से**) महाराज की जय ! महारानी की जय !

[महावीर वर्धमान और महारानी यशोदा अभय मुद्रा में हाथ उठाते हैं।]

वर्धमान : यह मेरी मुक्ति का मंगलाचरण है !

[परदा गिरता है।]

पाँचवाँ अंक

[परदा उठने के पूर्व नेपथ्य से चर्या-पाठ]

ण हि निरवेक्खो चाओ ण हवदि भिक्खुस्स आसव विसुद्धी।
अविसुद्धस्स य चित्ते कहं णु कम्मक्खओ विहिओ ॥
(प्रवचन सार 3-20)

—अर्थात् जब तक भिक्षु द्वारा निरपेक्ष त्याग नहीं होता, तब तक उसकी चित्त-शुद्धि नहीं होती है और जब तक उसका चित्त शुद्ध नहीं होता तब तक उसके द्वारा कर्मों का क्षय किस प्रकार हो सकता है ?

[**स्थान :** मोराक ग्राम
समय : संध्या-काल
स्थिति : एक वट-वृक्ष की छाया। स्थान सुनसान है। चारों ओर शांति का वातावरण। आस-पास लता-गुल्म हैं। एक सम भूमि पर महावीर वर्धमान संन्यासी के वेश में पद्मासन लगाए बैठे हैं। पास ही उनके भाई नन्दिवर्धन खड़े हैं।]

नन्दिवर्धन : तो तुमने संन्यास ले लिया ! तुम्हें खोजते-खोजते यहाँ पहुँचा हूँ। जहाँ-जहाँ पता लगता था, वहीं जाता था किन्तु ज्ञात होता था कि तुम वहाँ से भी अन्यत्र चले गए। कमरि ग्राम गया, वहाँ तुम नहीं थे। एक ग्वाले ने तुम्हें बहुत कष्ट दिया। वह तुम्हें अपने बैल सौंप गया, जब लौटा तो उसके बैल तुम्हारे पास नहीं थे। वे चरते हुए अन्यत्र चले गए और तुम अपने ध्यान में ही लीन थे। उसने जब पूछा तो तुमने कुछ उत्तर ही नहीं दिया। दूसरे दिन प्रातःकाल वे बैल लौटकर तुम्हारे पास आकर बैठ गए। जब उस ग्वाले ने अपने बैलों को तुम्हारे पास देखा तो उसे क्रोध आया कि बैलों का पता जानते हुए भी तुमने उसे व्यर्थ भटकाया। उसने तुम पर प्रहार किया और तुम चुपचाप बैठे रहे। उसके बाद तुम कोल्लाग ग्राम चले आए। जब मैं वहाँ पहुँचा तो ज्ञात हुआ तुम वहाँ से भी चले आए। अब यहाँ आकर मोराक ग्राम में तुम्हें पाया। तुमने ममता-मोह का इतना त्याग किया और संन्यास ले लिया ?

वर्धमान : भाई ! यही मेरा निश्चय था। यह तो कहें, संन्यास लेने में मुझे देर हो गई। मैंने माता-पिता को वचन दिया था कि जब तक आप दोनों जीवित हैं, तब तक संन्यास ग्रहण नहीं करूँगा। उनके जाने के बाद अब मैं स्वतंत्र हूँ। मैंने गृहस्थाश्रम छोड़ दिया।

नन्दिवर्धन : और यशोदा को भी छोड़ दिया ?

वर्धमान : वे तो मेरी इच्छा की अनुगामिनी रही हैं। वे कहती थीं कि मैं आपके साथ ही संन्यास ग्रहण करूँगी। वे अपने पिता के पास कुछ दिनों के लिए कलिंग चली

गईं। इसी बीच मैंने अनुभव किया कि मैं मुक्त हूँ और मैंने संन्यास ले लिया।

नन्दिवर्धन : यह अच्छा नहीं हुआ, वर्धमान ! जब वे कलिंग से लौटेंगी और तुम्हें राजभवन में न पाएँगी तो क्या दशा होगी उनकी, यह नहीं सोचा ? बड़े अहिंसा के प्रचारक हो ! उनको मर्मान्तक कष्ट देकर तुम किस अहिंसा की बात करोगे ?

वर्धमान : मैंने कहा न, भाई ! कि वे स्वयं संन्यास ग्रहण करेंगी । संन्यास ग्रहण करने पर हर्ष-विषाद, लाभ-हानि, जीवन-मरण के सम्बन्ध में विचार करने की मनोवृत्ति ही नहीं होगी ।

नन्दिवर्धन : तो तुमने अपने राजकीय कर्त्तव्यों से मुख मोड़ लिया । स्वयं संन्यासी बनकर अपनी पत्नी को भी संन्यासिनी बना दिया । क्यों ? महावीर वर्धमान ! क्या इसे तुम अपनी महावीरता समझते हो ? किस समय कौन-सा कार्य करना उचित है, यह भी नहीं समझते ?

वर्धमान : भाई ! उचित और अनुचित तो परिस्थितियों और दृष्टि पर निर्भर है । कोई सौ संकेतों और सौ लक्षणों से युक्त किसी अर्थ का एक ही अंग देखता है और यदि मैं एक संकेत और एक लक्षण में सौ अंग देख लेता हूँ तो क्या अनुचित करता हूँ ? मैं धर्म-रस से सुखी हूँ भाई ! श्रेष्ठ और उत्तम रस को पीकर मैं विष का सेवन नहीं करना चाहता ।

नन्दिवर्धन : मणि-कुंडल, राज्य-वैभव और सम्मान, कन्या-दारा जो सुख देते हैं, क्या वे विष की भाँति हैं ? यह जो तुम्हारा अभिषेक किया गया, यह विष के समान है ?

वर्धमान : रत्नहारों, चाँदी और सोने के पात्रों को त्याग कर जो मैंने मिट्टी का पात्र लिया है, वह मेरा वास्तविक अभिषेक है ।

नन्दिवर्धन : (परिहास से) हुँअ् ! राजमहल के स्वादिष्ट व्यंजनों को छोड़कर जो तुम भिक्षान्न पर निर्वाह करोगे, चीवर पहन कर जो तुम भिक्षा माँगोगे, उसमें कौन-सा सुख है ?

वर्धमान : मैं चीवर भी धारण नहीं करूँगा ! और जो तुम भिक्षान्न की बात कहते हो तो मुझे भिक्षा की भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि जिस अमृत का रस आज मैंने पाया है, वह सौ प्रकार के व्यंजनों में भी नहीं पा सका ।

नन्दिवर्धन : न पाया होगा किन्तु इसे मैं क्या कहूँ कि सिंहासन का स्वामी आज धूलि-धूसरित भूमि पर बैठा है । सरोवरों में विहार करने वाला राजकुमार आज बूँद-बूँद पानी के लिए तरसता है ।

वर्धमान : भाई ! जब मैंने अमृत पा लिया फिर पानी की क्या आवश्यकता ? संसार के सरोवर से उठाकर मैंने अपने-आपको निर्वाण की पुण्य भूमि पर उतार लिया है। जो अपने चित्त के विषय में आश्वस्त है, वह अनासक्ति के महत्त्व को जानता है ।

नन्दिवर्धन : और यदि चित्त ने विद्रोह किया तो ?

वर्धमान : जिसका चित्त पर्वत की भाँति अचल है, रंजनीय वस्तुओं से विरक्त है, उसका चित्त विद्रोह नहीं कर सकता और यदि विद्रोह करेगा तो मैं इसे उसी प्रकार वश में लाऊँगा जिस प्रकार अंकुश ग्रहण करने वाला महावत हाथी को वश

में लाता है। और आप जानते हैं कि कुछ वर्ष पूर्व मैंने एक मतवाले हाथी को वश में किया था।

नन्दिवर्धन : हाथी को तो कोई भी महावत वश में कर सकता है किन्तु वासनाओं को वश में लाने में बड़े-बड़े योगी भी असमर्थ हो जाते हैं।

वर्धमान : भाई ! मैंने वासनाएँ जला दी हैं। तृष्णा रूपी तीर अपने हृदय से निकाल दिया है। सभी प्रकार के भय का उन्मूलन कर दिया है। मैंने जन्म रूपी संसार में आग लगा दी है और कर्म-यंत्र को विघटित कर दिया है। अब मैं समझता हूँ कि मेरे लिए पुनर्जन्म की स्थिति नहीं होगी।

नन्दिवर्धन : पुनर्जन्म की स्थिति न हो किन्तु इस जीवन की क्या स्थिति होगी ? इस जीवन में तुम जंगल में फेंकी गई लकड़ी की भाँति वनों में वास करोगे।

वर्धमान : नहीं भाई ! मैंने इस संसार में न जाने कितने शरीर रूपी अनित्य गृह बनाए हैं। अब मैंने ऐसे गृहों की सभी कड़ियाँ तोड़ दी हैं। उनके शिखर टूट गए हैं। अब मेरे सामने राजगृह कहाँ है ?

नन्दिवर्धन : तो तुम वन-वन घूम कर क्या करोगे ?

वर्धमान : भाई ! वनों में सुन्दर शिखा वाले, सुरंग ग्रीवा वाले मयूर नृत्य करते हैं, कोकिल कूजन करती है, मृग विहार करते हैं, मखमली पृथ्वी पर हरी घास बिछी रहती है, जल में तरंगें उठती हैं। प्रकृति में कितनी शान्ति है, कितनी सुषमा है ! नवीन वर्षा से सिक्त हो वृक्षों के समूह पर्वतों पर लहराते हैं, जल ऐसे बरसता है जैसे कोई गीत गा रहा है। शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु पीकर नाना प्रकार के पक्षी योगियों को जगाते हैं, अपने कलरव से वे प्रकृति का अमृतरस मानस में भरते रहते हैं। ऐसा रस ईर्ष्या-द्वेष भरे नागरिकों में और स्वार्थ से भरे हुए संसार में कहाँ मिलेगा ?

नन्दिवर्धन : ऐसे संसार में भी तुम तीस वर्षों तक रहे !

वर्धमान : अवश्य रहा किन्तु जब मैं ऐसे संसार में निवास करता था तब मेरा शरीर भले ही राज-भवन में रहता हो, पर मेरा मन इसी वन में विहार करता था। भाई ! अब मैंने लोक-परलोक की तृष्णा को त्याग दिया है। अब संसार में मेरे किसी गृह का निर्माण नहीं होगा।

नन्दिवर्धन : फिर भी इस संसार में तृष्णा से मुक्ति नहीं है, वर्धमान !

वर्धमान : मुझे क्षमा करें ! मैं अपने अनुभव से कहता हूँ, काल के प्रहार से आयु गिरती जाती है। संसार मृत्यु से पीड़ित है, जरा से घिरा हुआ है। वह वैसा ही पीड़ित है जैसे कोई चोर राजदंड से भयग्रस्त रहता है। इसलिए मैंने दुःख-निरोध के लक्ष्य-बेध से तृष्णा को समाप्त कर दिया है। व्यक्ति तो क्षण-क्षण में परिवर्तित होता रहता है। मुझे ही देखिए, मैं पहले की भाँति नहीं हूँ। भाई ! अन्त में मैं यही कहना चाहता हूँ कि मैं न तो मृत्यु का अभिनन्दन करता हूँ, न जीवन का। अहिंसा में स्थिर रहते हुए मैं अपने समय की प्रतीक्षा करता हूँ।

नन्दिवर्धन : तो यह तुम्हारा अन्तिम निर्णय है कि तुम कुण्डग्राम नहीं चलोगे।

वर्धमान : भाई, मुझे क्षमा करें ! इस समय तो नहीं चल सकूँगा। मैं कभी कुण्डग्राम अवश्य आऊँगा। राज्य-शासन करने के लिए नहीं, भिक्षा माँगने के लिए। मेरे लिए किसी स्थान में आने के लिए किसी प्रकार की रोक नहीं है।

नन्दिवर्धन : अच्छी बात है। तो अब मैं लौट जाता हूँ। देखूँगा कि तुम अपने भविष्य-जीवन में माया-मोह से कहाँ तक दूर रहते हो।

[नन्दिवर्धन महावीर वर्धमान को घूरते हुए जाते हैं। उनके जाते ही दूसरी ओर से नेपथ्य में वीणा और मृदंग की ध्वनि आती है। दूसरे ही क्षण तीन सुन्दरियाँ क्रमशः नृत्य करते हुए आती हैं। ये तीनों भिन्न-भिन्न वेश-भूषा की हैं। मानो सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण स्त्री-वेश धारण कर महावीर वर्धमान को उनको साधना से विरत करने के लिए एक साथ आ गए हैं। पहली सुन्दरी का नाम है—सुप्रिया। यह सतोगुणी है। श्वेत रंग की साड़ी, कंठ में मुक्ता-हार, कटि में किंकिणी और पैरों में नूपुर। माथे पर श्वेत चन्दन की पत्रावलि और श्वेत अंगराग। हाथों में हीरक-जटित कंकण और माथे पर बेंदी। दूसरी सुन्दरी का नाम है—रंभा, जो रजोगुणी है। लाल रंग की साड़ी और समस्त परिधान अरुण वर्ण के ही हैं। कंठ में माणिक के आभूषण, हाथों में विद्रुम जटित कंकण, किंकिणी और नूपुर, माथे पर केसर की पत्रावलि, बीच में अरुण बिन्दु, माथे पर माणिक की बिन्दी। तीसरी सुन्दरी का नाम तिलोत्तमा है, जो तमोगुणी है। नीले रंग की साड़ी और अन्य परिधान भी श्याम और नील वर्ण का है। कंठ और हाथों में नीलमणि के आभूषण, माथे पर कस्तूरी बिन्दु, नेत्र में काजल, कपोलों पर तिल, नीलम की बेसर और कुंडल। सभी की कुंतल-राशि में फूल-मालाएँ हैं। सुप्रिया के केशों में हरसिंगार, रंभा के केशों में पाटल और तिलोत्तमा के केशों में नील कमल।

सुन्दरियाँ नाना प्रकार के हाव-भाव करती हैं किन्तु महावीर वर्धमान ध्यानस्थ होकर आँखें बन्द किए बैठे हैं। सुन्दरियाँ नृत्य करते हुए परिहास और व्यंग्य की मुद्राएँ बनाती हैं और ध्यानस्थ वर्धमान की आकृति की नकल करती हैं। अन्त में थक कर महावीर वर्धमान के दाएँ-बाएँ और सामने बैठ जाती हैं।]

सुप्रिया : रंभा ! हम लोग नृत्य करते-करते थक गईं किन्तु इन महात्मा के ध्यान की मुद्रा ही नहीं टूटी। देवेन्द्र भी हम लोगों के नृत्य से भाव-विभोर हो जाते किन्तु इन्होंने हमें देखा भी नहीं।

रंभा : हाँ, सुप्रिया ! बड़े-बड़े मुनियों के नेत्र हमारे नृत्य की गति के साथ घूमते हैं किन्तु इनके नेत्र तो जैसे सीपी-सम्पुट की तरह खुलते ही नहीं। बड़े तपस्वी हैं। क्यों तिलोत्तमा ! तुम तो बहुत अच्छा नृत्य करती हो। हो गई न तुम्हारे नृत्य की परीक्षा ?

तिलोत्तमा : हमारे नूपुरों में स्वर्गीय संगीत है किन्तु जिसके कानों में सुनने की शक्ति भी नहीं है, वे नूपुर-नाद को क्या समझेंगे ?

सुप्रिया : हमारा चन्द्र-वदन यदि उनके हृदय में मदन की सृष्टि नहीं कर सका तो मैं

कहूँगी कि मदन मदन नहीं है, संसार का एक भिक्षुक है।

रंभा : स्त्री के समक्ष तो प्रणय-भिक्षा में प्रत्येक पुरुष भिक्षुक बन जाता है, ये महात्मा भिक्षुक लग कर भी भिक्षुक नहीं हैं।

तिलोत्तमा : हमारे इन आभूषणों से तो अन्धकार में भी प्रकाश हो जाता है किन्तु यहाँ तो अन्धकार ही अन्धकार है। (**हाथ जोड़कर ऊपर देखते हुए**) हे पार्श्वनाथ ! भिक्षुकों को भिक्षा न देकर उन्हें नेत्रों का प्रकाश दीजिए।

सुप्रिया : मैं तो कहती हूँ ये पुरुष पुरुष नहीं हैं, सूखे वृक्ष के टूटे हुए काष्ठ-खण्ड हैं।

तिलोत्तमा : यदि हमारे नृत्य ने इन्हें नहीं जगाया तो मैं आत्महत्या करूँगी। वह रूप रूप ही क्या, जो पुरुष की दृष्टि को अपनी ओर खींच नहीं सकता !

रंभा : और ये आभूषण तो मेरे शरीर पर भारस्वरूप ज्ञात होते हैं और यह दुकूल शूल की भाँति चुभ रहा है।

सुप्रिया : (**वर्धमान की ओर संकेत करते हुए**) ये तो कुछ बोलते ही नहीं। इतनी बातें सुनकर भी ये वाणी के इतने कृपण हैं तो अपने शिष्यों को क्या उपदेश देंगे ?

रंभा : इस तरह ये नहीं मानेंगे। इनसे अपनी व्यथा की बात कही जाए।

तिलोत्तमा : अच्छी बात है। (**हाथ जोड़कर महावीर वर्धमान से**) हे प्रभो ! इस ग्राम में एक अत्यन्त विलासी श्रेष्ठि रहता है, वह हमें वश में करने के लिए भाँति-भाँति के उपाय करता है। उससे हमारी रक्षा कीजिए !

[वर्धमान ध्यानावस्थित हैं।]

रंभा : महात्मा ! आपकी तपस्या पर मैं मोहित हूँ। अपने अंकपाश में लेकर मेरी विरह-व्यथा दूर कर दीजिए ! (**समीप पहुँच कर झुक जाती है।**)

[वर्धमान ध्यानावस्थित हैं।]

सुप्रिया : सुना है, आप किसी समय राजकुमार थे। क्या राजमहल की सुन्दरियों से हम कम सुन्दर हैं ? एक बार दृष्टि उठाकर हमें देख तो लीजिए !

[वर्धमान ध्यानावस्थित हैं।]

रंभा : (**दाँत पीसते हुए**) वायु से उड़ने वाली रुई की भाँति इनका सारा वैराग्य मैं अभी उड़ाये देती हूँ। सुप्रिया ! तू तो स्वयं वायु में लता की भाँति झुक जाती है। मैं अब इन्हें अपने बन्धन में बाँधती हूँ। (**अपना उत्तरीय वर्धमान के चारों तरफ लपेटती है**) देखूँगी ये इससे कैसे मुक्त होते हैं !

तिलोत्तमा : अरी रंभा ! तेरा उत्तरीय तो बाहरी है। मैं अपने अन्तर से इन्हें बाँधती हूँ। तू जानती है, मन्त्र-शक्ति महान् होती है। (**वर्धमान की परिक्रमा करती है, ओंठों में मन्त्र पढ़ती है, ओंठों से हथेली लगा कर उनके ऊपर 'छू' करके साँस छोड़ती है**) देखती हूँ, अब ये कैसे छूटते हैं। मैंने कामदेव का मन्त्र जो पढ़ दिया है।

सुप्रिया : तिलोत्तमा ! तू तो कामदेव की उपासिका है। तेरा मन्त्र कभी झूठ नहीं हो

सकता। अब महात्मा जी छूट नहीं सकते।

रंभा : अरे, छूटने की बात क्या है ! तपस्वी तो बड़े कृपालु होते हैं। ये कैसे हैं कि हमें आलिंगन के लिए उत्सुक देखकर भी इनके हृदय में प्रेम की भावना उदय नहीं होती।

[वर्धमान ध्यानावस्थित हैं।]

सुप्रिया : सुनते हैं, सन्तों का हृदय तो नवनीत के समान होता है। उसे तो हमारी दशा देखकर पिघलना चाहिए।

तिलोत्तमा : अरे, इनका हृदय नवनीत के समान नहीं है। इनका हृदय तो एक पाषाण-खंड है जो किसी चैत्य की सीढ़ी पर पड़ा रहता है।

[वर्धमान ध्यानावस्थित हैं।]

[सुप्रिया, रंभा और तिलोत्तमा निराश हो जाती हैं।]

सुप्रिया : चलो, बहिनो ! ये वास्तव में सन्त हैं।

रंभा : कहाँ हम महाराज नन्दिवर्धन की प्रेरणा से इन्हें मोहित करने आई थीं, और कहाँ हम स्वयं इनके वैराग्य पर मोहित हो रही हैं।

तिलोत्तमा : ये सच्चे तपस्वी ज्ञात होते हैं। जब महारानी यशोदा का आकर्षण इन्हें राजमहल से बाहर आने से नहीं रोक सका तो हम बेचारियों की बात ही क्या है !

सुप्रिया : अपनी तपस्या से ये सचमुच संसार का कल्याण करेंगे।

रंभा : हम तो पहले ही जानते थे कि बड़े से बड़ा सांसारिक आकर्षण इन्हें तपस्या के मार्ग से नहीं हटा सकेगा। खोलती हूँ अपना बन्धन।

[अपना उत्तरीय महावीर वर्धमान पर से हटा लेती है।]

तिलोत्तमा : मैं भी अपना मन्त्र लौटाती हूँ। **(ओंठों का स्पन्दन होता है।)**

सुप्रिया : आओ, हम सब ऐसे महान् सन्त का अभिनन्दन करें !

[सब सुन्दरियाँ अपनी-अपनी केश-राशि में गुँथे फूल निकाल कर महावीर वर्धमान के चरणों में समर्पित करती हैं। फिर क्रम-क्रम से प्रणाम करके जाती हैं। उनके जाने के कुछ क्षणों बाद महावीर वर्धमान अपने नेत्र खोलते हैं और उठकर टहलते हैं। टहलते हुए इस चर्या का पाठ करते हैं—]

छन्दं निरोहेण उवेई मोक्खं
आसे जहा सिक्खिय वम्मधारी।
पुव्वाइं वासाइं चरेऽप्पमत्ते
तम्हा मुणी खिप्पमुवेई मोक्खं॥

—जैसे अभ्यास सिद्ध कवच धारण करने वाला अश्व युद्ध में विजय प्राप्त करता है उसी भाँति पूर्व काल से अप्रमत्त संयमशाली मुनि शीघ्र ही मोक्ष लाभ करता है।

[कुछ क्षणों लिए मंच पर अँधेरा हो जाता है जो समय के अंतराल का सूचक है। फिर प्रकाश होने पर महावीर वर्धमान टहलते हुए दिखलाई देते हैं। वे यह चर्या पढ़ते हैं—

पुरिसा ! तुममेव तुमं मित्तं
कि वहिया मित्तमिच्छसि।
पुरिसा ! अत्ताणमेव अभिनिगिज्झ
एवं दुक्खा पमोक्खसि ॥

—हे पुरुष ! तू स्वयं ही अपना मित्र है, फिर बाहर किसी अन्य मित्र की खोज क्यों करता है ? तू अपने-आपका निग्रह रख, इससे तू समस्त दुःखों से मुक्त हो जाएगा।

[कुछ क्षण बाद दो ग्रामीण आते हैं।]

पहला : मुनिराज को प्रणाम !

दूसरा : महामुनि को प्रणाम !

पहला : महाराज ! यह अस्थिक ग्राम है। यहाँ से आप चले जाएँ तो कुशल है। यहाँ एक बड़ी विपत्ति है।

दूसरा : विपत्ति तो है, महाराज ! परन्तु उसके लिए अभी समय है। यहाँ एक यक्ष रहता है। वह संध्या समय लौटता है। अभी संध्या में कुछ देर है। किन्तु वह यक्ष इतना क्रूर और भयंकर है कि जो उसके सामने पड़ता है, उसे ही मार डालता है। आप यहाँ से चले जाएँ।

वर्धमान : नहीं, साधक ! मुझे किसी से भय नहीं है। जिसे अपनी आत्मा में विश्वास नहीं है, वही भय का भाजन है। जिसने सत्य को नहीं पहचाना, वही अशान्त है।

पहला : मुनिराज ! हम लोग तो बहुत अशान्त हैं। हम लोग इसी अस्थिक ग्राम के निवासी हैं। मेरा नाम इन्द्रगोप और मेरे साथी का नाम चुल्लक है। हम सब लोग उस यक्ष से आतंकित हैं। वह इसी पास के चैत्य में रहता है। यहाँ कोई आया नहीं कि उसने उसका वध किया।

चुल्लक : हाँ, महाराज ! कुछ दिन हुए एक महामुनि यहाँ आए थे, इसी चैत्य में निवास करने। हम लोगों ने उन्हें यहाँ की स्थिति बतलायी। उनसे प्रार्थना की कि आप यहाँ न ठहरें। उन्होंने हमारी बात सुनी नहीं। वे रात में यहीं रुके। प्रातःकाल यहाँ के ग्रामवासियों ने देखा कि चैत्य के बाहर उनके शरीर के टुकड़े-टुकड़े पड़े हुए हैं।

वर्धमान : चिन्ता की क्या बात है, साधक ! शरीर तो एक दिन नष्ट होगा ही। कौन जानता है कि जीवन की अवधि कितनी है। इसलिए मन को सदैव शान्त रखना चाहिए।

चुल्लक : महाराज ! मेरा मन ही तो शान्त नहीं रहता और सब कुछ शान्त रहता है।

और महाराज ! दासता से भी कष्ट होता है और स्त्री की दासता तो संसार की सबसे बड़ी दासता है।

वर्धमान : स्त्री में राग का केन्द्र है, साधक ! जो घर अच्छी तरह न छाया गया हो उसमें वर्षा का जल प्रवेश कर जाता है। उसी तरह जो व्यक्ति संयमशील नहीं है, उसमें राग प्रवेश कर जाता है और राग की अधिकता से ही दासता की भावना जन्म लेती है।

इन्द्रगोप : महाराज ! संसार में रहते हुए राग की अधिकता को कैसे रोका जा सकता है ?

वर्धमान : अभ्यास से सब सम्भव है। जो समुद्र की तरह स्थित है, निस्तरंग है, वह अशान्त नहीं होता। कमल जल में ही रहता है किन्तु अपने पत्रों पर वह जल की एक बूँद से भी लिप्त नहीं होता। इसके लिए एकान्त सेवन सुविधाजनक होता है।

चुल्लक : महाराज ! मैं एकान्त सेवन कर ही नहीं पाता। जहाँ जाता हूँ, मेरी स्त्री मुझे घेर लेती है।

वर्धमान : अलंकार धारण किए हुए, सुन्दर वस्त्र पहने, चन्दन-चर्चित नारी कामदेव का फेंका हुआ जाल है और उस जाल में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—ये पाँच फन्दे हैं। उनमें कभी मत उलझो। उनमें उलझना ही नारी पर आसक्त होना है।

चुल्लक : महाराज ! मैं नारी पर आसक्त नहीं हूँ, नारी मुझ पर आसक्त है। महाराज ! मैं नहीं जानता कि मैं किस तरह व्यवहार करूँ।

वर्धमान : साधक ! न तुम अपनी प्रशंसा करो, न दूसरों की निन्दा। जो कुछ कहो, उस पर आचरण करो। पूर्वजों के जीवन पर किसी प्रकार का आक्षेप न हो। बाहरी दिखावे से कोई श्रेष्ठ नहीं होता, भीतर की शुद्धि से ही श्रेष्ठता प्राप्त होती है। छोटे मन से महान कार्य नहीं होते, जिस तरह छोटे द्वार से हाथी नहीं निकल सकता। सुव्रती बनो, निर्गंध पुष्प की भाँति लता का बोझ मत बनो !

चुल्लक : मुनिराज ! आपके उपदेश सुनकर मेरे मन में वैसी ही शान्ति हो गई जैसे स्त्री के प्रसन्न होने पर घर में शान्ति हो जाती है।

इन्द्रगोप : (**चुल्लक से**) तुम हर बात में अपनी स्त्री को क्यों ले आते हो।

चुल्लक : क्योंकि वह कहती है कि मेरे बिना तुम अधूरे हो।

वर्धमान : प्रकृति ने प्रत्येक वस्तु पूर्ण बनायी है। सूर्य, चन्द्र, भूमि, सरिता, पर्वत, अग्नि, आकाश—इनमें कौन अपूर्ण है ? तुम भी अपूर्ण नहीं हो, साधक ! विकारों से मन भ्रमित होता है, जिससे अपूर्णता का आभास होता है। जिस प्रकार वायु से उठी धूल मेघ से पृथ्वी पर लौट आती है, उमी प्रकार विवेक से भ्रमित मन शान्त हो जाता है।

चुल्लक : अब मेरा मन पूर्ण शान्त हो गया, मुनिराज !

इन्द्रगोप : मेरी साधना का क्या रूप होना चाहिए, मुनिराज !

वर्धमान : तुम श्रावक बनो, साधक ! समस्त संस्कारों से मुक्त हो जाओ। किसी से किसी प्रकार की अपेक्षा न हो, इसलिए किसी से किसी प्रकार का भय न हो।

संसार को यथार्थ रूप से देखने पर किसी प्रकार की तृष्णा न हो। आयु के समाप्त होने पर उसी प्रकार सन्तुष्ट रहो जिस प्रकार राग के अन्त होने पर सुख और शान्ति का अनुभव होता है। धर्म-रूपी दर्पण में अपना मुख देखो ! इससे मन रज-रहित हो जाएगा, दुःख का निरोध होगा और मन शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति विकसित होगा।

चुल्लक : मैं अपनी स्त्री को क्या करूँ, मुनिराज ?

वर्धमान : यदि तुम स्त्री के साथ रहना चाहते हो तो जैसा मैंने पहले कहा, उसी प्रकार रहो जिस प्रकार कमल पानी में रहता है। पानी भिगोना चाहता है परन्तु कमल-पत्र भीगता नहीं। वह पानी की बूँद को मोती की भाँति बना देता है। इसी प्रकार तुम स्त्री पर आसक्त न होते हुए उसे मोती की बूँद की भाँति बना दो। यदि तुम उस पर आसक्त होगे तो स्रोत में उगे हुए नरकुल की भाँति कामदेव तुम्हें बार-बार तोड़ेगा।

चुल्लक : महाराज ! मैं कृतार्थ हुआ। आपने मुझसे यथार्थ बात कह दी। अब मेरा विवेक जाग गया।

वर्धमान : अँधेरी रात में विवेक प्रज्वलित अग्नि के समान है।

[इसी समय बाहर अट्टहास होता है। इन्द्रगोप और चुल्लक काँप उठते हैं।]

चुल्लक : (**डरते हुए**) प्रभु ! अब कुशल नहीं है, शूलपाणि यक्ष आ गया।

वर्धमान : शूलपाणि यक्ष ?

इन्द्रगोप : हाँ, महाराज ! इसी चैत्य में उसका निवास है। वह यहाँ किसी को ठहरने नहीं देता। जो हठपूर्वक यहाँ ठहरता है, वह अपने प्राणों से हाथ धोता है। आप यहाँ से कहीं अन्य स्थान पर चले जाइए।

चुल्लक : प्रभु ! आज रात मेरे घर निवास कीजिए। आपको कोई कष्ट नहीं होगा। मेरी स्त्री को भी आपके उपदेश सुनने का लाभ होगा। मैं तो उसे उपदेश दे नहीं सकता, वह उलटे मुझे ही उपदेश देने लगती है।

इन्द्रगोप : महाराज ! आप मेरे घर विश्राम कीजिए, आपको वहाँ कोई कष्ट नहीं होगा।

वर्धमान : मुझे कहीं किसी प्रकार का भी कष्ट नहीं है। जितने उपसर्ग होंगे उन्हें सहन करने की क्षमता मुझ में है।

इन्द्रगोप : किन्तु महाराज ! वह यक्ष आपके प्राण ले लेगा।

वर्धमान : तो क्या हानि है ? यदि मृत्यु आएगी तो मैं समझूँगा कि मैंने अपने सिर से भार उतार दिया।

[फिर अट्टहास की ध्वनि]

चुल्लक : महाराज ! शीघ्र ही इस चैत्य से निकल चलिए।

वर्धमान : नहीं, साधक ! नवीन चैत्य चित्त में नवीन चिन्ताएँ उत्पन्न करता है। मैं

आज की रात यहीं निवास करूँगा।

इन्द्रगोप : महात्मन् ! रात में यहाँ निवास करना मृत्यु को निमन्त्रण देना है। एक मुनि यहाँ प्राण समर्पित कर चुके हैं।

वर्धमान : उन संत को अहंकार और अभिमान होगा। वे तीर पर खड़े होकर धर्म की गहराई को जानने का दंभ भरते होंगे।

इन्द्रगोप : महाराज ! वह यक्ष इतना निष्ठुर है कि किसी दंभी और संत में भेद नहीं मानता। उसमें अपर शक्ति है। वह वज्र की तरह व्यक्ति पर गिरता है।

वर्धमान : तो गिरे। जिस तरह वृक्षों से फल गिरते हैं, उसी भाँति शरीर टूटने पर मैं भी गिर जाऊँगा।

[पुनः अट्टहास होता है।]

इन्द्रगोप : वह आ गया ! मुझे भी मार डालेगा, महाराज ! मैं जाता हूँ।

चुल्लक : महाराज ! मुझे भी आज्ञा दें। मैं भी यहाँ नहीं रह सकता। वह मुझे मारे बिना नहीं रहेगा। फिर मेरी पत्नी क्या करेगी ! मैं अपनी पत्नी का एकमात्र पति हूँ।

[शीघ्रता से दोनों ही चले जाते हैं। वर्धमान आसन लगाकर ध्यानस्थ होकर बैठ जाते हैं। कुछ ही क्षणों में विकराल वेश बनाए शूलपाणि यक्ष आता है। सिर के बाल विखरे हुए हैं। उसका मुख लाल और श्वेत रंग से रँगा हुआ है। रक्त वर्ण वस्त्र पहने हुए है। कमर में पीली रस्सी बँधी हुई है। नंगे पैर। वह एक बार फिर जोर से अट्टहास करता है।]

शूलपाणि : अ ह्‌ ह्‌ ह्‌ ह्‌ ह्‌ फिर कोई मेरे चैत्य में प्राण देने आया है। (**अट्टहास करता है**) अग्नि की लौ में जलने के लिए जैसे पतिंगे आप से आप उड़कर चले आते हैं, उसी प्रकार मेरे प्रताप की अग्नि में जलने के लिए भोले-भाले व्यक्ति स्वयं ही इधर आ जाते हैं। आओ और अपने प्राण अर्पित करो ! जानते नहीं, इस चैत्य पर केवल मेरा अधिकार है, मेरा ! (**पुनः अट्टहास, फिर रुककर ध्यान से देखता हुआ**) अरे, यह डर कर भागा नहीं ? इसने अपनी प्राण-रक्षा के लिए कोई याचना नहीं की ? (**महावीर वर्धमान के चारों ओर घूमता है**) अब यह मेरे घेरे में है। छूटकर नहीं जा सकता। (**जोर से**) कौन है तू ? भोले मानव ! अपना मुँह खोल। बतला कि तुझे अपने जीवन से इतना विराग कैसे हो गया ? (**वर्धमान कुछ नहीं बोलते**) तू मौन रहकर ही मृत्यु के मुख में जाना चाहता है ! तू जीवित तो है ? (**झुककर ध्यान से देखता है**) हूँ ! तू जीवित है ! (**हँसता है**) जीवित होकर भी मृतक की भाँति है। फिर आँखें क्यों नहीं खोलता ? देख··· मानव ! देख··· तेरे सामने तेरा काल खड़ा हुआ है। (**जोर-जोर से पृथ्वी पर पदाघात करता है। महावीर वर्धमान फिर भी ध्यान-मग्न हैं।**)

शूलपाणि : यह विचित्र मानव है ! इसकी सारी इन्द्रियाँ निश्चेष्ट हैं। न इसके मुख पर

किसी प्रकार का आतंक है और न भय ! (**विस्मय से घूमता हुआ**) ऐसा व्यक्ति तो मैंने जीवन भर में नहीं देखा।···इतना साहसी कि मेरे चैत्य में आकर निर्भीक होकर इस प्रकार बैठा है जैसे मेरे चैत्य की भूमि ही इसका सिंहासन हो। (**सोचता है**) तो इसे उठाकर मैं इसी पृथ्वी पर पटक दूँ। किन्तु इसे पटकने में मेरी शक्ति का अपमान है। कहाँ यह और कहाँ मैं ! इसके अंग तो वृक्ष की टूटी हुई टहनियों के समान हैं। मैं दूसरे ही साधन से इसे मारूँगा। मैं अपने मंत्र-बल से इसके ब्रह्मांड के आकाश को खींचता हूँ। (**महावीर वर्धमान के सामने खड़े होकर वायु खींचने का अभिनय करता है**) इसकी साँसों की वायु खींचता हूँ। (**फिर खींचने का अभिनय करता है**) इसकी जठराग्नि खींचता हूँ···इसकी आँखों से जल खींचता हूँ···इसके आसन की भूमि खींचता हूँ। (**यक्ष के प्रयत्नों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता**) अरे, इस मानव पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा ? न तो इसकी साँस ही रुकी और न इसके आसन की भूमि ही हटी। यह तो विचित्र व्यक्ति ज्ञात होता है। इसके समक्ष मेरी शक्ति कुछ काम नहीं कर रही है। यह मेरी शक्ति का अपमान है। कोई बात नहीं···मेरे पास और भी तो भयंकर साधन हैं। कालकूट का कुबेर भयानक सर्प, चंड कौशिक ! आ मेरे चंड कौशिक ! तू एक ही फूत्कार से इस मानव को मृत्यु-कूप में ढकेल दे। (**भीतर जाकर एक भयानक सर्प लाता है**) यह रहा चंड कौशिक ! मेरे चंड कौशिक ! अपने विष की ज्वाला से इस मानव को तू इस तरह से झुलसा दे जैसे दावाग्नि सारे वन को जला डालती है। आज तेरी बड़ी से बड़ी परीक्षा है। तो यह ले। इसके गले में लिपट कर इस तरह कस ले कि इसकी साँस ही रुक जाए और फिर अपने कठोर दंशन से इसे समाप्त कर दे। जा, गले में लिपट जा ! (**सर्प को गले में डाल देता है। किन्तु वह सर्प महावीर वर्धमान के गले में फूलों की माला की भाँति झूल जाता है। वह भिन्न-भिन्न कोणों से जाकर यक्ष वर्धमान के गले में साँप पड़ा देखता है**) ऐं···तो तू भी इसे मारने में असफल हो गया ! महान् आचार्य ! तू तो अपने एक ही दंशन में हरे-भरे वृक्ष को सूखा काष्ठ बना देता है। यहाँ तू फूलों की माला की तरह झूल गया ! धिक्कार है, चंड कौशिक ! तुझे धिक्कार है ! (**हताश होकर इधर-उधर टहलता है—सोचते हुए**) यह मानव कोई मंत्र जानता है, अवश्य ही कोई मंत्र जानता है, नहीं तो चंड कौशिक इतना शिथिल नहीं हो सकता था। इसका सारा विष समाप्त हो गया। विश्वासघातक ! चंड कौशिक ! तू हट जा ! तू परीक्षा में असफल हो गया। तूने मेरा सारा विश्वास खो दिया। तू गले से निकल आ ! चल निकल···! (**महावीर वर्धमान के गले से साँप निकाल कर भूमि पर फेंक देता है**) यह विचित्र मानव मेरी शक्ति की परीक्षा ले रहा है। किन्तु मैं हार नहीं मानूँगा। मैं शूलपाणि हूँ। शूल से ही इसका मस्तक छेद दूँगा। जाता हूँ, लाता हूँ अपना शूल। (**शीघ्रता से जैसे ही भीतर जाने के लिए बढ़ता है वैसे ही भूमि पर पड़ा हुआ सर्प उसे काट लेता है। वह गहरी दृष्टि से सर्प को देखता है। फिर कराहता हुआ**) ओह ! तूने मुझे ही काट लिया ! अरे चंड कौशिक !

तुझे पालने का क्या तू मुझे ऐसा ही बदला देगा ? मैं पहले तेरा सिर शूल से छेद दूँगा। (**शूल लेने के लिए चैत्य में प्रवेश करना चाहता है किन्तु लड़खड़ा कर गिरता है**) ओह ! भयानक विष ! रोम-रोम में ज्वाला जल उठी ! मेरा ही साँप मुझे काट ले ! आह ! भयानक विष···भीषण ज्वाला···!! तेरा यह भयानक विष कहाँ गया था जब तू इस मानव के गले में पड़ा था ! (**घुटने टेक कर बैठना चाहता है लेकिन फिर गिर पड़ता है**) ओह ! सारा शरीर जल रहा है। मैं मरा··· (**जोर से चीख कर**) बचाओ···मुझे ब···चा···ओ। हाय ! हाय ! मैं नहीं जानता था कि इस पापी चंड कौशिक का विष इतना भयानक है। ओह ! ··· मैं···मरा··· (**महावीर वर्धमान से**) महामानव ! तुम्हीं मुझे बचा लो। हाय ! तुम्हें अपमानित कर मैंने बड़ा अपराध किया है। मुझे क्षमा करो ! मुझे बचा लो, महासंत ! मुझे बचा लो···मैं मरा···मैं मरा ! महा संत ! इस भयानक विष की ज्वाला दूर कर दो ! तुम कर सकते हो। संसार की सभी वस्तुएँ तुम्हारे वश में हैं। मैं मरने जा रहा हूँ, महासंत ! मुझे बचा लो !

[वर्धमान आँखें खोलकर शूलपाणि को देखते हैं। वे उठकर उसके समीप जाते हैं।]

वर्धमान : शूलपाणि ! सर्प ने तुम्हें काट लिया ? चिन्ता मत करो। मैं तुम्हें मरने नहीं दूँगा। मैंने यहाँ आते ही देखा कि तुम्हारे चैत्य के पास ही सर्प-विष दूर करने की जड़ी है। आयुर्वेद जानने के कारण मैं वह जड़ी पहचानता हूँ। मैं उस जड़ी को अभी विष-दन्त पर लगा देता हूँ।

शूलपाणि : महात्मन् ! वह जड़ी शीघ्र ही लगा दीजिए। मैं जन्म भर आपकी सेवा करूँगा।

वर्धमान : मुझे किसी की सेवा की आवश्यकता नहीं है। मैं जड़ी अभी लगा देता हूँ।

[महावीर वर्धमान शीघ्रता से एक कोने से जड़ी लाते हैं, विष-दन्त पर लगाते हैं और शूलपाणि को देते हैं।]

शूलपाणि ! इस जड़ी को तुम सूँघ भी लो। गहराई से सूँघो !

[शूलपाणि जड़ी को लेकर गहराई से बार-बार सूँघता है।]

वर्धमान : अब विष का प्रभाव कम हो रहा होगा।

शूलपाणि : हाँ, महात्मन् ! मैं शान्ति का अनुभव करने लगा हूँ। विष का प्रकोप कम होता जा रहा है। कम···होता···जा रहा··· है।

[इन्द्रगोप और चुल्लक का शीघ्रता से प्रवेश]

इन्द्रगोप : जय हो ! जय हो महासन्त की ! हम लोगों ने शूलपाणि के कराहने की ध्वनि सुनी तो समझ गए कि महासन्त ने उसे अच्छा दंड दिया।

चुल्लक : मैं भी महासन्त की जय बोलता हूँ और अपनी पत्नी की तरफ से भी जय बोलता हूँ।

शूलपाणि : मैं भी···महा···सन्त···की जय···बोलता हूँ। मैं तो मर ही गया था। मेरे ही साँप चंड कौशिक ने मुझे डस लिया। यदि ये महात्मा यहाँ न होते तो मैं तो अभी तक मर गया होता। मेरे ही चैत्य में सर्प-विष को दूर करने की जड़ी ! मैं उसे नहीं पहचान पाया। और इन महात्मा ने उस जड़ी को काटे हुए स्थान पर लगा दिया और मेरे शरीर से सर्प-विष दूर हो गया। हाय ! वह चंड कौशिक काटकर न जाने कहाँ चला गया।

चुल्लक : हम लोग तो समझे थे कि तुम मर गए। मेरी पत्नी ने कहा था कि जाकर शूलपाणि का अन्तिम संस्कार कर आओ।

शूलपाणि : सचमुच ही वह शूलपाणि मर गया जिसने इतने बड़े सन्त का अपमान किया। यह तो उसका पुनर्जन्म है।

इन्द्रगोप : धन्य हैं ये महात्मा जो मान-अपमान से इतने परे हैं कि तुमने इनका घोर अपमान किया और इन्होंने तुम्हें जीवन-दान दिया।

शूलपाणि : धन्य-धन्य हो, महात्मा !

चुल्लक : अब धन्य-धन्य कहने से क्या होता है ! पहले तो तुमने इतने सन्त-महात्माओं को मारा जिनकी गिनती नहीं है। अब धन्य-धन्य कहते हो ! अरे, तुम्हारा चंड कौशिक भी तुम्हारी उद्दण्डता से क्रुद्ध हो गया है। वह ऐसे सन्त का अपमान नहीं सहन कर सका और उसने तुम्हें डस लिया।

शूलपाणि : (खड़े होकर) अरे, अब तो मैं बिलकुल अच्छा हो गया। लगता भी नहीं है कि साँप ने मुझे काटा था। (**महावीर वर्धमान के चरणों में गिरता है**)

इन्द्रगोप : मैं तो पहले ही जानता था कि ये सामान्य सन्त नहीं हैं।

चुल्लक : अरे, सामान्य सन्त होते तो क्या शूलपाणि के क्रोध से बचते ? मेरी पत्नी का क्रोध तुमसे कम नहीं है, शूलपाणि ! किन्तु मैं भी बाल-बाल बचता ही आया हूँ।

शूलपाणि : मैंने महासन्त का प्रभाव नहीं जाना। इनसे कुवाक्य कहे, इनका अपमान किया किन्तु ये मौन बैठे रहे। इन्होंने किसी प्रकार का उत्तर नहीं दिया। किन्तु जब सर्प ने मुझे काटा तो ये मेरी रक्षा के लिए आ गए। महासन्त ! तुम्हारे दर्शन पाकर मैं धन्य हो गया ! जय हो ! जय हो महासन्त की ! अब सर्प का विष न जाने कहाँ चला गया !

वर्धमान : संसार का विष-सर्प से अधिक भयानक है, शूलपाणि ! उससे बचने का प्रयत्न करो।

शूलपाणि : अवश्य करूँगा, महात्मन् ! मुझे अपना शिष्य बना लीलिए। अथवा बनाने बनाने से क्या ! मैं स्वयं शिष्य हो गया ! मैंने अब तक जो दुष्कर्म किए हैं उनका प्रायश्चित्त करूँगा।

वर्धमान : प्रायश्चित्त यही हो कि आज से तुम समस्त कुकर्म छोड़ दो। किसी की हत्या न करो। क्रोध न करो। मानापमान से ऊपर उठो। जनता की सेवा करो। कभी किसी

प्रकार की हिंसा न करो। अहिंसा ही तप है, उसका अनुसरण करते हुए लोक-कल्याण करो ! निर्भय होकर सत्य का उसी प्रकार नाद करो जिस भाँति सिंह अपनी गिरिगुहा में नाद करता है।

शूलपाणि : आपकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करूँगा, महात्मन् !

चुल्लक : पालन न करोगे तो क्या करोगे शिष्यजी ! अब महात्माओं से सम्हल कर बात करना। इस बार तो महात्माजी की कृपा से बच गए। आगे उल्टी-सीधी बातें कीं तो एक चींटी के काटने पर भी नहीं बचोगे।

इन्द्रगोप : इन जैसे महात्माओं की बात ही अलग है। (**महावीर वर्धमान से**) महात्मन् ! मुझे भी अपना शिष्य बना लीजिए। हम सब जान गए हैं कि आप महावीर वर्धमान हैं।

चुल्लक : मुझे भी···और···मेरी उसको···अर्थात् मेरी पत्नी को भी।

वर्धमान : श्रद्धा, स्मृति और अहिंसा का अभ्यास कर इन्द्रियों का दमन करो और पाप-मुक्त हो जाओ !

शूलपाणि : ऐसा ही होगा, महात्मन् !

वर्धमान : अनित्य का, अनासक्ति का अभ्यास करना प्रत्येक श्रमण के लिए आवश्यक है।

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे।
मायामज्जव भावेण, लोभं संतोसओ जिणे।।

—अर्थात् शान्ति से क्रोध को जीते, विनम्रता से अभिमान को जीते, सरलता से माया को जीते और सन्तोष से लोभ को जीते।

सब : (सम्मिलित स्वर से) तीर्थंकर महावीर वर्धमान की जय ! जय ! जय !

[धीरे-धीरे परदा गिरता है]

□

जय भारत

भूमिका

भारत के राष्ट्रीय इतिहास में प्रथम स्वातन्त्र्य-संग्राम की बड़ी महत्त्वपूर्ण और रोचक गाथा है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी, जो केवल इस देश में व्यापार करने के लिए आई थी, जिसने भेद-नीति और विश्वासघात से कार्य किया, उससे भारतीय जीवन कितना आक्रांत हुआ, इसका परिणाम सन् 1857 ई० का भारतीय विद्रोह था। इस घटना पर अंग्रेज़ी और भारतीय भाषाओं में अनेक इतिहास लिखे गए और इस क्रांति की विवेचना अनेक प्रकार से की गई; किंतु उन पुस्तकों के पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि भारतीय विद्रोह के वास्तविक मनोविज्ञान को समझने की चेष्टा कम इतिहासकारों ने की है। इसका कारण यह हो सकता है कि इस प्रकार के इतिहास अधिकतर उन अंग्रेज़ों और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारियों द्वारा प्रस्तुत पात्रों एवं विवरणों के आधार पर लिखे गए हैं, जिनमें ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रति पक्षपात है और भारतीयों की स्वतन्त्रता के प्रति उपेक्षा और घृणा है। इन इतिहासकारों ने भारतीय स्वतन्त्रता-युद्ध को पूर्व आयोजित षड्यन्त्र की संज्ञा दी है। वे इस बात की घोषणा करते हैं कि उस समय भारतवासियों का राष्ट्रीय चरित्र बहुत गिर गया था, विद्रोह का संचालन करने वाले नेता कभी एक-दूसरे से सहमत नहीं होते थे, उनको एक-दूसरे से ईर्ष्या थी और वे परस्पर विरोधी चालें चलते थे। उन्होंने यह सिद्ध किया है कि अंग्रेज अधिकारी अपनी सम्राज्ञी के प्रति वफ़ादार थे, उन्होंने इस विद्रोह को अपनी राष्ट्रीय विपत्ति का रूप दिया, वे जी-जान से लड़े और उन्होंने विद्रोहियों को कुचलकर विजय प्राप्त की।

स्वतन्त्रता-संग्राम की पृष्ठभूमि

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारी इस देश में फ्रांस और पुर्तगाल के व्यापारियों की भाँति व्यापार करने के लिए आए थे, क्योंकि यहाँ धन-धान्य की समृद्धि देखकर उनके मन में अर्थ-लोलुपता ने स्थान ले लिया था। किंतु धीरे-धीरे व्यापार करने के अधिकार मिलने पर उनके मन में इस देश पर शासन करने की लालसा भी उत्पन्न हुई और उन्होंने यहाँ के शासकों और सामन्तों से संघर्ष लेकर, संधियाँ कर और कुछ ही समय बाद उन संधियों को तोड़कर धीरे-धीरे राज्यों को हस्तगत करना आरम्भ किया

और अपनी शक्ति को बढ़ाने के लिए अनेक प्रकार के उपाय किए। जिनमें उनकी कूट-नीति उग्र रूप धारण करती गई। वस्तुतः कहा यह जाना चाहिए कि यह विद्रोह भारतीयों की ओर से कोई षड्यन्त्र नहीं था, वरन् उन विदेशी व्यापारियों का वह षड्यन्त्र था, जिसमें उनकी स्वतन्त्रता को एक खिलौने की तरह तोड़कर रख दिया गया।

यदि इस सन्दर्भ में भारतीय इतिहासकार का अध्ययन किया जाए, तो ज्ञात होगा कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों की राज्यलिप्सा 19वीं शती के प्रारम्भ से ही बलवती होती दृष्टिगत होती है। सन् 1835 ई० से लॉर्ड ऑकलैण्ड के द्वारा पहला अफ़गान-युद्ध सिन्ध पर कब्ज़ा करने के दृष्टिकोण से हुआ। इसी भाँति सन् 1844 में पहला और दूसरा सिक्ख-युद्ध मुल्तान को हस्तगत करने के लिए हुआ। सन् 1851 में दूसरा बर्मा-युद्ध, बर्मा की राजधानी पेगू पर अधिकार करने के लिए हुआ और उसके बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने जिस भाँति राज्यों को हड़पने के लिए अपनी कूटनीति से राज्य विलीनीकरण सिद्धांत (Doctrine of Lapse) की घोषणा की; वह उनके शासन की वृत्तियों की परिचायिका है। इस सिद्धांत का निरंकुश अभिप्राय यह था कि जो भारतीय शासक निःसन्तान होकर मरे; उसका राज्य कम्पनी के अधिकार में ले लिया जाए। उस राजा अथवा रानी को यह अधिकार नहीं दिया गया कि वह किसी को गोद ले सके और संतान न होने की स्थिति में राज्य को अनेक षड्यन्त्रों से मुक्त रखे। यह स्पष्ट है कि इस निरंकुश नीति से भारतीय राष्ट्रीयता को कितनी हानि हुई; जिसकी प्रतिक्रिया के रूप में यहाँ के नरेश और जनता में असंतोष और विद्रोह होना स्वाभाविक था।

यह तो राजनीतिक चाल थी, किंतु इसके साथ ही अंग्रेज़ों ने इस देश की सांस्कृतिक विचारधारा को नष्ट करने के लिए भी उपाय किए। भारतीय धर्म को नष्ट करने के लिए उन्होंने अनेक आपत्तिजनक कदम उठाए। पहला कदम तो प्रत्यक्षवादी कहा जा सकता है, जिसमें उन्होंने भारतीय सैनिकों को ऐसे कारतूस दिए, जो गाय और सुअर की चरबी से चिकनाए गए थे और जिनके टोंटे उपयोग करने के पूर्व मुँह से काटने पड़ते थे। सैनिकों के हृदय में (वे हिन्दू और मुसलमान दोनों ही थे) इस प्रकार धार्मिक आस्था के कुचलने के विरोध में प्रतिक्रिया होनी स्वाभाविक थी। यद्यपि सैनिकों को शांत करने के लिए अंग्रेज़ी सैनिक अधिकारियों ने कारतूसों में लगी गाय और सुअर की चरबी का प्रतिवाद किया, किंतु सत्य को झुठलाया नहीं जा सका। दूसरा कार्य, जो परोक्षवादी कहा जा सकता है, वह इस देश में मिशनरियों को भेजना था, जो ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए इस देश में भेजे गए। यदि वे केवल मात्र ईसाई धर्म का प्रचार करते, तो भारतीय सहिष्णुता उसे बर्दाश्त कर सकती थी, किंतु इन मिशनरियों ने हिन्दू देवी-देवताओं और मुसलमानों के रसूल और पैगम्बर को अपमानित और लांछित करना प्रारम्भ किया, इससे भारतीय जनता का क्षुब्ध होना स्वाभाविक था।

भारतीय संस्कृति को लांछित करने के लिए उन्होंने भारतीय भाषाओं को महत्त्व न देकर, अंग्रेज़ी भाषा को अत्यधिक महत्त्व देना आरम्भ किया। इतिहासकार इस बात

की प्रशंसा करते हैं कि अंग्रेज़ों ने इस देश के भिन्न-भिन्न भागों में भारतीयों को प्रशिक्षित करने के लिए अनेक स्कूल खोले, किंतु वे इस बात को भूल जाते हैं कि उन्होंने भारतीयों को जो शिक्षा दी, उससे वे गुलाम ही बन सकते थे, स्वतन्त्र-चेता नागरिक नहीं। अंग्रेज़ी शिक्षा के साथ भारतीयों में अंग्रेज़ी सभ्यता का भी प्रचार हुआ, जिससे भारतीयों का हृदय अपनी संस्कृति और सभ्यता से हटकर विदेशियों की शिक्षा और संस्कृति की ओर अधिक आकृष्ट हुआ और इस देश ने अपने धर्म-ग्रंथों और अपनी भाषाओं को हेय दृष्टि से देखना आरम्भ किया। इस भाँति यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि अंग्रेज़ों ने जिस कूटनीति का आश्रय ग्रहण किया, उससे समस्त भारतीय जन-जीवन अस्तव्यस्त हो गया और उसमें जो क्रांति की भावना उत्पन्न हुई; वह किसी वर्ग-विशेष में सीमित न रहकर जनसाधारण में उत्पन्न हुई। अतः जो इतिहासकार इस क्रांति को केवल कुछ व्यक्तियों का षड्यन्त्र मानते हैं, वे भारतीय जन-मानस की उपेक्षा करते हैं और भारत के इस प्रथम स्वतन्त्रता-युद्ध को केवल सिपाहियों के गदर (Sepoy mutiny) की संज्ञा देते हैं।

क्रांति का स्वरूप

भारतीय जन-मानस में जो विद्रोह की भावना जागृत हुई, उसमें अनेक केन्द्रों से विप्लव की ध्वंसकारिणी मनोवृत्ति उदित हुई। ऐसा ज्ञात होता है, जैसे स्थान-स्थान से अनेक ज्वालामुखियों का विस्फोट हो गया और उनकी ज्वालाओं में कम्पनी की साम्राज्यवादिता को भस्मीभूत करने का प्रबल आक्रोश उत्पन्न हुआ। बैरकपुर (कलकत्ता), मेरठ, दिल्ली, लखनऊ, राजस्थान, झाँसी आदि स्थानों में जो स्वतन्त्रता की चिनगारियाँ उत्पन्न हुईं, वे जितनी अधिक नरेशों और सैनिकों से उत्पन्न हुई थीं, उतनी ही सामान्य जनता के क्रांतिकारी व्यक्तियों द्वारा प्रज्वलित की गई थीं। यदि कम्पनी के अधिकारियों ने इस देश के न्यायप्रिय नरेशों में फूट डालने की चेष्टा न की होती और अनेक प्रलोभनों से सरल जन-मानस को विचलित न किया होता, तो प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम उसी समय सफल हो गया होता और इस देश का इतिहास दूसरी भाँति ही लिखा गया होता।

प्रस्तुत नाटक की रूपरेखा

प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम का परिवेश इतना व्यापक है कि उसे सम्पूर्ण रूप से किसी साहित्यिक रचना में समाहित करना एक कठिन कार्य है, क्योंकि राष्ट्रीयता की सुरक्षा के लिए इस देश के प्रत्येक वर्ग में, जन-मानस में जो लहरें उद्वेलित हुईं, उनका परिगणन तट पर बैठकर करना दुःसाध्य है। इसलिए जो परिस्थितियाँ प्रमुख रूप से इस संदर्भ में घटित हुई हैं, उनके समुचित आकलन का प्रयत्न इस नाटक में हुआ है। क्रांति की जो अग्नि, किसी स्थान-विशेष में प्रज्वलित हुई, उसकी आँच किन-किन स्थानों में अनुभव की गई और उसके परिणामस्वरूप जो विस्फोट विविध स्थानों पर हुए, उनको सम्यक् रूप से प्रतिबिंबित करने का प्रयत्न प्रस्तुत नाटक में किया गया है।

जिन प्रमुख केन्द्रों में क्रांति का आतंकपूर्ण उद्भव हुआ है, उन्हें अलग अंकों में निरूपित किया गया है इसलिए इस नाटक के अंकों की संख्या सात हो गई है। पूर्व रंग में इस बात को स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है कि भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की कुटिल नीति का निराकरण उसकी केन्द्रीय समिति के द्वारा किया जा सके, किंतु जब कम्पनी के अधिकारियों की छल और कपट से भरी हुई नीति ही सर्वत्र वर्तमान थी, तो उसके विरोध में क्रांति की परिस्थितियाँ उत्पन्न होने में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह गया। यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि जिन केन्द्रों में विप्लव हुआ, उनकी घटनाओं का यथावत् निरूपण किया गया है।

कथावस्तु

नाटक के सातों अंकों की कथावस्तु का समान मेरुदण्ड है और वह मेरुदण्ड क्रांति की कड़ियों से ही निर्मित हुआ है। परिस्थितियों के परिवर्तन से प्रत्येक अंक की कथावस्तु ने एक विशिष्ट रूप धारण किया है और इस कथावस्तु ने आरम्भ से ही कुतूहल को जन्म दिया है। किसी भी नाटक की कथावस्तु का आकर्षण उसकी गतिशीलता और कुतूहल में हुआ करता है। परिस्थितियों की विविधता के कारण प्रत्येक घटना कुतूहल से समवलित है। यह आवश्यक है कि किसी भी अंक की घटना में कोई अवान्तर प्रसंग न हो। किंतु साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि सभी अंकों की लक्ष्य-प्राप्ति एक ही दिशा में हो। जिस प्रकार ध्रुव-सूचक यन्त्र की सुई सब ओर घूम जाती है, किंतु वह उत्तर दिशा की ओर जाकर ही स्थिर होती है; उसी प्रकार सातों अंकों की कथावस्तु विविध परिस्थितियों की ओर घूमकर केवल मात्र क्रांति की उत्तर दिशा में जाकर स्थिर होती है। यह भी प्रयत्न किया गया है कि न तो किसी घटना का चित्रण अस्वाभाविक हो और न अवान्तर प्रसंग से उसका प्रवाह अवरुद्ध हो। कथावस्तु का स्वाभाविक विकास इस नाटक का महत्त्वपूर्ण अंश समझा जाना चाहिए।

चरित्र-चित्रण

प्रत्येक अंक की कथावस्तु का परिचालन क्रांति के किसी विशिष्ट नायक के द्वारा होता है। पहले अंक में बिठूर के नाना साहब, दूसरे अंक में अमर शहीद मंगल पांडे, तीसरे अंक में बादशाह बहादुरशाह, चौथे अंक में कुँवरसिंह, पाँचवें अंक में शाहज़ादा फीरोज़शाह, छठे अंक में तात्यां टोपे और सातवें अंक में महारानी लक्ष्मीबाई इस क्रांति का नेतृत्व करते हैं। ये सातों विभूतियाँ क्रांति के समरांगण में अदम्य साहस और शौर्य के साथ आविर्भूत होती हैं और उनका चरित्र अदम्य साहस और उत्साह से परिपूर्ण है। इनका व्यक्तित्व न केवल अपने में सीमित रहता है, वरन् जो व्यक्ति इनके संपर्क में आता है, वह ईनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता; जिस प्रकार पारस किसी लौहखंड को अपने स्पर्श से स्वर्ण में परिवर्तित कर देता है, उसी प्रकार प्रत्येक अंक का चरित्र-नायक सम्पर्क में आए हुए व्यक्ति को भी वीर बना देता है। इस दृष्टि से प्रत्येक नायक धीरोदात्त है। अन्तिम अंक की नायिका क्रांतिकारिणी रानी लक्ष्मीबाई हैं। स्त्री

होकर भी उन्होंने जो पुरुषोचित वीरता दिखलाई, उससे वे भी धीरोदात्त नायक की श्रेणी में आ जाती हैं। नायक के लिए विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियंवद और सद्वंश में उत्पन्न व्यक्ति होना चाहिए और इस कसौटी पर ये सातों नायक खरे उतरते हैं। इस मनोवैज्ञानिक रूपरेखा में यह समस्त नायक भारतीय स्वतन्त्रता की परम्परा में पोषित हैं और विदेशियों के द्वारा पड़ने वाले प्रभावों का प्रतिकार करने में समर्थ हैं। इन्द्रधनुष के सप्तरंगों की भाँति इन सातों पात्रों का अभियान अपनी अलग-अलग विशेषता रखता है, किंतु उनका सम्मिलित वर्तुल रूप क्रांति की ओर ही संकेत करता है।

संवाद

इस नाटक में इस राष्ट्र की दो शक्तियाँ, हिन्दू और मुसलमान परस्पर मिल गए हैं। जहाँ बिठूर के नाना साहब और झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई एक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, वहाँ दिल्ली के बहादुरशाह और मंदसौर के फ़ीरोज़शाह दूसरे वर्ग का। इस क्रांति की ज्वाला को सुलगाने में इन दोनों शक्तियों ने मिलकर अदम्य साहस का परिचय दिया है, किन्तु विविध भू-भागों में रहने के कारण उनके वार्तालाप की भाषा में अन्तर आ जाता है। इसी कारण प्रत्येक अंक की भाषा में पात्रों के दृष्टिकोण से विविधता देखी जा सकती है। संवाद का सौन्दर्य पात्रों के मनोविज्ञान पर आधारित है और जहाँ हिन्दू-वर्ग संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग करता है, वहाँ मुसलमान-वर्ग उर्दू शैली का अनुसरण करता है। दोनों वर्गों की भाषा सरल और सुबोध है, जिससे कि जनसाधारण पर उसका प्रभाव समान रूप से पड़ता है।

देश-काल

सन् 1857 में इस देश के वातावरण में बहुत अशान्ति थी, क्योंकि इस देश की परम्परा को नष्ट करने के लिए विदेशी प्रभाव आतंककारी रूप से क्रियाशील हो उठा था। इस वातावरण की अभिव्यक्ति दो प्रकार से हुई है: पहला तो भारतीय संस्कृति से उद्भूत स्वतन्त्रता की आकांक्षाओं से परिपूर्ण है और दूसरा, अप्रत्यक्ष रूप से विदेशी नीति के विश्वासघात और कूटनीति से निर्मित हुआ है। देश-काल का एक रूप प्रत्यक्ष है, दूसरा अप्रत्यक्ष, और दोनों में निरंतर संघर्ष होता हुआ देखा जा सकता है। यह देश-काल व्यक्तियों के व्यवहार और उनके व्यक्तिगत आचरण से भी अभिभूत होता है और इस प्रकार जो घटनाएँ प्रत्येक अंक में घटित होती हैं, उनसे देश-काल का पूर्ण सामंजस्य होता है।

दृष्टिकोण

इन नाटक में भारतीय स्वतन्त्रता के जिस नए पृष्ठ को खोलने का उपक्रम हुआ है, उसका विवेचन कारण और कार्य की श्रृंखला से सम्बद्ध किया गया है। जिन सात केन्द्रों में स्वतन्त्रता की चिनगारियों का विस्फोट हुआ, उनको एक भयानक विद्रोह की लपट में परिणत करने का प्रयत्न इस नाटक में किया गया है। नाटक में सम्बद्धता देखी

जा सके, इसके लिए प्रत्येक अंक का अन्तिम सूत्र आने वाले अंक से संग्रथित हो जाता है और इस प्रकार समस्त कथावस्तु में, चरित्रों में, संवाद में और देश-काल में एकसूत्रता स्थापित हो जाती है। यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि भारत के क्रांतिकारियों में किसी प्रकार साहस और उत्साह की कमी नहीं थी। यह तो कम्पनी के अधिकारियों की छद्म-नीति थी, जिसने इस स्वतन्त्रता-संग्राम को उसके अभीष्ट लक्ष्य तक नहीं पहुँचाया। इसमें वीरता, साहस, उत्सर्ग, देश-भक्ति, सदाचार और जीवन के स्वस्थ दृष्टिकोण का निरूपण यथास्थान किया गया है।

नाटक के तत्त्व

भारतीय साहित्य में नाटक को दृश्य-काव्य कहा गया है, क्योंकि इसकी प्रत्येक घटना मंच पर प्रदर्शित होकर दर्शकों पर प्रभाव डालने में समर्थ है। इसके पाँच तत्त्वों में कथानक, चरित्र-चित्रण, संवाद, देश-काल और दृष्टिकोण निर्धारित हैं। इस नाटक में इन सभी तत्त्वों का निर्वाह करने का प्रयत्न किया गया है और भाव तथा भाषा की दृष्टि से इसकी संयोजना सही अनुपात में की गई है।

रंगमंच

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि नाटक साहित्य का सगुण रूप है। जिस प्रकार ब्रह्म अपने वैभव का अभिज्ञान अवतार के माध्यम से भक्त को कराता है, उसी प्रकार साहित्य का सौन्दर्य रंगमंच पर अवतरित होकर नाटक के रूप में प्रकट होता है। नाटक दृश्य-काव्य है; जिसमें नृत्य, संगीत और अभिनय हृदय की ललित सृष्टि को एक आकर्षक रूप प्रदान करते हैं। इस भाँति नाटक के दो पार्श्व हैं। प्रथम तो हृदय की वे समस्त अनुभूतियाँ हैं, जो मनोविज्ञान या रस से ओत-प्रोत होकर जीवन के यथार्थ या आदर्श में प्रतिफलित होती हैं और द्वितीय, कला की वे समस्त रूप-रेखाएँ हैं जो मंच, वेश-भूषा, नृत्य, संगीत और अभिनय का माध्यम ग्रहण करती हैं। ये दोनों पार्श्व नाट्य के लिए अनिवार्य हैं। दोनों में से यदि किसी एक की हानि होगी, तो नाटक अपने अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकेगा।

हिन्दी-साहित्य में जितने भी नाटक लिखे गए हैं, वे संस्कृत नाट्य-शास्त्र की परम्परा से अवश्य ही प्रभावित हैं। भारतेन्दु द्वारा अथवा भारतेन्दु-युग के लेखकों द्वारा जो नाटक लिखे गए हैं, वे तो प्रमुख रूप से संस्कृत नाट्य-शास्त्र के रस-सिद्धान्त से प्रभावित रहे ही हैं। 20वीं शताब्दी के नाटकों में पश्चिम के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण और यथार्थ जीवन के चित्रण ने अवश्य कुछ परिवर्तन उपस्थित किए हैं। इन्हीं परिवर्तनों में एक परिवर्तन यह भी हुआ है कि नाटक पाठ्य-नाटक मात्र रह गए हैं। संस्कृत नाट्य-शास्त्र मंच पर आधारित था। अत: हिन्दी के जितने नाटकों ने संस्कृत नाट्य-शैली ग्रहण की, उनमें आप-से-आप रंगमंच की मान्यताएँ समाविष्ट हो गयीं, भले ही उनमें आधुनिक युग के यथार्थ की अवहेलना हो गई हो। लेकिन हिन्दी के ऐसे नाटक, जिन्होंने पश्चिम की नाट्य-शैली ग्रहण की, उन्होंने जीवन की वास्तविकता

तो चित्रित की; किन्तु उन्होंने मनोविज्ञान और चिन्तन की इतनी अधिकता स्वीकार कर ली कि वे रंगमंच के उपयुक्त नहीं रह गए। वे पाठ्य-नाटक मात्र रह गए। पाठ्य-नाटक और रंगमंच के नाटक में सबसे बड़ा भेद यही है। पाठ्य-नाटक कथावस्तु के विन्यास में किसी प्रकार की सीमा स्वीकार नहीं करते। वे उपन्यास की भाँति एक-एक घटना को—चाहे वह बड़ी-से-बड़ी हो, या छोटी-से-छोटी—पात्रों के सहारे स्पष्ट करते चलते हैं। दृश्यों की व्यावहारिकता और क्रम में उनका विश्वास नहीं है। पात्रों की संख्या मनमाने ढंग पर घटती-बढ़ती रहती है और चरित्र-चित्रण में उचित अनुपात का ध्यान नहीं रह जाता। कोई पात्र एक-दो दृश्यों में आकर आँख से ओझल हो जाता है और कोई पात्र बार-बार आकर अनुचित रूप से प्रमुखता प्राप्त कर लेता है। भाषा सर्वत्र एक-सी ही रह जाती है। पात्रों के स्वभाव और जीवन की स्थिति के अनुसार उसमें परिवर्तन नहीं होता। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि पाठ्य-नाटक केवल अभिनय की शैली में उपन्यास ही है। कथा का वर्णन स्वयं लेखक न कर, पात्रों के द्वारा कराता है।

रंगमंच के नाटकों की प्रमुख दृष्टि अभिनयात्मक साहित्य की सृष्टि है। रंगमंच के नियमों को ध्यान में रखकर साहित्य का सौन्दर्य इस कौशल से स्पष्ट किया जाए कि वह दृश्य की आवश्यक और अनुरंजक सामग्री बन जाए। इस प्रकार रंगमंच की कला साहित्य की कला की सहयोगिनी बनकर नए प्रकार से जीवन का चित्रण करे। मैं तो समझता हूँ कि रंगमंच के नाटकों की सृष्टि उस समय तक नहीं हो सकती, जब तक कि अभिनय की कला साहित्य की कला का पथ-निर्देश न करे। एक बार अभिनय की मान्यताओं को स्वीकार करने पर साहित्य की कला अपना कौशल अपने आप निर्धारित कर सकेगी। उदाहरण के लिए, अभिनय की कला कथावस्तु के केवल उन स्थलों का चयन करना चाहती है, जो प्रमुख संवेदना की उभरी हुई परिस्थितियों से निर्मित हैं। साहित्य की कला इन परिस्थितियों को मानकर, इनकी अभिव्यक्ति में जिस शैली को चुनेगी, वह होगी ध्वनि या व्यंजन की शैली। व्यंजना से वह बड़ी-से-बड़ी परिस्थिति को कम-से-कम स्थान और समय में स्पष्ट कर देगी। इससे कथावस्तु का विस्तार भी कम हो जाएगा और अनावश्यक प्रसंगों की उलझनों से बचकर प्रमुख संवेदना ज्योत्स्ना की भाँति मानसिक क्षितिज पर फैल जाएगी। रंगमंच का नाटककार उपन्यासकार की भाँति छोटी-मोटी घटनाओं के मोह में नहीं पड़ सकता। वह कथा की पूरी परिधि में घूम भी नहीं सकता। वह तो अपनी कथा की परिधि में ऐसे बिन्दुओं को चुन लेगा, जो परिधि की दिशा मात्र का निर्देश करते हैं और उन्हीं बिन्दुओं के सहारे वह सम्पूर्ण वृत्त का रूप स्पष्ट कर देगा। श्री जयशंकर प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' नाटक के अभिनय में यही कठिनाई पड़ती है कि नाटककार ने एक अन्वेषक की भाँति छोटी-से-छोटी घटना को भी बहुत बड़ा महत्त्व दे दिया है और चार अंकों में फैली हुई कथा धूमकेतु की रेखा की भाँति क्षितिज के छोर को छूने लगती है। चन्द्रगुप्त चाणक्य और सिंहरण के क्रिया-कलाप एक इतिवृत्त की भाँति अंकित हैं, जिनका सम्बन्ध रंगमंच की अपेक्षा इतिहास से अधिक है। अभिनय के लिए 'चन्द्रगुप्त' नाटक के कितने ही दृश्य काटने पड़ेंगे, तब कहीं कथावस्तु के प्रमुख प्रसंग रंगमंच पर उभर सकेंगे।

'चन्द्रगुप्त' नाटक की अपेक्षा 'अजातशत्रु' नाटक अधिक अभिनेय है जिसमें अधिकतर अभीष्ट प्रसंगों का चित्रण किया गया है। मैंने दोनों ही नाटकों में अभिनय किया है, इसलिए मैं उनको रंगमंच सम्बन्धी कठिनाइयों से परिचित हूँ।

रंगमंच के नाटकों में चरित्र-चित्रण भी विशेष महत्त्व रखता है। चरित्र-चित्रण का सम्बन्ध व्यक्तित्व से है, और व्यक्तित्व मनोविज्ञान पर आधारित है। मनोविज्ञान के दो पक्ष हैं। पहला पक्ष व्यक्ति के संस्कारों से सम्बन्ध रखता है, जो उसके स्वभाव का निर्माण करते हैं। ये संस्कार उसने अपने वंश से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त किए हैं, जो उनके रक्त में हैं। ये बड़ी कठिनाई से बदलते हैं। वैभव और विपत्ति में भी ये व्यक्ति का साथ नहीं छोड़ते और अनायास ही उसके मुख से निकल पड़ते हैं। एक बनिये का लड़का जिस आसानी से दूकान चला सकता है, उस आसानी से एक ब्राह्मण या कायस्थ का लड़का नहीं।

'अजातशत्रु' नाटक में श्री जयशंकर प्रसाद ने पात्र के संस्कारों पर बड़ी गहरी दृष्टि रक्खी है। मागन्धी दरिद्र कन्या है, अतः राजमहिषी होने पर भी उसकी क्षुद्रता नहीं गई और वह काशी में जाकर विलासिनी बनी। इसी प्रकार विरुद्धक, दासी शक्तिमती का पुत्र होने के कारण शैलेन्द्र डाकू बना। छलना, विरोध करते हुए भी पतित नहीं होती, क्योंकि उसमें लिच्छवि रक्त है। इस प्रकार संस्कार मेरुदण्ड बनकर पात्र को अपनी स्थिति में बड़ी स्वाभाविकता प्रदान करता है। मनोविज्ञान का दूसरा पक्ष परिस्थितियों के प्रभाव से सम्बन्ध रखता है। पात्रों के संस्कारों पर जब परिस्थितियों का प्रभाव होता है, तो वे अपना विकास करने लगते हैं। यदि प्रभाव संस्कार के अनुकूल पड़ता है, तो पात्र उचित या अनुचित दिशा में सरलता से विकास करने लगता है। यदि यह प्रभाव संस्कार के प्रतिकूल पड़ता है तो, पात्र में अन्तर्द्वन्द्व या मानसिक संघर्ष आरम्भ हो जाता है। इससे पात्र के मनोविज्ञान के भीतर का एक-एक पार्श्व झलकने लगता है। संस्कार और प्रभाव की उचित युक्ति में ही चरित्र-चित्रण का सौन्दर्य अभिनय-कला के साँचे में ढलता है, तो रंगमंच पर सच्चे जीवन का अवतरण होता है। इस अभिनय-कला में कृत्रिमता के लिए कोई स्थान नहीं है। पात्र अपने मनोविज्ञान में इतना अधिक लीन हो जाए कि वह कार्य या क्रिया को ही अपने मन की दिशा बना ले। प्रायः अभिनय की कला दर्शकों की रुचि को ध्यान में रखने लगती है और उसकी वास्तविकता में अन्तर आने लगता है। हम बिना किसी के देखे जैसा अपना कार्य करते हैं, ठीक वैसा ही कार्य रंगमंच पर भी हो। यदि हम यह जान लें कि कोई हमें कार्य करते हुए देख रहा है, तो हम कार्य करते हुए कुछ 'बनने' लगते हैं। रंगमंच पर भी यह 'बनना' स्वाभाविकता में बाधा डालता है। स्थिति तो ऐसी हो कि पात्र रंगमंच पर इस मनोविज्ञान से कार्य करे कि कोई उसे देख नहीं रहा है। दर्शक जैसे पात्र के अनजाने किसी दीवार के छिद्र से उसका क्रिया-कलाप देख रहे हैं।

रंगमंच के नाटकों के लिए संवाद संक्षिप्त और चुभते हुए होने चाहिए। कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक भावों को व्यक्त करने वाली प्रभावशालिनी भाषा हो, जिससे हृदय पर पात्र की पूरी छाप पड़ सके। प्रभाव डालने के लिए प्रसाद-युग के पूर्व

नाटकों में पद्य का प्रयोग हुआ करता था। नारायण प्रसाद बेताब और राधेश्याम कथा-वाचक के नाटकों में तो प्रमुख पात्रों का शायद ही कोई ऐसा संवाद हो, जिसका अन्त किसी पद्य से न हुआ हो। श्री माखनलाल चतुर्वेदी के 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक, श्री बदरी-नाथ भट्ट के 'चन्द्रगुप्त' नाटक और माधव शुक्ल के 'महाभारत' (पूर्वार्द्ध) नाटक में भी पद्य का प्रचुर प्रयोग हुआ है। श्री जयशंकर प्रसाद के 'अजातशत्रु' तथा 'स्कन्दगुप्त' नाटकों में भी दो-एक स्थलों पर संवादों में पद्य का प्रयोग हुआ है, किन्तु संवाद में पद्य का प्रयोग—जब तक वह कोई उद्धरण न हो, अस्वाभाविक प्रतीत होता है और इसी-लिए रंगमंच के नाटकों में संवाद के अन्तर्गत पद्य का प्रयोग एकदम छोड़ दिया गया है। इसी प्रकार स्वाभाविकता की माँग ने 'स्वगत कथन' का पूर्ण बहिष्कार कर दिया है; यद्यपि नाटक में यह शैली प्राचीनकाल से चली आई है। संस्कृत में तो 'आकाश-भाषित' की शैली बड़ी कौतूहलजनक थी; किन्तु आज रंगमंच पर 'आकाश-भाषित' के लिए कोई स्थान नहीं रह गया है। 'जनान्तिक' और 'अपवारित' तो केवल कान में रहस्य की बात कहने में समाप्त हो गए हैं।

कथोपकथन में भाव-तीव्रता के साथ मनोरंजन का भी स्थान है, किन्तु केवल मात्र मनोरंजन ही कथोपकथन का संचालक नहीं है। अनावश्यक मनोरंजन भी पात्र के विकास में बाधा डालने वाला समझा गया है। प्राचीन नाटकों के लिए एक विशिष्ट पात्र की अवतारणा की जाती थी। वह था विदूषक। किन्तु विदूषक का विचित्र वेश और उसकी मोदक-प्रियता अब विशेष आकर्षण और मनोरंजन की वस्तु नहीं है। अब तो जहाँ कहीं विनोद या परिहास की आवश्यकता पड़ती है, कथानक का निर्वाह करने वाले कुछ पात्रों द्वारा ही उसकी पूर्ति कर ली जाती है। कथानक-सूत्र के विकास में ऐसी परिस्थितियाँ भी उपस्थित कर दी जाती हैं, जहाँ गम्भीर क्रिया-कलाप के बीच में निर्झरिणी की भाँति किसी पात्र या पात्रों की खिलखिलाहट गूँज उठती है। प्रसाद जी के 'अजातशत्रु' में वसन्तक विदूषक है, किन्तु वही कार्य स्कन्दगुप्त में धातुसेन से करा दिया गया है, जो सिंहल का राजकुमार है। चन्द्रगुप्त में कभी-कभी चाणक्य जैसा गम्भीर पात्र भी विनोद और परिहास करता है। ध्रुवस्वामिनी में हास्य की सृष्टि बौने, कुबड़े और हिजड़े द्वारा की गई है, जिससे रामगुप्त के व्यक्तित्व की विकृति और हल्केपन की सूचना मिल सके। मेरी दृष्टि से रंगमंच के नाटक में विदूषक जैसा पात्र तो अवश्य ही होना चाहिए। भले ही वह कथानक के किसी सूत्र का विधायक बना दिया जावे। दर्शकों के अनुरंजन की सामग्री किसी-न-किसी रूप में होनी आवश्यक है और मैं समझता हूँ कि स्वस्थ समाज का स्वाभाविक गुण हँसना, उसके विकास का द्योतक है और यदि समाज या व्यक्ति अपने पर ही हँसने का गुण प्राप्त कर लें, तो इससे अधिक परिष्कार और आत्म-विश्लेषण की कोई कला संसार में नहीं है।

संवाद की भाषा के सम्बन्ध में भी दो मत हैं। पहला मत तो यह है कि नाटक में सर्वत्र एक-सी भाषा हो, जिसके द्वारा कथावस्तु की सम्पूर्ण संवेदना एक ही रूप से दर्शकों के हृदयों तक पहुँचायी जा सके। यदि कथानक में ऐसे पात्र हों, जो विदेशी हों और वे अन्य पात्रों से भिन्न भाषा बोलते हों, तो उनके संवाद भी अन्य पात्रों के साथ

एक ही भाषा में होने चाहिए। इस प्रकार की शैली प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' नाटक में है। जहां सिकन्दर, सिल्यूकस और कार्नेलिया आदि उसी शुद्ध और तत्सम शैली में बातें करते हैं; जिसमें चाणक्य, चन्द्रगुप्त और अलका आदि का कथोपकथन है। दूसरा मत है कि संवाद की एक ही शैली भिन्न-भिन्न पात्रों के व्यक्तित्व की स्वाभाविकता के विपरीत है। जीवन में हम देखते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के बात करने का अपना अलग ढंग होता है। यदि रंगमंच पर स्वाभाविकता का लाना विधेय है, तो हमें प्रत्येक पात्र के स्वभाव और व्यक्तित्व के अनुसार कथोपकथन की शैली का निर्धारण करना होगा। इससे नाटक में विविधता और रस का उद्रेक होगा और कुतूहल को बल प्राप्त होगा। यदि नाटक में कोई विदेशी पात्र है, तो उसकी भाषा अपनी विशिष्ट प्रकृति लिए हुए अन्य पात्रों की भाषा के अधिक-से-अधिक समीप होगी। यदि पात्र सामान्य होगा, तो उस शैली से विनोद की सृष्टि होगी। यदि पात्र गम्भीर होगा, तो उससे उसके व्यक्तित्व का बोध होगा। दोनों ही परिस्थितियों में स्वाभाविकता की रक्षा होगी।

रंगमंच के नाटकों में व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को ऊपर उठाने की शक्ति है। यह आवश्यक नहीं कि उन नाटकों में उपदेश या प्रवचन हो। जीवन का सत्य, स्वाभाविकता का चित्रण और नैतिक दृष्टिकोण का संकेत कथावस्तु की व्यंजना से ही उत्पन्न किया जा सकता है। काव्य या उपन्यास केवल श्रव्य है, किन्तु नाटक श्रव्य और दृश्य होने के कारण अधिक प्रभावशाली है। नाटक के रंगमंच पर जैसे हम एक और संसार की सृष्टि करते हैं और हम अपनी परिस्थितियों और समस्याओं के सुलझाने या अन्य व्यक्तियों के राग-विराग में सहानुभूति और सहयोग प्राप्त करने की एक नयी दृष्टि प्राप्त करते हैं। अतः यदि नाटक साहित्य का सबसे बलिष्ठ अंग होना चाहता है, तो उसे रंगमंच का आश्रय ग्रहण करना ही होगा। यदि नाटक प्राण है, तो रंगमंच उसका शरीर। बिना शरीर के प्राण की अभिव्यक्ति सम्भव नहीं हो सकती।

संस्कृत-नाटकों का रंगमंच था। इस प्रकार मैथिली नाटकों ने भी रंगमंच की सृष्टि की। इसके बाद बंगाली नाटकों और मराठी नाटकों ने भी अपने अभिनय की व्यवस्था के लिए रंगमंच प्राप्त किया। किन्तु हिन्दी नाटकों को रंगमंच प्राप्त नहीं हो सका। मुस्लिम शासक की बाहु जहाँ तक शक्तिशालिनी रही, वहाँ तक रंगमंच के अंकुर निर्मूल हुए; क्योंकि रंगमंच की व्यवस्था धर्म के प्रतिकूल समझी गयी। दूसरी बात यह भी रही कि रंगमंच की व्यवस्था के लिए चारों ओर के वातावरण में सुख और शान्ति होना आवश्यक है। विदेशी शासन में यह सम्भव नहीं था। रंगमंच की व्यवस्था कहीं सांस्कृतिक जागरण का रूप न ले, इसलिए अंग्रेजों ने भी शासन की ओर से किसी प्रकार का सहयोग प्रदान नहीं किया। व्यावसायिक दृष्टिकोण से पारसी थियेट्रिकल कम्पनियाँ छुट-पुट ढंग से शहरों में घूमती रहीं। छोटी-मोटी नाटक मंडलियाँ भारतेन्दु के युग में काम करती रहीं, जिनमें जनता को जगाने की कोई क्षमता नहीं थी। ये भी कुछ दिनों में बिखर गयीं। रामलीला और रासलीला केवल धर्म-प्रवण वर्गों और निम्न वर्गों तक सीमित रह गयीं। अभिनय-कला समाज में भाँड़ों की नकल की श्रेणी तक पहुँच गयी और संगीत विलास की अट्टालिकाओं में निवास करने लगा।

नवयुग के जागरण ने हमें नया प्रभात और नयी किरण प्रदान की है। हमारे साहित्य और सांस्कृतिक वैभव को दृष्टि प्राप्त हुई है। पश्चिम ने हमें सवाक् चित्रपट प्रदान कर एक विशाल रंगमंच प्रदान किया है और हमने विश्वविद्यालयों तथा शिक्षा-संस्थाओं में विद्यार्थियों द्वारा एक प्रयोगात्मक रंगमंच एकांकी नाटकों द्वारा प्राप्त किया है। अब ऐसा वातावरण हमें मिल गया है, जिसमें अभिनय और संगीत, शिक्षा के उच्च स्तर पर आसीन हुए हैं। वह दिन भी दूर नहीं है, जब ललित कलाएँ उच्च-से-उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में निर्धारित होंगी और अभिनय-कला सांस्कृतिक अंग बनकर अपना विकास करेगी।

अभिनय-कला में वेश-भूषा का अध्ययन, संगीत, प्रकाश-व्यवस्था और विविध भावों के प्रदर्शन की कला निहित है। सवाक् चित्रपटों ने हमारे जीवन को ललित दृष्टि से देखने की शैली भी प्रदान की है। यदि सवाक् चित्रपट में चित्रित जीवन को हम अधिक स्वाभाविक और सीमित कर लें, तो हमें नाटकीय रंगमंच प्राप्त हो सकता है। जब तक हम रंगमंच की पूरी जानकारी प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक हम अभिनय के योग्य नाटकों की सृष्टि नहीं कर सकते। अतः साहित्य और रंगमंच के योग से ही हम वास्तविक नाटकों का रूप प्राप्त कर सकेंगे और मुझे विश्वास है कि निकट ही रंगमंच और रंगमंच के नाटक हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

यह देश वीरों का देश रहा है और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आने के पूर्व हमारे देश के इतिहास में ऐसी अनेक घटनाएँ दर्ज हैं जिनसे हमारे देश के पौरुष का साकार चित्र उपस्थित होता है। उन वीर-गाथाओं में ऐसे यशस्वी पुरुष हुए हैं, जिनके प्रति जनता की श्रद्धा अनायास ही केन्द्रीभूत हो जाती है। हमारे देश में वीर-पूजा का महत्त्व शताब्दियों से चला आ रहा है। वीर-पूजा में श्रद्धा और विश्वास की भावना है और इसीलिए जिन महापुरुषों ने जनता के विश्वास और श्रद्धा की आत्म-समर्पणमयी भावना प्राप्त की; वे सहज ही वीर-पूजा के अधिकारी हो गए। प्राचीन काल में महाभारत के युद्ध के अवसर पर यही श्रद्धा और विश्वास की भावना पाण्डवों के प्रति रही और युद्ध के प्रत्येक पर्व में ये पाण्डव अपनी वीरता से श्रद्धा-भाजन हुए। किन्तु इतिहास ने किसी भी कौरव को वीर-पूजा का अधिकारी नहीं समझा, क्योंकि किसी भी कौरव ने जनता की श्रद्धा और विश्वास की भावना प्राप्त नहीं की।

इसी प्रकार सन् 1857 की क्रान्ति में जिन महापुरुषों ने जनता का नेतृत्व करते हुए विदेशियों से संघर्ष लिया, वे सहज ही वीर-पूजा के अधिकारी हुए। यह बात दूसरी है कि इस संघर्ष में उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसके अनेक राजनीतिक और आर्थिक कारण हो सकते हैं। किन्तु जहाँ तक उनके आत्म-बलिदान की बात है, भारतीय इतिहास किसी प्रकार की शंका नहीं करता। बिठूर के नाना साहब, दिल्ली के बहादुरशाह, कालपी की ओर से बढ़ने वाले तात्याँ टोपे, मन्दसौर के फ़ीरोज़शाह और झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की वीरता से किसी भी देश का इतिहास गौरव-सम्पन्न हो सकता है। अंग्रेज़ी इतिहासकार इस बात पर आश्चर्य करते हैं कि इस देश की स्त्रियों में इतना अधिक मनोबल कैसे है कि वे पुरुषों से भी आगे बढ़ कर अपने प्राण हथेली पर रखकर संग्राम-

भूमि में अपनी शक्ति का परिचय दे सकती हैं। महारानी लक्ष्मीबाई ने बाईस वर्ष की अवस्था में जो युद्ध-कौशल प्रदर्शित किया है, वह सम्भवतः संसार के इतिहास में पहली घटना है। महारानी लक्ष्मीबाई की शक्ति और साहस की ध्वजा युद्धों के इतिहास में सबसे अधिक ऊँचाई पर फहराती रहेगी। यह हमारे देश की परम्परा का सबसे ज्वलन्त प्रमाण है कि पुरुषों के साथ स्त्रियाँ भी कन्धे-से-कन्धा जोड़कर देश की स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष कर सकती हैं।

कुछ वर्ष पूर्व समस्त संसार में अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष का आन्दोलन चला था। जिस आन्दोलन के लिए संसार के प्रबुद्ध वर्ग अब क्रियाशील हुए उस आन्दोलन का मंगलाचरण महारानी लक्ष्मीबाई ने उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में ही उपस्थित कर दिया था। आवश्यकता इस बात की है कि यह अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन महारानी लक्ष्मीबाई को राष्ट्रीयता का प्रतीक मानकर हमारे देश का गौरव विदेशों में प्रतिष्ठित करे। जिस अपरिमित शक्ति से महारानी लक्ष्मीबाई ने राष्ट्रीयता की शपथ ली थी और विदेशियों के आतंक से इस देश को मुक्त कर उसे स्वाधीनता की दिशा में अग्रसर करने का प्रयत्न किया था; वह इस देश के लिए ही नहीं, विदेशों के लिए भी साहस के ध्रुव नक्षत्र की भाँति अटल होना चाहिए। यही कारण है कि प्रस्तुत नाटक में महारानी लक्ष्मीबाई का कथानक अंतिम अंक में चरम सीमा के रूप में उपस्थित करने का प्रयत्न किया गया है।

मुझे विश्वास है कि इस नाटक से प्रथम भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम का सम्पूर्ण चित्र हमारे विद्यार्थियों को प्राप्त होगा और वे राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत होकर त्याग, तपस्या, वीरत्व और आत्म-बलिदान की भावना से देश के महान् नागरिक बनने का गौरव प्राप्त कर सकेंगे।

—लेखक

पात्र-सूची

पुरुष

रंगोजी बापू	: सतारा के प्रतिनिधि
अज़ीमुल्ला	: बिठूर के प्रतिनिधि
नैन्सी	: एक अंग्रेज नवयुवती
अब्दुल्ला ख़ाँ	: अज़ीमुल्ला का गुप्तचर
नाना साहब	: बिठूर के उत्तराधिकारी और क्रांति के नेता
बाला साहब	: नाना साहब के भाई
भोलाराम नारायण राव सूरज सिंह अमीर ख़ाँ	: बैरकपुर के क्रांतिकारी सिपाही
अली नक़ी ख़ाँ	: क्रांतिकारी नेता
मंगल पांडे	: अमर शहीद
बादशाह बहादुरशाह	: दिल्ली के सम्राट्
अहसानुल्ला ग़ुलाम अब्बास ज़क़ाउल्ला बख़्त ख़ाँ	: बादशाह बहादुरशाह के सरदार
फ़रुख़द्दीन मुकुन्दी लाल	: मेरठ के क्रांतिकारी सिपाही
अमर सिंह	: कुँवर सिंह के भाई
कुँवर सिंह	: बिहार के क्रांतिकारी नेता
जवान सिंह निखार सिंह	: कुँवर सिंह के जागीरदार
जयदेव कृपाराम	: जगदीशपुर के किसान
नीलकंठ	: वैद्य
मिरज़ा	: फ़ीरोज़शाह के वज़ीर
फ़ीरोज़शाह	: बहादुरशाह प्रथम के पुत्र

रामदास	:	फ़ीरोज़शाह के सहायक
वीरभद्र	:	परदेशी
तात्यां टोपे	:	रानी लक्ष्मीबाई के सहयोगी
मोरो पंत	:	रानी लक्ष्मीबाई के सलाहकार
लक्ष्मण राव	:	रानी लक्ष्मीबाई के मंत्री
कुँवर ख़ुदाबख़्श	:	तोपों का संरक्षक

स्त्री

लक्ष्मीबाई	:	झाँसी की रानी

महाराज चरखारी, चरखारी के राज्यमंत्री, तात्यां टोपे के तीन सरदार, सेवक, नक़ीब, चोबदार, सिपाही, गुप्तचर, दूत, सैनिक, दो भील सिपाही, बूढ़ी स्त्री आदि ।

पूर्व-रंग

सन् : 1854

स्थान : लन्दन

समय : संध्या समय, पाँच बजे।

[एक सजे हुए कक्ष में रंगोजी बापू टहलते हुए एक पत्र पढ़ रहे हैं। कुछ क्षण बाद अज़ीमुल्ला का प्रवेश। अज़ीमुल्ला अत्यन्त गौरवपूर्ण तेजस्वी व्यक्तित्व के नवयुवक हैं। किन्तु इस समय उनके मुख पर निराशा और मलिनता के चिह्न हैं। अज़ीमुल्ला के पैरों की आहट सुनकर रंगोजी बापू पत्र पढ़ना बन्द कर उनकी ओर दृष्टि उठाते हैं।]

रंगोजी बापू : क्यों अज़ीमुल्ला ! क्या उत्तर मिला ?

अज़ीमुल्ला : जिसकी आशा नहीं थी, वही उत्तर मिला। ये कम्पनी के संचालक ! बबूल के काँटे हैं। बीच-बीच में जो फूल खिलाते हैं, उनमें रंग भले ही हो; गंध बिलकुल नहीं है। विश्वासघाती, धोखेबाज़ !

रंगोजी : यही बात मैंने सतारा में कही थी। जब गवर्नर-जनरल डलहौज़ी ने भारतीय नरेशों के राज्य हड़पने की नीति की घोषणा कर सतारे का राज्य कम्पनी के अधिकार में ले लिया था, तभी मैंने कहा था कि वह खूंख्वार भेड़िया है;जो इस देश के सभी राज्यों को धीरे-धीरे निगल जाएगा। वह सत्य और न्याय की ओर देखेगा भी नहीं।

अज़ीमुल्ला : सन् 1757 में हुए प्लासी के युद्ध को जीतकर कम्पनी अंधी हो गई है और अपने साम्राज्यवाद का स्वप्न देखने लगी है।

रंगोजी : पर मैं अपने भोले देशवासियों को क्या कहूँ ! सतारा का सिंहासन छिन जाने के बाद राजवंशियों ने कहा—नहीं-नहीं, इंग्लैंड जाकर न्याय की पुकार करो, वहाँ न्याय अवश्य मिलेगा। मैं तो कम्पनी की नीति जानता हूँ कि वह स्वयं भारत में अपना राज्य विस्तार करना चाहती है, पर मुझे बलपूर्वक लन्दन भेज ही दिया। यहाँ आकर मैंने कितने अधिकारियों से बातें कीं ! सबका यहाँ एक ही बना-बनाया उत्तर है—गवर्नर-जनरल ने जो निर्णय किया है, हमारी राय में वही ठीक है।

अज़ीमुल्ला : रंगोजी ! मैं आपसे बिलकुल सहमत हूँ, मुझे भी ब्रह्मावर्त बिठूर से नाना साहब ने यहाँ भेजा। कम्पनी ने उनके पिता बाजीराव का सिंहासन छीनकर उसके

बदले उन्हें आठ लाख वार्षिक पेन्शन देने का वचन दिया था। श्रीमंत बाजीराव की मृत्यु के बाद उनके दत्तक-पुत्र नाना साहब को वह पेन्शन मिलनी चाहिए, नहीं तो उनका राज्य वापस करना चाहिए; लेकिन कम्पनी राज्य हड़पकर कहती है कि हम दत्तक-पुत्र का कोई अधिकार नहीं मानते।

रंगोजी : कम्पनी ने राज्य के हड़पने के लिए यही नीति तो अपनायी है। और वह नीति अधिकारपूर्वक प्रचारित की जाती है कि हम दत्तक-पुत्र का अधिकार नहीं मानते। इसी नीति से कम्पनी ने भोंसले का नागपुर राज्य भी हड़प लिया। भोंसले फिरंगियों के परम मित्र थे—कम्पनी की न जाने कितनी सहायता उन्होंने की थी—कहना तो यह चाहिए कि वे अंग्रेज़ों को अपने गले का हार समझते थे—किन्तु उन्हीं फिरंगियों ने भोंसले के मरने पर नागपुर का राज्य अपने अधिकार में ले लिया, क्योंकि भोंसले की कोई सन्तान नहीं थी।

अज़ीमुल्ला : हाँ, फिरंगियों ने नागपुर का विशाल राज्य हथिया लिया और जानते हो, नागपुर का राज्य कितना बड़ा है? छिहत्तर हज़ार आठ सौ बत्तीस वर्गमील, जिसकी वार्षिक आय पचास लाख रुपया है। राजमहल के दरवाज़ों को तोड़कर कम्पनी की सेना महल के भीतर घुस गई। रानियों को अपमानित किया गया। रानियों के गले के हार और हाथों के आभूषण ज़बर्दस्ती उतार लिए गए। क़ीमती हारों को अपने पास रखकर अन्य आभूषणों को बाज़ार में नीलाम किया गया।

रंगोजी : हाय! बड़ा अनर्थ हुआ।

अज़ीमुल्ला : अस्तबल से घोड़ों को खोला गया। हाथीशाला से हाथियों को निकाला गया। बीस-बीस रुपयों में घोड़े नीलाम किए गए और एक-एक हाथी कितने में बेचा गया, जानते हो? सौ-सौ रुपयों में। जिन घोड़ों की जोड़ी पर रघू जी भोंसले सवारी करते थे, उन्हें पाँच रुपयों में नीलाम किया गया। इस प्रतिहिंसा की भी कोई हद है?

रंगोजी : हाँ, मैंने भी ऐसा ही सुना है।

अज़ीमुल्ला : इतना ही नहीं। राजमहल की भूमि भी खोदी गई कि कहीं खजाना ज़मीन के अन्दर तो नहीं रखा गया है। रानी अन्नपूर्णा बाई का अन्तःपुर कितने स्वर्ण, रजत और रत्नखण्डों से सजाया गया था, वह अन्तःपुर ऐसा कर दिया गया; जैसे कोई देवी दानवी बना दी गई हो।

रंगोजी : भाई अज़ीमुल्ला! अब आगे नहीं सुना जाता। ये फिरंगी क्या अब भी अपने को आदमी कह सकते हैं!

अज़ीमुल्ला : रानियों के शरीर पर एक टूटा रत्न भी नहीं रह गया। उनके रत्नजटित आसनों और पलंगों के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। राज्य तो हड़पा ही गया, रघू जी भोंसले की सारी सम्पत्ति मिट्टी में मिला दी गई। यह सब इसलिए कि रघू जी निस्सन्तान मरे और उनके राज्य को कम्पनी अपने अधिकार में लेना चाहती थी। और इस सबके लिए यह सिद्धान्त बना दिया गया कि एक निस्सन्तान राजा किसी

का दत्तक-पुत्र के रूप में अपना उत्तराधिकार नहीं बना सकता।

रंगोजी : लेकिन इसके पहले तो कम्पनी दत्तक-पुत्रों को मान्यता देती थी।

अज़ीमुल्ला : हाँ, सन् 1825 में कोटा के राजा के दत्तक-पुत्र को अंग्रेज़ों ने मान्यता दी थी। सन् 1826 में राजा दौलतराव शिंदे की विधवा रानी ने दत्तक-पुत्र को गोद लिया, सन् 1834 में धार के आसन पर दत्तक-पुत्र बैठा। सन् 1834 में धार के राजा की विधवा रानी को दत्तक-पुत्र लेने की मान्यता दी। दत्तक-पुत्र लेने का अधिकार दिया था, सन् 1837 में ओरछा के राजा को। हिन्दू धर्मशास्त्र भी इसे मान्यता देता है कि प्रत्येक हिन्दू-नरेश को पुत्र गोद लेने का अधिकार है। लेकिन इस तरह के संधि-पत्रों के रहते हुए भी अब डलहौज़ी अपनी निर्लज्जता और दु:साहस में इससे इनकार करता है।

रंगोजी : अरे, सन्1847 तक ये फिरंगी दत्तक उत्तराधिकारियों को मान्यता प्रदान करते रहे हैं; किन्तु वह सब इस तरह मेट दिया गया है, जिस तरह कोई नन्हा बालक पट्टी पर इबारत लिखकर मिटा देता है।

अज़ीमुल्ला : डलहौज़ी तो इस देश के एक-एक राज्य की सत्ता समाप्त कर देना चाहता है। मैं अंग्रेजी जानता हूँ इसलिए समझता हूँ कि उसने जो डाक्ट्रिन आफ़ लेप्स (विलीनीकरण सिद्धांत) चलाया है, यानी निस्सन्तान राजाओं के राज्य को अपने अधिकार में कर लेना, वही उसकी कूटनीति है।

रंगोजी : अब यही देखो, सतारे का सिंहासन। इसी सिंहासन पर गंगा भट्ट ने महाराज शिवाजी का अभिषेक किया था। इसी सिंहासन के सामने श्रीमंत बाजीराव प्रथम ने श्रद्धा से अपना मस्तक झुकाया था, लेकिन निर्दय और निरंकुश डलहौज़ी ने उसी सिंहासन के टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

अज़ीमुल्ला : और उसके सामने सारी प्रार्थनाएँ और अर्ज़ियाँ बेकार सिद्ध हुईं।

रंगोजी : अरे, यहाँ लन्दन में मैंने लाखों रुपये अंग्रेज़ बैरिस्टरों की सेवा में भेंट किए कि कम्पनी के सत्ताधारी हमारी दुखभरी कहानी के प्रति सहानुभूति रखेंगे, लेकिन उन्होंने कहा कि सतारे के राज्य की आशा छोड़ दो। अब उस पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है; क्योंकि सतारा के नरेश महाराज अप्पा साहब निस्सन्तान होकर मरे हैं।

अज़ीमुल्ला : राजा के निस्सन्तान मरने की बात का बहाना तो अन्यायपूर्ण है ही, इन फिरंगियों ने भेद-नीति का सहारा लेकर तो और भी ज़ुल्म ढाया है। तुम जानते हो पंजाब के वीरवर रणजीत सिंह को ? उस सिंह ने चिलियांवाला में डलहौज़ी की सारी फौज को इस तरह कुचला कि उसके नाम से ही डलहौज़ी के होश फ़ाख़्ता हो जाते थे; लेकिन हमारे देश में जयचन्दों की कमी नहीं है। गुजरात के एक जयचन्द ने फिरंगियों से मिलकर इस सिंह को कठघरे में बन्द करा दिया। और फल यह हुआ कि इन फिरंगियों ने पंजाब को भी अपने राज्य में मिला लिया। और पंजाब से भी डलहौज़ी का पेट नहीं भरा, उसने वरया के विशाल भू-खण्ड को भी निगल लिया।

रंगोजी : लगता है, फिरंगियों की राक्षसी भूख से अब कोई राज्य नहीं बचेगा।

[एक सेवक का प्रवेश]

सेवक : महाराज की जय ! एक अंग्रेज़ लड़की मिलने के लिए आई है।

अज़ीमुल्ला : (**सोचकर**) उसे भीतर भेज दो।

सेवक : जैसी आज्ञा। (**प्रस्थान**)

रंगोजी : मैंने देखा है, अज़ीमुल्ला ! कि अपने बचपन में आपने अंग्रेज़ों के यहाँ नौकरी कर अच्छी अंग्रेज़ी सीख ली है और अंग्रेज़ों के रीति-रिवाज भी जान लिए हैं। फिर आप इतने आकर्षक व्यक्तित्व के हैं कि न जाने कितनी अंग्रेज़ों की लड़कियाँ आपसे मिलने के लिए उत्सुक रहती हैं। किसी को अपने साथ ले चलने की बात तो नहीं है? (**मुस्कान**)

अज़ीमुल्ला : जी नहीं ! यह बात नहीं है। मैंने अंग्रेज़ों के साथ जो इतनी घनिष्ठता बढ़ायी है, वह इसलिए कि उनके ज़रिए देश का कुछ काम करा सकूँ। कुछ लड़कियों का ज़ोर कम्पनी के सत्ताधारियों पर है, अगर ये लड़कियाँ सतारा व बिठूर की राजगद्दियाँ बचाने में सहायक हो सकें तो क्या बुराई है? इसीलिए मैं उनको अपनी नीति के चक्र पर चलाता हूँ। हँसता हूँ—उन्हें डिनर पर बुलाता हूँ, उनके साथ घूमता हूँ, और उन्हें भारत की दशा से परिचित कराता हूँ।

रंगोजी : कुछ बात बन जाए तो क्या बुराई है?

अज़ीमुल्ला : बस, अँधेरे का निशाना है। ठीक लग जाए तो अच्छा ही है।

[एक आकर्षक युवती का प्रवेश]

युवती : गुड ईवनिंग, अज़ीमुल्ला !

अज़ीमुल्ला : गुड ईवनिंग, मिस ! आपने आने की कैसे तकलीफ़ फ़रमाई। (**परिचय कराते हुए**) ये हमारे दोस्त रंगोजी हैं, सतारा से आए हुए हैं और ये मिस नैन्सी हैं, हमारी नई दोस्त।

नैन्सी : गुड ईवनिंग।

रंगोजी : नमस्कार।

अज़ीमुल्ला : हाँ, तो मुझसे ख़ास काम?

नैन्सी : ओ, तुम हमको बहुत अच्छा लगता है। आज ईवनिंग में डिनर का वास्ते बोलने आया है।

अज़ीमुल्ला : डिनर में कौन-कौन साहब आ रहे हैं?

नैन्सी : कम्पनी का इंचार्ज जनरल ड्रे भी आने माँगता।

अज़ीमुल्ला : हाँ, उनको ज़रूर आना चाहिए। मुझे उनसे कुछ बातें भी करनी हैं।

नैन्सी : हाँ, होगा, जरूर से होगा। फिर हम तुम्हारे साथ डांस करने माँगता।

अज़ीमुल्ला : पहले बात हो जाए, उसके बाद डांस की बात करूँगा।

नैन्सी : डांस तो होगा ही। अच्चा, ये रंगोजी को बी डिनर का वास्ते आना होगा और

हमारी मदर का साथ डांस करने होगा।

रंगोजी : धन्यवाद ! मैं बाहर डिनर कभी नहीं करता और डांस करना तो जानता ही नहीं।

युवती : तो इतनी जिन्दगी में क्या करता रहा ? डांस बी नई सीखा ?

रंगोजी : स्त्री-पुरुष का साथ-साथ नृत्य करना मैं उचित नहीं मानता।

युवती : हम तुम्हारा बात समजा नई।

अज़ीमुल्ला : जाने दीजिए। रंगोजी पुराने ज़माने के आदमी हैं। ये तलवार के साथ डांस करते हैं।

युवती : तलवार के साथ किस माफ़क डांस होता है ?

अज़ीमुल्ला : ये खुले मैदान में होता है, लेकिन जाने दीजिए। ये दूसरी सोसायटी के आदमी हैं। ये तो नहीं आ सकेंगे। मैं ज़रूर आऊँगा।

युवती : ओ, अगर तुम नहीं आया तो मैं बेहोश हो जाऊँगी।

अज़ीमुल्ला : नहीं, अपना होश ठीक रखिए। आपको मेरी बात डायरेक्टर साहब से भी कहनी होगी।

युवती : ओ, ज़रूर-ज़रूर। हम तो तुम्हारा वास्ते अपना कलेजा उसके सामने निकाल के रख देगा।

अज़ीमुल्ला : कलेजा निकालने के बदले मेरी बात उनके सामने रखिए।

युवती : ओ, इसमें कोई शक का बात नई होगा।

अज़ीमुल्ला : अच्छी बात है। कितने बजे आना होगा ?

युवती : रात दस बजे।

अज़ीमुल्ला : कितने बजे तक फ़ुरसत मिलेगी ?

युवती : सुबू चार बजे।

अज़ीमुल्ला : इतनी देर तक तो नहीं ठहर सकूँगा।

युवती : ओ, कोई बात नहीं। हमारे साथ डांस करके जाने माँगो।

अज़ीमुल्ला : देखूँगा।

युवती : अच्चा, तो श्योर आना। गुडनाइट !

अज़ीमुल्ला : गुडनाइट कैसा ? अभी तो मिलना होगा।

युवती : ओ, हाँ ! हम भूला। माफ़ कीजिए। गुड ईवनिंग !

अज़ीमुल्ला : गुड ईवनिंग। **(प्रस्थान)**

रंगोजी : अजीब सभ्यता है। न शर्म, न लिहाज़। रात-रात भर अकेले घूमना, पुरुषों के साथ नाचना। कपड़े ऐसे पहनना कि शरीर की कोई मर्यादा नहीं। ये अंग्रेज़ हम पर राज करना चाहते हैं। हमारे देश की मर्यादा कैसे बचेगी ?

अज़ीमुल्ला : यही तरकीब तो निकालना है कि ये हम पर राज न कर सकें। अगर समझाने से नहीं समझेंगे तो इन्हें दूसरी तरह समझाना होगा।

रंगोजी : बस, दूसरी तरह से समझा कर ही इनको राह पर लाना है। जब तक देश का बच्चा-बच्चा इनके खिलाफ़ न होगा, तब तक ये अपनी भेद-भरी चालें चलते ही रहेंगे।

अज़ीमुल्ला : आसार तो ऐसे ही दीख पड़ते हैं। ये नैन्सी कई बार डायरेक्टरों से हमारी बात कह चुकी है, लेकिन डायरेक्टरों ने चिकनी-चुपड़ी बातें कह कर इसे भी टाल दिया है। मैं कोशिश में बराबर लगा हुआ हूँ। कहीं किसी रास्ते से सतारा और बिठूर की बातें समझ जाएँ तो फिर इनसे लोहा न लेना पड़े।

रंगोजी : लोहा तो लेना ही पड़ेगा; क्योंकि अंग्रेज़ लोग अपनी बात के पक्के नहीं हैं। कल आश्वासन देते हैं और आज तोड़ देते हैं। और मजे की बात यह है कि जो इनका मित्र बन कर इनकी सहायता करता है, उसी के गले पर ये अपना ख़ूनी खंजर चला देते हैं। इन पर विश्वास कर अपने आप को ही धोखा देना है।

[सेवक का प्रवेश]

सेवक : जय भारत ! अब्दुल्ला साहब आ गए हैं। वे आपसे मिलना चाहते हैं।

अज़ीमुल्ला : उन्हें जल्द ही भीतर भेजो।

सेवक : जो आज्ञा। (**प्रस्थान**)

रंगोजी : हाँ, अब्दुल्ला साहब तो हमारे गुप्तचर हैं। ये यहाँ कम्पनी के अधिकारियों की गुप्त बातों का पता लगाते रहते हैं। इनसे ताज़ी बातें ज्ञात हो सकेंगी।

अज़ीमुल्ला : अब्दुल्ला ख़ाँ को मैं इसीलिए अपने साथ लाया कि गुप्त परिषदों में या अंग्रेज़ों की सोसाइटी में जो बातें चलती हैं, उसकी सूचना वे हमें दें।

[अब्दुल्ला ख़ाँ का प्रवेश]

अब्दुल्ला : जय भारत ! हुज़ूर के क़दमों में आदाब अर्ज़ करता हूँ।

[झुक कर सलाम करता है]

अज़ीमुल्ला : कहो अब्दुल्ला ख़ाँ, क्या ताज़े समाचार हैं ?

अब्दुल्ला : हुज़ूर ! अच्छे नहीं हैं। फिरंगी लोग आप से बड़ी मीठी-मीठी बातें करते हैं, लेकिन अन्दर से कीना रखते हैं।

अज़ीमुल्ला : मैं इसे समझता हूँ, लेकिन साफ़-साफ़ बतलाओ; आज की क्या ख़बर है ?

अब्दुल्ला : हुज़ूर ! आज कम्पनी के डायरेक्टरों की गुप्त सभा हुई। मैंने बेयरे की पोशाक पहिन कर उसी होटल में जगह पा ली थी, जहाँ से साहबों के लिए चाय भिजवायी जाती है। आज की उस मीटिंग में चाय मँगवायी गयी। मैं फ़ुर्ती से चाय और नाश्ता इस तरह लाता गया, जैसे मुझे न इस सभा में कोई दिलचस्पी है, न मैं उनकी बातें समझ सकता हूँ। आज इस सभा में सतारा और बिठूर का मामला भी पेश था। नागपुर के भोंसले राजा की भी चर्चा चल रही थी।

रंगोजी : फिर उस सभा में क्या निर्णय लिया गया ?

अब्दुल्ला : हुज़ूर ! बड़ी देर तक बहस चलती रही। नागपुर के मामले पर सिलवियन साहब ने सब को ललकार कर कहा कि क्या सबब है और हमें क्या हक़ है कि हम किसी भी राज्य को ज़ब्त कर लें, अगर उस राजा के कोई औलाद नहीं है।

अज़ीमुल्ला : एक अंग्रेज़ ने तो सही बात कही।

अब्दुल्ला : लेकिन हुज़ूर ! उसकी एक भी नहीं सुनी गयी। लोगों ने उसकी बात मख़ौल में उड़ा दी। सदर साहब ने फ़ैसला किया कि हम हिन्दुस्तान को एक सल्तनत के अन्दर लाना चाहते हैं, इसलिए हमें कोई न कोई तरक़ीब तो निकालनी ही पड़ेगी; जिससे हमार ी सल्तनत की हदें ज़्यादा से ज़्यादा बढ़ सकें।

रंगोजी : देखा अज़ीमुल्ला ! एक तरफ अंग्रेज़ न्याय का दिखावा करते हैं, दूसरी तरफ अपनी सल्तनत की हदें बढ़ाना चाहते हैं।

अज़ीमुल्ला : क्या बिठूर और सतारा के बारे में भी कुछ तस्क़िया किया गया ?

अब्दुल्ला : हुज़ूर ! एक मेम्बर ने कहा कि अज़ीमुल्ला साहब और रंगोजी यहाँ कई दिनों से अपने-अपने राज्यों की वकालत करने आए हैं। उन्हें कुछ दिनों और मीठी बातों में उलझाये रखो। इस बीच में हम और-और राज्यों को अपने अधिकार में लेंगे। आख़िर में उन्हें भी उसी रास्ते चलाया जाएगा, जिस रास्ते सब गए हैं। तब तक हमारी ताक़त और भी बढ़ जाएगी।

अज़ीमुल्ला : अच्छा, यह बात जान लेने के लिए मैं तुम्हारी तारीफ़ करता हूँ। अब तुम जा सकते हो।

अब्दुल्ला : आदाब अर्ज़ करता हूँ, हुज़ूर ! (**प्रस्थान**)

रंगोजी : मेरी बात सही निकली न अज़ीमुल्ला साहब ?

अज़ीमुल्ला : बिलकुल ! बिठूर से चलने से पहले ही मैं भी यही समझता था, लेकिन नाना साहब ने ज़ोर देकर मुझे यहाँ भेजा कि जब हमारा पक्ष न्यायपूर्ण है तो कम्पनी इतनी अंधी नहीं हो सकती कि हमें हमारे हक़ से महरूम करे। मैंने उनकी बात मान कर यही सोचा कि कोशिश करने में क्या नुकसान है !

रंगोजी : लेकिन अब तो बात साफ़ हो गयी ?

अज़ीमुल्ला : ठीक है, तो अब हम लोगों को वापस चले जाना चाहिए। भारत पहुँचने पर हम लोग जनता को भी आगाह करेंगे कि कम्पनी हमारी दोस्त नहीं, दुश्मन है। जनता भी कम्पनी की हरकतें जानती है और जब हम क्रान्ति का झंडा उठाएँगे तो जनता हमारा साथ देगी।

रंगोजी : मेरा भी ऐसा ही विश्वास है। प्लासी के रण-क्षेत्र पर ही क्रान्ति की ज्वाला सुलगी थी और तभी से जनता यह सोचने लगी है कि कम्पनी के अधिकारों को किस तरह तोड़ा जाए और हमारा देश जल्दी से जल्दी स्वतंत्र हो जाए। प्लासी का युद्ध 1757 में हुआ था। आज सौ बरस बाद भी जनता उस युद्ध का बदला लेना चाहती है। मैं यहाँ से सीधे सतारा जाऊँगा और अंग्रेज़ों की कूटनीति का कच्चा चिट्ठा जनता-जनार्दन के सामने खोल कर रख दूँगा। अब तो हमें अंग्रेज़ों से सीधा संघर्ष लेना पड़ेगा। न्याय और प्रार्थना की भाषा अंग्रेज़ नहीं जानता।

अज़ीमुल्ला : ठीक है, मैं लेकिन सीधे बिठूर नहीं जाऊँगा। क्योंकि जिनके साथ हम अपनी स्वतंत्रता का युद्ध लड़ना चाहते हैं, उनकी शक्ति कितनी है, यह भी हमें जान लेना चाहिए। इसलिए मुझे तो पहले सारे यूरोप की यात्रा करनी है। यह जानना है कि अन्य देशों से अंग्रेज़ों के क्या सम्बन्ध हैं और हमारे संघर्ष की प्रतिक्रिया यहाँ के देशों

पर क्या होगी ? मैं मुसलमान देशों का सहयोग लेने के लिए तुर्किस्तान भी जाऊँगा ।

रंगोजी : आपकी दूरदर्शिता सराहनीय है। मैं भी आपके साथ चलता, किन्तु मुझे सतारा लौटने का शीघ्र ही आदेश मिला है।

अज़ीमुल्ला : कोई बात नहीं । हम लोग फिर मिलेंगे। तुर्किस्तान से मैं मिस्र जाऊँगा। मिस्र के साथ मैं अपने राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित करूँगा, फिर मैं रूस भी जाना चाहूँगा। रूस अंग्रेज़ों का दुश्मन है और अभी हाल में सेबेस्टोपोल के युद्ध में अंग्रेज़ों ने रूस से करारी मात खायी है। मैं यह भी जानना चाहूँगा कि हमारे क्रान्ति-युद्ध में रूस हमारा साथ एशिया में भी दे सकेगा या नहीं । ये सब जानकारियाँ लेकर मैं बिठूर लौटूँगा और नाना साहब की सेवा में पहुँच कर क्रान्ति की योजना बनाऊँगा ।

रंगोजी : मुझे विश्वास है, अज़ीमुल्ला साहब, कि आप इतना अनुभव पाने के बाद अपनी योजना में निश्चय ही सफलता प्राप्त करेंगे। दक्षिण से मैं भी आपकी सहायता के लिए पहुँचूंगा।

अज़ीमुल्ला : आपकी सहायता का स्वागत नाना साहब बड़े प्रेम से करेंगे। अच्छा तो आज की हमारी मंत्रणा समाप्त हुई।

रंगोजी : हाँ, अब आप विश्राम कीजिए । मुझे भी पूजा पर बैठना है ।

अज़ीमुल्ला : जय भारत !

रंगोजी : जय भारत !

[दोनों का दो दिशाओं में प्रस्थान]

[परदा गिरता है ।]

पहला अंक

काल : 1856 ई०

स्थान : बिठूर

[**स्थिति :** नाना साहब के राजमहल की बारहदरी। सामने भागीरथी का नयनाभिराम प्रवाह। पृष्ठभूमि में शिल्प-कला से मंडित ऊँचे मंदिर, जिनके स्वर्ण-कलशों का प्रतिबिम्ब गंगा के तरंगित प्रवाह में लहरा रहा है।

बारहदरी में मखमली क़ालीन बिछा हुआ है। द्वार पर रेशमी वस्त्र। छत से झूलते हुए रत्न-जटित फ़ानूस, स्थान-स्थान पर बड़े-बड़े दर्पण लगे हुए हैं और हाथी-दाँत तथा मणि-रत्नों से निर्मित अनेक कला-कृतियाँ। दीवार पर छत्रपति

शिवाजी, बाजीराव प्रथम, सदाशिव राव भाऊ, विश्वासराव, माधवराव और नाना फड़नवीस के सुन्दर चित्र।

श्री नाना साहब का चिन्तित मुद्रा में प्रवेश। वे धीरे-धीरे टहलते हुए प्रवेश करते हैं। पुष्ट शरीर, गोल चेहरा, सिंह के समान सब ओर घूमने वाली तेजस्वी और भेदक दृष्टि, बंक भ्रू-रेखा, मस्तक पर रत्न-जटित कलंगी लगा उष्णीष। कमख़ाब का अँगरखा पहने हुए हैं। कमर में रत्नों की प्रभा से मंडित म्यान, हाथ में तलवार। चौखाने का सटा हुआ पैजामा, पैर में विशेष रूप से ऊपर उठी हुई नोक वाले जूते। उनके पीछे उनके भाई बाला साहब हैं। वे भी राजसी वेश-भूषा से सुसज्जित हैं। कुछ क्षणों में नाना साहब पीछे मुड़कर बाला साहब को संबोधित करते हैं—]

नाना साहब : बाला साहब ! हमने अंग्रेज़ों के साथ सदा ही शिष्ट व्यवहार रक्खा। हमारे इस महल में न जाने कितने अंग्रेज़ दम्पती विश्राम करने आए। हमने उनकी पूरी आवभगत की। कितनी बार उन्होंने हमारे बड़े-बड़े भोजों और उत्सवों में भाग लिया और जब वे बिदा हुए; तब हमने बहुमूल्य शालों, सच्चे मोतियों की मालाओं और अनेक रत्न-जटित आभूषणों की भेंट दी। (**कुछ रुक कर सोचते हुए**) हमारे पिता स्वर्गीय बाजीराव जी ने हमें गोद लेकर अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया, हमें पेशवाई के सब अधिकार दिए; किन्तु उनकी मृत्यु होते ही, जो संधि के अनुसार हमें आठ लाख की पेन्शन मिलनी चाहिए, उसे इस कम्पनी ने मान्यता नहीं दी। कहाँ तो कम्पनी के अधिकारी मुझसे इतनी मित्रता और आत्मीयता रखते थे और कहाँ मेरी पेन्शन के प्रश्न पर वे इतने उदासीन हो गए, जैसे हमारा वंश सामान्य वंश है और हमें उस वंश के उत्तराधिकारी होने का कोई अधिकार नहीं है।

बाला साहब : वास्तव में यह एक बहुत बड़ा आश्चर्य है। आपने जिस लता को अमृत-जल से सींचा, उसी लता में ऐसा विषधर छिपा हो, जो अवसर पाते ही हमें डस ले !

नाना साहब : चिन्ता की बात नहीं होनी चाहिए। यहाँ के अधिकारी यदि विश्वासघाती हैं तो रहें, किन्तु लंदन में कम्पनी का जो केन्द्रीय मंडल है, उसे तो न्याय का पक्ष लेना चाहिए। इसीलिए मैंने अपने विश्वसनीय मंत्री अज़ीमुल्ला को लंदन भेजा कि वह कम्पनी के अधिकारियों के सामने मेरा पत्र रखे और हमारे राजवंश के लिए न्याय प्राप्त करे।

बाला साहब : अज़ीमुल्ला तो आज प्रातः लौट भी आए। वे आपकी सेवा में आते ही होंगे। बड़े नीति-कुशल हैं वे। उन्होंने कम्पनी के अधिकारियों को अवश्य ही अपने अनुकूल बनाया होगा। वे कोई शुभ समाचार अवश्य लाए होंगे।

नाना साहब : देखें, वे क्या समाचार लाते हैं। यों उनके हाथ मैंने कम्पनी ने अधिकारियों के पास जो पत्र भेजा, वह मैंने बहुत सोच-समझ कर लिखा था।

बाला साहब : हाँ, आपके पत्र का प्रभाव तो अच्छा ही पड़ना चाहिए ।

नाना साहब : देखो, वह पत्र यह है (**पढ़ते हुए—**)

"कम्पनी के अधिकारीगण,

पेशवा के श्रेष्ठ परिवार के साथ साधारण जनों का-सा बर्ताव करने में कम्पनी ने महान् अन्याय किया । स्वर्गीय श्रीमन्त बाजीराव साहब ने जब अपना राज-सिंहासन कम्पनी को सौंपा, तब स्पष्ट रूप से यह निर्णय हुआ था कि उसके बदले कम्पनी वार्षिक आठ लाख रुपया दे । यदि पेन्शन सदा के लिए चालू न रहती हो, तो फिर पेन्शन के बदले में छोड़ा हुआ राज्य भी आपके पास सदा के लिए क्योंकर रह सकता है ? एक फ़रीक तो प्रतिज्ञा-पत्र पूरा अमल करे और दूसरा फ़रीक जान-बूझ कर उसे ठुकराए, यह तो घोर अन्यायपूर्ण, असंगत और अनुचित बात है ।

कम्पनी के मित्र
नाना साहब, बिठूर

स्वर्गीय श्रीमन्त बाजीराव साहब के उत्तराधिकारी ।"

बाला साहब : पत्र तो वास्तव में न्याय का पक्ष दिलाने वाला है ।

[सेवक का प्रवेश]

सेवक : श्रीमन्त की जय !

बाला साहब : क्या समाचार है ?

सेवक : महामंत्री अज़ीमुल्ला द्वार पर हैं । वे प्रवेश चाहते हैं ।

नाना साहब : उन्हें शीघ्र ही भीतर भेजो ।

सेवक : जो आज्ञा । (**प्रस्थान**)

नाना साहब : तो अज़ीमुल्ला आ गए । देखें, क्या समाचार लाते हैं ।

बाला साहब : समाचार तो अच्छा ही होना चाहिए ।

[अज़ीमुल्ला का प्रवेश]

अज़ीमुल्ला : श्रीमन्त की जय !

नाना साहब : अज़ीमुल्ला ! समाचार कहो । मैं प्रत्येक क्षण उत्सुक हूँ कि मेरे पत्र पर कम्पनी ने क्या विचार किया ।

अज़ीमुल्ला : श्रीमन्त ! मैंने कम्पनी के सामने बिठूर के प्रति न्याय कराने में कोई प्रयत्न नहीं छोड़ा, पर कम्पनी ने···

नाना साहब : (**बीच ही में**) कोई न्याय नहीं किया ?

अज़ीमुल्ला : (**गिरे हुए स्वर से**) नहीं श्रीमन्त ! कोई न्याय नहीं किया । मैं छोटे से छोटे और बड़े से बड़े अधिकारी से मिला, उन्हें अपने यहाँ बुलाया, स्वयं उनके यहाँ गया । बहुत दिनों तक वे मीठी-मीठी बातें करते रहे । फिर एक दिन अपने

गुप्तचर अब्दुल्ला से ख़बर मिली कि कम्पनी ने हमारा प्रस्ताव ठुकरा दिया। रंगोजी भी सतारा से आए हुए थे। उन्हें भी निराश होकर लौट जाना पड़ा।

बाला साहब : तो अंग्रेज़ यहाँ तिजारत के बहाने आए और अब वे हमारे देश की स्वाधीनता को नष्ट करने पर तुले हुए हैं। वणिक साम्राज्यवादी बनने का सपना देख रहा है।

नाना साहब : लेकिन यह सपना अब ज्यादा देर तक नहीं चलने दिया जाएगा। हमारी राजनीति में साम, दाम और भेद के साथ दंड भी कहा गया है। अब कम्पनी की साम्राज्यवादी नीति के लिए उन्हें ऐसा कठोर दंड दिया जाएगा कि वह उसे कभी भूला नहीं सकेगी।

अज़ीमुल्ला : मैं भी यही सोचता हूँ, श्रीमन्त ! इसीलिए मैं लन्दन से लौट कर सीधे भारत नहीं आया। मैं लन्दन से तुर्किस्तान, मिस्र और रूस होकर आया हूँ। यह जानने के लिए कि अगर हमने कम्पनी के ख़िलाफ अपनी तलवार उठायी, तो क्या वे हमारी मदद कर सकेंगे ?

नाना साहब : यह तो तुमने बहुत दूर की सोची। पहले हमें यह जान लेना है कि हमारे देश के नरेश और उनकी जनता हमारा कितना साथ देगी ? इसके लिए हमें तैयारी करनी होगी।

बाला साहब : इसके साथ ही हमारी सेना—जिसे अंग्रेज़ लोग काली सेना कहते हैं, हमारे साथ होनी चाहिए। अगर लाखों सिपाहियों की यह सेना हमारे साथ हो तो भारत के मुट्ठी भर अंग्रेज़ हमारा क्या बिगाड़ सकते हैं ?

नाना साहब : बाला साहब ! तुम ठीक कहते हो। इसके लिए हमें गुप्त रूप से संगठन करने की योजना बनानी चाहिए। अज़ीमुल्ला ! इस योजना को कहाँ से आरंभ किया जाए ? (**पुकार कर**) दिवाकर !

नेपथ्य से : आज्ञा, श्रीमन्त !

[सेवक का प्रवेश]

नाना साहब : देखो, कोई भी व्यक्ति मिलने के लिए आए, तो उसे प्रवेश मत दो।

सेवक : जैसी आज्ञा, श्रीमन्त ! (**प्रस्थान**)

नाना साहब : हाँ, तो अज़ीमुल्ला ! यह योजना कहाँ से आरंभ की जाय ?

अज़ीमुल्ला : श्रीमन्त ! पंजाब से लेकर कलकत्ते तक जो हमारी सेना की अनेक छावनियाँ हैं, उनमें हमें सबसे पहले स्वतंत्रता का संदेश पहुँचाना चाहिए।

नाना साहब : यह संदेश बीज रूप से तो सेनाओं में वर्तमान है। हमारे सिपाही अंग्रेज़ों की ओर से युद्ध में लड़े और जब कोई सिपाही घायल हुआ तो लार्ड वेलेज़ली ने उसे अस्पताल न भिजवाकर तोप के गोले से उड़ा दिया। क्या इससे सेना में असन्तोष नहीं है ? पूना के नाना फड़नवीस और मैसूर के हैदर अली ने क्या अंग्रेज़ों की कूटनीति की धज्जियाँ नहीं उड़ा दीं ?

बाला साहब : आप सही कहते हैं, भाई साहब ! सन् 1806 में वेलोर में जो विद्रोह

हुआ, वह हमें आज भी स्मरण है। राजाओं और जनता ने सेनाओं को अपनी ओर मिला लिया था। सेना के हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों ने मिल कर स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया था। यह बात दूसरी है कि संगठित न होने के कारण वे सफल नहीं हो सके।

अज़ीमुल्ला : वर्तमान स्थिति तो हमारी सहायता कर सकती है। अंग्रेज़ों ने अनेक राज्यों को हड़पने की नीति अपनायी है। उससे अनेक राजे और महाराजे मन ही मन जले-भुने हुए हैं। यदि थोड़ा भी प्रयत्न किया जाएगा, तो हमें उन राजा-महाराजाओं की सेवा आसानी से मिल सकती है।

नाना साहब : अवश्य मिल सकती है। वेलोर की क्रान्ति के बाद अब जो क्रान्ति हमारे द्वारा उठेगी, वह पूर्ण रूप से संगठित होगी। उस समय तंजौर, मैसूर, रायगढ़ और दिल्ली के शासक सम्मिलित रूप से कार्य नहीं कर सके। इस बार हम प्रत्येक राज्य का सहयोग प्राप्त करेंगे। क्योंकि डलहौज़ी की नीति से प्रत्येक राज्य का भविष्य दत्तक-पुत्र की अमान्यता से अंधकारपूर्ण हो गया है।

बाला साहब : आपके इस संगठन से तो अंग्रेज़ों की आसुरी साम्राज्यवादिता शीघ्र ही नष्ट हो जाएगी।

नाना साहब : जिन राज्यों को कम्पनी हड़पती जा रही है, उन्हें वह मानचित्र में लाल रंग से रँगती है। शीघ्र ही वह समय आएगा, जबकि मानचित्र का प्रत्येक अंग्रेज़ रक्त के लाल रंग से रँगा जाएगा।

अज़ीमुल्ला : सत्य है, अब तो अपनी तलवार के ज़ोर पर ही इन फिरंगियों को देश के बाहर निकालना है।

नाना साहब : ग़रीबी और शोषण से हमारी जो जनता त्रस्त है, हमें उसका उद्धार करना है, हिन्दू और मुसलमानों से ही संयुक्त राष्ट्र का निर्माण होना है, तथा जिस आदर्श से प्रेरित होकर पंजाब के गुरु गोविन्दसिंह ने, राजस्थान के राणा प्रताप ने, बुन्देलखंड के छत्रसाल ने और महाराष्ट्र के छत्रपति शिवाजी ने देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया था; उसी आदर्श को लेकर हमें अपनी कमर कसनी है।

अज़ीमुल्ला : श्रीमन्त ! सबसे बड़ी बात यह है कि इस देश पर संकट के बादल तब छाए हैं, जब हममें आपस की फूट हुई है। इस बार हमारे संगठन में किसी प्रकार की फूट न हो; हमें इस बात का सबसे अधिक ध्यान रखना है।

बाला साहब : इस फूट को किस तरह बचाया जा सकता है ?

नाना साहब : सभी नरेशों का अखिल भारतीय संगठन होना चाहिए। इस सम्बन्ध में दिल्ली से लेकर मैसूर तक कुछ चुने हुए अधिकारियों को नरेशों के पास भेजना चाहता हूँ कि वे बिना आगा-पीछा किए हुए इस क्रान्ति-पर्व में योग दें। उन्हें सावधान रहना चाहिए कि आज या कल, दत्तक-पुत्र की मान्यता न रहने के कारण उन्हें अपने राज्य से हाथ धोना पड़ सकता है और वे कम्पनी के अधिकारियों से लांछित हो सकते हैं।

अज़ीमुल्ला : दिल्ली के बादशाह को तो इस क्रान्ति में सबसे पहले आना चाहिए; क्योंकि कम्पनी ने न सिर्फ़ उनकी सल्तनत छीनी है, वरन् उनका बादशाही ख़िताब भी रद्द कर दिया है ।

बाला साहब : यह कम्पनी के अधिकारियों का कितना बड़ा अन्याय है ? जब दिल्ली के बादशाह असन्तुष्ट हैं तो और राजे तो सहज ही नाना साहब के सन्देश को मान लेंगे ।

नाना साहब : दिल्ली का पतन होते ही मैंने गुप्त लिपि में लिखा हुआ सन्देश जाति और धर्म की दीवार तोड़कर कुछ नरेशों के पास विश्वस्त दूतों के ज़रिए भेज दिया है । इधर लखनऊ का भी पतन हुआ है । लखनऊ के नवाब और उनके वज़ीर अली नक़ी ख़ाँ को कलकत्ते भेज दिया गया है । मैंने अली नक़ी के पास एक गुप्त सन्देश भेजा है कि वे बंगाल के सैनिकों को भी अपनी ओर मिला लें । अली नक़ी ख़ाँ ने न जाने कितने गुप्त दूतों को फ़कीर और संन्यासियों के भेष में सैनिकों के बीच भेज दिया ।

अज़ीमुल्ला : और कम्पनी वालों को इसका पता नहीं है । अली नक़ी ख़ाँ की तारीफ़ की जानी चाहिए ।

नाना साहब : मैं तो जनता की भीतरी शक्ति जगाना चाहता हूँ । मैंने भी हज़ारों रुपया देकर न जाने कितने मौलवियों और फ़कीरों को जनता के बीच में भेज दिया है । बहुत से दूत भीख माँगने के बहाने नगर-नगर और गाँव-गाँव में जनता को क्रान्ति के लिए उत्तेजित कर रहे हैं ।

बाला साहब : आपने तो तीर्थ-क्षेत्र में, जहाँ हज़ारों यात्री एकत्र होते हैं रामलीला और रासलीला की मंडलियों तक में अपने दूत भेज दिए हैं । और अब तो आल्हा भी इस ज़ोर से गाया जाता है कि लोगों की भुजाएँ फड़क उठती हैं । स्त्रियों में क्रान्ति का प्रचार करने के लिए बहुत से बहुरूपिये और ज्योतिषी भी भेजे गए हैं ।

अज़ीमुल्ला : एक बात और भी मज़े की है । इन्हीं ज्योतिषियों के कहने से समाचार-पत्रों ने यह भी प्रकाशित करना शुरू कर दिया है कि प्लासी युद्ध के ठीक सौ वर्ष बाद यानी 23 जून, 1857 को कम्पनी का राज्य समाप्त हो जाएगा ।

नाना साहब : यह बात हमारे ही अनुकूल है । अब हमारे सभी केन्द्र मज़बूत होंगे । दक्षिण में रंगोजी, लखनऊ और और आगरे में मौलवी अहमदशाह, विहार में कुँवर सिंह और कलकत्ते में नक़ी ख़ां हमारी क्रान्ति के स्तम्भ होंगे ।

बाला साहब : तो फिर इस क्रान्ति की रूपरेखा क्या होगी ?

नाना साहब : मैं सोचता हूँ कि सारे देश में क्रान्ति एक ही दिन होनी चाहिए । इस अखिल भारतीय जन-विस्फोट को कम्पनी के कर्मचारी किसी प्रकार भी दबा नहीं सकेंगे । और सब स्थितियाँ सोचकर मैं निश्चित करता हूँ कि 31 मई, 1857 को ही यह उत्थान-दिवस हो । उस दिन रविवार है । सब अंग्रेज़ और ईसाई उस दिन गिरजाघर में होंगे । किसी को अवकाश भी नहीं होगा कि इस विस्फोट को रोकने के लिए कोई तत्काल क़दम उठा सके ।

अज़ीमुल्ला : आपने बहुत अच्छा सोचा, नाना साहब !

नाना साहब : रवी की मालगुज़ारी से जो सरकारी ख़ज़ाना इस समय भरा हुआ है, उसे लूटा जाए; जिससे हमारी सेना को किसी प्रकार की आर्थिक कठिनाई न हो। साथ ही कारागारों को तोड़ कर सभी बंदियों को मुक्त कर अपनी सेना में विद्रोहियों की संख्या बढ़ायी जाए। इस तरह हम बन्दियों से ही लगभग पच्चीस हज़ार की सेना खड़ी कर सकते हैं।

अज़ीमुल्ला : मैंने लखनऊ के सभी चौराहों पर जनता को जगाने के लिए बड़े-बड़े इश्तिहार चिपकवा देने को कहा है। उन इश्तिहारों में यह इबारत होगी—हिन्दू मुसलमान भाइयो ! उठो। और आपस के मेल-मिलाप से अपने देश के भविष्य का निर्णय कर डालो। अगर यह अवसर हाथ से निकल गया, तो समझ लो, तुम लोगों का जीना मुश्किल हो जाएगा। इसलिए यही मौका है। इस बार नहीं, तो कभी नहीं।

नाना साहब : बहुत अच्छा ! मैंने क्रान्ति के प्रचार का एक दूसरा उपाय भी सोचा है। हमारा एक क्रान्तिदूत हाथ में लाल कमल लेकर सैनिक शिविर में चुपचाप घुस जाए। वह लाल कमल कम्पनी के एक सूबेदार के हाथ में दिया जाए, जिसके पास हमारा क्रान्ति-सन्देश पहले ही पहुँच चुका है। सूबेदार वह लाल कमल अपने सहायक को दे और इसी प्रकार वह रक्त कमल प्रत्येक सिपाही के हाथ से गुज़रे और अन्तिम सिपाही उसे क्रान्तिदूत को लौटा दे। एक शब्द भी नहीं बोला जाए और वह क्रान्तिदूत एक सैनिक छावनी से दूसरी सैनिक छावनी में पहुँच कर क्रान्ति का सन्देश सारी सेना में दे आए। इस प्रकार क्रान्ति का यह शंखनाद बिना शब्द किए समस्त सेना के कानों में गूँज उठेगा। रक्त कमल—रक्त कान्ति ! यदि संभव हुआ तो मैं दिल्ली, अम्बाला, लखनऊ, कालपी आदि केन्द्रों की यात्रा को अपनी तीर्थ-यात्रा का रूप देकर सभी क्रान्तिकारी नेताओं से अपना सम्पर्क स्थापित कर लूंगा।

अज़ीमुल्ला : श्रीमन्त ! वेलोर क्रान्ति में यह कार्य चपातियों से हुआ था। ये चपातियाँ इस क्रान्ति में भी चलायी जा सकती हैं। ये चपातियाँ गेहूँ या मक्के के आटे से बनती थीं। इन पर कुछ लिखा तो नहीं होता था, ये केवल क्रान्ति की सन्देश-वाहिका ही थीं। किसी गाँव के चौकीदार के पास ये चपातियाँ भेजी जाती थीं। चौकीदार चपाती का एक टुकड़ा तोड़कर खा जाता था और बची हुई चपातियाँ सबको प्रसाद के रूप में बाँट देता था। फिर जितनी चपातियाँ एक गाँव में पहुँचती थीं, उतनी ही चपातियाँ फिर से बना ली जातीं और वे ताज़ी चपातियाँ पास के गाँव वालों को पहुँचा दी जातीं और वहाँ का चौकीदार उसी भाँति पास के अन्य गाँव को वे चपातियाँ भेज देता। इस प्रकार क्रान्ति की प्रतीक ये चपातियाँ, बिना कुछ कहे, सारे गाँव को क्रान्तिकारी बना देती थीं। मैं समझता हूँ कि यदि रक्त कमल का प्रयोग सेनाओं में हो तो चपातियों को प्रयोग गाँव-गाँव में किया जाए।

बाला साहब : यह तो अज़ीमुल्ला साहब ने बहुत अच्छा सोचा ।

नाना साहब : इस प्रस्ताव से मैं भी प्रसन्न हूँ। तो फिर इन योजनाओं के अनुसार ही कार्य आरम्भ हो जाना चाहिए। अब हम चलेंगे ।

अज़ीमुल्ला : श्रीमन्त की जय !

बाला साहब : श्रीमन्त की जय !

नाना साहब : जय भारत !

[सब का प्रस्थान]

[परदा गिरता है ।]

दूसरा अंक

काल : 29 मार्च, सन् 1857
स्थान : बैकरपुर (कलकत्ता)

[**स्थिति :** छावनी के बाहर छः सिपाही अपनी वर्दी में खड़े बातें कर रहे हैं। उनके हाथों में बन्दूकें हैं।]

भोलाराम : तो क्यों नारायण राव ! कम्पनी ने बैरकपुर की उन्नीसवीं पलटन तोड़ दी ?

नारायण राव : हाँ, भोलाराम जी ! उन्नीसवीं पलटन तोड़ दी गयी। हम फ़ौज की नौकरी भले ही करें, अपना धर्म नहीं छोड़ सकते ।

सूरजसिंह : **(आगे बढ़कर)** भोलाराम जी ! बात यह है कि कम्पनी ने चलाने के लिए हमें ऐसे कारतूस दिए, जो गाय और सुअर की चर्बी से चिकनाए गए हैं। हम लोगों से कहा गया कि इन कारतूसों के टोटे मुँह से तोड़ कर उन्हें इस्तेमाल में लाओ। आप ही बताइए कि हम हिन्दू लोग गाय की चर्बी से चिकनाए गए कार-तूसों को मुँह से लगाएँगे ?

अमीर ख़ाँ : यही बात हमारी भी है। क्या हम सुअर की चर्बी ओंठों से छू सकते हैं ? सुअर हमारे लिए हराम कहा गया है।

नारायण राव : इसीलिए सारी पलटन ने इस बात को एक स्वर से कह दिया कि हम कम्पनी के इस हुकुम को किसी तरह नहीं मान सकते ।

सूरज सिंह : हम सबने इस हुकुम को ठुकरा दिया और कह दिया कि अगर हम पर ज़ोर-ज़बर्दस्ती की गयी, तो हम अपनी तलवारें खींच लेंगे। अंग्रेज़ों के पास कोई गोरी पलटन थी नहीं, इसलिए वे उस समय चुपचाप हमारी बात सह गए।

अमीर ख़ाँ : लेकिन जब बर्मा से एक अंग्रेज़ी पलटन यहाँ कलकत्ते में आ गयी तो अंग्रेज़ों की हिम्मत बढ़ी और उन्होंने हुकुम दिया कि 19 नम्बर की पलटन तोड़ दी जाए।

भोलाराम : मैं तो 34वीं पलटन का सिपाही हूँ। इन बातों की खबर हमसे छिपायी गयी, लेकिन यह तो कहिए कि अली नक़ी ख़ाँ साहब ने सार्जेन्ट ह्यू सेन साहब को ऐसी सलाह दी कि 34वीं पलटन के सिपाही अगर 19वीं पलटन के सिपाहियों से मिल जाएँगे तो आपकी ताक़त और भी बढ़ जाएगी।

सूरज सिंह : लेकिन भोला-भाला सार्जेन्ट ह्यू सेन यह नहीं समझ सका कि अली नक़ी ख़ाँ साहब ने पहले ही 34वीं पलटन में क्रान्ति का मंत्र फूंक दिया है। और जब 34वीं पलटन के सिपाही 19वीं पलटन के सिपाहियों से मिलेंगे तो सारी 19वीं पलटन भी क्रान्ति उगलने लगेगी।

नारायण राव : इसीलिए जब हमें चर्बी के कारतूस दिए गए तो हमारा ख़ून उबल उठा और हमने आपस में इशारा कर सार्जेन्ट के हुकुम को पैरों तले रौंद डाला। (**किसी के पैरों की आहट**) अरे, चुप रहो, कोई आ रहा है।

[सब चुप हो जाते हैं। दबे पाँव अली नक़ी ख़ाँ आते हैं। फ़क़ीरों का वेश, हाथ में तसबीह। सब चौंक उठते हैं।]

अली नक़ी ख़ाँ : भोलाराम ! तुमने मुझे पहिचाना ?

भोलाराम : (**ग़ौर से देखकर**) अरे, आप तो अली नक़ी ख़ाँ साहब हैं। अरे वाह ! हमारे नेता, क्रान्ति के बहुत बड़े सेनानी। आप फ़क़ीर के भेष में ?

अली नक़ी ख़ाँ : धीरे बात करो। देखो, बिठूर से नाना साहब का एक ख़त एक साधु मुझे दे गया है। उस ख़त में आप लोगों को कुछ हिदायतें दी गयी हैं।

अमीर ख़ाँ : हम उन हिदायतों को ज़रूर मानेंगे।

अली नक़ी ख़ाँ : उन्होंने लिखा है कि कम्पनी ने लखनऊ की सल्तनत तो अपने कब्ज़े में कर ही ली है, अब वह सतारा को भी अपने कब्ज़े में कर रही है। यही हाल कानपुर का है। अब इस देश का कोई भी निवासी स्वतंत्रता की साँस नहीं ले सकेगा, इसलिए यह ज़रूरी है कि हमारी हिन्दुस्तानी सेना आगे बढ़कर देश की रक्षा करे। हमारा एक-एक सिपाही आग का शोला है, वह भड़केगा, तो उसकी आग लन्दन को भी ख़ाक बना कर ज़मीन में मिला देगी।

नारायण राव : ऐसा ही होगा, ख़ाँ साहब !

अली नक़ी ख़ाँ : उन्होंने यह भी लिखा है कि हम लोग हिन्दू-मुसलमान एक हैं। दोनों ही इस देश के बेटे हैं। हममें कोई भी अंग्रेज़ों से मिल कर गद्दार नहीं हो सकता।

अमीर ख़ाँ : कभी नहीं हो सकता।

अली नक़ी ख़ाँ : एक बात और है। नाना साहब ने लिखा है कि अकबर बादशाह ने अपनी सल्तनत में गो-वध तक बन्द कर दिया था। उन्होंने हर एक धर्म की तहज़ीब बरक़रार रखा। इस अंग्रेज़ क़ौम ने हमारे राज्य तो छीन ही लिए, अब हमारा धर्म

भी छीन कर हम लोगों को क्रिस्तान बनाना चाहता है।

सूरज सिंह : आपके आदेश से हमारी सारी पलटन तो क्रान्ति के लिए पहले से ही तैयार थी—चर्बियों के इन कारतूसों ने जैसे हमारी क्रान्ति की ज्वाला में घी का काम किया है।

अली नक़ी ख़ाँ : अपनी ही हिम्मत से 19वीं और 34वीं पलटनें आपस में मिली हैं। और दोनों पलटनें अब एक-दूसरे को बख़ूबी जान भी गयी हैं।

भोलाराम : इसी को देखिए, हम 34वीं पलटन के सिपाही हैं। आज 19वीं पलटन के भाइयों से मिल रहे हैं।

अली नक़ी ख़ाँ : चर्बी से चिकनाए गए कारतूसों को मुँह से न काटने के कारण 19वीं पलटन तोड़ दी गयी है। कल आपसे भी चर्बी के कारतूसों को मुँह से तोड़ने के लिए कहा जाएगा। क्या आप इस हुक्म को मानेंगे ?

अमीर ख़ाँ : हम भी 34वीं पलटन के सिपाही हैं। हम ऐसा हुकुम ख्वाब में भी नहीं मान सकते।

अली नक़ी ख़ाँ : तो मैं चाहता हूँ कि कम्पनी के सार्जेन्ट अगर 34वीं पलटन भी तोड़ दें तो हमारी दोनों पलटनें मिलकर देश को आज़ाद करा सकती हैं।

सूरज सिंह : लेकिन उसे रोकने के लिए बर्मा से अंग्रेज़ों ने एक गोरी पलटन बुलवा ली है। वह पास ही छावनी डाले पड़ी हुई है।

अली नक़ी ख़ाँ : जब हमने तलवार उठा ली, तो सैकड़ों गोरी पलटनें हमारे सिपाहियों से गाजर-मूली की तरह काट डाली जाएँगी। लेकिन एक बात क्या आप लोगों ने नहीं सोची ?

भोलाराम : वह भी मेहरबानी कर हमें बतला दीजिए।

अली नक़ी ख़ाँ : जब 19वीं पलटन तोड़ी गयी तो क्या इससे 34वीं पलटन अपमानित नहीं हुई ? आपके सामने आपके भाइयों की इज़्ज़त एक फ़िरंगी ने उतारी, तो क्या आप की इज़्ज़त सही-सलामत रही ?

भोलाराम : नहीं, इज़्ज़त सही-सलामत नहीं रही। धर्म-पालन के लिए जिस सेना को ज़लील किया गया, वे तो हमारे ही धर्म के हैं। अगर धर्म के पीछे उनका अपमान हुआ है, तो हम समझेंगे कि हमारा भी अपमान हुआ है।

अली नक़ी ख़ाँ : बस, इतनी बात मुझे आप लोगों से कहनी थी। मैंने 34वीं पलटन के कुछ सिपाहियों से बात की थी, वे भी इसे अपने धर्म का अपमान समझते हैं। इसी पलटन का सिपाही मंगल पांडे तो अंग्रेज़ों के खिलाफ क्रोध से उबल रहा है।

भोलाराम : मैं मंगल पांडे को जानता हूँ, खान साहिब ! वह जन्म से भले ही ब्राह्मण हो, पर कर्म से क्षत्रिय है। युद्ध क्षेत्र में ऐसा शूरवीर और साहसी सिपाही तो मैंने देखा ही नहीं है। वह अपनी जान हथेली पर रख कर युद्ध-भूमि में लड़ता है। स्वधर्म पर तो वह अपना बलिदान कर सकता है। अगर देश की स्वाधीनता की बात उसके मन में आ गयी है, तो वह अंग्रेज़ों के खिलाफ कुछ भी कर सकता है।

अली नक़ी ख़ाँ : उससे मैं बात कर चुका हूँ। अच्छा, अब मैं जाऊँगा। तुम लोग अपने-

अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहो और एक बात और है, हम लोगों की क्रान्ति-योजना की ख़बर अंग्रेज़ों को को कानों-कान न मालूम हो !

अमीर ख़ाँ : इसका हम लोगों ने पूरा ध्यान रखा है।

अली नक़ी ख़ाँ : अच्छा, जय भारत !

सब : (**एक स्वर से**) जय भारत !

[अली नक़ी ख़ाँ का तसबीह जपते हुए प्रस्थान]

अमीर ख़ाँ : दरअसल ख़ान साहब ने जो बात कही है, वह कितनी सच्ची है कि 19वीं पलटन से हमारी 34वीं पलटन की इज़्ज़त भी बरबाद हुई है।

भोलाराम : यह तो सही बात है और ख़ान साहब कहते हैं कि उन्होंने मंगल पांडे से भी बात की है। क्या बात की है, यह तो वही जानें या मंगल पांडे जानें।

[नेपथ्य में बन्दूक चलने की आवाज़]

भोलाराम : (**चौंक कर**) यह बन्दूक की आवाज़ कैसी ?

अमीर ख़ाँ : कहीं क्रान्ति की शुरुआत तो नहीं हो गयी ? नारायण ! ज़रा बाहर जाके देखो।

नारायण राव : अभी जाता हूँ। (**शीघ्रता से प्रस्थान**)

[दूसरी बार बन्दूक चलने की आवाज़]

सूरज सिंह : कोई संगीन मामला हो गया जान पड़ता है।

अमीर ख़ाँ : अभी तो नहीं होना चाहिए। बिठूर के नाना साहब ने तो क्रान्ति की तारीख़ 31 मई रखी है, जब सारे देश में एक साथ क्रान्ति की आग जल उठेगी।

भोलाराम : क्रान्ति तो क्रान्ति है। ज्वालामुखी की तरह चाहे जब आग उगल सकती है।

सूरज सिंह : और नक़ी खान साहब ने फिरंगियों की सब चालें जब हम लोगों को समझा दी हैं, तो हम तो अब ईंट का जवाब पत्थर से दे सकते हैं।

[नारायण राव का घबराए हुए प्रवेश]

नारायण राव : (**हाँफते हुए**) भोलाराम जी ! मंगल पांडे ख़ून में रँगी हुई तलवार लिए आ रहे हैं।

सब : (**चौंक कर**) मंगल पांडे ?

नारायण राव : हाँ, मंगल पांडे ! लगता है कि उन्होंने...उन्होंने क्रान्ति की ज्वाला सुलगा दी।

अमीर ख़ाँ : मंगल पांडे तो आग की लपट है। उसे कोई छेड़ेगा तो बुरी तरह जल जाएगा।

नारायण राव : उसके सारे कपड़े ख़ून से तर हैं, उसकी तलवार से तो ख़ून की धारा बह रही है।

अमीर ख़ाँ : किसी फिरंगी का ख़ून होगा। और अगर फिरंगी का ख़ून हुआ, तो समझ लो, क्रान्ति का बिसमिल्ला हो गया।

[तेज़ी से मंगल पांडे झपटता हुआ आता है]

मंगल पांडे : भाइयो ! उठो-उठो, रणचंडी को रक्त चढ़ाना है। अब हम एक-एक फिरंगी की काट कर रख देंगे।

सब : (**एक स्वर से**) जय भारत !

मंगल पांडे : जय भारत ! अब हमारा देश परतंत्रता में नहीं रहेगा। हम एक-एक फिरंगी को या तो काट कर रख देंगे या इस देश से बाहर निकाल देंगे।

भोलाराम : तुम्हारी तलवार पर यह किसका खून है ?

मंगल पांडे : बहुतों का ख़ून है, भोलाराम ! मेजर, ह्यूसन का ख़ून है, लेफ्टिनेंट विन्सन का ख़ून है, कर्नल व्हीलर का ख़ून है। वे हमारे धर्म-बन्धुओं पर अत्याचार करते हैं, उनके हाथ-पैरों में हथकड़ियाँ और बेड़ी डालते हैं। हम यह बरदाश्त नहीं कर सकेंगे।

सूरज सिंह : बरदाश्त तो नहीं कर सकेंगे, लेकिन हमें तो 31 तारीख़ से क्रान्ति करनी है।

मंगल पांडे : तुम 31 तारीख़ को लिए बैठे रहो। यहाँ हमारी पलटनें तोड़ी जाती हैं, सबके सामने उन्हें ज़लील किया जाता है। मैं तो कहता हूँ, उस वक़्त सारी पलटन ने विद्रोह क्यों नहीं किया ? मैं जानता हूँ कि हम लोगों को मौत के घाट उतारने के लिए फिरंगियों ने बर्मा से गोरी पलटन बुलवा ली है, लेकिन वह हमें मारेगी ही तो, हमसे हमारी देश-भक्ति तो नहीं छीन सकती ?

अमीर ख़ाँ : कभी नहीं छीन सकती ! कभी नहीं छीन सकती ! !

मंगल पांडे : तो फिर हम अपने दुश्मनों पर एक साथ क्यों नहीं टूट पड़ते ? मैं अपने सिपाही-भाइयों की बेइज़्ज़ती नहीं देख सका। मैं अपनी राइफल लेकर आगे बढ़ा। सार्जेन्ट मेजर ने हुक्म दिया कि मंगल पांडे को गिरफ़्तार किया जाए। लेकिन हमारे वीर सिपाही पहले से ही हमारे साथ थे; कोई सिपाही आगे नहीं बढ़ा।

सूरज सिंह : शाबास, मेरे वीर सिपाहियो !

मंगल पांडे : जब सार्जेन्ट हमारे सिपाहियों को गाली देने लगा तो मैंने उसे गोली से उड़ा दिया। उसकी लाश ज़मीन पर तड़पने लगी।

अमीर ख़ाँ : मुबारक-मुबारक ! उसे ऐसी ही सज़ा मिलनी चाहिए थी। उसने हममें से बहुतों को गोलियों से भून दिया है।

मंगल पांडे : मेजर के ज़मीन पर गिरते ही, लेफ्टिनेंट बाव घोड़ा दौड़ाते हुए आया और उसने मुझ पर गोली चलायी। मैं ज़मीन पर बैठ गया और मैंने निशाना लेकर ऐसी गोली चलायी कि घोड़े के साथ ही वह ज़मीन पर गिर पड़ा।

नारायण राव : वह भी गिरा ! वह भी बड़ा ज़ुल्म ढाने वाला था।

मंगल पांडे : उसने उठ कर अपनी पिस्तौल से मुझ पर गोली चलायी, पर उसका

निशाना मैंने बचाया और तलवार से ऐसा वार किया कि उसका सिर ज़मीन पर लोटने लगा। इस पर एक गोरा मुझे मारने के लिए झपटा, लेकिन बीच में ही हमारे एक सिपाही-भाई ने अपनी बन्दूक की नली से उसका सिर फोड़ दिया।

अमीर ख़ाँ : शाबास ! हमारे सिपाही-भाइयों में बड़ा एका है। वे यह कैसे देख सकते हैं कि हमारे बहादुर मंगल पांडे को कोई छू भी सके।

मंगल पांडे : हमारे सिपाही ने चिल्ला कर कहा—ख़बरदार ! अगर किसी ने मंगल पांडे को हाथ लगाया तो उसका सिर गोली से उड़ा दिया जाएगा। कर्नल ह्वीलर ने ग़ुस्से में भर कर हुक्म दिया कि मंगल पांडे को गिरफ़्तार करो—अभी गिरफ़्तार करो, लेकिन सभी सिपाहियों ने चिल्ला कर कहा कि हम अपने वीर बहादुर का बाल भी बाँका न होने देंगे।

भोलाराम : धन्य है, धन्य है ! हामरे वीर सिपाहियों को यही कहना चाहिए।

मंगल पांडे : फिर मैंने कर्नल ह्वीलर का पीछा किया। वह भाग कर बैरक में छिप गया। खोजने पर भी नहीं मिला तो मैं इधर आया। भाइयो ! फिरंगी की गोरी पलटन आ गयी है। वह मुझे छोड़ेगी नहीं, क्योंकि मैंने कई फिरंगियों का ख़ून बहाया है। लेकिन जब मुझे मरना है, तो मैं हँसते-हँसते अपने देश की स्वतंत्रता के लिए मरूँगा।

अमीर ख़ाँ : धन्य है, वीर मंगल पांडे ! हम आख़िरी साँस तक तुम्हारा साथ देंगे। हमें अपनी जान से ज़्यादा अपना देश प्यारा है।

मंगल पांडे : तो चलो ! हम लोग सारे देश में क्रान्ति का नारा बुलंद करें और जितनी जल्दी हो सके, इन फिरंगियों को अपने देश से निकाल कर अपने भारत को स्वतंत्र करें।

सब : हम लोग स्वतंत्र होंगे।

मंगल पांडे : जय भारत !

सब : जय भारत !

[शीघ्रता से सभी का प्रस्थान]

[परदा गिरता है।]

तीसरा अंक

काल : 1857

स्थान : बादशाह बहादुरशाह का दीवाने-आम।

[दीवाने-आम बड़ी खूबसूरती से सज़ा हुआ है। फ़र्श पर मखमली क़ालीन और दरवाज़ों पर रेशमी पर्दे। स्थान-स्थान पर चित्रों और कला-कृतियों की सजावट है। बीच में बादशाह शाहजहाँ का एक बहुत बड़ा तैल-चित्र। उसके बग़ल में बादशाह अकबर का तैल-चित्र है। कुछ दरबारी यथास्थान बैठे हुए हैं। अभी बादशाह सलामत तशरीफ़ नहीं लाए हैं। दरबारियों में बातें हो रही हैं।]

अहसानुल्ला : मालूम पड़ता है, अपने मुल्क में बहुत बड़ा हंगामा होने जा रहा है।

गुलाम अब्बास : यह तो तभी मालूम हो गया था जब बिठूर के नाना साहब यहाँ तशरीफ़ लाए थे और उन्होंने बादशाह सलामत से तखलिए में गुफ़्तगू की थी।

ज़काउल्ला : लेकिन इन दिनों हालात कुछ दूसरे ही नज़र आ रहे हैं। सुनते हैं कि कलकत्ते के बैरकपुर में जो हंगामा हुआ था उसमें बहुत से फिरंगी मारे गए थे। पलटन बाग़ी हो गयी।

बख़्त ख़ाँ : सबसे बड़ी बात तो यह हुई कि जब फिरंगियों ने 19वीं पलटन तोड़ दी तो 34वीं पलटन का सिपाही मंगल पांडे अपने सिपाही भाइयों की हतक़-इज़्ज़ती नहीं सह सका और उसने सार्जेन्ट, मेजर और कप्तान को गोली से उड़ा दिया, तभी सारी पलटन बाग़ी हो गयी।

अहसानुल्ला : इस बग़ावत की खबर जब मेरठ पहुँची तो वहाँ के सिपाही भी बाग़ी हो गए।

गुलाम अब्बास : मेरठ की बग़ावत की कुछ वजह भी तो होनी चाहिए ?

बख़्त ख़ाँ : सुना तो यही गया है कि फिरंगी ने सिपाहियों को जो कारतूस दिए थे उनको चिकना करने के लिए गाय और सुअर की चर्बी इस्तेमाल में लायी गयी थी और फिरंगी ने हुकुम दिया था कि कारतूसों को इस्तेमाल से पहले मुँह से काटना ज़रूरी था।

ज़काउल्ला : लाहौलविलाक़ूवत ! ये तो सरासर मज़हब की तौहीन है।

अहसानुल्ला : तो सिपाहियों ने तो इनकार किया होगा।

बख़्त ख़ाँ : इसमें क्या शक ! जब सिपाहियों ने इनकार किया तो उनकी वर्दियाँ उतरवायी गयीं। उनके हाथों-पैरों में हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ डाली गयीं और उन्हें बैरक में हण्टर मार-मार कर दौड़ाया गया। फिर उन्हें दस-दस साल की क़ैद की सज़ा दी गयी।

अहसानुल्ला : यह तो सरासर जुल्म है।

बख़्त ख़ाँ : इसी पर पलटन भड़क उठी।

गुलाम अब्बास : तो पलटन ने किया क्या ?

बख़्त ख़ाँ : पलटन ने बड़ी होशियारी से बग़ावत की। 10 मई को दिन इतवार का था। शाम को जब गिरजे के घंटे बज रहे थे और सब फिरंगी गिरजाघर में थे, तभी पलटन ने बग़ावत का परचम उठाया। उन्होंने क़ैदख़ाने तोड़ कर सब क़ैदियों को रिहा किया और शहर में जितनी फिरंगियों की इमारतें थीं, उनमें आग लगा दी।

अहसानुल्ला : ग़ज़ब की हिम्मत थी उन सिपाहियों में !

बख़्त ख़ाँ : उन्होंने शहर के सभी फिरंगियों को या तो क़त्ल किया या ज़ख़्मी किया और अब उन्होंने यहाँ ख़बर भेजी है कि वे घोड़ों पर सवार होकर दिल्ली के सिपाहियों को अपने में मिलाने के लिए आ रहे हैं। उन्होंने जमना पार कर ली है।

अहसानुल्ला : अच्छा, तो वे जल्दी यहाँ पहुँचने वाले भी हैं ?

बख़्त ख़ाँ : उन्होंने बादशाह सलामत को हिन्दुस्तान का बादशाह माना है और फिरंगियों की हुकूमत को ख़त्म करने का क़स्द किया है। उन्होंने यह भी ख़बर भेजी है कि बादशाह सलामत को वो लोग अपना नेता बना के उनके ज़ेरे हुकूमत हिन्दुस्तान को आज़ाद करेंगे।

ग़ुलाम अब्बास : देखें, बादशाह सलामत क्या रुख़ अख़्तियार करते हैं ?

बख़्त ख़ाँ : बादशाह सलामत के ख़िलाफ़ फिरंगियों ने क्या कम कार्रवाई की है ? लार्ड क्लाइव के ज़माने से फिरंगियों की नज़र देहली के तख़्त पर है। बादशाह शाह आलम से लार्ड क्लाइव ने इक़रारनामा करके 12 लाख रुपया सालाना पेन्शन देकर दीवानी का हक़ ले लिया था। बाद में लार्ड वेलज़ली ने बादशाह सलामत से कहा कि आप देहली के लाल क़िले से हट जाएँ और बिहार सूबे के मुँगेर ज़िले में रहें।

अहसानुल्ला : यह तो मुझे भी मालूम है। कम्पनी की यह अज़हद हिमाक़त थी और इस बात पर बादशाह शाह आलम ने जानते हो क्या कहा था ? उन्होंने तलवार की मूठ पर हाथ रख कर कहा था—'ऐसा कभी नहीं हो सकता। जब तक मुझमें ज़िन्दा रहने की ताक़त है, तब तक मुझ ज़िन्दा इन्सान को कोई भी क़ब्र में दफ़न नहीं कर सकता।

बख़्त ख़ाँ : अपमान की सीमा तो तब पहुँची, जब देहली के रेज़ीडेण्ट लार्ड मेटकाफ़ ने बादशाह सलामत का अभिवादन करना छोड़ दिया। पहले कहाँ हर एक फिरंगी बादशाह सलामत के सामने मुजरा बजा लाता था और शाही कुटुम्ब के बच्चे का शाहाना ढंग से सम्मान करता था। बादशाह अकबरशाह के ज़माने से हाल यह है कि फिरंगी लोग ईद, नौरोज़ जैसे मौक़ों पर बादशाह सलामत को जो नज़रें भेंट करते थे, वे सब बंद कर दी गयीं और अब कोई फिरंगी दरबार में हाज़िर भी नहीं होता।

अहसानुल्ला : मरहूम बादशाह अकबरशाह ने राजा राममोहन राय को अपनी एलची बनाकर लन्दन भी भेजा था। राजा साहब की इज़्ज़त तो बहुत की गयी, लेकिन बादशाह सलामत की शिकायतों पर ज़रा भी ग़ौर नहीं किया गया।

ग़ुलाम अब्बास : फिरंगियों ने बादशाह सलामत से इक़रार भी किया था कि उनका

वज़ीफ़ा बढ़ाया जाएगा। मरहूम बादशाह अकबरशाह से कम्पनी क़ौल भी हार चुकी थी, लेकिन जब हमारे बादशाह सलामत ने इस क़ौल की याद कम्पनी को दिलायी, तो कम्पनी ने अपना रुख़ ही बदल दिया।

बख़्त ख़ाँ : जानते हो, मेटकाफ़ साहब ने बादशाह सलामत को क्या लिखकर भेजा था ? लिखा था—कि बिला शक कम्पनी ने वज़ीफ़ा बढ़ाने का इक़रार किया था, लेकिन वह तभी पूरा किया जाएगा, जब बादशाह सलामत आगे चलकर फ़रमाइशें करना बन्द कर दें। इस पर हमारे बादशाह सलामत ने यह जवाब दिया था कि अगर मैं अपने बाप का बेटा हूँ, तो वही करूँगा जो मेरे बाप ने किया है और ईस्ट इंडिया कम्पनी की कोई शर्त मंज़ूर नहीं करूँगा।

सब : अलहम्दुलिल्लाह ! ख़ूब !

अहसानुल्ला : इन सब बातों से तो साफ़ ज़ाहिर होता है कि बादशाह सलामत इस बग़ावत से ख़ुश ही होंगे।

[नेपथ्य में नक़ीब स्त्री की आवाज़]

होशियार ! अदब क़ायदा निगाहदार ![1]

[सब दरबारी लोग नीची निगाह कर अदब से खड़े हो जाते हैं]

अहसानुल्ला : बादशाह सलामत तशरीफ़ ला रहे हैं ! यहाँ आने के लिए बादशाह सलामत के क़दम उठ चुके हैं।

[नेपथ्य में पुरुष नक़ीब की आवाज़]

होशियार ! अदब क़ायदा निगाहदार !

[सभी सरदार-सामन्त पूर्ववत् गर्दनें झुकाए, आँखें नीचे किए और हाथ बाँधे खड़े हैं।]

[बादशाह सलामत गुप्त द्वार से दरबार में धीरे-धीरे प्रवेश करते हैं। वे शाही चोग़ा पहने हुए हैं। हाथ में राजदण्ड है। बुढ़ापे के सब आसार उनके मुख पर दिखलायी देते हैं।]

नक़ीब : ज़ुल इलाही ! बर आमद किर्द मुजरा अदब से।[1]

[एक सरदार उठकर, अदब से कोने में जाकर, झुककर तीन बार बादशाह सलामत का अभिवादन करता है।]

बादशाह : बिसमिल्लाह रहमानुर्रहीम[2] ! हमने अपने फ़र्ज़न्द मिर्ज़ा जवाबख़्त को अपना वली अहद मुक़र्रर करने के निस्बत जो ख़त टामस मेटकाफ़ को दिया था; उसका जवाब आया ?

---

1. ईश्वर की विभूति प्रकट हुई। सम्मानपूर्वक अभिवादन करो।
2. कृपालु ईश्वर के नाम से।

अहसानुल्ला : आलमपनाह ! उसका जवाब आज सुबह ही आया है, वह एक पोशीदा लिफ़ाफ़े में है।

बादशाह : उसे खोलकर सुनाओ।

[अहसानुल्ला एक ख़लीते से ख़त का लिफ़ाफ़ा धीरे से फाड़ते हैं।]

अहसानुल्ला : इजाज़त है ?

[बादशाह सलामत स्वीकारात्मक सिर हिलाते हैं।]

अहसानुल्ला : बादशाह देहली को इत्तला दी जाती है कि बादशाह के बड़े बेटे मिर्ज़ा कुयाश हाफ़िज़े कुरान और हाजी हैं। कम्पनी उन्हीं मिर्ज़ा कुयाश को वली अहद का दर्जा दे रही है। मिर्ज़ा जवाँबख़्त का वली अहदनामा नामंज़ूर करती है।

—टामस मेटकाफ़

बादशाह : (क्रोध से उठ खड़े होते हैं) क्या ? क्या ? मिर्ज़ा जवांबख़्त का वली-अहदनामा नामंज़ूर करती है ? नामुराद—बदबख़्त ! इस फिरंगी की यह जुरअत ! इस हुक्मनामे को फाड़ दो। दोज़ख़ की आग में जला दो।

[अहसानुल्ला उसे फाड़ देते हैं।]

बादशाह : हम बादशाह हैं। हमें अपना वली अहद मुक़र्रर करने का पूरा हक़ है। यह कम्पनी कौन होती है जो हमारी हुक्म-उदूली करने की जुरअत करे ? हम देख रहे हैं कि क्लाइव के ज़माने से यह कम्पनी हमारे हुकूक छीनने की मुसलसल कोशिश करती रही है। हमारे बुज़ुर्ग मरहूम बादशाह शाहआलम को लाल क़िला छोड़कर मुँगेर में रहने की हिदायत पेश की गयी थी। मक्कार फिरंगी ! तू चाहता है कि देहली के तख़्त पर मिर्ज़ा कुयाश तेरे हाथ का खिलौना बनकर तेरी जी-हुज़ूरी करे ! वज़ीर ! इस ख़त का जवाब देना हमारी शान के ख़िलाफ़ है। अगर मौक़ा मिलेगा तो हम एक-एक फिरंगी को इस मुल्क से बाहर निकाल कर रहेंगे।

सब : (एक स्वर में) आमीन **(सिर झुका लेते हैं।)**

[चोबदार का प्रवेश]

चोबदार : (सिर और भाला झुकाकर) आलमपनाह का इक़बाल बुलन्द रहे। मेरठ से दो घुड़सवार हुज़ूर की ख़िदमत में आने का बेहद इसरार कर रहे हैं।

बादशाह : उन्हें पेश करो। हम उनसे मिलेंगे।

चोबदार : (सिर और भाला झुकाकर) आलमपनाह का इक़बाल बुलन्द रहे। **(प्रस्थान)**

बादशाह : मालूम होता है, देहली ही नहीं, हिन्दुस्तान के कोने-कोने में आग जल उठी है। कलकत्ते से शुरू होकर मेरठ पहुँची है और अब मेरठ से देहली आया चाहती है।

बख़्त ख़ाँ : आलमपनाह ! सुना गया है कि मेरठ कम्पनी की हुकूमत से आज़ाद हो गया है।

बादशाह : देहली भी आज़ाद होगी।

[मेरठ के दो सिपाहियों का प्रवेश। वे झुककर सलाम करते हैं।]

एक सिपाही : गुलाम का नाम फ़ख़रुद्दीन है। आलमपनाह जिन्दाबाद ! कम्पनी की हुकूमत ख़त्म हो। हुज़ूर ! दीन की हिफ़ाज़त हो। मेरठ के दो हज़ार सिपाही बादशाह सलामत की ख़िदमत में पहुँच रहे हैं। उन्होंने मेरठ के एक-एक फिरंगी को तलवार के घाट उतार दिया है। अब देहली में आपके हुक्म का इन्तज़ार है। सारा हिन्दुस्तान हमारे साथ है।

दूसरा सिपाही : हुज़ूर ! मेरा नाम मुकुन्दीलाल है। हुज़ूर ! हर एक सिपाही की नज़र आप पर और आपकी आज्ञा पर लगी हुई है। आपके हुक्म से हम लोग ऐसी मोर्चाबन्दी करेंगे कि फिरंगी के फ़रिश्ते भी सामने आने की हिम्मत न करेंगे। हमारे सामने सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि हम लोगों के पास रसद की बहुत बड़ी कमी है।

फ़ख़रुद्दीन : हुज़ूर ! हिन्दुस्तान के हर एक इंसान को अपना दीन प्यारा है। फिरंगी हमारे दीन और धरम को छीन लेना चाहते हैं और उसकी जगह ईसाई मज़हब को हमारे गले उतारना चाहते हैं। इससे पहले हम अपनी शमशीर से उनका गला उतार लेंगे। हुज़ूर ही जानते हैं कि हर किसी जंग में आदमी, रसद का इन्तज़ाम, रुपया और हथियार—इन चार चीज़ों की ज़रूरत होती है। आपकी मेहरबानी से ये चारों हमें इतनी इफ़रात से मिल सकती हैं कि अगर फिरंगी अपने सारे मुल्क को हम पर चढ़ा कर ले आएँ तो हम सदियों तक उनका सामना कर सकते हैं।

मुकुन्दीलाल : जहाँपनाह के सामने निवेदन करना सूरज को दीपक दिखाने की तरह है। हुज़ूर के पूर्वजों ने इससे बढ़कर अपनी जवाँमर्दी का जल्वा रौशन किया है। शाहंशाह बाबर दुश्मनों से घिर गए थे, शाहंशाह हुमायूँ बेबसी में ईरान चले गए थे; लेकिन उन्होंने ऐसी हिम्मत से काम लिया कि उनके ख़ानदान ने सैकड़ों साल इस मुल्क पर हुकूमत की। उन्होंने पठानों का राज तलवार के बल पर जीता। हुज़ूर भी तो उसी ख़ानदान के आफ़ताब हैं। आप में हिम्मत और दिलेरी की कमी क्योंकर हो सकती है ?

फ़ख़रुद्दीन : हुज़ूर ! देश का बच्चा-बच्चा आपके साथ है। पेशावर से कलकत्ते तक सिपाही और अवाम आपके हुक्म-बरदार हैं। सब हिन्दुस्तानी आपके झंडे के नीचे जमा होकर मरने-मारने के लिए तैयार हैं। बस, आपके हुक्म का इन्तज़ार है। ज़िल्ले सुभानी[1] को हम लोग सिर-आँखों पर लेंगे। हुज़ूरे-आलम ! फिरंगियों को दोज़ख़ में भेजने के लिए हमारे सिपाही इस क़दर बेक़रार हैं कि नजूम बेग ने देहली कमिश्नर फ्रेज़र के कलेजे में तलवार भोंक दी और कलक्टर कैप्टन डगलस को भी

1. ईश्वर के प्रतिनिधि।

दोख़ज़ रसीद किया।

[बाहर बार-बार तोप दगने की आवाज़]

बादशाह : यह क़हर किसने ढाया ?

फ़ख़रुद्दीन : आलमपनाह ! यह मेरठ के सिपाहियों ने 21 तोपों से हुज़ूर को सलामी दी है। देहली तो आपके हाथ में है। इस देहली पर ही आज़ादी की जंग का सेहरा बँधने को है। आप हम सबके आगे रहेंगे तो इन फिरंगियों को या तो हम समन्दर में ग़र्क़ कर देंगे या गिद्धों को उनके गोश्त की दावत देंगे।

बादशाह : दुरुस्त है। ख़ान्दाने तैमूरिया अपना हक़ लेना जानता है। हमारे बुज़ुर्ग-आलिया बादशाह अकबर और शाहजहाँ ने अपनी रियाया के दर्दो-ग़म को दूर करने में अपना हाथ बढ़ाया था। फिरंगियों की गुलामी में ज़िंदगी बसर करने के बजाय आज़ादी के जंग में कट जाना बेहतर है। लेकिन बदक़िस्मती से फिरंगियों की लूट की वजह से हमारा ख़ज़ाना ख़ाली है। हम तुम लोगों को तनख्वाह कहाँ से देंगे ?

मुकुन्दीलाल : हुज़ूर ! हम सारे हिन्दुस्तान के फिरंगियों के ख़ज़ानों को लूटकर आपके क़दमों में डाल देंगे।

बादशाह : हम यह सुनकर ख़ुश हुए। बहादुर सिपाहियों से कहो कि दिल्ली का यह बादशाह पूरे तौर से तुम लोगों के साथ है। जो ज़ुल्म उन्होंने हमारे मुल्क पर ढाये हैं, उनका बदला पूरी तरह से लिया जाएगा। इस देश के पाक दामन पर उन्होंने ज़ुल्म के जो धब्बे डाल दिए हैं, उनको उन्हीं के ख़ून से धोया जाएगा।

सब : आफरीं ! आफ़रीं !

बादशाह : बहादुरो ! जाओ और अपने साथियों से कहो कि जो आज़ादी पिछले सौ बरसों से इन फिरंगियों के पैरों से कुचली जा रही है, उस आज़ादी को हम फिर से सम्हाल कर रखेंगे। हमारा भारत दुनिया में आज़ाद होने की ऐसी मिसाल पेश करेगा कि तवारीख़ में उसका नाम आफ़ताब की तरह रौशन होगा। जाओ, और आज़ादी की जंग में अपनी हिम्मत और बहादुरी का ज़ौहर दिखलाओ ! हिन्दू और मुसलमान भाई-भाई हैं। जाओ, और हथकड़ियों और बेड़ियों का बदला लो। बिहार में कुँवर सिंह और मन्दसौर में फ़ीरोज़शाह भी इन्क़लाब पैदा कर रहे हैं। इन दोनों बहादुरों से अपनी इस हैरतअंगेज़ जंग में मदद हासिल करो।

दोनों सिपाही : बादशाह सलामत ज़िन्दाबाद !

सब : बादशाह सलामत की जय ! जय भारत !

[बादशाह सलामत उठ खड़े होते हैं।]

[परदा गिरता है।]

चौथा अंक

काल : मार्च, 1858

स्थान : पूर्वी बिहार में गंगातट पर शिवापुर घाट के दूसरी ओर

[प्रातःकाल सूर्य की किरणें गंगा-जल पर अपूर्व सौंदर्य के साथ नृत्य कर रही हैं। तट पर हरे-भरे वृक्ष हैं, जिन पर पक्षियों का कोलाहल हो रहा है। जैसे वे कुँवर सिंह की विजय-गाथा का वर्णन मधुर शब्दों में कर रहे हैं। शीतल समीरण वह रही है, जो समीप की लताओं के फूलों से अठखेलियाँ कर रही है।

तट पर कुँवर सिंह हरी घास पर दृढ़ता के साथ बैठे हुए हैं। उनका एक हाथ कट गया है। उस पर बँधा हुआ वस्त्र रक्त से भीग गया है। उनके समीप उनके भाई अमर सिंह हैं। आसपास उनके दो जागीरदार जवान सिंह और निखार सिंह खड़े हुए हैं।]

अमर सिंह : भैया ! हाथ से रक्त बहुत निकल रहा है। आपको अधिक कष्ट तो नहीं है ?

कुँवर सिंह : कष्ट ! यह कहो कि मुझे कितना सुख मिला है। मैंने दो कार्य एक साथ किए हैं। अपने को निष्कलंक रखा और गंगा माता को अपनी बलि दी।

जवान सिंह : कितने साहस का परिचय आपने दिया है। मैं तो दूसरी नाव में था। अस्सी वर्ष की अवस्था में भी आप में कितनी शक्ति और कितना वेग है !

कुँवर सिंह : यह सब शक्ति मातृभूमि की है और यह सब वेग पवित्र सलिला भागीरथी का है। यह तो संयोग की बात थी कि जब हमारी नाव गंगा के बीच में थी, फिरंगी की एक गोली दूसरे पार से मेरे हाथ में लगी। फिरंगी की गोली से मेरा हाथ अपवित्र हो गया। इस अपवित्र हाथ को मैं अपने शरीर पर कैसे रखता ! मैंने दूसरे हाथ से तलवार उठायी और कुहनी तक घायल हाथ को काटकर गंगाजी में प्रवाहित कर दिया। और मैंने कहा—माँ भागीरथी ! अपने प्यारे पुत्र की यह बलि स्वीकार करो।

निखार सिंह : धन्य है, आपकी भक्ति को।

कुँवर सिंह : शिवापुर घाट पर अपनी सेना को गंगा पार उतारने का प्रबन्ध मैंने किश्तियों से कर ही लिया था। मैं तो पहले ही पार हो जाता, किंतु मैंने सोचा कि पहले मेरी सेना को पार उतारना चाहिए, जिसका दायित्व मेरे ऊपर था। मेरी नौका सबसे अन्तिम थी और फिरंगियों ने उस अन्तिम नौका पर ही गोली चलाई। मैं सबसे पीछे बैठा हुआ था, इसलिए गोली मेरे हाथ में ही लगी। मुझे तो इस बात का सुख है कि मेरे किसी सैनिक को गोली न लगकर मुझे लगी। उसका कष्ट मैंने झेला और वह कष्ट आनन्द में बदल गया, जब मैंने अपनी माँ भागीरथी को अपने ही शरीर की बलि दी।

अमर सिंह : आपका राष्ट्र-प्रेम और गंगा-भक्ति को समस्त बिहार में प्रसिद्ध है। फिरंगी

को बिहार से निकालने की आपने जो योजना बनाई, ऐसी योजना देश के किसी राज्य से नहीं बन सकी।

जवान सिंह : इसका कारण यह है कि हमारे महाराज ने वृक-युद्ध (गोरिल्ला वार) में जो प्रवीणता प्राप्त की है, वह प्रवीणता छत्रपति शिवाजी को छोड़कर किसी में भी नहीं पाई गई। एक समूह में रणक्षेत्र में फिरंगियों से न लड़कर आपने अपनी सेना को छोटी-छोटी टुकड़ियों में बाँटकर जैसा रण-चालन किया है, उसे फिरंगी भी नहीं समझ सका और उसे कितनी ही बार युद्ध में आपने मात दी।

कुँवर सिंह : अरे, हमारी सेना तो बहुत थोड़ी थी। ऐसी स्थिति में शत्रु से आमने-सामने भिड़ना लाभकारी किसी प्रकार भी नहीं हो सकता था। इसलिए एक चालाकी की। मैंने अपने गुप्तचरों से यह झूठी खबर प्रांत भर में उड़वा दी कि मैं बलिया के पास हाथियों पर से गंगा पर करूँगा। क्योंकि मेरी सेना को किश्तियों की कमी पड़ेगी। फिरंगी मेरी चाल में आ गए। उनका जनरल डगलस बलिया गया और मेरे हाथियों पर टूट पड़ने के लिए छिपकर बैठ गया। किंतु मैं चुपचाप सात मील दूर चलकर शिवापुर के घाट पर आ गया और किश्तियों से अपनी सेना को गंगा के पार उतारने में सफल हो गया।

अमर सिंह : और जैसे ही डगलस को इस बात का पता लगा कि उसे अच्छा-खासा झाँसा दिया गया है, तब वह जलता-भुनता हुआ सेना सहित शिवापुर घाट की ओर बढ़ा। हमारी सारी सेना गंगा के पार उतर गई थी, केवल अन्तिम नाव थी, जिस पर महाराज ने आसन ग्रहण किया था।

निखार सिंह : अगर महाराज चाहते तो वे अपनी किश्ती पर बैठकर गंगा पार उतर जाते, किंतु महाराज को अपने से अधिक अपनी सेना का ध्यान है। तभी तो सब को किश्तियों पर चढ़ा चुकने के बाद वे चढ़े और फिरंगी की गोली से घायल हो गए।

कुँवर सिंह : कोई चिंता की बात नहीं। कलकत्ता, मेरठ और दिल्ली में जिन सैनिकों ने फिरंगी को देश से निकालने में अपने प्राणों की आहुति दे दी है, उनके सामने मेरे एक हाथ की हानि का क्या महत्त्व है? किंतु अब सोचना यह है कि भविष्य का क्या कार्यक्रम होना चाहिए? जब तक हम फिरंगियों को इस देश से बाहर नहीं निकालेंगे, तब तक इस देश के किसी नागरिक को शांति नहीं होगी।

[एक गुप्तचर का प्रवेश]

गुप्तचर : महाराज की जय! शिवापुर घाट पर कोई भी नौका न होने के कारण फिरंगियों की फ़ौज वहीं पर रह गई। उसी समय हमारी सेना की एक टुकड़ी ने पूर्व की ओर से आकर डगलस की सेना पर सहसा ऐसा आक्रमण किया कि सेना उल्टे पैर भाग खड़ी हुई।

कुँवर सिंह : आक्रमण कर दिया, यही सूचना मैं चाहता था। यह आक्रमण इसीलिए कराया गया, जिससे वह सेना हमारा पीछा न कर सके। तो अब हम निश्चिन्त हैं।

गुप्तचर : महाराज ! हमारी राजधानी जगदीशपुर की प्रजा आपका स्वागत करने के लिए बहुत उत्सुक है।

कुँवर सिंह : जगदीशपुर में हमारे सैनिकों की संख्या कितनी होगी ?

गुप्तचर : महाराज ! पिछले युद्ध में हमारे बहुत से सैनिक हताहत हुए। किन्तु उन सैनिकों ने मरते-मरते फिरंगियों की फ़ौज के दुगुने सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया। फिर भी हमारे सैनिकों की संख्या एक हज़ार के लगभग अवश्य होगी।

कुँवर सिंह : शाहाबाद के जंगलों की क्या स्थिति है ?

गुप्तचर : शाहाबाद में भी हमारे सैनिकों की टुकड़ियाँ छिपी हुई हैं। फिरंगी अब शाहाबाद से असावधान हो गया है, क्योंकि उसकी सारी शक्तियाँ आपको वन्दी बनाने में लगी हुई हैं।

अमर सिंह : बन्दी बनाने में ? क्या फिरंगी नहीं जानता कि महाराज फिरंगियों पर उसी प्रकार टूट पड़ते हैं, जिस प्रकार एक शक्तिशाली बनराज मदोन्मत्त हाथियों के गंडस्थल पर टूट पड़ता है। क्या किसी हाथी ने भी सिंह को बन्दी बनाया है ?

गुप्तचर : इसीलिए महाराज ! फिरंगी की स्थिति विचित्र हो गई है। वह महाराज से डरता भी है और आक्रमण भी करना चाहता है।

कुँवर सिंह : अच्छा गुप्तचर ! तुम जाओ और शाहाबाद के जंगलों का निरीक्षण करो कि कहीं फिरंगी की कोई सेना तो छिपकर नहीं बैठी है, जो हमारे वहाँ पहुँचते ही हम पर आक्रमण करे। अपने साथियों की भी सहायता तुम ले सकते हो।

गुप्तचर : जो आज्ञा ! मैं अपने साथियों के साथ शाहाबाद के जंगलों की ओर जाता हूँ। महाराज की जय ! (**प्रणाम कर प्रस्थान**)

कुँवर सिंह : जवान सिंह ! अपने सैनिकों को आज्ञा दो कि वे शाहाबाद के जंगलों को पार करने की तैयारी करें। हम भी तैयार होते हैं।

निखार सिंह : महाराज ! आपके बाएँ हाथ से रक्त बहुत निकल गया है, यदि एक दिन विश्राम कर लिया जाए, तो कोई हानि नहीं होगी।

कुँवर सिंह : निखार सिंह ! क्या तुम नहीं जानते कि युद्ध में एक-एक क्षण महत्त्वपूर्ण होता है। एक क्षण में ही समर-लक्ष्मी अपनी दिशाएँ बदल देती है। यही देखो, यदि फिरंगियों को हमारे गंगा पार करने की सूचना एक क्षण बाद मिलती तो हम और हमारी सेना किश्तियों से गंगा पार कर रही है, यह उन्हें मालूम ही न होता; किंतु युद्ध में यही क्षण मूल्यवान होते हैं। हम इसी समय शाहाबाद के जंगलों की ओर प्रस्थान करगे।

अमर सिंह : अवश्य, हम लोग आपके साथ हैं।

[दो किसानों का प्रवेश। उनके साथ एक वैद्य भी हैं।]

तीनों : (**एक साथ**) महाराज की जय ! अभी सुना कि हम लोग शाहाबाद की ओर चल रहे हैं ?

अमर सिंह : कौन, जसदेव और कृपाराम ? तुम लोग किसान हो, तुम्हारा दल कहाँ है ?

जसदेव : महाराज ! उसने सैनिकों के खाने-पीने का सारा प्रबन्ध कर दिया है और अब सैनिक फिरंगियों का सिर तोड़ने के लिए उतावले हो रहे हैं।

कृपाराम : हमारे बहुत से किसान भी सेना में भरती हो गए हैं। फिरंगियों ने रबी की वसूली करने में जो ज़ोर-ज़बर्दस्ती की थी, उससे किसानों के मन में क्रोध की आग जल रही है। वे भी फिरंगियों को इस देश से निकालने के लिए कमर कस चुके हैं।

कुँवर सिंह : ऐसे कितने किसान हैं, जो सेना में भरती हुए हैं।

कृपाराम : पाँच सौ से अधिक ही होंगे। और महाराज ! शाहाबाद के जंगलों में भी जगह-जगह पर किसानों की बस्तियाँ हैं। वहाँ भी बहुत से किसान सेना में भरती होते चलेंगे।

कुँवर सिंह : मैंने गुप्तचरों को शाहाबाद के जंगलों का पूरा हाल जानने के लिए भेज दिया है। तुम लोग जल्द ही शाहाबाद की ओर सैनिकों के साथ चलने की तैयारी करो।

कृपाराम : जैसी आज्ञा ! तैयारी तो लगभग हो चुकी है। चलने में अब देर नहीं है।

जसदेव : महाराज ! एक प्रार्थना है।

कुँवर सिंह : सुनूँगा।

जसदेव : महाराज ! (**परिचय करते हुए**) ये नीलकंठ शास्त्री हैं। बहुत बड़े वैद्य और चिकित्सक। आपने जो अपना बायाँ हाथ काट डाला है, उसकी चिकित्सा कराने के लिए मैं इन्हें यहाँ लाया हूँ।

नीलकंठ : (**हाथ उठाकर**) महाराज की जय !

कुँवर सिंह : वैद्यराज नीलकंठजी ! बलिवेदी पर जो पुष्प चढ़ाया जाता है, फिर उसकी गंध नहीं ली जाती। जो आरती उतारी जाती है, वह बुझाई नहीं जाती। वह आपसे आप बुझती है। उसी प्रकार मातृभूमि की सेवा में जो रक्त चढ़ाया जाता है, उस रक्त को प्रवाहित होने से नहीं रोका जा सकता। जब शरीर में रक्त नहीं रहेगा, तो वह आपसे आप रुक जाएगा।

नीलकंठ : महाराज ! आपका कथन सत्य है, किंतु मेरी दृष्टि से रक्त की रक्षा इसलिए भी होनी चाहिए कि वह पुनः मातृभूमि पर चढ़ाया जा सके। बलिवेदी का फूल इसलिए सुरक्षित किया जाता है कि वह प्रसाद रूप से अपने मस्तक पर चढ़ाया जा सके और आरती इसलिए प्रज्वलित रखी जाती है कि अधिक से अधिक व्यक्ति उससे अपनी हथेली पवित्र कर अपनी आँखों में लगा सकें।

जसदेव : और महाराज ! आपके हाथ की बलि न जाने कितने सैनिकों के हृदय में प्रेरणा भर चुकी है कि वे मातृभूमि की रक्षा में अपने मस्तकों की बलि चढ़ा सकें। आपका आदर्श तो संसार के इतिहास में अमर है।

कुँवर सिंह : मातृभूमि पर बलि होना तो हृदय की प्रेरणा है। इतिहास उसे जूठा न करे,

तो अच्छा है। और नीलकंठ शास्त्री जी ! बायाँ हाथ कट जाने पर भी तो दाहिने हाथ से युद्ध कर सकता हूँ। मातृभूमि की भक्ति और गंगा मैया की कृपा ने मुझे अपने हाथ का कष्ट अनुभव ही नहीं करने दिया। ऊपर से मुझे सन्तोष है कि फिरंगी की गोली से जो मेरा हाथ अपवित्र हो गया था, उसे मैंने काटकर फेंक दिया। इसलिए इस समय आप कुछ भी कष्ट न करें। जगदीशपुर पहुँचकर यदि यह कटा हुआ हाथ मुझे मृत्यु के मुख में पहुँचाने का कारण बनेगा, तो मैं आपका स्मरण करूँगा। क्योंकि मैं राजभवन की शैया पर मरने की अपेक्षा रणभूमि की शैया पर शयन करना एक सैनिक के लिए अधिक अच्छा समझता हूँ।

नीलकंठ : जैसी आज्ञा ! मैं सेना के साथ ही शाहाबाद चल रहा हूँ। आज्ञा दीजिए। महाराज की जय !

जसदेव : महाराज की जय !

[दोनों का प्रणाम कर प्रस्थान]

कुँवर सिंह : नीलकंठ शास्त्री मेरे हाथ से बहते हुए रक्त को रोकेंगे। अरे, इसे तो गंगा मैया के प्रवाह की शक्ति लेकर और भी वेग से प्रवाहित होना चाहिए। जब युद्ध-भूमि में किसी सैनिक का हाथ कटकर गिरता है, तब कितने वैद्यों का समूह उस हाथ के रक्त का प्रवाह रोकने के लिए एकत्र होता है ? बेचारे करें भी क्या ? अपनी वैद्य-बुद्धि से लाचार हैं।

निखार सिंह : प्रत्येक व्यक्ति महाराज की सेवा कर अपने को धन्य समझना चाहता है।

कुँवर सिंह : रणभूमि में सेवा की आवश्यकता नहीं होती; शौर्य की आवश्यकता होती है। हमें अपनी राजधानी जगदीशपुर शीघ्र ही पहुँचना है।

अमर सिंह : हम लोगों ने जगदीशपुर आठ महीने पहले छोड़ा था। इस बीच हम फिरंगियों को निकालने के लिए निरन्तर संघर्ष करते रहे। आठ महीने बाद जब आप फिर से सिंहासन पर बैठेंगे, तो जनता कितनी सुखी और प्रसन्न होगी !

कुँवर सिंह : जनता तो तब सुखी और प्रसन्न होगी, जब ये फिरंगी हमेशा के लिए इस देश को छोड़कर चले जाएँगे।

अमर सिंह : तो इसके लिए हमें यह करना होगा कि हम लोग सेना का विभाजन कर दें। सेना के एक भाग को राजधानी की रक्षा का भार सौंपा जाए और दूसरे भाग से दृढ़ निश्चय और निर्भीकतापूर्वक फिर से भीषण युद्ध किया जाए।

कुँवर सिंह : मैं तो ऐसा सोचता हूँ कि जगदीशपुर से अपनी सेना लेकर मैं बिजली की गति से आरा पर आक्रमण कर दूँ।

जसदेव : किंतु महाराज ! विगत कई महीनों से न तो आपने और न आपकी सेना ने क्षण भर भी विश्राम किया। प्रतिक्षण आप सेना का संचालन करते हुए युद्ध में जूझते रहे। न तो आपने शांतिपूर्वक भोजन किया और न आपको सुख की नींद सोने का अवकाश ही मिला।

कुँवर सिंह : सुख की नींद ! इस देश में किसे सुख की नींद का सौभाग्य प्राप्त हुआ है ? डरावने सपनों की भाँति ये फिरंगी हमारी नींद तोड़ते रहे हैं।

निखार सिंह : महाराज ! इस पर भी विचार करें कि हमारी थकी हुई सेना अभी बिखरी हुई है। हमारे पास हथियार भी अपर्याप्त हैं और तोपखाना तो है ही नहीं, जबकि फिरंगी के पास जबर्दस्त तोपखाना है और लम्बी मार करने वाली बन्दूकें भी हैं।

जसदेव : इस बात का भी भय है कि हमारी क्रांतिकारी सेना के दस्ते कहीं फिरंगियों की सेना से घेर न लिए जाएँ।

कुँवर सिंह : हमारी सेना की टुकड़ियाँ इतनी बँटी हुई हैं कि फिरंगियों की सेना उन्हें घेर ही नहीं सकती। और फिर क्या हमारे पास तेज़ धार वाली संगीनें नहीं हैं ? और तुम्हें मालूम है, फिरंगी लोग उतना गोलियों से नहीं डरते, जितना संगीनों से डरते हैं। संगीनों को देखकर वे काँपने लगते हैं, अपनी सारी हिम्मत हार बैठते हैं। फिर उनके जनरल को पीछे हटो—पीछे हटो का आदेश देना ही पड़ता है।

अमर सिंह : और फिर जब हमारे मारू बाजे घनघोर नाद करते हैं, तो जितने उत्साह से हमारे सैनिक बढ़ते हैं, उतने ही भयभीत होकर फिरंगी पीछे हटते हैं।

कुँवर सिंह : और पीछे हटकर वे जाएँगे कहाँ ? किसी अज्ञात दिशा से हमारी सेना की दूसरी टुकड़ी उनके टुकड़े-टुकड़े कर देगी। हमने एक जंगल के युद्ध में इन फिरंगियों को देखा है। हमारे वीर सैनिक क्रोध से भरे हुए व्याघ्र की भाँति उन पर झपटते थे और फिरंगियों की सेना कुलाँच भरने वाले हिरनों की भाँति जहाँ-तहाँ भागती थी। वे जिस दिशा में भागते थे, हमारे सैनिक उसी दिशा में उनका पीछा करते थे।

जसदेव : यह दृश्य तो महाराज, मैंने भी देखा था !

कुँवर सिंह : और जब वे भागते हुए फिरंगी, प्यास से छटपटाते हुए किसी गन्दे गढ़े की ओर भागते थे, तो हमारे वीर सैनिक पीछा करते हुए कहते थे—कमबख्तो ! हमारी तलवार में इतना पानी है कि उसे पीकर तुम हमेशा के लिए अपनी प्यास भूल जाओगे।

अमर सिंह : आपने उस समय फिरंगियों का वैद्यक विभाग भी तो छीन लिया था, जिससे फिरंगी सेना घायल सिपाहियों की दवा-दारू न कर सके।

कुँवर सिंह : उस समय हमारे पास एक भी तोप नहीं थी, किंतु हमारे सैनिकों की संगीनों के हमले से उनके तोप चलाने वाले भी डरकर भाग गए थे और फिरंगियों की बहुत-सी तोपें, गोले-बारूद के साथ हमारे हाथ लगी थीं।

अमर सिंह : उस समय महाराज ! आपका पराक्रम देखने योग्य था।

कुँवर सिंह : यह सब युद्ध-भैरवी की कृपा है, पर हमने अपने सैनिकों को आदेश दे रखा था कि जिस तरह विदेशी शत्रु पर दया दिखाने की भूल कभी न की जाए, उसी तरह विदेशी सेना में लड़ते हुए अपने भूले भाइयों को कभी जान से न मारा जाए

और हमारे सैनिकों ने इस आदेश का भरपूर पालन किया।

अमर सिंह : भैया ! आपने तो यहाँ तक किया कि फिरंगियों का साथ देने वाले बंगाली बाबुओं को बन्दी करने के बाद, न केवल उन्हें आपने मुक्त किया, वरन् उनकी इच्छा के अनुसार उन्हें हाथियों पर चढ़ाकर पटने तक पहुँचाया।

जवान सिंह : महाराज की सूझ-बूझ का एक प्रमाण और भी है। जब हमारे सैनिकों ने फिरंगियों के दफ्तर में आग लगाई, तो उनमे कह दिया था कि जिन कागज़ों के आधार पर लोगों के वंश-परम्परागत अधिकारों का प्रमाण है और जिन्हें फिरंगियों ने दबा रक्खा है, उन्हें किसी प्रकार भी नष्ट नहीं किया जाना चाहिए।

कुँवर सिंह : हमारे देश में नागरिकों को, सामन्तों को और राजाओं को उनका पूरा अधिकार मिलना चाहिए। फिरंगी तो चल और अचल संपत्ति दोनों को ही अपने अधिकार में कर अपने स्वार्थ-साधन से इस देश पर राज्य करना चाहते हैं और उन्हें इस प्रकार का अवसर किसी प्रकार भी नहीं दिया जाएगा।

[एक दूत का प्रवेश]

दूत : महाराज की जय ! सेना शाहाबाद के जंगलों की ओर प्रस्थान कर रही है।

कुँवर सिंह : तुम भी उस सेना के साथ रहो। हम सब उस सेना के पीछे चलेंगे, जिससे फिरंगी हमारी आगे बढ़ती हुई सेना पर पीछे से आक्रमण न कर सकें। सेनापति से कहो—कि अपने देश की स्वतंत्रता में आगे बढ़ने वाला प्रत्येक क़दम तीर्थभूमि पर रखा हुआ क़दम है।

दूत : जैसी आज्ञा। महाराज की जय ! (**प्रस्थान**)

कुँवर सिंह : अब हम भी शाहाबाद के जंगलों की ओर प्रस्थान करेंगे और यदि शत्रु सामने आएगा, तो उसका शक्तिपूर्वक सामना करेंगे। (**अपने दाहिने हाथ को संबोधित कर**) मेरे दाहिने हाथ ! अब तुझे इतनी शक्ति से तलवार चलाना है कि बायें हाथ से तलवार चलाने की कमी पूरी हो जाए ! तो मेरे साथियो ! चलो, आगे बढ़ो ! जय भारत !

सब : (**एक स्वर से**) जय भारत !

[चलने के लिए उद्यत होते हैं।]

[परदा गिरता है।]

पाँचवाँ अंक

स्थान : मन्दसौर के निकट एक मस्जिद

समय : मध्याह्न

[**स्थिति :** मस्जिद के बाहरी भाग में शाहज़ादा फ़ीरोज़शाह बैठा है। उसके पास उसका वज़ीर मिरज़ा टहल रहा है।]

मिरज़ा : लेकिन यह बात बरदाश्त के बाहर है।

फ़ीरोज़शाह : (**निराशा भरे स्वर में**) ज़िन्दगी में बहुत-सी बातें ऐसी हैं, मिरज़ा साहब ! जिन्हें बरदाश्त करने के सिवा कोई चारा नहीं है। नहीं तो मेरी शमशीर में ऐसे शरारें हैं, जिनसे कम्पनी की हुकूमत में आग लग सकती है।

मिरज़ा : क्यों नहीं शाहज़ादा साहब ! आपकी हैसियत मामूली नहीं है। आप बहादुरशाह अव्वल के ख़ानदान के हैं। शाहज़ादे हैं, तख़्त पर आपका हक़ है। वह हक़ तो दूर रहा, मन्दसौर के गवर्नर की यह जुरअत कि वह आपको शहर से बाहर निकल जाने का हुक्म दे और आप इस टूटी हुई मस्जिद में पनाह लें ?

फ़ीरोज़शाह : यह मस्जिद ख़ुदा का घर है, मिरज़ा ! मरने पर तो सभी लोग ख़ुदा की पनाह माँगते हैं, मुझे बिना माँगे ही यह पनाह हासिल हो गयी, क्या मुज़ायक़ा है ? यहाँ रह कर मेरी शमशीर की धार पर ख़ुदा का जल्वा सूरज की किरन जैसा फैल जाएगा।

मिरज़ा : इसमें कोई शक नहीं, शाहज़ादे साहब ! आप दिल्ली से जब मक्के के लिए रवाना हुए थे, तभी हम लोगों ने समझ लिया था कि आप वहाँ से हाजी होने के साथ ग़ाज़ी बन कर लौटेंगे।

फ़ीरोज़शाह : मैं दो बरस तक मक्के में ख़ुदा की इबादत करता रहा। दुआ माँगता रहा कि जिस सल्तनत को आक़ा बहादुरशाह हुज़ूर ने अपनी शानो-शौक़त के आफ़ताब से रौशन किया, उसमें कम्पनी के साये ने ऐसा अँधेरा फैला दिया कि हम एक-दूसरे को पहिचानने के क़ाबिल भी नहीं रहे ! ख़ुदा की इबादत ने मुझे ताक़त अता फ़रमायी और मैं बम्बई से दिल्ली, सीतामऊ होता हुआ मन्दसौर आया। यहाँ मैंने अपने इस्लाम का हरा झंडा आसमान में लहरा दिया और फिरंगियों के ख़िलाफ़ जिहाद का एलान कर दिया। मेरे पास फ़ौज ही कितनी थी ? मन्दसौर के गवर्नर ने गोरी फ़ौज भेजकर मुझे इत्तला दी कि मैं मन्दसौर छोड़ दूँ। मैंने भी सोचा कि उस वक़्त तक मैं चुप रहूँ, जब तक मैं पड़ोस के राजाओं को अपनी तरफ़ न मिला लूँ। जब मेरे पास काफ़ी हथियार और फ़ौजें इकट्ठी हो जाएँगी, तब मन्दसौर के गवर्नर को उसकी हिमाक़त की सज़ा दूँगा।

मिरज़ा : आपने आस-पास की रियासतों को ख़त तो भिजवा ही दिए हैं, जल्द ही उनकी रज़ामन्दी हासिल होगी और देखते-देखते आपकी ताक़त इतनी बढ़ जाएगी कि

उसका अन्दाज़ा फिरंगी ख्वाब में भी नहीं कर सकेंगे। लेकिन एक बात का मुझे अज़हद अफ़सोस है।

फ़ीरोज़शाह : किस बात का ?

मिरज़ा : कि हुज़ूर का लिबास एक फ़क़ीर का लिबास हो गया है। जिस शाहज़ादे के जिस्म पर सूरज और चाँद की किरनों से चमकती हुई पोशाक होनी चाहिए, उसके जिस्म पर फ़क़ीर का लम्बा कुरता और पैजामा हो ! जिस शाहज़ादे के पैरों की जूतियों पर हज़ारों हीरे और नीलम चस्पाँ होकर अपनी खुशक़िस्मती की किरनें बिखेरें, उस शाहज़ादे के नंगे पैरों पर ख़ाक के ज़र्रे पड़ कर बादशाहत के जल्वे का मखौल उड़ायें ! यह बात बरदाश्त के बाहर है, हुज़ूर !

फ़ीरोज़शाह : तुम मेरे वज़ीर हो, मिरज़ा ! तुम्हें अफ़सोस हो सकता है, होना चाहिए। लेकिन क्या ख़ुदा ने इसमें भी कोई करिश्मा नहीं दिखलाया ?

मिरज़ा : कैसा करिश्मा, हुज़ूर ?

फ़ीरोज़शाह : कल मैं एक बादशाह का बेटा था, आज फ़क़ीर हूँ। क्या मेरा फ़क़ीराना लिबास देख कर पड़ोस के राजाओं के दिलों में दर्द पैदा नहीं होगा ? वह दर्द, जो और किसी बात से पैदा नहीं हो सकता था। और जिस फिरंगी ने मेरी यह हालत कर दी है, उस फिरंगी के ख़िलाफ़ क्या उनकी तलवारें म्यान से बाहर न निकल आएँगी ?

मिरज़ा : वल्लाह ! क्या बात कही है, हुज़ूर ने ! दरअसल हुज़ूर के इस फ़क़ीराना लिबास को देखकर न जाने, कितनी तलवारें आसमान में चमक उठेंगी।

[बाहर हलचल होती है।]

मिरज़ा : (**पुकार कर**) यह कैसी हलचल ? रामदास !

[रामदास का प्रवेश]

रामदास : श्रीमान् की जय !

मिरज़ा : देखो, बाहर कैसी हलचल है ?

रामदास : जैसी आज्ञा ! (**प्रस्थान**)

फ़ीरोज़शाह : बाहर गोरे सिपाही तो नहीं हैं ? उन लोगों को पता लगा होगा कि हम लोगों ने इस मस्जिद में पनाह ली है। शायद वे लोग हमें यहाँ भी चैन से न रहने देंगे।

मिरज़ा : हमारे पास थोड़े से ही सिपाही हैं, लेकिन हुज़ूर की इज़्ज़त पर वो अपना ख़ून बहा सकते हैं। हम हर हालत का मुक़ाबला करने के लिए तैयार हैं।

[रामदास का प्रवेश]

रामदास : श्रीमान् की जय ! बाहर कुछ भील सैनिक हैं। वे श्रीमान् के दर्शन करना चाहते हैं।

फ़ीरोज़शाह : भील सैनिक ? सीतामऊ में मुझे कुछ भील सैनिक मिले थे। वे हमें वहाँ

रोकना चाहते थे, मगर मैं मन्दसौर चला आया। (**रामदास से**) भेज दो उन्हें यहाँ।

रामदास : जो आज्ञा ! (**प्रस्थान**)

फ़ीरोज़शाह : रामदास मेरा बहुत पुराना साथी है। यह बहुत अच्छी तलवार चलाता है। दिल्ली से जब मैं सीतामऊ आ रहा था, तब एक गोरे ने मेरा पीछा किया। रामदास ने उलट कर उस पर तलवार का ऐसा वार किया कि वह वहीं पर ढेर हो गया। वह भील सरदार का मित्र भी है। सीतामऊ में वह उनसे घुल-मिल गया था।

[दो भील सैनिकों का प्रवेश]

पहला भील सैनिक : बादशाह सलामत की फ़तह हो !

दूसरा भील सैनिक : बादशाह सलामत की जीत हो !

फ़ीरोज़शाह : आबाद रहो ! तुम लोगों को हमने पहिचाना नहीं।

पहला सैनिक : श्रीमन् ! हम दोनों मालवे के भील सरदार तुलजावीर के सैनिक हैं। उन्होंने 300 सैनिकों के साथ हमें आपकी सहायता के लिए भेजा है।

फ़ीरोज़शाह : खूब ! तुलजावीर को हम जानते हैं। फिरंगियों ने जब भीलों पर अत्याचार किया, तो उन्होंने पचासों फिरंगियों को तलवार के घाट उतार दिया।

मिरज़ा : फिरंगियों ने भीलों पर भी तो अत्याचार किया !

दूसरा सैनिक : श्रीमान् ! हम लोगों में से बहुतों को तो क़ैद किया ही, हमारी स्त्रियों पर भी संगीनें चलायीं। बेग़ैरत ! हमारे यहाँ की स्त्रियाँ त्योहार के अवसर पर हरे कपड़े पहनती हैं। गोरों ने समझा कि हरा कपड़ा इस्लाम का झंडा है, जो शाहज़ादे फ़ीरोज़शाह ने आसमान में फहराया है। लेकिन जिन सिपाहियों के हाथ में संगीनें थीं, हम लोगों ने उनका सिर उतार लिया।

पहला सैनिक : हमारे सरदार तुलजावीर ने सुना कि गोरी पलटन आपके पीछे लगी हुई है। मन्दसौर के गवर्नर ने आपको मन्दसौर में भी नहीं रहने दिया। हमारे सरदार ने अपने तीन सौ सिपाहियों के साथ हमें भेज दिया कि आपकी मदद की जाए !

फ़ीरोज़शाह : मेरा धन्यबाद उनसे कहो। तुम्हारे सरदार तुलजावीर के पास कितने सिपाही हैं ?

पहला सैनिक : श्रीमन् ! मालवे में ही उनके सात हज़ार से ज्यादा भील सिपाही हैं। वे सब आपकी सहायता के लिए रहेंगे। फिरंगियों के पास थोड़ी-सी गोरी पलटन है। उसी के बल पर वे अपना राज्य यहाँ जमाना चाहते हैं।

दूसरा सैनिक : श्रीमन् ! इतनी थोड़ी पलटन कर ही क्या सकती है, लेकिन एक बात हमारे यहाँ बहुत बुरी है कि हमारे आदमी गोरी चमड़ी के सिपाहियों को देख कर डर जाते हैं। उनके सौ सिपाहियों को देखकर हमारे एक हज़ार सिपाही डर से काँपने लगते हैं। अगर ये लोग हिम्मत बाँध कर उनसे भिड़ जाएँ, तो फिरंगियों

की धूल भी इस ज़मीन पर देखने को न मिलेगी।

मिरज़ा : तुम सही कहते हो, सिपाही ! हमारा हिन्दुस्तान इसी वजह से कमज़ोर है कि उसमें डर समाया हुआ है। लेकिन राजपूतों ने ऐसी बहुत-सी लड़ाइयाँ लड़ी हैं, जिनमे थोड़े से सिपाहियों ने मैदाने-जंग में बढ़ कर बड़ी फ़ौजों को शिकस्त दी हैं।

पहला सैनिक : आप सही कहते हैं, श्रीमन् ! हमारे भील सैनिकों में भी यही बात है। उनके मन में डर का नाम नहीं है। इसीलिए वे किसी भी फ़ौज का मुक़ाबला कर सकते हैं। हमें इसकी क्या चिन्ता कि गोरी पलटन कितनी है ? हम तो शत्रुओं को मार कर मरने वाले हैं।

फ़ीरोज़शाह : तुम्हारे तीन सौ सिपाही कहाँ हैं ?

दूसरा सैनिक : वे मन्दसौर के जंगल में छिपे हुए हैं। ताँत्या टोपे के सैनिकों की टुकड़ी भी संयोग से हमसे आकर मिल गयी है।

फ़ीरोज़शाह : यह तो बड़ी ख़ुशी की बात है।

पहला सैनिक : श्रीमन् ! होलकर की घुड़सवार सेना का सेनापति सादत ख़ाँ तेज़ी से घोड़ा दौड़ाता हुआ आया और उसने कहा कि तुकोजी राव होलकर ने आज्ञा दी है कि फिरंगी के सब साहब लोग मार दिए जाएँ ! ताँत्या टोपे के सैनिकों ने अपनी बन्दूकों की नलियों को अपने अधिकारियों की ओर मोड़ दिया और सब साहबों को पलक मारते उड़ा दिया !

फ़ीरोज़शाह : लेकिन फिरंगियों के पास तोपख़ाना भी तो था। उसकी मदद उन्होंने नहीं ली ?

दूसरा सैनिक : जब आज्ञा देने वाले साहब ही नहीं रहे, तो तोप चलाने वाले इधर-उधर छिपकर भाग गए। फिरंगियों की सारी तोपें आसानी से होलकर महाराज के हाथ लगीं।

मिरज़ा : अब अगर होलकर महाराज की मदद हमें मिल जाए, तो हम सभी फिरंगियों को मन्दसौर से निकाल सकते हैं।

फ़ीरोज़शाह : लेकिन क्या होलकर महाराज हमारी मदद के लिए आ सकते हैं ?

पहला सैनिक : श्रीमन् ! वे भी तो फिरंगियों के अत्याचार से दुखी हैं। फिरंगी एजेण्ट डूरेण्ड इतना घमण्डी है कि वह तुकोजी राव होलकर के दरबार में जब पहुँचता है, तो दरबार का कोई शिष्टाचार नहीं बरतता। और जब होलकर महाराज अपनी स्वतंत्रता की बातें करते हैं, तो वह वहीं पर नाक-भौं सिकोड़ने लगता है। होलकर महाराज ने आज्ञा दे दी है कि आगे से डूरेण्ड एजेण्ट को दरबार में आने की कोई आवश्यकता नहीं। इससे महाराज होलकर और डूरेण्ड के बीच गहरा तनाव पैदा हो गया है।

फ़ीरोज़शाह : ठीक है ! हम जल्द ही कोई सूरत निकालेंगे कि होलकर महाराज की मदद हमें मिल सके। आप लोग मस्जिद की दूसरी तरफ़ आराम करें जैसा हमारा तस्फ़िया होगा, उसे तुम लोग अपने भील सरदार जी के सामने रखना।

दोनों सैनिक : जैसी आज्ञा ! **(प्रस्थान)**

फ़ीरोज़शाह : मिरज़ा ! आसार तो अच्छे दीखते हैं। भील सरदार तुलजावीर बायें और होलकर महाराज हमारे दाहिने हों, तो हम बहुत बड़ी ताक़त हो सकते हैं और फिरंगियों को अपने देश से देखते-देखते निकाल सकते हैं।

मिरज़ा : बात यह है कि फिरंगी जानता है कि वह हमारे देश के बहादुरों से नहीं लड़ सकता। वह हममें फूट डाल कर ही हमें शिकस्त दे सकता है। अभी तक ऐसा ही होता रहा, लेकिन अब हिन्दुस्तान के लोग फिरंगियों की चालाकी समझ गए हैं और अब वे धीरे-धीरे आपस में मिलकर ताक़त बढ़ा रहे हैं। ऐसी हालत में कोई मुश्किल नहीं है कि होलकर महाराज और तुलजावीर हममे मिल जाएँ और हमारी मिली-जुली फ़ौज फिरंगियों को इस मुल्क से निकाल बाहर करे।

[नेपथ्य में सिसकियों की आवाज़ आती है।)

फ़ीरोज़शाह : कोई औरत रो रही है ?

मिरज़ा : मैं अभी पता लगाता हूँ। (**पुकार कर**) रामदास !

रामदास : (**प्रवेश कर**) आज्ञा श्रीमन् !

मिरज़ा : बाहर कोई औरत रो रही है। देखो, कौन है ?

रामदास : जैसी आज्ञा ! (**प्रस्थान**)

मिरज़ा : मन्दसौर की हालत ठीक नहीं है, हुज़ूर ! यहाँ कब कौन-सी वारदात हो जाए, कहा नहीं जा सकता।

फ़ीरोज़शाह : हिन्दू भाई कहते हैं कि पाप का घड़ा भरते-भरते फूटता है। फिरंगियों के पाप का घड़ा धीरे-धीरे भरता ही तो जा रहा है।

[रामदास का एक बूढ़ी स्त्री के साथ प्रवेश]

बूढ़ी स्त्री : नहीं···नहीं मेरा कोई कुसूर नहीं है। मुझे अपने मालिक के सामने न ले जाओ। न ले जाओ ! (**सिसकती है।**)

फ़ीरोज़शाह : डरने की कोई बात नहीं है, माँ ! तुम किस मुसीबत में हो ?

बूढ़ी स्त्री : मैंने···मैंने···कोई कुसूर नहीं किया ! कोई कुसूर नहीं किया। मुझे माफ़ करो ! माफ़ करो, मैं अपने रास्ते चली जाऊँगी। अब मैं मना नहीं करूँगी···मना नहीं करूँगी।

मिरज़ा : किस बात से मना नहीं करोगी ?

बूढ़ी स्त्री : तो···तो···आप कोई सज़ा तो मुझे नहीं देंगे।

फ़ीरोज़शाह : लेकिन माँ, तुम्हारा कुसूर क्या है ?

बूढ़ी स्त्री : कुसूर ! आप फिरंगियों के साथी···साथी तो नहीं हैं ?

मिरज़ा : फिरंगियों के साथी ? यह कहो कि हम तुम्हारे साथी हैं।

बूढ़ी स्त्री : (**फूटकर**) तो···तो···मेरा क्या कुसूर था ? मैंने···मैंने···मना ही तो किया था। बस, मना किया और मुझे इतने ज़ोर से धक्का दिया कि मैं···मैं ज़मीन पर गिर पड़ी।

मिरज़ा : धक्का दिया, किसने ?

बूढ़ी स्त्री : उन दो फिरंगियों ने। एक भाई जो परदेसी लगता था, उसने उन फिरंगियों को रोका कि वे मेरी मूरत न लें···मेरी प्यारी मूरत न लें···तो···तो···उन्होंने उसके हाथ-पैर बाँध दिए, मेरी मूरत छीन ली और मेरी पीठ पर ज़ोर से लात भी लगायी !

फ़ीरोज़शाह : हम कुछ समझे नहीं, माँ ! तुम ये सब बातें कह रही हो। तुम कौन हो ?

बूढ़ी स्त्री : मैं···मैं···? तो महाराज ! एक मन्दिर की पुजारिन हूँ। मेरा···मेरा कोई नहीं है। पति मुझे दुखिया बना के भगवान् के पास चले गए ! मैं दुनिया में अकेली रह गयी ! माँ-बाप, बाल-बच्चे कोई नहीं रहे ! भगवती की पूजा कर अपनी उमर काट रही थी, कि आज भगवती भी चली गयीं ! **(रोती है)** भगवती···भी चली गयीं।

फ़ीरोज़शाह : भगवती चली गयीं ? भगवती कौन ? क्या मतलब ?

बूढ़ी स्त्री : मेरे घर के पास एक छोटा मन्दिर है। उसमें भगवती की मूरत थी। बरसों से उसी की पूजा करती थी। आज फिरंगी उसे भी लूट ले गए।

मिरज़ा : वो मूरत सोने की थी ?

बूढ़ी स्त्री : नहीं महाराज ! पीतल की थी। पर उन फिरंगियों ने समझा कि वह सोने की है और उसमें मोती-जवाहर भरे हुए हैं। मैंने बार-बार कहा कि यह पीतल की है। उन्होंने कहा—बुढ़िया झूठ बोलती है। मैं मना करती रही और उन्होंने मुझसे मूरत छीन ली और पीठ पर ज़ोर से लात मारी ! अब मैं कहाँ जाऊँ ? भगवती मुझे मौत भी नहीं देती ! **(रोती है।)**

फ़ीरोज़शाह : ये फिरंगी दिनों-दिन ग़रीब लोगों पर ज़ुल्म करते हैं। वो फिरंगी कहाँ गए ?

बूढ़ी स्त्री : इसी पास की गली के मोड़ पर बैठे हैं। उल्टी-सीधी बातें करते हैं, मेरी समझ में कुछ नहीं आता। महाराज ! मेरी मूरत मुझे दिला दो। भगवती तुम्हारा भला करेगी।

फ़ीरोज़शाह : मूरत दिला दूँ ! मैं तुम्हारी मूरत तुम्हें ज़रूर दिला दूँगा। मैं अभी जाकर देखता हूँ।

मिरज़ा : हुज़ूर ! आप बैठें। मैं जाकर देखता हूँ।

फ़ीरोज़शाह : नहीं मिरज़ा ! तुम बुज़ुर्ग हो, फिर न जाने वे फिरंगी कैसे हैं ! मैं ही जाकर देखता हूँ। तुम इस बूढ़ी माँ की हिफ़ाज़त करो। मैं जाता हूँ। **(अपनी कमर से तलवार खींच लेते हैं और शीघ्रता से जाने को उद्यत होते हैं।)**

बूढ़ी स्त्री : नहीं, महाराज ! आप अपने प्रान संकट में मत डालिए।

फ़ीरोज़शाह : संकट ही तो मेरी ज़िन्दगी की कसौटी है, माँ ! मैं जाता हूँ। **(तेजी से प्रस्थान)**

बूढ़ी स्त्री : हाय ! हाय ! मैंने यह क्या किया ? महाराज को बैठे-बिठाए संकट में डाल दिया।

मिरज़ा : नहीं, हमारे हुज़ूर तो हमेशा दीन-दुखियों की मदद करते हैं।

बूढ़ी स्त्री : ऐसे ही महात्माओं से ये संसार टिका हुआ है। ये कौन हैं, महाराज ?

मिरज़ा : ये ? ये दिल्ली में एक बड़े बादशाह हो गए हैं। ये उनके बेटे हैं। बड़े बहादुर हैं। दुनिया-भर घूम के आए हैं। बड़े ऊँचे दिल के हैं। इनकी भी मिल्कियत फिरंगियों ने छीन ली। ये तब से जगह-जगह घूम रहे हैं और फिरंगियों से बदला लेने की बात सोच रहे हैं।

बूढ़ी स्त्री : (**आश्चर्य से**) तो ये एक बड़े बादशाह के बेटे हैं ? हाय ! मैंने क्या कह दिया ! कितने दयावान और मीठे स्वभाव के हैं। कहीं फिरंगी इनके साथ कुछ न कर बैठें !

मिरज़ा : इसकी फ़िक्र मत करो। ये बड़ों-बड़ों से लोहा ले सकते हैं। अच्छा, यह बतलाओ, माँ ! तुम्हारे लिए खाना मँगाया जाए ?

बूढ़ी स्त्री : नहीं, महाराज ! आज मेरा उपवास है और आज उपवास के दिन ही मेरी भगवती मुझसे छूट गयीं। मैंने इस जनम में ऐसे कौन से पाप किए हैं कि जब मैं मरने की उमर तक पहुँची, तो देवी मुझे छोड़कर चली गयीं ! ···चाहती थी कि अपनी देवी के सामने ही अपना चोला छोड़ती। पर अभागिन जो हूँ ! (**रोती है।**)

मिरज़ा : देखो माँ, आँसू मत बहाओ ! धीरज रखो ! हमारे हुज़ूर आते ही होंगे।

बूढ़ी स्त्री : बड़े भयानक भेड़िए हैं वो लोग। वो एक भला मानस छिपते-छिपाते वहीं पहुँच गया था। उसने बस इतना कहा कि बूढ़ी माँ को तकलीफ़ मत पहुँचाओ, तो उन्होंने उसे भी मारा और उसके हाथ-पैर बाँध दिए।

मिरज़ा : वो आदमी कौन था ?

बूढ़ी स्त्री : मैं उसे नहीं पहिचानती। कहीं दूर से आया हुआ परदेशी था। वह बीच में न पड़ना चाहता था, पर जब फिरंगी जूते पहिने मेरे मन्दिर में घुम गए और मूरत उठाने लगे, तो मैंने मूरत को कस के पकड़ लिया। उन्होंने मुझे धक्का देकर भूमि पर गिरा दिया और एक लात मारी तो उस आदमी से नहीं रहा गया और उन्होंने उन्हें रोका, तो वे उस पर बरस पड़े। और उसे भी मारने लगे।

मिरज़ा : ये फिरंगी बहुत सिर-चढ़े हो गये हैं।

बूढ़ी स्त्री : महाराज ! ये हम लोगों की धन-दौलत लूटना चाहते हैं तो लूटें, पर हमारा धरम क्यों बिगाड़ते हैं ? क्या उनका कोई धरम नहीं होता ? बिलकुल राक्षस जान पड़ते हैं। अपना धरम न मानें पर दूसरों के धरम का ध्यान भी तो रखें।

[शीघ्रता से फ़ीरोज़शाह का प्रवेश। उनकी तलवार पर ख़ून है और हाथ में भगवती माँ की मूर्ति। उनके पीछे बूढ़ी स्त्री का बताया हुआ एक परदेशी भी है।]

फ़ीरोज़शाह : माँ, लो यह अपनी मूरत !

[बूढ़ी स्त्री बड़ी उतावली से वह मूर्ति लेकर हृदय से लगाती हुई रोती है ।]

बूढ़ी स्त्री : मेरी भगवती ! मेरी प्यारी भगवती ! हाय ! तू मुझे छोड़कर कहाँ चली गयी थी ? (**सिसकती है**) मेरी भगवती फिर मेरे पास आ गयी ! (**फ़ीरोज़शाह से**) महाराज ! महाराज ! आप कितने दयावान हैं ! आपने मेरी भगवती मुझे फिर दिला दी ! (**सिसकती है**)

फ़ीरोज़शाह : जाओ, माँ ! अपने मन्दिर में अपनी भगवती को फिर से बिठला दो। अब किसी की हिम्मत न होगी कि तुम्हारे मन्दिर के पास आ भी सके। जाओ !

बूढ़ी स्त्री : महाराज ! तुम लाख बरस जियो । तुमने हमारी भगवती फिर से हमें दिला दी। महाराज ! भगवती तुम्हारा भला करें, भला करें···भला करें । (**प्रस्थान**)

फ़ीरोज़शाह : (**मिरज़ा से**) मिरज़ा ! वे दोनों बदज़ात वहीं गली के मोड़ पर बैठे थे। किसी दूसरे आदमी को लूटने की फ़िक्र में थे । मैंने उनसे बुढ़िया माँ की मूर्ति माँगी । वे गाली बकने लगे, तो मैंने उन्हें ललकारा। उन्होंने भी अपनी तलवारें निकाल लीं। फिरंगी तलवार चलाना क्या जानें ? मैंने एक ही हाथ से दोनों को साफ़ कर दिया। (**परदेशी को संकेत कर**) इस बेचारे के हाथ बँधे हुए थे। मैंने तलवार से रस्सियाँ काटीं और इसे साथ ले आया।

मिरज़ा : (**उठकर**) हुज़ूर ! ज़िन्दाबाद ! मैं जानता था कि आप जब गुस्से में आते हैं, तो आपके सामने कोई ठहर नहीं सकता। आपके तलवार चलाने की सिफ़त मैं जानता हूँ। आपसे लड़ने की हिम्मत किसे हो सकती है ?

फ़ीरोज़शाह : (**परदेशी से**) तुम कौन हो ?

परदेशी : महाराज ! मुझे कुछ ऐसा लगता है कि आप शाहज़ादे फ़ीरोज़शाह हैं ।

मिरज़ा : कैसे जाना ?

परदेशी : मैं महाराज होलकर का गुप्तचर हूँ। महाराज होलकर से ही सुना था कि शाहज़ादे साहब मन्दसौर में कहीं गुप्त रूप मे रह रहे हैं और फिरंगियों को मन्दसौर से निकालने की योजना बना रहे हैं। जब आपने फिरंगियों को ललकारा, तो मैं समझ गया कि मन्दसौर में इतना बहादुर कौन है जो फिरंगियों को चुनौती दे सकता है !

फ़ीरोज़शाह : गुप्तचर यानी जासूस ?

परदेशी : जी हाँ, जासूस ! मैं इन्दौर महाराज के पास से ही आ रहा हूँ। मैं अपने को सन्देह की दृष्टि से दूर रखता हुआ फिरंगियों से छिपकर आपके पास ही आ रहा था कि मैं उस बूढ़ी माँ की हालत देखकर अपने को नहीं रोक सका । फिरंगी उन्हें बुरी तरह झकझोर रहे थे और उनसे मूर्ति छीन रहे थे । मुझे मना करने के लिए आगे बढ़ना पड़ा। वे दो थे और मैं अकेला । उन्होंने रस्सी से मेरे हाथ बाँध दिए। मैं अपने साथियों की प्रतीक्षा कर रहा था कि आप आ गए।

फ़ीरोज़शाह : खुदा का फ़ज़ल है कि मैं एक साथ दो इंसानों की मदद कर सका। खास

कर उस बूढ़ी माँ की मूरत उन्हें दिला सका। किसी ख़ुदा के बन्दे को यह हक़ नहीं है कि वह दूसरे के धरम को बिगाड़े। सब मज़हब ख़ुदा को पहिचानने के रास्ते हैं। ख़ैर ! तो तुम महाराज होलकर के यहाँ से क्या पैग़ाम लाए हो ?

परदेशी : महाराज ! भट्ट के सैनिकों ने ताँत्या टोपे का संदेश पाकर विद्रोह कर दिया है। उन्होंने अपने कर्नल प्लाट्स को गोली मार दी। दो कर्नल और भी मारे गए। फिर ये भट्ट के सैनिक इन्दौर के महाराज के पास आए। इन्दौर के महाराज फिरंगियों से पहले ही चिढ़े हुए हैं। उन्होंने उन सैनिकों को पनाह दी। उन्होंने कहा कि हमारी सेना भी तुमसे मिलकर फिरंगियों से लोहा लेगी। उन्होंने भील सैनिकों को भी इकट्ठा किया है। उन्हें पता था कि आप मन्दसौर में हैं। तो उन्होंने मुझे आपकी सेवा में भेज कर पूछा है कि आप क्या उनका साथ दे सकेंगे ?

फ़ीरोजशाह : ज़रूर ! तुम्हारा नाम क्या है, जासूस ?

परदेशी : महाराज ! मुझे वीरभद्र कहते हैं। मेरे साथ तीन गुप्तचर और भी हैं, जो मेरे पीछे आ रहे हैं। मैं अपने छूटने के लिए उन्हीं की प्रतीक्षा कर रहा था कि आप महाराज ! स्वयं पहुँच गए।

फ़ीरोजशाह : ख़ैर ! मैं ही एक गुप्तचर बन कर तुम्हें छुड़ाने जा पहुँचा। तुमने बहुत अच्छी ख़बर दी है। **(मिरज़ा से)** मिरज़ा साहब ! मस्जिद के पीछे ठहरे हुए भील सैनिकों को ख़बर दो। वे यहाँ जल्द आएँ।

मिरज़ा : हुज़ूर का जो हुक्म ! **(प्रस्थान)**

फ़ीरोजशाह : तो वीरभद्र ! तुमने बहुत अच्छी ख़बर दी है। बोलो, तुम्हें क्या इनाम दिया जाए ?

वीरभद्र : महाराज ! गुप्तचर कोई इनाम या पुरस्कार का अधिकारी नहीं है। उसका पुरस्कार यही है कि वह अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करे।

फ़ीरोजशाह : बहुत ख़ूब ! तो होलकर महाराज के पास कितनी सेना है ?

वीरभद्र : महाराज ! दस हज़ार पैदल सेना, 5 हज़ार घुड़सवार सेना और 12 तोपें हैं। यह सेना जगह-जगह पड़ाव डाले है। महाराज उसी को इकट्ठा कर रहे हैं।

फ़ीरोजशाह : तुम तुलजावीर को जानते हो ?

वीरभद्र : महाराज, तुलजावीर तो महाराज होलकर के दाहिने हाथ हैं। मालवा में तुलजावीर की बड़ी ताक़त है। इन्दौर महाराज चाहते हैं कि वे मन्दसौर में आगे से फिरंगियों पर आक्रमण करें और तुलजावीर पीछे से। आप मन्दसौर में रहकर क्या मदद करेंगे, यही महाराज होलकर जानना चाहते हैं।

फ़ीरोजशाह : मैं ? महाराज होलकर से कहो कि मन्दसौर में जनता से बग़ावत करवाऊँगा। किसी भी फ़ौज की कामयाबी पूरी नहीं होती, जब तक आम जनता भी उसमें शरीक न हो।

[मिरज़ा का भील सैनिकों के साथ प्रवेश। भील सैनिक प्रणाम करते हैं।]

फ़ीरोजशाह : भील सैनिको ! तुम तुलजावीर जी को खबर दो कि हम उनके और महाराज होलकर के साथ हैं। ताँत्या टोपे को भी खबर दो कि वे हमसे मिलें। वे लड़ने में बहुत बहादुर हैं। मैं उनके पास भी खबर भेजने जा रहा हूँ। फिरंगियों को इस देश से उखाड़ने में अब किसी तरह की देर नहीं होनी चाहिए। बादशाह सलामत बहादुरशाह से जो पैग़ाम मुझे सीतामऊ में मिला था, उसके मुताबिक हम आगे बढ़ेंगे।

दोनों सैनिक : (**सैनिक ढंग से प्रणाम कर**) जैसी आज्ञा, जय भारत !

फ़ीरोजशाह : हम भी चलेंगे। अब हम लोग भी अपनी सेना के मोरचे को सम्हालें। जय भारत !

सब : जय भारत !

[सब का प्रस्थान]

[परदा गिरता है।]

छठा अंक

स्थान : चरखारी

समय : रात्रि का प्रथम प्रहर—सात बजे

[**स्थिति :** चरखारी के राजमहल में चरखारी के राजमंत्री तथा ताँत्या टोपे के तीन सरदार दीख पड़ते हैं। राजमंत्री एक आसन पर बैठे हुए हैं तथा तीन सरदार उस आसन के समीप टहल रहे हैं। राजमंत्री के मुख पर उदासी तथा सैनिकों के मुख पर प्रसन्नता है। कक्ष में अनेक दीप-स्तंभ हैं, जिनमे सारा स्थान पूर्ण रूप से आलोकित है।]

पहला सरदार : यह समझ में नहीं आता कि जब सारे देश में क्रांति के अग्नि-कुण्ड से ज्वालाएँ निकल रही हैं, तब कुछ राजे-महाराजे उस अग्नि-कुण्ड को बुझाने के लिए चम्बल और बेतवा का जल ले आए हैं। लेकिन शायद वे यह नहीं जानते कि ये ज्वालाएँ जल से बुझने वाली नहीं हैं।

दूसरा सरदार : वीरसिंह ! जब हनुमान ने लंका-दहन किया था, तब निशाचरों ने उस अग्नि को बुझाने के लिए जो जल डाला, वह घी बन गया था और बुझने के बजाय लंका और भी तेज़ी से जलने लगी थी। वैसा ही हाल इस चरखारी राज्य का हुआ।

मंत्री : आप हमारे चरखारी राज्य को लंका का रूप दे रहे हैं ? आपकी समझ को मैं क्या कहूँ ? इस समय आप सब कुछ कह सकते हैं।

तीसरा सरदार : मंत्री जी ! आपने ही यह कहने के लिए हमें मजबूर किया है । जिस तरह रावण ने ऋषि-मुनियों के यज्ञों को विध्वंस किया था, उसी तरह क्या आपके महाराजा ने देश की क्रान्ति को विध्वंस करने के लिए कम्पनी की सेनाओं को सहायता नहीं पहुँचायी ? जब हमारा देश फिरंगियों के अन्यायपूर्ण शासन से मुक्त हो जाएगा, तो क्या आप भी स्वतंत्रता के अधिकारी नहीं होंगे ? किन्तु हमारे देश में विश्वासघातियों की कमी कभी नहीं रही और आपके महाराज उन विश्वास-घातियों की श्रेणी में प्रमुख हैं ।

मंत्री : (उठकर) आप अपनी ज़बान काबू में रखिए, नहीं तो···

पहला सरदार : उसे आप काटकर बाहर कर देंगे ? मंत्री जी ! यह हमारे सेनापति श्रीमान ताँत्या टोपे की कृपा है कि उन्होंने इस चरखारी राज्य की शक्ति को चूर-चूर कर आपके महाराजा और आपको हथकड़ी और बेड़ियों से नहीं जकड़ा। आप आज भी आसन पर बैठकर देश-द्रोह की जिह्वाएँ बाहर निकाल रहे हैं। सर्प के विषदन्त तो टूट गए, किन्तु उसकी जिह्वाओं का लपलपाना बन्द नहीं हुआ ! अच्छा होता है, सर्प के सिर की भाँति आप लोगों का सिर भी कुचल दिया जाता।

मंत्री : विजय के मद का उफनता हुआ नाला शिष्टता के करार तोड़ देता है । आज आपने विजय प्राप्त की है, तो उसके अभिमान में आपकी जीभ भी बेलगाम हो गई है।

दूसरा सरदार : देखिए, मंत्री महोदय ! शत्रु पराजित होने पर केवल एक क़ैदी बन कर रह जाता है और क़ैदी की हैसियत आप अवश्य जानते होंगे; क्योंकि आप चरखारी राज्य के मंत्री रहे हैं। ताँत्या टोपे वीर हैं और उन्होंने आपको क़ैद करते हुए भी क़ैदी नहीं बनाया, यह उनकी उदारता है । ताँत्या टोपे आते ही होंगे। वे तो आपके महाराजा से भी बातें करेंगे । महाराजा कैसी बातें करेंगे, यह हम भी सुनेंगे ।

तीसरा सरदार : ताँत्या टोपे के दर्शन तो आपने अवश्य ही किए होंगे । उनकी शक्ति भी आपने देखी होगी। वे तीर की तरह आगे बढ़ते हैं और शत्रु देखते रह जाते हैं कि वे अभी सेना के बायें भाग में थे और अभी-अभी दाहिने भाग में कैसे पहुँच गए और उनके सामने जो वीर तलवार चला रहा था, उसकी तलवार भुजा सहित कट कर कैसे हाथी की छाती में बिजली की तरह समा गई !

मंत्री : ताँत्या टोपे तो पहले बिठूर के नाना साहब के यहाँ सिर्फ़ हिसाब-किताब रखते थे।

दूसरा सरदार : अब वे सेनापति होकर यह हिसाब-किताब रखते हैं कि आपके चरखारी राज्य के कितने सैनिकों को रण-क्षेत्र में सुलाया, कितनों को घायल किया और कितनों को क़ैद किया । हम नहीं जानते कि उन क़ैदियों में उन्होंने आपको और आपके महाराजा साहब को सम्मिलित किया है या नहीं।

पहला सरदार : आपको मालूम है, मंत्री जी ! जब आपके महाराजा कम्पनी के गुलाम होकर उसको सहायता पहुँचा रहे थे, उस समय सेनापति ताँत्या यमुना नदी के

उत्तर में थे। जब उन्हें आपके राज्य की ग़द्दारी की ख़बर मिली, तो वे किस तेज़ी से यमुना पार कर आपके राज्य की सीमा पर पहुँचे। यह देख कम्पनी के सैनिक भी चकित थे। और वे ही यमुना के पार नहीं हुए, उन्होंने अपनी सारी सेना को यमुना में कूद कर पार होने की आज्ञा दी। उनके सैनिक भी ऐसे कि पलक मारते उन्होंने बढ़ी हुई यमुना पार ली। उस थकी हुई सेना को हमारे ताँत्या टोपे ने ऐसा संचालित किया कि जोश में भरी हुई आपकी सेना सिर पर पैर रखकर भागी। आप अपनी सेना की इस बहादुरी को क्या कहेंगे ?

मंत्री : युद्ध में हार-जीत का निर्णय तो परिस्थिति से होता है। सेनानायक के गिरने से बड़ी से बड़ी फ़ौज मैदान छोड़ देती है। हमारे साथ यही हुआ। हमारा नायक ठोकर खाकर गिरा, सेना ने समझा कि हमारा सेनानायक मारा गया। उसका उत्साह धीमा पड़ गया और आपकी सेना ने विजय प्राप्त कर ली।

दूसरा सरदार : यही तो रण-नीति है, मंत्री जी ! आपने अपने सेनानायक के स्थान पर किसी दूसरे सैनिक को सेनानायक बनने की शिक्षा ही नहीं दी। यदि सेनानायक गिर गया तो उसके स्थान पर दूसरा सैनिक नायक बनकर ललकार उठता। युद्ध में हमारी दृष्टि तो सेनानायक को धराशायी करने की ओर ही रहती है।

[एक सैनिक का प्रवेश]

सैनिक : सरदारों की जय ! सेनापति ताँत्या टोपे यहाँ आ रहे हैं।

पहला सरदार : हम सब उनके स्वागत के लिए तैयार हैं।

सैनिक : (**सिर झुकाकर**) सरदारों की जय ! (**प्रस्थान**)

पहला सरदार : दिन भर हमारे सेनानायक ने युद्ध किया और अब भी वे विश्राम नहीं ले रहे हैं।

दूसरा सरदार : यमुना पार करने की थकावट के बाद ही भीषण युद्ध और इस समय भी उनकी क्रियाशीलता आश्चर्य में डालने वाली है।

तीसरा सरदार : कहिए, मंत्री जी ! इतना परिश्रम आप कर सकते हैं ?

मंत्री : मैं सेनानायक नहीं हूँ, मैं मंत्री हूँ।

दूसरा सरदार : सेनानायक होते तो युद्ध में प्राण देकर स्वर्ग के अधिकारी बनते, इस आसन पर नहीं बैठते !

पहला सरदार : (**हँसकर**) मंत्री महोदय को लज्जित मत करो !

[नेपथ्य में 'सेनापति ताँत्या टोपे महाराज की जय!' उसी के साथ ताँत्या टोपे मंच पर प्रवेश करते हैं। मंत्री भी उठकर प्रणाम करता है। ताँत्या टोपे सिर हिलाकर प्रणाम का उत्तर देते हैं।]

ताँत्या टोपे : जय भारत (**हाथ उठाते हैं**) चरखारी पर विजय प्राप्त हुई है, उसका श्रेय तुम सबको है। ऐसे सभी राज्यों को समाप्त करना है जो क्रान्तिकारियों का साथ न देकर कम्पनी की सहायता करते हैं। (**मंत्री से**) मंत्री ! तुम्हारा अपराध यह है कि

तुमने महाराज को सही परामर्श नहीं दिया। यदि तुम चाहते तो महाराज फिरंगियों का साथ न देकर हमारा साथ देते। तुम इस समय क्रांतिकारियों के अधिकार में हो। बोलो, तुम्हें कौन-सा दण्ड दिया जाए ?

मंत्री : सेनापति जो चाहें, मुझे दण्ड दे सकते हैं।

ताँत्या टोपे : तुम खौलते हुए तेल के कड़ाह में डाला जाना पसन्द करते हो, या बधिक की तलवार से कटना चाहते हो ?

मंत्री : मुझे अनुमति दी जाए कि मैं आत्महत्या करूँ।

ताँत्या टोपे : नहीं, ऐसी अनुमति नहीं दी जा सकती। आत्महत्या करने की अपेक्षा तुम्हारे लिए यह अच्छा होता कि तुम युद्ध-भूमि में लड़ते हुए मरते, जैसा कि हम लोगों का सिद्धान्त है। अच्छा, इसका निर्णय महाराज के आने पर किया जाएगा। (**पहले सरदार से**) वीर सिंह ! महाराज को इस कक्ष में प्रवेश दो। वे समीप के कक्ष में हैं।

वीर सिंह : जो आज्ञा ! (**प्रस्थान**)

ताँत्या टोपे : इस समय देश को ऐसे सैनिकों की आवश्यकता है, जो स्वाधीनता का महत्त्व जानते हैं। महाभारत के युद्ध में केवल पाँच पाण्डवों ने सौ कौरवों को पराजित किया था। क्या इस समय भी यह सम्भव नहीं हो सकता कि हमारे क्रांतिकारियों की छोटी सेनाएँ कम्पनी की गोरी पलटन को या तो समाप्त कर दें या इस देश से सदैव के लिए बाहर कर दें।

दूसरा सरदार : ऐसा अवश्य हो सकता है सेनापति ! हम सब इसी आदर्श को सामने रखकर युद्ध करते हैं।

ताँत्या टोपे : मंत्री महोदय ! आपकी क्या सम्मति है ? (**मुस्कान**)

मंत्री : एक क़ैदी की क्या सम्मति हो सकती है ?

ताँत्या टोपे : अपने कार्यों से ही आप क़ैदी की स्थिति में आ गए हैं। क़ैदी के साथ क्या व्यवहार किया जाए, इस पर मैं शीघ्र ही निर्णय दूँगा। आप जा सकते हैं, क्योंकि आपको देखकर महाराज को अपनी दशा पर लज्जित होना पड़ेगा !

मंत्री : जो आज्ञा ! (**प्रस्थान**)

ताँत्या टोपे : मनुष्य अपने हाथों से अपनी परिस्थितियों का निर्माण करता है।

[वीर सिंह के साथ महाराज चरखारी का प्रवेश]

ताँत्या टोपे : आइए, महाराज साहब ! कहिए, आपके साथ अब कैसा व्यवहार किया जाए !

महाराज : इसके निर्णायक आप हैं, हम नहीं !

ताँत्या टोपे : क्षमा करें, आपको जैसा सम्मान पाने की आदत है, वैसा सम्मान हम आपको नहीं दे रहे हैं। क्योंकि विद्रोही हम नहीं आप हैं। आपने तो सारे देश के साथ विद्रोह किया है। सामान्य विद्रोही के अपराध से आपका अपराध कहीं अधिक भयानक है।

महाराज : मैं इसे अपराध नहीं मानता।

ताँत्या टोपे : जब समस्त देश ने फिरंगियों को देश से बाहर निकालने के लिए क्रांति की है, तो उसमें योगदान न करना, क्या अपराध नहीं है ?

महाराज : समस्त देश ने क्रांति नहीं की, कुछ सैनिकों ने, कुछ राजाओं ने और कुछ सामन्तों ने अपना अधिकार पाने के लिए विद्रोह किया है। क्रांति नहीं की। यदि क्रांति की होती तो समस्त देश का एक नेता होता। बिठूर के नाना साहब ने क्रान्ति की तिथि निश्चित की थी, 31 मई ! यदि क्रांति होती तो सम्मिलित रूप से उसी दिन क्रांति होती और सारे फिरंगी समाप्त कर दिए जाते, किन्तु 31 मई के पहले ही बैरकपुर, कलकत्ता, मेरठ और दिल्ली में अलग-अलग विद्रोह की अग्नि सुलगाई गई, जो कम्पनी आसानी से अपनी शक्ति बुझा सकती है। मैं जानता था कि क्रांतिकारियों का एक संघ नहीं बन सका, और···

ताँत्या टोपे : सावधान ! महाराज ! आगे न बढ़ें। क्रांतिकारियों का संग बन ही कैसे सकता था, जब आप जसे अविश्वासी देशवासी क्रांतिकारियों का साथ नहीं दे सके। इस क्रांति के एकमात्र नेता बिठूर के नाना साहब हैं। क्या आप नहीं जानते कि उन्होंने सारे देश का भ्रमण कर देश को क्रांति के लिए संगठित किया ? सभी राज्यों में क्रांति-दूत भेजे। यदि उनमें संगठन-शक्ति न होती, तो दिल्ली के बादशाह बहादुरशाह से और सुदूर झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई से क्रांति की ज्वाला उठायी जा सकती थी ? स्वार्थ क्रांतिकारियों का नहीं है, स्वार्थ तुम्हारा है, राजा साहब ! जो फिरंगियों की सहायता कर उनकी छत्रछाया में पनपना चाहते हो ! और ये फिरंगी तुम्हारे कैसे हो सकते हैं ? वे जानते हैं कि जो व्यक्ति अपने देशवासियों का नहीं हो सका, वह हमारा कैसे हो सकता है ?

महाराज : लेकिन फिरंगी जैसी सुख-शांति दे सकते हैं, वैसी क्या आप दे सकेंगे ? वे व्यापार करना जानते हैं, राज्य चलाना जानते हैं और क्रांतिकारी तो बस, तोड़फोड़ करना जानते हैं, आग लगाना जानते हैं।

ताँत्या टोपे : यह तो कुछ नहीं है, राजा साहब ! विश्वासघातियों को जीवित जला देना चाहिए। तोड़-फोड़ करना और आग लगाना तो साधारण बात है। महावीर हनुमान ने भी तो लंका में आग ही लगायी थी और आप जानते होंगे कि कन्द-मूल खाने वाले वानर-भालुओं ने मांस-मदिरा से अपनी शारीरिक शक्ति बढ़ाने वाले रावण, उसकी सेना के निशाचरों को केवल सात दिनों में समाप्त कर दिया था। तो समझें कि क्रांति की क्या शक्ति है। एक चिनगारी ही पुरानी घास के अम्बार को पल भर में जला सकती है।

महाराज : किंतु फिरंगी निशाचर नहीं हैं।

ताँत्या टोपे : निशाचर नहीं हैं ? उनसे भी गए-बीते हैं। जो व्यक्ति उनका मित्र बना, उसी का गला उन्होंने काटा। कम से कम निशाचर तो ऐसा नहीं करते थे। पेशवा बाजीराव फिरंगियों के मित्र थे—उनका राज्य क्या फिरंगियों ने नहीं हड़पा ? श्रीमंत पेशवा के उत्तराधिकारी नाना साहब फिरंगियों के गहरे मित्र थे, क्या

उनकी पेंशन बंद नहीं कर दी गयी ? नागपुर के भोंसले फिरंगियों के बड़े मित्र थे। उनके मरने के बाद क्या भोंसले महाराज की रानियों को अपमानित नहीं किया गया ? उनके ज़ेवरों को बाज़ारों में नीलाम नहीं किया गया ? और भी कितने राजे-महाराजे फिरंगियों के मित्र बनने में अपना गौरव समझते थे, फिरंगियों ने अपनी राज्य-लिप्सा में उन्हें भूखे भेड़िये की भाँति निगल नहीं लिया ?

[महाराज मौन हैं।]

ताँत्या टोपे : बोलिए, महाराज ! आप भी महाराज हैं, आप कल की घटित घटनाओं को जानते हैं। क्या नहीं जानते ?

महाराज : जानता हूँ !

ताँत्या टोपे : इतना सब जानते हुए भी आप फिरंगियों का पक्ष ले रहे हैं ? समझ लीजिए कि आज फिरंगियों का दल हमें पराजित करने के लिए आपसे मित्रता कर रहा है। अपना स्वार्थ पूरा करने के बाद आप देखेंगे कि उनकी तलवार आपकी गर्दन पर होगी।

महाराज : हो सकती है।

ताँत्या टोपे : हो नहीं सकती, होगी। आज आप अपने वैभव के स्वप्नों में सत्य को भुला बैठे हैं। फिरंगियों को देश से निकालने का रास्ता क्रांति से ही बनाया जाएगा। बोलिए, आप क्रांतिकारियों का साथ देंगे ?

[महाराज चुप रहते हैं।]

ताँत्या टोपे : बोलिए, आप क्रांतिकारियों का साथ देंगे ?

[महाराज चुप रहते हैं।]

ताँत्या टोपे : मैं तीसरी बार आपसे पूछता हूँ—आप क्रांतिकारियों का साथ देंगे ? आप पराजित हो गए हैं, यदि आप साथ देने के लिए तैयार नहीं हैं, तो विवश होकर दुःखपूर्वक मुझे आपके लिए खौलते हुए तेल के कड़ाह की व्यवस्था करनी होगी, तब फिरंगी भी आपको नहीं बचा सकेंगे। बोलिए, महाराज ! क्या आप क्रांतिकारियों का साथ देंगे ?

महाराज : ठीक है ! **(सोचते हुए)** मैं क्रांतिकारियों का साथ दूंगा।

ताँत्या टोपे : साधु ! महाराज ! साधु ! अन्त में आपने सत्य को पहिचाना। अब आप क्रांतिकारियों का साथ देंगे। क्या आप हमारे युद्ध के लिए तीन लाख रुपए क्रांतिकारियों की सेना को प्रदान करने का कष्ट करेंगे ?

महाराज : तीन लाख रुपए देना स्वीकार करता हूँ।

ताँत्या टोपे : धन्यवाद ! क्या आप हमारी सेना की सफलता के लिए 24 तोपें हमें प्रदान करेंगे ?

महाराज : अपनी 24 तोपें युद्ध की सामग्री सहित दूँगा।

ताँत्या टोपे : पुनः धन्यवाद ! अब आप मेरे साथ कालपी चलेंगे। क्रांति के लिए अब

केन्द्र कानपुर न होकर कालपी होगा। उसकी योजना आपको बनानी होगी। आपके मंत्री भी आपके साथ होंगे। उन्हें भी मैं क्षमा करता हूँ। उनके परामर्श से पहले आप फिरंगियों की सहायता करते थे, अब क्रांतिकारियों की करेंगे।

महाराज : मैं यही कामना करता हूँ कि क्रांतिकारियों की विजय हो !

ताँत्या टोपे : आपकी कामना में बड़ी शक्ति है, महाराज ! अच्छा, कालपी पहुँच कर हमें महारानी लक्ष्मीबाई की सहायता करनी है। आप भी सहायता में योग देंगे। क्या मैं ऐसी आशा करूँ ?

महाराज : आप अवश्य ऐसी आशा कर सकते हैं।

ताँत्या टोपे : तो अब आप सहायता देने की व्यवस्था करें। सरदारो ! प्रातः मैं नगर-भ्रमण करूँगा। इसकी पूरी व्यवस्था हो !

दूसरा सरदार : सारी व्यवस्था होगी, सेनापति !

ताँत्या टोपे : तो अब हम चलेंगे। जय भारत !

सब : जय भारत !

[सबका प्रस्थान]

[परदा गिरता है।]

सातवाँ अंक

स्थान : झाँसी
काल : मार्च, 1858
समय : संध्या पाँच बजे

[महारानी लक्ष्मीबाई के महल का बाहरी कक्ष। सम्पूर्ण रूप से सजा हुआ। बीच में राजसिंहासन है और उसके समीप ही बैठने के राजसी आसन। सोने के बेल-बूटों से कढ़े हुए परदे द्वार पर पड़े हुए हैं। फ़र्श पर मुलायम गद्दे। दीवार पर बुन्देलखंड की प्रकृति के अनेक चित्र। स्थान-स्थान पर चित्र टँगे हुए हैं। स्वर्गीय गंगाधर राव, नाना साहब और ताँत्या टोपे के चित्र विशेष प्रभावशाली हैं। आसनों पर दीवान लक्ष्मण राव, मोरोपंत ताँबे और कुँवर खुदाबख़्श खड़े हुए हैं। महारानी लक्ष्मीबाई के आने की प्रतीक्षा है। सब के मुख पर चिन्ता और भय के भाव अंकित हैं।]

मोरोपंत : फिरंगियों ने हमारे क़िले को चारों ओर से घेर लिया है। हमारे सैनिक वीरता से युद्ध कर रहे हैं। आगे क्या करना चाहिए, इस निर्णय के लिए महारानी की प्रतीक्षा है।

लक्ष्मण राव : वे स्वयं मोर्चे पर गयी हैं। युद्ध के प्रत्येक कार्य का निरीक्षण वे स्वयं कर

रही हैं। जब से फिरंगियों ने झाँसी के क़िले को घेरा है, तब से ऐसा लगता है कि वे साक्षात् दुर्गा बनकर इस पृथ्वी पर अवतरित हुई हैं और उनका खप्पर फिरंगियों के ख़ून से भर रहा है।

कुँवर ख़ुदाबख़्श : इसमें क्या शक है ! उन्होंने गुलाम ग़ौस को ऐसी जगह तैनात किया है कि उनकी घनगर्ज तोप फिरंगियों के टुकड़े-टुकड़े कर रही है।

लक्ष्मण राव : सर कैम्पवेल इलाहाबाद से दोआब और लखनऊ जीत कर यमुना के उत्तर में बढ़ रहा है तो सर ह्यू रोज़ विन्ध्य पर्वत से चलकर चँदेरी जीतता हुआ झाँसी के समीप आ गया है। सर ह्यू रोज़ ने कम्पनी की नीति अपनायी है। वह महाराज के दत्तक-पुत्र दामोदर राव को झाँसी का उत्तराधिकारी नहीं मानता। वह झाँसी को कम्पनी के राज्य में मिलाना चाहता है और हमारी महारानी की दृढ़ प्रतिज्ञा है कि मैं अपनी झाँसी नहीं दूँगी।

मोरोपंत : इसी बात पर उसने पूरी तैयारी के साथ झाँसी का क़िला घेर लिया है। महारानी की वीरता के आगे देखें वह क़िला कितने दिनों घेर सकता है।

लक्ष्मण राव : कितने दिनों घेर सकेगा ? हमारा देश वीरता में तो कभी हारा नहीं। यदि वह कभी हारा है, तो उसी समय, जब विश्वासघातियों ने शत्रुओं से मिलकर हमारा नहीं, उनका साथ दिया है। यही देखिए कि जब ह्यू रोज़ ने झाँसी पर आक्रमण करने की योजना बनायी, तो महारानी ने झाँसी के आसपास का सभी प्रदेश उजाड़ बना दिया; जिससे शत्रुओं को किसी प्रकार की रसद न मिले। खेत में अनाज का एक भी दाना नहीं छोड़ा—एक भी तिनका नहीं रहने दिया और छाया के लिए एक भी पेड़ सुरक्षित नहीं रखा, लेकिन टेहरी-नरेश फिरंगियों से मिल गया और उनकी सेवा के लिए सब तरह की रसद—यहाँ तक कि फल और मेवे भी प्रस्तुत कर दिए। इस तरह के विश्वासघात की भी कोई सीमा है ?

मोरोपंत : और इसी विश्वासघात का परिणाम है कि फिरंगी, जो सब तरह से असहाय था, आज अपने को हथियारों से लैस कर हम से लोहा लेने के लिए युद्ध-क्षेत्र में आ गया है।

ख़ुदाबख़्श : लेकिन जब तक रानी हमारे साथ हैं, तब तक हमारे मन में डरने की कोई बात ही नहीं आ सकती।

लक्ष्मण राव : सचमुच नहीं आ सकती। हमारी रानी हर बुर्ज पर, हर द्वार पर घूमती नज़र आती हैं। तोपों की कुर्सी कहाँ बननी चाहिए और उन्हें किन मोर्चों पर लगना चाहिए, इसका निरीक्षण वे स्वयं करती हैं। किस तोप पर कौन तोपची रहना चाहिए। इसका चुनाव वे स्वयं करती हैं।

मोरोपंत : वे निराश दृश्यों में नयी प्रेरणा, नयी स्फूर्ति उत्पन्न करती है। यहाँ तक कि स्त्रियाँ तक गोला-बारूद पहुँचाने का काम करती हैं। तोपों की कुर्सियाँ बनाती हैं, रसद पहुँचाती हैं।

ख़ुदाबख़्श : मुझे भी तो यह हुक्म दिया था कि जंग नगाड़े बजाने के लिए लोगों को

फ़ौरन हाज़िर किया जाए और क़िले में जहाँ अँधेरा हो, वहाँ सैकड़ों मशालों का इन्तज़ाम किया जाए।

[एक चोबदार का प्रवेश]

चोबदार : महारानी की जय ! महारानी तेज़ी से इधर आ रही हैं। (**प्रस्थान**)

लक्ष्मण राव : हम सब उन्हीं की प्रतीक्षा कर रहे हैं। (**सब सजग हो जाते हैं।**)

[रानी लक्ष्मीबाई का शीघ्रता से प्रवेश। वे इस समय पुरुष-वेश में हैं। पाजामा, गहरे नीले रंग का कोट। एक टोपी जिस पर सुन्दर पगड़ी बँधी हुई है। कमर में बेल-बूटेदार दुपट्टा बँधा हुआ है। उसी से रत्नजटित तलवार लटक रही है। कलाई में हीरे का बंध, गले में मोतियों का हार, उँगली में हीरे की अँगूठी। उनकी मुख-मुद्रा गंभीर और वाणी में तेज की रश्मियाँ फूट रही हैं।]

सब : (**एक साथ**) महारानी की जय !

लक्ष्मीबाई : समर लक्ष्मी की जय बोलो, वीरो ! इस समय झाँसी की बहुत कड़ी परीक्षा है। यदि हमारे वीरों ने शक्ति और साहस से शत्रुओं का सामना किया, तो समर लक्ष्मी विजय लक्ष्मी बनकर झाँसी के गले में जयमाला डाल देगी। इस समय शहर और क़िले में फिरंगियों के गोले पड़ रहे हैं। हमारे दक्षिण द्वार की तोपें फिरंगियों ने निकम्मी कर दी हैं। अब हमें पश्चिम द्वार की तोपों से मार करनी है।

ख़ुदाबख़्श : महारानी जी ! ग़ुलाम ग़ौस तो पच्छुम के द्वार पर ही है।

लक्ष्मीबाई : हाँ, उसके हाथों ने तो ऐसा ज़ौहर दिखलाया है कि मैंने उसे अपने हाथों का सोने का कड़ा ही इनाम में दे दिया है। उसी का यह कमाल है कि उसने ऐसे निशाने से गोले फेंके कि फिरंगियों की फ़ौज तहत-नहस हो गयी। उनका सबसे बड़ा निशाने-बाज़ तोपची मारा गया।

[एक सनिक का प्रवेश]

सैनिक : महारानी जी की जय ! एक बुरा समाचार यह है कि फिरंगी की तोप से किले की बायीं मुँड़ेर ढह पड़ी है।

लक्ष्मण राव : बायीं मुँड़ेर के पास हमारे हथियारों और गोला-बारूद का सामान है !

मोरोपंत : उस सामान को वहाँ से शीघ्र हटा लेना चाहिए।

लक्ष्मीबाई : नहीं, किसी प्रकार भी नहीं। यदि हमारे सैनिक उस कार्य में लग जाएँगे, तो युद्ध का सामना करने के लिए हमारा मोरचा क्या कमज़ोर नहीं पड़ जाएगा ? उसके लिए दूसरा प्रबन्ध होना चाहिए। मोरोपंत ! रात में कम्बलों में छिपा कर वहाँ पर होशियार राज लाए जाएँ और सुबह से पहले मुँड़ेर को मज़बूती के साथ फिर तैयार कराने का काम पूरा कर दिया जाए। फिरंगी दाँतों तले उँगली दबाएँ कि हमारे कारीगर किस तरह रातो-रात बड़े से बड़ा काम पूरा कर सकते हैं।

मोरोपंत : ऐसा ही होगा, महारानी जी ! मैं अच्छे से अच्छे कारीगरों को काम पर

लगाने का प्रबन्ध करता हूँ। **(प्रस्थान)**

लक्ष्मण राव : महारानी जी ! सुना है कि फिरंगियों के पास आधुनिक ढंग की बनी हुई दूरबीनें हैं, जिनकी सहायता से वे क़िले के किसी भी भाग पर गोले बरसाने का उपद्रव कर सकते हैं। हमें भय है कि वे कहीं शंकर के मन्दिर और उसके समीप बने हुए जलाशय पर अपने गोले न फेंक दें। यदि वहाँ कोई गोला गिरा, तो सभी सैनिकों को पानी न मिलने का बड़ा कष्ट होगा। उसी के समीप इमली-कुंज में हमारा बारूद का कारखाना है। यदि वहाँ कोई गोला गिरा, तो न जाने कितने व्यक्तियों की प्राण-हानि होगी।

लक्ष्मीबाई : ऐसा नहीं होना चाहिए। ख़ुदाबख़्श ! तुम उस दिशा में अपनी 'वीर-गर्जन' तोप लगा दो, जिसके भयानक गोलों से फिरंगियों की तोपें बेकार हो जाएँ। 'वीर-गर्जन' के गोलों से इतनी धूल और धुआँ आकाश में भर जाए कि फिरंगियों की दूरबीनें बेकार साबित हो जाएँ।

ख़ुदाबख़्श : जैसी आज्ञा ! मैं अभी उसी तरफ जाता हूँ। (प्रस्थान)

[नेपथ्य में ढोलों का गंभीर घोष। बार-बार 'महारानी लक्ष्मीबाई की जय' की ध्वनियाँ]

लक्ष्मीबाई : (नेपथ्य की ओर देखते हुए) यह जय-घोष कैसा है ?

लक्ष्मण राव : मैं अभी देखता हूँ।

[शीघ्रता से एक सैनिक का प्रवेश]

सैनिक : महारानी की जय ! एक शुभ समाचार है। हमारी सेना की सहायता के लिए महावीर ताँत्या टोपे अपनी सेना के साथ आ रहे हैं।

लक्ष्मीबाई : (मुस्कुराकर) मेरे बचपन के साथी ताँत्या ?

सैनिक : हाँ, महारानी जी ! महावीर ताँत्या टोपे की हरावल सेना के एक सैनिक ने सूचना दी है कि महावीर ताँत्या टोपे ने कालपी के पास जमुना पार की और चरखारी नरेश को, जिसने फिरंगियों की सहायता की है, दण्ड देकर उसकी 24 तोपें छीन ली हैं।

लक्ष्मीबाई : तब तो उनके पास अपार सेना और युद्ध का सामान हो गया होगा। मैंने ताँत्या को पत्र लिखा था कि वे झाँसी के घेरे को तोड़ने के लिए शीघ्र ही यहाँ आएँ।

सैनिक : हाँ, महारानी जी ! आपका पत्र पाकर ही वे झाँसी के घेरे को तोड़ने के लिए दल-बल सहित आ गए हैं, और उन्होंने फिरंगी की फ़ौज पर पीछे से हमला कर भी दिया है। उनके पास 22 हज़ार सिपाहियों की सेना है।

लक्ष्मण राव : महारानी जी ! तब तो हमारी विजय निश्चित है।

लक्ष्मीबाई : सैनिक ! तुम जाओ और पश्चिम द्वार पर मुहम्मद ग़ौस को यह समाचार दो। **शीघ्रता करो !**

सैनिक : जो आज्ञा ! **(प्रस्थान)**

[दूसरी ओर से एक सैनिक का भागते हुए प्रवेश]

सैनिक : महारानी की जय ! फिरंगी ने क़िलेबन्दी तोड़ने के लिए आठ जगह सीढ़ियाँ लगायी थीं, लेकिन जब क़िले के सभी बुर्जों से गोलियों की बौछार हुई तो फिरंगी के जो सैनिक सीढ़ियों पर चढ़ रहे थे और अन्य सैनिकों को भी चढ़ने को ललकार रहे थे, वे सभी सीढ़ियों से गिर काल के गाल में चले गए, अब किसी की हिम्मत सीढ़ियों पर चढ़ने की नहीं रह गयी ।

लक्ष्मीबाई : रणचण्डी को नमस्कार ! सैनिक, तुम शीघ्र जाओ और जिन सिपाहियों की गोलियों से फिरंगी मरे हैं, उन्हें राज्य की ओर से पुरस्कार की घोषणा कर दो।

सैनिक : जैसी आज्ञा ! **(शीघ्रता से प्रस्थान)**

लक्ष्मण राव : हमारे सैनिकों में आत्मविश्वास की प्रेरणा का कार्य महारानी जी ! आपने ही किया है। अब फिरंगियों में साहस ही नहीं रहेगा कि वे युद्ध में सामने आ सकें।

[शीघ्रता से दो सैनिकों का प्रवेश]

पहला सैनिक : महारानी की जय ! एक दुःखद समाचार यह है महारानी कि ताँत्या टोपे की सेना ने युद्ध से अपना मुख मोड़ लिया। फिरंगियों को देख कर उनके मन में न जाने कैसा भय समाया कि महावीर ताँत्या के बार-बार रोकने पर भी सैनिक मैदान छोड़कर भागे। युद्ध का सारा सामान फिरंगियों के हाथ लगा।

दूसरा सैनिक : समझ में नहीं आया, महारानी जी ! जिस सेना ने चरखारी नरेश का नशा चूर कर दिया, वह सेना फिरंगियों को देखकर क्यों डर गयी ?

लक्ष्मीबाई : हमें भी आश्चर्य है, लेकिन कोई चिन्ता की बात नहीं। कोई निराशा की बात नहीं। अब तक झाँसी ताँत्या टोपे के बल पर नहीं जूझ रही थी। युद्ध को आगे बढ़ाने के लिए उनकी आवश्यकता नहीं है। तुमने अभी तक आत्माभिमान, साहस, दृढ़ निश्चय और वीरता का आदर्श अपने सामने रखा है। इस समय भी तुम उसी उत्साह से काम लो और पूरी शक्ति से ऐसा युद्ध करो कि फिरंगी एक क़दम भी आगे न बढ़ सकें। मारू बाजे बजाए जाएँ, करनाल फूंके जाएँ, अपनी तोपों की आवाज़ से आकाश का हृदय फाड़ दो और स्वयं हुंकार करो कि शत्रु के प्रत्येक सैनिक का साहस नष्ट हो जाएँ !

[दो वृद्ध सैनिक अत्यन्त शीघ्रता से आते हैं।]

पहला सैनिक : महारानी ! किसी विश्वासघाती ने क़िले के दक्षिण का द्वार खोल दिया और फिरंगी के सैकड़ों सैनिक क़िले में घुस आए। उन्होंने अपनी बन्दूकों से ऐसा निशाना लिया कि प्रमुख द्वार-रक्षक गुलाम ग़ौस और कुँवर ख़ुदाबख़्श को गोलियों से उड़ा दिया।

लक्ष्मीबाई : (आह भरकर) उड़ा दिया ? हाय ! गुलाम ग़ौस और ख़ुदाबख़्श चले गए ?

अब कैसे रक्षा होगी ? फिरंगियों ने मेरी झाँसी के क़िले में घुसकर उसे अपवित्र कर दिया ! जब सैकड़ों सैनिक क़िले में घुस आए और द्वार-रक्षक गोलियों से उड़ा दिए गए तो झाँसी की रक्षा कैसे सम्भव होगी ? हाय रे ! विश्वासघाती ! तूने अपने स्वार्थ के लिए देश की पवित्र स्वाधीनता को कलंकित कर दिया ! मैं जानती हूँ, विश्वासघाती कौन हो सकता है। **(हाथ पर सिर टेक कर)** यदि उस विश्वास-घाती द्वारा दक्षिण का द्वार न खोल दिया जाता, तो किसी फिरंगी को मेरी झाँसी पर हाथ लगाने का साहस ही नहीं होता। अब हमारी स्वतंत्रता की ध्वजा उसी विश्वासघात की अग्नि में जल कर भस्म हो जाएगी ! **(ठंडी आह भरती है)**

लक्ष्मण राव : आपने सभी सैनिकों को धैर्य दिया है। इस समय भी हमारे सैनिक युद्ध में पीछे नहीं हटेंगे।

लक्ष्मीबाई : इसका तो मुझे विश्वास है, किन्तु जब हमारा दुर्ग ही टूट चुका, दुर्ग-रक्षक हो रणभूमि में सुला दिए गए, तब रक्षा की कितनी सम्भावना हो सकती है ? दुर्ग के साथ मेरा शरीर भी कलंकित न हो, इसलिए उचित यही ज्ञात होता है कि मैं बारूद के ढेर में आग लगाकर स्वयं उसमें भस्म हो जाऊँ ! मेरी स्वाधीनता की ध्वजा या तो दुर्ग के मस्तक पर रहेगी या मेरे साथ अग्नि-कुण्ड में स्वाहा होगी !

सैनिक : महारानी ! आप सत्य कहती हैं, किन्तु अभी झाँसी को आपकी आवश्यकता है। यदि आप जीवित रहेंगी, तो समय आने पर झाँसी पुनः स्वतंत्र हो सकती है। इसलिए हमारी प्रार्थना है कि झाँसी के लिए अभी आप जीवन धारण किए रहें। किन्तु आपका अब क़िले में रहना खतरे से ख़ाली नहीं है। आज रात में ही आप क़िला छोड़ दें। अपनी शक्ति और साहस से शत्रु की छावनी चीरकर आप बाहर निकल जाएँ, अपने साथ कुछ विश्वस्त सैनिकों को भी ले लें।

लक्ष्मीबाई : मैं अपनी झाँसी छोड़कर बाहर चली जाऊँ, फिर मेरी झाँसी की क्या दशा होगी ?

लक्ष्मण राव : फिर भी झाँसी आपकी होगी। इस समय इस स्थान से हट जाना ही उचित है। इस वृद्ध सैनिक ने झाँसी की सेवा अनेक वर्षों से की है। वह झाँसी की आत्मा की सुरक्षा के लिए ही आपसे प्रार्थना कर रहा है।

लक्ष्मीबाई : मैं युद्ध-भूमि में लड़ते हुए ही मरना चाहती हूँ। मुझे एक ही भय है कि मेरे मरने पर शत्रु मेरे शरीर का स्पर्श करने का साहस न करे।

दूसरा सैनिक : यह असंभव है, महारानी जी ! इसीलिए मैंने निवेदन किया कि आपके साथ कुछ विश्वस्त सैनिक भी रहें। यदि युद्ध-भूमि में आपका शरीर क्षत-विक्षत हो, तो साथ के सैनिक आपके शरीर की रक्षा करने में समर्थ होंगे। जब तक एक भी सैनिक जीवित है, तब तक जो शत्रु आपके शरीर को स्पर्श करने का साहस करेगा, उसका शरीर टुकड़े-टुकड़े कर दिया जाएगा।

लक्ष्मीबाई : अच्छा सैनिक ! रात में जाने से पहले मैं अपनी प्रजा को संबोधित करूँगी कि मैं उनकी सेवा अधिक दिनों तक नहीं कर सकी। मेरे साथ परखे हुए अश्वारोही हों। मैं अपने साथ अपने पुत्र दामोदर को भी ले जाऊँगी—उसे अपनी पीठ पर

बाँध लूँगी और अपनी पैनी तलवार से शत्रुओं को चीरती हुई बाहर निकल जाऊँगी। मैं अपनी झाँसी से विदा ले रही हूँ। (**पृथ्वी की ओर देख कर**) मेरी झाँसी! जब तक मेरे शरीर में रक्त की एक भी बूँद है, तब तक मैं तेरी रक्षा करूँगी। इस समय मुझे विदा दे! विश्वासघात की आग में आज तू जल रही है। तुझ पर अमृत-जल सींचने के लिए मैं फिर तेरे समीप आऊँगी। मेरी झाँसी! तू मुझे विदा दे!

लक्ष्मण राव : महारानी! मुझे विश्वास है, आप अवश्य विजय प्राप्त करेंगी।

लक्ष्मीबाई : मेरे साथ तलवार चलाने में प्रवीण मेरी अंगरक्षिका मुन्दर भी हो।

पहला सैनिक : मुन्दर तो समीप के कक्ष में ही है। मैं उन्हें अभी सूचना दूँगा। (**प्रस्थान**)

लक्ष्मीबाई : सैनिक! देखो, दुर्ग का कौन-सा भाग नष्ट होने से बच गया है। उसी स्थान पर दस-पन्द्रह अश्वारोहियों को तैयार होने के लिए कह दो। मैं अपनी मुन्दर के साथ शीघ्र ही वहाँ पहुँचूँगी।

दूसरा सैनिक : जैसी आज्ञा! (**प्रस्थान**)

लक्ष्मीबाई : लक्ष्मण राव! मैं शीघ्र ही यहाँ से जाऊँगी। क़िले की सारी प्रजा को सूचना दो। मैं उन्हें आशीर्वाद देकर जाऊँगी। और जब तक तुमसे हो सके, तुम शिवमन्दिर की सुरक्षा पर ध्यान दोगे। और झाँसी को नष्ट होने से बचाओगे। रणचंडी दुर्गा मेरे कृपाण में ही आसन ग्रहण करेंगी। उनकी शक्ति से मैं फिर अपनी झाँसी प्राप्त कर सकूँगी।

लक्ष्मण राव : सदाशिव महादेव और रणचंडी दुर्गा अश्वय आपकी सहायता करेंगी।

लक्ष्मीबाई : अच्छा, अब जाऊँगी! शक्ति और साहस सदैव हमारे साथ रहे। जय झाँसी! जय भारत!

लक्ष्मण राव : जय झाँसी! जय भारत!

[रानी लक्ष्मीबाई का शीघ्रता से प्रस्थान। उनके पीछे लक्ष्मण राव जाते हैं।]

[परदा गिरता है।]

□

भगवान बुद्ध

मेरा दृष्टिकोण

इस नाटक को लिखने में मेरा एक विशेष दृष्टिकोण रहा है। महात्मा बुद्ध ने धार्मिक क्षेत्र में एक क्रान्ति तो की ही, उन्होंने मानव जीवन को सामान्य धरातल पर लाकर उसे शील अर्थात् सदाचार की दृढ़ नींव पर स्थापित किया। उन्होंने पृथ्वी के एक बहुत बड़े भाग को दो हजार वर्षों तक ऐसा सन्देश दिया जिसमें जाति-भेद और वर्ण-भेद को भूल कर मानव सुख और शान्ति का अनुभव कर सके। इस दृष्टि से महात्मा बुद्ध भारत के एक बहुत बड़े महापुरुष हुए। आश्चर्य तो इस बात का है कि आज भी वे अपने विचारों में आधुनिकतम कहे जा सकते हैं।

हमारे देश में—और विदेशों में भी—पंचशील शब्द बहुत प्रचलित हो गया है। पंचशील शब्द महात्मा बुद्ध द्वारा ही प्रचलित किया गया था। आज यह शब्द राजनीति के सन्दर्भ में ही प्रयुक्त होता है, किन्तु महात्मा बुद्ध ने इस शब्द का प्रयोग जीवन के सदाचार के अर्थ में ही घोषित किया। पंचशील का अर्थ है—(1) हिंसा न करना, (2) चोरी न करना, (3) वासनाओं का परित्याग करना, (4) झूठ न बोलना और (5) मादक द्रव्यों का सेवन न करना।

हमारे देश के व्यावहारिक जीवन में यदि इस पंचशील का प्रयोग होने लगे तो निकट भविष्य में ही हमारे देश के युवक ऐसे नागरिक होंगे जिनके सामने विश्व-कल्याण का दृष्टिकोण होगा और उनके पवित्र जीवन से हमारे देश की संस्कृति पुनः गौरव के शिखर पर प्रतिष्ठित होगी। जीवन का यह सात्त्विक दृष्टिकोण मानव जीवन में क्रांति की भूमिका प्रस्तुत करेगा और समाज और राष्ट्र अपनी मूलभूत एकता से सुख और समृद्धि की दिशा में अग्रसर होगा।

इस नाटक में महात्मा बुद्ध के महान सिद्धान्तों को उनके चरित्र की रूपरेखा में स्पष्ट किया गया है। मुझे विश्वास है कि महात्मा बुद्ध का यह चरित्र हमारे विद्यार्थियों को ऐसी प्रेरणा प्रदान करेगा कि वे राष्ट्रीय जीवन को स्वस्थ और समृद्ध कर जाति-भेद और वर्ग-भेद से ऊपर उठकर एक नवीन समाज की स्थापना में समर्थ होंगे।

—लेखक

नाट्य-शिल्प के सन्दर्भ में

इस नाटक को प्रस्तुत करते हुए मुझे प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। भगवान बुद्ध ने अपने जीवन में कितने संघर्ष झेले और मनोविज्ञान की दृष्टि से उनकी प्रवृत्तियों और अनुवृत्तियों का कितना गहन इतिहास रहा, उसे समग्र रूप से नाटक के परिवेश में समाहित करना अत्यन्त कठिन है। किन्तु मैंने पालि साहित्य के प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर भगवान बुद्ध के प्रेरक प्रसंगों में एकसूत्रता स्थापित कर इन्हें अपने नाटक में संजोने का प्रयत्न किया है।

इन प्रसंगों में प्रमुख दृष्टि अन्तर्द्वन्द्वों को स्पष्ट करने की रही है। एक ओर राजसी जीवन के ऐश्वर्यों की अवहेलना यशोधरा के मधुर प्रेम की अस्वीकृति, राहुल के किसलय वात्सल्य की उपेक्षा और दूसरी ओर मानव-कल्याण की भावना से संसार के सत्य को समझने की बलवती स्पृहा करुणहृदय तरुण सिद्धार्थ के हृदय में कितना विप्लव मचा सकती है, इसे मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के द्वारा ही स्पष्ट किया जा सकता है। इसी प्रकार सात्त्विक सिद्धार्थ की अहिंसा और डाकू अंगुलिमाल की रक्तरंजित हिंसा में किस प्रकार संघर्ष हो सकता है, इसे भी स्वाभाविकता से चित्रित करना नाट्य-कला के लिए बहुत आवश्यक है।

मैं नाटक में स्वगत-कथन को अस्वाभाविक मानता हूँ। किन्तु जब पात्र अपने एकान्त मनोभावों में संघर्ष के आवर्तों में वर्तुलोन्मुखी होता है और उसका भोग वह स्वयं करना चाहता है तो उसे व्यक्त करने के लिए किस शैली का आश्रय लिया जाए? उदाहरण के लिए 'महाभिनिष्क्रमण' के समय कुमार सिद्धार्थ के मन में उठने वाले संघर्ष के स्फुलिंग जो पल-पल में उभरते और बुझते हैं, वे किस प्रकार व्यक्त हों? ऐसी स्थिति में स्वगत-कथन मानसिक चित्रण का एक आवश्यक अंग बन जाता है किन्तु इसका अभिनय किस प्रकार हो? दूर तक चलने वाला स्वगत-कथन किसी भी अभिनेता के लिए सम्पूर्ण रूप से स्मरण करना कठिन होगा। ऐसी स्थिति में यदि पूरा स्वगत-कथन मशीन पर टेप कर लिया जाए और अभिनय के अंश पर बजा दिया जाए तो सरलता हो सकती है। अभिनेता टेप के आधार पर ही मूक अभिनय करता हुआ समस्त प्रसंगों को एक

स्वाभाविकता प्रदान कर सकता है ।

स्वगत-कथन से किसी भी पात्र की आन्तरिक अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से सामने आती है और इससे दर्शकों या पाठकों में चरित्र की वास्तविक अनभूति हो जाती है । इस भाँति कुछ स्थलों पर (जहाँ अंगुलिमाल की क्रूरता की अभिव्यक्ति है) मैंने चरित्रों की स्पष्ट रूपरेखा खींचने का प्रयत्न किया है । जो भी हो, मुझे तो यही संतोष है कि भगवान बुद्ध के चरित्र को रूपायित करने के प्रयत्न में मेरी लेखनी पवित्र हुई है ।

—लेखक

नाटक और ऐतिहासिक नाटक

नाटक जीवन की प्रभावपूर्ण अनुकृति है, चाहे वह जीवन का वर्तमान रूप हो, अथवा अतीत के स्वर्णिम पृष्ठों से लिया गया हो। नाटककार की सफलता इसी बात में है कि वह दर्शकों और श्रोताओं के सम्मुख तत्कालीन जीवन का सजीव चित्र प्रस्तुत कर सके। श्रोता या दर्शक कुछ समय तक यह समझने लगे कि वे किसी व्यक्ति के जीवन की सच्ची घटना देख रहे हैं। जिस प्रासाद या कक्ष में घटना घटित हो रही है उसकी एक दीवार हटा दी गयी है और हम व्यक्ति, घटना और परिस्थिति को प्रत्यक्ष देख रहे हैं।

ऐतिहासिक नाटक का रचना-विधान

ऐतिहासिक नाटक की रचना करते समय नाटककार की समस्याएँ अधिक जटिल हो जाती हैं। उसे एक सफल नाटक की रचना तो करनी ही होती है, इतिहास के युग-विशेष का प्रभाव उत्पन्न करने के लिए परिस्थितियों, घटनाओं एवं पात्रों की सृष्टि में इतिहास का भी आश्रय लेना पड़ता है। साहित्य और इतिहास के सत्य में अन्तर होता है। साहित्यकार कोरा इतिहासकार नहीं होता, उसे ऐतिहासिक सत्य में सौन्दर्य की सृष्टि करनी पड़ती है और उस सत्य को अधिक प्रखर बनाने के लिए पात्रों और परि-स्थितियों की कल्पना विशेष रूप से अभीष्ट होती है। नाटककार घटनाओं का उल्लेख-मात्र नहीं करेगा, ऐसा करने से उसकी कृति कलात्मक नहीं हो सकेगी। वह किसी राजा से सम्बन्धित सभी घटनाओं को, उसके समस्त अभियानों को, उसके उत्थान-पतन को कुछ अंकों के नाटक में प्रस्तुत नहीं कर सकता। वह समस्त जीवन से सम्बन्धित कुछ विशिष्ट घटनाओं को चुनकर उनके आधार पर ही तीन या अधिक अंकों में उस पात्र-विशेष, वातावरण या घटनाओं के सत्य को उभार देगा।

इसी आधार पर ऐतिहासिक नाटकों की निम्नलिखित तीन कोटियाँ निर्धारित की जाती हैं—

1. चरित्र-प्रधान
2. वातावरण-प्रधान
3. घटना-प्रधान

प्रस्तुत नाटक चरित्र-प्रधान नाटक है। इस नाटक में चरित्र की मनोवैज्ञानिक

श्रृंखला को ऐतिहासिक सत्य पर उसी भाँति अग्रसर करने का प्रयत्न किया गया है, जैसे मानसरोवर की मन्द लहरों पर हंस तैरता चला जाता है।

ऐतिहासिक नाटक में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उसमें ऐतिहासिक भ्रान्तियों को दूर कर तथ्य की ओर संकेत किया गया हो। वह इतिहास न होते हुए भी युग-विशेष का सजीव चित्र होता है। सन्-संवत् का विशेष ध्यान रखना अनिवार्य न होते हुए भी काल-विशेष की पृष्ठभूमि आवश्यक है।

इस प्रकार पात्रों की वेश-भूषा, रूप-सज्जा, आचार-व्यवहार आदि का अध्ययन भी नाटककार के लिए आवश्यक है। जिस प्रकार शुद्धोदन को हम मुगलकालीन वेश-भूषा में रंगमंच पर प्रस्तुत नहीं कर सकते, उसी प्रकार हम विदेश के किसी सम्राट् को भारतीय वेश-विन्यास नहीं दे सकते। यदि पात्र की उपयुक्त वेश-भूषा का ध्यान नहीं रखा जाता तो नाटक में व्यक्तित्व का प्रभाव उत्पन्न नहीं होता और समस्त नाटक हास्यास्पद हो जाता है।

ऐतिहासिक नाटकों की भाषा के विषय में भी ध्यान रखने की आवश्यकता है। भाषा का प्रभाव दर्शकों पर सबसे अधिक पड़ता है। यह सत्य है कि बुद्ध के युग की भाषा हिन्दी नहीं थी, किन्तु यदि हमें हिन्दी में नाटक की रचना करनी है, तो उस समय की भाषा का प्रभाव उत्पन्न करने के लिए हमें संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग करना आवश्यक है। अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग शुद्धोदन या उदयन के मुख से नहीं करा सकते। इसी प्रकार औरंगज़ेब का व्यक्तित्व फारसी या उर्दू शैली में अधिक उभर सकता है।

रंगमंच का महत्त्व नाटक के प्रस्तुत करने में बहुत अधिक है। रंगमंच के बिना नाटक में प्राणों की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। आज हिन्दी का रंगमंच शैशव अवस्था में है, उसे अभी विकसित होना है, किन्तु उसके विकास मार्ग में अनेक बाधाएँ हैं। सस्ते मनोरंजन की भावना और सिनेमा की लोकप्रियता बाधक सिद्ध हो रही है। नाट्यकला की सफलता इसी में है कि सामान्य दर्शक उसमें रस ले सकें और नाट्य-कला के पण्डित भी उसे उत्कृष्ट समझें। उसमें न तो दर्शक को उबा देने वाले उपदेशात्मक संवाद हों और न दुर्बोध भाषा। उसमें विभिन्न रसों का समावेश, कुतूहल की भावना और प्रेषणीयता होनी ही चाहिए। रस का स्थान आज मनोविज्ञान ने ले लिया है। मैं दोनों के समन्वय का पक्षपाती हूँ।

प्रस्तुत नाटक का ऐतिहासिक आधार

किसी ऐतिहासिक नाटक में केवल कल्पना का आश्रय ही पर्याप्त नहीं है, इतिहास के पृष्ठों की नींव पर ही उत्कृष्ट ऐतिहासिक नाटक का प्रासाद खड़ा हो सकता है, जिसमें कला का प्रकाश हो सके। जैसा पहले ही कहा जा चुका है, इस नाटक में चरित्र की मनोवैज्ञानिक श्रृंखला है जो ऐतिहासिक सत्य से समर्थित हुई है। उस युग का चित्र इस नाटक में यथास्थान दृष्टिगत होगा।

गौतम बुद्ध के समय में भारत में सोलह जनपद (राज्य) थे—अंग, मगध,

काशी, कोशल, वृज्जि, मल्ल, चेदि, कुरु, पांचाल, मत्स्य, सूरसेन, अस्सक, अवन्ति, गांधार, कम्बोज और वत्स। इनमें से मगध, कोशल और अवन्ति ही अधिक शक्तिशाली थे। मगध का साम्राज्य काशी तक था और अवन्ति का राज्य वत्स प्रदेश की दक्षिणी सीमा बनाता था।

इस नाटक के अन्तिम अंक में वत्सराज उदयन का संघर्ष भगवान बुद्ध से हुआ है। उदयन प्रारम्भ में बौद्ध धर्म के विरोधी थे। राजनीतिक दृष्टि से भी गौतम के मत से सहमत होना उनके लिए सम्भव न था। गौतम दो बार कौशाम्बी आए, पहली बार 642 ई० पू० में, उदयन के सिंहासनारूढ़ होने के एक वर्ष बाद और दूसरी बार 621 ई० पू० में, जब उदयन ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया। राज्यारोहण के आसपास ही उदयन का प्रथम विवाह हुआ था। इसके कुछ समय बाद ही उन्होंने भद्रवती नगर के सेठ की पुत्री सामावती से विवाह किया। सामावती को कौशाम्बी के श्रेष्ठि घोषित ने पाला था। घोषित बौद्ध धर्मानुयायी था। उदयन ने उसे संघाराम (विहार) बनवाने की आज्ञा भी दी थी। सामावती की भी रुचि बौद्ध धर्म में थी और इसलिए उदयन ने उसका विरोध नहीं किया।

उदयन के धर्म-परिवर्तन के विषय में दो कथाएँ हैं। तिब्बती बौद्ध साहित्य के अनुसार 621 ई० पू० में जब बुद्ध भगवान कौशाम्बी आए, उस समय उदयन अपनी सेना के निरीक्षण के लिए प्रस्तुत थे। उन्हें कनकावती पर आक्रमण करना था। ऐसे समय पर शांतिदूत गौतम का आगमन उन्हें अच्छा न लगा। उन्होंने भीरुता के उपदेश को समाप्त करने का निर्णय किया। शब्द-बेधी बाण चलाने की कला में वे निपुण थे और उन्होंने उस कला का प्रयोग गौतम पर किया, किंतु बाण गौतम को न लगा। बाण भगवान बुद्ध की दिशा में उड़ते हुए हंस को लगा। यह एक संयोग ही था कि पहले भगवान बुद्ध ने हंस को बचाया था, दूसरी बार हंस ने भगवान बुद्ध के प्राणों की रक्षा की। वत्सराज उदयन के समक्ष स्पष्ट हो गया कि ईर्ष्या से दुःख होता है, दुःख से कष्ट। अतः कष्ट और झगड़ों से दूर रहना चाहिए।[1] इस घटना से प्रभावित होकर उदयन गौतम बुद्ध के चरणों पर गिर पड़े।

पालि-कथाओं के अनुसार उदयन को बौद्ध धर्म में दीक्षित करने का श्रेय पिण्डोल भारद्वाज को है। एक बार जब उदयन पर्यटन के लिए गए हुए थे, उनकी रानियाँ रात्रि में पिण्डोल भारद्वाज का प्रवचन सुनने के लिए उदयन को सोता छोड़कर

---

1. रॉकहिल ने 'दि लाइफ ऑव बुद्ध' इन शब्दों को निम्नलिखित ढंग से अनुवादित किया है—

From malice is misery brought forth.
He who here give upto sacrifice and quarrels.
Here after will experience the misery of Hell.
Put away misery and quarreling.

—*The Life of the Buddha*, p. 74.

चली गयीं। उदयन ने रुष्ट होकर पिण्डोल के शरीर से चींटियों का छत्ता बँधवा दिया। पिण्डोल इससे अप्रभावित रहे। बाद में उदयन को पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया।

मुझे व्यक्तिगत रूप से प्रथम कथा में अधिक प्रामाणिकता प्रतीत होती है। इस नाटक में मैंने उसे ही स्वीकार किया है। सम्राट् उदयन के धर्म-परिवर्तन का आधार मनोविज्ञान ही है। उदयन शब्द-बेधी बाण चलाने में अत्यन्त कुशल थे। वह बाण जिसे उदयन ने भगवान बुद्ध की ओर चलाया था, एक हंस को लगा, इससे उदयन को अत्यधिक संताप हुआ। ऐसी स्थिति में उनके हृदय में पश्चात्ताप होना स्वाभाविक था।

ऐतिहासिक और साहित्यिक स्रोतों से जो सामग्री मेरे सामने थी, उसके आधार पर मैंने प्रस्तुत नाटक की रचना की है। भगवान बुद्ध समस्त कथावस्तु के केन्द्रबिन्दु हैं। उन्हें मैंने धीरोदात्त न मानकर धीर प्रशांत नायक ही माना है।

इस प्रकार अन्तिम अंक की कथा बौद्ध इतिहास के आधार पर है। जब उदयन कनकावती पर आक्रमण करने की तैयारी में अपनी सेना का निरीक्षण करने के लिए प्रस्तुत हैं, उसी समय उन्हें भगवान गौतम के आने की सूचना मिलती है। वे इस सूचना से क्षुब्ध एवं क्रुद्ध होते हैं। बुद्ध का प्रवचन राजप्रासाद के पार्श्व में ही होता है। उदयन सेनाध्यक्ष रुमण्वान से परामर्श करते हैं और शब्द-बेधी बाण छोड़ते हैं, जो गौतम को न लगकर एक हंस को लगता है। क्रुद्ध भीड़ उदयन के प्रासाद पर आक्रमण करना चाहती है। बुद्ध उन्हें शांत करते हैं। यही घटना उदयन के धर्म-परिवर्तन का कारण बनती है।

मैंने उदयन के चरित्र की रूपरेखा अंकित करने में जो मौलिक उद्भावनाएँ जोड़ी हैं, उनसे इतिहास को किसी प्रकार की क्षति न हो, इसका ध्यान बराबर रखा है।

प्रस्तुत नाटक का उद्देश्य

नाटक की शैली के बारे में भी दो शब्द कह देना अप्रासंगिक न होगा। नाटक का उद्देश्य है दर्शकों या पाठकों का चित्तानुरंजन करना। इसी चित्तानुरंजन के साथ-साथ इस बात की भी आवश्यकता है कि नाटक में जीवन का संदेश भी हो। वह साहित्य, जो समाज में कुरुचि उत्पन्न करता है, कभी प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। इसके साथ ही जो केवल उपदेश ही है, उसे साहित्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती। इन दोनों का मंजुल समन्वय ही साहित्य का इष्ट है। मैं यथार्थ का विरोधी नहीं हूँ, यथार्थ-चित्रण साहित्य में ग्राह्य है, किंतु वह यथार्थ जिसमें जीवन की कुत्सा, घृणा आदि ही लक्षित हों, समाज को नव-जीवन के प्रभात की ओर कभी प्रेरित नहीं कर सकता। इस नाटक में हिंसा पर अहिंसा की विजय चित्रित की गयी है। गौतम बुद्ध की अहिंसा आज भी भारत की महान विभूति देश-देशान्तर में व्याप्त हो रही है। पूज्य बापू ने इस युग में पथभ्रान्त मानव को अहिंसा का संदेश दिया था। इस दृष्टि से ऐतिहासिक होते हुए भी यह नाटक वर्तमान का सन्देशवाहक है। इससे दर्शक के मन पर यह विश्वास स्थायी हो जाता है कि एक न एक दिन पाशविक प्रवृत्तियों पर करुणा, दया, समता आदि मानवीय

वृत्तियाँ अवश्य ही विजयी होंगी ।

नाटक की परिणति शान्त रस में हुई है । श्रृंगार, हास्य, वीर आदि रस शान्त रस के सहायक सिद्ध होते हैं । इस प्रकार नाटक में रस के साथ अन्य रस भी आ गए हैं । सिद्धांत को मनोवैज्ञानिकता से सम्बद्ध करने का प्रयास भी मैंने किया है ।

भाषा में समरसता है । मेरे कुछ मित्र मेरी भाषा में काव्यात्मकता अधिक पाते हैं । संवेदनशील पात्रों की विचाराभिव्यक्ति में काव्यात्मकता अपने आप उभर आती है । शेक्सपीयर के मेकबेथ, हेमलेट, ओथेलो जैसे पात्रों के संवाद ही देखे जाएँ । वे तो स्पष्टत: काव्य हैं । तीव्र अनुभूति चाहे जिस माध्यम से व्यक्त हो, उसमें कविता का सौन्दर्य झाँकने लगता है । कवि को फूलों का मुकुलित होना मुस्कान जैसा लगता है, किन्तु वही वैज्ञानिक के लिए एक नैसर्गिक प्रक्रिया मात्र है । वैसे कहीं पर भी अभिव्यक्ति उलझी हुई नहीं है, इसका मैंने ध्यान रखा है ।

—लेखक

कथा-परिचय

यह देश महान पुरुषों का जन्म-स्थान रहा है। धर्म, समाज और राजनीति के क्षेत्रों में उनके द्वारा की गयी क्रान्तियों के स्वर शताब्दियों तक गूँजते रहे हैं और उन्होंने मानव-कल्याण के नए-नए मार्गों का अन्वेषण किया है। युगों की धारा मोड़कर उन्होंने समय को नवीन दिशाएँ दी हैं और देश के मस्तक पर अपनी साधना का रागारुण तिलक अंकित किया है। इन्हीं महापुरुषों के आत्म-बलिदान से देश का इतिहास आज भी गौरवान्वित है।

ऐसे ही महामानवों में सिद्धार्थ गौतम का नाम रवि-किरणों की भाँति जीवन में एक नवीन जागरण का संदेश देता है। ढाई हजार से अधिक वर्ष व्यतीत हो गए किन्तु उनका नाम इस देश में ही नहीं विदेशों में भी—श्रीलंका, बर्मा, चीन, जापान, स्याम और तिब्बत में भी—साठ करोड़ से अधिक स्त्री-पुरुषों द्वारा श्रद्धा के साथ लिया जाता है। उनके अपूर्व त्याग और उत्सर्ग ने उन्हें भगवान के अवतार के रूप में मान्यता प्रदान की है। वे महामानव के रूप में ही नहीं, भगवान बुद्ध के रूप में भी पूजनीय हैं।

सिद्धार्थ गौतम का जन्म ईसवी पूर्व 563 में हुआ था। वे कपिलवस्तु के नरेश शुद्धोदन के पुत्र थे। जब उनकी माता देवी महामाया कपिलवस्तु से 15 मील दूर अपने पिता के यहाँ कोलिय राज्य में जा रही थीं, तभी मार्ग में लुम्बिनी नामक शालवन में उनका जन्म हुआ। जन्म के एक सप्ताह बाद उनकी माता देवी महामाया का देहावसान हो गया। शिशु सिद्धार्थ की रक्षा के लिए शुद्धोदन ने देवी महामाया की छोटी बहन प्रजावती गौतम से विवाह किया और तब शिशु सिद्धार्थ के पालन-पोषण का भार इन्हीं सौतेली माँ प्रजावती के ऊपर पड़ा।

कुमार सिद्धार्थ के अनेक नाम हैं। गौतम, शाक्यमुनि, सिद्धार्थ, बोधिसत्व,[1] बुद्ध और तथागत। उनका राजवंश गौतम नाम से प्रसिद्ध था, इसलिए वे गौतम कहे गए, शाक्य जाति में उत्पन्न होकर वे तपस्वी हुए, इसलिए शाक्यमुनि कहलाए, सिद्धार्थ तो माता-पिता द्वारा ही रखा हुआ नाम था। उनके जीवन में जब ज्ञान का उदय हुआ तो वे बोधिसत्व से बुद्ध कहलाए और जब अनेक योनियों में साधना करते हुए वे वर्तमान

1. बोधि का अर्थ है मनुष्य के उद्धार का ज्ञान और इसके लिए प्रयत्न करने वाला प्राणी (सत्व) ही बोधिसत्व है।

जीवन में अवतरित हुए तो तथागत कहे गए।

सिद्धार्थ बड़े ही सौम्य और सुन्दर थे। उनके जन्म पर आठ ऋषियों द्वारा भविष्यवाणी की गयी कि यह बालक बड़ा प्रतापी होगा। यदि यह गृहस्थाश्रम में रहेगा तो चक्रवर्ती नरेश होगा किन्तु यदि इसने संन्यास ग्रहण किया तो यह संसार से अज्ञान का अंधकार दूर कर मानव के कल्याण का पथ प्रशस्त करेगा।

पाँच वर्ष की अवस्था से सिद्धार्थ को शिक्षा दी गयी। दस वर्ष की अवस्था में वे अनेक शस्त्रों और शास्त्रों की शिक्षा से परिचित हो गए। साहित्य, व्याकरण, धर्म-शस्त्र, ज्योतिष आदि शास्त्रों के ज्ञान के साथ उन्होंने धनुर्वेद और अश्व-संचालन में भी कुशलता प्राप्त की किन्तु सिद्धार्थ की विचार-मग्नता और विरक्ति देखकर राजा शुद्धोदन को भय था कि ये कहीं संन्यासी न हो जाएँ। क्योंकि उनके हृदय में सामान्य जीवों के प्रति भी अत्यधिक दया और करुणा का भाव था। एक दिन जब उनके चचेरे भाई ने आकाश में उड़ते हुए हंस को बाण मार कर गिराया तो कुमार सिद्धार्थ ने उस हंस को गोद में उठाकर उसके प्राणों की रक्षा की। दया और करुणा के भाव उनके हृदय में सर्वोपरि थे।

कुमार सिद्धार्थ की अठारह वर्ष की अवस्था होने पर उनके पिता शुद्धोदन ने उनका विवाह पड़ोसी कोलिय गणतंत्र के अधिपति की सुन्दरी कन्या यशोधरा से कर दिया। अब शुद्धोदन एक प्रकार से निश्चिन्त-से हो गए कि यशोधरा का आकर्षण कुमार सिद्धार्थ को संन्यास के मार्ग पर न जाने देगा। यद्यपि ग्यारह वर्ष तक सिद्धार्थ और यशोधरा ने गृहस्थ जीवन व्यतीत किया किन्तु उसके पिता ने कुमार सिद्धार्थ के गृहस्था-श्रम में रह जाने की जो कल्पना की थी कि वह आगे चलकर मिथ्या ही सिद्ध हुई।

एक दिन कुमार सिद्धार्थ अपने सारथी छंदक के साथ नगर-यात्रा को निकले। उन्होंने मार्ग में किसी वृद्ध, रोगी और मृतक को देखा। इससे संसार के सुख और सौन्दर्य के प्रति उनकी विरक्ति और भी बढ़ गयी। एक संन्यासी को देखकर उनके मन में भी मोह-ममता त्याग कर संन्यासी हो जाने की भावना दृढ़ हो गयी। पिता शुद्धोदन ने जब यह सुना तो वे विशेष चिन्तित हुए किन्तु अपने अमात्यों के परामर्श से उन्होंने कुमार सिद्धार्थ के लिए सुख और सौन्दर्य के अनेकानेक आकर्षणों का प्रबन्ध किया। नृत्य और संगीत में कुशल सुन्दरियाँ, तीन, पाँच और सात खंडों के भवन, अनेक प्रकार के उपवन और सरोवर, भाँति-भाँति के रत्न-जटिल कक्ष, किन्तु ये समस्त आकर्षण कुमार सिद्धार्थ पर कोई प्रभाव न डाल सके। इसी बीच उन्हें एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई। इसे उन्होंने अपने विचार-चन्द्र को ग्रसने के लिए राहु समझ कर 'राहुल' नाम दिया।

कुमार सिद्धार्थ की वैराग्य-भावना क्रमशः दृढ़ होती गयी और जब वे उन्तीस वर्ष के थे उन्होंने चैत्र की अर्धरात्रि में राजमहल का परित्याग कर वन की शरण ली। उनके हृदय में देवी यशोधरा का परित्याग करते समय अत्यधिक मानसिक द्वन्द्व हुआ किन्तु कुमार सिद्धार्थ ने उस पर विजय प्राप्त की। गृहस्थ-जीवन से संन्यास के लिए उनकी इस यात्रा को 'महाभिनिष्क्रमण' की संज्ञा दी गयी है।

इसके उपरान्त कुमार सिद्धार्थ ने अपने जीवन का जो विवरण वत्सराज उदयन के पुत्र बोधिराज को दिया है, वह बौद्ध ग्रंथ 'मज्झिम निकाय' में कुछ विस्तार से दिया गया है। तथागत कहते हैं :

'राजकुमार ! बुद्ध होने से पहले मुझे ऐसा ज्ञात होता था···सुख में सुख नहीं प्राप्त हो सकता। दु:ख में सुख प्राप्त हो सकता है। इसलिए—मैं तरुण···काले केशों वाला···सुन्दर यौवन के साथ, प्रथम वयस में माता-पिता को अश्रु-मुख छोड़ घर से प्रव्रज्जित हुआ। पहले आलार कालाम के पास गया।'

तथागत आलार कालाम के योग-साधन से सन्तुष्ट नहीं हुए। वे वहाँ से उद्दक रामपुत्त के पास गए, उनसे भी सिद्धार्थ को सन्तोष नहीं हुआ। वे तदनन्तर बोध गया के समीप छः वर्षों तक सूक्ष्मतम आहार करते हुए तपस्या करते रहे। इससे वे बहुत दुर्बल हो गए। वे स्वयं कहते हैं :

'मेरा शरीर दुर्बलता की चरम सीमा को पहुँच गया। जैसे ऊँट का पैर, वैसा ही मेरा कूल्हा हो गया···जैसे साल की पुरानी कड़ियाँ टेढ़ी-मेढ़ी होती हैं वैसे मेरी पसलियाँ हो गयीं···जैसे गहरे कुएँ तारा वैसे ही मेरी आँख दिखायी देती थीं···किन्तु मैंने चरम दर्शन को प्राप्त नहीं किया···फिर सोचा कि बोध (ज्ञान) के लिए क्या कोई दूसरा मार्ग है? ···मैंने पिता शुद्धोदन शाक्य के खेत पर जामुन की ठंडी छाया के नीचे बैठ प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहार किया था। सम्भव है, वह मार्ग बोधि का हो किन्तु इस प्रकार कृशकाया से वह सुख मिलना सुकर नहीं है। फिर मैं स्थूल आहार ग्रहण करने लगा···उस समय मेरे पास पाँच भिक्षु रहा करते थे···जब मैं स्थूल आहार ग्रहण करने लगा तो पाँचों भिक्षु उदासीन होकर चले गए···तभी मुझे सुजाता ने पायस से सन्तुष्ट किया···फिर मैंने एक रमणीय भू-मार्ग में—वनखंड में एक नदी को बहते देखा। उसका घाट रमणीय और श्वेत था। यही ध्यान योग्य स्थान है, ऐसा समझ कर वहाँ बैठ गया। जन्म लेने के दुष्परिणाम को जानकर मैंने अनुपम निर्वाण पा लिया। 'मार' पराजित हुआ। मेरा ज्ञान-दर्शन प्रत्यक्ष हो गया। मेरे चित्त की मुक्ति अचल हो गयी, यह अन्तिम जन्म है, फिर दूसरा जन्म नहीं होगा।'

इस प्रकार प्रत्यक्ष दर्शन की अनुभूति पाकर तथागत ने जीवन का सत्य समझा। उन्होंने संघ का निर्माण किया और वे अपने अनुभव-ज्ञान का उपदेश करने लगे। उनके अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी और उनका प्रभाव सर्वत्र व्याप्त हो गया। यहाँ तक कि कोशल के वन में पथिकों की अंगुलियाँ काटने वाला डाकू अंगुलिमाल भी उनका शिष्य हो गया।

पैंतालीस वर्षों तक अपने जीवन-दर्शन का उपदेश कर तथागत ने अस्सी वर्ष की अवस्था में ई० पू० 483 में कुशीनारा स्थान पर निर्वाण प्राप्त किया।

पात्र-सूची
(प्रवेशानुसार)

पात्र	परिचय
राजकुमार	कुमार सिद्धार्थ के आचार्य
देवदत्त	कुमार सिद्धार्थ के प्रतिद्वंद्वी
पंथक	देवदत्त का विश्वस्त सहचर
कुमार सिद्धार्थ (तथागत)	महाराज शुद्धोदन के पुत्र
छंदक	कुमार सिद्धार्थ का सारथी
महाराज शुद्धोदन	कपिलवस्तु के नरेश
अश्वजित्, मकरंद, नंदक, अनिरुद्ध	महाराज शुद्धोदन के अमात्य
हारीत, उत्तरपाल	दो भिक्षु
अंगुलिमाल	डाकू
चंद्रचूड़, शेखरक	सम्राट् उदयन के राजकर्मचारी
सम्राट् उदयन	कौशाम्बी नरेश
रुमण्वान	सम्राट् उदयन के सेनाध्यक्ष

द्वारपाल, दो गुप्तचर, प्रहरी आदि

पूर्व रंग

[सजे हुए वेश में सारथी छंदक का प्रवेश]

छंदक : यह मेरा सौभाग्य है कि मैं कुमार सिद्धार्थ का सारथी हूँ। पहले तो मैं अपने आपको धिक्कारता रहा कि मैंने ही कुमार सिद्धार्थ को वृद्ध, रोगी और मृतक को देखने का अवसर दिया किंतु जब कुमार सिद्धार्थ ने अपनी साधना से धर्म में क्रांति करते हुए विश्व को मानव-कल्याण का नया सन्देश दिया तो मैं धन्य हो उठा! आज मैं उसी अमर इतिहास का अभिनय करने जा रहा हूँ। मैंने ही लेखक महोदय से आग्रह किया कि वे इस महान् ऐतिहासिक एवं धार्मिक क्रांतिकर्त्ता भगवान बुद्ध पर नाटक की रचना करें। यों तो उन्होंने अनेक नाटक और एकांकी लिखे हैं किंतु इस नाटक के लिखने में उन्होंने एक विशेष बात रखी है। इस नाटक में कोई स्त्री-पात्र नहीं है। आशा है, आप निराश नहीं होंगे। मैंने उनसे कहा था—श्रीमन्! इस नाटक में कुमार सिद्धार्थ की परम सुन्दरी और गुणवती पत्नी यशोधरा देवी कहाँ हैं? उन्होंने कहा—छंदक महोदय! कुमार सिद्धार्थ ने देवी यशोधरा को बिना सूचना दिए ही आधी रात में महाभिनिष्क्रमण किया। जब प्रातःकाल यशोधरा देवी उठी होंगी और उन्होंने राजमहल में कुमार सिद्धार्थ को न पाया होगा तो उनकी क्या दशा हुई होगी? पति-वियोग के भयानक आघात से उनकी करुणा कितनी सहस्र धाराओं में फूट निकली होगी? उनकी करुणा को शब्दों द्वारा व्यक्त करना उनकी करुणा का दारुण उपहास न होगा? उन्होंने फिर कहा कि हमारे महाकवि तुलसीदास ने अपने रामचरितमानस में विरहिणी उर्मिला की करुणा को वाणी देने में अपने को असमर्थ पाया। फिर मैंने तो महाकवि तुलसीदास की प्रतिभा का शतांश भी नहीं पाया है। तो करुणा-सिक्त यशोधरा को मंच पर लाने का साहस ही नहीं कर सका। उनका संकेत मैंने अवश्य किया है। फिर तथा-गत के वैराग्य में नारी को स्थान ही कहाँ है? हाँ, आन्तरिक संघर्षों में तथागत का मनोविज्ञान और दर्शन अवश्य ही स्पष्ट होता गया है। विशाखदत्त के मुद्रा-राक्षस नाटक में भी तो कोई आकर्षक स्त्री-पात्र नहीं है। आशा है, तथागत के महान् व्यक्तित्व से आलोकित यह नाटक आपको अच्छा लगेगा। अच्छा, अब आपका अधिक समय नहीं लूँगा। नाटक आरम्भ करने के लिए अब आपकी आज्ञा चाहता हूँ। धन्यवाद।

[प्रणाम कर सारथी छंदक का प्रस्थान]

पहला अंक

समय : प्रभात का प्रथम प्रहर
स्थान : कपिलवस्तु के बाहर वन-भूमि

[अरण्य के दुर्गम मार्ग का मोड़। अनेक प्रकार के वृक्ष, गुल्म और लताएँ। नाना रंगों के पुष्प। पक्षियों का कूजन। बाल सूर्य की आती हुई किरण। एक ओर से राजगुरु का प्रवेश। भव्य वेश-भूषा। सिर पर जटा, माथे पर त्रिपुंड, नेत्र बड़े-बड़े, शरीर पर रेशमी उत्तरीय और अधोवस्त्र, पैर में रज्जु-निर्मित उपानह। कंठ में रुद्राक्ष की माला। मंच पर आकर गंभीरता से पुकारते हैं—]

राजगुरु : सिद्धार्थ ! देवदत्त !

देवदत्त : (**नेपथ्य से**) आया गुरुदेव !

[देवदत्त का प्रवेश। राजसी वस्त्रों में है। माथे पर शिरस्त्राण। कंठ में कंठहार। रजत सूत्रों से रेखांकित पीला पाट वस्त्र, अरुण अधोवस्त्र। पैरों में उपानह। हाथ में धनुष-बाण।]

देवदत्त : आज्ञा कीजिए, गुरुदेव !

राजगुरु : कुमार सिद्धार्थ कहाँ हैं ?

देवदत्त : कुमार सिद्धार्थ ? यहीं कहीं होंगे। (**सोचते हुए**) किंतु एक बात पूछना चाहता हूँ, गुरुदेव ! कुमार सिद्धार्थ क्षत्रिय हैं, किंतु क्षत्रियों में जितने गुण होने चाहिए, उतने नहीं हैं। इस वन-प्रांत में आए हैं किंतु आखेट नहीं करेंगे। मुझे देखिए, आखेट के लिए किस प्रकार सुसज्जित हूँ ! (**गर्व से चलता है**) यह शिरस्त्राण, यह धनुष और ये पैने-पैने बाण। बड़े से बड़े हिंस्र पशु को मारकर गिरा दूँ। किंतु कुमार सिद्धार्थ पशुओं की खोज नहीं करते। वे तो यह खोजते हैं कि किस लता में सबसे सुन्दर फूल खिले हैं, किस पक्षी की बोली सबसे मीठी है और किस सरोवर में कितने रंगों के कमल खिले हैं। यह आखेट है ? उन्हें तो यहाँ आना ही नहीं चाहिए।

राजगुरु : अहंकार से मुक्त रहो, देवदत्त ! कुमार सिद्धार्थ की दृष्टि समझने की चेष्टा करो। वे ऐसी क्रीड़ा नहीं करते जिसमें किसी जीव की हिंसा हो। तुम अपनी क्रीड़ा में इन निरपराध पक्षियों को मारते हो। जो अपनी मधुर वाणी से अमृत की वर्षा करते हैं, उन पर तुम बाणों की वर्षा करते हो। स्वतन्त्रता से विचरण

करने वाले जीवों की. प्राण-हानि होती है। जो प्राणी निरीह और निर्बल हैं, उनके प्राण लेना मनुष्य की सबसे बड़ी क्रूरता है। कुमार सिद्धार्थ प्रकृति का सत्य पहचानते हैं। वे प्रकृति के विकास में सहायक होना चाहते हैं, विनाश में नहीं।

देवदत्त : यदि वे प्रकृति के विकास में सहायक होना चाहते हैं तो—तो धनुष-बाण क्यों धारण करते हैं ? धनुष-बाण से प्रकृति की क्या सहायता होगी ? क्या वे ऐसा बाण चलाएँगे जिससे लता में और भी बड़े फूल खिलने लगेंगे ? निर्गन्ध पुष्प में भी सुगन्धि भर जाएगी ? पक्षीगण अधिक मीठे स्वर में कलरव करेंगे और मोर के पंखों के रंग और भी चमकीले हो जाएँगे ?

राजगुरु : परिहास न करो, देवदत्त ! धनुर्वेद का प्रयोग तो अनेक प्रकार से किया जाता है किंतु प्रकृति को नष्ट करना किसी भी आखेटक के लिए उचित नहीं।

देवदत्त : किंतु आखेट तो प्रकृति के क्षेत्र में ही होता है। नगरों में तो आखेट होता नहीं। (**हँसता है**) नागरिकों का आखेट···

राजगुरु : नगरों में भी हो सकता है किंतु नागरिकों का नहीं। आखेट का अर्थ हिंसा करने में नहीं है—भय देने में है—'आखिट्यन्ते त्रास्यन्ते प्राणिनोऽत्र'। किंतु कुमार की विशेषता यह है कि वे आखेट करते हुए भी भय नहीं देते।

देवदत्त : अर्थात् वे देखते भी हैं और नहीं भी देखते। चलते हैं और नहीं भी चलते। हँसते हैं और नहीं भी हँसते।

राजगुरु : देवदत्त ! तुम्हारे मन में कुमार सिद्धार्थ के प्रति कितनी ईर्ष्या है ! तुम्हारा नाम देवदत्त है किंतु तुम दानव-दैत्य ज्ञात होते हो।

देवदत्त : ज्ञात ही होता हूँ न ? हूँ तो नहीं। संसार सत्य ज्ञात होता है किंतु वास्तव में सत्य तो नहीं है।

राजगुरु : मर्यादा में रहो, देवदत्त ! कुछ गंभीर बनो। कुमार सिद्धार्थ से ईर्ष्या करना ठीक नहीं ! तुम उनके निकट सम्बन्धी हो। तुम उनकी वृद्धि क्यों नहीं देख सकते ?

देवदत्त : जब वृद्धि ही नहीं है, गुरुदेव ! तो देखना कैसा ? मुझमें भी भरपूर शक्ति है। कुमार सिद्धार्थ में क्या होगी ? यह तो पक्षपात करने वालों का दोष है कि वे कुमार सिद्धार्थ को ही सब प्रकार का अवसर प्रदान करते हैं, मुझे नहीं। (**कंधे उचकाकर**) न दें। मैं क्या चिंता करता हूँ ! शक्ति तो शक्ति है, उसे कौन रोक सकता है ? वर्षाकाल में काले-काले मेघ दानवों की भाँति घिरकर बिजली को दबाना चाहते हैं किंतु बिजली में शक्ति है, वह उन बादलों का हृदय चीरकर चमक ही उठती है। इसी तरह मेरा विरोध होता है, हुआ करे। मुझमें ऐसी शक्ति है कि बड़े से बड़े विरोध के होते हुए भी मेरी शक्ति कुमार सिद्धार्थ की शक्ति से अधिक ही उभर-कर रहेगी और उससे आप ही नहीं सारा संसार चकित होगा। (**गर्व की मुद्रा में चलता है।**)

राजगुरु : यह तुम्हारा भ्रम है, देवदत्त कि कोई तुम्हारा विरोध करता है। तुम अपने आवेश में स्वयं अपना सन्तुलन खो बैठते हो। दूसरों को क्यों दोष देते हो ? तुम

भी राजकुल के हो किंतु न तो तुम्हारी ऐसी साधना है, न शक्ति जैसी कुमार सिद्धार्थ में है। हाँ, शुद्ध बुद्धि से साधन करोगे तो सिद्धि तुम्हारे सामने हाथ जोड़-कर खड़ी हो जाएगी। यह तुम सच कहते हो कि विरोधों के होते हुए शक्ति उभरकर रहती है किंतु शक्ति को शक्ति बनकर ही सामने आना चाहिए। उसे कार्यों में उभरना चाहिए, शब्दों में नहीं। शब्दों के कन्धों पर शक्ति शव बनकर रह जाती है।

देवदत्त : मेरे शब्द नहीं, मेरे कार्य शक्ति के वाहक हैं। मैंने तो ऐसे-ऐसे शब्द-बेध किए हैं कि क्षण-क्षण में दिशा बदलती हुई तितली भी—रंगीन तितली भी—मेरे बाणों से अपने पंख खो देती है। आकाश में तीव्र गति से उड़ता हुआ पक्षी भी मेरे पैने बाणों से रक्त-रंजित होकर भूमि पर लोटने लगता है। ऐसा लाघव बड़े से बड़े क्षत्रिय कुमार में नहीं है तो कुमार सिद्धार्थ में क्या होगा ?

राजगुरु : शान्त बनो, देवदत्त ! अभिमान और शब्द-शूरता से दूर रहो। तुम तो कुमार सिद्धार्थ के साथ कभी रहते नहीं हो, सदैव दूर ही दूर रहते हो। तुम लक्ष्य लेने की उनकी दृष्टि और कुशलता क्या जानो ? मैं राजगुरु हूँ। प्रत्येक शिष्य की योग्यता से परिचित हूँ। पहचानता हूँ कि कुमार सिद्धार्थ की लक्ष्य-दृष्टि कितनी संतुलित है और कितनी शक्ति रखती है।

देवदत्त : क्या राजगुरु के शब्दों में मैं सुन सकता हूँ कि उनकी लक्ष्य-दृष्टि की क्या विशेषता है ?

राजगुरु : अभी उस दिन की बात है, महाराज शुद्धोदन भी कुमार के लक्ष्य अभ्यास के अवसर पर सुशोभित थे। उन्होंने कुमार की शस्त्र और अस्त्र संचालन की परीक्षा अलग से देखी। अश्व का संचालन, असि-प्रहार, धनुष-कर्षण, कुन्त, त्रिशूल और गदा-प्रयोग तथा चल लक्ष्य का कुशल बेध मैंने उनके सामने कराया। महाराज बहुत प्रसन्न हुए। अन्त में उन्होंने कहा कि पूर्व से पश्चिम की ओर जो पक्षी उड़ता चला जा रहा है, उसे बाण से लक्ष्य लेकर पृथ्वी पर गिरा दो।

देवदत्त : यह कौन-सी बड़ी बात है ? इसे तो मैं अभी कर सकता हूँ।

राजगुरु : किन्तु जानते हो, कुमार ने क्या किया ? उन्होंने महाराज से कहा—पिताश्री ! आप मेरे पूज्य हैं और आपकी आज्ञा की अवहेलना नहीं हो सकती किन्तु आप इस भूमि के अधिपति भी हैं इसलिए राजधर्म के अनुसार यह पक्षी भी आपका आश्रित है। यह आपके अभय-दान से सुरक्षित है। इसलिए इसे भूमि पर तो अवश्य लाऊँगा किन्तु इसे किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचाऊँगा।

देवदत्त : अच्छा ? बिना क्षति पहुँचाए उन्होंने पक्षी को भूमि पर लाने की बात कही ?

राजगुरु : हाँ, उन्होंने धनुष्य चढ़ाया और उस पक्षी के दोनों पैरों के बीच में एक अचूक बाण इस तरह चलाया कि पक्षी बाण के यान पर ही उड़ता चला गया। फिर कुमार ने दो बाणों का संधान कर ऐसा लक्ष्य लिया कि वे दोनों बाण उसके पंखों को बिना बेधे ही पंखों को सहारा देते हुए सट गए। अब पक्षी को उड़ने के लिए पंख हिलाने की भी आवश्यकता नहीं रही। वह केवल बाणों के वेग से ही आकाश

में उड़ता रहा। अन्त में चौथे बाण से कुमार ने उस पक्षी की गति रोककर पृथ्वी पर गिरा दिया। चारों ओर 'साधु' 'साधु' शब्द गूँज उठा। महाराज की आज्ञा तो पूर्ण हुई ही, वह पक्षी भी बिना क्षति के क्षिति पर आ गिरा।

देवदत्त : (**सिर हिला कर**) हूँ।

राजगुरु : तुमने 'साधु' नहीं कहा, देवदत्त ?

देवदत्त : मेरे 'साधु' शब्द कहने से कुमार सिद्धार्थ का और उस पक्षी का कोई लाभ तो होगा नहीं। मैं तो इसे इन्द्रजाल ही समझता हूँ। (**ऊपर देख कर**) अरे, यह हंसों की पंक्ति। ये हंस ! संयोग से इसी ओर उड़ते हुए चले आए ? आहा, मेरे भोजन में कितने स्वादिष्ट होंगे ये ! ···ये हंस ! ···

राजगुरु : फिर तुम्हारी हिंसा जाग उठी, देवदत्त ?

देवदत्त : यह तो मेरी रुचि है, गुरुदेव ! देखिए न ? कैसे अर्धाकार वृत्त में उड़ रहे हैं। जैसे आकाश ने भी उन्हें खाने के लिए उन्हीं के रूप में अपनी दन्त-पंक्ति खोल रखी है किन्तु मेरे रहते हुए आकाश तो इन्हें खाएगा नहीं। यह बीच का हंस तो सबसे बड़ा है, गुरुदेव ! मैं लक्ष्य लेने जा रहा हूँ।

[शीघ्रता से प्रस्थान]

राजगुरु : (**देवदत्त के जाने की दिशा में देखते हुए**) देवदत्त ! हिंसक देवदत्त ! कहता है मेरे भोजन में कितने स्वादिष्ट होंगे ये हंस ! स्वाद-लोलुप देवदत्त ! लक्ष्य लेने गया है। कितना अन्तर है, कुमार सिद्धार्थ और देवदत्त में। कुमार सिद्धार्थ पारस हैं तो देवदत्त लौह-खंड। और यह लौह-खंड अन्य धातुओं से ऐसा मिला है कि पारस के स्पर्श से स्वर्ण नहीं हो सकता। क्रूर हिंसक देवदत्त ! (**सोचते हुए**) मैं भी किसी वृक्ष की छाया में विश्राम करूँ। इस बीच कुमार सिद्धार्थ भी मिल जाएँगे। वे तो प्रकृति का सौन्दर्य देख रहे होंगे। लगता है सिद्धार्थ ! तुम भी किसी लता के सुगन्धित फूल हो ! सुगन्धित फूल ! (**चारों ओर देख कर**) कितनी सुन्दर प्रकृति की शोभा है ! समीर जैसे किसी सेवक की भाँति कण-कण में सुगन्धि बाँटता फिरता है। पक्षी जैसे मधु का माधुर्य लेकर कलरव कर रहे हैं ! (**ऊपर देख कर**) हंसों की माला सुन्दरता से बार-बार आकाश के कंठ में पड़ती जाती है किन्तु देवदत्त उसके सौन्दर्य से मोहित न होकर उसके रक्तपान के लिए लालायित है। वह उनका लक्ष्य लेने गया है। देवदत्त ! दूसरों का रक्त बहाने में तुझे आनन्द आता है ? प्रकृति के सुख से तू सुखी नहीं है, देवदत्त ! (**सोचते हुए प्रस्थान**)

[एक क्षण शान्ति। सहसा दूसरी ओर से उल्लास के स्वर में धनुष-बाण लिए देवदत्त का प्रवेश]

देवदत्त : गुरुदेव ! गुरुदेव !! मैंने लक्ष्य लेकर इतने शीघ्र इस बड़े हंस को नीचे गिरा लिया ! दुग्ध की भाँति सफेद हंस ! आहहह ! वाह, मेरा लक्ष्य भी कितना सच्चा है ! इतना बड़ा हंस ! वह तड़पते हुए नीचे गिरा। जैसे आकाश की हँसी

बिखर गई हो ! (**अट्टहास करता है**) गुरुदेव ! आप कहाँ हैं ? (**पुकार कर**) गुरुदेव ! आप कहाँ हैं ? आपको तो यहीं छोड़कर गया था । आप अवश्य ही मेरे लक्ष्य-बेध की प्रशंसा करेंगे । एक ही बाण से मैंने मध्य में उड़ते हुए हंस को भूमि पर गिरा दिया ! उसके उज्ज्वल पंख टेढ़ी रेखाओं में बहते हुए रक्त से रँग गए, जैसे मृत्यु ने अपने बाल-अभ्यास में रक्त से ही टेढ़े-मेढ़े अक्षर बना दिए।··· (**ठहर कर**) किन्तु···किन्तु अभी तक मेरा सेवक पंथक गिरे हुए हंस को लेकर नहीं आया। मैंने उसे उसी क्षण हंस लेने के लिए भेज दिया था। (**रुककर**) आता होगा। (**टहलता हुआ नेपथ्य से**) अरे, आ भी गया ! (**देखकर**) पर यह क्या ! उसके हाथ में हंस नहीं है ?

[पंथक का प्रवेश]

देवदत्त : क्यों पंथक ! मेरा हंस कहाँ है ?

पंथक : कुमार क्षमा करें। रक्त से भीगा हुआ हंस कुमार सिद्धार्थ के हाथों में है।

देवदत्त : (**आश्चर्य से**) कुमार सिद्धार्थ के हाथों में ? ये वहाँ कैसे पहुँच गए ?

पंथक : वे वहीं वृक्ष के नीचे बैठकर कुछ सोच रहे थे। जैसे ही आपके बाणों से बिंधा हुआ हंस नीचे गिरा, वे दौड़ पड़े और उसके पंखों से बाण निकालकर उसके रक्त को अपने वस्त्रों से पोंछने लगे।

देवदत्त : और तू खड़ा देखता रहा ?

पंथक : नहीं, कुमार ! मैंने उनसे निवेदन किया कि यह हंस कुमार देवदत्त के बाण से गिराया गया है, यह उनका है। उन्होंने इसे लाने की आज्ञा मुझे दी है।

देवदत्त : फिर तू क्यों नहीं लाया ?

पंथक : कैसे लाता कुमार ? मैंने हंस पाने के लिए अनुनय की, विनय की, प्रार्थना की, किन्तु उन्होंने हंस देना स्वीकार नहीं किया।

देवदत्त : मूर्ख है तू। तूने यह क्यों नहीं कहा कि जब यह हंस कुमार देवदत्त के बाण से बेधा गया है तो उस पर आपका क्या अधिकार है ?

पंथक : सेवक होकर मैं यह कैसे कह सकता था ? वे राजपुत्र हैं।

देवदत्त : (**व्यंग्य से**) राजपुत्र ! वाह रे राजपुत्र ! जो हंस मेरे बाण से गिराया गया उस पर राजपुत्र क्या, राजा का भी अधिकार नहीं हो सकता। (**अधिक व्यंग्य से**) अन्यायी राजपुत्र ! राजपुत्र होकर जब तुम अनधिकार चेष्टा करते हो तो क्या स्वार्थ का यह विष प्रजा में भी नहीं फैल जाएगा ? प्रजाजन एक दूसरे के रक्त के प्यासे नहीं बन जाएँगे ?

[राजकीय वेश-भूषा में कुमार सिद्धार्थ का प्रवेश। उनके हाथों में राजहंस है।]

सिद्धार्थ : (**आते ही**) किन्तु तुम तो अभी से इस हंस के रक्त के प्यासे बन गए हो, देवदत्त !

देवदत्त : (**कुमार सिद्धार्थ को देखकर**) अच्छा ? कुमार सिद्धार्थ हैं ? क्षमा करें ! अरे,

आप कहाँ थे ? ओ हो ! आपको मेरा हंस उठाने का कष्ट करना पड़ा ? और आप स्वयं उसे देने यहाँ आ गए ? (**पंथक से**) अरे, पंथक ! देखता क्या है ? सुकुमार सिद्धार्थ को इस भारी हंस उठाने में कष्ट हो रहा होगा। तू उसे अपने हाथों में ले ले। तू सामान्य शिष्टाचार भी नहीं जानता ? मूर्ख कहीं का !

पंथक : मैं अभी लेता हूँ, कुमार ! (**आगे बढ़ता है।**)

सिद्धार्थ : पंथक ! आगे मत बढ़ो।

देवदत्त : (**पंथक से**) मूर्ख ! आगे मत बढ़। कहाँ राजपुत्र और कहाँ एक सामान्य सेवक ! तू उनका स्पर्श करने योग्य भी नहीं है। मैं कुमार सिद्धार्थ की सहायता करूँगा। (**आगे बढ़ता है।**)

सिद्धार्थ : नहीं, देवदत्त ! तुम्हें भी कष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। यह हंस मेरी गोद में ही रहेगा।

देवदत्त : (**कृत्रिम प्रशंसा से**) साधु ! पशु-पक्षियों से भी कुमार सिद्धार्थ को प्रेम है। किन्तु कुमार ! इसके रक्त से आपके वस्त्र भीग जाएँगे।

सिद्धार्थ : यह रक्त तुम्हारे द्वारा ही बहाया गया है। अपने पैने बाण से तुमने इसके पंख बेध दिए। मैंने इसके पंखों से कठिनाई के साथ बाण निकाला।

देवदत्त : आपने क्यों कष्ट किया ? बाण मेरा था, मैं निकाल लेता। किन्तु बाण निकालने से लाभ क्या हुआ ? अब इसके प्राण तो बचेंगे नहीं। अन्त में तो इसे मेरे उदर में ही जाना है।

सिद्धार्थ : तुम्हारे उदर में ?

देवदत्त : (**लापरवाही से**) हाँ, मेरे उदर में। बहुत दिनों से मुझे भोजन में हंस के कोमल मांस का स्वाद नहीं मिला। आज संयोग से मिल गया। यदि आपकी इच्छा हो तो आपकी सेवा में भी इसका कुछ भाग पहुँचा दूँगा।

सिद्धार्थ : देवदत्त ! स्थिर चित्त से बात करो। यह हंस उदर में नहीं जाएगा, यह फिर आकाश में विहार करेगा। हंस को उसी प्रकार जीने का अधिकार है जिस प्रकार तुम्हें है।

देवदत्त : तो मुझे भी आखेट पर अधिकार है और यह अधिकार मैं अपने बाणों की नोक पर निश्चित करता हूँ। लक्ष्य-बेध पर मेरा अधिकार है, धनुर्वेद पर मेरा अधिकार है।

सिद्धार्थ : किन्तु धनुर्वेद के अधिकार से तुम किसी निरीह प्राणी का रक्त नहीं बहा सकते, लक्ष्य-बेध से किसी असहाय पक्षी को रुधिर से नहीं नहला सकते।

देवदत्त : यदि उसके रुधिर से ही मेरे स्वाद की तृप्ति होती है तो किसी को क्या आपत्ति हो सकती है ?

सिद्धार्थ : हर किसी को क्या आपत्ति हो सकती है। संसार में तुम इतने निरंकुश नहीं हो सकते देवदत्त ! तुम राजकुमार हो। तुम्हें तो अपने आश्रितों की रक्षा करनी चाहिए। और फिर क्या रक्त भी स्वाद की वस्तु है ? आग से भी क्या कभी प्यास बुझी है ? लाल बादलों से भी क्या कभी वर्षा हुई है ? आँधी से भी क्या कभी

फूल खिले हैं ? विश्वम्भरा प्रकृति के शीतल जल में जो स्वाद है क्या वह किसी के उष्ण रक्त में है ? रक्त का स्वाद तो हिंस्र पशुओं को ही अच्छा लग सकता है, करुणाशील मानव को नहीं। मानव को तो रक्षक बनना चाहिए, भक्षक नहीं।

देवदत्त : भक्षक ? **(अट्टहास करता है)** भक्षक ? भक्षक तो सारा संसार है, सिद्धार्थ ? तुम रक्षक बनकर किस-किस की रक्षा करोगे ? जब दादुर पतिंगों का भक्षण करेगा तो क्या तुम दादुर को रोक सकोगे ? जब सर्प उसी दादुर को निगलेगा तो क्या तुम सर्प को उपदेश दोगे कि वह दादुर की रक्षा रक्षा करे ? और जब मयूर उस सर्प का भक्षण करेगा तो तुम उस सर्प को बचाने के लिए मयूर से प्रार्थना करोगे ? और हाँ, जब एक व्याध उस मयूर पर बाण छोड़ेगा तब क्या तुम उस व्याध का बाण छीन लोगे ? दादुर, सर्प, मयूर और व्याध में तुम किन-किन को रोकोगे ? और व्याध तो मयूर का मांस खाकर ही जीवन धारण करता है। उसे जीवन धारण करने का वैसा ही अधिकार है जैसा आपको या मुझे है। मेरा भी आखेट पर वैसा ही अधिकार है।

सिद्धार्थ : मुझे तुम्हारे तर्क पर दया आती है, देवदत्त ! दादुर, सर्प और मयूर जिस जीव-कोटि के हैं क्या तुम भी उसी जीव-कोटि के हो ? और व्याध की भाँति तुम भी ज्ञानहीन हो ? तुमने तो ज्ञान के लिए परिश्रम किया है, तुम अपने को सभ्य कहते हो ?

देवदत्त : देखो, सिद्धार्थ ! मैं भोजन के विषय में बिलकुल असभ्य हूँ। जो चाहूँगा, खाऊँगा। मैं किसी अन्य की भूख मिटाने के लिए नहीं, अपनी भूख मिटाने के लिए खाता हूँ। चाहता था कि इस स्वादिष्ट हंस का कुछ भाग मैं तुम्हें भी देता किन्तु अब तुम्हें इसका कुछ भी भाग नहीं दूँगा।

सिद्धार्थ : मैं इसके कुछ भाग का नहीं, पूरे हंस का अधिकारी हूँ और वह भी जीवित हंस का। स्वाद की लोलुपता केवल तुम्हीं में है, देवदत्त ! मुझमें नहीं। फिर यह पक्षी स्वाद की वस्तु भी नहीं है, शोभा की वस्तु है, दया की वस्तु है, करुणा की वस्तु है। जिस भाँति प्रकृति ने तुम्हारा निर्माण किया है उसी प्रकार इस पक्षी का भी निर्माण किया है। और तुम्हें प्रकृति की इस निरीह रचना को नष्ट करने का अधिकार नहीं है।

देवदत्त : नष्ट करने का अधिकार हो या न हो। मेरे परिश्रम का फल मुझे मिलना चाहिए। परिश्रम के फल को कोई नहीं रोक सकता।

सिद्धार्थ : तुम किसी किसान का खेत उजाड़ने में परिश्रम करो और सारा अन्न लूटकर कहो कि यह मेरे परिश्रम का फल है, मुझे मिलना चाहिए तो क्या तुम उसके अधिकारी हो ? तुमने इस बेचारे हंस को क्षत-विक्षत कर दिया और अब इसके मांस पर अधिकार चाहते हो ! क्या यह अधिकार तुम ले सकते हो ?

देवदत्त : मैं अपने अधिकार की रक्षा के लिए गुरुदेव का निर्णय चाहूँगा।

(पुकारकर) गुरुदेव ! गुरुदेव ! !

[राजगुरु का प्रवेश]

सिद्धार्थ : (सिर झुकाकर) मैं गुरुदेव को प्रणाम करता हूँ।

राजगुरु : (हाथ उठाकर) स्वस्ति !

देवदत्त : (तीव्रता से) पहले आप निर्णय दीजिए, तब प्रणाम करूँगा। देखिए, गुरुदेव ! आप मेरे लक्ष्य-बेध की प्रशंसा कीजिए। कुमार सिद्धार्थ तो इस हंस का लक्ष्य नहीं ले सके किंतु महाकाल के त्रिशूल की भाँति अपना पैना बाण संधान कर तीव्र गति से उड़ते हुए इस हंस के पंखों को बेध दिया। आप जानते हैं, मैं आपसे कहकर इस हंस का लक्ष्य लेने के लिए गया था। यह नीचे गिरा। अब इस पक्षी पर मेरा अधिकार है या नहीं ? कुमार सिद्धार्थ इसे देना स्वीकार नहीं करते। यह उनकी अनधिकार चेष्टा है। आप इसका निर्णय करते हुए इस हंस पर मेरा अधिकार घोषित कीजिए।

सिद्धार्थ : गुरुदेव ! जब तक यह हंस आकाश में उड़ रहा था, इस पर हममें से किसी का अधिकार नहीं था किंतु जब यह भूमि पर आया तो इस पर अधिकार भूमिपाल का है और भूमिपाल का पुत्र होने के नाते इस पर मेरा अधिकार है।

देवदत्त : किन्तु इस हंस को भूमि पर लाने का श्रेय मुझे है, मेरे बाण को है।

सिद्धार्थ : किस रूप में ? इसे बाण से आहत करके ? और इस भूमि पर जो भी आहत होता है, उसकी रक्षा करने का अधिकार मुझे है।

देवदत्त : किंतु यह आवश्यक नहीं है कि खाद्य-पदार्थों की रक्षा की जाए। यदि खाद्य-पदार्थों की रक्षा की जाएगी तो मनुष्य भूखा मर जाएगा।

सिद्धार्थ : किंतु यह हंस खाद्य-पदार्थ नहीं है, देवदत्त ! इसे खाद्य-पदार्थ कहना मनुष्य का धर्म नहीं है। यह दानवों का धर्म है।

देवदत्त : गुरुदेव ! मुझ जैसे पुरुष-सिंह का यह अपमान है।

राजगुरु : देवदत्त ! क्या तुम निरीह प्राणियों का मांस भक्षण करने में अपना गौरव समझते हो ? मैंने तुमसे पहले भी कहा था कि जो प्राणी निरीह और निर्बल हैं उनके प्राण लेना मनुष्य की सबसे बड़ी क्रूरता है। अहिंसा मानव की बहुत बड़ी शक्ति है किंतु यदि तुम आखेट करना ही चाहते हो और अपने को पुरुष-सिंह समझते हो तो घने जंगलों में जाकर सिंह और व्याघ्र का लक्ष्य लो और यदि तुम मांस-भक्षण में अपने स्वाद की तृप्ति मानते हो तो उनके मांस का भक्षण करो।

देवदत्त : मैं तो मनुष्य के मांस का भक्षण करने का साहस रखता हूँ। मांस तो मांस है।

सिद्धार्थ : तुम मनुष्य के मांस का भक्षण भले ही करो किन्तु इस निरीह हंस के मांस का भक्षण नहीं कर सकोगे। गुरुदेव ! भक्षक से रक्षक का अधिकार अधिक है।

राजगुरु : हाँ, रक्षक का अधिकार नीति के आधार पर सर्वोपरि कहा जाता है। देवदत्त ! तुम बलवान हो तो क्या तुम किसी निर्बल के प्राण लेने में अपनी शक्ति का अपमान नहीं समझते ? निर्बल के प्राण लेना पशु-जगत् में भले ही देखा जाता हो किंतु मानव-जगत् में इसे मान्यता नहीं दी जा सकती। तुम किसी घोर वन में

जाकर किसी हिंस्र पशु का लक्ष्य लेने का कौशल दिखला सकते हो, निरीह प्राणी को मारकर अपने बल-विक्रम की घोषणा नहीं कर सकते। **(कुमार सिद्धार्थ से)** कुमार सिद्धार्थ ! इस हंस की रक्षा के अधिकारी तुम हो।

सिद्धार्थ : **(सिर झुकाकर)** धन्य गुरुदेव ! जैसी आज्ञा !

देवदत्त : यह अन्याय है, गुरुदेव ! अन्य व्यक्तियों की भाँति आपने भी पक्षपात किया। अपने लक्ष्य का पक्षी भी आपके कारण मैं नहीं प्राप्त कर सका। राजपुत्र के प्रति गुरुदेव की चाटुकारिता का एक और प्रमाण मिला। **(सिद्धार्थ से)** और कुमार सिद्धार्थ ! हंस पर तो तुमने अधिकार पा ही लिया। मैंने जिस बाण से हंस का लक्ष्य लिया था, उससे भी अपना तरकश सजा लो। वह भी तुम्हें दान करता हूँ।

[गर्व से चला जाता है।]

राजगुरु : अशिष्ट देवदत्त !

सिद्धार्थ : जाने दीजिए, गुरुदेव ! अशिष्ट हिंसकों पर भी दया कर दीजिए।

[दोनों देवदत्त के जाने की दिशा में देखते हैं।]

[परदा गिरता है।]

दूसरा अंक

स्थान : राजमहल का बाहरी कक्ष
समय : प्रभात का प्रथम प्रहर

[यह बाहरी कक्ष अनेक पाट वस्त्रों से सुसज्जित है। यथास्थान अनेक कलाकृतियाँ सुशोभित हैं। कक्ष के मध्य में बड़ा आसन। उसके नीचे अन्य सामान्य आसन। सामने खुली हुई वीथी।

देवदत्त आँखों पर पट्टी बाँधकर धनुष-बाण चढ़ाए हुए कक्ष के एक कोने से दूसरे कोने तक जाता है, कभी बीच में ही रुक जाता है जैसे कोई शब्द सुनना चाहता है।]

देवदत्त : **(जोर से)** शब्द हो···शब्द हो···शब्द हो··· **(दूसरे कोने पर जाकर)** शब्द हो ···शब्द हो···मैं शब्द-बेधी बाण छोड़ूँगा। शब्द हो !

[नेपथ्य में 'खट् खट्' शब्द होता है और देवदत्त नेपथ्य में बाण छोड़ता है, फिर आँख पर से पट्टी खोलकर पुकारता है।]

देवदत्त : पंथक ! लक्ष्य-बेध हुआ ? लक्ष्य-बेध हुआ ?

[नेपथ्य से पंथक का स्वर : **हो गया कुमार ! हो गया ।**]

देवदत्त : लक्ष्य-बेध सफल हो ! **(हँसकर)** देवदत्त का लक्ष्य-बेध है न ?

[पंथक का प्रवेश । उसके हाथ में दीपाधार है ।]

देवदत्त : (आश्चर्य से) यह क्या ?

पंथक : आपके आदेश पर मैंने इस दीपाधार पर शब्द किया । उसी समय आपका बाण पहुँचा और उसने दीपाधार पर रखे हुए दीपक को बुझा दिया ।

देवदत्त : दीपाधार के दीपक को बुझा दिया ! इस वंश का दीपक भी यदि मेरा बाण बुझा सकता !

पंथक : (चौंककर) कुमार !

देवदत्त : (हँसकर) क्यों ? चौंक उठा ? अरे, पंथक ! तू मेरा सहचर है। मैं अपने मन की प्रत्येक बात तुझसे कह सकता हूँ। मैं तुझे अपने मन का एक भाग मानता हूँ । मुझसे अधिक तू—तू (**'तू' पर जोर देकर**) मेरे कार्यों की रूपरेखा जानता है ।

पंथक : यह तो कुमार की मुझ पर कृपा है ।

देवदत्त : तो देखा ? मेरा लक्ष्य-बेध कितना सच्चा है। दीपाधार का दीपक बुझ गया। यदि कुमार सिद्धार्थ शब्द करते तो मेरा बाण उनके कंठ में अवश्य ही प्रवेश करता ।

पंथक : इसमें कोई सन्देह नहीं, कुमार !

देवदत्त : मैंने केवल एक मास के अभ्यास में ही शब्द-बेध का यह कौशल प्राप्त किया है ।

पंथक : आपमें शक्ति के साथ बड़ी साधना है, कुमार ! आपका लक्ष्य-बेध तो अचूक होगा ही, किन्तु शब्द-बेध का प्रयोग तो वन में ही अधिक सधता है, महल के इस बाहरी कक्ष में नहीं ।

देवदत्त : तू धीरे-धीरे सब समझ जाएगा । बात यह है कि इस बाहरी कक्ष में कुमार सिद्धार्थ प्रायः प्रतिदिन विचार करने के लिए आकर बैठते हैं । कभी-कभी वे अपने आप कुछ बोलने लगते हैं । ऐसे अवसर पर उनके बोलने पर ही मेरा लक्ष्य-बेध हो जाता । और तब राजनीति के चक्र की दिशा ही बदल जाती ।

पंथक : किन्तु कुमार ! यदि इस दुर्घटना से बात बढ़ जाती तो ?

देवदत्त : तू मूर्ख है । बात कैसे बढ़ जाती ? मैं उस दिन, दिन-भर रुदन करता । पृथ्वी पर पछाड़ खा कर गिरता । अपना सिर पीटता, अपना धनुष-बाण तोड़ कर फेंक देता और रो-रोकर कहता कि यह आकस्मिक घटना मुझसे ही होनी थी ? यह मात्र संयोग था । प्रचारित करता कि आखेट पर जाने के पूर्व मैंने शब्द-बेध का प्रयोग करके देखना चाहा । क्या जानता था कि मेरे प्यारे सिद्धार्थ उसी स्थान पर आ गए हैं जहाँ मेरे अभागे बाण को पहुँचना था । कौन जानता था कि कुमार सिद्धार्थ वहाँ आ जाएँगे । संयोग से वे आ गए और मेरे बाण से आहत हो गए ।

पंथक : किन्तु वे महाराज के उत्तराधिकारी हैं। यदि कुमार सिद्धार्थ न रहेंगे तो राज्य का उत्तराधिकार कौन सँभालेगा ?

देवदत्त : उत्तराधिकार कौन सँभालेगा ? अरे, मैं तो हूँ। और मैं सिद्धार्थ से अच्छा शासन कर सकता हूँ। एक हंस की सेवा-सुश्रूषा करना और प्रजा का पालन एक-सा नहीं है। अरे, हंस को एक घूँट दूध पिला दिया, प्रजा एक घूँट से तृप्त हो जाएगी ? उसे सारे भांडागार का अन्न चाहिए और लक्ष्य-बेध में मैं इतना कुशल हो जाऊँगा कि अपने बाणों से अन्न नष्ट करने वाले पक्षियों को एक क्षण में मार डालूँगा। यदि किसान चाहेंगे तो बाणों से ही उनके खेत काट दूँगा। उन्हें परिश्रम भी न करना पड़ेगा।

पंथक : यह तो सत्य है, कुमार ! किन्तु राजगुरु आपके पक्ष में न होंगे।

देवदत्त : (**लापरवाही से**) न हों। इसकी चिन्ता कौन करता है ! राजगुरु तो चाटुकार हैं। जिसकी सत्ता होगी, वे उसी के पीछे चलेंगे। जैसे सूर्य के समीप बादल होते हैं। बादल लाल नहीं होते, सूर्य की किरणों से ही रंग पाते हैं। सूर्य के अस्त होने पर पता ही नहीं चलता कि वे लाल बादल कहाँ चले गए।

पंथक : आप कितना सोचते हैं, कुमार ! आप धन्य हैं ! मैं तो प्रतीक्षा करूँगा कि आपकी योजना कब सफल होती है किन्तु ज्योतिषियों ने कुमार सिद्धार्थ के लिए दीर्घायु योग कहा है।

देवदत्त : दीर्घायु योग ? अरे, ज्योतिष की बात क्या कहते हो ? मैं ज्योतिष पर विश्वास नहीं करता। यही सोचो कि नक्षत्र हैं ऊपर और मनुष्य है नीचे। जब एक राज्य का प्रभाव दूसरे राज्य पर नहीं पड़ता तो आकाश लोक का प्रभाव इस पृथ्वी लोक पर कैसे पड़ेगा ?

पंथक : आप सत्य कहते हैं, कुमार !

देवदत्त : यह तो मेरे समान शक्तिशाली कुमार ही पृथ्वी पर प्रभाव डाल सकता है। दीर्घजीवी सिद्धार्थ, देखूँगा कि उसे दीर्घ जीवन कैसे प्राप्त होता है। मैं कुणीक अजातशत्रु से मैत्री कर उसे मारने के लिए घातकों को भेज दूँगा। कुणीक मुझ पर विश्वास करता है, मेरी बात कभी नहीं टालेगा। या फिर नीलगिरि जैसा मदमस्त हाथी उस पर छोड़ दूँगा। इससे भी बचा तो गृद्धकूट पर्वत से उसके सिर पर एक बड़ी चट्टान फिकवा दूँगा। इन सब कांडों से सिद्धार्थ कैसे बच सकता है ! सिद्धार्थ अपने को भले ही शक्तिशाली समझे किन्तु मेरे उपाय उसे इसी तरह कुंठित कर देंगे जिस तरह मंत्र-बल से भयानक से भयानक सर्प का कीलन हो जाता है। उसके प्रभाव से···

[सहसा सारथी छंदक का प्रवेश]

छंदक : हाँ, उनके प्रभाव से ही संसार का कल्याण होगा। सिद्धार्थ नर-रत्न हैं, मानव-रत्न हैं किन्तु कुमार देवदत्त ! क्या आप इस समय भी मृगया के लिए जा रहे हैं ?

धनुष-बाण आपके हाथ में है।

देवदत्त : (**एकबारगी अप्रतिभ होकर**) धनुष-बाण ? हाँ, हाँ, धनुष-बाण मेरे हाथ में है। हाँ, मेरे ही हाथ में है। धनुष-बाण···

छंदक : आप ठीक तरह से नहीं बोले रहे हैं, कुमार देवदत्त !

देवदत्त : (**सँभल कर**) नहीं, नहीं, ठीक ही तो बोल रहा हूँ। बात यह है कि मैं अपने प्यारे कुमार सिद्धार्थ के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता। मैं उन्हें ही यहाँ खोज रहा था। धनुर्वेद में वे इतने कुशल हैं कि शब्द-बेध की कला मैं उन्हीं से सीखना चाहता हूँ। वे इस कक्ष में बैठा करते हैं। सोचा था—सोचा था कि मैं उनसे पूछता कि यदि शब्द की तरंग किसी चोट की गयी वस्तु से चार क्षणों में निकलती है तो मेरे बाणों के मुख से उनकी दूरी कितने हस्त होनी चाहिए।

छंदक : यह तो कुमार सिद्धार्थ ही बतला सकेंगे किन्तु आज स्वयं महाराज ही इस कक्ष में आने वाले हैं इसलिए कुमार सिद्धार्थ आज यहाँ नहीं आए।

देवदत्त : महाराज स्वयं यहाँ आने वाले हैं ? तब मैं उनसे क्या पूछ सकूँगा।

छंदक : नहीं, वे आपको अभ्यास करते देख कर बहुत प्रसन्न होंगे। आप उनके सामने शब्द-बेध का कौशल दिखलाइए।

देवदत्त : कुमार सिद्धार्थ से पूछे बिना तो मेरा अभ्यास अधूरा ही रहेगा। फिर कभी उनसे पूछ लूँगा। अभी तो चलता हूँ। चलो पंथक !

पंथक : जैसी आज्ञा।

[दोनों का शीघ्रता से प्रस्थान]

छंदक : (**सोचते हुए**) कुमार देवदत्त के सारे क्रिया-कलाप में एक रहस्य छिपा रहता है जो सर्प की भाँति वक्र गति से चलता है। इसका दंशन कब किसको सहन करना पड़े यह विधाता ही जानता है। (**सोचता है**) मुझे महाराज के समक्ष कुछ आवश्यक निवेदन करना था। बाहर बैठ कर उनकी प्रतीक्षा करूँ।

[सोचते हुए प्रस्थान। थोड़ी देर तक शांति। फिर चिन्तित मुद्रा में सम्राट् शुद्धोदन का प्रवेश। उनके पीछे राजगुरु भी हैं।]

राजगुरु : महाराज चिन्तामग्न हैं ?

सम्राट् : हाँ, राजगुरु ! ज्योतिषियों ने कुमार सिद्धार्थ के सम्बन्ध में विचित्र भविष्य-वाणियाँ की हैं। एक ओर सम्राट् होने की, दूसरी ओर संन्यासी होने की।

राजगुरु : मैं जानता हूँ, राजन् !

सम्राट् : फिर उस सम्बन्ध में आपने क्या विचार किया ?

राजगुरु : राजन् ! विधि का विधान वर्षा का बादल है। जहाँ उसे बरसना चाहिए वहाँ नहीं बरसता और जहाँ उसे नहीं बरसना चाहिए वहाँ वह बरस जाता है। फिर भी इस विधान से बचने का उपाय मनुष्य तो करता ही है।

सम्राट् : तो वह उपाय क्या है ?

राजगुरु : उपाय तो मैं करता ही हूँ। क्षत्रिय कुमारों के लिए जितनी शस्त्र और शास्त्र

की शिक्षा देनी चाहिए उतनी मैंने कुमार सिद्धार्थ को दी और वे आज समस्त क्षत्रिय कुमारों में श्रेष्ठ हैं। राजकुमारी यशोधरा के स्वयंवर में उनकी श्रेष्ठता तो सिद्ध हो ही चुकी है। किन्तु शस्त्र और शास्त्र की अपेक्षा उनकी प्रवृत्ति संसार के सुख-दु:ख की ओर अधिक हो रही है।

सम्राट् : हाँ, मैं भी इसे देख रहा हूँ।

राजगुरु : कल प्रात: मैं कुमार सिद्धार्थ और कुमार देवदत्त को पास के वन में ले गया था। कुमार सिद्धार्थ तो प्रकृति की शोभा देखते-देखते मुझसे दूर चले गए किन्तु कुमार देवदत्त मेरे साथ ही रहे। ज्ञात हुआ कि कुमार सिद्धार्थ ने अपना धनुष-बाण अपने सेवक को दे दिया और स्वयं किसी कुंज में बैठ कर कुछ सोचने लगे, किन्तु देवदत्त तो हिंसा को अपनी क्रीड़ा समझते हैं। उन्होंने एक उड़ते हुए हंस पर लक्ष्य लिया और उसे अपने बाण से आहत कर भूमि पर गिरा दिया। संयोग से कुमार सिद्धार्थ वहीं किसी लता के समीप बैठे थे। उन्होंने वह हंस उठा कर अपनी गोद में ले लिया। उसके पंखों से बाण निकाल कर उसका रक्त अपने वस्त्रों से पोंछा और देवदत्त को हंस देना अस्वीकार किया। उन्होंने हंस का उपचार कर उसे आकाश में उड़ा दिया।

सम्राट् : हाँ, देवदत्त ने मुझसे निवेदन किया था कि सिद्धार्थ ने उसके साथ अन्याय किया।

राजगुरु : उसकी प्रवृत्ति तो हिंसामय है ही, राजन्! वह हंस को पाकशाला के लिए ले जाना चाहता था। किन्तु कुमार सिद्धार्थ ने इसका विरोध किया। उन्होंने कहा कि भक्षक का अधिकार अधिक है। और मैंने उनके कथन को मान्यता दी।

सम्राट् : आपने न्याय किया किन्तु अब सोचना यह है कि आपके इस न्याय से क्या कुमार सिद्धार्थ की इस अहिंसा को प्रोत्साहन नहीं मिलेगा? दैवज्ञों ने भविष्य-वाणी की थी कि यदि आपका कुमार राज्य ग्रहण करेगा तो वह चक्रवर्ती सम्राट् होगा किन्तु यदि संन्यासी हो गया तो शिक्षा-वृत्ति ग्रहण कर स्थान-स्थान पर भ्रमण करेगा और संसार को उपदेश देने में ही अपने जन्म को सार्थक समझेगा। हमारे वंश में संन्यासियों की परम्परा नहीं है। मैं चाहता हूँ कि वह एक चक्रवर्ती सम्राट् हो; किन्तु मैं तो उसके स्वभाव में संन्यासियों के लक्षण ही अधिक देख रहा हूँ। इतनी दया और इतनी करुणा किसी राजपुत्र में कहाँ तक अभिनन्दनीय कही जा सकती है?

राजगुरु : दया और करुणा तो समर्थ सम्राट् में भी होनी चाहिए, राजन्! किन्तु संन्यासी बनने की सीमा तक अवश्य नहीं पहुँचनी चाहिए।

सम्राट् : कुमार सिद्धार्थ में दया और करुणा तो इतनी है कि वे अपने विरोधियों को भी प्यार करते हैं। देवदत्त मैं जानता हूँ—कुमार सिद्धार्थ से द्वेष रखता है किन्तु देवदत्त के मन में जितनी ईर्ष्या है, कुमार सिद्धार्थ के मन में उसके प्रति उतना ही स्नेह है। मैंने अनेक बार उसे कपिलवस्तु से बाहर भेजने की बात सोची किन्तु कुमार सिद्धार्थ न जाने क्यों उसे कपिलवस्तु में ही रखना चाहते हैं।

राजगुरु : राजन् ! कुमार सिद्धार्थ अपने विरोधियों को प्रेम से जीतना चाहते हैं। शारीरिक विजय क्षणिक होती है किन्तु मानसिक विजय स्थायी सिद्ध होती है।

सम्राट् : किन्तु सम्राट् के लिए शारीरिक विजय भी आवश्यक होती है। यथार्थ जीवन के प्रति जैसी उदासीनता कुमार सिद्धार्थ के मन में है, उसी से मैं चिन्तित हूँ।

[द्वारपाल का प्रवेश]

द्वारपाल : सम्राट् की जय ! सारथी छंदक प्रवेश चाहते हैं।

सम्राट् : कुमार के सारथी छंदक ? उन्हें प्रवेश दो।

द्वारपाल : जैसी आज्ञा। सम्राट् की जय ! (**प्रस्थान**)

सम्राट् : सारथी छंदक कुमार के साथ सदैव ही रहता है। उससे उनके मन की स्थिति और भी स्पष्ट होगी। सम्भव है, आपके सामने वह अपनी बात स्पष्ट न कह सके, इसलिए अब आप विश्राम करें।

राजगुरु : जैसी सम्राट् की इच्छा।

[प्रस्थान। सम्राट् कुछ क्षण सोचते हुए टहलते हैं। छंदक का प्रवेश]

छंदक : सम्राट् की जय !

सम्राट् : क्या निवेदन करना चाहते हो ?

छंदक : सम्राट् क्षमा करें। मेरे और कुमार सिद्धार्थ के बीच जो बातें हुई हैं, वे मैं सम्राट् के समक्ष निवेदन करना चाहता हूँ।

सम्राट् : निवेदन करो।

छंदक : सम्राट् ! कुमार सिद्धार्थ ने आपसे आज्ञा लेकर नगर देखने की इच्छा की थी। आपकी आज्ञा से कुमार का स्वागत करने के लिए नगर पूर्ण रूप से सजाया गया था। स्थान-स्थान पर सुगन्धित पुष्पों के बन्दनवार लगाए गए थे। राजमार्ग ही नहीं, नगर की वीथियाँ भी सुरभित द्रव्य से सींची गयी थीं।

सम्राट् : हाँ, मैं यही चाहता था कि कुमार अपने नगर का सौन्दर्य देखें।

छंदक : सम्राट् ! मैं कुमार को रथ पर आसीन करा कर नगर के राजमार्ग से जा रहा था। कुमार बहुत प्रसन्न थे। कुछ देर बाद उन्होंने आज्ञा दी···

सम्राट् : क्या आज्ञा दी ?

छंदक : उन्होंने कहा कि राजमार्ग तो प्रयत्नपूर्वक सजाया गया है। मैं नगर की उन वीथियों को देखना चाहता हूँ जहाँ नगर-निवासी स्वाभाविक रूप से अपना कार्य करते हैं। उनके निवास-स्थान कैसे हैं, उनकी वेश-भूषा कैसी है, वे किस प्रकार के वस्त्र पहनते हैं।

सम्राट् : (**सोचते हुए**) फिर क्या हुआ ?

छंदक : उन्होंने कहा कि राजा का धर्म यही है कि वह जनता की वास्तविक स्थिति से परिचित हो। रात-दिन परिश्रम करने वाले जनों की स्थिति से वह परिचित हो। यदि भविष्य में मुझे प्रजापालन का भार सँभालना पड़ा तो जिस प्रजा पर हमारा

शासन है, उस प्रजा का सामान्य जीवन भी तो मैं देख लूँ।

सम्राट् : साधु !

छंदक : मैं राजमार्ग छोड़ कर उन्हें नगर की वीथियाँ दिखलाने ले गया। जब उत्तर की दिशा में हमारा रथ जा रहा था तभी···

सम्राट् : तभी क्या हुआ ?

छंदक : तभी एक वृद्ध मनुष्य उस मार्ग पर आ निकला।

सम्राट् : (**चौंक कर**) वृद्ध मनुष्य ?

छंदक : हाँ, सम्राट् ! एक वृद्ध मनुष्य। उसके अंग-प्रत्यंग शिथिल थे, आँखें गड्ढों में धँसी हुई थीं, मुख विकृत हो गया था, वह आते ही मार्ग के बीच में गिर पड़ा। कराह कर बोला—हाय, मैं गिरा। मुझे उठाओ।

सम्राट् : (**तीव्रता से**) मेरा तो आदेश था कि कुमार के समक्ष कोई भी दुःख या निराशा का दृश्य उपस्थित न होने पाए ?

छंदक : किन्तु कुमार के दर्शनों की अभिलाषा किसे न होगी, सम्राट् ? वृद्ध के मन में भी अपने भावी सम्राट् के दर्शनों की इच्छा जाग उठी होगी। वह अपने घर से निकल आया और अपनी विह्वलता में मार्ग में ही गिर पड़ा। कुमार शीघ्र ही रथ से उतर पड़े और उन्होंने उस वृद्ध को उठा कर सान्त्वना दी। रथ पर पुनः बैठ कर उन्होंने मुझसे पूछा—छंदक ! इस मनुष्य की यह दशा किस कारण हो गयी ? मैंने उत्तर दिया—प्रभो ! यह मनुष्य अब वृद्ध हो गया है। पहले यह हमारे ही समान सुन्दर और बलवान था। अब इसके शरीर में रक्त भी नहीं रह गया। वह अब निर्बल हो गया है। कुमार ने पूछा—क्या अन्य व्यक्ति भी जो आज इतने सुन्दर दीख रहे हैं, इसी वृद्ध के समान हो जाएँगे ? और क्या इसी प्रकार की वृद्धावस्था हम पर भी आ सकती है ? मैंने विनीत होकर उत्तर दिया—कुमार ! यह तो काल की गति है। हम सब भी इसी प्रकार वृद्ध हो जाएँगे। यह सुन कर कुमार उदास हो गए।

सम्राट् : यह दुर्भाग्य की बात थी कि कुमार ने यह दृश्य देखा।

छंदक : सम्राट् ! मैंने रथ लौटा दिया किन्तु लौटते ही देखा कि मार्ग से हट कर एक रोगी पड़ा है। उसका शरीर पीला पड़ गया है, वह कराह रहा है। उसे देख कर कुमार के मन में भी पीड़ा होने लगी। उन्होंने मुझसे पूछा—छंदक ! इसे क्या हो गया है, यह क्यों कराह रहा है ? मैंने उत्तर दिया—कुमार ! इसे रोगों ने घेर लिया है। इसीलिए यह कराह रहा है। शरीर में विकार होने से ही रोग होते हैं। कुमार ने पूछा—क्या हमें भी रोग हो सकता है ? मैंने उत्तर दिया—कुमार ! शरीर का निर्माण जिन तत्त्वों से होता है, यदि उनमें कुछ भी व्यतिक्रम हुआ तो हम सब रोग-ग्रसित होंगे। शरीर के साथ व्याधि तो लगी ही रहती है। कुमार इससे और भी उदास हो गए।

सम्राट् : तुम्हें कुमार को शीघ्र ही लौटा लाना चाहिए था, छंदक !

छंदक : सम्राट् ! मैंने शीघ्र ही वीथिका से रथ मोड़ दिया किन्तु सामने ही कुछ लोग किसी व्यक्ति के शरीर को कपड़े में लपेटे हुए कंधे पर उठाए लिए जा रहे थे।

उनके पीछे कुछ स्त्री-पुरुष रोते और छाती पीटते हुए जा रहे थे। कुमार ने पूछा—ये लोग किसे कंधे पर लिए जा रहे हैं ? मैंने उत्तर दिया—कुमार ! यह व्यक्ति मर गया है। ये लोग इसे जलाने के लिए श्मशान लिए जा रहे हैं। कुमार ने दूसरे ही क्षण मुझसे पूछा—छंदक ! क्या मैं भी इसी तरह मर जाऊँगा ? मैंने उत्तर दिया—प्रभो ! जितने शरीरधारी हैं उन सबकी अन्त में यही दशा होगी। कोई भी अमर नहीं है। कुमार ने ठंडी साँस लेकर कहा—तो संसार की सारी शोभा व्यर्थ है। सुख क्षणिक है। यह सुन्दरता नष्ट होने के लिए ही है। इस जीवन में कोई सार नहीं।

सम्राट् : छंदक ! तुम्हें कुमार को ऐसे उत्तर नहीं देने चाहिए थे।

छंदक : राजकुमार से झूठ भी तो नहीं कहा जा सकता, सम्राट् ! मैं जन्म से उनका सहचर हूँ। वे मुझसे कोई बात नहीं छिपाते। फिर मेरा यह साहस कैसे हो सकता था सम्राट् कि मैं उन्हें व्यर्थ ही बात बना कर समझाता ?

सम्राट् : किन्तु इन तीनों दृश्यों ने कुमार के हृदय पर जो आघात किया, उसे कैसे दूर किया जा सकेगा !

छंदक : जैसे ही हम लोग राजपथ के समीप आए, सम्राट् ! हमें एक संन्यासी के दर्शन हुए। उसके सिर के बाल मुँड़े थे, शरीर पर गेरुवा वस्त्र था, हाथ में कमंडल था, वह लोगों से भिक्षा माँग रहा था। कुमार ने मुझसे पूछा—यह कौन है ? मैंने उत्तर दिया—कुमार ! यह साधु है। इसने संसार की सारी माया-ममता छोड़ दी है, इसने वैराग्य ले लिया है। यह मात्र भोजन के लिए भिक्षा माँग रहा है। कुमार ने ठंडी साँस भर कर कहा—छंदक ! इस साधु का जीवन ही ठीक है। जीवन ही ऐसा रोग है जिसकी कोई चिकित्सा नहीं। राज्य, माता-पिता, स्त्री, राजमहल सभी नष्ट होने वाले हैं। यहाँ प्रत्येक मुख में दयनीय शब्द है, प्रत्येक हृदय में शोक है। ससार के कष्टों से मुक्ति पाने के लिए मैं भी ज्ञान प्राप्त करूँगा। तभी सच्ची शांति प्राप्त हो सकती है।

सम्राट् : छंदक ! मैंने जितना भी चाहा कि कुमार संसार के कष्टपूर्ण दृश्यों से दूर रहें उतना ही भाग्य ने उन्हें इन दृश्यों के समीप ला दिया। मुझे इसका हार्दिक पश्चात्ताप है कि मैंने कुमार को नगर-भ्रमण करने की अनुमति ही क्यों दी। किन्तु उत्तराधिकार लेने के पूर्व राजकुमार को अपना नगर भी तो देखना चाहिए। **(सिर पर हाथ रख कर)** भाग्य की बात ! किन्तु कुमार की इस मनोवृत्ति का प्रतिकार करना होगा। छंदक ! बाहरी कक्ष में मैंने राज्य के मंत्रियों को आमंत्रित किया है। वे वहाँ बैठे होंगे। उन्हें यहाँ आने की सूचना दो।

छंदक : जो आज्ञा, सम्राट् ! मुझे क्षमा करें। कुमार के समक्ष मुझे सत्य-कथन करना ही पड़ा। मेरा कोई अपराध नहीं है।

सम्राट् : ठीक है। मंत्रियों को यहाँ शीघ्र ही भेजो।

छंदक : जैसी आज्ञा। सम्राट् की जय ! **(प्रस्थान)**

सम्राट् : **(सोचते हुए टहलते हैं फिर कक्ष में अपनी रानी महामाया के चित्र के**

समीप जाकर उससे कहते हैं) माया ! मेरी रानी ! तुम्हारे कुमार के हृदय में जो परिवर्तन हो रहा है, क्या तुम उसे जानती हो ? तुम तो उसे जन्म देने के सात दिन बाद ही इस संसार से चली गयीं। तुम्हारी बहन महाप्रजाति ने उसका पोषण किया, मैंने उसे बड़ा बनाया। सब तरह की शिक्षा दी। उसका विवाह अत्यन्त सुन्दरी यशोधरा के साथ किया। उसके महल को सभी शृंगारपूर्ण वस्तुओं से सजाया। नृत्य और संगीत के वातावरण में उसे रखा। किन्तु वह इतने वैभवों में भी उदासीन है।···वह वैराग्य में ही सुख मानता है। इस कष्ट से मुझे बचाओ, माया ! इस कष्ट से मुझे मुक्त करो !···मेरी समझ में नहीं आता कि मैं किस उपाय से सिद्धार्थ के अशान्त चित्त को शांत करूँ। माया ! मेरी रानी माया !

[ठंडी साँस लेकर टहलते हैं। द्वारपाल का प्रवेश]

द्वारपाल : सम्राट् की जय ! अमात्यगण द्वार पर हैं।
सम्राट् : उन्हें शीघ्र ही भीतर भेजो।
द्वारपाल : जो आज्ञा। (**सिर झुका कर प्रस्थान**)

[सम्राट् चिन्तित मुद्रा में टहलते हैं। कुछ ही देर में चार अमात्य प्रवेश करते हैं। वे विविध प्रकार की राजसी वेश-भूषा में हैं।]

अमात्यगण : (**मस्तक झुका कर**) सम्राट् की जय !

सम्राट् : आइए, अमात्यगण ! आज मैंने आप सबको एक गहरी समस्या सुलझाने के लिए बुलाया है। मैं बहुत चिन्तित और अशांत हूँ। कृपया कोई उपाय बतलाएँ जिससे मैं चिन्ताओं से मुक्ति पा सकूँ।

प्रथम अमात्य : सम्राट् ! आपके शासन ने प्रजा जनों के हृदय को सब प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त कर दिया है। फिर आपके हृदय में चिन्ता हो, यह कुतूहल की बात है। जिस प्रकार कमल के पत्ते पर पानी की बूँद नहीं फैलती उसी भाँति आपके मन पर भी चिन्ता की कालिमा नहीं फैल सकती। अत: चिन्ता की बात ही क्या हो सकती है।

सम्राट् : नहीं मंत्री, अनिरुद्ध ! जल की बूँद कमल-पत्र पर फैलती नहीं है, सिमिट कर बैठ जाती है, उसी भाँति मेरे मन में चिन्ता भी घनीभूत हो कर बैठ गयी है। वह चिन्ता कुमार सिद्धार्थ के विषय में है।

अश्वजित् : सम्राट् ! कुमार सिद्धार्थ के व्यक्तित्व ने तो कभी चिन्ता को जन्म ही नहीं दिया। उनकी भाँति कोई भी क्षत्रिय कुमार इस संसार में नहीं है। चाहे बल में हो, चाहे बुद्धि में हो, चाहे व्यवहार-कुशलता में हो। वे तो सभी के प्रिय हैं, सभी के हितकारी हैं। मैं तो यह कहता हूँ कि जिस चित्त ने कुमार सिद्धार्थ का स्मरण नहीं किया, वह चित्त चित्त नहीं है। जिस मुख ने उनका गुणगान नहीं किया, वह मुख मुख नहीं है और जिन हाथों ने उनकी वन्दना नहीं की वे हाथ हाथ नहीं हैं।

सम्राट् : मंत्री अश्वजित् ! मैं भी कुमार सिद्धार्थ को ऐसा ही मानता हूँ किन्तु वे संसार

के प्रति इतने उदासीन हैं कि वे राज्य का उत्तराधिकार ग्रहण करेंगे इसमें मुझे बहुत सन्देह है।

मकरन्द : मन्देह नहीं होना चाहिए, सम्राट् ! क्योंकि वे सब प्रकार से समर्थ हैं। वे प्रतिदिन प्रकाशित होने वाले सूर्य के समान हैं। वे ऐसे समुद्र के समान हैं जिसका जल खारा नहीं है। वे ऐसे पूर्ण चन्द्र के समान हैं जो कभी क्षीण नहीं होता। वे अपने व्यवहार से किसी को कष्ट नहीं देना चाहते। उनके हृदय में असीम दया और करुणा है।

सम्राट् : मंत्री मकरन्द ! यही करुणा उन्हें शासन के उपयुक्त नहीं बनाती। राज्य-शासन ऐसा वंश-वृक्ष है जिसमें अपराध के प्रति निर्ममता की गाँठ होनी चाहिए किन्तु उनका जीवन ऐसा वंश-वृक्ष है जिसमें शासन की कोई गाँठ नहीं है। सौ बार घी में भिगोई हुई कपास की रुई की भाँति उनकी चित्तवृत्ति कोमल है।

नंदक : आप सत्य कहते हैं, सम्राट् ! कुमार सिद्धार्थ के दर्शन करने से ही प्रेम उत्पन्न होता है। ऐसा लगता है कि चन्द्र-मंडल को चार हस्त खींच कर छोड़ दिया गया और वही कुमार सिद्धार्थ का शरीर बन गया। पारा-मिश्रित स्वर्ण के समान उनके शरीर की कान्ति है। प्रजा उनके दर्शन करते नहीं थकती। उन्हें भी अपनी प्रजा से प्रेम है।

[सम्राट् कुछ न कह कर टहलते रहते हैं।]

अनिरुद्ध : आप कुछ बोल नहीं रहे हैं, सम्राट् ! राज्य करने के लिए जिस शक्ति की आवश्यकता है, वह कुमार सिद्धार्थ में पूर्ण रूप से है। उनमें नीति-कुशलता तो अपार है। जिस प्रकार महासमुद्र का दूसरा छोर कोई नहीं देख सकता, उसी प्रकार कुमार के नीति-नैपुण्य का दूसरा छोर कहाँ है, यह कोई नहीं जान सकता। हम लोगों ने स्वयं देखा है कि किसी भी प्रतिद्वंद्वी को अप्रसन्न किए बिना उन्होंने अपनी अपूर्व शक्ति से ही सर्वगुणमयी यशोधरा का वरण किया था। उन्होंने पूर्ण चन्द्र की किरणों की भाँति समस्त जगत को स्वच्छ कर दिया है।

सम्राट् : स्वच्छ तो कर दिया है किन्तु उनका मन मलीन क्यों है ? अभी उनके सारथी छंदक ने निवेदन किया कि कल कुमार रथ पर बैठ कर नगर देखने गए थे। आप जानते हैं कि मैंने आज्ञा दी थी कि नगर पूर्ण रूप से सजाया जाए, जिससे कुमार नगर-शोभा से प्रसन्न हों और उनके मन में राज्य-शासन की अभिरुचि उत्पन्न हो।

अश्वजित् : आपका विचार समयानुकूल था, सम्राट् !

सम्राट् : किन्तु नगर-यात्रा से लौटते समय उन्होंने एक वृद्ध, एक रोगी और एक मृतक को भी देखा और उन्होंने उदास होकर सारथी छंदक से पूछा कि क्या हमारी दशा भी ऐसी ही होगी ? सारथी छंदक ने अपनी सरलता में उत्तर दिया कि कुमार ! यह तो समय की गति है। हम सब भी इन्हीं दशाओं को प्राप्त होंगे।

नंदक : सारथी छंदक को ऐसा सीधा उत्तर नहीं देना चाहिए था।

सम्राट् : वह दूसरा उत्तर दे ही क्या सकता था ! फिर वह कुमार का सहज आत्मीय भी है। अपनी सरलता में उसने यही उत्तर दिया।

नंदक : आपने यह आज्ञा भी तो दी थी कि कुमार सिद्धार्थ के समक्ष कोई भी अरुचिकर दृश्य न आने पाए। आश्चर्य है, ये दृश्य किस प्रकार सामने आ गए !

सम्राट् : संयोग की बात ! उनके दर्शनों की किसे इच्छा न होगी ? वृद्ध और रोगी भी अपनी शैया छोड़ कर उनके दर्शनों को पहुँच गए। और भाग्य की विडंबना कि उसी समय एक मृतक की भी श्मशान-यात्रा हो गयी। इन्हीं दृश्यों ने कुमार के मन में वर्षाकाल के मेघों की भाँति विषाद की काली छाया डाल दी।

अश्वजित् : जो कुमार सदैव ही ऐश्वर्य और वैभव के वातावरण में रहे हैं, उनके समक्ष जीवन के ये विषादपूर्ण दृश्य बड़े ही कष्टकर हुए होंगे।

सम्राट् : जब छंदक ने राजमहल की ओर रथ मोड़ा, तभी एक संन्यासी दृष्टि में आ गया। कुमार ने जब उसके सम्बन्ध में छंदक से पूछा तो उसने उतर दिया कि इसने संसार से वैराग्य ले लिया है। इसने सारी माया और ममता छोड़ दी। तब कुमार ने कहा कि मनुष्य जन्म-मरण के कष्टों से मुक्ति पा सके, इसके लिए मैं भी संन्यासी का जीवन ग्रहण करूँगा और सच्चा ज्ञान प्राप्त करूँगा।

अनिरुद्ध : किन्तु वे राज्य-शासन करते हुए भी तो सच्चा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

सम्राट् : मैं भी यही चाहता हूँ कि वे चाहे जितना ज्ञान प्राप्त करें, किन्तु राज्य-शासन से उदासीन न हों। इसके लिए क्या उपाय करना चाहिए।

अनिरुद्ध : सम्राट् ! यदि सभी स्थानों की सम्पत्ति एक स्थान पर एकत्र कर दी जाए और उसका अधिकारी कुमार को बना दिया जाए तो वे नवरत्नों के मध्य में दसवें रत्न की भाँति सुशोभित होंगे। ऐसी दशा में क्या उनके मन की दिशा और दशा नहीं बदली जा सकती ? यह भाग्यमय ऐश्वर्य संसार में किसी को प्राप्त नहीं हुआ।

मकरन्द : सम्राट् ! कुमार भले ही उस सम्पत्ति का उपभोग न करें किन्तु जिस प्रकार एक भ्रमर पुष्प को बिना कष्ट पहुँचाए पराग-रेणु चयन करता है, उसी प्रकार कुमार भी किसी वैभव का उपभोग न करते हुए वैभव की प्रवृत्ति की ओर अवश्य ही आकृष्ट होंगे।

सम्राट् : मुझे इसमें सन्देह है। वे जीवन के सुख को तिनके के सिरे पर लगी हुई ओस की बूँद की तरह समझते हैं जो किसी भी क्षण गिर सकती है या सूख सकती है। जब जीवन के प्रति कुमार इतने उदासीन हैं तो स्वर्ण-रजत राशियाँ और रत्नों के समूह उन्हें किस भाँति आकृष्ट कर सकेंगे ? एक नौका समुद्र में भले ही तिरती रहे किन्तु क्या वह समुद्र के जल की एक बूँद भी ग्रहण करेगी ?

नंदक : यदि उनके निवास-स्थान के समीप असंख्य सुन्दरियों का परिवेश बना दिया जाए तो क्या कुमार उनकी ओर आकृष्ट नहीं होंगे ?

सम्राट् : कोई भी हो सकता है किन्तु कुमार किसी अन्य स्त्री की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते। वे सुन्दर दास-दासियों को मधु-मक्षिकाओं की भाँति समझते हैं जो

चारों ओर से घेरे रहती हैं और माया-मोह का संगीत उत्पन्न करती रहती हैं। ग्रीष्म के सूर्य-मंडल की ओर देखने में जिस प्रकार आँखें नहीं उठतीं उसी प्रकार सुन्दरियों के सामने होते ही उनके नेत्र झेंप जाते हैं। उनके नेत्र स्थिर रहते हैं। घृत से भरे हुए कुंभ को जिस प्रकार बिना हिलाए-डुलाए सँभाल रखा जाता है, उसी प्रकार वे अपने नेत्रों की दिशा सँभालते रहे हैं।

मकरंद : फिर क्या उपाय हो सकता है ? क्या उनके नेत्रों की दिशा धीरे-धीरे नहीं बदली जा सकती ? एक बार ही आकर्षण के समस्त साधन उनके मन में वितृष्णा उत्पन्न कर सकते हैं। उनके मन का परिवर्तन धीरे-धीरे ही हो सकता है। पृथक्-पृथक् धान की बालियों से एक-एक धान लेकर जिस भाँति कोष्ठागार भरा जाता है उसी भाँति सौन्दर्य के एक-एक उपकरण से कुमार के मन में अनुराग उत्पन्न किया जा सकता है।

सम्राट : किन्तु अश्वजित् ! स्वर्ण को अग्नि में उतना ही तपाना चाहिए जितना तपाने से उसका मैल दूर हो जाए। उसी प्रकार कुमार का वैभव से उतना ही सम्पर्क होना चाहिए जिससे उनका विषाद दूर हो जाए। वैभव का धनुष उतना ही खींचा जाना चाहिए जिससे उनकी प्रवृत्ति का बाण अनुरक्ति की सीमा तक पहुँच जाए।

अश्वजित् : सम्राट् ! आपका कथन सत्य है। मन की गहराई से ही आपकी वाणी निकल रही है। मैं भी ऐसा ही सोचता हूँ। मूल में स्थिर रहते हुए जिस प्रकार वृक्ष की फुनगियाँ वायु-प्रवाह में हिलती रहती हैं, उसी प्रकार विवेक में स्थिर रहते हुए कुमार के मन की छोटी-छोटी इच्छाएँ साधनों के क्रोड़ में स्मित बिखेर सकें। गूलर के पेड़ में फूल नहीं होता, फल ही होता है, उसी प्रकार कुमार के मन में वासनाओं के फूल खिलें किन्तु आनन्द के फल उन्हें प्राप्त हों।

सम्राट् : ठीक है, किन्तु कुमार तो राजकीय कार्यों को वैसा ही समझते हैं जैसे कोई सुगन्धित शालि की कामना से खेत में बीज के स्थान पर कंकर-पत्थर बो दे। वे कहते हैं कि जीवन का दुःख क्या अपर्याप्त है कि उसे ढँकने के लिए और भी दुःख लादा जाए ?

अनिरुद्ध : सम्राट् ! कुमार वास्तव में विवेकशील हैं किन्तु उनका विवेक महाराज जनक की भाँति संतुलित हो। महाराज जनक राज्य करते हुए भी संन्यासी थे। इसी प्रकार कुमार सिद्धार्थ संसार में रस न लेकर भी संसार का पालन करें। जब तक कुमार की मनोवृत्ति में परिवर्तन न आ जाए तब तक मेरा निवेदन है कि आगे उनकी नगर-यात्रा न हो जिससे कुरुचिपूर्ण दृश्य उनकी आँखों के सामने न आ सकें।

अश्वजित् : इसके साथ, सम्राट् ! मेरा निवेदन यह भी है कि शीत, ग्रीष्म और वर्षा की तीनों ऋतुओं के लिए तीन, पाँच और सात खंड वाले प्रासाद निर्मित किए जाएँ। शीत के लिए तीन खंड वाले, ग्रीष्म के लिए पाँच खंड वाले और वर्षा के लिए सात खंड वाले प्रासाद अत्यन्त कलात्मक शैली में बनवाए जाएँ।

नंदक : मेरा यह भी निवेदन है कि जागरण और शयन वेला में उनके लिए अत्यन्त मधुर संगीत का आयोजन किया जाए। संगीत ब्रह्म-नाद है। प्रभात काल का संगीत उन्हें दिन के कार्य की प्रेरणा देगा और रात्रि का संगीत उनकी आँखों में ऐसे मधुर स्वप्नों की राशियाँ सजाएगा कि वे सौन्दर्य के प्रति अपना दृष्टिकोण बदल देंगे।

मकरंद : सम्राट् ! यदि संगीत के साथ नृत्य की व्यवस्था भी हो तो नाद का सौन्दर्य साकार हो जाएगा।

सम्राट् : ठीक है, ये सारे प्रयोग करके भी देखे जाएँ। मैं आप लोगों के सुझावों के लिए धन्यवाद देता हूँ। अश्वजित् ! शिल्पियों को आदेश दे दें कि तीन, पाँच और सात खंड वाले प्रासादों का शीघ्र निर्माण हो।

अश्वजित् : आपकी आज्ञा का पालन शीघ्र ही होगा।

सम्राट् : और अनिरुद्ध ! कल से कुमार की नगर-यात्रा न हो। इसके लिए सारथी छंदक को आदेश दे दें।

अनिरुद्ध : मैं शीघ्र ही ऐसा आदेश दे दूँगा।

सम्राट् : और नंदक ! आप कपिलवस्तु की अनेक सुन्दर बालाओं को नृत्य और संगीत के लिए कुमार के कक्ष में नियोजित करें।

नंदक : आपकी आज्ञा का पालन शीघ्र ही होगा।

सम्राट् : अश्वजित् ! ये तीन प्रासाद ऐसे निर्मित हों जैसे चन्द्र की रश्मियों से ही बनाए गए हों। मंगल घट और कदलि स्तंभ दोनों ओर लगवा कर महा मार्ग पर प्रति-दिन प्रातःकाल सुगन्धित फूल बिछवा दिए जाएँ। ज्ञात हो कि नाना रंगों की रश्मियों से मार्ग आलोकित हो रहा हो। द्वारों पर पाट वस्त्र और शिखरों पर सुनहली पताकाएँ हों।

अश्वजित् : (सिर झुकाकर) जैसी आज्ञा।

समाट् : बन्दनवारों में कनेर के फूलों की पत्तियों के साथ चम्पा के फूलों की पत्तियों का योग हो। तारावलियों की प्रभा की भाँति दीवारों पर रत्नों की जगमगाहट हो। प्रासादों के उपवनों में मयूर, सारंग और चक्रवाक का मधुर कलरव हो मानो पृथ्वी पर संगीत का सागर तरंगित हो रहा हो।

अश्वजित् : जैसी आज्ञा।

समाट् : द्वारों पर माणिक और मोतियों की झालरें लटकायी जाएँ। भूमि पर सुगंधित लेप लिपवा दिया जाए जैसे अरुण कमलों पर कोई स्वर्णिम नौका हो। स्थान-स्थान पर इन्द्रधनुष के रंगों की पुष्पित क्यारियाँ हों।

अश्वजित् : जो आज्ञा।

समाट् : और अनिरुद्ध ! आप कोषाध्यक्ष को आज्ञा दें कि उन प्रासादों में सर्वत्र स्वर्ण-रजत के दीप माणिक की ज्योतियों से सजाए जाएँ। दीपाधारों पर रत्नों से निर्मल चित्र चित्रित किए जाएँ।

अश्वजित् : (सिर झुकाकर) जो आज्ञा।

समाट् : मैं स्वयं कुमार से इस सम्बन्ध में बातें करूँगा। अच्छा, अब आप सब लोग अपने-अपने कार्यों में नियोजित हों।

सब : (**एक स्वर से**) जैसी आज्ञा। सम्राट् की जय !

[सम्राट् अभय मुद्रा में हाथ उठाते हैं।]

[परदा गिरता है।]

तीसरा अंक

समय : अर्धरात्रि। आकाश में चन्द्र और उसके समीप बादलों की राशि।

स्थान : कुमार सिद्धार्थ का पाँच खंड वाला प्रासाद जो अत्यन्त कला-कौशल से सुसज्जित किया गया है। मंगल घट और नाना प्रकार के पाट वस्त्रों से सजा हुआ है। कक्ष में अनेक चित्र जिनमें सम्राट् शुद्धोदन का चित्र अत्यन्त आकर्षक है। कुमार सिद्धार्थ अपने राजसी वेश में ऊँचे आसन पर बैठे चिन्ता-मग्न हैं।

सिद्धार्थ : (**गहरी साँस लेकर**) विचित्र हैं ! सीमाहीन सुखों के साधन, मेरे लिए तीन, पाँच और सात खंड वाले प्रासादों का निर्माण, यशोधरा सहित मेरे चारों ओर असंख्य सुन्दरियों का परिवेश, जागरण और शयन वेला में मधुर संगीत का आयोजन नृत्य, रत्नों की राशि और पुष्पों की शैया—इन सबके साथ मेरी नगर-यात्रा समाप्त। ये सब प्रबन्ध पिताश्री के आदेश से, राजाज्ञा से पूर्ण हो गए—राजाज्ञा से। (**शुद्धोदन के चित्र के समीप जाकर**) पिताश्री ! आपने मेरी नगर-यात्रा रोक दी, मेरे शरीर की गति रोक दी, किन्तु मन की गति ! क्या आपकी राजाज्ञा से मेरे मन की गति भी रोकी जा सकती है ? भले ही मैं वृद्ध, रोगी और मृतक को आँखों से न देख सकूँ किन्तु मन में तो वे चित्र बार-बार उभरते हैं। इन्हें कौन रोक सकता है ? (**ऊपर देखकर**) इन चमकने वाले नक्षत्रों की गति भी क्या रोकी जा सकती है ? यह चैत्र का चन्द्रमा ! (**चारों ओर देखकर**) कैसी शुभ्र चाँदनी है। हिमालय के ऊँचे शिखरों से आती हुई अशोक पुष्पों से सुगन्धित यह वासन्ती समीरण—यह रोहिणी नदी का अविरत कलकल। इन्हें कोई नहीं रोक सकता। मेरे मन की गति को भी कोई नहीं रोक सकता। (**टहलते हैं**) वह इस परिवर्तन-शील संसार से मुक्त होना चाहता है। सुख-सौन्दर्य—यह सब क्या है ? यह स्वर्ग के वैभवों से सम्पन्न कक्ष—यह चन्द्रशालिका—जैसे सुन्दरियों के उत्फुल्ल हास्य से ही निर्मित है। पहले प्रहर इस स्थान पर नृत्य और गान का समारोह हुआ। पर इस समय सब समाप्त। जैसे समय ही वृद्ध हो गया। और ये सुन्दरियाँ ? मेरे कक्ष के

समीप ही शयन कर रही हैं। (**नेपथ्य में भीतर झाँककर**) जैसे सौन्दर्य ही शिथिल होकर सो रहा है। जैसे नाना रंगों की सुरभित माला तोड़कर एक-एक फूल अलग-अलग बिखरा दिया गया है। (**फिर देखकर**) निद्रा में असावधान सौन्दर्य वस्त्रों में छिपने की चेष्टा करता हुआ भी अनछिपा रह गया है। चमकीले केश जो श्याम लहरियों में उलझ गए हैं। रंजित हथेलियों में छिपा-अनछिपा मुख। (**नेपथ्य में नूपुर की खनक**) (**चौंककर**) क्या कोई नर्तकी जाग उठी ? (**नेपथ्य में झाँक कर**) नहीं-नहीं—निद्रा में पैर के अनायास मुड़ने से नूपुर झनक उठा। सब सो रही हैं। किसी के कंठ से वीणा लगी हुई है, तारों में उसकी अंगुलियाँ उलझी हुई हैं। पास ही एक मृग-शावक भी सो रहा है। स्वप्न में सभी लीन हैं। संसार भी तो एक भयानक स्वप्न है ! (**नेपथ्य में दूसरी ओर देखकर**) इस ओर मेरी प्रियतमा यशोधरा है।···यशोधरा···रति को भी लज्जित करने वाली शोभा ! एक ही साँस में पढ़ी जाने वाली सौन्दर्य के अक्षरों की ऋचा। वीणा के स्वरों की कम्पन-सी मुस्कान। वासन्ती समीरण-सी गति। उषा के अवतरण-सी मंगल वेला। मेरी प्रेयसी ! संसार में ऐसी किसे प्राप्त हुई है ? किसी को नहीं। किन्तु उसने अभी तीन दु:स्वप्न देखे। उसने देखा हुंकारता हुआ वृषभ, ध्वस्त होती हुई ध्वजा, धँसता हुआ राज्यासन। उसे बड़ी कठिनाई से सान्त्वना देकर सुलाया है। अभी तक उसकी पलकों पर आँसुओं की रेखा। सो जाओ, यशोधरे ! सो जाओ। उसके दु:स्वप्न क्या भविष्य की सूचनाएँ हैं ? दैवज्ञों ने भविष्यवाणी की कि या तो मैं चक्रवर्ती सम्राट् बनूँगा या सन्यासी। सोचता हूँ कि मैं सम्राट् बनकर शासन करूँ या···या···संसार के कल्याण के लिए गृहहीन होकर विचरण करूँ। संन्यासी। स्वप्न से संन्यासी हो जाने का संकेत करते हैं। हाँ, संन्यासी। आकाश के नीले पटल पर भी मैं नक्षत्रों में एक दैवी संकेत लिखा हुआ देखता हूँ। यशोधरे ! तुम प्रस्तुत रहो। मैं यह राजमुकुट छोड़ूँगा। प्रजा तो रण-यात्रा में मेरी चमकती हुई तलवार देखना चाहती है। चाहती है कि मेरा विजय-रथ रक्तरंजित होकर आगे बढ़े। मेरा नाम इतिहास में रक्तिम अक्षरों में लिखा जाए। नहीं·· नहीं··· नहीं···ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा नहीं हो सकेगा। मैं विश्व-प्रेम की वीथी पर निष्कलंक पैरों से चलूँगा। मनुष्य के कल्याण के लिए सत्य की खोज करूँगा। पृथ्वी ही मेरी शैया होगी, जंगलों का सूनापन ही मेरा आवास होगा। कीट-पतंग मेरे सहचर होंगे, क्योंकि यह सारा संसार पीड़ित है—वृद्ध होने से, रोगी बनने से, मृतक होकर श्मशान में भस्म होने से। इस रुग्ण संसार का उपचार होना चाहिए। किन्तु कैसे ? अपना सुनहला संसार छोड़कर सत्य की खोज करूँ। महलों को छोड़कर वन-प्रान्तरों में निराहार रह कर तपस्या करूँ ? और निरपराध यशोधरा की इस प्रेम-सुधा का तिरस्कार कर दूँ ? प्रेममयी यशोधरा ! (**एक बार फिर नेपथ्य में यशोधरा पर दृष्टि डालकर**) नहीं, नहीं, मैं यशोधरा का परित्याग नहीं कर सकूँगा। उससे विश्वासघात नहीं करूँगा। जिस सुकुमार हंसिनी ने ग्यारह वर्षों तक मानसरोवर में विहार किया है, उसे अपने वियोग के मरुस्थल में

झुलझने के लिए छोड़ दूँ ? नहीं, यह संभव नहीं होगा। मैंने उसे अपने बाहु-बल से जीता। सारे राज्य ने मंगल पर्व मनाया। सारा नगर दीप-माला से जगमगा उठा। और राजभवन जैसे अलकापुरी का कक्ष हो जिसमें रत्नों ने ही प्रकाश-किरणों से विवाह किया हो। यशोधरा मेरे पास आयी। उसने मंगल-प्रदीप से मेरी आरती उतारी। आरती की गति में स्वयं उसका मुख ज्योति-मंडल से आलोकित होता जाता था। ऐसा लगता था मानो वह स्वयं एक दीपशिखा है। अग्निरेखा है···किन्तु ··किन्तु एक अग्निरेखा मेरे हृदय में भी तो जल उठी है। भयानक अग्नि-रेखा ! मानवता की मुक्ति के लिए एक तीव्र ज्वाला। इस ज्वाला में मुझे भस्म होना ही पड़ेगा। इस माया-जाल से मुक्त होना ही पड़ेगा। भयानक माया-जाल ! किसका रचा हुआ है ? देवताओं का ? किसने देखा है उन देवताओं को ? जिन लोगों ने जीवन भर उनकी उपासना की, क्या उन्हें सुख मिला ? फिर···? फिर मनुष्य क्यों उनकी पूजा करे ? क्यों प्रार्थना करे ? न जाने कितने यज्ञ किए जाते हैं, मंत्रोच्चारण किए जाते हैं, आर्तनाद करते हुए निरीह जीवों का रक्त उन्ही देवताओं के समक्ष, उन्हें प्रसन्न करने के लिए बहाया जाता है किन्तु ये देवता अपने भक्तों को सुखी कर सके ? उन्हें वृद्ध होने से बचा सके ? रोगी होने से बचा सके ? मृतक होने से बचा सके ? नहीं, नहीं बचा सके। भक्त भी यज्ञ के धुएँ की भाँति संसार से उठ गए। और संसार से वे कहाँ गए ? कौन जानता है ? प्रतिदिन जन्म और मृत्यु का चक्र घूमता है। नया जीवन, नया दुःख, नयी अभिलाषा, नयी कामना और फिर मृत्यु का अट्टहास। देवता भी तो इस अट्टहास से काँप उठते होंगे ? क्योंकि किसी देवता ने प्रत्यक्ष प्रकट होकर कोई वरदान तो दिया नहीं। जीवन सदैव ही संत्रस्त रहा है, यह चाहे जहाँ से आरम्भ हो, यह तो अनेक योनियो के चक्र में घूमता रहा है। सूक्ष्म अणु, जीवाणु, कृमि, सरीसृप, जलचर, पक्षी, जन्तु, मनुष्य, दैत्य, देवता और फिर वही देवता सूक्ष्म अणु बनता है, जीवाणु बनता है, और फिर वही सब कुछ। परिवर्तन का कितना क्रूर परिहास है ?··· किन्तु···किन्तु इस परिहास में बेचारी यशोधरा का क्या दोष ? कि उसे निराधार छोड़ जाऊँ ? उसके जीवन का भार मैंने लिया है तो उसे मार्ग में ही छोड़ दूँ ? उसका एकमात्र जीवनाधार मैं। इस संसार-सागर की उत्ताल तरंगों से संघर्ष लेने के लिए जिस नौका पर उसे चढ़ाया है, उसी को डुबा दूँ ? नहीं···नहीं। वह कितनी सरल और सहज है। उस दिन सरोवर में तैरते हुए हंस ने कमल के धोखे में यशोधरा की अरुण हथेलियों को छू लिया। यशोधरा ने प्यार से उसे उठा लिया। हंस भयभीत होकर दूर उड़ गया। यशोधरा हँसते हुए भी कितनी उदास हो गयी थी ? कितनी भोली थी उस समय उसकी मुद्रा ? जब उस मुद्रा को देख कर ही मैं व्यथित हो गया तो मेरे छोड़ जाने पर उसकी मुद्रा कितनी करुण होगी ? मैं कल्पना में भी उसे कैसे सहन कर सकूँगा ? नहीं, नहीं, यशोधरा ! तुम पर ऐसा अत्याचार नहीं कर सकूँगा। नहीं, मैं तुम्हें छोड़ कर नहीं जाऊँगा। मैं आ रहा हूँ तुम्हारे पास। **(नेपथ्य की ओर बढ़कर फिर ठिठक जाते हैं)** तब क्या मनुष्य

के भविष्य के सम्बन्ध में यह मेरी कोरी कल्पना थी ? किन्तु जो मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ वह कोरी कल्पना कैसे हो सकती है ? यशोधरा आज इतनी मनोहर है, सुन्दरता को भी सुन्दर बनाती है, सुहासिनी, सुमधुर भाषिणी है, क्या कुछ वर्षों बाद भी ऐसी ही रहेगी ? यशोधरा वृद्धा बनेगी, रोगिणी बनेगी, मृत्यु को प्राप्त होगी। तब मैं उसकी रक्षा कैसे कर सकूँगा ? मुझे इन सारी स्थितियों का रहस्य जानना ही होगा। मैं वह तत्त्व समझूँगा जिससे मनुष्य को मुक्ति मिल सके। यशोधरा ही क्या, सभी व्यक्ति वृद्ध होंगे, रोगी होंगे और मरेंगे। अभी उस दिन पिताश्री की चित्रशाला में गया था। एक बहुत सुन्दर चित्र देखा। मैंने रक्षिता से पूछा, यह किसका चित्र है ? उसने नहीं बतलाना चाहा। किन्तु मेरे आग्रह करने पर वह बतलाने को विवश हुई। उसने बतलाया—कुमार ! यह आपकी माँ का चित्र है, महामाया का। वे आपको जन्म देने के सात दिन बाद संसार से चली गयीं।···तो मेरी माँ भी मृत्यु की गोद में चली गयीं ! मृत्यु सबके लिए। मेरी माँ के लिए, मेरे लिए और मेरी पत्नी यशोधरा के लिए। फिर इस अभिशाप से कैसे मुक्ति मिले ?

यह समय किसी विषैले कीट के समान जीवों को प्रतिक्षण काट रहा है। मुझे कोई अभाव नहीं, कोई कष्ट नहीं किंतु मानव होने के नाते मैं दूसरे का कष्ट कैसे सहन करूँ ? यदि मैं अपने को खोकर सत्य पा सकूँ, सृष्टि का रहस्य जान लूँ जिससे मनुष्य संसार की यन्त्रणाओं से मुक्ति पा सके, तो क्या हानि है ? भले ही मुझे सब कुछ खोना पड़े ? (**दृढ़ता से पैर आगे बढ़ाकर**) ओ पीड़ित संसार ! मैं तेरे लिए, तेरे जीवों के लिए अपने यौवन की बलि दूँगा। अपना सिंहासन, अपना ऐश्वर्य, अपना विलास, अपने स्वर्णिम दिवस और रजत रात्रियाँ···और···और अपनी यशोधरा···इन सबको तुझे समर्पित करता हूँ। और राहुल···मेरे और यशोधरा के प्रेम का सजीव पुष्प ! मैं तुझे प्यार नहीं कर सका ! मैं तेरा दुलार नहीं कर सका ! (**नेपथ्य में झाँककर**) तू सो रहा है। अपनी माँ के अंक में छिपा हुआ। जैसे कोमल कुसुम शिथिल पत्रांक में शयन कर रहा है। चलूँ, एक बार तुझे प्यार कर लूँ ? तेरे कपोलों पर अपना प्रेम चिह्नित कर दूँ ? तुझे अपनी बाँहों में ले लूँ ? पर नहीं। यशोधरा का कोमल हाथ तेरे माथे पर है। यदि तुझे उठाने में यशोधरा जाग उठी तो मेरे कल्याण का मार्ग अवरुद्ध हो जाएगा। फिर यशोधरा मुझे कैसे जाने देगी। इसलिए मेरे राहुल ! मेरा स्नेह तुम यहीं से ले लो। मेरे अनेक आशीर्वाद, मेरी अनेक मंगल कामनाएँ ! किंतु जब तू बड़ा होगा तो मुझे निर्दयी और निष्ठुर तो नहीं कहेगा ? यह तो नहीं कहेगा कि मेरा पिता मुझे और मेरी निरपराध जननी को बिना बतलाए ही असहाय छोड़ गया। नहीं, नहीं राहुल ! तू यह कहे कि मेरे पिता ने मानव-मात्र के कल्याण के लिए, सृष्टि का सत्य जानने के लिए तीर्थयात्रा की। तीर्थयात्रा··· (**आगे बढ़कर**) अब मैं स्थिर हूँ, दृढ़ हूँ। इन कुसुम-शैयाओं पर नहीं सोऊँगा। इन्हें सदैव के लिए छोड़ दूँगा। जब तक संसार के सत्य से साक्षात्कार नहीं कर लूँगा, लौटकर नहीं

आऊँगा। नहीं जाऊँगा। राहुल, विदा ! यशोधरे, विदा ! नींद में झुकी हुई तुम्हारी अश्रुभरी पलकों से विदा ! हृदय, तू वज्र की भाँति कठोर बन जा ! मानव जीवन के सत्य को खोजने में प्रयत्नशील हो। राहुल और यशोधरा को बीते हुए स्वप्न की भाँति भुला दे। समझने का प्रयत्न कर कि यह दुःख क्या है, कैसे उदय होता है, इसका निरोध किस प्रकार किया जा सकता है और किस मार्ग से संबुद्धि प्राप्त हो सकती है। फूल मुरझाता है तो उसका सौन्दर्य और सौरभ कहाँ चला जाता है ? तेल समाप्त होता है तो प्रकाश की ज्योति कहाँ चली जाती है ? मैं इस उपवन के वृक्ष की भाँति नहीं हूँ कि वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर झेलकर सूखे पत्तों की भाँति बिखर जाऊँ या कुल्हाड़ी से काट दिया जाऊँ। मैं ऐसा नहीं रहूँगा। भले ही मेरा जीवन देवताओं के जीवन जैसा हो किन्तु मैं यह सहन नहीं करूँगा कि मनुष्य अंधकार में गिरकर कराहते रहें ? ओ प्रकाश ! तू अज्ञान के अंधकार में नहीं छिप सकेगा। मैं सब कुछ छोड़कर तुझे प्राप्त करूँगा। निश्चय ही प्राप्त करूँगा। (**धीरे से पुकारकर**) छंदक ! ओ छंदक !

[नेपथ्य से अलसाया स्वर—आज्ञा राजकुमार !]

सिद्धार्थ : यहाँ शीघ्र ही आओ।

[नेपथ्य से छंदक का स्वर—आ रहा हूँ, राजकुमार !]

सिद्धार्थ : बिना कोई शब्द किए, चुपचाप चले आओ।

[सारथी छंदक का प्रवेश]

छंदक : (**आते ही**) राजकुमार ! आप इस समय भी जाग रहे हैं ?

सिद्धार्थ : (**ओंठों पर अँगुली रखकर**) धीरे बोलो। किसी की नींद में बाधा न पड़े। हाँ, मैं जाग रहा हूँ और सदैव के लिए जाग गया हूँ।

छंदक : इसका क्या अर्थ है, कुमार ?

सिद्धार्थ : अर्थ समझाने का समय नहीं है। मेरा अश्व कंथक तैयार करो। मैं जाऊँगा।

छंदक : कहाँ, राजकुमार ? आप इस रात में बाहर जाएँगे ?

सिद्धार्थ : जाना ही होगा और सदैव के लिए जाऊँगा।

छंदक : सदैव के लिए ? मैं कुछ समझा नहीं, राजकुमार !

सिद्धार्थ : इस समय समझाने की आवश्यकता भी नहीं है। कंथक लाओ। समय नहीं है।

छंदक : राजकुमार ! आप मुझे आश्चर्य में डाल रहे हैं।

सिद्धार्थ : आश्चर्य की कोई बात नहीं है। उस दिन मैंने तुम्हारे साथ एक वृद्ध, रोगी और मृतक को देखा था। तभी से इस छद्मवेशी संसार पर से मेरी आस्था हट गई। मेरी आस्था उस संन्यासी पर हुई जिसने मोह और माया से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया था।

छंदक : संसार में सब तरह के व्यक्ति हैं, कुमार ! इन पर आप कहाँ तक विचार करेंगे ? यह तो संसार का चक्र है।

सिद्धार्थ : उसी संसार के चक्र को समझने की आवश्यकता है और इसलिए मैं इस स्वर्णिम कारागार से मुक्त होना चाहता हूँ। पिताश्री ने मेरी छोटी-छोटी नगर-यात्राएँ रोक दी हैं, संभवतः इसलिए कि मैं एक बड़ी यात्रा कर सकूँ।

छंदक : बड़ी यात्रा कैसी कुमार ?

सिद्धार्थ : वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु का रहस्य समझने के लिए मैं भी संन्यास लेकर संसार से सारा सम्बन्ध तोड़ देना चाहता हूँ।

छंदक : कुमार ! यदि आप संसार से सम्बन्ध तोड़ देंगे तो देवी यशोधरा को कितना कष्ट होगा ? राहुल कुमार की क्या दशा होगी ? और महाराज को कितना दुःख होगा ? इन सबको दुःख पहुँचाकर आप किस सुख की प्राप्ति करेंगे ? प्रजा के प्रेम को कितना आघात लगेगा ?

सिद्धार्थ : यह प्रेम झूठा है, ममता और मोह से भरा हुआ प्रेम प्रेम नहीं है। किन्तु यह सब समझाने का समय नहीं है। मार्ग में तुमसे सब बातें समझाकर कह सकता हूँ। जाओ, अश्व लाओ।

छंदक : (**शिथिल स्वर में**) जैसी आज्ञा। (**जाने के लिए उद्यत**)

सिद्धार्थ : मेरे जाने की सूचना किसी को भी न हो।

छंदक : देवी यशोधरा को भी नहीं ?

सिद्धार्थ : (**दृढ़ता से**) नहीं। अश्व लाओ।

छंदक : जैसी आज्ञा। (**प्रस्थान**)

सिद्धार्थ : मैं भी इस अभियान के लिए प्रस्तुत होऊँ। क्षण-क्षण में क्षीण होने वाले ऐश्वर्य ! विदा...सदैव के लिए विदा।

[हाथ उठाकर सिद्धार्थ का दृढ़ता के साथ प्रस्थान]

[परदा गिरता है।]

चौथा अंक

समय : प्रभात का पहला पहर

स्थान : एक वन-प्रांत, झुरमुटों की छाया

[देवदत्त गेरुए वस्त्रों में प्रवेश करता है। हाथ में भिक्षापात्र है।]

देवदत्त : (**दर्शकों की ओर देखकर**) आवुस ! इस लोक में तीन प्रकार के धर्मगुरु हैं। पहला प्रकार उन धर्मगुरुओं का है जो वासनाओं का त्याग करते हैं किन्तु रूपों का साम्य नहीं बतलाते। दूसरे वे धर्मगुरु हैं जो वासनाओं और रूपों का साम्य तो

बतलाते हैं किंतु वेदनाओं का साम्य नहीं बतलाते और तीसरा प्रकार उन धर्म-गुरुओं का है जो तीनों का साम्य बतलाते हैं। इन तीन प्रकार के धर्मगुरुओं का ध्येय एक है या भिन्न? (टहलते हुए) आप बतला सकते हैं? (कुछ रुककर) कोई नहीं बतलाता। (पुकारकर) पंथक!

नेपथ्य से : आया, भन्ते!

[पंथक प्रवेश करता है। वह श्रद्धा से प्रणाम करता है।]

देवदत्त : तू कहाँ था, उपासक?

पंथक : अन्य उपासकों को आपका उपदेश सुना रहा था।

देवदत्त : (**हाथ उठाकर**) स्वस्ति! तू बतला, उपासक! धर्मगुरुओं का ध्येय एक है या भिन्न?

पंथक : भन्ते! आपसे बढ़कर कौन बतला सकता है? जब से आपने धर्मगुरु का रूप धारण कर लिया है तब से तो आप संसार के सबसे बड़े धर्मगुरु बन गए हैं।

देवदत्त : उपासकों में तू इसी प्रकार का प्रचार कर। कुमार अजातशत्रु भी मुझे सबसे बड़ा धर्मगुरु मानता है। पर तुझसे मैं कोई बात छिपाता नहीं हूँ। इधर देख। (**सामने से अपना भगवा वस्त्र खोलता है।**)

पंथक : अरे, आप तो अपने असली रूप में हैं। शरीर पर वही आखेट का कवच।

देवदत्त : (**ओंठों पर अँगुली रखकर**) चुप। चुप। यह किसी से कहने की बात नहीं है। संसार में अनेक शत्रु छिपे वेश में घूमते हैं। उनसे अपनी रक्षा का प्रबन्ध पहले से ही कर रखना चाहिए। अब संसार में इन्हीं वस्त्रों से प्रसिद्धि होती है। सिद्धार्थ को देख। वह आधी रात में अपना महल छोड़कर संन्यासी बन गया। पिता शुद्धोदन के पास किस बात की कमी थी और उन्होंने सिद्धार्थ के सुख के लिए क्या-क्या साधन नहीं जुटाए? किन्तु वह उन सबको ऐसे छोड़कर चला गया जैसे साँप अपना केंचुल छोड़ देता है।

पंथक : किन्तु भन्ते! उन्होंने बड़ी तपस्या की।

देवदत्त : (**हँसकर**) तपस्या? तपस्या कौन नहीं कर लेता? मैं तो ऐसी तपस्या करूँ कि तपस्या भी हाथ जोड़कर कहे कि भन्ते! यदि आप तपस्या करेंगे तो मैं तपस्या ही नहीं रहूँगी। कुछ समझ में आया? जब बिना विचारों और सिद्धान्तों के मेल से मैं धर्मगुरु बन जाता हूँ तो तपस्या मेरे सामने किस मूल्य की वस्तु है? धर्मगुरु —संसार का सबसे बड़ा धर्मगुरु।

पंथक : धर्मगुरु की जय! आप तो बिना प्रयत्न के धर्मगुरु बन गए। उधर सिद्धार्थ को देखिए! इतनी बड़ी तपस्या की, तब धर्मगुरु बने और निरपराध पत्नी देवी यशोधरा और निरीह शिशु राहुल को रोने के लिए छोड़ गए। आपने तो कुछ भी नहीं छोड़ा। यहाँ तक कि आपके राजसी वस्त्र भी आपके पास हैं और आप धर्मगुरु के नाम से प्रसिद्ध हो गए।

देवदत्त : संसार में इसी तरह व्यवहार करना चाहिए। और यदि सिद्धार्थ धर्मगुरु होना

चाहते थे तो हो जाते। पत्नी और शिशु को छोड़ने की क्या आवश्यकता थी ? कहते हैं कि संसार के लोगों को दुःख से बचाने के लिए उन्होंने तपस्या का व्रत ले लिया। जैसे उनकी तपस्या से लोग बुढ़ापे से बच जाएँगे, वे कभी रोगी न होंगे और मृत्यु से छुटकारा पा जाएँगे।

पंथक : संसार में इन बातों से किसे छुटकारा मिला है, भन्ते ?

देवदत्त : अरे, मान भी लो कि लोगों के विचारों की दिशा ही बदल जाए तो अपना घर छोड़ने की क्या आवश्यकता थी ? अपने पैर में कुल्हाड़ी मारकर दूसरे के पैर का उपचार करने जा रहे हैं। अरे, अपने घर में आग लगाकर दूसरे के घर की आग बुझाने के लिए जो जंगल में भाग जाता है, उसे तुम क्या कहोगे ?

पंथक : क्या कहा जाए, भन्ते ! पर कुमार सिद्धार्थ के जाने से तो यशोधरा देवी पर दुःख का पहाड़ ही टूट पड़ा।

देवदत्त : अरे, यह तो सारा संसार जानता है। बेचारी यशोधरा देवी ! कितनी सुन्दर और कितनी सुकुमार ! इन्द्र की रानी शची भी इतनी सुन्दर न होगी। किन्तु सिद्धार्थ क्या जाने कि यशोधरा देवी क्या हैं, कैसी हैं ! सामान्य शाक बेचने वाला रत्न का क्या मूल्य कर सकता है ?

पंथक : किन्तु अब तो वे बड़े संन्यासी हो गए हैं। बड़े-बड़े राजा भी उनके चरणों की वन्दना करते हैं।

देवदत्त : आजकल ऊपरी वेश देखकर संसार के लोग मोहित हो जाते हैं। इसीलिए मैंने संसार को मूर्ख बनाने के लिए ये वस्त्र ऊपर से ओढ़ लिए हैं। और राजा क्या मेरे चरणों की कम वन्दना करते हैं ? मगध के राजकुमार अजातशत्रु तो मुझे अपना गुरु मानते हैं। औरों की बात जाने दो। मैंने तो राजकुमार अजातशत्रु को उसके पिता बिम्बिसार से लड़वा दिया है। देखना, किसी दिन वह अपने पिता की हत्या कर मगध का सम्राट् बन जाएगा।

पंथक : तब तो आप सम्राट् के भी गुरु होंगे।

देवदत्त : अरे, इस समय भी वह मेरी आज्ञा के बिना अपना भोजन नहीं करता।

पंथक : यह तो सत्य है, भन्ते !

देवदत्त : किन्तु मैं सिद्धार्थ के बढ़ते हुए प्रभाव को क्या करूँ ? सभी लोग उसी ओर खिंचे जा रहे हैं।

पंथक : खिंचे ही नहीं जा रहे हैं, उनकी भरपूर सहायता भी करते हैं। सुना है कि जब कुमार सिद्धार्थ वन में तपस्या करते थे और अस्थि-मात्र रह गए थे तब उरुवेला प्रदेश के सेनानी की पुत्री सुजाता ने उन्हें मेवा-मिश्रित पायस का भोजन कराया था।

देवदत्त : नाम से सुजाता किन्तु कार्य से कुजाता ज्ञात होती है। देखो, पंथक ! यदि सुजाता कुरूपा हो तो उसका वध कराने का उपाय करो और यदि सुरूपा हो तो उसे मेरी शिष्या बनाने की युक्ति सोचो।

पंथक : वह विवाहिता है, भन्ते ?

देवदत्त : तो विवाहिता भी तो शिष्या बन सकती है। उससे पूछना कि वह पायस का भोजन सिद्धार्थ के पास क्यों ले गई ? वह पायस तो मेरे पास आना चाहिए था। मैं उसके स्वाद की प्रशंसा करता। कन्द-मूल खाने वाला पायस का वास्तविक स्वाद क्या जान सकता है ! और सुजाता को पायस ले जाने की क्या आवश्यकता थी ?

पंथक : भन्ते ! सुजाता ने मनौती मान रखी थी कि यदि उसे अच्छा वर मिले और पहली सन्तान पुत्र हो तो वह वट-वृक्ष पर निवास करने वाले देवता की पूजा करेगी। संयोग से उसकी इच्छा पूरी हुई। तीन महीने बाद वह बालक को गोद में लेकर उस वट-वृक्ष के पास गई। कुमार तथागत उसी वट-वृक्ष के नीचे बैठे थे। सुजाता ने समझा कि उपहार स्वीकार करने के लिए स्वयं वृक्ष-देवता ने अवतार ले लिया। उसने अनेक सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित पायस उन्हें भरपूर खिलाया।

देवदत्त : (**ओंठ चाटते हुए**) सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित था ?

पंथक : उसमें इतने सुगन्धित द्रव्य पड़े थे कि कल्पना में भी नहीं आ सकते।

देवदत्त : सुनो, किसी दिन जाकर उस अभागी सुजाता से मेरे लिए भी वैसा ही पायस लाना।

पंथक : वैसा पायस फिर बन सकेगा या नहीं, कहा नहीं जा सकता। किन्तु आपके लिए कुछ लाऊँगा अवश्य।

देवदत्त : अरे, मैं ये सब घटनाएँ जानता था। केवल तुम्हारे मुख से सुनना चाहता था कि तुम सुजाता को जानते हो या नहीं।

पंथक : मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ, भन्ते !

देवदत्त : तो तुम सुजाता के पास जाना और उससे कहना कि वह स्वयं पायस लेकर मेरे पास आए। उससे कहना कि सिद्धार्थ वृक्ष-देवता था तो मैं मनुष्य-देवता हूँ। मेरा नाम भी कहना, 'दे व द त्त'। महान् संन्यासी देवदत्त।

पंथक : यह तो संसार जानता है, भन्ते !

देवदत्त : और उससे कहना कि सिद्धार्थ को पायस खिलाने से उसे एक पुत्र हुआ, मुझे पायस खिलाएगी तो उसके एक साथ दो पुत्र होंगे।

पंथक : इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं है, भन्ते !

देवदत्त : तो उसके मन में सिद्धार्थ के प्रति जो श्रद्धा है, वह समाप्त कर दी जाए। यों तो मैं अपनी ही शक्ति से सब कुछ कर सकता हूँ किन्तु तुम लोगों को भी श्रेय देना चाहता हूँ। बस, मेरे मार्ग में एक ही बाधा है और वह है सिद्धार्थ के बढ़ते हुए प्रभाव की। उसने थोड़ी-सी तपस्या कर ली कि एक नया धर्म ही खोज लिया। कहते हैं कि उसने दुःख का रहस्य जान लिया। अरे, दुःख का रहस्य भी कोई रहस्य है ? मुझसे पूछो दुःख का रहस्य। दुःख का रहस्य सुख है और सुख का रहस्य दुःख। एक छोटी-सी बात। इसके लिए तपस्या करने की क्या आवश्यकता थी ? किन्तु लोगों की श्रद्धा बढ़ रही है, प्रसिद्धि मिल रही है। मैंने तो अजातशत्रु से कह दिया है कि सिद्धार्थ की प्रसिद्धि किसी प्रकार भी बढ़ने न दी जाए और यदि अवसर

मिले तो उसे संसार से ही उठा दिया जाए। सिद्धार्थ का कहना है कि संसार के दुःखों का नाश करने के लिए मैं सभी वासनाओं से ऊपर उठ गया हूँ। संसार से ही ऊपर उठ जाएँ तो मैं समझूँ कि जो उसका उपदेश है उसमें कुछ सच्चाई है।

पंथक : तो क्या राजकुमार सिद्धार्थ अजातशत्रु के हाथों समाप्त हो जाएँगे ?

देवदत्त : अरे, मेरी शिक्षा अधूरी नहीं है। मैंने यह भी कह दिया है कि यदि उन पर बधिकों का हाथ न उठे तो उन पर नीलगिरि नामक हाथी छोड़ दिया जाए। वह उनके चिथड़े कर डालेगा।

पंथक : यह तो बड़ा क्रूर कर्म होगा, भन्ते !

देवदत्त : धर्मगुरु देवदत्त का उपासक होकर तू भी क्रूर कर्म की बात करता है ? संसार में बिना क्रूर कर्म के कोई सफलता मिलती है ? देख, जब सिंह सब जीवों को मारने में समर्थ होता है तभी वह 'वनराज' कहलाता है। सूर्य जब रात्रि के अन्धकार का नाश करता है, तभी 'दिवाकर' कहलाता है। जब मनुष्य जंगलों का नाश करता है, तभी वह नगर बसाता है। मूर्ख ! बिना क्रूरता के कहीं पराक्रम होता है ?

पंथक : यह तो आपके कार्यों से ही ज्ञात होता है, भन्ते !

देवदत्त : सिद्धार्थ कहते हैं, दया करो, करुणा करो। सब जीवों को समान दृष्टि से देखो। अरे, भोले संन्यासी ! क्या सृष्टिकर्त्ता ने या प्रकृति ने भी सब जीवों को समान दृष्टि से देखा है ? पर्वत के शिखर की भाँति हाथी और राई के दाने के समान चींटी। हाथी और चींटी। ये समान हैं ? अपने जीवन में हाथी ने भूमि पर रेंगती हुई कितनी चींटियों को दबा कर मारा होगा, यह कोई जाकर उस भोले संन्यासी से पूछे। अरे, प्रकृति का सौन्दर्य तो विषमता में है। यह सृष्टि समान दृष्टि से कैसे देखी जा सकती है ?

पंथक : आप सत्य कहते हैं, भन्ते ! आप ही सच्चे धर्मगुरु हैं।

[बाहर आहट होती है।]

देवदत्त : क्या कोई यहाँ आ रहा है ?

पंथक : आने की आहट तो ज्ञात होती है।

देवदत्त : तो अपने धर्मगुरु जैसे वस्त्र ठीक कर लूँ।

[अपने वस्त्रों को व्यवस्थित करता है।]

देवदत्त : आगन्तुक का परिचय प्राप्त करो। यदि हमारे पक्ष का हो तो उसे प्रवेश करने दो।

पंथक : जैसी आज्ञा, भन्ते ! **(प्रस्थान)**

देवदत्त : (टहलते हुए—)

अक्कोधेन जिने कोधं असाधुं साधुना जिने।
जिने कदरियं दानेन सच्चेनालीकवादिनं ।।[1]

पंथक : (**प्रवेश कर**) भन्ते ! दो सैनिक हैं। राजकुमार अजातशत्रु के गुप्तचर हैं।

देवदत्त : हाँ, स्मरण आया। मैंने ही राजकुमार अजातशत्रु से समाचार भेजने को कहा था। उन्हें शीघ्र ही यहाँ आने दो।

पंथक : जैसी आज्ञा, भन्ते ! (**प्रस्थान**)

देवदत्त : (**पुनः पढ़ते हुए—**)

अक्कोधेन जिने कोधं असाधुं साधुना जिने।
जिने कदरियं दानेन

[पंथक के साथ दो गुप्तचर सैनिक वेश में प्रवेश करते हैं।]

पहला सैनिक : भन्ते के श्री चरणों में प्रणाम।

दूसरा सैनिक : भन्ते के श्री चरणों में प्रणाम।

देवदत्त : (**पढ़ता हुआ—**)

अतीतं नानु सोचन्ति नप्प जप्पन्ति नागतं।
पच्चुपन्नेन यापेन्ति तेन वण्णो पसीदति ।।[2]

पहला सैनिक : भन्ते ! महाराज कुमार की ओर से एक सन्देश निवेदन करना है।

देवदत्त : कुमार अजातशत्रु की ओर से ? निवेदन करो।

दूसरा सैनिक : एकान्त की आवश्यकता है।

देवदत्त : कोई चिन्ता की बात नहीं। पंथक हमारा ही उपासक है। वह भी बहुत से सन्देश निवेदन करता है।

पहला सैनिक : भन्ते ! महाराज कुमार ने सूचना देने का आदेश दिया है कि उन्होंने तथागत सिद्धार्थ का वध करने के लिए कुछ बधिक भेजे थे।

देवदत्त : (**व्याकुलता दिखलाते हुए**) क्यों, क्यों ? यह तो बहुत अनर्थ हुआ। ऐसा क्यों किया ? तथागत तो मेरा बड़ा स्नेही बन्धु है। इतने बड़े संन्यासी का वध ?

पंथक : वास्तव में बड़े परिताप का विषय है।

देवदत्त : परिताप का विषय ? अरे, शोक का विषय है। किन्तु राजनीति की बातें राजकुमार अजातशत्रु से अधिक कौन जानता है ?

दूसरा सैनिक : इसमें क्या सन्देह है, भन्ते !

देवदत्त : किन्तु सूचना बहुत शोकपूर्ण है। कहीं मैं संज्ञाहीन न हो जाऊँ। मुझे सँभालो,

---

1. क्षमा से क्रोध को जीते, असाधु को साधुता से जीते। कृपण को दान से जीते और मिथ्या को सत्य से जीते।

2. वे अतीत का शोक नहीं करते, भविष्य की बातों के विषय में विवाद नहीं करते और वर्तमान में सन्तोष से रहते हैं, इसलिए उनकी कांति प्रसन्न रहती है।

पंथक ! मुझे सँभालो।

पंथक : भन्ते ! मैं सँभालता हूँ।

[देवदत्त को सँभालने के लिए पंथक आगे बढ़ता है।]

पहला सैनिक : भन्ते ! संज्ञाहीन न हों। जो बधिक भेजे गए थे, वे तथागत का वध नहीं कर सके।

देवदत्त : वध नहीं कर सके, तो क्या किया ?

दूसरा सैनिक : वे सभी बधिक तथागत के शिष्य हो गए।

देवदत्त : शिष्य हो गए ? बधिक और शिष्य ? दोनों में कोई अन्तर नहीं रहा ? अब तो मुझे उन बधिकों का वध करना पड़ेगा।

पहला सैनिक : क्षमा करें, भन्ते ! आप जैसे महान सन्त को पापियों का बध करने से क्या मिलेगा ?

दूसरा सैनिक : भन्ते ! महाराज कुमार ने एक दूसरा सन्देश भी इसी तरह का भेजा है।

देवदत्त : शीघ्र कहो, शीघ्र कहो।

दूसरा सैनिक : महाराज कुमार की आज्ञानुसार तथागत को मारने के लिए जो नीलगिरि नामक हाथी भेजा गया था···

देवदत्त : यह महाराज कुमार को क्या सूझा है ! हाय, हाय, उसने तो तथागत को मार डाला होगा।

दूसरा सैनिक : नहीं भन्ते ! मदोन्मत्त नीलगिरि हाथी चिंघाड़ते हुए तथागत की ओर दौड़ा।

देवदत्त : हाँ, हाँ, जल्दी कहो, कहो।

दूसरा सैनिक : नीलगिरि तथागत की ओर दौड़ा किन्तु उसके सामने वे शांत और स्थिर चित्त खड़े रहे। जैसे ही वह हाथी तथागत के समीप पहुँचा उसने उनकी पग-धूलि अपने माथे पर रख ली और चुपचाप अपनी हस्तिशाला में लौट गया।

देवदत्त : हस्तिशाला में लौट गया ? और उसका महावत कहाँ गया ?

दूसरा सैनिक : महावत ? महावत को उस हाथी ने सूँड़ से पकड़ कर दूर उछाल दिया। उसके हाथ-पैर टूट गए। तथागत उस महावत का उपचार करने के लिए स्वयं उसके पास चले गए।

देवदत्त : उस महावत का क्या, मैं स्वयं तथागत का उपचार कर सकता था।

दूसरा सैनिक : हाँ, आप तो बहुत बड़े सन्त हैं।

देवदत्त : कोई चिन्ता की बात नहीं। मैं स्वयं कुमार अजातशत्रु से बातें करूँगा। अरे, अपनी राजनीति तो वे ही समझते हैं। अस्तु, तुम लोग जाओ।

दूसरा सैनिक : जैसी आज्ञा।

पहला सैनिक : भन्ते को प्रणाम।

दूसरा सैनिक : भन्ते को प्रणाम।

[सिर झुकाकर दोनों गुप्तचरों का प्रस्थान]

देवदत्त : (गुप्तचरों के जाने की दिशा में देख कर) अभागे गए यहाँ से। ऐसी सूचना देने आए थे जैसे मैं इन्हे कोई पुरस्कार देता। अरे, दो सूचनाओं में से एक ही ठीक होती। अजातशत्रु द्वारा भेजे गए बधिक तथागत के शिष्य बन गए, हाथी ने तथागत की पग-धूलि अपने माथे पर रख ली। संसार के सभी जीव कायर और डरपोक हैं। मैंने उस कुटिल सिद्धार्थ के बध की कितनी योजनाएँ बनायी थीं, सब व्यर्थ हो गयीं। लगता है कि सिद्धार्थ ने छह वर्ष जंगल में रह कर कोई इन्द्रजाल सीख लिया है। इसी से वह सबको अपने वश में कर लेता है।

पंथक : आप सत्य कहते हैं, भन्ते ! उन्होंने कोई इन्द्रजाल अवश्य सीख लिया।

देवदत्त : पर सिद्धार्थ के बढ़ते हुए प्रभाव को रोका कैसे जाए ? जब तक उसका बध नहीं हो जाता, भोली जनता उसके इन्द्रजाल में उलझती ही जाएगी।

पंथक : इस बार आप ही कोई अचूक उपाय निकालें, भन्ते !

देवदत्त : हूँ। अच्छा, सोचता हूँ। **(सोचने की मुद्रा बनाता है। एक क्षण बाद)** देखो, तुम गृध्रकूट पर्वत जानते हो ?

पंथक : हाँ, भन्ते ! जानता हूँ।

देवदत्त : उसके शिखर पर बड़ी-बड़ी चट्टानें हैं।

पंथक : हाँ, भन्ते ! काले-काले मेघों की भाँति बड़ी-बड़ी चट्टानें हैं।

देवदत्त : उसी गृध्रकूट पर्वत के नीचे सिद्धार्थ उपदेश देते हैं।

पंथक : कल भी उन्होंने वहाँ उपदेश दिया था।

देवदत्त : तो फिर जब वे वहाँ उपदेश देने के लिए बैठें तो पर्वत-शिखर से एक बड़ी चट्टान लुढ़का दी जाए। वह वेग से नीचे गिर कर सिद्धार्थ का सिर ही चूर-चूर कर देगी।

पंथक : यह आपने बहुत अच्छा सोचा, भन्ते ! पर उस चट्टान को मैं अकेले ही कैसे लुढ़का सकूँगा ! कहाँ पापों से भी भारी चट्टान और कहाँ आपके पुण्यों से हलका मैं ?

देवदत्त : अरे, मैं भी तो तुम्हारे साथ छिपकर रहूँगा।

पंथक : तब तो आपकी योजना पूरी होने में कोई सन्देह ही नहीं रहेगा।

देवदत्त : अब इस बार तो सिद्धार्थ बच ही नहीं सकेंगे। मैं आज से ही शक्ति प्राप्त करने के लिए हरिण के मांस का भोजन करूँगा। तुम भी मेरे साथ चलो।

पंथक : धन्य है, भन्ते ! जिस प्रकार हरिण चौकड़ी भरता है, उसी प्रकार आपकी योजना भी हरिण की भाँति चौकड़ी भरेगी।

देवदत्त : तो फिर शीघ्र ही चलो।

पंथक : चलिए, भन्ते !

[दोनों शीघ्रता से जाते हैं।]

[परदा गिरता है।]

पाँचवाँ अंक

समय : संध्याकाल
स्थान : श्रावस्ती का एक मार्ग

[एक भिक्षु झाड़ू से स्थान स्वच्छ कर रहा है । कुछ रुक कर वह दूसरे भिक्षु को पुकारता है ।]

भिक्षु : उत्तरपाल ! ओ उत्तरपाल ! मैंने यह स्थान स्वच्छ कर लिया है । अब शीतल जल ले आओ ।

[उत्तरपाल का प्रवेश]

उत्तरपाल : हारीत ! यह जल रहा । भगवान तथागत के पैर धोने के लिए ।

हारीत : बड़े भाग्य की बात है कि भगवान चारिका करते हुए इस ओर आ रहे हैं । वे कितने भाग्यशाली हैं जो भगवान का निरन्तर दर्शन करते रहते हैं, उनके उपदेश सुनते रहते हैं । किन्तु सुनते हैं उनके निकट सम्बन्धी देवदत्त उनसे बड़ा द्वेष रखते हैं ?

उत्तरपाल : अरे, उन्होंने तो भगवान तथागत के मारने की कितनी योजनाएँ बनायीं किन्तु तथागत का प्रभाव कि वे व्यर्थ हो गयीं । उस दिन तो उन्होंने गृध्रकूट पर्वत से भगवान् तथागत पर एक शिला भी गिरा दी परन्तु भगवान् तथागत के चरणों के समीप आकर टुकड़े-टुकड़े हो गयी ।

हारीत : धन्य ! धन्य ! बहुत प्रताप है भगवान तथागत का ।

उत्तरपाल : भगवान तथागत का अपमान करने का फल भी उन्हें मिल गया ।

हारीत : सो कैसे ?

उत्तरपाल : गृध्रकूट से चट्टान गिराने में उन्हें बहुत परिश्रम करना पड़ा । उन्हें बहुत प्यास लग आयी । उन्होंने सोचा स्नान भी कर लें । वे पास ही के सरोवर में स्नान करने के लिए उतरे । वहीं एक ग्राह छिपा हुआ बैठा था । वह उन्हें पानी के भीतर ही खींच कर खा गया ।

हारीत : भगवान तथागत की हिंसा करने का यह परिणाम तो होगा ही । उनका तेज ही ऐसा है । आज हम उनके दर्शन कर धन्य हो जाएँगे ।

उत्तरपाल : हमारे पूर्व जन्म के सुकृत तो हैं ही कि वे यहाँ आ रहे हैं ।

हारीत : किन्तु हमें एक बात का ही भय है ।

उत्तरपाल : किस बात का ?

हारीत : यहाँ से कुछ ही दूर अरण्य में अंगुलिमाल डाकू रहता है । इस मार्ग से जो पथिक जाते हैं वह उनकी अंगुलियाँ काट कर अपने गले में पहन लेता है । इसीलिए उसका नाम अंगुलिमाल पड़ गया है । अब इसी मार्ग से भगवान तथागत जा रहे हैं ।

उत्तरपाल : हाँ, अंगुलिमाल तो बड़ा भयानक डाकू है । कहते हैं कि यदि बीस, तीस,

चालीस-पचास व्यक्ति भी इकट्ठे होकर जाएँ तो भी वे अंगुलिमाल के हाथ में पड़ जाते हैं। किन्तु मेरा तो विश्वास है कि वह भी तथागत का कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

हारीत : क्यों ?

उत्तरपाल : क्योंकि भगवान तथागत आवर्तनी विद्या जानते हैं। यदि कोई व्यक्ति उनका विरोध भी करता है तो या तो वह उनका शिष्य बन जाता है, या समाप्त हो जाता है। देवदत्त का अन्त तो तुमने देख ही लिया।

हारीत : हाँ, यह तो नितान्त सत्य है। किन्तु मैं कुछ ही समय पूर्व संघ में दीक्षित हुआ हूँ इसलिए भगवान के सम्बन्ध में विशेष कुछ नहीं जानता।

उत्तरपाल : अरे, वे बोधिसत्व से भगवान बुद्ध हुए हैं। भूत, वर्तमान और भविष्य सब जानते हैं।

हारीत : तो वे बुद्ध कैसे हुए, मुझे उनका चरित्र सुना दो न ? मेरे कान पवित्र हो जाएँ। बस इतना ही जानता हूँ कि उन्होंने अपना राजभवन त्याग कर वन में जाकर तपस्या की। किन्तु इतने लोग तपस्या करते हैं, सभी तो भगवान् बुद्ध नहीं हो जाते।

उत्तरपाल : उनकी तपस्या भिन्न प्रकार की रही है। उन्होंने अपनी साधना के सम्बन्ध में वत्सराज उदयन के पुत्र बोधिराज कुमार को अपना अनुभव सुनाया था।

हारीत : तुम जानते हो वह अनुभव ? कृपया मुझे भी सुना दो।

उत्तरपाल : भगवान बुद्ध का चरित्र कहने से मुझे भी सुख मिलता है। उन्होंने अपनी बात सुनाते हुए कहा कि जब वे राजकुमार सिद्धार्थ थे तब उन्हें सुख से सुख प्राप्त नहीं होता था। वे कहते थे कि दुःख से सुख प्राप्त हो सकता है। इसीलिए वे राज-भवन छोड़कर प्रव्रज्या के लिए आलार क़ालाम के पास गए।

हारीत : ये आलार कालाम कौन थे ?

उत्तरपाल : ये आलार कालाम बहुत बड़े संन्यासी थे। कौसल देश के निवासी थे किन्तु कपिलवस्तु के समीप ही उनका आश्रम था। शाक्य और कोलिय राज्यों में उनकी बहुत ख्याति थी। आलार कालाम ने कुमार सिद्धार्थ को कुछ योग की विधियाँ बतलायीं। चार ध्यान और उन पर के तीन सोपान। किन्तु कुमार सिद्धार्थ की जिज्ञासा उनसे पूरी नहीं हुई। उन्होंने सोचा कि यह तो केवल मनोनिग्रह का मार्ग है, इससे मानस मात्र को क्या लाभ ! वे तो मानव-मात्र के कल्याण का मार्ग खोजना चाहते थे।

हारीत : हाँ, भगवान तो मानव मात्र के कल्याण के लिए ही अवतरित हुए हैं।

उत्तरपाल : इसलिए आलार कालाम को छोड़कर वे उद्दक रामपुत्त के पास गए, किन्तु वे भी समाधि मार्ग सिखलाते थे। अन्तर केवल इतना था कि आलार कालाम समाधि के सात सोपान बतलाते थे, उद्दक रामपुत्त आठ। कुमार सिद्धार्थ को इस मार्ग में भी विशेष तत्त्व नहीं दिखलायी दिया।

हारीत : हाँ, ये दोनों मार्ग तो लगभग एक ही से थे।

उत्तरपाल : वहाँ से कुमार सिद्धार्थ राजगृह चले गए। वहाँ अनेक श्रमण संघ थे। उन्होंने

सोचा, संभव है, इनमें से किसी पंथ से उन्हें तत्त्व-ज्ञान की प्राप्ति हो। ये पथ तपश्चर्या को ही मोक्ष का साधन मानते थे। इसलिए कुमार सिद्धार्थ ने तपश्चर्या का मार्ग अपनाया।

हारीत : तपश्चर्या तो बहुत कठिन मार्ग है।

उत्तरपाल : हाँ, कठिन मार्ग तो है किन्तु दृढ़-व्रती के लिए कोई मार्ग कठिन नहीं है। तपश्चर्या के लिए वे राजगृह से उरुवेला चले गए। लोकोत्तर शान्ति के लिए यही स्थान सर्वश्रेष्ठ था। सुशोभित वन, मन्द-मन्द बहती हुई नदी। दोनों ओर सफेद रेतीला मैदान। वन के चारों ओर भिक्षाटन के लिए गाँव। पहले उन्होंने हठ योग की साधना की।

हारीत : राजकुमार का कोमल और सुन्दर शरीर और हठ योग की कठिन साधना ?

उत्तरपाल : हाँ, उन्होंने हठ योग की कठिन साधना की किन्तु उसमें उन्हें कुछ तथ्य नहीं दिखलायी दिया। तब उन्होंने उपोषण आरंभ किया।

हारीत : यह उपोषण क्या ?

उत्तरपाल : उपोषण ? अन्न-जल का सूक्ष्म आहार। यह साधना उन्होंने छह वर्षों तक की।

हारीत : छह वर्षों तक ? तब उनके सुन्दर शरीर की क्या दशा हुई होगी ?

उत्तरपाल : वह दुर्बलता की चरम सीमा तक पहुँच गया। उस अनशन से ऊँट के पैर जैसा उनका कूल्हा हो गया। साल की पुरानी कड़ियों जैसी उनकी पसलियाँ हो गयीं, गहरे कुएँ में तारों की छाया जैसी उनकी आँखें हो गयीं।

हारीत : हाय ! हाय ! उन्हें बड़ा कष्ट हुआ होगा।

उत्तरपाल : जब वे अपनी काया को सहलाते थे तब सड़ी जड़ वाले रोम झड़ पड़ते थे। वे उठ-बैठ नहीं सकते थे। कड़ी धूप में सूखी हुई कड़वी लौकी की तरह सिर की खाल सिमिट गयी थी।

हारीत : हाय ! हाय ! इतनी बड़ी साधना कौन कर सकता है, उत्तरपाल ?

उत्तरपाल : राजकुमार सिद्धार्थ ने इतनी कठिन साधना भी की किन्तु इससे भी उन्हें चरम दर्शन की प्राप्ति नहीं हुई। उन्होंने सोचा कि इस कृश काया से तो उठा-बैठा भी नहीं जा सकता। इन्द्रियाँ ही नष्ट हो रही हैं तो ध्यान-सुख कैसे प्राप्त हो सकता है ? मुझे कुछ स्थूल आहार भी करना चाहिए और ध्यान मार्ग की ओर अग्रसर होना चाहिए।

हारीत : यह ध्यान मार्ग कैसा ?

उत्तरपाल : ध्यान मार्ग का अनुभव कुमार सिद्धार्थ को पहले भी हो चुका था। जब उनके शाक्य पिता के खेतों में काम चल रहा था तब उन्होंने जम्बू वृक्ष की शीतल छाया में बैठकर प्रथम ध्यान प्राप्त कर लिया था। इसी ध्यान मार्ग का उदय उनके मस्तिष्क में हुआ। उन्होंने सोचा कि विलास की वस्तुओं के उपभोग के बिना ही जो सुख उदय होता है, उसे ही क्यों न स्वीकार किया जाए ? उससे क्यों डरा जाए ? किन्तु वह सुख इस कृश शरीर से तो मिलेगा नहीं। इसलिए आहार करने

की आवश्यकता है।

हारीत : कुमार सिद्धार्थ ने यह बहुत अच्छा सोचा।

उत्तरपाल : उस समय पाँच भिक्षु उनकी सेवा में थे। वे सोचते थे कि इतनी कठिन तपस्या से कुमार सिद्धार्थ को जिस धर्म का बोध होगा उससे हमें भी लाभ होगा किन्तु जब कुमार अन्न खाने लगे तो उन्होंने समझा कि कुमार तपश्चर्या से भ्रष्ट हो गए और तभी वे पाँच भिक्षु उनका साथ छोड़कर सारनाथ चले गए।

हारीत : इसी से ज्ञात होता है कि संसार कितना स्वार्थी है।

उत्तरपाल : किन्तु कुमार ने इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं की। उन्हें तो विश्वास हो गया था कि तपश्चर्या सिद्धिप्रद नहीं है। सीधे-सादे ध्यान मार्ग से ही तत्त्व-बोध प्राप्त किया जा सकता है। कुछ ही दिनों के अनन्तर सुजाता नाम की एक कुलीन युवती ने कुमार सिद्धार्थ को सुगन्धित और स्वादिष्ट पायस से सन्तुष्ट किया।

हारीत : हाँ, भाग्यवती सुजाता की बात तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ। वह मेरे गाँव की ही सुलक्षणा युवती है।

उत्तरपाल : सुजाता की दी हुई भिक्षा स्वीकार कर कुमार सिद्धार्थ निरंजना नदी के तट पर चले गए। यह बड़ा रमणीक भू-भाग था। सुन्दर श्वेत घाट और मन्द समीर। वे एक पीपल के पेड़ के नीचे बैठे और ध्यान में लीन हो गए। वह वैशाख पूर्णिमा की रात थी। इसी ध्यान योग से उन्हें दिव्य सम्बोध प्राप्त होने लगा और तभी 'मार' ने उन पर आक्रमण किया।

हारीत : हाँ, 'मार' के आक्रमण की बात तो मैंने सुनी है किन्तु उस सम्बन्ध में मैं विशेष नहीं जानता।

उत्तरपाल : काम-वासना और तृष्णा के आक्रमण को ही 'मार' कहा गया है। सारी तृष्णाएँ और वासनाएँ जैसे सेना बनाकर कुमार सिद्धार्थ को ध्यान से हटाने के लिए आयीं किन्तु कुमार सिद्धार्थ अपने आसन से कण भर भी नहीं हटे। सर्वहारा वसुन्धरा उनकी साक्षी बनी रही। जब 'मार' की सेना पराजित होकर भाग गयी तब प्रभातकालीन सूर्य की भाँति सम्यक् सम्बुद्धि उनके चिन्तन में अवतरित होने लगी। जन्म की अशान्ति से लेकर निर्वाण की शान्ति तक उनका ज्ञान शतदल कमल की भाँति खिल उठा।

हारीत : (**प्रसन्न होकर**) धन्य है! धन्य है! कुमार सिद्धार्थ जैसी साधना संसार में दूसरा कौन कर सकता है।

उत्तरपाल : पिछले जन्मों में वे बोधि-सत्व ही रहे। अर्थात् वास्तविक सत्य के ज्ञान के लिए यात्राएँ करते रहे। इस जन्म में वह यात्रा पूरी हुई और वे बोधिसत्व से भगवान बुद्ध हुए। वे सम्यक् सम्बोध से उद्भासित हो गए।

हारीत : इसी सम्यक् सम्बोध से उन्हें एक नया धर्म-मार्ग मिल गया। इस धर्म-मार्ग में एक नये ज्ञान-दर्शन की बात कही जाती है।

उत्तरपाल : हाँ, उनका ज्ञान-दर्शन चार सत्यों में प्रकट हुआ। दुःख, दुःख-समुदय, दुःख-निरोध और दुःख-निरोध-गामिनी प्रतिपदा।

हारीत : इसे कुछ विस्तार से समझा दीजिए, भन्ते !

उत्तरपाल : देखो, पहला सत्य दु:ख है। जन्म दु:खकारक है, वृद्धावस्था दु:खकारक है, व्याधि दु:खकारक है, मरण दु:खकारक है। ये सब वासनामय होने के कारण दु:ख-कारक होते हैं। दूसरा सत्य है, दु:ख-समुदय। बार-बार उत्पन्न होने वाली और अनेक विषयों में रमने वाली तृष्णा बड़ी भयानक है। यह तृष्णा काम तृष्णा, भव तृष्णा और विनाश तृष्णा के रूप ग्रहण करती है। इस तरह तृष्णा ही दु:ख-समुदय है। तीसरा सत्य है दु:ख-निरोध। वैराग्य भावना से तृष्णा का निरोध। वैराग्य भावना से इस तृष्णा का निरोध करना, त्याग करना इससे मुक्ति पाना आवश्यक है। और चौथा सत्य है दु:ख-निरोध-गामिनी प्रतिपदा। जीवन के इन दु:खों से मुक्ति पाने का जो मार्ग है उसी का अनुसरण करना सबसे बड़ा सत्य है। इसके लिए तब मध्यम मार्ग ग्रहण करना आवश्यक है।

हारीत : इस मध्यम मार्ग का क्या तात्पर्य है ?

उत्तरपाल : मध्यम मार्ग का तात्पर्य है, दो अन्तों तक नहीं जाना चाहिए। पहला अन्त है कामोपभोग और ऐश्वर्य में सुख मानना और दूसरा अन्त है अत्यधिक तपस्या से देह को दंड देना। भोजन, पान और कामिनी सुख-विलासियों की दृष्टि है और शरीर को कष्ट देना तपस्वियों की दृष्टि है। इन दोनों के बीच की दृष्टि में ही चार आर्य सत्यों का ज्ञान पाना चाहिए। इसी दृष्टि को 'मध्यमा प्रतिपदा' कहते हैं। जैसे वीणा का तार यदि अधिक कसा गया तो बजाते समय वह अंगुली से थोड़ा भी अधिक खिंचने पर टूट सकता है और वह तार यदि ढीला रह गया तो बजाने से राग ही नहीं निकल सकता। इसलिए उस तार की स्थिति न अधिक खिंची हुई न अधिक ढीली रखनी चाहिए। उसे मध्यम स्थिति में रखने से ही मधुर झंकार निकल सकती है।

हारीत : भन्ते ! कितनी सरलता से आपने भगवान बुद्ध का धर्म समझा दिया। अब भगवान आते ही होंगे।

उत्तरपाल : (**नेपथ्य में देखकर**) अरे, वे तो आ ही गए।

[दोनों आगे बढ़ते हैं। भगवान बुद्ध का प्रवेश। भव्य शरीर, काषाय वस्त्र धारण किए हुए हैं। शयनासन एक हाथ में है, दूसरे में भिक्षा-पात्र।]

उत्तरपाल : आइए भगवान तथागत ! स्वागत है।

हारीत : पधारिए भगवान तथागत ! स्वागत है।

उत्तरपाल : भगवन् ! यह आसन है और यह चरण धोने के लिए जल है।

हारीत : भगवन् ! चरण बढ़ाएँ। इनका प्रक्षालन कर दूँ।

[तथागत चरण बढ़ाते हैं। हारीत जल डालता है, उत्तरपाल प्रक्षालन करता है।]

उत्तरपाल : हारीत ! भगवान का शयनासन सँभाल लो।

हारीत : अभी सँभाल लेता हूँ।

[तथागत के हाथ से शयनासन लेकर एक ओर रखता है।]

उत्तरपाल : भन्ते ! श्रावस्ती में पिंडचार कर भोजन समाप्त कर लिया ?

तथागत : हाँ, आबुस ! मैंने पिंडचार कर भोजन समाप्त कर लिया।

उत्तरपाल : भन्ते ! हम लोगों की बड़ी इच्छा है कि आपके श्री-मुख से उपदेश ग्रहण करें। क्या हम आपसे कुछ प्रश्न कर सकते हैं ?

तथागत : आबुस ! प्रश्न कर सकते हो।

उत्तरपाल : भन्ते ! हम लोगों ने बहुत विचार किया किन्तु समाधान नहीं मिला। इस शरीर से ज्ञान-दृष्टि और लोकोत्तर सम्बोध प्राप्त होना किस प्रकार सम्भव हो सकता है ?

तथागत : आबुस ! इस सम्बन्ध में मुझे तीन उपमाएँ सूझी हैं। कोई गीली लकड़ी पानी में पड़ी हो और कोई मनुष्य अरणि लेकर उस पर घिस कर अग्नि उत्पन्न करना चाहे तो क्या उससे अग्नि उत्पन्न होगी ?

उत्तरपाल : नहीं, भन्ते ! उस लकड़ी से अग्नि उत्पन्न होना संभव नहीं है क्योंकि लकड़ी पानी में पड़ी रहने के कारण गीली है।

हारीत : उस मनुष्य का परिश्रम व्यर्थ जाएगा, भन्ते !

तथागत : उसी प्रकार जब मनुष्य शरीर एवं मन के विकारों से भीगा हुआ है तब वह चाहे कितने कष्ट उठाए उसे ज्ञान-दृष्टि और लोकोत्तर सम्बोध प्राप्त नहीं होगा। अच्छा आबुस ! कोई लकड़ी पानी में न पड़ी हो परन्तु गीली हो और वह मनुष्य अरणि घिस कर उससे अग्नि उत्पन्न करना चाहे तो क्या अग्नि उत्पन्न होगी ?

उत्तरपाल : नहीं, भन्ते ! उसका प्रयत्न व्यर्थ होगा क्योंकि लकड़ी भले ही पानी में न पड़ी हो किन्तु वह गीली है।

तथागत : उसी प्रकार आबुस ! मनुष्य मन के विकारों के प्रवाह में बहकर उनसे सिक्त न हो परन्तु उसके मन में उन विकारों की स्मृति शेष रह गई है तो वह चाहे जितने कष्ट उठाए उसे ज्ञान-दृष्टि और लोकोत्तर सम्बोध प्राप्त नहीं होगा। अच्छा, आबुस ! यदि कोई लकड़ी पानी से दूर पड़ी हो और सूखी भी हो और वही मनुष्य अरणि से घिस कर उससे अग्नि उत्पन्न करने का प्रयत्न करे तो क्या वह अग्नि उत्पन्न कर सकेगा ?

उत्तरपाल : हाँ, भन्ते ! वह अग्नि उत्पन्न कर सकेगा क्योंकि वह लकड़ी पानी से दूर पड़ी है और भीगी हुई भी नहीं है।

तथागत : उसी प्रकार आबुस ! जो मनुष्य मन के विकारों से मुक्त रहता है और मन में उनकी स्मृति भी नहीं रखता, वह अपने शरीर को कष्ट दे या न दे वह ज्ञान-दृष्टि और लोकोत्तर सम्बोध अवश्य प्राप्त कर सकता है।

हारीत : भगवन् ! हम लोग धन्य हैं कि आपके मुख से इतना सुन्दर समाधान सुनने और जानने का अवसर मिला।

उत्तरपाल : सचमुच भन्ते ! आपने इतनी सरल उपमाओं द्वारा इतना गहन ज्ञान स्पष्ट कर दिया। एक बात और स्पष्ट कर दीजिए। क्या भन्ते ! मन के विकारों का सम्बन्ध पूर्व जन्म से है ?

तथागत : आबुस ! क्या तुम जानते हो कि पूर्व जन्म में तुम थे या नहीं ?

उत्तरपाल : हम नहीं जानते, भन्ते !

तथागत : क्या तुम जानते हो कि पूर्व जन्म में तुमने पाप किया था या नहीं ?

उत्तरपाल : यह भी हम नहीं जानते।

तथागत : क्या तुम्हें ज्ञात है, आबुस ! कि तुम्हारे कितने दु:खों का नाश हुआ है और कितने अभी शेष हैं ?

उत्तरपाल : यह भी हमें ज्ञात नहीं।

तथागत : यदि वे बातें ज्ञात नहीं तो क्या इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम पूर्व जन्म में किसी प्रकार हिंसा करते थे और हिंसा के पापों का नाश करने के लिए तुम भिक्षु बने हो ?

उत्तरपाल : हो सकता है, भन्ते ! किन्तु जो इस जन्म में ही हिंसा करते हैं, उनका क्या होगा ?

तथागत : उन्हें इस जन्म के पाप शमन करने के लिए अनेक जन्म लेने पड़ेंगे।

उत्तरपाल : यह तो बहुत भयानक है, भन्ते ! इस जन्म की हिंसा अनेक जन्मों में निवृत्त होगी ? किन्तु कितने व्यक्ति ऐसे हैं जो इसी जन्म में अनेक जन्मों में हो सकने वाली हिंसा करते हैं। उनके लिए कल्याण का तो कोई मार्ग ही नहीं रह जाता। यही देखिए, भन्ते ! इस वन के पास एक हिंसक लोहित पाणि, दया-रहित एक डाकू रहता है, अंगुलिमाल। वह क्रूर हिंसापूर्वक पथिकों की अंगुलियाँ काट कर उनकी माला अपने गले में धारण करता है।

हारीत : भन्ते ! उसने ग्रामों को अ-ग्राम कर दिया है, निगमों को अ-निगम, जनपद को अ-जनपद कर दिया है। आप इस मार्ग से न जाएँ।

[नेपथ्य में घोर अट्टहास होता है।]

उत्तरपाल : **(भयभीत होकर)** देखिए, भन्ते ! वह यहीं कहीं पास है। बीस, तीस, चालीस, पचास व्यक्ति भी एक साथ जाते हैं तो उसके हाथ में पड़ जाते हैं। आप इस मार्ग से न जाएँ !

तथागत : नहीं, आबुस ! मैं इसी मार्ग से जाऊँगा।

हारीत : मेरी भी प्रार्थना है कि इस मार्ग से न जाएँ, भन्ते ! लोग इस मार्ग पर पैर बढ़ाने का साहस नहीं करते। उसके मारे यह मार्ग रुक गया है।

उत्तरपाल : कौसल के इसी जालिन नामक वन में वह कहीं छिपा रहता है।

हारीत : जिस किसी पथिक को देखता है, उसे पकड़कर उसकी अंगुली काट लेता है। वह बड़ा क्रूर हिंसक है।

तथागत : तब तो उसकी हिंसा दूर होनी चाहिए, आबुस ! नहीं तो उसका प्रायश्चित्त

वह अनेक जन्मों में भी नहीं कर सकेगा ।

हारीत : किन्तु उसकी हिंसा किसी प्रकार दूर हो ही नहीं सकती । भन्ते ! आप इस मार्ग से न जाएँ । मैं बार-बार प्रार्थना करता हूँ ।

तथागत : प्रार्थना मत करो, आबुस ! मेरे मन में अंगुलिमाल के प्रति दया है, करुणा है ।

उत्तरपाल : क्रूर के प्रति भी इतनी करुणा ! उसकी क्रूरता आपकी करुणा को नहीं समझेगी ।

तथागत : करुणा सात्त्विक है, क्रूरता तामसिक । तामसिकता सात्त्विकता पर विजय नहीं पा सकती ।

उत्तरपाल : किन्तु अंगुलिमाल हृदयहीन है, भन्ते !

तथागत : किन्तु यदि अंगुलिमाल जन्तु नहीं, मनुष्य है तो उसके पास हृदय अवश्य होगा और यदि हृदय है तो उसमें कहीं न कहीं कोमलता अवश्य होगी । और यही कोमलता, मानवता है ।

हारीत : अंगुलिमाल मानव नहीं दानव है, भन्ते !

तथागत : तो मैं उसकी दानवता का भी तो परिचय पा लूँ । और यदि उसने मेरी भी अंगुली काटी तो उसके हृदय पर ही तो होगी । उसके हृदय पर । उसकी क्रूरता की कसौटी पर मैं अपने आपको परखना चाहता हूँ और यदि वह मुझे मार देगा तो किसी बुरे काम के लिए तो नहीं मरूँगा । उसकी हिंसा दूर करने के प्रयत्न में ही मरूँगा ।

उत्तरपाल : तो भन्ते ! हम लोग भी आपके साथ चलेंगे । कहेंगे, अंगुलिमाल ! हमारी अंगुलियाँ काट लो, तथागत की अंगुलियाँ न काटो ।

हारीत : भन्ते ! हमें अपनी सेवा में रहने दीजिए ।

तथागत : आबुस ! प्रमाद में मत पड़ो । तुम दोनों कोसल नरेश प्रसेनजित् के समीप जाओ और उनसे कहो कि तथागत हम लोगों की बात न मान कर इसी मार्ग से चले गए । मेरी इच्छा है कि आप लोग शीघ्र ही यहाँ से जाएँ ।

हारीत : आपकी जैसी आज्ञा ।

उत्तरपाल : आपकी आज्ञा ही सर्वोपरि है ।

[प्रणाम कर दोनों का प्रस्थान]

तथागत : **(कुछ क्षणों तक सोचते हुए)** तो मैं इसी मार्ग से चलूँ । **(दृढ़तापूर्वक प्रस्थान)**

[कुछ क्षणों तक शान्ति । फिर नेपथ्य में पुनः भयानक अट्टहास । अंगुलिमाल झपटता हुआ आता है । रक्त से उसके कपड़े रँगे हुए हैं । उसके गले में अंगुलियों की माला है । हाथ में कृपाण है । बाल बिखरे हुए हैं । माथे पर रक्त का टीका । कमर में अँतड़ियों की रस्सी । वह विकृत हँसी हँसता हुआ मंच पर झपटता है ।]

अंगुलिमाल : अह्‌ह्‌ह्‌ह्‌ ! अह्‌ह्‌ह्‌ह्‌ ! इधर कौन गया ! कौ···न गया ? उसके

पद-चिह्न (**नीचे देखता है**) पुरुष है। अभागा पुरुष है। मेरी क्रोधाग्नि में जलने के लिए फिर किसी पुरुष ने साहस किया। दुस्साहस। अभागा पुरुष··· (**नेपथ्य में देखकर**) वह ··वह···वह पुरुष जा रहा है? (**ललकार कर**) ओ पुरुष! खड़ा रह—खड़ा हो जा। नहीं तो तेरा बध कर दूँगा। खड़ा रहेगा तो केवल अंगुलियाँ ···हाँ, केवल अंगुलियाँ ही काटूँगा। (**पुनः अट्टहास करता है**) खड़ा रह। खड़ा हो जा। (**नेपथ्य की ओर झपटता है, फिर लौटकर आता है**) भाग गया! दूर से ही भाग गया! कायर पुरुष! मेरे सामने आने का साहस किसे होगा? (**फिर नेपथ्य में देखकर**) वृक्षों की ओट में दिखाई भी नहीं देता। अंगुलिमाल! तेरे सामने तो दैत्य, दानव, देवता भी आने का साहस नहीं करता। मनुष्य कैसे साहस करेगा? अपने जीवन से हाथ धोना पड़ेगा—नहीं तो अंगुलियों से तो हाथ धोना ही पड़ेगा। अंगुलियों से हाथ धोएगा। अंगुलियों से हाथ। कहने में भी कैसा लगता है, अंगुलियों से हाथ धोएगा। (**जोर से**) कोई संसार में है? दैत्य, दानव या देवता? (**नेपथ्य में फिर घूरता है**) ऐं? कोई स्त्री···स्त्री आ रही है? (**आगे बढ़कर गहराई से घूरते हुए**) हाँ? स्त्री ही है। ···स्त्री है। ऐं! इधर-इधर देखती आ रही है। किसी को खोजती हुई आ रही है? उसकी चाल? ऐं? उसकी चाल? उसकी चाल मेरी माँ···मेरी माँ की चाल से मिलती-सी है। मेरी माँ की चाल से। (**देखकर**) कहीं मेरी माँ ही तो नहीं है? अरे हाँ, मेरी माँ ही तो है। मेरी माँ! कदाचित् मुझे खोजती हुई आ रही है। तक्षशिला से अपना अध्ययन समाप्त कर मैं घर पर नहीं गया। मेरी माँ मेरी प्रतीक्षा करती रही। घर पर नहीं रह सकी। मुझे खोजने चल पड़ी। सुना होगा कि मैं कोसल के इस जालिन नामक वन में डाकू बन कर रहता हूँ तो—तो यहीं चली आ रही है। हाय री माँ की ममता! माँ! आओ—तुम भी आओ। मैं तुम्हारी अंगुली भी काटूँगा। एक हजार अंगुलियों में केवल एक अंगुली की कमी है। वह माँ की ही अंगुली होगी। बचपन में जिस हाथ ने मुझे थपकियाँ देकर सुलाया था, उसी हाथ की एक अंगुली काटूँगा। वही अंगुली एक हजारवीं अंगुली होगी। आओ माँ! अपने अंगुलिमाल की माला पूरी करो। (**फिर नेपथ्य की ओर देखता है**) ऐं? क्या वह भी डर गई? दिखलाई नहीं देती? किसी पेड़ की छाया में छिप गई? क्या वह भी मुझसे डर गई? कहाँ है उसकी ममता? क्या मेरे डर ने उसकी ममता को भी खा लिया? किन्तु···किन्तु ··वह डर क्यों गई? उनने तो मुझे कभी डरना सिखलाया नहीं? वह क्यों डरती है? मेरी क्रूरता की बातें सुनकर कदाचित् उसने भी डरना सीख लिया। भले ही डरे। मैं उसे छोड़ूँगा नहीं। उसकी अंगुली काटकर एक हजार अंगुलियों की माला पूरी करूँगा। ···मेरी माँ की अंगुली से मेरी एक हजार अंगुलियों की माला पूरी होगी। माला पू···री (**नेपथ्य में देखते हुए सहसा रुक कर**) ऐं? इसी मार्ग से एक श्रमण आ रहा है? हाँ, श्रमण ही तो है। संभवतः मेरी माँ की रक्षा करने के लिए श्रमण आ रहा है। श्रमण···श्रमण! काषाय वस्त्र—एक हाथ में शयनासन, दूसरे हाथ में

भिक्षा-पात्र। श्रमण ! (**ललकार कर**) ओ श्रमण ! ठहर…ठहर…मेरे सामने आ। (**देखकर**) हाँ, सामने आ रहा है। आश्चर्य है, अद्‌भुत है ! इस मार्ग से दस, बीस, तीस, चालीस, पचास पुरुष साथ-साथ चलते हैं, वे भी मेरे हाथ पड़ जाते हैं और यह श्रमण अकेला ! मानो मेरा तिरस्कार करता हुआ आ रहा है। क्यों न मैं इसका उध कर दूँ ? अंगुलियाँ पीछे से काट लूँगा। (**पुकार कर**) ओ श्रमण ! इधर आ। मेरे सामने आ।(**देखकर**) हाँ, सामने ही आ रहा है। अब इसकी एक अंगुली काट लूँगा। सामने आ ही गया। मैं ही झपटकर एक अंगुली काट लूँ। (**झपट कर आगे बढ़ना चाहता है किन्तु पैर लड़खड़ा जाते हैं। बार-बार बढ़ने का प्रयत्न करता है किन्तु पैर लड़खड़ाते ही रहते हैं**) ऐं यह क्या हो गया ? मेरे पैर क्यों लड़खड़ा रहे हैं ? मेरे पैरों की शक्ति कहाँ चली गई ? मुझे क्या हो गया ? मैं पहले दौड़ते हुए हाथी को भी पीछा कर पकड़ लेता था, घोड़ों को, रथ को, मृग को भी पीछा कर पकड़ लेता था किन्तु इस श्रमण को… इस श्रमण को प्रयत्न करके भी पकड़ नहीं सकता। यह सामान्य चाल से चलकर सामने आ गया और इसे पकड़ने के लिए मेरे पैर भी असमर्थ हो रहे हैं ? आश्चर्य है, घोर आश्चर्य है। (**बार-बार तथागत को पकड़ने के लिए के नेपथ्य की ओर हाथ बढ़ाता है किन्तु शिथिल होकर हाथ नीचे झूल जाता है। फिर साहस कर जोर से श्रमण को पुकारता हुआ**) खड़ा रह, श्रमण ! स्थित हो।

[तथागत का सौम्य मुद्रा में प्रवेश]

तथागत : मैं स्थित हूँ, अंगुलिमाल ! तू भी स्थित हो। तू अस्थित है।

अंगुलिमाल : तू चला आ रहा है श्रमण ! और कहता है मैं स्थित हूँ। मैं यहाँ खड़ा हूँ और मुझे तू अस्थित कहता है ? तू कैसे स्थित है और मैं कैसे अस्थित हूँ ? मैं तो अस्थित होने का पूरा प्रयत्न कर रहा हूँ किन्तु अस्थित नहीं हो पाता और तू अपने को चलता हुआ जान कर भी अपने को स्थित कहता है ? श्रमण तो कभी झूठ नहीं बोलता ? मुझे चलने में असमर्थ समझ कर भी कहता है कि मैं अस्थित हूँ ?

तथागत : (**शान्ति से**) हाँ, अंगुलिमाल ! तू प्राणियों के प्रति क्रूर है, उन्हें मारने के लिए आतुर है, चंचल है, इसलिए तू अस्थित है और मैं प्राणियों के लिए दया से पूर्ण हूँ, करुणा से सम्पन्न हूँ, इसलिए मैं स्थित हूँ। तुझे भी अस्थित से स्थित होना है।

अंगुलिमाल : मैं स्थित होना ही नहीं चाहता किन्तु विवश होकर न जाने क्यों स्थित-सा हो रहा हूँ।

तथागत : किन्तु अपने को विवशता से स्थित समझते हुए भी तू अस्थित है। अशांत है, व्याकुल है, दीन है, हिंसा करने की क्रूरता ने तुझे विवश कर दिया है। तू प्राणियों के प्रति असंयमी है।

अंगुलिमाल : आगे तो बढ़ ही नहीं पा रहा हूँ फिर कैसे असंयमी हूँ, श्रमण ? क्या असंयम से आगे की गति रुक जाती है ?

तथागत : नहीं उपासक ! असंयम से शरीर की गति बढ़ जाती है।

अंगुलिमाल : फिर मेरे शरीर की गति क्यों नहीं बढ़ रही ?

तथागत : क्योंकि तुम्हारी आँखों में सम्यक् दृष्टि नहीं है। तुम यह बात भूल गए हो कि संसार दुःखों से भरा हुआ है। उन दुःखों में और भी दुःख जोड़ने से जीवन में सुख-शान्ति नहीं होगी। मानव का कल्याण नहीं होगा।

अंगुलिमाल : मानव का कल्याण नहीं होगा ?

तथागत : हाँ, कल्याण नहीं होगा क्योंकि मन के अहंकार और स्वार्थ से कल्याण नहीं होता।

अंगुलिमाल : किन्तु मुझमें अहंकार और स्वार्थ नहीं है, मुझमें श्रद्धा है। अपने गुरु के लिए अपार श्रद्धा है। मुझे गुरु-दक्षिणा के लिए एक हजार अंगुलियाँ चाहिए। केवल एक अंगुली की कमी है।

तथागत : तो एक अंगुली नहीं, मेरी पाँचों अंगुलियाँ काट लो, उपासक !

[तथागत अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ा देते हैं।]

अंगुलिमाल : नहीं, मुझे एक ही अंगुली चाहिए।

[अंगुलिमाल आगे बढ़ने का प्रयत्न करता है किन्तु आगे नहीं बढ़ पाता।]

अंगुलिमाल : (**विवशता दिखलाता हुआ**) मैं आगे···आगे नहीं बढ़ पा रहा हूँ, श्रमण ! क्या तू कोई आवर्तनी विद्या जानता है ?

तथागत : नहीं, अंगुलिमाल ! यह आवर्तनी विद्या नहीं है। मुझे सम्यक् दृष्टि प्राप्त हुई है, मेरे मन में शुद्ध संकल्प है, मेरे मन में विश्व-मैत्री है, मैं मितभाषी हूँ। अपनी काया से अनर्थ नहीं करता, सरल व्यवहार से जीवन व्यतीत करता हूँ। बुरे विचारों का नाश करता हूँ। विवेक जाग्रत रखता हूँ। सम्यक् समाधि में शान्ति अनुभव करता हूँ।

अंगुलिमाल : (**शिथिल होकर**) तब तो मैं बहुत अशान्त हूँ, श्रमण !

तथागत : तुम इसलिए अशान्त हो कि पिछले जन्मों में तुमने बहुत हिंसाएँ की हैं। उनका प्रायश्चित्त तो अनेक जन्मों में ही हो सकता है। तुम इस जन्म में जिसमें तुम्हें प्रायश्चित्त करना चाहिए उसमें तुम और भी अधिक हिंसाएँ कर रहे हो, कितने जन्मों में इनसे तुम्हें मुक्ति मिल सकेगी, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसीलिए मन के संस्कारों से तुम इतने अशान्त हो।

अंगुलिमाल : (**नम्र होकर**) फिर मैं कैसे शान्ति-लाभ करूँगा ?

तथागत : मैत्री, करुणा आदि मनोवृत्तियों से चित्त एकाग्र करो, अंगुलिमाल ! चित्त एकाग्र होने से तुम्हें शांति प्राप्त होगी।

अंगुलिमाल : (**विचार करते हुए**) चित्त एकाग्र करने से शान्ति प्राप्त होगी, सत्य है, श्रमण ! मैं चित्त एकाग्र करूँगा। अब कहीं नहीं भटकूँगा। अपनी ही अंगुली काट कर एक हजार अंगुलियों की गुरु-दक्षिणा पूरी करूँगा।

तथागत : देह को दंड देने से कोई लाभ नहीं है, अंगुलिमाल ! फिर शरीर में अनेक

अपवित्र पदार्थ भी भरे हैं। अंगुलियों में भी अपवित्र पदार्थ होंगे ही। ऐसी अपवित्र वस्तु से गुरु-दक्षिणा लांछित होगी। और ऐसी गुरु-दक्षिणा माँगी ही क्यों गयी? तुम अपना और अपने गुरु का परिचय दो। तुम्हारी गुरु-दक्षिणा लांछित न हो, ऐसी सूचना मैं उन्हें दे दूँगा।

अंगुलिमाल : **(विचारों में लीन होते हुए)** श्रमण! मेरा वास्तविक नाम अहिंसक है। पिता गार्ग्य और माता मैत्रायणी हैं। मुझे तक्षशिला में अध्ययन करने के लिए भेजा गया था। मैं अपने आचार्य का सबसे प्रिय शिष्य था, इससे मेरे सहपाठी मुझसे ईर्ष्या करने लगे। उन्होंने आचार्य से मेरे विरुद्ध अनेक बातें कहीं। दुर्भाग्य से आचार्य ने मेरे सहपाठियों के कथन पर विश्वास कर लिया। मैं बहुत बलवान था, सामान्य दंड से मेरी कोई हानि नहीं होती, इसलिए मुझे मारने का उपाय सोचा गया। शिक्षा-समाप्ति पर मेरे आचार्य ने मुझे कहा कि गुरु-दक्षिणा के रूप में एक हजार अंगुलियाँ मुझे लाकर दो। संभवतः उन्होंने सोचा कि अंगुलियाँ काटने में यह एक न एक दिन किसी शक्तिशाली व्यक्ति से अवश्य मारा जाएगा। किन्तु मैंने इसकी चिन्ता नहीं की। आचार्य की आज्ञा सादर मान कर कोसल के इस जालिन नामक वन में मैं पथिकों की अंगुलियाँ काटने लगा। कल तक एक कम एक सहस्र अंगुलियाँ काटीं। केवल एक अंगुली की कमी रह गयी। आपके आने के पूर्व मैंने देखा कि मुझे खोजते हुए मेरी माँ आ रही है। मैंने सोचा कि इस एक अंगुली की कमी मैं अपनी माँ की अंगुली काट कर पूरी करूँगा। मैं अपनी माँ की अंगुली काटने जा रहा था जिस माँ ने मुझे जन्म दिया। **(सिसकने लगता है।)**

तथागत : शान्त···शान्त, अंगुलिमाल! तुम्हारी माँ मुझे मार्ग में मिली थी। वह तुम्हें खोजते हुए इधर-उधर भटक रही थी। मैंने ही उसे तुम्हारे पास आने से रोक दिया। मैंने उसे आम्र वन में विश्राम करने के लिए कह दिया और स्वय तुम्हारे पास चला आया। यदि तुम आवश्यक समझते हो कि तुम्हारी गुरु-दक्षिणा पूरी ही होनी चाहिए तो अपनी माँ की अंगुली के स्थान पर मेरी अंगुली काट लो। एक बार मैं फिर अपनी अंगुली काटने का आग्रह तुमसे कर रहा हूँ।

अंगुलिमाल : **(दृढ़ता से)** नहीं, श्रमण! अब मैं कोई अंगुली नहीं काटूँगा। मैं स्वयं अपने आचार्य की सेवा में जाकर निवेदन करूँगा कि आपकी गुरु-दक्षिणा में केवल एक अंगुली शेष है, आप चाहें तो स्वयं मेरी अंगुली काट लें। किन्तु अंगुली जैसी अपवित्र वस्तु से संसार के इतिहास में गुरु-दक्षिणा लांछित कही जाएगी, ऐसा श्रमण का कथन है।

तथागत : **(अभय हस्त उठा कर)** तुम शान्ति प्राप्त करो, अंगुलिमाल!

अंगुलिमाल : धन्य हो, श्रमण! मेरे पिता ने मेरा नाम अहिंसक रखा था। अब मैं अपने नाम को पूर्ण रूप से सार्थक करूँगा। यह कृपाण फेंकता हूँ, अब इसे कभी हाथ में नहीं लूँगा।

[अंगुलिमाल अपने हाथ का कृपाण फेंक देता है।]

तथागत : (हाथ उठा कर) मैं प्रसन्न हुआ, उपासक !

अंगुलिमाल : (घुटने टेक कर) मैं आपके चरणों की वन्दना करता हूँ ।

[अंगुलिमाल चरणों के समीप झुक जाता है ।]

तथागत : उठो, उठो, अंगुलिमाल ! तुम जीवन भर शान्ति लाभ करो । चलो मेरे साथ । तुम्हारी माँ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है ।

अंगुलिमाल : आपकी शरण में आकर मैं धन्य हुआ, श्रमण !

तथागत : अंगुलिमाल ! तुम प्रव्रज्जित हुए । आज से तुम भिक्षु बनो ।

[तथागत आशीर्वाद का हाथ उठाते हैं ।]

अंगुलिमाल : बुद्धं सरणं गच्छामि !

[अंगुलिमाल प्रणाम करता है, तथागत अभय मुद्रा में हाथ उठाते हैं ।]

[परदा गिरता है ।]

छठा अंक

समय : अपराह्न

स्थान : कौशाम्बी के राजप्रासाद का बाहरी कक्ष

[यह कक्ष वस्त्रालंकारों से पूर्ण सुसज्जित है । कौशेय और पाटकंचुक यथास्थान सुशोभित हैं । कक्ष के मध्य में स्फटिक के हाथियों पर सिंहासन है जिस पर मणि-जटित छत्र है । उसके दोनों ओर भद्र पीठिकाएँ हैं जो कौशेय से सुसज्जित हैं । स्थान-स्थान पर अनेक दीपाधार हैं, जिनमें अनेक प्रकार के रत्न जड़े हैं । अगरु-पात्रों से हलकी-सी धूम-राशि उठ रही है ।

दो राजकर्मचारी चंद्रचूड़ और शेखरक सामने पदचार कर रहे हैं । बीच-बीच में वे सिंहासन की सजावट पर भी ध्यान रखते हैं । किसी वस्त्र की सिकुड़न ठीक करते हैं या अगरु-पात्रों को सँभाल कर यथास्थान रखते हैं ।]

चंद्रचूड़ : शेखरक ! सुनते हैं कि यह युद्ध बड़ा भयानक था । हमारे सम्राट् वत्सराज ने किस शक्ति और साहस से कनकावती राज्य के अरुणि की अक्षौहिणी सेना नष्ट कर दी । सैनिक गण कहते हैं कि हमारे सम्राट् ने इस प्रकार बाण-वर्षा की कि लगता था रणभूमि में अग्नि-वर्षा हो रही है ।

शेखरक : हाँ, ऐसा भयानक युद्ध तो हम लोगों ने जीवन में कभी नहीं सुना और शत्रु अरुणि को तो सम्राट् ने इस प्रकार बन्दी बनाया जिस प्रकार बढ़ी हुई नदी की

लहर तट का सहज ही नष्टभ्रष्ट कर देती हैं।

चंद्रचूड़ : आश्चर्य की बात तो यह है कि सम्राट् जिस कुशलता से वीणा बजाते हैं, उसी कुशलता से कृपाण भी चलाते हैं। आज वे युद्ध-भूमि से लौटे हैं। कृपाण का कौशल तो समाप्त हो गया अब कदाचित् वीणा की कला देखने का अवसर मिले !

शेखरक : सम्राट् की वीणा की मधुरता एक ओर है तो भगवान तथागत की वाणी की मधुरता दूसरी ओर है। यह भी एक संयोग की बात है कि भगवान तथागत भी आज इस नगर में धर्मोपदेश कर रहे हैं। जनता उनका भी स्वागत करने के लिए उतावली हो रही है। कपिलवस्तु में चौमासा बिताने के अनन्तर भगवान तथागत वैशाली, राजगृह और काशी होते हुए यहाँ कौशाम्बी पधारे हैं। कौशाम्बी में उनका आगमन मंगलमय हो !

चंद्रचूड़ : अरे, जहाँ वे जाते हैं, वहाँ तो मंगल ही बरसने लगता है। सुना गया है कि भगवान तथागत ने डाकू अंगुलिमाल को ऐसा प्रभावित किया कि दूसरों की अंगुलियाँ काटने के स्थान पर वह स्वयं अपनी अंगुली काटने के लिए तैयार हो गया। वह भगवान की सेवा में आकर भिक्षु बन गया। लगता है, एक सिंह शशक हो गया। भगवान तथागत सम्भवत: कोई सम्मोहिनी विद्या जानते हैं। बड़े से बड़ा क्रोधी व्यक्ति भी उनके सामने इस प्रकार शान्त हो जाता है जिस प्रकार धारासार वृष्टि से अग्नि शीतल हो जाती है।

शेखरक : उनके व्यक्तित्व में ऐसा प्रभाव तो अवश्य है किन्तु हमारे सम्राट् अभी तक उनके प्रभाव में नहीं आए। और मैं समझता हूँ कभी आ भी नहीं सकते।

चंद्रचूड़ : भविष्य की बात कौन जानता है ! (**सोचता है।**)

शेखरक : अरे, अभी तक प्रभाव नहीं पड़ा तो भविष्य में क्या पड़ेगा ? बात यह है कि हमारे सम्राट् युद्ध को ही अपनी विजय का चिह्न समझते हैं जबकि भगवान तथागत शान्ति और क्षमा को ही जीवन का आदर्श मानते हैं। एक उत्तरी ध्रुव हैं तो दूसरे दक्षिणी ध्रुव। और दोनों ही ध्रुव की भाँति अटल हैं। दोनों का मिलाप कैसे हो सकता है ?

चंद्रचूड़ : मिलाप होना कठिन भले ही लगे किन्तु मिलाप हो सकता है। भगवान शिव के मस्तक पर अमृत से परिपूर्ण चन्द्र है तो कण्ठ में हलाहल विष। अमृत और विष एक साथ ही शरीर में हैं।

शेखरक : हाँ, आज भगवान तथागत संध्या समय इसी प्रासाद के समीप जन-समूह को धर्म का उपदेश करेंगे। और उनके उपदेश की भी क्या बात है ! उनका उपदेश जनता जितनी बार सुनती है, उतनी ही बार उसकी इच्छा अधिक सुनने की होती है और भगवान तथागत हैं भी प्रभावशाली। कितनी सौम्य मूर्ति है उनकी और कितनी मधुर वाणी। जैसे वे संसार का समस्त दु:ख दूर करने के लिए अवतरित हुए हैं। दिव्य ललाट, उठी हुई नासिका, फैले हुए ओंठ, जैसे वाणी ने मधुरता से निकलने के लिए एक मंगल द्वार पा लिया है।

चंद्रचूड़ : तुम तो भगवान तथागत के ध्यान में ही डूब गए !

शेखरक : भगवान तथागत का ध्यान ही ऐसा है, चंद्रचूड़ ! किन्तु सम्राट् तथागत को देखना भी नहीं चाहते। उनकी दृष्टि अनुकूल नहीं है।

चंद्रचूड़ : (**सोचते हुए**) हाँ, यह बात तो अवश्य है। सम्राट् कृपाण में विश्वास रखते हैं, तथागत कृपा में। सम्राट् हिंसा से प्रसन्न होते हैं, तथागत अहिंसा को ही जीवन का धर्म समझते हैं। सम्राट् दण्ड देते हैं, भगवान तथागत क्षमा करते हैं। यह दुःख की बात है कि सम्राट् तथागत के धर्म को अच्छा नहीं समझते।

शेखरक : जब हमारे सम्राट तथागत का विरोध करते हैं तो तथागत को राजधानी में आने का सुयोग ही कैसे मिला ?

चंद्रचूड़ : इसका एक रहस्य है।

शेखरक : क्या रहस्य है ?

चंद्रचूड़ : (**समीप आकर कुछ धीमे स्वर में**) हमारी सम्राज्ञी सामावती के पिता श्रीमान् घोषित कौशाम्बी में भगवान तथागत के ठहरने के लिए एक संघाराम बनवाना चाहते थे। किन्तु सम्राट् ने स्वीकृति नहीं दी। जब श्रीमान् घोषित ने अपनी पुत्री सामावती को सम्राट् की राजमहिषी बनने में अपनी सहमति प्रकट की तब सम्राट् ने संघाराम बनवाने की स्वीकृति प्रदान कर दी। भगवान तथागत कल उस संघाराम में आए और आज वे राजप्रासाद के समीप अपने धर्म का उपदेश करेंगे।

[नेपथ्य में]

सम्राट् की जय !
सम्राट् की जय !
सम्राट् की जय !

चंद्रचूड़ : अरे, सम्राट् का आगमन हो रहा है।

शेखरक : जयघोष समीप ही सुनाई दिया। सम्भवतः सम्राट् निकट ही हैं।

[जयघोष के साथ सम्राट् उदयन का प्रवेश। गठा हुआ तेजोमय शरीर। उन्नत ललाट और बड़ी-बड़ी आँखें। लगता है, सौन्दर्य उनके अंग-अंग में साकार हुआ है। वे युद्ध के वस्त्र पहने हैं, हाथ में कृपाण है। उनके प्रवेश करते ही चंद्रचूड़ और शेखरक जयघोष करते हैं।]

शेखरक : सम्राट् की जय !

चंद्रचूड़ : सम्राट् की जय !

उदयन : (**देखकर**) शेखरक और चंद्रचूड़ ? तुम दोनों ही यहाँ हो ? तुम्हें ज्ञात होगा कि कनकावती पर कौशाम्बी की विजय हुई। मेरा यह कृपाण अरुणि की सेना पर चक्राकार घूमा। भाग्य भी मेरे कृपाण की गति का अनुसरण करता है।

शेखरक : सम्राट् ! आप जिस ओर दृष्टि उठाते हैं उसी ओर विजय भी आपकी दृष्टि का अनुसरण करती है।

चंद्रचूड़ : सम्राट् की वीरता प्राप्त कर विजय भी अपने को धन्य समझती है।

उदयन : मैंने अरुणि की अक्षौहिणी सेना की गति को अपनी सेना के संचालन से कुंठित कर दिया, ऐसा सेनापति भी कहते हैं। मेरी सेना का आक्रमण इस प्रकार हुआ जैसे पूर्णिमा की रात में सागर की तरंगें उठती हैं। अरुणि ने जैसे ही मुझ पर आक्रमण किया मैंने अपने गज को आगे बढ़ा दिया। उनके दाँतों की चोट से अरुणि की तलवार टूट गई। वह जैसे ही पीछे हटा, उसकी सेना बरसाती गँदले नाले की भाँति एक ओर को बह गई जैसे रुधिर से लाल और चिकनी भूमि पर फिसल पड़ी हो। फिर मैंने पाटल घोड़े पर बैठकर लौहपाश फेंका और सौ धनुष की दूरी से अरुणि को पकड़ लिया।

शेखरक : आपकी दृष्टि अपने लक्ष्य को पहचानती है, सम्राट् !

उदयन : बीस पदाति सैनिकों के साथ मैं आगे बढ़ा। अरुणि के पास पर्याप्त वीरों की संख्या थी, किंतु मेरे कृपाण की ओर देखकर ही वे थक जाते थे। मेरे लौहपाश से खिंचकर अरुणि जैसे ही अस्त होते हुए सूर्य की भाँति नीचे आया, सारी सेना अस्त-व्यस्त हो गई।

शेखरक : साधु ! साधु ! !

चंद्रचूड़ : फिर तो विजय की भेरी बज उठी होगी।

उदयन : उसी समय ! क्योंकि वृक्ष को समूल उखाड़ चुकने पर उसकी शाखा काटने में क्या परिश्रम होता है ? शंख और भेरी-नाद ने हमारी विजय की घोषणा कर दी। किन्तु वह विजय अभी पूर्ण नहीं कही जा सकती।

शेखरक : आपकी विजय तो सदैव पूर्ण होती है।

उदयन : नहीं, मुझे इसी समय फिर युद्ध के लिए जाना है। जिस प्रकार रात्रि समाप्त होने पर आकाश में अंधकार की छाया रहती है, उसी प्रकार अरुणि की पराजय के बाद भी कनकावती में विद्रोह की अशान्ति शेष है। मैं इसी समय उसे भी समाप्त करना चाहता हूँ। जो सेना अरुणि को पराजित कर लौटी है, उसका मुझे इसी समय निरीक्षण करना है।

चंद्रचूड़ : कुछ विश्राम करें, सम्राट् !

उदयन : चंद्रचूड़ ! सूर्य जब विश्राम करने चला जाता है तो आकाश में तारों की संख्या कितनी बढ़ जाती है। मैं अपने शत्रुओं की संख्या बढ़ते हुए नहीं देख सकता।

शेखरक : तो इस समय सिंहासन शून्य ही रहेगा।

उदयन : शेखरक ! इस समय तो अश्व की पीठ ही मेरे आसन की प्रतीक्षा कर रही है और सिंहासन यदि कहीं होगा तो वह कनकावती और कौशाम्बी की सीमा-सन्धि पर ही होगा। कनकावती पर मेरा आक्रमण इस समय मेरा प्रथम लक्ष्य है।

शेखरक : सम्राट् की जय !

उदयन : पहले मैं अपनी सेना का निरीक्षण···

[नेपथ्य में सम्मिलित ध्वनि—]

धम्मं सरणं गच्छामि !

संघं सरणं गच्छामि ! !

उदयन : (**चौंककर**) यह कैसा कोलाहल ! शेखरक ! वातायन से देखो।

शेखरक : (**वातायन से देखते हुए अटकते हुए शब्दों में**) ···त···था···ग···त !

चंद्रचूड़ : भगवान तथागत कौशाम्बी पधारे हैं।

शेखरक : वे इस राजप्रासाद के समीप आ गए।

उदयन : आ गए ? और इसी समय जब मैं कनकावती पर आक्रमण करने जा रहा हूँ। (**सिर पकड़कर**) ओह, तथागत ! अहिंसा का उपदेश इसी समय करना था जब मैं नगरवासियों के समक्ष दिग्विजय का आदर्श रखने जा रहा हूँ ?

चंद्रचूड़ : सम्राट् ! कहा जाता है कि वे भी दिग्विजय करने निकले हैं !

उदयन : (**रूखे स्वर में**) सावधान ! चंद्रचूड़ ! घोषित को मैंने तथागत का स्वागत करने की अनुमति दी थी, राजधानी की सीमा पर मात्र संघाराम बनवाने की स्वीकृति दी थी। यह नहीं कि तथागत मेरी राजधानी में निवास करने लगें। मेरे वीर नागरिकों को भी भिक्षुक बना दें। उनके हाथों में भिक्षापात्र दे दें। जहाँ कृपाण होना चाहिए, वहाँ यह भिक्षापात्र ! नहीं होगा ! यह नहीं होगा !

चंद्रचूड़ : सम्राट् ! वे तो केवल धर्म का उपदेश देते हैं, किसी को अपना धर्म स्वीकार करने के लिए विवश नहीं करते।

शेखरक : फिर तथागत तो कुछ दिनों के लिए ही पधारे हैं। वे एक स्थान में कितने दिनों रहते हैं ? वे भ्रमण करते हुए इस स्थान पर···

उदयन : इस स्थान पर वे एक दिन भी नहीं रह सकेंगे।

[नेपथ्य में फिर सम्मिलित ध्वनि—]

धम्मं सरणं गच्छामि

उदयन : यह कोलाहल फिर हुआ ? (**वातायन से देखते हुए**) मैं अभी तथागत के समक्ष स्पष्ट कर दूँगा कि कौशाम्बी उनके उपदेशों का बोझ सहन नहीं कर सकेगी। वे मगध, काशी, अंग, सौराष्ट्र, मिथिला, शूरसेन, कहीं भी जाएँ, कौशाम्बी को मुक्त करें। तुम भी अपने शान्ति-गृहों में जाकर विश्राम लो ! मैं सैन्य-निरीक्षण के साथ ही तथागत के संघ का भी निरीक्षण करूँगा।

शेखरक : जैसी आज्ञा। सम्राट् की जय हो !

चंद्रचूड़ : सम्राट् की जय हो !

[दोनों का प्रणाम कर प्रस्थान]

उदयन : मेरे राजकर्मचारी भी तथागत के भक्त ज्ञात होते हैं। तथागत की भक्ति सामान्य व्यक्तियों के लिए ठीक हो सकती है, सैनिक और नरेशों के लिए नहीं। (**पुकारकर**) प्रतिहारी !

[प्रतिहारी नेपथ्य से—उपस्थित हूँ, सम्राट् !]

[प्रतिहारी का प्रवेश]

उदयन : सेनाध्यक्ष रुमण्वान से निवेदन करो कि उनकी आवश्यकता है।

प्रतिहारी : जैसी आज्ञा। (**प्रस्थान**)

उदयन : (**अपने आप**) तथागत···! शान्ति और अहिंसा का उपदेश करते हैं। सोती हुई निरपराध पत्नी को छोड़कर जो कर्मयोग से भागे, वे किस अहिंसा का उपदेश देंगे ! अपने अबोध शिशु पर भी जिन्हें दया नहीं आई, वे किस शान्ति का उपदेश करेंगे ? भगवान राम वन में गए, वे अपनी पत्नी सती सीता को भी साथ ले गए। किन्तु तथागत···वन में गए चोरी से और अपनी पत्नी सती यशोधरा को जीवन भर रोने के लिए छोड़ गए ! यह कैसा धर्म है ? यह कैसी शान्ति है ? जिसे कर्मयोग में अनुरक्त रहना चाहिए, वह निर्वाण में अनुरक्त है। कायर शाक्य कुमार ! तुम क्षत्रिय होकर युद्ध में आरूढ़ नहीं हो सके ? धर्म ! शान्ति ! अहिंसा ! इसका प्रचार तो यशोधरा को करना चाहिए, तुम्हें नहीं···! दुःख, रोग और मृत्यु को जो महान समझते हैं, वे भगवान कैसे हो सकते हैं ? आसक्ति के बाण से जीवन का लक्ष्य-वेध नहीं हो सकता।

[रुमण्वान का प्रवेश]

रुमण्वान : सम्राट् की जय !

उदयन : कनकावती पर आक्रमण करने के लिए मैं सेना का निरीक्षण करूँगा।

रुमण्वान : सम्राट् की आज्ञा ! किन्तु इस समय यह सम्भव नहीं हो सकेगा।

उदयन : (**तीव्रता से**) सम्भव नहीं हो सकेगा ? कारण स्पष्ट हो !

रुमण्वान : सम्राट् ! इसी प्रासाद के पूर्व में तथागत धर्म का उपदेश कर रहे हैं। समस्त संघ उनके चरणों के समीप है और जनता भारी संख्या में एकत्र है।

उदयन : मैं देख रहा हूँ। तथागत ही मेरे आक्रमण के मार्ग में हैं। रुमण्वान ! रण से लौटते समय तुम पूर्व दिशा से अपनी सेना क्यों नहीं लाए ? संघ को वहाँ एकत्र होने का अवसर ही न मिलता !

रुमण्वान : यदि सम्राट् पूर्व दिशा से आते तो संघ पश्चिम में एकत्र हो जाता। तथागत आपके लौटने का मार्ग देख रहे थे। वे तो आपके समक्ष ही धर्मोपदेश करने का व्रत लिए हुए हैं।

उदयन : मेरे समक्ष ?

रुमण्वान : सम्राट् ! मुझे सूचना मिली थी कि तथागत कौशाम्बी इसीलिए आए हैं। मैं उन्हें कौशाम्बी की सीमा पर ही रोक देता किन्तु आपने संघाराम बनवाने की स्वीकृति दे दी थी, इसलिए मैं उन्हें नहीं रोक सका। आपकी स्वीकृति से एक बार नगर में प्रवेश पा लेने पर समस्त जनता उनके चरणों में अपना मस्तक झुका रही है। नगर के किस-किस व्यक्ति को नियन्त्रण में लिया जा सकता है, सम्राट् ! चारों ओर भगवान तथागत की स्तुति हो रही है और सम्राट् के साथ आज ही हम सब रण से लौटे हैं।

उदयन : तो अब मेरा राजतन्त्र संन्यासी के आदेशों का अनुकरण करेगा, क्यों ?

रुमण्वान : मैं क्या निवेदन करूँ, सम्राट् ! नगर में भगवान तथागत का संघ घूम रहा है। सुना है कि आज राजमहिषी सामावती के आग्रह से ही···

उदयन : (बीच में ही) सावधान ! राजमहिषी का उल्लेख न हो ! यह संघ राज-प्रासाद के पूर्व में जिस कारण से एकत्र हुआ है, वह मैं नहीं जानना चाहता। मैं जानना चाहता हूँ कि मेरी सेना इस संघ का निवारण करेगी ? कर सकेगी या नहीं ? इसी समय···

रुमण्वान : मैं इसी समय आज्ञा दूँगा किन्तु विद्रोह हो जाने की आशंका है।

उदयन : विद्रोह ! कैसा विद्रोह ?

रुमण्वान : सम्राट् के अनेक सैनिक तथागत के भक्त हैं।

उदयन : तो यह विष यहाँ तक फैल चुका है ? सारे वन पर तुषारपात हो गया ! अमात्य यौगंधरायण अभी मगध से नहीं लौटे ?

रुमण्वान : अभी तक नहीं, सम्राट् ! निकट भविष्य में उनके लौटने की आशा भी नहीं है।

उदयन : तो राजनीति उपेक्षा भरी नींद में है।

रुमण्वान : कदापि नहीं, सम्राट् ! आपने कलिंग और कौशल को पराजित किया है। बड़े-बड़े राजसंघ आपके कृपाण से खंड-खंड हो गए। यह सामान्य भिक्षु-संघ उसके सामने क्या है। फिर सम्राट् स्वयं राजनीति के आचार्य हैं।

उदयन : विष से विष नष्ट किया जा सकता है किन्तु जिस विष ने अमृत का नाम धारण कर लिया है, उसका प्रतिकार किस नीति से होगा ?

रुमण्वान : कूटनीति से, सम्राट् !

उदयन : तुम अपनी ही निन्दा कर रहे हो, रुमण्वान ! जिस सम्राट् के पास अधिक वीर नहीं होते वही कूटनीति का आश्रय लेता है और जो वीर अपने स्वामी से अनुराग नहीं रखते वे अनुरागहीन नारी की भाँति त्याज्य हैं।

रुमण्वान : सम्राट् के श्री-चरणों में वीरों का अनुराग है।

उदयन : यह मैं कैसे मानूँ जबकि तुम्हारे सैनिकों का अनुराग तथागत के चरणों में है ? यह अनुराग भी सम्भवतः एक दर्पण है ! जो उसके समक्ष आता है, उसी का रूप उसमें झलकने लगता है।

रुमण्वान : मैं स्वीकार करता हूँ, सम्राट् ! भाषा पर मेरा अधिकार नहीं है, इसलिए मन की बातें स्पष्ट नहीं कर सकता। आप जो आज्ञा दें, उसकी पूर्ति मैं उसी क्षण कर सकता हूँ।

उदयन : भयानक से भयानक शत्रु को तुम पराजित कर सकते हो, किन्तु तथागत···? उन्हें न तुम पराजित कर सकते हो, न तुम्हारे सैनिक !

रुमण्वान : सम्राट् की वाणी···

उदयन : व्यर्थ की बातों के लिए समय नहीं है, रुमण्वान ! तथागत मेरी वाणी नहीं समझते और मैं भी तथागत की वाणी नहीं समझता। दो वाणियों में से केवल एक

ही वाणी कौशाम्बी में रहेगी।

[नेपथ्य में सम्मिलित ध्वनि—]

बुद्धं सरणं गच्छामि।

उदयन : फिर यह ध्वनि उठी ! क्या यही वाणी कौशाम्बी में निवास करेगी ? (**वातायन से देखते हुए**) तथागत ऊँचे आसन पर बैठे कुछ कह रहे हैं। जनसमूह ध्यान में डूबा हुआ, उनके समीप बैठा है। चारों दिशाओं से जनवृन्द खिंचे-से चले आ रहे हैं। फूलों की मालाएँ उनके कण्ठ में पड़ रही हैं। (**रुमण्वान से**) रुमण्वान ! ज्ञात होता है, आज कौशाम्बी में सम्राट् उदयन की सत्ता नहीं रह गई। तथागत ही यहाँ के सम्राट् हैं !

रुमण्वान : सेवक रुमण्वान के जीवित रहते यह नहीं हो सकता, सम्राट् !

उदयन : यही तो हो रहा है, नहीं तो आज युद्ध से लौटने पर तुम्हारी सेना का स्वागत होता, तथागत का नहीं। इसी से स्पष्ट है कि सम्राट् कौन है। रुमण्वान ! सँभलो। समस्त कौशाम्बी भिक्षु बनने जा रही है। हमारे बड़े-बड़े पोत जो ब्रह्मदेश और चम्पा से विद्रुम, पन्ना, पद्मराग-मणि और मुक्ता लाते हैं वे अब केवल मधुकरी ढोना आरंभ करेंगे। हमारे राजप्रासाद भी संघारामों में परिणत होंगे और सैनिकगण चीवर पहनकर अहिंसा का उपदेश करेंगे।

रुमण्वान : तब क्या उपाय किया जाए, सम्राट् !

उदयन : सैनिकों का कर्त्तव्य नष्ट होने जा रहा है। जिन राज्यों को आज हमारी शक्ति से भय है, वे कल व्यंग्य की हँसी हँसकर दस्युओं की भाँति हम पर आक्रमण करेंगे। हम सिर झुका कर कहेंगे—देखना, हमारे कंठ से कहीं तुम्हारा कृपाण कुंठित न हो जाए ! हम स्वयं तुम्हारे चरणों में गिर कर मर जाएँगे।

[रुमण्वान चुप रहता है।]

उदयन : तुम चुप हो, रुमण्वान ? बोलो, क्या ऐसी ही परिस्थिति नहीं आ जाएगी ? क्या क्षत्रियों की परम्परा सदैव के लिए नष्ट नहीं होगी और एक क्षत्रिय शाक्य कुमार जो तथागत के नाम से पूजे जा रहे हैं, क्या उन्हीं के द्वारा क्षत्रियों की मर्यादा का विनाश नहीं हो रहा है ? जिस क्षत्रिय ने अपनी क्षत्राणी और क्षत्रिय कुमार को भिक्षु बना दिया है, वह अन्य राजवंशों में भी इसी विनाश के बीज बो रहा है। क्या यह सहन किया जा सकता है ?

रुमण्वान : कदापि नहीं, सम्राट् !

उदयन : तो लाओ मेरा धनुष-बाण ! आज मैं अपने वंश की परम्परा की रक्षा के लिए बाण का प्रयोग करूँगा।

रुमण्वान : किस पर प्रयोग करेंगे ?

उदयन : इसी क्षत्रिय-कुल के संन्यासी पर जिसकी वाणी पराजित हुए कायरों की छद्मवेशी वाणी है, जिसका युद्धक्षेत्र उपदेशों का मरुस्थल बन गया है, जिसके शरीर

का कवच आज चीवर बन कर पैरों से लिपट रहा है और जिसकी दृष्टि शत्रुओं को धराशायी बनाने के बदले स्वयं धराशायी बन गई है ।

रुमण्वान : (**सहम कर**) तथागत पर बाण का प्रयोग !

उदयन : हाँ, तथागत पर बाण का प्रयोग ! मगध, अवंती और कौशल के नरेश भी प्रसन्न होंगे कि क्षत्रियों के पौरुष में अकर्मण्यता का विष भरने वाले ऐन्द्रजालिक के साथ उचित व्यवहार किया गया है । जिस कंठ में उपदेश की शीतलता समा गई है, उस कंठ में मेरे बाणों की शक्ति-ज्वाला धधक उठे । रुमण्वान ! क्षत्रियों के कंठ को शीतलता नहीं चाहिए, उसमें अग्नि का निवास होना चाहिए। मेरा बाण बोधिसत्व को अगले जन्म में सच्चा क्षत्रियत्व प्रदान करेगा ।

रुमण्वान : सम्राट् ! तथागत के कंठ में बाण देखकर जनसमूह विद्रोह कर उठेगा ।

उदयन : तब उस विद्रोह का शमन करने के लिए तुम प्रस्तुत रहोगे और तुम्हारी सेना के वे सैनिक प्रस्तुत रहेंगे जिनका सच्चा अनुराग क्षत्रिय उदयन में है, क्षत्रियों की परम्परा मिटाने वाले तथागत में नहीं ।

रुमण्वान : फिर भी, सम्राट्···!

उदयन : क्या तुम भी तथागत के भक्त हो, रुमण्वान ? मेरे आदेश का पालन हो ! इस वातायन से मैं ऐसा शब्दबेधी बाण चलाऊँगा कि एक क्षण में तथागत को निर्वाण प्राप्त होगा। भविष्य की साधना के बिना ही तथागत को सिद्धि प्राप्त होगी ।

रुमण्वान : जैसी आज्ञा, किन्तु···

उदयन : सावधान, रुमण्वान ! मेरे आदेश में 'किन्तु' को स्थान नहीं है ? भगवान राम ने भी शब्द-बेधी बाण से बालि का बध किया था। वही परीक्षा मेरे समक्ष है । धनुष-बाण शीघ्र ही प्रस्तुत हो !

रुमण्वान : जैसी आज्ञा । (**प्रस्थान**)

उदयन : (**अव्यवस्थित होकर**) राज्य के लिए जो अशुभ है, उसका विनाश करना ही होगा। (**स्वगत**) उदयन ! आज तेरी परीक्षा है । जिस सामावती को मैं प्राणों की भाँति प्रिय समझता हूँ, वही सामावती तथागत को प्राणों से अधिक मानती है । ऐसे तथागत को आज मैं बाणों का लक्ष्य बनाऊँगा । बाण तो तथागत के हृदय में लगेगा, किन्तु पीड़ा सामावती को होगी । वह पीड़ा मैं सहन करूँगा । कौशाम्बी के भविष्य को सुधारने के लिए यदि उदयन को अंतःपुर में शोक की अग्नि भी प्रज्वलित करनी पड़े तो वह प्रति क्षण प्रस्तुत रहेगा । उदयन केवल अंतःपुर का नायक न बने, वह कौशाम्बी का सैनिक भी बने···सैनिक···! कौशाम्बी का सैनिक !

[रुमण्वान का धनुष-बाण लेकर प्रवेश]

रुमण्वान : सम्राट् की सेवा में धनुष और बाण प्रस्तुत है ।

उदयन : लाओ मेरा धनुष। तीक्ष्ण बाण है न ? (**देखकर**) हाँ, इस एक ही बाण में निर्वाण प्रदान करने की शक्ति है। देखो, रुमण्वान ! तुम जाओ और संघ के समीप

ही रहो । तुम्हारे कुशल सैनिक बाहर होंगे, उन्हें भी साथ ले लो । जैसे ही मेरा बाण तथागत को लगे, वैसे ही तुम और तुम्हारे सैनिक संघ को घेर लेंगे । तथागत को बाण लगने की दुर्घटना में जो हलचल होगी उसी में तुम वह बाण निकाल कर किसी सैनिक के हाथ मेरे पास भेज दोगे ! (**नेपथ्य में सम्मिलित ध्वनि—'संघं सरणं गच्छामि'**) जाओ, शीघ्र जाओ । कहीं उपदेश समाप्त न हो जाए ! मेरा बाण शीघ्र ही तथागत के हृदय के पास पहुँचेगा ।

रुमण्वान : जो आज्ञा । सम्राट् की जय ! (**प्रस्थान**)

उदयन : (**जोर देकर**) रुमण्वान आदेश के अनुसार ही कार्य करेगा । फिर धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा कर मैं भी बाण का संधान करूँगा ! (**धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाते हैं । धनुष को देखते हुए**) यह धनुष···कितने युद्धों में इसने शत्रुओं को आतंकित किया है ! इसकी प्रत्यंचा ने प्रत्येक बाण छोड़ने की गूँज में हृदय को युद्ध के लिए उत्साहित किया है । आज इसकी गूँज केवल एक बार होगी ! और जनता तो दृष्टि से ही उनके दर्शन करती है, यह बाण हृदय में प्रवेश कर उनके अन्तःकरण के दर्शन करेगा ! जाओ, मेरे प्रिय बाण ? तुम मेरे हृदय की ज्वाला लेकर—ज्वाला···ले ···कर··· (**वातायन से दृष्टि डालकर**) तथागत की शान्तिमय मुद्रा । अनेक स्त्रियाँ भी उपदेश सुन रही हैं ! स्त्रियाँ···इन स्त्रियों के रूप में ! मेरा बाण धनुष से गिर रहा है ! प्रत्यंचा भी हाथ से छूट रही है !···क्या मैं भयभीत हो रहा हूँ ? नहीं···नहीं···ऐसा नहीं हो सकता । तथागत की शान्त मुद्रा मुझे मेरे कर्त्तव्य से पीछे नहीं हटा सकती···नहीं हटा सकती ! तथागत के हृदय में बाण को प्रवेश करना ही होगा । (**फिर वातायन से देखकर**) रुमण्वान अपने सैनिकों के साथ तथागत के संघ के समीप पहुँच रहा है ! अब मैं भी शब्द-बेधी लक्ष्य-संधान करूँ ! (**शब्द-बेध के लिए शब्द की प्रतीक्षा करते हुए**) शब्द हो !···शब्द हो !···शब्द हो···! (**रुककर**) शब्द···हो···!

[नेपथ्य में सम्मिलित ध्वनि—]

बुद्धं सरणं गच्छामि···

[नेपथ्य में तथागत का स्वर—]

अब मैं चलता हूँ । भिक्खुओ, गृहपतियो ! प्रमोदयुक्त बनो···क्षेम की चाह करो ।

उदयन : (**गहरी साँस भर कर धनुष-बाण खींचते हुए**) जय महाकाल !

[धनुष से बाण छोड़ देते हैं । बाण की गूँज वातावरण में फैल जाती है ।]

उदयन : (**धीरे-धीरे दुहराते हुए**) जय महाकाल ! जय महाकाल ! जय महाकाल !

[नेपथ्य में कोलाहल होता है । उसके बाद ही 'धम्मं सरणं गच्छामि' की सम्मिलित ध्वनि]

उदयन : (**विह्वल होकर**) क्या मेरा बाण लक्ष्य पर नहीं पहुँचा ? (**वातायन से देखते**

हुए) तथागत सौम्य मुद्रा में बैठे हैं। उनके समक्ष एक हंस—एक हंस का शरीर ! चारों ओर से सैनिक ! नागरिकों की हलचल ! कुछ भिक्षु हंस को देख रहे हैं। तथागत उस हंस के पंखों पर हाथ फरते हैं। यह कैसा कौतुक है ? क्या मेरा बाण अपने लक्ष्य पर नहीं, पहुँचा ? किन्तु यह कैसे हो सकता है ? फिर मेरा बाण किसे लगा ? उस हंस को ? नहीं···नहीं···यह कैसे संभव हो सकता है ? मेरा बाण अपना लक्ष्य पहचानता है ! यह कैसी घटना है ! **(पुकार कर)** प्रतिहारी !

नेपथ्य से : उपस्थित हूँ, सम्राट् !

[प्रतिहारी का प्रवेश]

उदयन : प्रतिहारी ! वह बाण···बाहर कैसी हलचल हो रही है ? तथागत को बाण··· मैं अभी बाहर जाऊँगा···मैं अभी···

[रुमण्वान का प्रवेश]

रुमण्वान : सम्राट् की जय **(प्रतिहारी से)** प्रतिहारी ! तुम बाहर जाओ।

प्रतिहारी : जो आज्ञा ! **(प्रस्थान)**

रुमण्वान : बड़ी विचित्र बात हो गई, सम्राट् !

उदयन : क्या हुआ, शीघ्र बतलाओ।

रुमण्वान : सम्राट् आपकी आज्ञानुसार हम लोग चुपचाप संघ के समीप पहुँच गए। सब लोग तथागत का उपदेश सुन रहे थे। किसी का ध्यान हमारी ओर नहीं था।

उदयन : शीघ्र कहो, शीघ्र कहो, रुमण्वान !

रुमण्वान : सम्राट् ! जैसे ही तथागत ने अपना उपदेश समाप्त किया, वैसे ही आपका बाण अपने लक्ष्य पर पहुँचा। ठीक उसी समय एक हंस तथागत के समक्ष उड़ता हुआ आया। तथागत के कंठ में बाण नहीं लगा। वह बाण हंस के कंठ में···

उदयन : (विह्वलता से) हंस के कंठ में···!

रुमण्वान : हाँ सम्राट् ! हंस के कंठ में वह बाण लगा। वह हंस तथागत के चरणों में ही गिर पड़ा।

उदयन : (करुण स्वर में) दुष्ट हंस ! तूने तथागत को बचाया !

रुमण्वान : सचमुच, सम्राट् ! उस हंस ने तथागत को बचा लिया ! यदि ठीक उसी समय हंस तथागत के समक्ष उड़ता हुआ न आता तो तथागत के कंठ में वह बाण प्रवेश कर जाता !

उदयन : हंस !···वह हंस ठीक उसी समय तथागत के समक्ष क्यों उड़ा ? क्या वह जानता था कि मैं तथागत पर बाण का प्रयोग करने जा रहा हूँ ! तो उस हंस ने तथागत को बचाया ! क्यों बचाया ! अपने प्राणों की बलि देकर ! तब उसके रक्त का अपराध भी अहिंसा के प्रचारक तथागत पर है ! मैं इसका प्रतिशोध लूँगा। अब दूने वेग से मेरे धनुष की प्रत्यंचा और खिंचेगी और तथागत के कंठ और हृदय को बेधने के लिए एक साथ मैं दो बाणों का संधान करूँगा ! धनुष पर ये रहे मेरे दो

बाण ! रुमण्वान ! जाओ और देखो, इस बार कोई अन्य हंस तथागत के समक्ष उड़ कर न आए।

[धनुष पर दो बाणों का संधान करते हैं]

रुमण्वान : उड़ने की प्रेरणा अज्ञात होती है, सम्राट् ! हंस नहीं जानता था कि उसी क्षण आपका बाण तथागत के समीप पहुँचेगा। घटनाचक्र ही ऐसा घूम गया कि हंस ने तथागत के सामने ही उड़कर उनकी ओर छोड़ा हुआ बाण अपने कंठ में ले लिया।

उदयन : तो तुम समझते हो कि दूसरी बार छोड़े हुए बाण भी अपने लक्ष्य पर नहीं पहुँचेंगे ? कोई दूसरा जीव बीच में उठ खड़ा होगा ?

रुमण्वान : मैं यह नहीं कहता, सम्राट् ! किन्तु ज्ञात होता है कि तथागत में बड़ी दैवी शक्ति है। परिस्थितियाँ ही उनके लिए कवच बन जाती हैं।

उदयन : मैं देखूँगा कि परिस्थितियाँ कैसे उनके लिए कवच बन जाती हैं। तुम जाओ। मैं बाण संधान करता हूँ।

[नेपथ्य से फिर शब्द—बुद्धं सरणं गच्छामि]

रुमण्वान : (**वातायन से देखकर**) तथागत इसी ओर आ रहे हैं।

उदयन : इसी ओर आ रहे हैं ? क्यों ? क्या उन्हें ज्ञात हो गया कि इस घटना का सम्बन्ध मेरे कक्ष से है ?

रुमण्वान : ज्ञात हो गया, सम्राट् ! जनता ने आपका बाण पहचान लिया !

उदयन : जनता ने ?

रुमण्वान : हाँ, सम्राट् ! एक सैनिक ने बाण को निकालने का प्रयत्न किया ! किन्तु किसी व्यक्ति ने उसका हाथ हटा दिया और आपके कक्ष की ओर संकेत किया !

उदयन : संकेत दिशा की ओर भी हो सकता है, कक्ष की ओर नहीं।

रुमण्वान : सम्राट् ! जनता उत्तेजित हो रही है। लोग अनेक प्रकार की बातें कर रहे हैं।

उदयन : किस प्रकार की बातें कर रहे हैं ?

रुमण्वान : कुछ कहते हैं कि तथागत को ही यह बाण मारा गया है। उनकी हत्या की चेष्टा की गयी है।

उदयन : और तथागत क्या कहते हैं ?

रुमण्वान : तथागत शान्त हैं ! वे अन्य लोगों को भी शान्त कर रहे हैं कि धनुष-क्रीड़ा में यह बाण भूल से इधर आ गया होगा !

उदयन : (**दुहराते हुए**) धनुष···क्रीड़ा में ही···यह बाण भूल से···इधर आ गया··· होगा। तथागत···! तो इसे वे मेरा कार्य···मेरा दोष नहीं मानते ?

रुमण्वान : कहा नहीं जा सकता, सम्राट् ! किन्तु जो ऐसा मानते हैं उन्हें वे रोकते हैं। उनके हृदय में किसी प्रकार की भी हलचल नहीं है। वे तो जैसे परिस्थितियों पर

शासन करते हैं।

उदयन : तो क्या उनका शासन मेरे शासन से भी महान है? **(वातायन की ओर देखते हुए)** तथागत···इसी ओर आ रहे हैं! उनके हाथों में हंस का शरीर है। उनके पीछे जनता चली आ रही है। मुख-मुद्रा शान्त! वह हंस उनके हाथों में श्वेत फूलों की राशि की भाँति निश्चेष्ट पड़ा है। किन्तु पीछे आने वाली जनता में कितनी उग्रता है!

रुमण्वान : सम्राट्! क्या मैं तथागत और इस उग्र जनता को द्वार पर ही रोकूँ?

उदयन : रोकोगे?···नहीं। रोकने की आवश्यकता नहीं है। तथागत को आने दो। देखूँगा कि तथागत इस काण्ड के सम्बन्ध में मुझसे क्या कहते हैं और जनता मेरे समक्ष कितनी उग्र हो सकती है!

रुमण्वान : जैसी आज्ञा! **(पुकार कर)** प्रतिहारी!

[नेपथ्य से—उपस्थित हूँ, श्रीमन्!]

[प्रतिहारी का प्रवेश]

रुमण्वान : प्रतिहारी! तथागत तथा अन्य व्यक्ति जो इस कक्ष में प्रवेश करना चाहें उन्हें रोकने की आवश्यकता नहीं। ऐसी सम्राट् की आज्ञा है।

प्रतिहारी : जो आज्ञा। **(प्रस्थान)**

उदयन : **(सोचते हुए)** तो तथागत इस समय भी शान्त हैं।

रुमण्वान : सम्राट्! तथागत में अवश्य कोई दैवी शक्ति है।

उदयन : **(सोचते हुए)** दैवी शक्ति···

रुमण्वान : ऐसी परिस्थिति में कोई भी व्यक्ति शान्त नहीं रह सकता। जन-समुदाय को ही देखिए, वह कितना उग्र हो रहा है!

उदयन : क्या जन-समुदाय तथागत का अनुकरण नहीं करेगा?

रुमण्वान : सम्राट्! आपसे एक प्रार्थना है।

उदयन : कौन सी!

रुमण्वान : अपने हाथ से धनुष अलग कर दें।

उदयन : सेनापति! कायरता की बातें मत करो। क्या मैं अपना कार्य छिपाने के लिए असत्य व्यवहार करूँ? यह धनुष मेरे हाथों ही में रहेगा। घटनाओं की विचित्रता से मैं अपने आपको नहीं भूल सकता! मैं वही रहना चाहता हूँ जो मैं वास्तव में हूँ। तुम तथागत का स्वागत करो!

[द्वार पर कोलाहल। तथागत का प्रवेश। उनकी मुख-मुद्रा अत्यन्त शान्त है। उनके दोनों हाथों में हंस का शरीर है। वे कक्ष के द्वार के समीप ही खड़े रहते हैं। कोलाहल कुछ शान्त होता है।]

रुमण्वान : तथागत की जय!

उदयन : (**अपने आप**) तथागत आ गए। (**प्रकट**) तथागत ने मेरे समीप आने का कष्ट कैसे उठाया ?

तथागत : आयुष्मन् ! बहुत जनों के सुख के लिए, बहुत जनों के हित के लिए, लोक की अनुकम्पा के लिए विहार करता हूँ। जो कोई भय उत्पन्न होता है वह सभी अनजान से उत्पन्न होता है, पंडित से नहीं। जो कोई उपद्रव उत्पन्न होते हैं, वे सभी अनजान से ही उत्पन्न होते हैं, पंडित से नहीं, जिस तरह तृण के घर से निकली हुई आग सुन्दर वातायनों वाले महलों को जला देती है।

एक स्वर : वास्तव में सुन्दर वातायनों वाले महल को जल जाना चाहिए।

तथागत : भिक्षुओ ! तुम सब इस कक्ष में प्रवेश मत करो। शान्त रहो। इस कक्ष में कोई न रहे।

[रुमण्वान के साथ सभी चले जाते हैं। कोलाहल शान्त हो जाता है।]

तथागत : (**हंस को पृथ्वी पर रखकर**) मेरे हंस ! तू पृथ्वी पर शयन कर पुण्य उत्पन्न कर। किसी समय मैंने एक हंस के प्राणों की रक्षा की थी। आज दूसरे हंस ने मेरी और जनता के प्राणों की रक्षा की है। (**उदयन से**) आयुष्मन् ! तुम महायज्ञ हो, नाना प्रज्ञ हो, भास्वर प्रज्ञ हो। सुख, चित्त की एकाग्रता, स्पर्श, वेदना, छन्द, अधिमोक्ष, ये तुमको विदित होकर उत्पन्न होते हैं, विदित होकर स्थित होते हैं, विदित होकर अस्त होते हैं, जिस प्रकार धनुष पर तुम्हारा बाण प्रेरणा से आसन लेता है, भावना से स्थित होता है और फल प्राप्ति पर अस्त होता है।

उदयन : तथागत ! निग्रंथ जैन साधु जो कहते हैं कि श्रमण गौतम मायावी हैं, मति फेरने वाली माया जानते हैं, आवर्तनी माया जानते हैं, क्या यह सत्य नहीं है ?

तथागत : सत्य में स्थिर हो, आयुष्मन् ! यह स्थान नहीं है, यह अवकाश नहीं है कि तुमसे कुछ कथा-संलाप करूँ जैसे बलवान पुरुष लम्बे बाल वाली भेड़ को पकड़ कर घुमावे, उसी प्रकार तुम परिस्थितियों को मत घुमाओ। जैसे साठ वर्ष का हाथी गहरी पुष्करिणी में घुस कर कमलिनी को झकझोर दे, उस प्रकार वाणी को नहीं झकझोरना चाहिए। आयुष्मन् ! प्रश्न करता हूँ कि कर्म का विधान करना उचित है या दण्ड का विधान करना उचित है ?

उदयन : राजा के लिए दोनों का विधान करना उचित है !

तथागत : आयुष्मन् ! 'रण्ड' 'दण्ड' कहना तथागत का धर्म नहीं है, 'कर्म' 'कर्म' कहना ही तथागत का धर्म है ! काम-कर्म, वचन-कर्म, मन-कर्म। काम-कर्म और वचन-कर्म से मन-कर्म श्रेष्ठ है।

उदयन : सम्भव है।

तथागत : आयुष्मन् ! यदि एक वीर पुरुष धनुष-बाण उठा कर आए और कहे कि कौशाम्बी में जितने प्राणी हैं, मैं उन्हें एक क्षण में—एक मुहूर्त्त में—मांस का ढेर कर दूंगा, तो क्या आयुष्मन् ! वह पुरुष कौशाम्बी में जितने प्राणी हैं उन्हें एक क्षण में—एक मुहूर्त में—मांस का ढेर कर सकता है ?

उदयन : सम्भव नहीं है।

तथागत : और आयुष्मन् ! यदि एक वीर पुरुष अपने चित्त को वश में करके मन-कर्म से एकनिष्ठ होकर आए और कहे कि इस कौशाम्बी को एक ही मुहूर्त्त में मन के क्रोध से भस्म कर दूँगा तो क्या आयुष्मन् ! वह वीर पुरुष कौशाम्बी को एक मुहूर्त्त में ही मन के क्रोध से भस्म कर सकता है ?

उदयन : सम्भव नहीं है।

तथागत : मन में सोच कर कहो, आयुष्मन् !

उदयन : सोचकर कह रहा हूँ, सम्भव नहीं है।

तथागत : तो आयुष्मन् ! क्या तुमने दण्डकारण्य, कलिंगारण्य आदि का अरण्य होना सुना है ?

उदयन : हाँ, तथागत ! मैंने सुना है।

तथागत : तो आयुष्मन् ! तुमने सुना है कि कैसे दण्डकारण्य, कलिंगारण्य अरण्य हुआ ?

उदयन : तथागत ! मैंने सुना है, ऋषियों के मन के कोप से दण्डकारण्य, कलिंगारण्य अरण्य हुआ है।

तथागत : तो आयुष्मन् ! मन में सोचकर कहो। तुम्हारा पूर्व से पश्चिम नहीं मिलता, पश्चिम से पूर्व नहीं मिलता। और तुम व्यर्थ 'आवर्तनी माया' की बात कहते हो ! तब बाण की शक्ति से एकनिष्ठ हुए मन की शक्ति तो अधिक है।

उदयन : **(सोचते हुए)** आप ठीक कहते हैं, भन्ते, बाण की शक्ति से एकनिष्ठ हुए मन की शक्ति अधिक है। तब मन ही सुसज्जित होना चाहिए, बाण नहीं। **(धनुष हाथों से अलग कर पृथ्वी पर एक ओर फेंक देते हैं)** मैंने अपनी शक्ति का उपहास किया ! तथागत ! मैंने कला तो समझी किन्तु उसका उपयोग मैंने कृपाण से किया। क्षमा करें। मन ही यदि धनुष-बाण बन जाए तो शब्द-बेध की अपेक्षा वह हृदय-बेध कर सकता है। शक्ति का वास्तविक रहस्य आज नवीन ढंग से प्रकट हुआ।

तथागत : आयुष्मन् ! पूर्ण रीति से विचार कर कार्य करो। तुम्हारे जैसे महापुरुषों को सोच-समझकर काम करना ही अच्छा होता है।... **(नीचे देखकर धीरे से)** स्वस्ति ! यह हंस अभी जीवित है।

उदयन : **(व्यग्रता से)** हाँ, हंस में प्राण अभी शेष हैं।

तथागत : मैं यह जानकर सुखी हूँ कि हंस जीवित रह सकता है।

उदयन : तथागत ! महावैद्य जीवक को बुलाकर मैं इसके प्राणों की रक्षा करूँगा। अपने प्राणों की शक्ति से इसे जीवित रखूँगा। भगवान तथागत का वचन है कि एकनिष्ठ मन की शक्ति से अरण्य भी दग्ध हो जाता है। उसी एकनिष्ठ मन से इसका मृत्यु-कष्ट दूर करूँगा। मृत्यु को दग्ध करूँगा।

तथागत : आयुष्मन् ! ज्ञातव्य को जान लो। मानवीय की भावना करो।

उदयन : स्वीकार है। अब इस हंस की रक्षा का भार मुझ पर है, भगवन् !

तथागत : मैं सुखी हुआ, आयुष्मन् ! नदियों का मुख सागर है, नक्षत्रों का मुख चन्द्रमा है, तपने वालों का मुख सूर्य है, इच्छितों का मुख पुण्य है और मनुष्यों का मुख राजा है। ऐसे मनुष्यों के मुख की रक्षा का भार मुझ पर रहना उचित है ! अतः इस हंस के प्राणों की रक्षा मैं करूँगा।

उदयन : (**करुण स्वर**) मेरे अपराधों को क्षमा करें, भगवन् ! मैं प्रभु की शरण हूँ। (**रुमण्वान को पुकार कर**) रुमण्वान ! राजमहर्षियों को मेरी ओर से सूचना दो कि भगवान पधारे हैं। उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त करो। शंखों और भेरियों से भगवान् दिग्विजय की सूचना दो।

रुमण्वान : (**प्रवेश कर**) जैसी आज्ञा। (**प्रस्थान**)

तथागत : तथास्तु, आयुष्मन् ! इस धर्म-चक्र के प्रवर्त्तन में ही मानव का कल्याण हो।

[नेपथ्य में शंख और भेरी-नाद]

[परदा गिरता है।]

□□

डॉ. कमल किशोर गोयनका
पी-एच. डी., डी. लिट्.

प्रसिद्ध प्रेमचंद विशेषज्ञ एवं समालोचक—अभी तक बीस पुस्तकें प्रकाशित—'प्रेमचंद-विश्वकोश' एवं 'प्रेमचंद—चित्रात्मक जीवनी' पर भारतीय भाषा परिषद् तथा हिन्दी अकादमी, दिल्ली से पुरस्कृत। मॉरिशस की दो बार यात्रा तथा वहां के हिन्दी साहित्य के विकास के लिए कार्यरत। सम्प्रति रीडर, हिन्दी विभाग, जाकिर हुसैन पोस्ट-ग्रेजूएट ईवनिंग कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110006

डॉ. चन्द्रिका प्रसाद शर्मा
पी-एच. डी.

प्रसिद्ध लेखक एवं समालोचक-लखनऊ विश्वविद्यालय से 'कविवर ब्रजेश महापात्र और उनका काव्य' विषय पर पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त की। सम्प्रति वरिष्ठ प्राध्यापक, साकेत पोस्ट ग्रेजूएट कॉलेज, फैजाबाद (अवध विश्वविद्यालय)